आधुनिक भारत

कक्षा 12 के लिए इतिहास की पाठ्यपुस्तक

लेखक
विपिन चन्द्र

अनुवादक
श्यामबिहारी राय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
मई 1990 वैशाख 1912

पुनर्मुद्रण
अगस्त 2004 श्रावण 1926
मार्च 2005 चैत्र 1927

PD 150T RA

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली 110 016

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलूर 560 085

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021

इस पुस्तक में सम्मिलित सभी मानचित्र भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित हैं। समुद्र में भारत का जल प्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

रु 50.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा गोपसंस पेपर्स लिमिटेड, ए 28, सैक्टर 9 नोएडा 201 301 द्वारा मुद्रित।

प्रकाशक की टिप्पणी

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) बच्चों और शिक्षकों के लिए विद्यालयी पाठ्यपुस्तकें और अन्य शैक्षिक सामग्री तैयार तथा प्रकाशित करती रही है। ये प्रकाशन विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों से प्राप्त सुझावों के आधार पर नियमित रूप से संशोधित किए जाते हैं। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा किए गए शोध-कार्य भी इस पाठ्यसामग्री के संशोधन व उसे अद्यतन बनाने का आधार होते हैं।

परिषद् की कार्यकारिणी समिति के निर्णय को ध्यान में रखकर इतिहास के पाठ्यक्रम संशोधन के लिए निर्मित नीलाद्रि भट्टाचार्या समिति ने प्रोफ़ेसर विपिन चंद्रा द्वारा लिखी पुस्तक *आधुनिक भारत* पुनः प्रस्तावित किया है। भारतीय इतिहास के आधुनिक काल पर आधारित यह पुस्तक कक्षा 12 के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए संशोधित पाठ्यक्रम के उद्देश्य को पूरा करेंगे। हमें आशा है कि यह पुस्तक आधुनिक भारत के इतिहास के शिक्षण उद्देश्यों को वस्तुपरक ढंग से समझने में मदद करेगी।

पुस्तक के इस संस्करण के किसी भी पहलू पर हम आपके सुझावों और टिप्पणियों का स्वागत करते हैं।

सचिव
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
जनवरी 2005

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय;**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता;**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता** प्राप्त कराने के लिए

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और **राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित** करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए;

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

विषय-सूची

अध्याय : 1

अठारहवीं सदी का भारत

मुगल साम्राज्य का पतन

महान मुगल साम्राज्य करीब दो सदियों तक अपने समय के अन्य साम्राज्यों के लिए ईर्ष्या का विषय था। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दौरान मुगल साम्राज्य का पतन और विघटन हो गया। मुगल बादशाहों ने अपनी सत्ता और महिमा खो दी और उनका साम्राज्य दिल्ली के इर्द-गिर्द ही कुछ वर्ग मील तक सीमित रह गया। अंत में, 1803 में दिल्ली पर भी ब्रिटिश फौज का कब्जा हो गया तथा प्रतापी मुगल बादशाह एक विदेशी ताकत का पेंशनयाफ्ता होकर रह गया।

साम्राज्य की एकता और स्थिरता औरंगजेब के लंबे और कठोर शासन के दौरान डगमगा गई। फिर भी, उसकी अनेक नुकसानदेह नीतियों के बावजूद 1707 में उसकी मौत के समय मुगल प्रशासन काफी कुशल तथा मुगल फौज काफी ताकतवर थी। इसके अलावा देश में मुगल राजवंश की इज्जत भी कायम थी।

औरंगजेब की मौत होने पर उसके तीनों बेटों के बीच गद्दी के लिए संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में पैंसठ वर्षीय बहादुरशाह विजयी रहा। वह विद्वान, आत्मगौरव से परिपूर्ण और योग्य था। उसने समझौते और मेल-मिलाप की नीति अपनाई। इस बात के सबूत मिलते हैं कि औरंगजेब द्वारा अपनाई गई संकीर्णतावादी नीतियों तथा कदमों में से कुछ को उसने बदल दिया। उसने हिंदू सरदारों और राजाओं के प्रति अधिक सहिष्णुतापूर्ण रुख अपनाया। उसके शासन काल में मंदिरों को नष्ट नहीं किया गया। आरंभ में उसने आमेर और मारवाड़ (जोधपुर) के राजपूत राज्यों पर पहले से अधिक नियंत्रण रखने की कोशिश की। इस उद्देश्य से उसने आमेर की गद्दी पर जयसिंह को हटाकर उसके छोटे भाई विजयसिंह को बिठाने की और मारवाड़ के राजा अजीतसिंह को मुगल सत्ता की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर करने की कोशिशें कीं। उसने आमेर और जोधपुर शहरों में फौजी डेरा जमाने की कोशिश भी की। किंतु इसका कड़ा प्रतिरोध हुआ। शायद इसी वजह से उसे अपनी गलत कार्रवाइयों का अहसास हुआ। उसने दोनों राज्यों से तुरंत ही समझौता कर लिया। वैसे समझौता उदारतापूर्ण नहीं था। राजा जयसिंह और राजा अजीतसिंह को अपने राज्य तो फिर से मिल गए परंतु उच्च मंसूबों तथा मालवा और गुजरात जैसे महत्त्वपूर्ण सूबों के सूबेदारों के ओहदों की उनकी मांग नहीं मानी गई। मराठा सरदारों के प्रति उसकी नीति ऊपरी तौर पर ही मेल-मिलाप की थी। उसने उन्हें दक्कन की सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार दे दिया मगर चौथ का अधिकार नहीं दिया, इसलिए वे पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुए। बहादुरशाह ने साहू को मराठों का विधिवत राजा नहीं माना। इस प्रकार उसने मराठा राज्य के ऊपर आधिपत्य के लिए ताराबाई और साहू को आपस में लड़ने को छोड़ दिया। नतीजा यह

हुआ कि साहू और मराठा सरदार असंतुष्ट रहे और दक्कन अव्यवस्था का शिकार बना रहा। जब तक मराठा सरदार आपस में और मुगल सत्ता के खिलाफ लड़ते रहे तब तक शांति और व्यवस्था फिर से कायम नहीं हो सकी।

बहुदरशाह ने गुरु गोबिंदसिंह के साथ मेल-मिलाप के संबंध स्थापित किए। परंतु गुरु गोबिंदसिंह की मृत्यु के बाद बंदा बहादुर के नेतृत्व में सिखों ने पंजाब में बगावत का झंडा बुलंद किया तब बादशाह ने कड़ी कार्रवाई करने का फैसला किया और विद्रोहियों के खिलाफ अभियान का नेतृत्व खुद किया। विद्रोहियों ने जल्द ही सतलुज और यमुना के बीच के लगभग सारे क्षेत्र पर नियंत्रण जमा लिया। इस प्रकार वे दिल्ली के बिलकुल पड़ोस में पहुंच गए। यद्यपि बादशाह लौहगढ़ तथा अन्य महत्त्वपूर्ण सिख केन्द्रों पर कब्जा जमाने में सफल हो गया, फिर भी सिखों को दबाया नहीं जा सका और 1712 में उन्होंने लौहगढ़ वापस् ले लिया। लोहगढ़ किला गुरु गोबिंदसिंह ने अम्बाला के उत्तर-पूर्व में हिमालय की तराई में बनाया।

बहादुरशाह ने बुंदेला सरदार छत्रसाल से मेल-मिलाप कर लिया। छत्रसाल एक निष्ठावान सामंत बना रहा। बादशाह ने जाट सरदार चूरामन से भी दोस्ती कर ली। चूरामन ने बंदा बहादुर के खिलाफ अभियान में बादशाह का साथ दिया।

बहादुरशाह के शासन काल के दौरान प्रशासन की हालत और भी बिगड़ी। बादशाह द्वारा अंधाधुंध जागीरें देने तथा पदोन्नति करने के फलस्वरूप राजकीय वित्त की स्थिति पहले से भी खराब हो गई। शाही खज़ाने में 1707 में करीब 13 करोड़ रुपये की रकम ही रह गई थी। उसके शासन काल में शाही खज़ाने में जो कुछ रकम बची थी, वह खत्म हो गई।

साम्राज्य जिन समस्याओं से घिरा था, उनका समाधान बहादुरशाह टटोल रहा था। समय मिलता तो शायद वह शाही किस्मत को फिर जगा पाता। दुर्भाग्यवश, 1712 में उसकी मौत ने साम्राज्य को एक बार फिर गृह-युद्ध में फंसा दिया।

इस गृह-युद्ध और बाद के उत्तराधिकार संबंधी लड़ाइयों के दौरान मुगल राजनीति में एक नया तत्व आ गया। पहले सत्ता के लिए संघर्ष सिर्फ शाहज़ादों के बीच होते थे तथा सामंत प्रत्याशियों को गद्दी हथियाने में मदद देते थे। परंतु अब महत्त्वाकांक्षी सामंत सत्ता के सीधे दावेदार बन गए और गद्दी हथियाने के लिए शहजादों का इस्तेमाल वे महज कठपुतली के रूप में करने लगे। बहादुरशाह की मौत के बाद जो गृह-युद्ध हुआ उसमें उसका एक कम काबिल बेटा जहांदार शाह विजयी रहा क्योंकि उसे उस समय के सबसे शक्तिशाली सामंत जुल्फिकार खां का समर्थन मिला।

जहांदार शाह एक कमजोर और पतित शहजादा था। उसमें सद्व्यवहार, बड़प्पन और शिष्टाचार की कमी थी। जहांदार शाह के शासन काल में प्रशासन वस्तुतः अत्यंत योग्य और कर्मठ जुल्फिकार खां के हाथों में था। जुल्फिकार खां वजीर बन गया था। उसका ख्याल था कि दरबार में अपनी स्थिति को मजबूत बनाने तथा साम्राज्य को बचाने के लिए जरूरी है कि राजपूत राजाओं तथा मराठा सरदारों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किए जाएं और हिंदू सरदारों के साथ आम तौर से मेल-मिलाप हो। इसलिए उसने तेज़ी से औरंगजेब की नीतियां बदल दीं। घृणित जजिया को खत्म कर दिया गया। आमेर के जयसिंह को मिर्जा राजा सवाई की पदवी दी गई और उन्हें मालवा का सूबेदार बना दिया गया; मारवाड़ के अजीतसिंह को महाराजा की पदवी दी गई और गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। जुल्फिकार खां ने पहले की उस गैर-सरकारी व्यवस्था की पुष्टि कर दी जो दक्कन में उसके सहायक दाऊद खां पन्नी ने 1711 में मराठा राजा साहू के साथ में की थी। इस व्यवस्था के अनुसार मराठा शासक को दक्कन की चौथ और वहां की सरदेशमुखी इस शर्त पर दे दी गई कि उनकी

वसूली मुगल अधिकारी करेंगे और फिर मराठा अधिकारियों को दे देंगे। जुल्फिकार खां ने चूरामन जाट और छत्रसाल बुंदेला के साथ भी मेल-मिलाप कर लिया। केवल बंदा और सिखों के प्रति उसने दमन की नीति जारी रखी।

जागीरों और ओहदों की अंधाधुंध वृद्धि पर रोक लगाकर जुल्फिकार खां ने साम्राज्य की वित्तीय हालत को सुधारने की कोशिश की। उसने मंसबदारों को अधिकृत संख्या में फौज रखने के लिए मजबूर करने की भी कोशिश की। उसने एक गलत प्रवृत्ति इजारा को बढ़ावा दिया। जैसा टोडरमल की भू-राजस्व व्यवस्था के अंतगर्त था उसी तरह निश्चित दर पर भू-राजस्व वसूल करने के बदले सरकार ने इजारे दारों (लगान के ठेकेदारों) और बिचौलियों के साथ यह करार करना आरंभ कर दिया कि वे सरकार को एक निश्चित मुद्राराशि दें। मगर किसानों से जितना लगान वसूल कर सकें उतना करने के लिए उन्हें आजाद छोड़ दिया गया। इससे किसानों का उत्पीड़न बढ़ा।

अनेक शाही सामंतों ने जुल्फिकार खां के विरुद्ध षड्यंत्र किया। इससे भी बुरी बात यह हुई कि बादशाह ने उसे अपना विश्वास और सहयोग पूरी तरह नहीं दिया। बेईमान कृपापात्र लोगों ने जुल्फिकार खां के खिलाफ बादशाह के कान भरे। उसे कहा गया कि उसका वजीर बहुत ही ताकतवर और महत्त्वाकांक्षी होता जा रहा है और वह खुद बादशाह का तख्ता पलट सकता है। कायर बादशाह की हिम्मत नहीं हुई कि ताकतवर वजीर को बर्खास्त कर सके, मगर उसने गुप्त रूप से वजीर के खिलाफ षड्यंत्र करना शुरू कर दिया। स्वस्थ प्रशासन के लिए इससे बढ़कर विध्वंसकारी कार्य और कुछ नहीं हो सकता था।

जहांदार शाह का यशहीन शासन जल्द ही जनवरी 1713 में आगरा में उसके अपने भतीजे फर्रुखसियर के हाथों हार जाने पर समाप्त हो गया।

फर्रुखसियर को अपनी जीत सैयद बंधुओं—अब्दुल्ला खां और हुसैन अली खां बाराह—के कारण मिली। इसलिए अब्दुल्ला खां को वजीर का पद और हुसैन अली खां को मीर बख्शी का ओहदा मिला। जल्द ही राजकाज में दोनों भाइयों का बोलबाला हो गया। फर्रुखसियर में शासन करने की क्षमता नहीं थी। वह कायर, क्रुर, अविश्वसनीय और बेईमान था। इसके अलावा, वह नालायक मुंह लगे लोगों तथा चापलूसों के असर में आ जाता था।

फर्रुखसियर

अपनी कमजोरियों के बावजूद फर्रुखसियर सैयद बंधुओं को बेरोकटोक काम करने देने के लिए तैयार नहीं था, बल्कि वह अपनी व्यक्तिगत सत्ता कायम करना चाहता था। दूसरी ओर सैयद बंधुओं का पक्का विश्वास था कि केवल उनके हाथों में वास्तविक सत्ता आने तथा बादशाह के नाममात्र के शासक होने पर ही प्रशासन ठीक ढंग से चलाया जा सकता है, साम्राज्य का अपकर्ष रोका जा सकता है और उनकी अपनी

स्थिति सुरक्षित रखी जा सकती है। इस तरह बादशाह फर्रुखसियर और उसके वजीर तथा मीर बख्शी के बीच सत्ता के लिए एक लंबा संघर्ष आरंभ हो गया। सालों तक कृतघ्न बादशाह ने दोनों भाइयों को उखाड़ फेंकने के लिए षड्यंत्र किया, मगर हर बार असफल रहा। आखिरकार सैयद बंधुओं ने 1719 में उसे गद्दी से उतार दिया और मार डाला। उसकी जगह उन्होंने बड़ी जल्दी, बारी-बारी से, दो युवा शहजादों को गद्दी पर बिठाया जो क्षय रोग से मर गए। तब सैयद बंधुओं ने 18 वर्षीय मुहम्मद शाह को हिंदुस्तान का बादशाह बनाया। फर्रुखसियर के तीनों उत्तराधिकारी सैयद बंधुओं के हाथों की कठपुतली मात्र थे। यहां तक कि लोगों से मिलने-जुलने और घूमने-फिरने की उनकी व्यक्तिगत आजादी पर भी नियंत्रण था। इस प्रकार 1713 से 1720 में उनके उखाड़ फेंके जाने तक राजकीय प्रशासन में सैयद बंधुओं की चलती रही।

सैयद बंधुओं ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई। उनका विश्वास था कि देश के राजकाज में हिंदु सरदारों और सामंतों को मुसलमान सामंतों के साथ मिलाकर ही हिंदुस्तान का शासन सुव्यवस्थित रूप से चल सकता है। उन्होंने राजपूतों, मराठों और जाटों के साथ मेल-मिलाप कर उनका इस्तेमाल फर्रुखसियर और प्रतिद्वंद्वी सामंतों के खिलाफ करने की कोशिश की। उन्होंने फर्रुखसियर के गद्दी पर बैठते ही जजिया को तुरंत खत्म कर दिया। इसी प्रकार कई जगहों मे तीर्थयात्री कर (Pilgrim Tax) हटा दिया। उन्होंने मारवाड़ के अजीतसिंह, आमेर के जयसिंह तथा अनेक राजपूत राजकुमारों को प्रशासन में प्रभावशाली ओहदे देकर अपनी ओर मिला लिया। उन्होंने जाट सरदार चूरामन के साथ दोस्ती कर ली, अपने प्रशासन के बाद के वर्षों में राजा साहू को (शिवाजी) का स्वराज्य तथा दक्कन के छः प्रांतों की चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार देकर उसके साथ समझौता कर लिया। बदले में साहू उन्हें 15,000 घुड़सवारों के द्वारा दक्कन में समर्थन देने को तैयार हो गया।

सैयद बंधुओं ने बगावतों को दबाने और साम्राज्य को प्रशासनिक बिखराव से बचाने के लिए जोरदार प्रयास किए। इन कार्यों में मुख्य रूप से वे इसलिए विफल रहे कि उन्हें निरंतर राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता, झगड़ों और दरबारी षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा। शासक क्षेत्रों में निरंतर चलने वाले वैमनस्य ने प्रशासन को सभी स्तरों पर अव्यवस्थित ही नहीं किया बल्कि ठप्प भी कर दिया। राज्य की वित्तीय स्थिति तेज़ी से खराब हो गई क्योंकि जमींदारों और बगावती तत्वों ने भू-राजस्व अदा करने से इन्कार कर दिया, अफसरों ने राजकीय आमदनी का गबन कर लिया। इजारा व्यवस्था के प्रसार के कारण केंद्रीय आय कम हो गई। फलस्वरूप अफसरों और सैनिकों की तनख्वाहें नियमित रूप से नहीं दी जा सकीं, फलस्वरूप सैनिकों में अनुशासनहीनता फैल गई। यहां तक कि वे विद्रोह करने लगे।

यद्यपि सैयद बंधुओं ने सभी प्रकार के सामंतों से मेल-मिलाप और दोस्ती करने की जोरदार कोशिश की लेकिन निजाम-उल-मुल्क और उसके पिता के रिश्ते के भाई मुहम्मद अमीन खां के नेतृत्व में सामंतों का एक शक्तिशाली गुट उनके खिलाफ षड्यंत्र करने लगा। ये सामंत दोनों भाईयों से उनकी बढ़ती हुई ताकत के कारण ईर्ष्या करते थे। फर्रुखसियर के गद्दी से हटाए जाने और मार दिए जाने से अनेक सामंत भयभीत हो गए थे, अगर बादशाह को मारा जा सकता है तो सामंतों के लिए क्या सुरक्षा है? इसके अतिरिक्त बादशाह की हत्या ने दोनों भाईयों के खिलाफ जनता में घृणा की एक लहर पैदा कर दी। लोग उन्हें विश्वासघाती के रूप में देखने लगे और नमकहराम कहने लगे। औरंगजेब के जमाने के अनेक सामंत भी सैयद बंधुओं की राजपूत और मराठा सरदारों के साथ दोस्ती तथा हिंदुओं के प्रति उदार नीति को नापसंद करते थे। इन सामंतों ने घोषणा की कि सैयद बन्धु

मुगल विरोधी और इस्लाम विरोधी नीतियां अपना रहे हैं। अतः उन्होंने मुसलमान सामंतों में जो धर्मांध थे उन्हें सैयद बंधुओं के खिलाफ उभाड़ने की कोशिश की। सैयद बंधु के विरोधी सामंतों को बादशाह मुहम्मद शाह का समर्थन मिला। वह दोनों भाइयों के नियंत्रण से अपने को मुक्त करना चाहता था। वे 1720 में छोटे भाई हुसैन अली खां को धोखे से मारने में सफल हो गए। अब्दुल्ला खां ने मुकाबला करने की कोशिश की मगर आगरा के पास उसे हरा दिया गया। इस प्रकार मुगल साम्राज्य पर सैयद बंधुओं का आधिपत्य खत्म हो गया जो भारतीय इतिहास में "राजा बनाने वाले" के नाम से जाने जाते हैं।

मुहम्मद शाह का लगभग तीस साल (1719-1748) लंबा शासन काल साम्राज्य को बचाने का आखिरी मौका था। शाही सत्ता में 1707 से 1720 के काल में जिस तरह के फेर-बदल हुए थे, उस तरह के फेर-बदल अब नहीं हुए। उसके शासन काल के आरंभ में, लोगों के बीच मुगलों की प्रतिष्ठा एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कारक थी। मुगल फौज खासकर मुगल तोपखाने की ताकत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था। उत्तरी भारत में प्रशासन की हालत बिगड़ती हुई थी परंतु वह अभी नष्ट नहीं हुआ था। मराठा सरदार अभी तक दक्षिण भारत तक ही सीमित थे और राजपूत राज अब भी मुगल वंश के प्रति वफादार बने हुए थे। कोई भी ताकतवर और दूरदर्शी शासक अपने ऊपर आने वाले खतरे के प्रति जागरूक सामंतशाही के समर्थन से स्थिति को बिगड़ने से रोक सकता था। मगर मुहम्मद शाह ऐसा कालपुरुष नहीं था। वह दिमागी तौर पर कमजोर, ओछा और ऐय्याश था। उसने राजकाज पर कोई ध्यान नहीं दिया। निजाम-उल-मुल्क जैसे काबिल वजीरों को अपना पूरा समर्थन देने के बजाय वह भ्रष्ट और नालायक चापलूसों के कुप्रभाव का शिकार बन गया तथा अपने ही मंत्रियों के खिलाफ साजिशें करने लगा। यहां तक कि वह अपने कृपापात्र दरबारियों द्वारा उगाहे गए घूस में हिस्सा लेने लगा।

बादशाह के ढुलमुलपन तथा शक्की मिजाज और दरबार में निरंतर झगड़ों से ऊब कर उस समय के सबसे शक्तिशाली सामंत निजाम-उल-मुल्क ने अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने का फैसला किया। वह 1722 में वजीर बना था और प्रशासन को सुधारने के लिए उसने जोरदार प्रयास किए थे। अब उसने बादशाह और उसके साम्राज्य को उनके भाग्य के सहारे छोड़कर अपनी किस्मत आजमाने का फैसला किया। उसने अक्तूबर 1724 में अपना ओहदा छोड़ दिया और दक्कन में हैदराबाद रियासत की नींव डालने के लिए दक्षिण चल पड़ा। "उसका प्रस्थान साम्राज्य से निष्ठा और सद्गुण के पलायन का प्रतीक था।" मुगल साम्राज्य का वास्तविक बिखराव यहां से शुरू हो गया था।

अब अन्य शक्तिशाली और महत्त्वाकांक्षी सामंतों ने भी अर्धस्वतंत्र रियासतें कायम करने के लिए अपनी-अपनी ताकत का इस्तेमाल आरंभ कर दिया। दिल्ली के बादशाह के प्रति नाममात्र की निष्ठा जाहिर करने वाले खानदानी नवाबों का देश के अनेक भागों में उदय हुआ। उदाहरण के तौर पर बंगाल, हैदराबाद, अवध और पंजाब के नवाबों के नाम लिए जा सकते हैं। हर जगह छोटे जमींदारों, राजाओं और नवाबों ने बगावत और आजादी का झंडा बुलंद किया। मराठा सरदारों ने उत्तर की ओर अपना कब्जा जमाना शुरू कर दिया। उन्होंने मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड को रौंद डाला। फिर 1738-39 में नादिर शाह उत्तरी भारत के मैदानों में आ धमका और उसके सामने साम्राज्य ने घुटने टेक दिए।

नादिर शाह भारत के प्रति यहाँ के अपार धन के कारण आकर्षित हुआ। भारत अपने अपार वैभव के लिए सदा से प्रसिद्ध था। निरंतर अभियानों ने फारस को वस्तुतः दिवालिया बना दिया था। अपनी भाड़े की फौज को बनाए रखने के लिए पैसों की उसे सख्त जरूरत थी। भारत से लूटा गया धन इस समस्या का एक हल हो सकता था। साथ ही, मुगल साम्राज्य की

प्रत्यक्ष कमजोरी ने इस प्रकार की लूट-खसोट को संभव बना दिया। वह 1738 के अंतिम दिनों में बिना किसी विरोध का सामना किए भारतीय इलाके में घुस आया। वर्षों से उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। जब तक दुश्मन ने लाहौर पर कब्जा नहीं कर लिया तब तक खतरे को पूरी तरह महसूस नहीं किया गया। दिल्ली की सुरक्षा के लिए तब जल्दी-जल्दी तैयारियां की गईं, मगर गुटबाजी के शिकार सामंतों ने दुश्मन को दरवाजे पर खड़ा देख कर भी एक सूत्रबद्ध होने से इंकार कर दिया। वे सुरक्षा की योजना या सुरक्षा फौजों के सेनापति के नाम पर सहमत नहीं हो सके। फूट, अयोग्य नेतृत्व और आपसी द्वेष तथा परस्पर अविश्वास का परिणाम हार के सिवाए और क्या होता? दोनों फौजों के बीच 13 फरवरी, 1739 को करनाल में मुकाबला हुआ। आक्रमणकारी ने मुगल फौज को जोरदार शिकस्त दी। बादशाह मुहम्मद शाह को बंदी बना लिया गया और नादिर शाह दिल्ली की ओर बढ़ा। नादिर शाह ने शाही राजधानी के नागरिकों के भयंकर कत्लेआम का हुक्म दिया। ऐसा उसने अपने कुछ सैनिकों की हत्या का बदला लेने के लिए किया। लोभी आक्रमणकारी ने शाही खजाने और शाही संपत्ति को हथिया लिया। उसने प्रमुख सामंतों से नजराना वसूल किया तथा दिल्ली के धनी लोगों को लूटा। अनुमान किया गया है कि उसने कुल मिलाकर 70 करोड़ रुपये का माल लूटा। उसने अपने राज्य में तीन सालों तक बिलकुल कोई कर नहीं लगाया। वह प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा तथा शाहजहां का रत्नजड़ित मयूर सिंहासन (तख्ते-ताऊस) भी ले गया। उसने मुहम्मद शाह को सिंधु नदी के पश्चिम के साम्राज्य के इलाकों को उसे दे देने के लिए मजबूर किया।

नादिर शाह के आक्रमण ने मुगल साम्राज्य को भारी नुकसान पहुंचाया। मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को अपूरणीय क्षति पहुंची तथा मराठा सरदारों और विदेशी कंपनियों को साम्राज्य की छिपी हुई कमजोरी का पता लग गया। कुछ समय के लिए केंद्रीय प्रशासन पूरी तरह लकवाग्रस्त हो गया। आक्रमण ने शाही वित्त व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया और देश के आर्थिक जीवन पर बुरा प्रभाव डाला। कंगाल सामंतों ने किसानों से मनमाना लगान वसूलना और उन्हें पहले से अधिक उत्पीड़ित करना शुरू कर दिया जिससे वे अपनी खोई हुई दौलत वापस पा सकें। अधिक आमदनी वाली जागीरों और ऊंचे ओहदों के लिए वे पहले की अपेक्षा अधिक दुःसाहसपूर्वक आपस में लड़ने लगे। काबुल और सिंधु नदी के पश्चिम के इलाकों को खोकर साम्राज्य ने एक बार फिर उत्तर-पश्चिम के आक्रमणों का खतरा पैदा कर दिया। सुरक्षा की एक महत्त्वपूर्ण पंक्ति लुप्त हो गई।

वस्तुतः यह बड़े आश्चर्य की बात है कि नादिर शाह के चले जाने के बाद लगा कि साम्राज्य में अपनी कुछ शक्ति फिर वापस आ रही है, हालांकि उसके कारगर नियंत्रण में पहले से कम क्षेत्र रह गया था। परंतु यह पुनर्जीवन भ्रामक और सतही था। वर्ष 1748 में मुहम्मद शाह के मरने के बाद बेईमान और सत्ता के भूखे सामंतों के बीच कटु संघर्ष हुए, यहां तक कि गृह-युद्ध भी छिड़ गया। इतना ही नहीं, उत्तर-पश्चिम में सुरक्षा की व्यवस्था कमजोर हो जाने के कारण साम्राज्य अहमद शाह अब्दाली के बार-बार आक्रमणों से तहस-नहस होता रहा। अहमद शाह अब्दाली नादिर शाह के सबसे काबिल सेनापतियों में से एक था। उसने अपने स्वामी के मरने के बाद अफगानिस्तान पर अपनी सत्ता कायम करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। अब्दाली ने 1748 से 1767 के बीच उत्तरी भारत, खासकर दिल्ली और मथुरा पर बार-बार आक्रमण और लूट-खसोट किया। उसने 1761 में मराठों को पानीपत की तीसरी लड़ाई में हराया और इस तरह मराठों की इस महत्त्वाकांक्षा को बड़ा धक्का लगा कि वे मुगल बादशाह पर नियंत्रण रखेंगे तथा देश पर आधिपत्य कायम करेंगे। मगर उसने भारत में कोई नया अफगान राज कायम नहीं किया। वह और उसके उत्तराधिकारी

पंजाब को भी अपने अधिकार में नहीं रख सके। पंजाब जल्द ही सिख सरदारों के हाथों में चला गया।

नादिर शाह और अब्दाली के आक्रमणों तथा मुगल सामंतशाही के आपसी घातक झगड़ों के कारण 1761 तक मुगल साम्राज्य का अस्तित्व वस्तुतः एक अखिल भारतीय साम्राज्य के रूप में समाप्त हो गया। वह केवल दिल्ली का राज्य रह गया। खुद दिल्ली में रोज दंगे और हंगामें नजर आने लगे। महान मुगलों के वंशज अब भारतीय साम्राज्य के लिए संघर्ष में सक्रिय हिस्सा नहीं लेते थे। सत्ता के विभिन्न दावेदारों ने पाया कि उनके नाम पर संघर्ष चलाना राजनीतिक दृष्टि से फायदेमंद है। इससे मुगल वंश दिल्ली के नाममात्र के सिंहासन पर बहुत दिनों तक बना रहा।

शाह आलम द्वितीय 1759 में गद्दी पर बैठा। वह आरंभ के सालों में अपनी राजधानी से दूर एक जगह से दूसरी जगह घूमता रहा क्योंकि उसे अपने ही वजीर से जान का खतरा था। वह काबिल और भरपूर हिम्मत वाला था। मगर साम्राज्य की हालत इतनी बिगड़ गई थी कि उसका उद्धार संभव नहीं था। उसने 1764 में बंगाल के मीर कासिम और अवध के शुजाउद्दौला के साथ मिलकर अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ लड़ाई की घोषणा कर दी। बक्सर की लड़ाई में अंग्रेजों से हार जाने के बाद वह कई वर्षों तक इलाहाबाद में ईस्ट इंडिया का पेंशनयाफ्ता बन कर रहा। वह 1772 में मराठों के संरक्षण में ब्रिटिश आश्रय छोड़कर दिल्ली लौटा। अंग्रेजों ने 1803 में दिल्ली पर कब्जा कर लिया। तब से लेकर 1857 तक जब मुगल वंश अंतिम रूप से खत्म हो गया, मुगल बादशाह अंग्रेजों के लिए केवल राजनीतिक मोहरा बने रहे। मुगल राजतंत्र 1759 के बाद फौजी ताकत नहीं रहा तो भी वह इसलिए बना रहा कि भारत की जनता के दिमाग पर देश की राजनीतिक एकता के प्रतीक के रूप में उसका बड़ा प्रभाव था।

मुगल साम्राज्य के पतन का सबसे महत्त्वपूर्ण नतीजा यह हुआ कि इसने ब्रिटिश शासकों के लिए भारत विजय का रास्ता आसान कर दिया। भारतीय शक्तियों के बीच से कोई भी शक्ति महान मुगलों की विरासत का दावा करने के लिए सामने नहीं आई। वे साम्राज्य को नष्ट करने के लिए पर्याप्त रूप से ताकतवर थीं मगर उसे एकता के सूत्र में बांधने या उसकी जगह पर कोई नई चीज लाने में समर्थ नहीं थीं। वे ऐसी कोई नई समाज व्यवस्था नहीं बना सकीं जो पश्चिम से आने वाले नए दुश्मन के सामने टिक सके। उनमें से सब उसी ठूंठ समाज व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती थीं जिसके नेता मुगल थे। वह सब उन्हीं कमजोरियों का शिकार थीं। जिन्होंने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य को नष्ट कर दिया था। दूसरी ओर भारत का दरवाजा

शाह आलम द्वितीय

खटखटा रहे यूरोपवासी ऐसे समाज से आए थे जिसने एक बेहतर आर्थिक व्यवस्था का विकास किया था और जो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में काफी उन्नत था। मुगल साम्राज्य के पतन की सबसे दुःखद बात यह हुई कि उसकी जगह पर एक विदेशी शक्ति आई जिसनें अपने हितों का ख्याल कर देश के शताब्दियों पुराने सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक ढांच की जगह एक औपनिवेशिक ढांचा स्थापित कर दिया।

भारतीय राज्य और समाज

मुगल साम्राज्य के धीरे-धीरे कमजोर होने और पतन की ओर बढ़ने के साथ-साथ स्थानीय राजनीतिक और आर्थिक शक्तियां सिर उठाने लगीं और अपना दबाव बढ़ाने लगीं। 17वीं सदी के अंत और उसके बाद में राजनीति में जबर्दस्त परिवर्तन हुआ। 18वीं सदी के दौरान मुगल साम्राज्य और उसकी राजनीतिक व्यवस्था के खंडहर पर बड़ी संख्या में स्वतंत्र और अर्ध-स्वतंत्र शक्तियां उठ खड़ी हुईं, जैसे बंगाल, अवध, हैदराबाद, मैसूर और मराठा राजशाही। भारत पर अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए अंग्रेजों को इन्हीं ताकतों पर विजय प्राप्त करनी पड़ी थी।

इनमें से कुछ राज्यों को "उत्तराधिकार वाले राज्य" कहा जा सकता है जैसे अवध तथा हैदराबाद। मुगल साम्राज्य की केंद्रीय शक्ति के कमजोर होने पर मुगल प्रांतों के गवर्नरों के स्वतंत्र होने का दावा करने से इन राज्यों का जन्म हुआ। दूसरे, मराठा, अफगान, जाट तथा पंजाब जैसे राज्यों का जन्म मुगल शासन के खिलाफ स्थानीय सरदारों, जमींदारों तथा किसानों के विद्रोह के कारण हुआ था। न केवल दो तरह के राज्यों की राजनीति कुछ हद तक भिन्न होती थी बल्कि इन सब में आपस में स्थानीय परिस्थितियों के कारण भी अंतर था। फिर भी इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मोटे तौर पर इन सभी का राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचा तकरीबन एक-सा ही था लेकिन एक तीसरा क्षेत्र भी था। इनमें दक्षिण-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व के समुद्री किनारों के इलाके तथा उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र शामिल थे जहां पर किसी भी रूप में मुगल प्रभाव नहीं पहुंच सका था। मुगल सम्राट की नाममात्र की सर्वोच्चता स्वीकार कर और उसके प्रतिनिधि के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर 18वीं शताब्दी के सभी राज्यों के शासकों ने अपने पद को वैधता प्रदान करने की कोशिश की थी। बहरहाल, इनमें से लगभग सभी ने मुगल प्रशासन के तौर तरीके और उसकी पद्धति को अपनाया। पहले समूह में आने वाले राज्यों ने उत्तराधिकार के रूप में कार्य विधि मुगल प्रशासनिक ढांचा और संस्थाओं को प्राप्त किया था। दूसरों ने इनमें अलग-अलग मात्रा में थोड़ा बहुत परिवर्तन करके इस ढांचे तथा इन संस्थाओं को अपनाया था जिसमें मुगल शासकों की राजस्व व्यवस्था भी शामिल थी।

इन राज्यों के शासकों ने शांति व्यवस्था बहाल की तथा व्यावहारिक, आर्थिक और प्रशासनिक ढांचा खड़ा किया। निचले स्तर पर काम करने वाले अधिकारियों, छोटे-छोटे सरदारों तथा जमींदारों की ताकतें कम कीं और इस काम में इन सबको अलग-अलग मात्रा में सफलता मिली। किसानों के अधिशेष उत्पादन पर नियंत्रण के लिए ये लोग ऊपर के अधिकारियों से झगड़ते रहते थे और कभी-कभी सत्ता और संरक्षण के स्थानीय केंद्र कायम करने में ये लोग सफल भी हो जाते थे। उन्होंने उन स्थानीय जमींदारों तथा सरदारों से भी समझौता किया तथा उनको अपने साथ किया जो शांति और व्यवस्था चाहते थे। आमतौर पर, कहा जाए तो अधिकांश राज्यों में राजनीतिक अधिकारों का विकेंद्रीकरण हो गया तथा सरदारों, जागीरदारों और जमींदारों को इसके कारण राजनीतिक और आर्थिक शक्ति की दृष्टि से लाभ मिला। इन राज्यों की राजनीति लगातार गैर-सांप्रदायिक या धर्मनिरपेक्ष बनी रही क्योंकि इन राज्यों के शासकों की आर्थिक तथा राजनीतिक प्रेरक शक्ति समान थी। सार्वजनिक स्थानों की

नियुक्तियों, सेना में भर्ती या नागरिक सेवाओं में ये शासक धार्मिक आधार पर भेदभाव नहीं बरतते थे और जब लोग किसी सत्ता अथवा शासन के विरुद्ध विद्रोह करते थे तो इस बात पर विचार नहीं करते थे कि उनके शासक का धर्म क्या है। इसलिए इस बात का कोई आधार नहीं मिलता है कि मुगल साम्राज्य के पतन और विघटन के बाद भारत के विभिन्न भागों में कानून और व्यवस्था की समस्या उठ खड़ी हुई और चारों ओर अराजकता फैल गई। वास्तविकता तो यह है कि 18वीं शताब्दी में प्रशासन तथा अर्थव्यवस्था में जो भी अव्यवस्था विद्यमान थी, वह भारतीय राज्यों के आंतरिक मामलों में ब्रिटिश हस्तक्षेप और ब्रिटेन द्वारा चलाए गए विजय अभियानों का परिणाम थी।

हाँ, यह बात सही है कि 17वीं सदी में जो आर्थिक संकट शुरू हुए थे, इनमें से कोई भी राज्य उनको रोकने में सफल नहीं हो पाया। इनमें से सभी राज्य मूल रूप से कर उगाहने वाले राज्य बने रहे। जमींदारों और जागीरदारों की संख्या तथा राजनीतिक ताकत में लगातार वृद्धि होती गई और कृषि से होने वाली आमदनी के लिए लगातार आपस में झगड़ते रहे, और इसके साथ-साथ किसानों की हालत दिनोंदिन बिगड़ती चली गई। जहां इन राज्यों ने आंतरिक व्यापार को ठप्प नहीं होने दिया बल्कि विदेशों से व्यापार को बढ़ावा देने की कोशिश भी की लेकिन अपने राज्यों के आधारभूत औद्योगिक और वाणिज्यिक ढांचे को आधुनिक रूप देने के लिए इन लोगों ने कुछ नहीं किया। इससे यह बात साफ हो जाती है कि वे आपस में क्यों नहीं संगठित हो सके और विदेशी आक्रमणों को विफल करने में उनको क्यों नहीं सफलता हासिल हो सकी।

हैदराबाद और कर्नाटक : निजाम-उल-मुल्क आसफजाह ने 1724 में हैदराबाद राज्य की स्थापना की। औरंगजेब के बाद के समय के नवाबों में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। सैयद बंधुओं को गद्दी से हटाने में उसकी अहम् भूमिका थी। उसको दक्कन के वाइसराय का खिताब प्राप्त हुआ था। वर्ष 1720 से 1722 के बीच दक्कन में उसने अपनी स्थिति सुदृढ़ की। वह 1722 से 1724 तक साम्राज्य का वजीर रहा। मगर वह जल्दी ही वजीर के काम से तंग आ गया क्योंकि बादशाह मुहम्मद शाह ने प्रशासन में सुधार लाने की उसकी सब कोशिशों को नाकाम कर दिया। इसलिए उसने दक्कन वापस जाने का फैसला किया जहां वह सही-सलामत अपना आधिपत्य बनाए रख सकता था। यहां उसने हैदराबाद राज्य की नींव रखी जिस पर उसने कठोरतापूर्वक शासन किया। उसने केंद्रीय सरकार से अपनी स्वतंत्रता की खुलेआम घोषणा कभी नहीं की, मगर उसने व्यवहार में स्वतंत्र शासक के रूप में काम किया। उसने दिल्ली की केंद्रीय सरकार से बिना पूछे लड़ाइयां लड़ीं, सुलह किए, खिताब बांटे और जागीरें तथा ओहदे दिए। उसने हिंदुओं के प्रति सहनशीलता की नीति अपनाई। उदाहरण के लिए, एक हिंदु, पूरनचंद, उसका दीवान था। उसने दक्कन में मुगलों के नमूने पर जागीरदारी प्रथा चला कर सुव्यवस्थित प्रशासन स्थापित कर अपनी सत्ता को मजबूत बनाया। उसने बड़े उपद्रवी जमींदारों को अपनी सत्ता मानने के लिए मजबूर किया और शक्तिशाली मराठों को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा। उसने राजस्व व्यवस्था को भ्रष्टाचार से मुक्त करने के लिए भी कोशिश की। मगर 1748 में उसके मरने के बाद हैदराबाद उन्हीं विघटनकारी शक्तियों का शिकार हो गया जो दिल्ली में सक्रिय थीं।

कर्नाटक, मुगल दक्कन का एक सूबा था और इस तरह वह हैदराबाद के निजाम के अधिकार के अंतर्गत आता था। मगर व्यवहार में जिस प्रकार निजाम दिल्ली की सरकार से स्वतंत्र हो गया था उसी प्रकार कर्नाटक का नायब सूबेदार, जिसे कर्नाटक का नवाब कहा जाता था, अपने को दक्कन के नवाब के नियंत्रण से मुक्त कर अपने ओहदे को वंशगत बना चुका था। अतः कर्नाटक के नवाब सआदतउल्ला खां ने अपने

भतीजे दोस्त अली को निजाम की मंजूरी के बिना ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। आगे चलकर 1740 के बाद कर्नाटक की स्थिति नवाबी के लिए बारंबार संघर्षों के कारण बिगड़ी और इससे यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों को भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष रूप में हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया।

बंगाल : केंद्रीय सत्ता की बढ़ती हुई कमजोरी का फायदा उठाकर असाधारण योग्यता वाले दो व्यक्तियों, मुर्शिद कुली खां और अलीवर्दी खां, ने बंगाल को वस्तुतः स्वतंत्र बना दिया। मुशिर्द कुली खां को 1717 में जाकर बंगाल का सूबेदार बनाया गया, मगर वह उसका वास्तविक शासक 1700 से ही था जब उसे दीवान बनाया गया था। उसने अपने को तुरंत केंद्रीय
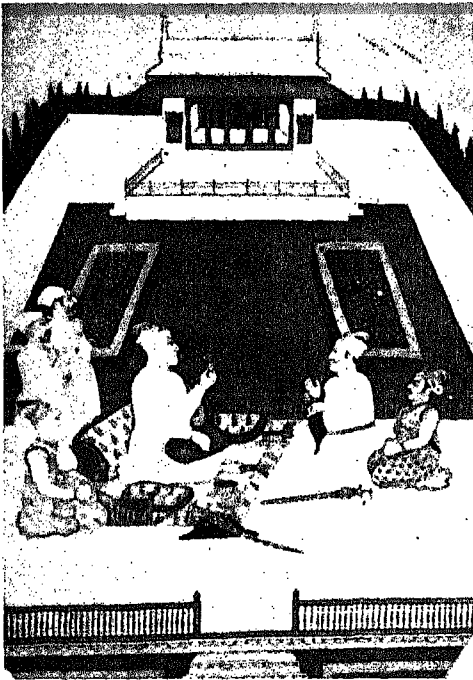
अपने एक भतीजे और पोते सिराजुद्दौला के साथ अलीवर्दी खां

नियंत्रण से मुक्त कर लिया यद्यपि वह बादशाह को नियमित रूप से नजराने की काफी बड़ी रकम भेजता रहा। उसने अंदरूनी और बाहरी खतरे से बंगाल को मुक्त कर वहां शांति कायम की। अब बंगाल जमींदारों की प्रमुख बगावतों से भी कमोबेश मुक्त हो गया। उसके शासन के दौरान केवल तीन विद्रोह हुए। पहला विद्रोह सीताराम राय, उदय नारायण और गुलाम मुहम्मद ने किया। उसके बाद शुजात खां ने बगावत की। अंतिम विद्रोह नजात खां का था। उनको हराने के बाद मुर्शिद कुली खां ने उनकी जमींदारियां अपने कृपापात्र रामजीवन को दे दीं। मुर्शिद कुली खां 1727 में मर गया। उसके बाद उसके दामाद शुजाउद्दीन ने बंगाल पर 1739 तक शासन किया। उसकी जगह पर उसका बेटा सरफराज खां आया जिसे उसी साल गद्दी से हटाकर अलीवर्दी खां नवाब बन गया।

इन तीनों नवाबों ने बंगाल को शांति और सुव्यवस्थित प्रशासन दिया। उन्होंने व्यापार और उद्योग को बढ़ावा दिया। मुर्शिद कुली खां ने प्रशासन में मितव्ययिता बरती। उसने बंगाल के वित्तीय मामलों का प्रबंध नए सिरे से किया। उसने नए भू-राजस्व बंदोबस्त के जरिए जागीर भूमि के एक बड़े भाग को खालसा भूमि बना दिया और इजारा व्यवस्था (ठेके पर भू-राजस्व वसूल करने की व्यवस्था) आरंभ की। स्थानीय जमींदारों और सौदागर साहूकारों के बीच से उसने राजस्व वसूलने वाले किसान और सौदागर साहूकार भर्ती किए। उसने गरीब खेतिहरों का कष्ट दूर करने तथा उन्हें समय पर भू-राजस्व देने में समर्थ बनाने के लिए तकावी ऋण भी दिए। इस प्रकार वह बंगाल सरकार के संसाधनों को बढ़ा सका। मगर इजारा व्यवस्था ने किसानों और जमींदारों पर आर्थिक बोझ बढ़ा दिया। इसके अलावा, यद्यपि उसने केवल असल जमा की मांग की और गैर-कानूनी टैक्स हटा दिए, तथापि उसने जमींदार और किसानों से लगान की वसूली बड़ी निर्दयता के साथ की। उसके सुधारों का

एक परिणाम यह हुआ कि अनेक पुराने जमींदारों को निकाल बाहर किया गया और उनकी जगह पर अभी-अभी पनपे इजारेदार आ गए।

मुर्शिद कुली खां और उसके बाद के नवाबों ने हिंदुओं और मुसलमानों को रोजगार के समान अवसर दिए। उन्होंने सबसे ऊंचे नागरिक ओहदों और कई फौजी ओहदों पर बंगालियों को रखा जिनमें अधिकतर हिंदू थे। इजारेदारों को चुनते समय मुर्शिद कुली खां ने स्थानीय जमींदार और महाजनों को प्राथमिकता दी जिनमें अनेक हिंदू थे। इस प्रकार उसने बंगाल में एक नए भू-अभिजात वर्ग को जन्म दिया।

तीनों नवाबों ने माना कि व्यापार का प्रसार जनता और सरकार के लिए फायदेमंद है इसलिए उन्होंने भारतीय और विदेशी व्यापारियों को बढ़ावा दिया। नियमित थानों और चौकियों की व्यवस्था कर सड़कों और नदियों की सुरक्षा का इंतजाम किया। उन्होंने अफसरों के निजी व्यापार को रोक दिया। साथ ही उन्होंने इस बात का भी ख्याल रखा कि विदेशी व्यापारिक कंपनियों तथा उनके नौकरों पर कड़ा नियंत्रण रखा जाय और उन्हें अपने विशेषाधिकारों का दुरुपयोग नहीं करने दिया जाए। उन्होंने अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी के नौकरों को देश के कानूनों का पालन करने तथा अन्य व्यापारियों के बराबर सीमा शुल्क देने के लिए मजबूर किया। अलीवर्दी खां ने अंग्रेजों और फ्रांसीसियों को कलकत्ता और चंद्रनगर के अपने कारखानों की किलेबंदी करने की इजाजत नहीं दी। इन सबके बाबजूद बंगाल के नवाब एक दृष्टि से बड़े नासमझ और लापरवाह साबित हुए। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रवृति 1707 के बाद अपनी मांगों को मनवाने के लिए सैनिक शक्ति का इस्तेमाल करने या उसके इस्तेमाल की धमकी देने लगी थी। नवाबों ने इस प्रवृति को मजबूती से नहीं दबाया। वे कंपनी की धमकियों का जवाब देने की ताकत रखते थे, मगर उनका निरंतर यह विश्वास रहा कि कोई भी मात्र व्यापारिक कंपनी उनकी सत्ता के लिए कोई खतरा पैदा नहीं कर सकती। वे इस बात को नहीं महसूस कर सके कि अंग्रेजी कंपनी व्यापारियों की कंपनी मात्र नहीं थी बल्कि उस समय के अत्यंत आक्रामक और विस्तारवादी उपनिवेशक का प्रतिनिधि थी। शेष दुनिया के बारे में उनका अज्ञान और उससे संपर्क का अभाव उनके लिए बड़ा महंगा पड़ा, नहीं तो अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, लैटिन अमरीका में पश्चिमी व्यापारिक कंपनियों के विध्वंसकारी कामों के संबंध में उनको जानकारी अवश्य हो जाती।

बंगाल के नवाबों ने शक्तिशाली फौज बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया और इसके लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। उदाहरण के लिए, मुर्शिद कुली खां की फौज में केवल 2,000 घुड़सवार और 4,000 पैदल सैनिक थे। अलीवर्दी खां को मराठों के बारंबार हमलों से तंग होना पड़ा और अंततोगत्वा उसे उड़ीसा का एक बड़ा हिस्सा उन्हें दे देना पड़ा। जब 1756-57 में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी ने अलीवर्दी खां के उत्तराधिकारी सिराजउद्दोला के खिलाफ लड़ाई का ऐलान किया तब शक्तिशाली फौज के अभाव ने भी विदेशी कंपनी की जीत में काफी योगदान दिया। अफसरों के बीच बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को रोकने में भी बंगाल के नवाब असफल रहे। यहां तक कि न्यायिक अधिकारी—काजी और मुफ्ती—घूस लेने में नहीं हिचकिचाते थे। विदेशी कंपनियों ने इस कमजोरी का पूरा फायदा उठाया और सरकारी कानून कायदों और नीतियों की जड़ें खोदीं।

अवध : अवध के स्वायत्त राज्य का संस्थापक सआदत खां बुरहान-उल-मुल्क था। उसे 1722 में अवध का सूबेदार बनाया गया था। वह एक अत्यंत निडर, कर्मठ, दृढ़ प्रतिज्ञ, और तेज आदमी था। उसकी नियुक्ति के समय कई बगावती जमींदारों ने प्रांत में हर जगह सिर उठाया। उन्होंने माल-गुजारी देने से इंकार कर दिया,

अपनी निजी सेवाएं गठित कीं, किले बनवाए और शाही सरकार की अवज्ञा की। वर्षों तक सआदत खां को उनसे लड़ना पड़ा। उसने अंधेरगर्दी को खत्म किया और बड़े जमींदारों को अनुशासित किया। इस प्रकार उसने अपनी सरकार के वित्तीय संसाधनों को बढ़ाया। विभिन्न प्रकार की सुविधाएं देकर उसने दूसरे सरदारों और जमींदारों को अपनी तरफ कर लिया। किंतु उसने अधिकतर पराजित जमींदारों को नहीं हटाया। अधीनता स्वीकार करने और देय रकम (भू-राजस्व) नियमित रूप से अदा करने पर सहमत होने के बाद उन्हें भी अपनी जगह पर पक्का कर दिया गया।

सआदत खां ने भी 1723 में नया राजस्व-बंदोबस्त (रेवेन्यू सेटलमेंट) किया। कहा जाता है कि उचित भू-लगान लगाकर तथा बड़े जमींदारों के जुल्मों से बचाकर उसने किसानों की हालत को बेहतर बनाया।

बंगाल के नवाबों की तरह ही उसने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया। उसके अनेक सेनापति और उच्च अधिकारी हिंदू थे। उसने हठीले जमींदारों, सरदारों और सामंतों को उनके धर्म का बिना कोई ख्याल किए दबा दिया। उसके सैनिकों को अच्छे वेतन मिलते थे। वे हथियारों से सुसज्जित और सुप्रशिक्षित थे। सआदत खां का प्रशासन कार्यकुशल था। उसने भी जागीरदारी प्रथा को जारी रखा। वर्ष 1739 में अपने मरने के पहले वह वस्तुतः स्वतंत्र बन गया था और उसने प्रान्त को अपनी वंशगत जायदाद बना लिया था। उसकी जगह उसके भतीजे सफदर जंग ने ली। वह, साथ ही, 1748 में साम्राज्य का वजीर भी बना दिया गया। इसके अलावा उसे इलाहाबाद का प्रांत भी दिया गया।

सफदर जंग ने 1754 में अपने मरने तक अवध और इलाहाबाद की जनता को किसी अशांति का सामना करने नहीं दिया। उसने बगावती जमींदारों को दबा दिया और दूसरों को अपने पक्ष में कर लिया। उसने मराठा सरदारों से मित्रता कर ली जिससे उसके अधिकार क्षेत्र में उनकी घुसपैठ न हो सके। राजपूत सरदारों और शेखज़ादाओं की वफ़ादारी हासिल करने में भी वह कामयाब रहा। उसने रुहेलों और बंगश पठानों के खिलाफ लड़ाइयां छेड़ीं। बंगश नवाबों के खिलाफ 1750–51 की लड़ाई में उसने मराठों की सैनिक सहायता तथा जाटों का समर्थन प्राप्त किया। इसके लिए उसे मराठों को प्रतिदिन 25,000 रुपये और जाटों को रोज 15,000 रुपये देने पड़े। बाद में उसने पेशवा के साथ एक करार किया जिसके अनुसार पेशवा ने मुगल साम्राज्य को अहमद शाह अब्दाली के खिलाफ मदद देने और उसे भारतीय पठानों तथा राजपूत राजाओं जैसे अंदरूनी विद्रोहियों से बचाने का वचन दिया। बदले में पेशवा को 50 लाख रुपये तथा पंजाब, सिंध और उत्तर भारत के कई जिलों की चौथ दिया जाने वाला था। इसके अलावा पेशवा को अजमेर और आगरा का सूबेदार बनाया जाना था। मगर पेशवा दिल्ली में सफदर जंग के दुशमनों से जा मिला जिन्होंने उसे अवध और इलाहाबाद का सूबेदार बनाने का वचन दिया। इसलिए करार टूट गया।

सफदर जंग ने न्याय की उचित व्यवस्था की। उसने भी नौकरियां देने में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच निष्पक्षता की नीति अपनाई। उसकी सरकार के सबसे बड़े ओहदे पर एक हिंदु, महराजा नवाब राय आसीन था।

नवाबों की सरकार के तहत लंबे समय तक लगातार शांति और सामंतों की आर्थिक समृद्धि के परिणामस्वरूप अवध दरबार के इर्द-गिर्द एक विशिष्ट लखनवी संस्कृति कालक्रम से विकसित हुई। लखनऊ बहुत जमाने से अवध का एक महत्त्वपूर्ण शहर था। 1775 के बाद वह अवध के नवाबों का निवास स्थान बन गया। वह तुरंत ही कला और साहित्य को संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से दिल्ली का प्रतिद्वंद्वी हो गया। वह हस्तशिल्प के एक महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में भी विकसित हुआ। स्थानीय सरदारों और जमींदारों के

18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत
आर्थिक मानचित्र
निर्देश
खनिज और कच्ची धातु
तांबा
जस्ता
हीरे के क्षेत्र
लोहा
खनिजलवण
खनिज और कच्ची धातु
वस्त्र उद्योग
जहाज निर्माण
भारत की वर्तमान बाह्य सीमा
कश्मीर
ऊन
सिल्क
केसर
लाहौर
मुलतान
दिल्ली
नरनौल
नील
चूना-पत्थर
सांभर झील
संगमरमर
बयाना
माइका
मिर्जापुर
पटना
वाराणसी
रेशम
हुगली
ढाका
मलमल
बालेश्वर
स्टील
चूना-पत्थर
नील
कांच
सुलेमानी पत्थर
कागज
बंबई
स्टील
हैदराबाद
नील
राजापुर
मछलीपट्टनम
गोआ
काली मिर्च
मद्रास
कैनानूर
कालीकट
तनजौर
मदुराइ
अन्डमान और निकोबार (भारत)
लक्षद्वीप (भारत)
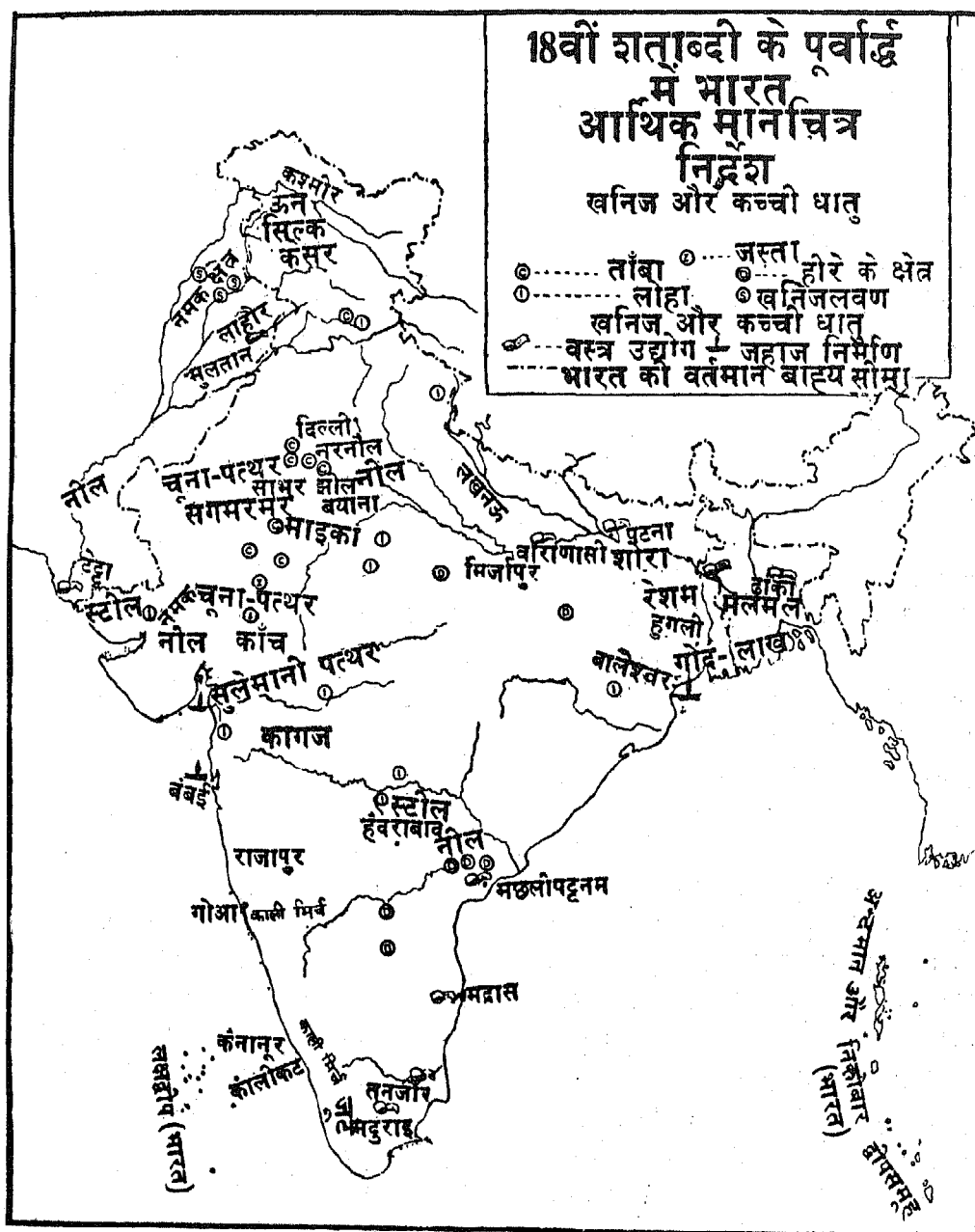
संरक्षण में दस्तकारी और संस्कृति दोनों का असर कस्बों तक पहुंच गया।

सफदर जंग ने बहुत ऊंची वैयक्तिक नैतिकता बनाए रखी। वह जिंदगी भर अपनी एकमात्र पत्नी के प्रति वफादार रहा। असल में हैदराबाद, बंगाल और अवध के तीनों स्वायत्त रजवाड़ों के संस्थापक क्रमशः निजाम-उल-मुल्क, मुर्शिद कुली खां और अलीवर्दी खां ऊंची वैयक्तिक नैतिकता वाले लोग थे। उनमें से लगभग सबों ने संयमपूर्ण और सादा जीवन बिताया। यह इस धारणा को झूठा साबित करती है कि अठारहवीं सदी के प्रमुख सामंतों ने फिजूलखर्ची और विलासिता की जिंदगी बिताई। केवल अपने सार्वजनिक और राजनीतिक व्यवहार में ही उन्होंने धोखाधड़ी, षड्यंत्र और विश्वासघात का सहारा लिया।

मैसूर : दक्षिण भारत में हैदाराबाद के पास हैदर अली के अधीन जिस सबसे महत्त्वपूर्ण सत्ता का उदय हुआ, वह था मैसूर। विजयनगर साम्राज्य के अंत होने के समय से ही मैसूर राज्य ने अपनी कमजोर स्वाधीनता को बनाए रखा और नाममात्र को ही यह मुगल साम्राज्य का अंग था। 18वीं सदी के शुरू में नंजराज (सर्वाधिकारी) और देवराज (दुलवई) नाम के दो मंत्रियों ने मैसूर की शक्ति अपने हाथों में ले रखी थी, इस प्रकार वहां के राजा चिक्का कृष्णराज को उन्होंने कठपुतली में बदल दिया था। हैदर अली का जन्म 1721 में एक अत्यंत सामान्य परिवार में हुआ था। उसने अपना जीवन मैसर की सेना में एकदम साधारण अधिकारी के रूप में शुरू किया था। वह शिक्षित तो नहीं था, लेकिन कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा का धनी था, अत्यंत परिश्रमी और लगनशील था, साहसी और दृढ़निश्चयी था। वह एक प्रतिभाशाली सेनानायक तथा चालाक राजनीतिक भी था।

मैसूर राज्य 20 साल तक युद्ध में उलझा रहा। इस दौरान हैदर अली को मौका मिला। उसे जो भी

हैदर अली

मौका मिला, उसका उसने लाभ उठाया और मैसूर की सेना में ऊंचे पद पर पहुंच गया। जल्दी ही उसने पश्चिमी सैनिक प्रशिक्षण के महत्त्व को पहचाना तथा जो सैनिक उसके अधीन थे उनको आधुनिक प्रशिक्षण दिलवाए। वर्ष 1755 में डिंडिगुल में उसने एक आधुनिक शस्त्रागार स्थापित किया। इसमें उसने फ्रांसीसी विशेषज्ञों की मदद ली। वर्ष 1761 में उसने नंजराज को सत्ता से अलग कर दिया तथा मैसूर राज्य पर अपना अधिकार कायम कर लिया। योद्धा सरदारों और जमींदारों के विद्रोहों को उसने नियंत्रित कर लिया तथा बिदनूर, सुंदा, सेदा, कन्नड़ और मालाबार के इलाकों को जीत लिया। मालाबार को अपने अधीन करने का मुख्य कारण यह था कि वह भारतीय समुद्र तट तक अपनी पहुंच बनाए रखना चाहता था। पढ़ा लिखा न होने के

बावजूद वह कुशल प्रशासक था। अपने राज्य में मुगल शासन प्रणाली तथा राजस्व व्यवस्था उसी ने लागू की थी। मैसूर जब कमजोर तथा विभाजित राज्य था, तब उसने उस पर कब्जा किया और शीघ्र ही उसके कारण इस राज्य की गिनती प्रमुख भारतीय शक्तियों में की जाने लगी। वह धार्मिक सहिष्णुता की नीति पर चला। उसका पहला दीवान और अन्य अनेक अधिकारी हिंदू थे।

अपनी सत्ता के लगभग आरंभ से ही वह मराठा सरदारों, निजाम और अंग्रेजों के साथ लड़ाई में लगा रहा। उसने 1769 में अंग्रेजी फौजों को बार-बार हराया और मद्रास के पास तक पहुंच गया। वह द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध के दौरान 1782 में मर गया। उसके स्थान पर उसका बेटा टीपू गद्दी पर बैठा।

अंग्रेजों के हाथों 1799 में मारे जाने तक टीपू सुल्तान ने मैसूर पर शासन किया। वह जटिल चरित्र वाला और नए विचारों को ढूंढ़ निकालने वाला व्यक्ति था। समय के साथ अपने को बदलने की उसकी इच्छा के प्रतीक थे एक नए कलेंडर को लागू करना, सिक्का-ढलाई की नई प्रणाली काम में लाना तथा माप-तौल के नए पैमानों को अपनाना। उसके निजी पुस्तकालय में धर्म, इतिहास, सैन्य विज्ञान, औषधि विज्ञान और गणित जैसे विविध विषयों की पुस्तकें थीं। उसने फ्रांसीसी क्रांति में गहरी दिलचस्पी ली। उसने श्रीरंगपट्टम में 'स्वतंत्रता-वृक्ष' लगाया और एक जैकोबिन क्लब का सदस्य बन गया। उसकी सांगठनिक क्षमता का प्रमाण यह है कि जिन दिनों भारतीय फौजों के बीच अनुशासनहीनता आम थी, उसके सैनिक अंत तक अनुशासित और उसके प्रति वफादार रहे। उसने जागीर देने की प्रथा को खत्म करके राजकीय आय बढ़ाने की कोशिश की। उसने पोलिगारों की पैतृक संपत्ति को कम करने और राज्य तथा किसानों के बीच के मध्यस्थों को समाप्त करने की भी कोशिश की। मगर उसका भू-राजस्व उतना ही ऊंचा था जितना

टीपू सुल्तान

अन्य समयामयिक शासकों का। वह पैदावार का एक-तिहाई हिस्सा तक भू-राजस्व के रूप में लेता था। मगर उसने अब्बाबों की वसूली पर रोक लगा दी। वह भू-राजस्व में छूट देने में उदार था।

उसकी पैदल सेना यूरोप की शैली में बंदूकों और संगीनों से लैस थी लेकिन इन हथियारों को मैसूर में ही बनाया गया था। वर्ष 1796 के बाद उसने एक आधुनिक नौसेना खड़ी करने की भी कोशिश की थी। इसके लिए उसने दो नौका घाट बनवाए थे तथा जहाजों के नमूने उसने स्वयं तैयार कराए थे। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह एकदम सादा था, उसे किसी प्रकार का व्यसन नहीं था, विलासिता से वह कोसों दूर था। वह एक दुस्साहसी योद्धा था और अत्यंत

प्रतिभाशाली सेनानायक था। उसकी यह अत्यंत प्रिय उक्ति थी कि "एक शेर की तरह एक दिन जीना बेहतर है लेकिन भेड़ की तरह लंबी जिंदगी जीना अच्छा नहीं।" इसी विश्वास का पालन करते हुए वह श्रीरंगपट्टम के द्वार पर लड़ता हुआ मरा था। लेकिन हर काम में वह जल्दबाजी करता था और उसका स्वभाव स्थिर नहीं था।

एक राजनीतिज्ञ के रूप में 18वीं सदी के किसी भी शासक की तुलना में वह दक्षिण भारत के लिए या दूसरे भारतीय शासकों के लिए अंग्रेजी राज के खतरे को अधिक ठीक तरह से समझाता था। उदीयमान अंग्रेजी सत्ता के समक्ष वह दृढ़निश्चयी शत्रु के रूप में खड़ा हुआ था। और अंग्रेज़ लोग भी भारत में उसको अपना सबसे खतरनाक दुश्मन समझते थे।

हालांकि मैसूर उस जमाने के आर्थिक पिछड़ेपन के दोष से मुक्त तो नहीं था लेकिन हैदर अली और टीपू के राज्यकाल में वह आर्थिक रूप से खूब फला फूला। यह अधिक स्पष्ट हो जाता है, खास तौर पर जब हम उसकी आर्थिक स्थिति की तुलना निकट अतीत से या उस समय में देश के अन्य भागों से करते हैं। वर्ष 1799 में ब्रिटिश लोगों ने जब टीपू को पराजित कर उसे मार डाला और मैसूर पर कब्जा कर लिया तो यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ कि मैसूर का किसान ब्रिटिश शासित राज्य मद्रास के किसान की तुलना में कहीं बहुत अधिक संपन्न और खुशहाल था। सर जॉन शोर 1793-98 के दौरान गवर्नर-जनरल था। उसने बाद में लिखा था, "टीपू के राज्य के किसानों को संरक्षण मिलता था तथा उनको श्रम के लिए प्रोत्साहित और पुरस्कृत किया जाता था"। टीपू सुल्तान के जमाने के मैसूर के बारे में एक अन्य ब्रिटिश पर्यवेक्षक ने लिखा था, "यह राज्य, खेतीबाड़ी में बढ़ा-चढ़ा, परिश्रमी लोगों की घनी आबादी वाला, नए-नए नगरों वाला और वाणिज्य व्यापार में बढ़ोतरी वाला था। लगता है कि आधुनिक व्यापार और उद्योग के महत्व को भी टीपू अच्छी तरह समझता था। वास्तव में भारतीय शासकों में वही एकमात्र शासक था जो आर्थिक शक्ति के महत्त्व को सैनिक शक्ति की नींव मानता था। भारत में आधुनिक उद्योगों की शुरुआत के लिए उसने थोड़े-बहुत प्रयास किए। इसके लिए उसने विदेशों से कारीगर बुलाए और कई उद्योगों को राज्य की ओर से सहायता दी। विदेश व्यापार के विकास के लिए उसने फ्रांस, तुर्की, ईरान और पेगू में दूत भेजे। चीन के साथ भी उसने व्यापार किया। यूरोपीय कंपनियों के ढांचे पर उसने व्यापारिक कंपनी स्थापित करने का प्रयास भी किया और उनकी वाणिज्य संबंधी गतिविधियों की नकल करने की कोशिश की। बंदरगाह वाले नगरों में व्यापारिक संस्थाएं स्थापित करके उसने रूस तथा अरब के साथ व्यापार बढ़ाने का प्रयत्न किया।

कुछ ब्रिटिश इतिहासकारों ने टीपू को धार्मिक उन्मादी के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि अपने धार्मिक दृष्टिकोण में वह काफी रुढ़िवादी था लेकिन दूसरे धर्मों के प्रति उसका दृष्टिकोण काफी सहिष्णु और उदार था। वर्ष 1791 में मराठा घुड़सवारों ने शृंगेरी के शारदा मंदिर को लूटा तो उसने मां शारदा की प्रतिमा बनवाने के लिए पैसे दिए। वह नियमित रूप से इस मंदिर और इसके साथ कुछ और मंदिरों को भेंट दिया करता था। रंगनाथ का प्रसिद्ध मंदिर उसके महल से मुश्किल से 100 गज की दूरी पर था। जहां वह अपनी बहुसंख्यक हिंदू और ईसाई प्रजा के साथ सहनशीलता का बरताव करता था, वह उन हिंदुओं और ईसाइयों के प्रति काफी कठोर था जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मैसूर राज्य के विरुद्ध अंग्रेजों की मदद करते थे।

केरल : अठारहवीं सदी के शुरू में केरल बहुत बड़ी संख्या में सामंत सरदारों और राजाओं में बंटा हुआ था। इनमें से चार प्रमुख राज्य इस प्रकार थे : कालीकट, चिरक्कल, कोचीन और त्रावणकोर। त्रावणकोर राज्य

को 1729 के बाद अठारहवीं सदी के एक अग्रणी राजनेता राजा मार्तंड वर्मा के नेतृत्व में प्रमुखता मिली। उसमें विलक्षण दूरदर्शिता तथा दृढ़ संकल्प और साहस तथा निर्भीकता का सामंजस्य था। उसने सामंतों को शांत कर दिया, क्विलोन और इलायादाम को जीत लिया और डच लोगों को हराकर केरल में उनकी राजनीतिक सत्ता खत्म कर दी। उसने यूरोपीय अफसरों की मदद से पश्चिमी मॉडल के आधार पर एक शक्तिशाली फौज का संगठन किया और उसे आधुनिक हथियारों से सुसज्जित किया। उसने एक आधुनिक शस्त्रागार भी बनाया। मार्तंड वर्मा ने अपनी नई फौज का इस्तेमाल अपना राज्य उत्तर की ओर बढ़ाने के लिए किया। त्रावणकोर की सीमाएं जल्द ही कन्याकुमारी से कोचीन तक फैल गईं। उसने सिंचाई की अनेक व्यवस्थाएं कीं, संचार के लिए सड़कें और नहरें बनाईं तथा विदेश व्यापार को सक्रिय प्रोत्साहन दिया।

केरल के तीन बड़े राज्यों—कोचीन, त्रावणकोर और कालीकट ने 1763 तथा सभी छोटे रजवाड़ों को विलीन या अधीन कर लिया। हैदर अली ने केरल पर अपना आक्रमण 1766 में शुरू किया और अंत में कालीकट के जमोरिन के इलाकों सहित कोचीन तक उत्तरी केरल को हड़प लिया।

अठारहवीं सदी में मलयाली साहित्य में एक असाधारण पुनर्जीवन देखा गया। यह अंशतः केरल के राजाओं और सरदारों के कारण हुआ जो साहित्य के महान संरक्षक थे। अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में त्रावणकोर की राजधानी त्रिवेंद्रम, संस्कृत विद्धता का एक प्रसिद्ध केंद्र बन गया। मार्तंड वर्मा का उत्तराधिकारी राम वर्मा स्वयं कवि, विद्वान, संगीतज्ञ, प्रसिद्ध अभिनेता और सुसंस्कृत व्यक्ति था। वह अंग्रेजी में धाराप्रवाह बातचीत करता था। उसने युरोप के मामलों में गहरी दिलचस्पी ली। वह लंदन, कलकत्ता और मद्रास से निकलने वाले अखबारों और पत्रिकाओं को नियमित रूप में पढ़ता था।

दिल्ली के इर्द-गिर्द के इलाके

राजपूत राज्य : प्रमुख राजपूत राज्यों ने मुगल सत्ता की बढ़ती हुई कमजोरी का फायदा उठाकर अपने को केंद्रीय नियंत्रण से वस्तुतः स्वतंत्र कर लिया। साथ ही उन्होंने साम्राज्य के शेष भागों में अपना प्रभाव बढ़ाया। फर्रुखसियर और मुहम्मद शाह के शासन काल में आमेर और मारवाड़ के शासकों को आगरा, गुजरात और मालवा जैसे महत्त्वपूर्ण मुगल प्रांतों का सूबेदार बनाया गया।

राजपुताना के राज्य पहले की तरह विभाजित रहे। उनमें जो बड़े थे उन्होंने अपने कमजोर पड़ोसियों—राजपूत और गैर-राजपूत दोनों के इलाकों को हथियाकर अपना विस्तार किया। अधिकतर बड़े राजपूत राज्य निरंतर छोटे झगड़ों और गृह-युद्धों में फंसे रहे। इन राज्यों की अंदरूनी राजनीति में उसी प्रकार के भ्रष्टाचार, षड्यंत्र और विश्वासघात का बोलबाला था जैसा मुगल दरबार में था। मारवाड़ के अजीतसिंह को उसके बेटे ने ही मार डाला।

अठारहवीं सदी का सबसे श्रेष्ठ राजपूत शासक आमेर का सवाई जयसिंह (1681-1743) था। वह एक विख्यात राजनेता, कानून-निर्माता और सुधारक था। परंतु सबसे अधिक, वह विज्ञान-प्रेमी के रूप में चमका। ध्यान रहे कि जिस युग में वह था, उसमें अधिकांश भारतीयों को वैज्ञानिक प्रगति के बारे में ज्यादा पता नहीं था। उसने जाटों से लिए गए इलाके में जयपुर शहर की स्थापना की और उसे विज्ञान और कला का महान केंद्र बना दिया। जयपुर का निर्माण बिलकुल वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर और एक नियमित योजना के तहत हुआ। उसकी चौड़ी सड़कें एक-दूसरे को समकोण पर काटती हैं।

जयसिंह की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह एक महान खगोलशास्त्री भी था। उसने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और मथुरा में बिलकुल सही और आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित पर्यवेक्षणशालाएं बनाईं। कुछ
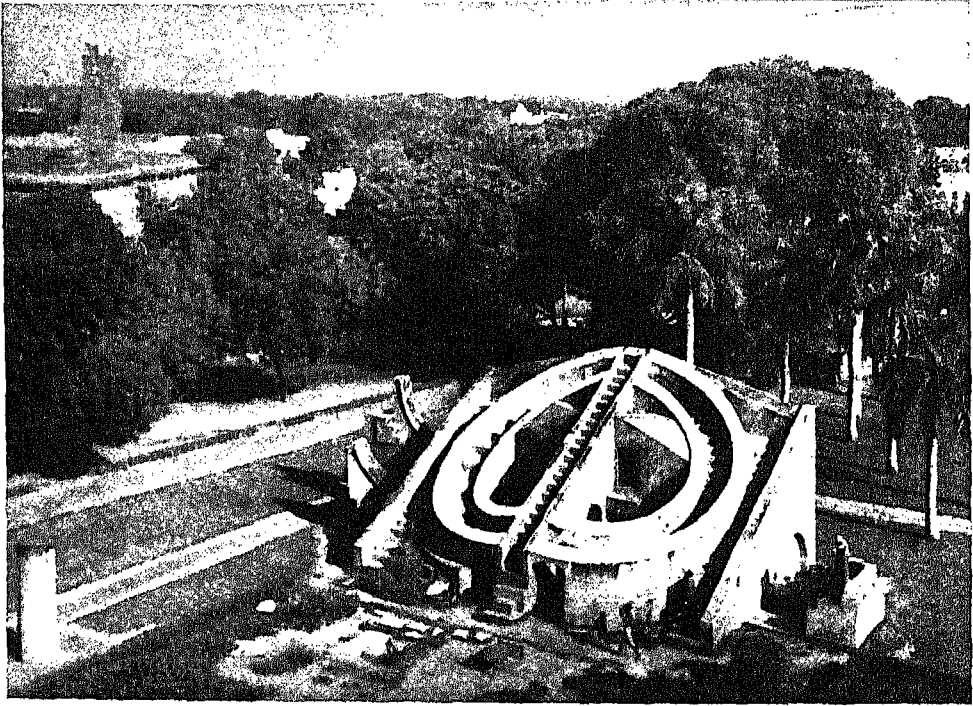
महाराजा सवाई जयसिंह की वेधशाला, जन्तर मन्तर, नई दिल्ली

उपकरण खुद जयसिंह के बनाए हुए थे। उसके खगोलशास्त्र संबंधी पर्यवेक्षण आश्चर्यजनक रूप से सही होते थे। उसने सारणियों का एक सेट तैयार किया जिससे लोगों को खगोलशास्त्र संबंधी पर्यवेक्षण करने में सहायता मिले। इसका नाम जिज मुहम्मदशाही था। उसने युक्लिड की 'रेखागणित के तत्व' तथा त्रिकोणमिति की बहुत सारी कृतियों और लघुगणकों को बनाने और उनके इस्तेमाल संबंधी नेपियर की रचना का अनुवाद संस्कृत में कराया।

जयसिंह समाज-सुधारक भी था। उसने एक कानून लागू करने की कोशिश की जिससे लड़की की शादी में किसी राजपूत को अत्यधिक खर्च करने के लिए मजबूर न होना पड़े। लड़की की शादी में भारी खर्च के कारण ही लड़कियों को जन्म लेते ही मार दिया जाता था। इस असाधारण राजा ने जयपुर पर 1699-1743 तक, 44 वर्षों तक शासन किया।

जाट : खेतिहरों की एक जाति जाट है। जाट दिल्ली, आगरा और मथुरा के इर्द-गिर्द के इलाके में रहते थे। मथुरा के आसपास के जाट किसानों ने 1669 और फिर 1688 में अपने जाट जमींदारों के नेतृत्व में विद्रोह किए। विद्रोहों को कुचल दिया गया मगर इलाका अशांत ही रहा। औरंगजेब की मौत के बाद उन्होंने दिल्ली के चारों ओर अशांति पैदा कर दी। जाट-विद्रोह जमींदारों के नेतृत्व में मूलतः एक कृषक-विद्रोह था मगर जल्द ही वह लूटमार तक सीमित हो गया।

उन्होंने गरीब हो या धनी, जागीरदार हो या किसान, हिंदू हो या मुसलमान, सबको लूटा। उन्होंने दिल्ली के दरबारी षड्यंत्रों में सक्रिय हिस्सा लिया। बहुधा अपने फायदे को देखते हुए वे पक्ष बदल देते थे। भरतपुर के जाट राज्य की स्थापना चूरामन और बदनसिंह ने की। जाट सत्ता सूरजमल के नेतृत्व में अपनी उच्चतम गरिमा पर पहुचं गई। सूरजमल ने 1756 से 1763 तक शासन किया। वह एक अत्यंत योग्य प्रशासक तथा सैनिक और बड़ा बुद्धिमान राजनेता था। उसने अपना अधिकार एक बड़े क्षेत्र पर कायम किया जो पूरब में गंगा से लेकर दक्षिण में चंबल तथा पश्चिम में आगरा के सूबे से लेकर उत्तर में दिल्ली के सूबे तक फैला था। उसके राज्य में अन्य जिलों के अलावा आगरा, मथुरा, मेरठ और अलीगढ़ जिले शामिल थे। मुगल राजस्व व्यवस्था को अपनाकर उसने एक स्थायी राज्य की नींव रखने की कोशिश की। एक समसामयिक इतिहासकार ने उसके बारे में निम्नलिखित बातें लिखी हैं :

> "यद्यपि वह किसान की पोशाक पहनता था और सिर्फ अपनी ब्रज बोली बोल सकता था, तथापि वह जाट जाति का अफलातून (प्लेटो) था। समझदारी और चतुराई तथा राजस्व और नागरिक मामलों का प्रबंध करने की योग्यता में उसकी बराबरी करने वाला आसफ जाह बहादुर को छोड़कर, हिंदुस्तान के बड़े सामंतों में कोई नहीं था।"

वह 1763 में मर गया। उसके बाद जाट राज्य की अवनति हो गई। वह छोटे जमींदारों के बीच बंट गया जिनमें से अधिकतर लूटमार पर जिंदा रहने लगे।

बंगश पठान और रुहेले : एक अफगान दुस्साहसी, मुहम्मद खां बंगश ने फर्रुखाबाद के इर्द-गिर्द के इलाके (अलीगढ़ और कानपूर के बीच के इलाके) पर फर्रुखसियर और मुहम्मद शाह के शासन काल में अपना अधिकार कायम कर लिया। इसी प्रकार नादिर शाह के आक्रमण के बाद प्रशासन के ठप्प हो जाने पर अली मुहम्मद खां ने रुहेलखंड नामक राज्य कायम किया। यह राज्य हिमालय की तराई में दक्षिण में गंगा और उत्तर में कुमायूं की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। इसकी राजधानी पहले बरेली में आंवला थी और बाद में रामपुर चली गई। रुहेलों का अवध, दिल्ली और जाटों से लगातार टकराव होता रहा।

सिख: सिख धर्म को गुरु नानक ने पंद्रहवीं शताब्दी में चलाया। वह पंजाब के जाट किसानों तथा अन्य छोटी जातियों के बीच फैल गया। वह लड़ाकू समुदाय के रूप में सिखों को बदलने का काम गुरु हर गोविंद (1606-1645) ने आरंभ किया। मगर अपने दसवें और आखिर गुरु गोबिंदसिंह (1666-1708) के नेतृत्व में सिख एक राजनीतिक और फौजी ताकत बने। औरंगजेब की फौजों और पहाड़ी राजाओं के खिलाफ 1699 से लेकर गुरु गोबिंदसिंह ने लगातार लड़ाइयां कीं।

गुरु गोबिंदसिंह की मृत्यु के बाद गुरु की परंपरा खत्म हो गई और सिखों का नेतृत्व उनके विश्वासपात्र शिष्य बंदा सिंह के हाथों में चला गया, जो बंदा बहादुर के नाम से विख्यात था। बंदा ने पंजाब के किसानों और नीची जातियों के लोगों को एकजुट किया और मुगल फौज के खिलाफ आठ साल तक जोश-खरोश के साथ गैरबराबरी की लड़ाई चलाई। उसे 1715 में पकड़ लिया गया और कत्ल कर दिया गया। उसकी असफलता के अनेक कारण थे : मुगल शासन अभी भी काफी शक्तिशाली था। पंजाब के संपन्न वर्ग और ऊंची जातियों के लोगों ने उसके विरोधियों का साथ दिया क्योंकि वह नीची जातियों और गांव की गरीब जनता का हिमायती था। अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण वह मुगल विरोधी समस्त ताकतों को एकजुट नहीं कर सका।

नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों और उनके कारण पंजाब के प्रशासन में हुई गड़बड़ी ने सिखों को फिर से उठ खड़ा होने का मौका दिया। आक्रमणकारियों की फौजों के आगे बढ़ने पर सिखों ने बिना कोई भेदभाव किए सबको लूटा और धन तथा सैनिक शक्ति इकट्ठी की। अब्दाली के पंजाब से वापस जाने के बाद उन्होंने राजनीतिक रिक्तता को भरना आरंभ किया। उन्होंने 1765 और 1800 के बीच पंजाब और जम्मू को अपने अधिकार में कर लिया। सिख 12 मिसलों या संघों में संगठित थे जो सूबे के विभिन्न भागों में काम करते थे। ये मिसल एक-दूसरे के साथ पूरी तरह सहयोग करते थे। मूलतः वे समानता के सिद्धांत पर आधारित थे। किसी मिसल के मामलों पर विचार करने और उसके प्रधान तथा अन्य अधिकारियों को चुनने में सभी सदस्य समान रूप से हिस्सा लेते थे। धीरे-धीरे मिसलों का जनतांत्रिक और अकुलीन चरित्र लुप्त हो गया और शक्तिशाली प्रधानों, सामंतों और सरदारों तथा जमींदारों ने उन पर अपना दबदबा कायम कर लिया। भाईचारे की भावना और खालसा की एकता भी लुप्त हो गई क्योंकि प्रधान निरंतर आपस में झगड़ते रहते थे और उन्होंने अपने को स्वतंत्र सरदार घोषित कर दिया था।

रणजीत सिंह के अधीन पंजाब : अठारहवीं सदी के अंत में सुकेरचकिया मिसल के प्रधान रणजीत सिंह ने प्रमुखता प्राप्त कर ली। वह एक ताकतवर और साहसी सैनिक, कुशल प्रशासक तथा चतुर कूटनीतिज्ञ था। वह जन्मजात नेता था। उसने 1799 में लाहौर और 1802 में अमृतसर पर कब्जा कर लिया। उसने सतलुज के पश्चिम के सभी सिख प्रधानों को अपने अधीन कर लिया और पंजाब में अपना राज्य कायम किया। बाद में उसने कश्मीर, पेशावर और मुलतान को भी जीत लिया। पुराने सिख प्रधान बड़े जमींदार और जागीरदार बना दिए गए। उसने मुगलों द्वारा लागू की गई भू-राजस्व की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किए। भू-राजस्व का हिसाब 50 प्रतिशत सकल उत्पादन के आधार पर लगाया गया।

रणजीत सिंह ने यूरोपीय प्रशिक्षकों की सहायता से युरोपिय ढर्रे पर एक शक्तिशाली, अनुशासित और सुसज्जित फौज तैयार की। उसकी नई फौज केवल सिखों तक ही सीमित नहीं थी। उसने गोरखों, बिहारियों, उड़ियों, पठानों, डोगरों तथा पंजाबी मुसलमानों को भी अपनी फौज में भर्ती किया। उसने लाहौर में तोप बनाने के आधुनिक कारखाने खोले तथा उनमें मुसलमान तोपचियों को काम पर लगाया। कहा जाता है कि उसकी फौज़ एशिया की दूसरी सबसे अच्छी फौज थी। पहला स्थान अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की फौज का था।

रणजीत सिंह बखूबी अपने मंत्रियों और अफसरों का चुनाव करता था। उसका दरबार श्रेष्ठ व्यक्तियों से भरा हुआ था। धर्म के मामले में वह सहनशील तथा

रणजीत सिंह

उदारवादी था। न केवल सिख बल्कि मुसलमान तथा हिंदू संतों को भी वह सम्मान, आदर और संरक्षण देता था। धर्मपरायण सिख होते हुए भी यह कहा जाता है कि "अपने सिंहासन से उतरकर मुसलमान फकीरों के पैरों की धूल अपनी लंबी सफेद दाढ़ी से झाड़ता था।" उसके अनेक महत्त्वपूर्ण मंत्री और सेनापति मुसलमान और हिंदू थे। उसका सबसे प्रमुख और विश्वासपात्र मंत्री फकीर अजीजउद्दीन था। उसका वित्त मंत्री दीवान दीनानाथ था। वस्तुतः किसी भी दृष्टि से रणजीत सिंह द्वारा शासित पंजाब एक सिख राज्य नहीं था। राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल केवल सिखों के फायदे के लिए नहीं होता था। सिख किसान उतना ही उत्पीड़ित था जितना हिंदू या मुसलमान किसान था। वस्तुतः रणजीत सिंह के अधीन एक राज्य के रूप में पंजाब का ढांचा अठारहवीं शताब्दी के अन्य भारतीय राज्यों की तरह ही था।

जब 1809 में अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को सतलुज पार करने से मना कर दिया और नदी के पूरब के सिख राज्यों को अपने संरक्षण में ले लिया तब उसने चुप्पी साध ली क्योंकि उसने महसूस किया कि उसके पास अंग्रेजों का मुकाबला करने की शक्ति नहीं है। इस प्रकार उसने अपने राजनयिक यथार्थवाद और सैनिक शक्ति के जरिए अपने राज्य को अंग्रेजों के अतिक्रमण से बचा लिया। मगर वह विदेशी खतरे को हटा नहीं सका, उसने उस खतरे को अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ दिया। इसलिए उसकी मृत्यु के बाद उसका राज्य जब सत्ता के तीव्र आंतरिक संघर्ष का शिकार हो गया तब अंग्रेज़ आए और उन्होंने उसे जीत लिया।

मराठा शक्ति का उत्थान और पतन

पतनोन्मुख मुगल सत्ता को सबसे महत्त्वपूर्ण चुनौती मराठा राज्य से मिली जो उत्तराधिकारी राज्यों में सबसे शक्तिशाली था। असल में, मुगल साम्राज्य के विघटन से उत्पन्न राजनीतिक रिक्तता को भरने की शक्ति केवल उसी में थी। यही नहीं उसने इस कार्य के लिए जरूरी कई प्रतिभाशाली सेनापतियों और राजनेताओं को पैदा किया था। मगर मराठा सरदारों में एकता नहीं थी, और उनमें एक अखिल भारतीय साम्राज्य बनाने के लिए आवश्यक दृष्टिकोण और कार्यक्रम नहीं था। इसलिए वे मुगलों की जगह लेने में असफल रहे। मगर जब तक उन्होंने मुगल साम्राज्य को खत्म नहीं किया तब तक वे उसके खिलाफ लगातार लड़ाई करते रहे।

शिवाजी के पोते साहू को औरंगजेब ने 1689 से कैद कर रखा था। औरंगजेब उसके तथा उसकी मां के साथ उनके धर्म, जाति तथा अन्य चीजों का पूरी तरह ख्याल कर बड़ी शिष्टता, इज्जत तथा लिहाज के साथ पेश आया। उसको उम्मीद थी कि शायद साहू के साथ कोई राजनीतिक समझौता हो जाए। साहू को 1707 में औरंगजेब की मौत के बाद रिहा कर दिया गया फिर जल्द ही साहू और कोल्हापुर में रहने वाली उसकी चाची ताराबाई के बीच गृह-युद्ध छिड़ गया। ताराबाई ने अपने पति राजाराम के मरने के बाद अपने बेटे शिवाजी द्वितीय के नाम में मुगल विरोधी संघर्ष 1700 से चला रखा था। मराठा सरदारों ने सत्ता के लिए संघर्ष करने वालों में से किसी न किसी का पक्ष लेना आरंभ कर दिया। हर मराठा सरदार के पीछे सिपाही थे जो केवल उसी के प्रति निष्ठा रखते थे। उन्होंने इस अवसर का इस्तेमाल सत्ता के लिए संघर्ष करने वाले दोनों पक्षों से मोलभाव करके अपनी शक्ति और प्रभाव को बढ़ाने के लिए किया। उनमें से अनेक ने दक्कन के मुगल नवाबों के साथ मिलकर साजिशें भी कीं। साहू और कोल्हापुर स्थित उसके प्रतिद्वंद्वी के बीच झगड़े के फलस्वरूप मराठा सरकार की एक नई व्यवस्था ने जन्म लिया जिसका नेता राजा साहू का पेशवा बालाजी विश्वनाथ था।
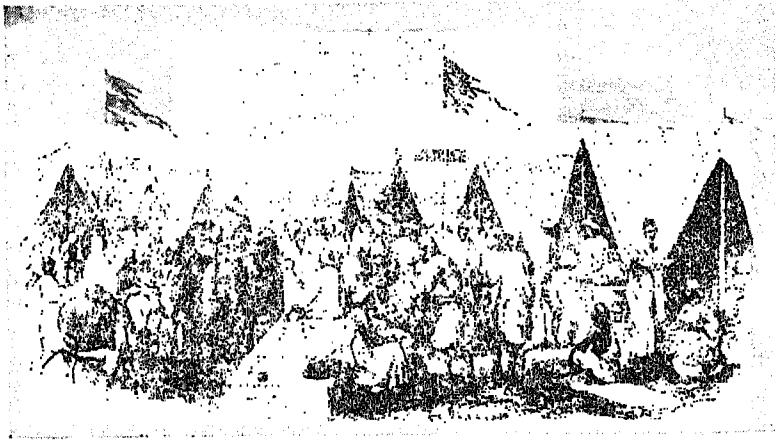
मराठा शिविर में सैनिकों का बाजार

बालाजी विश्वनाथ ब्राह्मण था। उसने अपना जीवन एक छोटे राजस्व अधिकारी के रूप में प्रारंभ किया था और धीर-धीरे बढ़कर एक बड़ा अधिकारी हो गया था। साहू को अपने दुश्मनों को कुचलने के काम में उसने अपनी निष्ठापूर्ण और जरूरी सेवा दी। वह कूटनीति में बेजोड़ था और उसने अनेक बड़े मराठा सरदारों को साहू की ओर कर लिया। साहू ने 1713 में उसे पेशवा या मुख्य-प्रधान बनाया। बालाजी विश्वनाथ ने धीरे-धीरे साहू का और अपना आधिपत्य मराठा सरदारों और अधिकांश महाराष्ट्र पर कायम किया। केवल कोल्हापुर के दक्षिण के इलाके पर राजाराम के वंशजों का शासन रहा। पेशवा ने अपने हाथों में शक्ति का संकेंद्रण कर लिया और अन्य मंत्री तथा सरदार उसके सामने प्रभावहीन हो गए। वस्तुतः वह और उसका बेटा बाजीराव प्रथम ने पेशवा को मराठा साम्राज्य का कार्यकारी प्रधान बना दिया।

बालाजी विश्वनाथ ने मराठा शक्ति को बढ़ाने के लिए मुगल अधिकारियों के आपसी झगड़ों का पूरा फायदा उठाया। उसने दक्कन की चौथ और सरदेशमुखी देने के लिए जुल्फिकार खां को राजी कर लिया। अंत में उसने सैयद बंधुओं के साथ एक समझौते पर दस्तखत किए। वे सारे इलाके जो पहले शिवाजी के राज्य के हिस्से थे, साहू को वापस कर दिए गए। उसे दक्कन के छः सूबों की चौथ सरदेशमुखी भी दे दिया गया। बदले में साहू बादशाह की सेवा में 15,000 घुड़सवार सैनिकों को देने, दक्कन में बगावत और लूटमार रोकने तथा 10 लाख रुपयों का सालाना नजराना पेश करने पर राजी हो गया। नाममात्र के लिए ही सही मगर वह पहले ही मुगल आधिपत्य स्वीकार कर चुका था। वह 1714 में औरंगजेब के मकबरे तक पैदल चलकर खुलदाबाद गया तथा उसके प्रति सम्मान व्यक्त किया। अपने नेतृत्व में एक मराठा फौज लेकर बालाजी विश्वनाथ 1719 में सैयद हुसैन अली खां के साथ दिल्ली गया और फर्रुखसियर का तख्ता पलटने में सैयद बंधुओं की मदद की। दिल्ली में उसने और अन्य मराठा सरदारों ने साम्राज्य की कमजोरी को स्वयं देखा और उनमें अपना प्रभाव-क्षेत्र उत्तर की ओर बढ़ाने की महत्त्वाकांक्षा ने घर कर लिया।

दक्कन में चौथ और सरदेशमुखी की कुशल वसूली के लिए बालाजी विश्वनाथ ने मराठा सरदारों

को अलग-अलग इलाके सौंपे। मराठा सरदार वसूल की गई रकम का अधिकांश अपने खर्च के लिए रख लेते थे। चौथ और सरदेशमुखी सौंपने की प्रथा ने भी पेशवा को संरक्षण के जरिए अपनी व्यक्तिगत शक्ति बढाने में सहायता दी। बड़ी संख्या में महत्त्वाकांक्षी सरदारों ने उसके इर्द-गिर्द जमा होना आरंभ कर दिया। आगे चलकर यही मराठा साम्राज्य की कमजोरी का मुख्य स्रोत सिद्ध हुआ। उस समय तक वतनों और सरजामों (जागीरों) की प्रणाली ने मराठा सरदारों को शक्तिशाली स्वायत्त और केंद्रीय सत्ता के प्रति ईर्ष्यालु बना दिया था। उन्होंने अब मुगल साम्राज्य के सुदूर इलाकों में अपना अधिकार जमाना आरंभ कर दिया। वहां वे धीरे-धीरे कमोबेश स्वायत्त सरदारों के रूप में बस गए। इस तरह अपने मूल राज्य के बाहर मराठों की जीतें मराठा राजा या पेशवा के सीधे अधीन केंद्रीय फौज द्वारा हासिल नहीं की गईं बल्कि उन्हें सरदारों की अपनी निजी सेनाओं द्वारा प्राप्त किया गया। जीत के दौरान सरदार बहुधा आपस में टकराते थे। अगर केंद्रीय सरकार उन्हें सख्ती से नियंत्रित करने की कोशिश करती तो वे दुश्मनों से मिल जाने में नहीं हिचकते थे। दुश्मनों में निजाम, मुगल या अंग्रेज कोई भी हो सकते थे।

बालाजी विश्वनाथ 1720 में मर गया। उसकी जगह पर उसका 20 वर्ष का बेटा बाजीराव प्रथम पेशवा बना। युवा होने के बावजूद बाजीराव एक निर्भीक और प्रतिभावान सेनापति तथा महत्त्वाकांक्षी और चालाक राजनेता था। उसे "शिवाजी के बाद गुरिल्ला युद्ध का सबसे बड़ा प्रतिपादक" कहा गया है। बाजीराव के नेतृत्व में मराठों ने मुगलों के खिलाफ अनगिनत अभियान चलाए। पहले उन्होंने मुगल अधिकारियों को विशाल इलाकों से चौथ वसूल करने का अधिकार देने और फिर वे इलाके मराठा राज्य को सौंप देने के लिए मजबूर किया। जब 1740 में बाजीराव मरा तब तक मराठों ने मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड के हिस्सों पर अधिकार कर लिया था। इसी काल में मराठों के गायकवाड़, होल्कर, सिंधिया और भोंसले परिवारों ने प्रमुखयता प्राप्त की।

जीवन भर बाजीराव ने दक्कन में निजाम-उल-मुल्क की शक्ति को नियंत्रित करने की कोशिश की। निजाम-उल-मुल्क ने भी पेशवा की सत्ता को कमजोर करने के लिए कोल्हापुर के राजा, मराठा सरदारों और मुगल अधिकारियों से मिलकर लगातार साजिशें कीं। दो बार दोनों लड़ाई के मैदान में मिले और दोनों बार निजाम को मुंह की खानी पड़ी और उसे दक्कन प्रांतों की चौथ और सरदेशमुखी मराठों को देने के लिए मजबूर होना पड़ा।

बाजीराव ने 1733 में जंजीरा के सिदियों के खिलाफ एक लंबा शक्तिशाली अभियान आरंभ किया और अंततोगत्वा उन्हें मुख्य भूमि से निकाल बाहर कर दिया गया। साथ ही पुर्तगालियों के खिलाफ भी एक अभियान आरंभ किया गया। अंत में सिलसिट और बसई (बस्सीन) पर कब्जा कर लिया गया मगर पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों का अपने इलाकों पर कब्जा बना रहा।

बाजीराव अप्रैल 1740 में मर गया। बीस सालों की छोटी अवधि में ही उसने मराठा राज्य का चरित्र बदल दिया। उसने महाराष्ट्र राज्य को एक साम्राज्य के रूप में बदल दिया जिसका प्रसार उत्तर में भी होने लगा। मगर वहप साम्राज्य के सुदृढ़ आधार नहीं बना सका। नए इलाकों को जीतकर उन पर कब्जा जमाया गया मगर उनके प्रशासन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। सफल सरदारों की मुख्य दिलचस्पी राजस्व वसूल करने में ही थी।

बाजीराव का अठारह साल का बेटा बालाजी बाजीराव (जो नाना साहब के नाम से जाना जाता था) पेशवा बना। वह 1740 से 1761 तक पेशवा रहा। वह अपने पिता की तरह ही काबिल था यद्यपि वह कम उद्यमी था। राजा साहू 1849 में मर गया। उसने

अपनी वसीयत के जरिए सारा राजकाज पेशवा के हाथों में छोड़ दिया। पेशवा का ओहदा तब तक वंशगत बन गया था और पेशवा ही राज्य का असली शासक हो गया था। अब वह प्रशासन का अधिकृत प्रधान हो गया। इस तथ्य के प्रतीक के रूप में वह अपनी सरकार को अपने मुख्यालय पुणे (पूना) ले गया।

बालाजी बाजीराव ने अपने पिता का अनुसरण किया और साम्राज्य को विभिन्न दिशाओं में बढ़ाया। उसने मराठा शक्ति को उसके उत्कर्ष पर पहुंचा दिया। मराठों ने सारे भारत को रौंद दिया। मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड पर मराठों का अधिकार मजबूत हो गया। बंगाल पर बार-बार हमला हुआ और 1751 में बंगाल के नवाब को मजबूर होकर उड़ीसा मराठों को देना पड़ा। दक्षिण में मैसूर राज्य और अन्य छोटे रजवाड़ों को नजराना देने के लिए विवश होना पड़ा। निजाम हैदराबाद को 1760 में उदगिर में हरा दिया गया और उसे 62 लाख रुपयों के वार्षिक राजस्व वाले विशाल क्षेत्र को मराठों को सौंप देना पड़ा। उत्तर में जल्द ही मराठे मुगल सत्ता की असल ताकत बन गए। गंगा के दोआब और राजपुताने से होकर वे दिल्ली पहुंचे जहां 1752 में उन्होंने इमाद-उल-मुल्क को वजीर बनने में मदद दी। नया वजीर जल्द ही उनके हाथों की कठपुतली बन गया। दिल्ली से वे पंजाब की ओर मुड़े और अहमद शाह अब्दाली के प्रतिनिधि को निकाल बाहर कर उस पर अधिकार कर लिया। इससे उनका टकराव अफगानिस्तान के बहादुर योद्धा राजा के साथ हुआ जो फिर एक बार, मराठों से बदला लेने के लिए भारत पर चढ़ आया।

अब उत्तर भारत पर अधिकार के लिए एक बड़ा टकराव शुरू हुआ। अहमद शाह अब्दाली ने रुहेलखंड के नजीबउद्दौला और अवध के शुजाउद्दौला से तुरंत गठजोड़ कर लिया। वे दोनों मराठा सरदारों के हाथों हार गए थे। आगामी संघर्ष की बड़ी अहमियत को देखकर पेशवा ने अपने नाबालिग बेटे के नेतृत्व में एक शक्तिशाली फौज उत्तर की ओर भेजी। उसका बेटा तो केवल नाम का ही सेनापति था; वास्तविक सेनापति उसका चचेरा भाई सदाशिव राव भाऊ था। इस फौज का एक महत्त्वपूर्ण भाग था यूरोपीय ढंग से संगठित पैदल और तोपखाने की टुकड़ी जिसका नेतृत्व इब्राहीम खां गार्दी कर रहा था। मराठों ने अब उत्तरी शक्तियों में सहायक ढूंढ़ने की कोशिश की। मगर उनके पहले के व्यवहार और राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं ने उन सब शक्तियों को नाराज कर दिया था। उन्होंने राजपुताना के राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप किया था और उन पर भारी जुर्माने तथा नजराने लगाए थे। उन्होंने अवध पर बड़े क्षेत्रीय और मौद्रिक दावे किए थे। पंजाब में उनकी कार्रवाइयों ने सिख प्रधानों को नाराज कर दिया था। जिन जाट सरदारों पर भारी जुर्माने लगाए गए थे, उन पर विश्वास नहीं करते थे। इसलिए उन्हें अपने दुश्मनों से ईमाद-उल-मुल्क के कमजोर समर्थन के अलावा अकेले लड़ना पड़ा। यहीं नहीं, बड़े मराठा सेनापति लगातार आपस में झगड़ते रहते थे।

दोनों फौजों का पानीपत में 14 जनवरी, 1761 को एक दूसरे से आमना-सामना हुआ। मराठा फौज के पैर पूरी तरह उखड़ गए। पेशवा का बेटा विश्वास राव, सदाशिव राव भाऊ और अन्य अनगिनत मराठा सेनापति करीब 28,000 सैनिकों के साथ मारे गए। अफगान घुड़सवारों ने भागने वालों का पीछा किया। उन्हें पानीपत क्षेत्र के जाटों, अहीरों और गूजरों ने भी लूटा-खसोटा।

पेशवा जो अपने चचेरे भाई की मदद के लिए उत्तर की ओर बढ़ रहा था, इस दुःखद खबर को सुनकर हक्का-बक्का हो गया। वह पहले से ही गंभीर रूप से बीमार था। उसका अंत समय जल्द ही आ गया। वह जून 1761 में मर गया।

पानीपत की हार मराठों के लिए महाविपदा के समान थी। उन्हें अपनी फौज के बेहतरीन आदमियों

से हाथ धोना पड़ा और उनकी राजनीतिक प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। सबसे बढ़कर, उनकी हार ने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल और दक्षिण भारत में अपनी सत्ता मजबूत करने का मौका दिया। अफगानों को भी अपनी जीत से कोई फायदा नहीं हुआ। वे पंजाब को अपने अधिकार में नहीं रख सके। वस्तुतः पानीपत की तीसरी लड़ाई ने यह फैसला नहीं किया कि भारत पर कौन राज करेगा बल्कि यह तय कर दिया कि भारत पर कौन राज नहीं करेगा। अतएव इससे भारत में ब्रिटिश सत्ता के उदय का रास्ता साफ हो गया।

सत्रह वर्षीय माधव राव 1761 में पेशवा बना। वह एक प्रतिभाशाली सैनिक और राजनेता था। ग्यारह सालों की छोटी अवधि में ही उसने मराठा साम्राज्य की खोई हुई किस्मत को वापस लौटा लिया। उसने निजाम को हराया, मैसूर के हैदरअली को नजराना देने के लिए मजबूर किया, तथा रुहेलों को हराकर और राजपूत राज्यों और जाट सरदारों को अधीन लाकर उत्तर भारत पर अपने अधिकार का फिर से दावा किया। मराठे 1771 में बादशाह शाह आलम को दिल्ली वापस ले आए। अब बादशाह उनका पेंशनभोगी बन गया। इस प्रकार लगा कि उत्तर भारत पर मराठों का प्रभुत्व फिर कायम हो गया है।

किंतु मराठों को एक धक्का फिर लगा। माधव राव 1771 में क्षय रोग से मर गया। अब मराठा साम्राज्य अस्तव्यस्तता की स्थिति में पहुंच गया। पुणे में बालाजी बाजीराव के छोटे भाई रघुनाथ राव और माधव राव के छोटे भाई नारायण राव के बीच सत्ता के लिए संघर्ष हुआ। नारायण राव 1773 में मारा गया। उसकी जगह पर मरणोपरांत जन्मा उसका पुत्र सवाई माधव राव आया। निराश होकर रघुनाथ राव अंग्रेजों के पास चला गया और उनकी मदद से उसने सत्ता हथियाने की कोशिश की। फलस्वरूप पहला आंग्ल-मराठा युद्ध हुआ।

पेशवा की सत्ता अब कमजोर होने लगी। पुणे में सवाई माधव राव के समर्थकों और रघुनाथ राव के पक्षधरों के बीच लगातार षड्यंत्र चल रहे थे। सवाई माधव राव के समर्थकों का नेता नाना फड़नवीस था। इस बीच बड़े मराठा सरदार अपने लिए उत्तर में अर्धस्वतंत्र राज्य कायम करने में लगे थे। वे शायद ही कभी पेशवा के साथ सहयोग करते थे। उनमें सबसे प्रमुख थे, बड़ौदा का गायकवाड़, इंदौर का होल्कर, नागपुर के भौसले और ग्वालियर का सिंधिया। उन्होंने मुगल प्रशासन के ढर्रे पर नियमित प्रशासन कायम किये थे और उनके पास अपनी अलग फौजें थीं।

रघुनाथ राव

पेशवा के प्रति उनकी निष्ठा अधिक से अधिक नाम के लिए होती गई। उन्होंने पुणे में विरोधी गुटों का साथ दिया और मराठा साम्राज्य के दुश्मनों के साथ मिलकर साजिशें कीं।

उत्तर के मराठा शासकों में सबसे महत्त्वपूर्ण महदजी सिंधिया था। उसने फ्रांसीसी और पुर्तगाली अफसरों और बंदूकधारियों की सहायता से एक शक्तिशाली फौज खड़ी की तथा आगरा के पास शस्त्र निर्माण के कारखाने स्थापित किए। और 1784 में बादशाह शाह आलम को अपने वश में कर लिया। उसके कहने पर बादशाह ने पेशवा को अपना नायब-ए-मुनायब बनवाया। शर्त यह थी कि महादजी पेशवा की ओर से काम करेगा। मगर उसने अपनी शक्ति नाना फड़नवीस के खिलाफ साजिशें करने में लगाई। वह इंदौर के होल्कर का भी बड़ा कटु शत्रु था। वह 1794 में मर गया। नाना फड़नवीस उन महान सैनिकों और राजनेताओं की परंपरा की आखिरी कड़ी थे जिन्होंने मराठा शक्ति को अठारहवीं सदी में उसके उत्कर्ष पर पहुंचाया था।

सवाई माधव राव 1795 में मर गया। उसकी जगह रघुनाथ राव के अत्यंत नालायक बेटे बाजीराव द्वितीय ने ली। तब तक अंग्रेजों ने भारत में अपने आधिपत्य के प्रति मराठों की चुनौती खत्म करने का फैसला कर लिया था। अंग्रेजों ने अपनी चतुर कूटनीति के द्वारा आपस में लड़ने वाले मराठा सरदारों को विभाजित कर दिया और दूसरे और तीसरे मराठा युद्ध (क्रमशः 1803-1805 और 1816-1819) में उन्हें हरा दिया। अन्य मराठा राज्यों को बरकरार रहने दिया गया मगर पेशवा वंश को समाप्त कर दिया गया।

इस प्रकार मुगल साम्राज्य को नियंत्रित करने और देश के बड़े हिस्सों में अपना साम्राज्य स्थापित करने का मराठों का सपना साकार नहीं हो सका। इसका मूल कारण यह था कि मराठा साम्राज्य उसी पतनोन्मुख समाजव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता था जिसका मुगल साम्राज्य प्रतिनिधि था। दोनों एक ही प्रकार की अंतर्भूत कमजोरियों के शिकार थे। मराठा सरदार बहुत कुछ बाद के मुगल सामंतों की तरह थे, जैसे सरजामी व्यवस्था जागीर की मुगल प्रणाली के समान थी। जब तक एक केंद्रीय सत्ता और एक सामूहिक शत्रु मुगलों के विरुद्ध पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता थी तब तक वे किसी न किसी तरह से एक सूत्रबद्ध रहे। किंतु कोई भी अवसर मिलते ही उन्होंने अपनी स्वायत्तता का दावा करने की कोशिश की।

चाहे वे जो भी हों वे मुगल सामंतों की अपेक्षा कम अनुशासित थे। मराठा सरदारों ने एक नई अर्थव्यवस्था विकसित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने में असफल रहे। उन्होंने व्यापार और उद्योग में कोई दिलचस्पी नहीं ली। उनकी राजस्व प्रणाली और प्रशासन मुगलों जैसे थे। मुगलों की तरह ही मराठा शासक भी लाचार किसानों से राजस्व वसूल करने में ही मुख्य रूप से दिलचस्पी रखते थे। उदाहरण के लिए, उन्होंने भी आधा कृषि-उत्पादन कर के रूप में लिया। मुगलों के विपरीत वे महाराष्ट्र से बाहर की जनता को सही प्रशासन देने में भी विफल रहे। मुगलों की तुलना में वे भारतीय जनता में निष्ठा की भावना को अधिक मात्रा में नहीं जगा सके। उनका अधिकार क्षेत्र भी केवल बल पर आधारित था। उदीयमान ब्रिटिश सत्ता का मुकाबला मराठे केवल अपने राज्य को एक आधुनिक राज्य में रूपांतरित करके ही कर सकते थे। वे ऐसा करने में असफल रहे।

लोगों की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था

अठारहवीं सदी का भारत पर्याप्त गति से आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक प्रगति नहीं कर सका। राज्य की बढ़ती हुई राजस्व की मांगें, अफसरों के अत्याचार, सामंतों, लगान के ठेकेदारों और जमींदारों की धन लिप्सा और लूट-खसोट, प्रतिद्वंद्वी सेनाओं के आक्रमण और प्रत्याक्रमण और देश में फिरने वाले अनगिनत

दुस्साहसिकों की लूटपाट से जनजीवन बिल्कुल दयनीय हो गया था।

उन दिनों का भारत विषमताओं का भी देश हो गया था। अत्यंत दरिद्रता, अत्यंत समृद्धि और धन-संपदा साथ-साथ पाई जाती थी। एक तरफ भोगविलास में डूबे धनी और शक्तिशाली सामंत थे तो दूसरी ओर पिछड़े, उत्पीड़ित और पिछड़े किसान थे जो किसी तरह अपना जीवन-निर्वाह कर पाते थे और उन्हें सब प्रकार के अत्याचारों और अन्यायों को सहना पड़ता था। इतना होने पर भी भारतीय जनता का जीवन सब मिला-जुलाकर उतना खराब नहीं था जितना उन्नीसवीं सदी के अंत में सौ वर्षों से अधिक के ब्रिटिश शासन के बाद हुआ।

अठारहवीं सदी के दौरान भारतीय कृषि तकनीकी रूप से पिछड़ी हुई जड़वत थी। सदियों से उत्पादन के तकनीक ज्यों के त्यों थे। किसान तकनीकी पिछड़ेपन से उत्पादन में होने वाली कमी को पूरा करने के लिए कठिन परिश्रम करता था। वस्तुतः उसने उत्पादन के क्षेत्र में करिश्मे दिखाए। उसे आम तौर से जमीन की कमी का सामना नहीं करना पड़ा। मगर दुर्भाग्यवश, उसे अपने परिश्रम के फल नहीं मिल पाते थे। यद्यपि उसके उत्पादन पर ही शेष समाज निर्भर था, तथापि उसका अपना पारितोषिक अत्यंत अपर्याप्त था। राज्य, जमींदारों, जागीरदारों और लगान के ठेकेदारों ने उससे अधिकतम रकम उगाहने की कोशिश की। यह बात जिस हद तक मुगल राज्य के लिए सही थी उतनी ही हद तक मराठा या सिख सरदारों या मुगल राज्यों के अन्य उत्तराधिकारियों के लिए भी सच थी।

यद्यपि भारतीय गांव बहुत हद तक स्वावलंबी थे और बाहर से थोड़ा-सा ही आयात करते थे तथा संचार के साधन पिछड़े हुए थे इसके बावजूद देश के अंदर और एशिया और यूरोप के देशों के साथ मुगलों के शासनकाल में बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। भारत फारस की खाड़ी के इलाके से मोती, कच्चा रेशम, ऊन, खजूर, मेवे और गुलाब जल; अरब से कहवा, सोना, दवाएं और शहद; चीन से चाय, चीनी, चीनी मिट्टी और रेशम; तिब्बत से सोना, कस्तूरी और ऊनी कपड़ा; सिंगापुर से टिन इंडोनेशियाई द्वीपों से मसाले, इत्र, शराब और चीनी; अफ्रिका से हाथी दांत और दवाएं; और यूरोप से ऊनी कपड़ा, तांबा, लोहा और सीसा जैसी वस्तुएं और कागज का आयात करता था। भारत के निर्यात की सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु थी सूती वस्त्र। भारतीय सूती कपड़े अपनी उत्कृष्टता के लिए सारी दुनिया में मशहूर थे और उनकी हर जगह मांग थी। भारत कच्चा रेशम और रेशमी कपड़े, लोहे का सामान, नील, शोरा, अफीम, चावल, गेंहू, चीनी, काली मिर्च और अन्य मसाले, रत्न और औषधियां भी निर्यात करता था।

चूंकि भारत हस्तशिल्प और कृषि के उत्पादनों में कुल मिलाकर स्वावलंबी था, इसलिए वह बड़े पैमाने पर विदेशी वस्तुओं का आयात नहीं करता था। दूसरी ओर उसके औद्योगिक और कृषि उत्पादनों के लिए विदेशों में नियमित बाजार था, फलस्वरूप उसका निर्यात उसके आयात से अधिक होता था। विदेश व्यापार को चांदी और सोने के आयात द्वारा संतुलित किया जाता था। असल में, भारत बहुमूल्य धातुओं के खज़ाने के नाम से जाना जाता था।

अठारहवीं सदी में गैर-उपनिवेशवादी दौर में, भारत में आंतरिक और विदेशी व्यापार की स्थिति के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। इस विषय पर मुख्य दृष्टिकोण इस प्रकार है : अठारहवीं सदी के दौरान लगातार लड़ाई और अनेक इलाकों में कानून और व्यवस्था भंग हो जाने से देश के आंतरिक व्यापार को हानि पहुंची। अनेक व्यापारिक केंद्रों को सत्ता के दावेदारों और विदेशी आक्रमणकारियों ने लूट लिया। अनेक व्यापारिक मार्ग डाकुओं के संगठित दलों से भरे हुए थे। व्यापारी और उनके काफिले लगातार लूटे जाते रहे। यहां तक कि दो शाही शहरों दिल्ली और आगरा

के बीच की सड़क भी लुटेरों से सुरक्षित नहीं थी। यही नहीं, स्वायत्त प्रांतीय सरकारों और असंख्य स्थानीय सरदारों के उदय के साथ सीमा शुल्क की चौकियां भी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ गई। हर छोटे-बड़े शासक ने अपने इलाकों में आने वाली या उनसे गुजरने वाली वस्तुओं पर भारी सीमा शुल्क लगाकर अपनी आमदनी बढ़ाने की कोशिश की। इन सब कारणों का लंबी दूरी वाले व्यापार पर नुकसानदेह असर पड़ा। सामंत ही विलास की वस्तुओं के सबसे बड़े उपभोक्ता थे। विलास की वस्तुओं का ही व्यापार होता था। सामंतों के गरीब होने से आंतरिक व्यापार को भी धक्का लगा। दूसरे इतिहासकारों का मानना है कि राजनीतिक परिवर्तनों तथा आंतरिक व्यापार संबंधी झगड़ों को प्रायः बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया है। विदेश व्यापार पर इसका असर भी जटिल और अलग-अलग तरह का था। जहां समुद्री व्यापार का विस्तार हुआ, वहीं फारस और अफगानिस्तान के रास्ते होने वाला व्यापार अस्त-व्यस्त हो गया।

जिन राजनीतिक कारकों ने व्यापार को धक्का पहुंचाया उन्होंने शहरी उद्योगों पर भी बुरा प्रभाव डाला। अनेक समृद्ध शहरों, उन्नत उद्योगों के केंद्रों को लूट लिया गया और उन्हें नष्ट कर दिया गया। दिल्ली को नादिर शाह ने लूटा और लाहौर, दिल्ली और मथुरा को अहमद शाह अब्दाली ने। आगरा को जाटों ने, सूरत और गुजरात के अन्य शहरों तथा दक्कन को मराठों ने और सरहिंद को सिखों ने लूटा। यह सिलसिला चलता रहा। इसी प्रकार कहीं-कहीं सामंत वर्ग और दरबार की जरूरतों को पूरा करने वाले दस्तकारों को अपने संरक्षकों की धन दौलत में कमी आने के कारण क्षति पहुंची। इससे आगरा और दिल्ली जैसे नगरों का पतन हुआ। आंतरिक और विदेश व्यापार में गिरावट ने भी उन्हें देश के कुछ हिस्सों में धक्का पहुंचाया। इसके बावजूद देश के अन्य भागों में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के क्रिया कलापों के कारण यूरोप के साथ व्यापार बढ़ने के फलस्वरूप कुछ उद्योगों ने उन्नति की। बहरहाल नए दरबारों और नए सरदारों के आविर्भाव के कारण फैजाबाद, लखनऊ, वाराणसी और पटना जैसे नगरों का उदय हुआ। इससे दस्तकारी की हालत में थोड़ा सुधार हुआ।

फिर भी भारत व्यापक विनिर्माण का देश बना रहा। उस समय भी अपनी दक्षता के कारण भारतीय दस्तकार सारे विश्व में प्रसिद्ध थे। तब भी भारत सूती और रेशमी कपड़े, चीनी, जूट, रंग सामग्रियों, खनिज तथा हथियारों, धातु के बर्तनों जैसे धातु के उत्पादनों और शोरा और तेलों का बड़े पैमाने पर उत्पादक था। कपड़ा उद्योग के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे : बंगाल में ढाका और मुर्शिदाबाद; बिहार में पटना, गुजरात में सूरत, अहमदाबाद और भडौच; मध्य प्रदेश में चंदेरी; महाराष्ट्र में बुरहानपुर; उत्तर प्रदेश में जौनपुर, बनारस, लखनऊ और आगरा; पंजाब में मुलतान और लाहौर; आंध्र प्रदेश में मछलीपत्तम, औरंगाबाद, चिकाकोल और विशखापत्तनम; कर्नाटक में बंगलौर तथा तमिलनाडु में कोयंबतूर और मदुरै। कश्मीर ऊनी वस्त्रों का केंद्र था। महाराष्ट्र, आंध्र और बंगाल में जहाज-निर्माण उद्योग विकसित हुआ था। इस संबंध में भारतीयों की महान दक्षता के बारे में एक अंग्रेज पर्यवेक्षक ने लिखा, "जहाज निर्माण में उन्होंने अंग्रेजों से जितना सीखा उससे अधिक उन्हें पढ़ाया।" यूरोपीय कंपनियों ने अपने इस्तेमाल के लिए भारत में बने कई जहाज खरीदे।

असल में, अठारहवीं सदी के प्रारंभ में भारत विश्व-व्यापार और उद्योग के प्रमुख केंद्रों में था। रूस के पीटर महान ने कहा था :

> याद रखो कि भारत का वाणिज्य विश्व का वाणिज्य है और ...जो उस पर पूरा अधिकार कर सकेगा वही यूरोप का अधिनायक होगा।

एक बार फिर इस मुद्दे पर इतिहासकार एक मत नहीं हैं कि मुगल साम्राज्य के पतन के कारण और

छोटे-छोटे स्वायत्त राज्यों के उठ खड़े होने से पूरे देश में आर्थिक स्थिति में गिरावट आई या भारत के कुछ हिस्सों में व्यापार, कृषि तथा दस्तकारी का उत्पादन फलता-फूलता रहा और दूसरे हिस्से में यह अस्त-व्यस्त हो गया तथा आमतौर पर इसमें गिरावट आई, लेकिन कुल मिलाकर विचार किया जाय तो कोई बहुत अधिक हानि नहीं हुई। मगर सवाल यह नहीं है कि कहीं थोड़ी प्रगति हुई और कहीं थोड़ी अवनति, बल्कि प्रश्न मूलभूत आर्थिक ठहराव का है। जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की गुंजाइश थी तथा आर्थिक जीवन में एक प्रकार की निरंतरता थी, अठारहवीं सदी के दौरान सत्रहवीं सदी के मुकाबले आर्थिक गतिविधियों में कोई बहुत अधिक सुगबुगाहट अथवा उल्लास नजर नहीं आता है। इसके विपरीत निश्चित रूप से ह्रास की प्रवृत्ति दिखाई देती है। साथ ही यह भी सच है कि दस्तकारी और कृषि उत्पादन के क्षेत्र में 18वीं सदी के भारतीय राज्यों में कम आर्थिक विपन्नता थी, जबकि अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में भारत के ब्रिटिश उपनिवेश की हालत ज्यादा खराब थी।

शिक्षा

अठारहवीं सदी के भारत में शिक्षा की पूरी तरह उपेक्षा नहीं की गई। मगर कुल मिलाकर वह त्रुटिपूर्ण थी। वह परंपरागत थी और पश्चिमी दुनिया में हुए द्रुत परिवर्तनों से उसका कोई संपर्क नहीं था। वह जो ज्ञान देती थी वही साहित्य, कानून, धर्म, दर्शनशास्त्र और तर्कशास्त्र तक ही सीमित था। उसने भौतिक और प्राकृतिक प्रौद्योगिकी और भूगोल के अध्ययन पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने समाज के तथ्यगत और विवेकपूर्ण अध्ययन से कोई वास्ता नहीं रखा। सभी क्षेत्रों में मौलिक चिंतन को नापसंद किया गया और प्राचीन विद्या पर ही भरोसा किया गया।

उच्च शिक्षा के केंद्र सारे देश में फैले हुए थे और आमतौर से उनको चलाने के लिए धन नवाब, राजा और धनी जमींदार देते थे। हिंदुओं में उच्च शिक्षा संस्कृत के माध्यम से होती थी और मुख्यतः ब्राह्मणों तक सीमित थी। तत्कालीन राजकीय भाषा होने के कारण फारसी शिक्षा हिंदुओं और मुसलमानों में समान रूप से लोकप्रिय थी।

प्राथमिक शिक्षा काफी व्यापक थी। हिंदुओं में प्राथमिक शिक्षा शहर और गांव की पाठशालाओं के जरिये दी जाती थी। मुसलमानों में यह काम मस्जिदों में स्थित मकतबों में मौलवी करते थे। युवा छात्रों को पढ़ने, लिखने , और अंकगणित की शिक्षा दी जाती थी। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा मुख्यतः ब्राह्मण, राजपूत और वैश्य जैसी उच्च जातियों तक ही सीमित थी तथापि छोटी जातियों के भी कई लोग बहुधा उसे प्राप्त कर लेते थे। दिलचस्प बात यह है कि उस समय औसत साक्षरता ब्रिटिश शासन काल की अपेक्षा कम नहीं थी। इतना ही नहीं, 1813 में वारेन हेस्टिंग्ज ने भी लिखा था कि आम तौर पर यूरोप के किसी भी देश के लोगों के मुकाबले भारत के लोग पढ़ने, लिखने और अंकगणित में अधिक प्रतिभाशाली थे। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का स्तर आधुनिक मानदंडों से अपर्याप्त था, तथापि वह उन दिनों के सीमित उद्देश्यों की दृष्टि से पर्याप्त था। तब शिक्षा का एक अत्यंत आनंददायक पहलू यह था कि समाज में शिक्षकों की काफी प्रतिष्ठा थी। एक खराब बात यह थी कि लड़कियों को बिरले ही शिक्षा मिलती थी यद्यपि उच्च जातियों की कुछ औरतें पढ़ी-लिखी थीं जिसे एक अपवाद ही कहा जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन

अठारहवीं सदी में सामाजिक जीवन और संस्कृति की खास बातें जड़ता और भूतकाल पर निर्भर थीं। शताब्दियों के दौरान विकसित थोड़ी बहुत सांस्कृतिक एकता के अलावा सारे देश में सांस्कृतिक और सामाजिक ढांचे समरूप नहीं थे। न ही सभी हिंदू और सभी मुसलमान

दो भिन्न समाजों में बंटे हुए थे। लोग धर्म, क्षेत्र, कबीले, भाषा और जाति के आधार पर विभाजित थे। इतना ही नहीं, उच्च वर्गों (जो कुल जनसंख्या के अनुपात में बहुत ही कम संख्या में थे) की सामाजिक जिंदगी और संस्कृति अनेक दृष्टियों से भिन्न जातियों की जिंदगी और संस्कृति से भिन्न थी।

जाति हिंदुओं के सामाजिक जीवन की मुख्य विशेषता थी। हिंदू चार वर्णों के अतिरिक्त अनगिनत जातियों में बंटे हुए थे। जातियों का स्वरूप अलग-अलग जगहों में अलग-अलग था। जातिप्रथा ने लोगों का कठोर विभाजन कर रखा था और सामाजिक क्रम में उनके स्थान स्थायी रूप से निश्चित कर दिए थे। ब्राह्मणों के नेतृत्व में उच्च जातियों ने सब सामाजिक प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार पर अपना एकाधिकार कायम कर रखा था जाति नियम अत्यंत कठोर थे। अंतर्जातीय विवाहों की मनाही थी। विभिन्न जातियों के लोगों के साथ खाना खाने पर प्रतिबंध थे। कतिपय स्थितियों में उच्च जाति के लोग छोटी जातियों के लोगों का छुआ खाना नहीं खाते थे। बहुधा जातियां ही पेशे को निर्धारित करती थीं, यद्यपि काफी बड़े पैमाने पर अपवाद भी घटित होते थे। मसलन, ब्राह्मण व्यापार में भी संलग्न थे तथा सरकारी सेवाओं में भी थे, कुछ के पास जमींदारी भी थी। इस तरह बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग काफी सफल और आर्थिक रूप से संपन्न थे तथा धन का उपयोग वे उच्च जातियों के लिए निर्धारित कर्मकांड में तथा सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए किया करते थे। इसी तरह देश के कई हिस्सों में जातिगत हैसियत काफी अस्थिर बन गई थी। जाति परिषदें, पंचायतें और जाति के प्रधान जुर्मानों, प्रायश्चित और जाति-निष्कासन के द्वारा जाति के नियमों को सख्ती से लागू करते थे। अठारहवीं सदी के भारत में जाति एक बड़ी विभाजक शक्ति और विघटन का एक बड़ा तत्व थी। उसने बहुधा एक ही गांव या इलाके में रहने वाले हिंदुओं को अनेक अत्यंत छोटे समूहों में बांट रखा था। बेशक उच्च ओहदे या सत्ता प्राप्त कर किसी भी व्यक्ति के लिए ऊंचा सामाजिक दर्जा हासिल करना संभव था। उदाहरण के लिए, अठारहवीं सदी में होल्कर परिवार ने ऐसा ही किया। ऐसा बहुत अधिक तो नहीं होता था लेकिन कभी-कभी कोई पूरी की पूरी जाति अपने को जाति-क्रम में ऊंचा उठाने में सफल हो जाती थी।

मुसलमान भी जाति, नस्ल कबीले और दर्जे की दृष्टि से कम विभाजित नहीं थे हालांकि उनके धर्म ने सामाजिक समानता का निर्देश दिया था। धार्मिक मतभेदों के कारण शिया और सुन्नी सामंत यदा-कदा झगड़ते थे। ईरानी, अफगानी, तुरानी और हिंदुस्तानी मुसलमान सामंत और अधिकारी बहुधा एक दूसरे से अलग रहते थे। इस्लाम स्वीकार करने वाले अनेक हिंदु अपनी जाति को नए धर्म में भी ले आए। वे उसकी विशिष्टताओं को व्यवहार में रखते थे यद्यपि वे ऐसा पहले की अपेक्षा कम सख्ती से करते थे। इसके अलावा, शरीफ मुसलमान जिनमें सामंत, विद्वान, मुल्ले और फौजी अफसर शामिल थे, अज्लाफ मुसलमानों या निम्न वर्ग के मुसलमानों को उसी तरह से नीची निगाह से देखते थे जैसे उच्च जाति के हिंदू नीची जाति के हिंदुओं को देखते थे।

अठारहवीं सदी के भारत में परिवार की व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी यानी परिवार में वरिष्ठ पुरुष सदस्य का बोलबाला होता था और संपत्ति में दाय भाग सिर्फ पुरुषों को ही मिलता था। परन्तु केरल के नायर समुदाय में परिवार मातृ प्रधान था। केरल के बाहर औरतों पर पुरुषों का लगभग पूरा नियंत्रण होता था। उनसे आशा की जाती थी कि वे माताओं और पत्नियों की ही भूमिका निभाएं। इन रूपों में उनको काफी आदर-सम्मान दिया जाता था। यहां तक कि युद्ध और अराजकता के समय भी औरतों को विरले तंग किया जाता था। उनके साथ आदरपूर्वक व्यवहार किया जाता था। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में एक यूरोपीय पर्यटक

ऐब्ब जे.ए. दुबाचे ने टिप्पणी की, "एक हिंदू औरत कहीं भी, यहां तक कि अत्यंत भीड़-भाड़ वाली जगहों में भी, अकेले जा सकती है, और उसे अकर्मण्य आवारा लोगों की ढीठ निगाहों और दिल्लगियों का डर नहीं होता ... ऐसा मकान जिसमें केवल औरतें रहती हैं एक ऐसा पवित्र स्थान है जिसकी मर्यादा भंग करने का ख्याल कोई अत्यंत निर्लज्ज लंपट स्वप्न में भी नहीं ला सकता।" मगर तत्कालीन औरतों का अपना कोई अलग व्यक्तित्व नहीं था। इसका यह मतलब नहीं है कि इसके अपवाद नहीं हुए। अहिल्या बाई ने इंदौर पर 1766 से 1796 तक बड़ी सफलता के साथ शासन किया। अठारहवीं सदी की राजनीति में कई अन्य हिंदू और मुसलमान महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं अदा कीं। उच्च वर्गों की महिलाओं को घर से बाहर काम नहीं करना होता था मगर कृषक औरतें आम तौर से खेतों में काम करती थीं और गरीब वर्गों की औरतें परिवार की आमदनी को पूरा करने के लिए बहुधा अपने घरों से बाहर जाकर काम करती थीं। पर्दा अधितर उत्तर भारत के उच्च वर्गों में ही प्रचलित था। दक्षिण भारत में उसका प्रचलन नहीं था।

लड़के लड़कियों को एक दूसरे के साथ मिलने-जुलने नहीं दिया जाता था। सभी शादियां परिवार के प्रधान तय करते थे। पुरुषों को एक से अधिक पत्नियां रखने की इजाजत थी, मगर समृद्ध लोगों को छोड़कर पुरुष सामान्यतया एक पत्नी ही रखते थे। दूसरी ओर, एक औरत से आशा रखी जाती थी कि वह अपनी जिंदगी में सिर्फ एक बार ही शादी करेगी। बाल-विवाह प्रथा सारे देश में प्रचलित थी। कभी-कभी बच्चों की शादी केवल तीन या चार वर्षों की उम्र में कर दी जाती थी।

उच्च वर्गों में शदियों पर भारी रकम ख़र्च करने और दुलहन को दहेज देने की कुप्रथा प्रचलित थी। दहेज की कुप्रथा खासकर बंगाल और राजपुताना में व्यापक रूप से प्रचलित थी। महाराष्ट्र में उसे कुछ हद तक पेशवा ने प्रभावशाली ढंग से दबा दिया था।

जाति प्रथा के अतिरिक्त अठारहवीं सदी के भारत
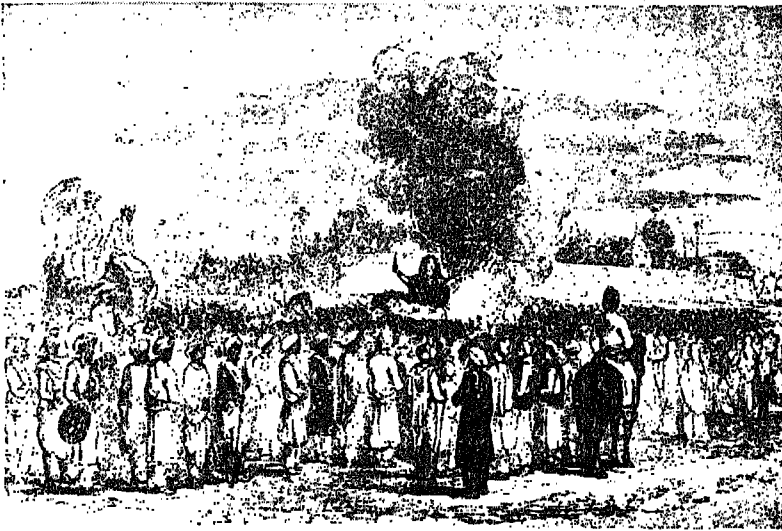
सती : अपने पति की चिता पर जलाई जा रही एक स्त्री

की दो बड़ी सामाजिक कुरीतियां थीं—सती प्रथा और विधवाओं की खराब अवस्था। सती प्रथा के अंतर्गत एक विधवा अपने मृत पति के शव के साथ जल मरती थी। यह अधिकतर राजपुताना, बंगाल और उत्तरी भारत के अन्य हिस्सों में प्रचलित थी। सती प्रथा दक्षिण भारत में प्रचलित नहीं थी। मराठों ने उसे बढ़ावा नहीं दिया। राजपुताना और बंगाल में भी सती प्रथा का प्रचलन केवल राजाओं, सरदारों, बड़े जमींदारों और उच्च जातियों की विधवाएं फिर से शादी नहीं कर सकती थीं। यद्यपि कुछ क्षेत्रों और कुछ जातियों, उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के गैर-ब्राह्मणों, जाट और उत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों में विधवा पुनर्विवाह काफी प्रचलित था। हिंदु विधवा की अवस्था आमतौर से दयनीय होती थी। उसके कपड़े, भोजन, आने-जाने आदि पर सब प्रकार के प्रतिबंध होते थे। आमतौर से आशा की जाती थी कि वह सांसारिक सुखों को त्याग देगी और अपने पति या भाई के परिवार के सदस्यों की निःस्वार्थ सेवा करेगी। वह अपने ससुराल या मैके में ही रह सकती थी। भारतीय विधवाओं के कठिन और कठोर जीवन को देखकर संवेदनशील बहुधा द्रवित हो जाते थे। आमेर के राजा सवाई जयसिंह और मराठा सेनापति परशुराम भाऊ ने विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देने की कोशिश की मगर वे असफल रहे।

अठारहवीं सदी के दौरान सांस्कृतिक दृष्टि से भारत में दुर्बलता के लक्षण दिखाई पड़े। बेशक, पिछली सदियों से सांस्कृतिक निरंतरता कायम रखी गई मगर साथ ही भारतीय संस्कृति पूरी तरह परंपरावादी बनी रही। तत्कालीन सांस्कृतिक क्रियाकलापों का खर्च अधिकतर शाही दरबार, शासक और सामंत तथा सरदार वहन करते थे मगर उनकी आर्थिक हालत खराब होने के साथ सांस्कृतिक कार्यों की धीरे-धीरे अवहेलना होने लगी। उन सांस्कृतिक शाखाओं में तेज़ी से गिरावट आई जो राजाओं, राजकुमारों और सामंतों के संरक्षण पर निर्भर थी। यह बात सबसे अधिक मुगल वास्तुकला और चित्रकारी के लिए सही थी। मुगल शैली के अनेक चित्रकार प्रांतीय दरबारों में चले गए और हैदराबाद, लखनऊ, कश्मीर और पटना में चमके। साथ ही चित्रकारी की नई शैलियों का जन्म हुआ और उन्होंने उपलब्धियां प्राप्त कीं। कांगड़ा और राजपूत शैलियों के चित्रों ने नई तेजस्विता और रुचि प्रदर्शित की। वास्तुकला के क्षेत्र में लखनऊ का इमामबाड़ा तकनीक की निपुणता, नगर वास्तुकलात्मक रुचि में अपकर्ष, को प्रदर्शित करता है। दूसरी ओर जयपुर शहर और उसकी इमारतें ओजस्विता की निरंतरता के उदाहरण हैं। अठारहवीं सदी में संगीत विकसित होता और फलता-फूलता रहा। इस क्षेत्र में मुहम्मद शाह के शासन काल में महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

लगभग सभी भाषाओं में कविता का जीवन से संबंध टूट गया और वह आलंकारिक, कृत्रिम, यंत्रवत और परंपरागत हो गई। उसकी निराशावादिता ने हताशा और दोषान्वेषण की व्याप्त भावना को प्रदर्शित किया जबकि उसकी विषय वस्तु ने उसके संरक्षकों, सामंती अमीरों और राजाओं के आध्यात्मिक जीवन में गिरावट को व्यक्त किया।

अठारहवीं सदी के साहित्यिक जीवन का एक उल्लेखनीय पहलू था उर्दू भाषा का प्रसार और उर्दू कविता का जोरदार विकास। उर्दू धीरे-धीरे उत्तर भारत के उच्च वर्गों के परस्पर सामाजिक संपर्क का माध्यम बन गई। यद्यपि उर्दू कविता की भी वे ही कमजोरियां थीं जो अन्य भारतीय भाषाओं के समसामयिक साहित्य की थीं, उसने मीर, सौदा, नजीर और उन्नीसवीं सदी की महान प्रतिभा मिर्जा ग़ालिब जैसे प्रखर कवियों को पैदा किया।

इसी प्रकार मलयालम साहित्य में भी पुनर्जीवन देखा गया। यह विशेषकर त्रावणकोर शासकों मार्तंड वर्मा और राम वर्मा के संरक्षण में हुआ। केरल का एक महान कवि, कुंचन नंबियार इसी समय हुआ। जिसने आम बोलचाल की भाषा में जनप्रिय कविता लिखी।

उठारहवीं सदी के केरल में कथाकली साहित्य, नाटक और नृत्य का भी पूर्ण विकास हुआ। अनोखी वास्तुकला और भित्ति चित्रों वाला पद्मनाभना राज-प्रासाद भी अठारहवीं शताब्दी में बनाया गया।

तायुमानवर (1706-44) तमिल में सित्तर काव्य का एक उत्कृष्ट प्रवर्तक था। अन्य सित्तर कवियों की तरह उसने मंदिर शासन तथा जाति-प्रथा की कुरीतियों का विरोध किया। असम में साहित्य अहम राजाओं के संरक्षण में विकसित हुआ। गुजरात के एक महान गीतकार दयाराम ने अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान अपनी रचनाएं लिखीं। पंजाबी के मशहूर प्रेम महाकाव्य, हीर रांझा की रचना वारिस शाह ने इसी काल में की। सिंधी साहित्य के लिए अठारहवीं शताब्दी विशाल उपलब्धियों की अवधि थी। इसी दौरान शाह अब्दुल लतीफ ने अपना प्रसिद्ध कविता संग्रह 'रिसालो' रचा। सचल और सामी इस शताब्दी के अन्य महान सिंधी कवि थे।

भारतीय संस्कृति की मुख्य कमजोरी विज्ञान के क्षेत्र में थी। सारी अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारत पश्चिम देशों से विज्ञान और प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) के मामले में काफी पिछड़ा रहा। पिछले दो सौ वर्षों से पश्चिमी यूरोप में एक वैज्ञानिक और आर्थिक क्रांति चल रही थी जिससे आविष्कारों और अनुसंधानों की बाढ़-सी आ गई थी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण धीरे-धीरे पाश्चात्य मस्तिष्क पर हावी होता जा रहा था और यूरोपीय दार्शनिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण तथा यूरोपीय संस्थानों में क्रांति लाता जा रहा था। दूसरी तरफ भारतीय, जिन्होंने पुराने जमाने में गणित और प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिए थे, कई शताब्दियों से विज्ञान की उपेक्षा करते आ रहे थे। भारतीय मस्तिष्क अब भी परंपरा से बंधा था; सामंत और आम जनता, दोनों काफी अंधविश्वासी थे। भारतीय करीब-करीब पूरी तरह पश्चिम में प्राप्त वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक उपलब्धियों से अनभिज्ञ थे। यूरोप में चुनौती का जवाब देने में वे असफल रहे।

अठारहवीं शताब्दी के भारतीय शासकों ने लड़ाई के हथियारों और सैनिक प्रशिक्षण की तकनीकों को छोड़कर किसी भी पश्चिमी चीज में बहुत कम दिलचस्पी दिखाई। टीपू सुल्तान को छोड़कर, वे सभी मुगलों और सोलहवीं तथा सत्रहवीं सदी के दूसरे शासकों से विरासत में प्राप्त विचारधारात्मक उपकरणों से संतुष्ट थे। इसमें कोई शक नहीं कि थोड़ी बहुत बौद्धिक हलचल भी थी क्योंकि किसी भी जमाने में सारी जनता और उसकी संस्कृति पूरी तरह स्थिर और जड़ नहीं रहते। प्रौद्योगिकी में थोड़ा बहुत परिवर्तन और विकास तो हो रहा था लेकिन इसकी गति बहुत मंद और क्षेत्र काफी सीमित थे, इसलिए पश्चिमी यूरोप में होने वाले विकास की तुलना में कुल मिलाकर ये नगण्य थे। विज्ञान के क्षेत्र में यह कमजोरी उस समय के अत्यंत विकसित देश द्वारा भारत को पूरी तरह गुलाम बनाए जाने के लिए बहुत दूर तक जिम्मेदार थी।

सत्ता और संपदा के लिए संघर्ष, आर्थिक पतन, सामाजिक पिछड़ापन और सांस्कृतिक जड़ता ने भारतीय जनता के एक बड़े भाग के चरित्र बल पर गहरा और नुकसानदेह असर डाला। खासकर सामंत अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में बहुत पतित हो गए। निष्ठा, कृतज्ञता और वचनबद्धता के सद्गुण स्वार्थता की प्रमुखता होने के कारण खत्म हो गए। अनेक सामंत अमानवोचित दुर्गुणों और अत्यधिक विलास के शिकार हो गए। उनमें से अनेक ने अपने ओहदों का फायदा उठाकर घूस लिया। आश्चर्य की बात है कि आम जनता बहुत हद तक भ्रष्ट नहीं हुई थी जनता में ऊंचे दर्जे की व्यक्तिगत ईमानदारी और नैतिकता थी। उदाहरण के लिए, विख्यात ब्रिटिश अधिकारी जान मैल्काम ने 1821 में टिप्पणी की थी :

> मैं किसी अन्य महान जनसंख्या का उदाहरण नहीं जानता, जिसने समान परिस्थितियों में, उथल-पुथल

और निरंकुश शासन के इस तरह के काल में इतने सद्‌गुणों और खूबियों को संजोए रखा हो, जो यहां के अधिकांश देशवासियों में पाई जाती है।

खासकार उसने "चोरी, मदासक्ति और हिंसा जैसे आम दुर्गुणों के अभाव" की प्रशंसा की। इसी प्रकार क्रानफर्ड नामक एक अन्य यूरोपीय ने लिखा :

नैतिकता के उनके नियम उदार हैं : सत्कार और परोपकार उनमें न केवल जोरदार रूप से भरा पड़ा है बल्कि, मेरा विश्वास है कि उन्हें कहीं भी उतने व्यापक रूप से व्यवहार में नहीं देखा जाता, जितना हिंदुओं में।

हिंदुओं और मुसलमानों में मित्रतापूर्ण संबंध अठारहवीं सदी के जीवन की एक बड़ी विशेषता थी। यद्यपि तत्कालीन सामंत और सरदार आपस में अनवरत लड़ते रहे, उनकी लड़ाइयां और उनके गठजोड़ विरले ही धर्म के भेदभाव पर आधारित थे। दूसरे शब्दों में उनकी राजनीति मूलतः धर्म-निरपेक्ष थी। असल में देश के अंदर शायद ही सांप्रदायिक कटुता या धार्मिक असहिष्णुता थी। छोटे सभी लोग एक-दूसरे के धर्म की इज्जत करते थे और देश में सहिष्णुता, यहां तक कि मेलजोल की भावना, व्याप्त थी। 'हिंदुओं और मुसलमानों के पारस्परिक संबंध भाईचारे के थे।' यह कथन विशेषकर गांवों और शहरों की आम जनता के लिए सही था, जो धर्म के भेदभाव का ख्याल किए बिना एक दूसरे के सुख-दुख में पूरी तरह हिस्सा लेती थी।

हिंदु और मुसलमान गैर-धार्मिक क्षेत्रों जैसे सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक कार्यों में परस्पर सहयोग करते थे। एक मिश्रित हिंदु-मुस्लिम संस्कृति या समान तौर-तरीकों तथा दृष्टिकोणों का विकास बेरोकटोक जारी रहा। हिंदु लेखकों ने बहुधा फारसी में लिखा और मुसलमान लेखकों ने हिंदी, बंगला और अन्य देशी भाषाओं में लिखा। मुसलमान लेखकों की विषय वस्तु बहुधा हिंदु सामाजिक जीवन और धर्म, जैसे राधा-कृष्ण, सीता-राम और नल-दमयंती होती थी। उर्दू भाषा और साहित्य के विकास ने हिंदुओं और मुसलमानों के संपर्क का नया क्षेत्र प्रस्तुत किया।

धार्मिक क्षेत्र में भी, हिंदुओं के बीच भक्ति आंदोलन तथा मुसलमानों में सूफी मत के प्रसार के फलस्वरूप पिछली कुछ शताब्दियों से जो पारस्परिक प्रभाव और सम्मान की भावना विकसित हो रही थी, वह बढ़ती रही। बड़ी संख्या में हिंदू मुसलमान सिद्धों की पूजा करते थे और अनेक मुसलमान भी हिंदू देवताओं और संतों के प्रति समान श्रद्धा रखते थे। मुसलमान शासक, सामंत और जनसाधारण ने खुशी से हिंदू त्योहारों जैसे होली, दिवाली और दुर्गा पूजा में भाग लिया। इसी तरह हिंदुओं ने मुहर्रम के जुलूसों में हिस्सा लिया। हिंदू अधिकारी तथा जमींदार दूसरे मुस्लिम त्योहारों में आगे रहते थे। अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के पवित्र स्थान की वित्तीय मदद मराठा लोग भी किया करते थे। नागौर के शेख शाहुल हामिद के पवित्र स्थान की मदद तंजौरा के राजा किया करते थे। हम पहले देख चुके हैं कि टीपू, शृंगेरी के मंदिर तथा अन्य मंदिरों को भी आर्थिक मदद दिया करता था। यह उल्लेखनीय बात है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के सबसे महान भारतीय राजा राममोहन राय हिंदू और इस्लामी दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धांतों से समान रूप में प्रभावित थे।

इस बात पर भी गौर किया जाना चाहिए कि धार्मिक संबद्धता ही सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में अलगाव का मुख्य मुद्दा नहीं थी। हिंदू और मुस्लिम उच्च वर्गों के जीवन के तौर-तरीके जितने समान थे उतने हिंदू उच्च वर्ग और निम्न तथा मुस्लिम उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के नहीं थे। इसी तरह, क्षेत्र या इलाके अलगाव के मुद्दे बनते थे। एक क्षेत्र के लोगों के बीच धर्म भिन्न होने पर भी जितनी सांस्कृतिक एकता थी उतनी अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले एक धर्म के लोगों के बीच नहीं थी। गांवों में रहने वाले लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का ढर्रा शहर के लोगों से अलग था।

अभ्यास

1. निम्नांकित शब्दों की व्याख्या कीजिए :
   मनसब, खालिस भूमि, मिसल, चौथ, सरंजामी व्यवस्था, जमींदार, सरदेशमुखी, जागीरदार।
2. उन प्रमुख घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनके कारण मुगल साम्राज्य दिल्ली के आसपास के इलाकों तक सिमटकर रह गया।
3. अठारहवीं शताब्दी के दौरान भारत की राजनीति परिस्थिति की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए। देश की अर्थव्यवस्था पर राजनीतिक परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ा?
4. बंगाल के नवाबों की आर्थिक और राजनीतिक नीतियों का वर्णन कीजिए।
5. टीपू सुल्तान की चारित्रिक विशेषताओं और उपलब्धियों का आंकलन कीजिए।
6. अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में पंजाब में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना हुई। जिन परिस्थितियों के कारण यह साम्राज्य अस्तित्व में आया, उनका विवेचन कीजिए।
7. प्रथम तीन पेशवाओं के अंतर्गत मराठा शक्ति के विस्तार का वर्णन कीजिए। एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना में मराठा लोगों की असफलता के कारणों का विवेचन कीजिए।
8. अठारहवीं शताब्दी में प्रचलित देशी शिक्षा व्यवस्था का विश्लेषण कीजिए।
9. अठारहवीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति का वर्णन कीजिए।
10. अठारहवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए। इस दृष्टिकोण का विवेचन कीजिए जिसके अनुसार इस काल में भारतीय समाज जड़ हो गया था।
11. अठारहवीं शताब्दी में भारत में मुख्य रूप से किन क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास हुए। उनकी मुख्य कमजोरियों का विवेचन कीजिए।
12. अठारहवीं सदी में भारत के विभिन्न समुदायों के आपसी संबंधों का विवेचन कीजिए। किस हद तक धार्मिक विचारों ने राजनीतिक घटनाओं को प्रभावित किया।
13. भारत के मानचित्र में अठारहवीं सदी के मध्य के प्रमुख राज्यों को दर्शाएं। मानचित्र में उद्योग के केंद्रों को भी अंकित करें।

अध्याय : 2

भारत में यूरोपीयों का प्रवेश और अंग्रेजों की विजय

यूरोप के पूर्वीय व्यापार में एक नया अध्याय

यूरोप के साथ भारत के व्यापारिक संबंध बहुत पुराने, यूनानियों के जमाने के हैं। मध्यकाल में यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत का व्यापार अनेक मार्गों से चलता था। एशिया में इस व्यापार का अधिकांश भाग अरब व्यापारियों और जहाजियों द्वारा चलाया जाता था, और इसके भूमध्यसागरीय और यूरोपीय भाग पर इटली वालों का लगभग एकाधिकार था। एशिया का माल यूरोप तक पहुंचने से पहले अनेक राज्यों से और हाथों से गुजरता था। फिर भी यह व्यापार बहुत लाभदायक होता था।

वर्ष 1453 में उस्मानिया सल्तनत ने जब एशिया माइनर को जीत लिया और कुस्तुंतुनिया पर अधिकार कर लिया तो पूर्व और पश्चिम के बीच के पुराने व्यापारिक मार्ग तुर्कों के नियंत्रण में आ गए। इसके अलावा यूरोप और एशिया के व्यापार पर वेनिस और जेनेवा के व्यापारियों का अधिकार था और वे पश्चिमी यूरोप के नए राष्ट्रों, खासकर स्पेन और पुर्तगाल, को इन पुराने व्यापारिक मार्गों से होने वाले व्यापार में भागीदार नहीं बनाना चाहते थे। इसलिए पश्चिमी यूरोप के देश और व्यापारी भारत और इंडोनेशिया के स्पाइस आइलैंड (मसाले के द्वीप) के लिए नए और अधिक सुरक्षित समुद्री मार्गों की तलाश करने लगे; स्पाइस आइलैंड (मसाले के द्वीप) को तब ईस्ट इंडीज के नाम से जाना जाता था। उनकी मंशा व्यापार पर अरबों और वेनिस वासियों के एकाधिकार को तोड़ना, तुर्कों की शत्रुता मोल लेने से बचना और पूर्व के साथ सीधे व्यापार-संबंध स्थापित करना था। चूंकि 15वीं सदी में जहाज-निर्माण और समुद्री यातायात में बहुत प्रगति हुई थी, इसलिए वे यह काम करने में अच्छी तरह समर्थ थे। इसके अलावा पुनर्जागरण ने पश्चिमी यूरोप के लोगों में दुस्साहसी कार्य करने की भावना खूब भर दी थी।

इस दिशा में पहला कदम पुर्तगाल और स्पेन ने उठाया। इन देशों के नाविकों ने अपनी-अपनी सरकारों की सहायता से और उनकी आज्ञा पर भौगोलिक खोजों का एक महान युग आरंभ किया। वर्ष 1492 में स्पेन का कोलंबस भारत को खोजने निकला था लेकिन वह अमरीका की खोज कर बैठा। वर्ष 1498 में पुर्तगाल के वास्को डि गामा ने यूरोप से भारत तक का एक नया और पूरी तरह से समुद्री मार्ग ढूंढ निकाला। वह आशा अंतरीय होते हुए अफ्रीका का चक्कर लगाकर कालीकट पहुंचा। वह जिस माल को लेकर वापस लौटा वह पूरी यात्रा की कीमत के 60 गुना दामों पर बिका। इन और ऐसे ही दूसरे समुद्री मार्गों की खोजों ने विश्व के इतिहास में एक नए अध्याय का सूत्रपात किया। 17वीं और 18वीं सदियों में विश्व व्यापार में

बेहद बढ़ोत्तरी हुई। यूरोप को अब एक खूब लंबा-चौड़ा अमरीकी महाद्वीप उपलब्ध हो गया और यूरोप और एशिया के संबंध पूरी तरह बदल गए।

15वीं सदी के मध्य में अफ्रीका में यूरोपीय देशों ने प्रवेश किया तो उससे भी उनको आरंभिक पूंजी निर्माण का एक प्रमुख स्रोत प्राप्त हुआ। आरंभ में विदेशियों को अफ्रीकी सोने और हाथी दांत ने आकर्षित किया। परंतु बहुत जल्द ही गुलामों का व्यापार अफ्रीका के साथ व्यापार का प्रमुख भाग बन गया। 16वीं सदी में इस व्यापार पर स्पेन और पुर्तगाल का एकाधिकार रहा। बाद में इस व्यापार में डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ व्यापारी छा गए। खासकर 1650 के बाद अनेक वर्षों तक हज़ारों अफ्रीकियों को गुलाम बनाकर वेस्ट इंडीज और उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका में बेचा जाता रहा। कारखानों का माल लेकर गुलामों का व्यापार करने वाले जहाज यूरोप से अफ्रीका पहुंचते, अफ्रीका के तटों पर नीग्रो लोगों से माल की अदला-बदली करते, फिर इन दासों को लेकर अटलांटिक पार करते, वहां बागानों और खदानों की औपनिवेशिक पैदावार से उनकी अदला-बदली करते, और फिर इस माल को यूरोप में बेच देते। तिकोने व्यापार से होने वाला यही बेपनाह मुनाफा था जिस पर इंग्लैंड और फ्रांस की व्यापारिक श्रेष्ठता स्थापित हुई। पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका की समृद्धि अधिकांशतः गुलामों के इसी व्यापार पर और गुलामों के मेहनत से चलने वाले बागानों पर निर्भर थी। इसके अलावा दास-व्यापार और दासों की मेहनत से चल रहे बागानों के मुनाफे से ही वह पूंजी बनी जो 18वीं और 19वीं सदी की औद्योगिक क्रांति में काम आई। बाद में भारत से ले जाई गई दौलत ने भी ऐसी ही भूमिका निभाई।

16वीं सदी में ही यूरोप के व्यापारियों और सैनिकों ने एशियाई देशों में घुसने और फिर उनको अधीन बनाने का लंबा सिलसिला शुरू किया। बेहद मुनाफा देने वाले पूर्वी व्यापार पर लगभग एक सदी तक पुर्तगाल का एकाधिकार रहा। भारत में भी पुर्तगाल ने कोचीन, गोवा, दूयु और दमण में अपने व्यापारिक केंद्र खोले। पुर्तगालियों ने आरंभ से ही व्यापार के साथ शक्ति का भी प्रयोग किया। इस काम में उन्हें समुद्र पर राज करने वाले अपने हथियारबंद जहाजों की श्रेष्ठता से मदद मिली। जमीन पर भारत और एशिया की सैनिक शक्ति बहुत अधिक थी, मगर उनके मुकाबले मुट्ठी भर पुर्तगाली सैनिक और जहाजी समुद्र में अपनी स्थिति बनाए रखने में सफल रहे। मुगलों की जहाजरानी के लिए खतरे पैदा करके वे मुगल सम्राटों से भी अनेक व्यापार संबंधी छूटें लेने में सफल रहे।

गोवा पर 1510 में अधिकार करने वाला अलफांसो डि अलबुकर्क जब वायसराय था तब फारस की खाड़ी में स्थिति हरमुज से लेकर मलाया में स्थित मलक्का तक और इंडोनेशिया के स्पाइस आइलैंड तक एशिया के पूरे समुद्र तट पर पुर्तगालियों ने अधिकार जमा लिया। उन्होंने भारत के तटीय क्षेत्र पर भी कब्जा कर लिया, और अपना व्यापार तथा अपना अधिकार क्षेत्र बढ़ाने और यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों से अपने व्यापारिक एकाधिकार को सुरक्षित रखने के लिए लगातार लड़ाइयां लड़ते रहे। समुद्री डकैती और लूटपाट में भी वे पीछे न रहे। अमानवीय अत्याचार करने और अव्यवस्था फैलाने में भी उनका हाथ रहा। उनके बर्बर व्यवहार के बावजूद भारत में कुछ इलाकों पर उनका कब्जा लगभग एक सदी तक बना रहा। इसका कारण यह था कि खुले समुद्र पर उनका राज चलता था, उनके सैनिक और प्रशासक कड़े अनुशासन के पाबंद थे, और चूंकि दक्षिणी भारत साम्राज्य से बाहर था, इसलिए मुगलों की ताकत का सामना उनको नहीं करना पड़ा था।

16वीं सदी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड और हालैंड, और बाद में फ्रांस उभरती हुई व्यापारिक और प्रतिद्वंद्वी शक्तियां थीं, इन लोगों ने विश्व-व्यापार पर स्पेनी और पुर्तगाली एकाधिकार के खिलाफ एक कड़ा संघर्ष छेड़ दिया। इस संघर्ष में स्पेन और पुर्तगाल की हार हुई। अब अंग्रेज़ और डच व्यापारी केप ऑफ गुड होप

1705 ई० में भारत में यूरोपीय
कंपनियों के व्यापारिक केंद्र
भारत की वर्तमान बाह्य सीमा
दिल्ली
अजमेर
पटना
भा
र
त
कासिम बाजार
हुगली
चिनसुरा
चंदरनगर
सेरमपुर
फोर्ट विलियम
खंभात
बड़ौदा
सूरत
दीव
दमन
बम्बई
विशाखापट्टनम
गोलकुंडा
मछलीपट्टनम
गोआ
नेलूर
फोर्ट सेंट जार्ज
सेनथोम
पांडिचेरी
फोर्ट सेंट डेविड
ट्रंकेबार
कराईकल
कनानूर
कालीकट
कोचीन
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
लक्षद्वीप (भारत)
निर्देश
अंग्रेजी
फ्रांसीसी
पुर्तगाली
डच
डेनमार्की
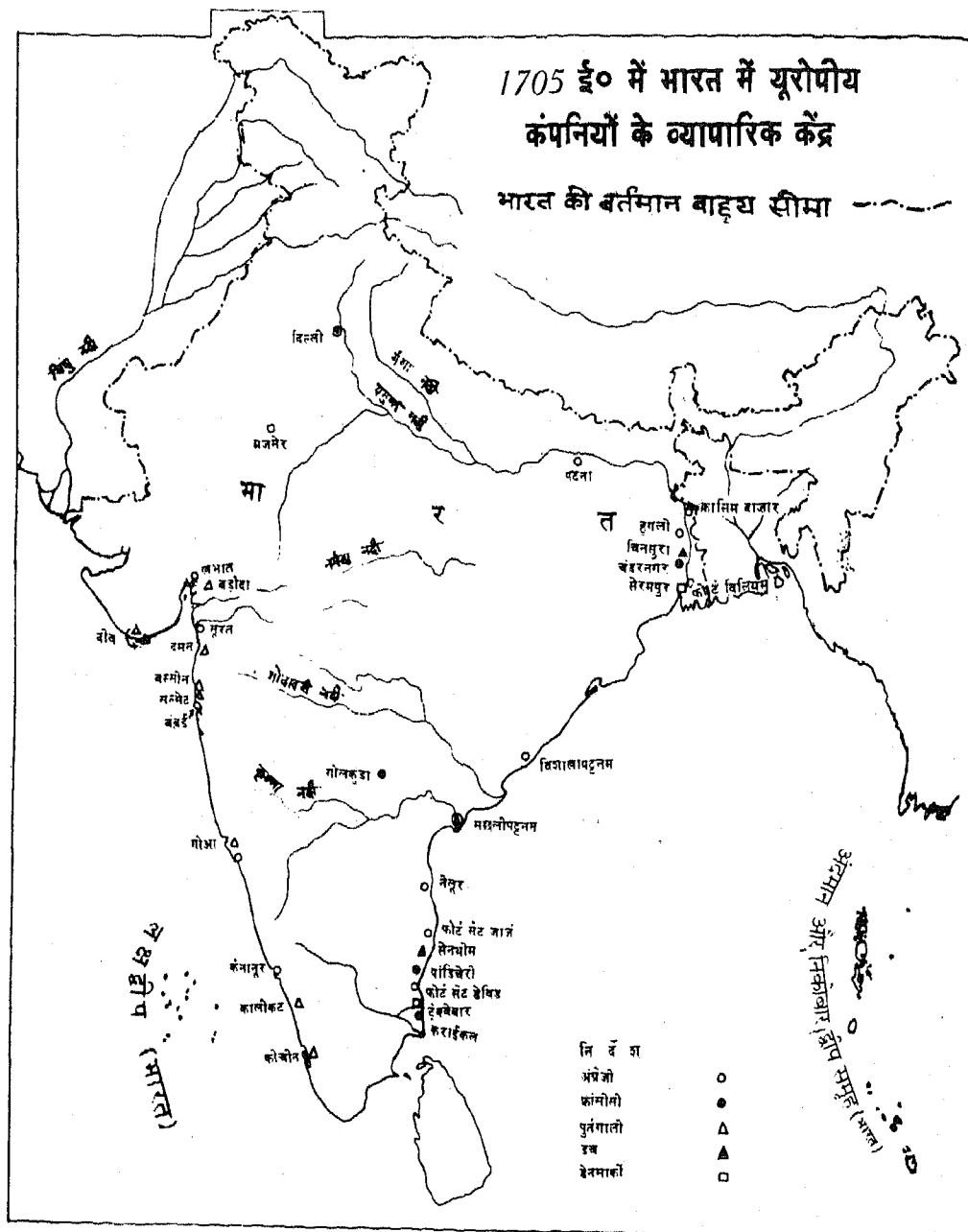
होकर भारत जाने वाले रास्ते का प्रयोग करने लगे, और पूर्व में अपना साम्राज्य बनाने की दौड़ में शामिल हो गए। अंत में इंडोनेशिया पर डचों का और भारत, श्रीलंका और मलाया पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

वर्ष 1602 में डच ईस्ट कंपनी की स्थापना हुई और डच संसद ने एक चार्टर स्वीकार करके कंपनी को युद्ध छेड़ने, संधियां करने, इलाके जीतने और किले बनाने के अधिकार दे दिए। डचों की खास दिलचस्पी भारत में नहीं बल्कि इंडोनेशिया के जावा, सुमात्रा और स्पाइस आईलैंड जैसे द्वीपों में थी जहां मसाले खूब पैदा होते थे। जल्द ही उन्होंने मलय जलडमरूमध्य और इंडोनेशियाई द्वीपों से पुर्तगालियों को खदेड़ दिया, और 1623 में इन क्षेत्रों पर अधिकार करने के प्रयास कर रहे अंग्रेजों को हराया उन्होंने पश्चिमी भारत में गुजरात के सूरत, भड़ौच, कैंबे और अहमदाबाद, केरल के कोचीन, मद्रास के नागपत्तनम, आन्ध्र के मसुलीपट्टम, बंगाल के चिन्सूरा, बिहार के पटना और उत्तर प्रदेश के आगरा नगरों में भी व्यापार-केंद्र खोले। वर्ष 1658 में उन्होंने पुर्तगालियों से श्रीलंका को भी जीत लिया।

एशियाई व्यापार पर भी अंग्रेज़ व्यापारियों की लालच भरी निगाहें जमी थीं। पुर्तगालियों की सफलता, मसालों, मलमल, रेशम, सोने, मोतियों, दवाओं, पोर्सलीन और एबोनी से भरे उनके जहाजों, और इनसे प्राप्त भारी मुनाफों ने अंग्रेज़ व्यापारियों की भी आंखें चकाचौंध कर दीं, और वे भी इस मुनाफा देने वाले व्यापार में शामिल होने के लिए बेचैन हो गए। वर्ष 1599 में मर्चेंट एडवेंचरर्स नाम से जाने जाने वाले कुछ व्यापारियों ने पूर्व से व्यापार करने के लिए एक कंपनी बनाई। इस कंपनी को, जिसे ईस्ट इंडिया कंपनी कहा जाता है, 31 दिसंबर 1600 को महारानी एलिजाबैथ ने एक रायल चार्टर के द्वारा पूर्व से व्यापार करने का एकाधिकार दे दिया। वर्ष 1608 में इस कंपनी ने भारत के पश्चिमी तट पर सूरत में एक फैक्टरी खोलने का निश्चय किया; तब व्यापारिक केंद्रों को फैक्टरी नाम से ही जाना जाता था। कंपनी ने तब कैप्टन हाकिंस को जहांगीर के दरबार में शाही आज्ञा लेने के लिए भेजा। परिणामस्वरूप एक शाही फरमान के द्वारा पश्चिमी तट की अनेक जगहों पर अंग्रेज कंपनी को फैक्टरियां खोलने की आज्ञा मिल गई।

मगर इस छूट से ही अंग्रेज़ संतुष्ट न थे। वर्ष 1615 में उनका दूत, सर टामस रो, मुगल दरबार में पहुंचा। रो मुगल साम्राज्य के सभी भागों में व्यापार करने और फैक्टरियां खोलने का अधिकार देने वाला एक शाही फरमान जारी कराने में सफल रहा। 1622 में जब सम्राट चार्ल्स द्वितीय ने एक पुर्तगाली राजकुमारी से शादी की तो पुर्तगालियों ने उसे बंबई का द्वीप दहेज में दे दिया। अंततः गोवा, द्यू और दमण को छोड़कर पुर्तगालियों के हाथ से भारत में उनके कब्जे वाले सारे इलाके निकल गए। इंडोनेशिया के द्वीपों से हो रहे मसालों के व्यापार में भागीदारी को लेकर अंग्रेज़ कंपनी की डच कंपनी से ठन गई। इन दो शक्तियों के बीच रह-रहकर होने वाली लड़ाई 1654 में आरंभ हुई, और यह 1667 में तब समाप्त हुई जब अंग्रेजों ने इंडोनेशिया पर सारे दावे छोड़ दिए और बदले में डचों ने भारत की अंग्रेज़ बस्तियों को न छूने का वादा किया।

कम्पनी के व्यापारिक प्रभाव का विस्तार (1600-1714)

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की शुरुआत बहुत ही मामूली रही। वर्ष 1623 तक इसने सूरत, भड़ौच, अहमदाबाद, आगरा और मसुलीपट्टम में फैक्टरियां स्थापित कर ली थीं। आरंभ से उसने व्यापार और कूटनीति के साथ-साथ युद्धों का भी सहारा लेने और जिन क्षेत्रों में फैक्टरियां स्थापित की थीं, उन पर कब्जा करने के भी प्रयास किए।

दक्षिण भारत में परिस्थितियां अंग्रेजों के अधिक अनुकूल थीं क्योंकि वहां उन्हें किसी शक्तिशाली भारतीय

सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में सूरत नगर का एक दृश्य

सरकार का सामना नहीं करना पड़ा। विजयनगर का महान साम्राज्य 1565 में ही नष्ट हो चुका था, और उसकी जगह अनेक छोटे और कमजोर राज्य खड़े हो गए थे। उन्हें लालच देकर बहलाना या अपनी सैनिक शक्ति से डराना आसान था। अंग्रेजों ने दक्षिण में अपनी पहली फैक्टरी मसुलीपट्टम में 1611 में स्थापित की। पर जल्द ही उनकी गतिविधियों का केंद्र मद्रास हो गया जिसका पट्टा 1639 में वहां के स्थानीय राजा ने उन्हें दे दिया था। राजा ने उनको उस जगह की किलेबंदी करने, उसका प्रशासन चलाने और सिक्के ढालने की अनुमति इस शर्त पर दी कि बंदरगाह से प्राप्त चुंगी का आधा भाग राजा को दिया जाएगा। यहां अंग्रेजों ने अपनी फैक्टरी के इर्द-गिर्द एक छोटा सा किला बनाया जिसका नाम फोर्ट सेंट जार्ज पड़ा।

दिलचस्प बात यह है कि मुनाफे के लालची व्यापारियों की यह कंपनी शुरू से ही इस नीति पर अड़ी थी कि भारतीय उन्हें इस देश को जीतने का खर्च स्वयं दें। उदाहरण के लिए, कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने 1683 में मद्रास के अधिकारियों को लिखा कि

> हम चाहते हैं कि आप धीरे-धीरे नगर ... (मद्रास) को किलाबंद करें और किले को इतना मजबूत बनाएं कि वह किसी भारतीय राजा या भारत में डच शक्ति के आक्रमण के सामने अडिग रहे ... पर हम आपसे यह भी चाहते हैं कि आप अपना काम इस प्रकार (लेकिन पूरी विनम्रता के साथ) जारी रखें कि नगर निवासी ही सारी मरम्मत और किलाबंदी का पूरा खर्च उठाएं। ...

वर्ष 1668 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने ब्रिटिश सरकार से बंबई का द्वीप प्राप्त किया और उसकी तत्काल किलेबंदी कर दी। बंबई के रूप में अंग्रेजों का एक बड़ा और आसानी से रक्षा कर सकने योग्य बंदरगाह प्राप्त हुआ। इस कारण से और क्योंकि उस वक्त उभरती हुई मराठा शक्ति अंग्रेजों के व्यापार के लिए खतरा पैदा कर रही थी, पश्चिमी तट पर कंपनी

के हेडक्वार्टर के रूप में सूरत का स्थान जल्द ही बंबई ने ले लिया।

पूर्वी भारत में अंग्रेज़ कंपनी ने अपनी आरंभिक फैक्टरियों में एक की स्थापना 1633 में उड़ीसा में की थी। वर्ष 1651 में उसे बंगाल के हुगली नगर में व्यापार की इजाजत मिल गई। तब कंपनी ने जल्द ही पटना, बालासोर, ढाका और बंगाल-बिहार के दूसरे स्थानों पर भी फैक्टरियां खोल लीं। अब उसकी इच्छी थी कि बंगाल में उसकी एक स्वतंत्र बस्ती होनी चाहिए। अब वह भारत में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के सपने देख रही थी ताकि मुगलों को मजबूर करके व्यापार में मनमानी करने की छूट ले ली जाए, भारतीयों को अपना माल सस्ता बेचने और कंपनी का माल महंगा खरीदने के लिए मजबूर किया जा सके, प्रतिद्वंद्वी यूरोपीय व्यापारियों को बाहर रखा जाए, और कंपनी का व्यापार भारतीय राजाओं की नीतियों से स्वतंत्र रहकर जारी रहे। राजनीतिक सत्ता स्थापित करके कंपनी भारतीय राजस्व पाने और इस तरह इस देश को इसी के साधनों से जीतने की आशा कर सकती थी। उस समय ऐसी योजनाएं खुलकर सामने रखी गईं। वर्ष 1687 में कंपनी के डायरेक्टरों ने मद्रास के गवर्नर को सलाह दी कि

> ... वह एक ऐसी नागरिक और सैनिक शक्ति स्थापित करे और राजस्व का सुरक्षित और इतना बड़ा स्रोत बनाए कि भारत में एक बड़े, मजबूत और हमेशा-हमेशा के लिए सुरक्षित ब्रिटिश राज्य की नींव डाली जा सके।

1689 में उन्होंने घोषणा की कि

> हमारे राजस्व में वृद्धि हमारा उतना ही बड़ा उद्देश्य है जितना कि हमारा व्यापार। जिस समय बीसियों दुर्घटनाएं हमारे व्यापार में बाधा डाल रही हों उस समय यही वस्तु है जो हमारी शक्ति को बनाए रख सकेगी। यही वस्तु है जो भारत में हमें एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करेगी ...

1686 में जब अंग्रेजों ने हुगली को तहस-नहस कर दिया और मुगल सम्राट के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी तब दोनों के बीच शत्रुता की शुरुआत हो गई। पर अंग्रेजों ने स्थिति को पूरी तरह गलत समझा था और मुगलों की शक्ति को कम करके आंका था। औरंगजेब के शासन में मुगल साम्राज्य अभी भी ईस्ट इंडिया कंपनी की मामूली ताकत पर बहुत भारी था। युद्ध का अंत अंग्रेजों के लिए घातक रहा। उन्हें बंगाल स्थित उनकी फैक्टरियों से खदेड़ दिया गया और वे गंगा के मुहाने के एक द्वीप में शरण लेने के लिए बाध्य हो गए जो बीमारियों का गढ़ था। उनकी सूरत, मसुलीपट्टम और विशाखापतनम स्थित फैक्टरियों पर भी कब्जा हो गया और बंबई स्थित उनके किले पर घेरा पड़ गया। यह देखकर कि अंग्रेज अभी भी मुगल शक्ति से लड़ने में समर्थ नहीं है, उन्होंने एक बार फिर झुककर दरबार में हाजिरी बजाई और प्रार्थना की कि "उन्होंने जो अपराध किए हैं उन्हें क्षमा किया जाए।" उन्होंने भारतीय शासकों के संरक्षण में व्यापार करने की इच्छा प्रकट की। जाहिर है कि उन्हें सबक मिल चुका था। मुगल सम्राट से व्यापार संबंधी छूटें लेने के लिए एक बार फिर उन्होंने चापलूसी और विनम्रता का सहारा लिया।

मुगल अधिकारियों ने अंग्रेजों की बदमाशी को फौरन माफ कर दिया। वे यह तो जान भी नहीं सकते थे कि अहानिकर दीखने वाले ये विदेशी व्यापारी एक दिन देश के लिए गंभीर खतरा बन जाएंगे। इसके बजाए उन्होंने यह मान लिया कि कंपनी के द्वारा किए जा रहे विदेशी व्यापार से भारतीय दस्तकारों और व्यापारियों को लाभ होता है और इस तरह सरकारी खज़ाने की आमदनी बढ़ती है। इसके अलावा जमीन पर कमजोर होने के बावजूद अंग्रेज़ समुद्रों में काफी मजबूत थे, और इसलिए वे ईरान, पश्चिम एशिया, उत्तरी और पूर्वी अफ्रीका तथा पूर्वी एशिया के साथ होने वाले भारतीय व्यापार और जहाजरानी को पूरी तरह तहस-नहस करने में समर्थ। इसलिए औरंगजेब ने

1,50,000 रुपऐ हर्जाना लेकर उन्हें फिर से व्यापार करने की छूट दे दी। वर्ष 1698 में कंपनी ने सूतानाटी, कलिकाता और गोविंदपुर की जमींदारी प्राप्त कर ली और वहां उन्होंने अपनी फैक्टरी के इर्द-गिर्द फोर्ट विलियम नाम का किला बनाया। यही गांव जल्द ही बढ़कर एक नगर बन गया जिसे अब कलकत्ता कहा जाता है। वर्ष 1717 में कंपनी ने सम्राट फर्रूखसियर से एक फरमान प्राप्त किया जिसमें 1691 में उन्हें प्राप्त विशेषाधिकारों को दोबारा मान्यता दी गई और उन्हें गुजरात और दक्कन तक भी बढ़ा दिया गया था। लेकिन 18वीं सदी पूर्वार्ध में बंगाल पर मुर्शिद कुली खान और अलीवर्दी खान जैसे शक्तिशाली नवाबों का शासन था। वे अंग्रेज़ व्यापारियों पर कड़ा नियंत्रण रखते थे तथा अपने विशेषाधिकारों के दुरूपयोग से उन्हें रोकते थे। उन्होंने अंग्रेजों को कलकत्ता की किलेबंदी को मजबूत बनाने और नगर पर स्वतंत्र रूप से शासन करने की छूट भी नहीं दी। यहां ईस्ट इंडिया कंपनी नवाब का एक जमींदार होकर रह गई।

कंपनी की राजनीतिक महत्त्वकाक्षाएं तो पूरी न हुई; मगर उसका व्यापार पहले से बहुत अधिक फला-फूला। भारत से इंगलैंड में होने वाला प्रतिवर्ष आयात 1708 में 5,00,000 पौंड का था, मगर 1740 तक वह 1,7,95,000 पौंड का हो गया। मद्रास, बंबई और कलकत्ता की अंग्रेज़ बस्तियां विकसित हो रहे नगरों का केंद्र बन गईं। बड़ी संख्या में भारतीय व्यापारी और बैंकर इन नगरों की ओर आकर्षित हुए। ऐसा अंशतः इन नगरों में उपलब्ध नए व्यापारिक अवसरों के कारण था, और अंशतः इस कारण कि मुगल साम्राज्य के बिखरने से इन नगरों के बाहर अनिश्चित और असुरक्षा की परिस्थितियां थीं। 18वीं सदी के मध्य तक मद्रास की जनसंख्या बढ़कर तीन लाख, कलकत्ता की दो लाख और बंबई की सत्तर हजार हो चुकी थी।

1600 के चार्टर में केप ऑफ गुड होप के पूर्व में व्यापार करने का एकाधिकार कंपनी को 15 वर्षों के लिए दिया गया था। इस कंपनी का स्वरूप एक पूरी तरह बंद निगम या इजारदारी जैसी थी। भारत में कंपनी की कोई फैक्टरी एक किलाबंद क्षेत्र जैसी होती थी जिसके अंदर गोदाम, दफ्तर और कंपनी के कर्मचारियों के लिए घर होते थे। ध्यान दें कि इन फैक्टरियों में उत्पादन का कोई काम नहीं होता था।

कंपनी के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था। उनकी वास्तविक आमदनी का स्रोत देश के ही अंदर का वह व्यापार था जिसकी छूट उन्हें कंपनी देती थी, और इसी आमदनी के लिए ये कर्मचारी भारत में नौकरी करने के लिए बेचैन रहते थे। हां, भारत और यूरोप के बीच व्यापार करने का अधिकार केवल कंपनी के लिए सुरक्षित था।

दक्षिण में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच टकराव

नए-नए क्षेत्र और राजनीतिक सत्ता स्थापित करने की अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी की जो महत्त्वकांक्षा 17वीं सदी के अंत में औरंगजेब के हाथों धूल चाटने लगी थी, वह 1740 के दशक में दोबारा उभरी जब मुगल साम्राज्य का पतन कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगा। नादिरशाह के हमले के बाद केंद्रीय सत्ता का पतन खुलकर सामने आ गया था। लेकिन पश्चिमी भारत में विदेशी घुसपैठ की बहुत गुजांइश न थी, क्योंकि वहां शक्तिशाली मराठों का प्रभुत्व था। पूर्वी भारत में अलीवर्दी खान ने कड़ा नियंत्रण कायम कर रखा था। लेकिन दक्षिण भारत में परिस्थितियां विदेशी दुस्साहसकारियों के लिए धीरे-धीरे अनुकूल होती जा रही थीं वहां औरंगजेब की मृत्यु के बाद केंद्रीय सत्ता नहीं रह गई थी, और 1748 में निजाम-उल-मुल्क आसफजाह की मौत के बाद उसका मजबूत शासन भी नहीं रह गया था। इसके अलावा चौथ वसूलने के लिए मराठा सरदार हैदराबाद और दक्षिण के दूसरे भागों पर लगातार हमले करते रहते थे। इन हमलों के कारण राजनीतिक परिस्थितियाँ अनिश्चित हो गई थीं और प्रशासन नष्ट हो गया था। कर्नाटक में गद्दी के लिए भाई-भाई से लड़ रहा था।

इन परिस्थितियों में विदेशियों को अपना राजनीतिक प्रभाव फैलाने और दक्षिण भारतीय राज्यों के मामलों पर नियंत्रण स्थापित करने में सहायता मिली। लेकिन व्यापारिक और राजनीतिक दावे सामने रखने में अंग्रेज़ अकेले न थे। वे 17वीं सदी के अंत तक अपने पुर्तगाली और डच प्रतिद्वंद्वियों को तो नष्ट कर चुके थे, पर फ्रांस एक नया प्रतिद्वंद्वी बनकर खड़ा हो गया था। वर्ष 1744 से 1763, अर्थात् लगभग 20 वर्षों तक भारतीय व्यापार, संपत्ति और क्षेत्र पर अधिकार के लिए फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में भयानक युद्ध होते रहे।

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1664 में हुई थी। पूर्वी तट पर कलकत्ता के पास चंद्रनगर में और पांडिचेरी में उसने एक मजबूत स्थिति बना ली थी। पांडिचेरी को पूरी तरह किलाबंद किया गया था। पूर्वी तथा पश्चिमी तटों के बंदरगाहों में फ्रांसीसी कंपनी की कुछ और फैक्टरियां भी थीं। इसने हिंद महासागर में मारीशस और रियूनियन के द्वीपों पर भी कब्जा कर रखा था।

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी बुरी तरह फ्रांस सरकार पर निर्भर थी जो अनुदान, कर्जे और दूसरी सुविधाएं देकर उसकी सहायता करती रहती थी। फलस्वरूप, उस पर सरकार का बहुत अधिक नियंत्रण था और वही 1723 के बाद डायरेक्टरों की नियुक्ति करती रहती थी। कंपनी पर सरकार का यह नियंत्रण उसके लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ। उस समय फ्रांस में एक निरंकुश, अर्धसामंती और अलोकप्रिय सरकार थी जो भ्रष्टाचार, निकम्मापन और अस्थायित्व की मारी हुई थी। भविष्योन्मुखी न होकर यह सरकार पतित, परंपराओं में जकड़ी हुई और आम तौर पर समय की आवश्यकताओं को समझने से दूर थी। इस तरह की सरकार का नियंत्रण कंपनी के हितों के लिए घातक ही हो सकता था।

1742 में यूरोप में फ्रांस और इंग्लैंड का युद्ध भड़क उठा। यूरोप का यह इंग्लैंड-फ्रांस युद्ध जल्द ही भारत तक पहुंच गया और यहां दोनों ईस्ट इंडिया कंपनियां टकराने लगीं। वर्ष 1748 में फ्रांस और इंग्लैंड का सामान्य युद्ध समाप्त हो गया। फिर भी भारत में व्यापार और क्षेत्रीय अधिकार की प्रतिद्वंद्विताएं बनी रहीं, और इनका फैसला इस पार या उस पार होना ही था।

इस समय पांडिचेरी में फ्रांसीसी गवर्नर-जनरल डुप्ले था जिसने यह नीति निकाली कि भारतीय शासकों के आपसी झगड़ों में अनुशासित और आधुनिक फ्रांसीसी सेना के द्वारा हस्तक्षेप किया जाए, और एक के खिलाफ दूसरे का साथ देकर विजेता से मुद्रा, व्यापार और क्षेत्र संबंधी लाभ लिए जाएं। इस तरह फ्रांसीसी कंपनी के लाभ के लिए और भारत से अंग्रेजों को खदेड़ने के लिए उसने स्थानीय राजाओं, नवाबों और सरदारों के साधनों और सेनाओं का उपयोग करने की योजना बनाई। इस रणनीति की सफलता में केवल एक ही बात बाधक हो सकती थी, अर्थात् भारतीय शासकों द्वारा ऐसी विदेशी हस्तक्षेप की अनुमति देने से इनकार। पर भारतीय शासक देशभक्ति की भावना से प्रेरित न होकर व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा और लाभ की संकुचित भावना से प्रेरित थे। अपने देशी शुत्रओं से हिसाब चुकाने के लिए विदेशियों की सहायता मांगने में उन्हें कोई हिचक न थी।

वर्ष 1748 में कर्नाटक और हैदराबाद में एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि डुप्ले के षड्यंत्रकारी दिमाग को खुलकर खेलने का मौका मिला। कर्नाटक में चांदा साहब ने नवाब अनणारउद्दीन के खिलाफ षड्यंत्र करना आरंभ कर दिया, और हैदराबाद में निजामुल-मुल्क आसफजाह के मरने पर उसके बेटे नासिर जंग और पोते मुजफ्फर जंग में सत्ता के लिए गृहयुद्ध छिड़ गया। इस स्थिति का डुप्ले ने लाभ उठाया और चांदा साहब तथा मुजफ्फर जंग से इस बात का गुप्त समझौता कर लिया कि वह अपने

प्रशिक्षित फ्रांसीसी और भारतीय सेनिकों द्वारा उनकी सहायता करेगा। वर्ष 1749 में इन तीन सहयोगियों ने अंबूर के युद्ध में अनवारउद्दीन को हराकर मार डाला। उसका बेटा मुहम्मद अली त्रिचुरापल्ली भाग गया। शेष कर्नाटक चांदा साहब के अधिकार में आ गया और उसने पुरस्कारस्वरूप फ्रांसीसियों को पांडिचेरी के निकट 80 गांव दे दिए।

फ्रांसीसी हैदराबाद में भी सफल रहे। नासिर जंग मारा गया और मुजफ्फर जंग निजाम अर्थात् दकन का सूबेदार बन गया। नए निजाम ने पांडिचेरी के निकट जमींने और मसुलीपट्टम की प्रसिद्ध नगर फ्रांसीसी कंपनी को पुरस्कार में दे दिए। उसने कंपनी को पांच लाख रुपए और उसकी सेनाओं को भी पांच लाख रुपए दिए। डुप्ले को बीस लाख रुपयों के साथ एक जागीर भी मिली जिसकी वार्षिक आय एक लाख रुपए थी। इसके अलावा पूर्वी तट पर कृष्णा नदी से लेकर कन्या कुमारी तक के मुगल क्षेत्रों का उसे आनरेरी गवर्नर भी बना दिया गया। डुप्ले ने अपने सर्वश्रेष्ठ अफसर बुसी को फ्रांसीसी सेना की एक टुकड़ी के साथ हैदराबाद में नियुक्त किया। दिखावे के लिए इस नियुक्ति का उद्देश्य था शत्रुओं से निजाम की रक्षा करना, पर वास्तव में यह उसके दरबार में फ्रांसीसी प्रभाव बनाए रखने के लिए था। जब मुजफ्फर जंग अपनी राजधानी की ओर बढ़ रहा था तब एक दुर्घटना में वह मारा गया। बुसी ने फौरन निजामुल-मुल्क के तीसरे बेटे सलाबतजंग को गद्दी पर बिठा दिया। बदले में नए निजाम ने फ्रांसीसियों को आंध्र का वह क्षेत्र पुरस्कार में दे दिया जिसे उत्तरी सरकार कहा जाता है। इसमें चार जिले मुस्तफानगर, एल्लौर, राजामुंद्री और चिकाकोल शामिल थे।

दक्षिण भारत में अब फ्रांसीसियों की शक्ति चरम सीमा पर थी। डुप्ले की योजनाओं को आशा से भी अधिक सफलता मिली थी। फ्रांसीसियों ने अपना काम भारतीय शासकों को मित्र बनाने से आरंभ किया था और अब अंत में उनको अपना आश्रित बना लिया था।

लेकिन अंग्रेज़ अपने प्रतिद्वंद्वी की सफलताओं को खामोश बैठे नहीं देख रहे थे। फ्रांसीसी प्रभाव को कम करने और अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए वे नासिर जंग और मुहम्मद अली से मिलकर षड्यंत्र कर रहे थे। वर्ष 1750 में उन्होंने मुहम्मद अली की ओर से अपनी पूरी ताकत लगा देने का निश्चय किया। नौजवान राबर्ट क्लाइव तब कंपनी की सेवा में एक क्लर्क था। उसने प्रस्ताव किया कि कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर हमला करके त्रिचुरापल्ली में घिरे मुहम्मद अली पर फ्रांसीसियों का दबाव कम किया जा सकता है। यह प्रस्ताव मान लिया गया। तब क्लाइव ने केवल 200 अंग्रेज़ और 300 भारतीय सैनिकों को लेकर अर्काट पर हमला किया और उसे जीत लिया। जैसी कि आशा थी, चांदा साहब और फ्रांसीसियों ने मजबूर होकर त्रिचुरापल्ली का घेरा उठा लिया। फ्रांसीसी सेनाओं की कई बार हार हुई। अब फ्रांसीसियों का सितारा डूब रहा था क्योंकि उनकी सेना और उनके जनरल अंग्रेजों का सामना नहीं कर पा रहे थे। अंत में भारतीय युद्ध के भारी खर्चों से परेशान होकर और अमरीकी उपनिवेशों के हाथ से निकल जाने के डर से फ्रांसीसी सरकार ने समझौता-वार्ता आरंभ की, और 1754 में उसने अंग्रेजों की यह मांग मान ली कि भारत से डुप्ले को वापस बुला लिया जाए। यह बात भारत में फ्रांसीसी कंपनी के भविष्य के लिए बहुत घातक सिद्ध हुई।

दोनों कंपनियों का यह अस्थायी समझौता 1756 में टूट गया जब इंग्लैंड और फ्रांस के बीच एक और युद्ध छिड़ गया। युद्ध के एकदम आरंभ में ही अंग्रेज़ बंगाल पर नियंत्रण करने में सफल रहे। इसका वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है। इस घटना के बाद भारत में फ्रांसीसियों के लिए कुछ बचा ही नहीं। बंगाल की अथाह संपत्ति ने युद्ध का पलड़ा अंग्रेजों के पक्ष में झुका दिया। इस युद्ध की निर्णायक मुठभेड़ 22

जनवरी 1760 को वांडीवाश में हुई जब अंग्रेज़ जनरल आयर कूट ने लल्ली को हरा दिया। एक साल के अंदर-अंदर भारत में फ्रांसीसियों के हाथ से सब कुछ जाता रहा। युद्ध का अंत 1763 में पेरिस समझौते के साथ हुआ। इसके अनुसार फ्रांसीसियों को भारत स्थित उनकी सारी फैक्टरियां लौटा दी गईं; पर अब वे उनकी किलाबंदी नहीं कर सकते थे और न ही वहां सैनिक रख सकते थे। अब वे केवल व्यापार केंद्रों के रूप में काम कर सकती थीं। इसके बाद फ्रांसीसियों को भारत में अंग्रेजों के संरक्षण में रहना था। दूसरी ओर अंग्रेज़ हिंद महासागर पर छा चुके थे। सभी यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को एक-एक करके हराने के बाद अब वे भारत-विजय के काम में लग गए।

फ्रांसीसियों और उनके भारतीय सहयोगियों के साथ अपने युद्ध के दौरान अंग्रेजों ने कुछ महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य पाठ सीखे। पहला यह कि देश में राष्ट्रवादी भावना के अभाव के कारण वे भारतीय शासकों के आपसी झगड़ों का फायदा उठाकर अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएं पूरी कर सकते थे। दूसरे, पश्चिमी तर्ज पर प्रशिक्षित यूरोपीय या भारतीय पैदल सेना आधुनिक अस्त्रों से लेस होकर और तोपखाने का सहारा लेकर पुरानी तर्ज वाली भारतीय सेनाओं को घमासान युद्धों में आसानी से हरा सकती थी। तीसरे, यह सिद्ध हो गया कि यूरोपीय तर्ज पर प्रशिक्षित और हथियारबंद भारतीय सैनिक यूरोपीय सैनिक जैसा ही अच्छा सैनिक बन सकता था। और चूंकि भारतीय सैनिकों में भी राष्ट्रवादी भावना का अभाव था, इसलिए जो भी उसे अच्छा पैसा दे, वह उन्हें अपनी सेवा में रख सकता था। अंग्रेजों ने अब अंग्रेज़ अफसरों की देख-भाल में "सिपाही" कहे जाने वाले भारतीय सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना बनाने का काम आरंभ कर दिया। इस सेना को अपना प्रधान साधन बनाकर और भारतीय व्यापार और क्षेत्रों के बेपनाह साधनों को अपने अधिकार में लाकर अब अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी ने युद्धों और क्षेत्रीय प्रसार के एक नए युग में कदम रखा।

बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार

भारत में ब्रिटिश राजनीतिक सत्ता का आरंभ 1757 के प्लासी के युद्ध से माना जा सकता है जब अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने बंगाल के नवाब सिराजउद्दौला को हरा दिया। इसके पहले दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों के साथ अंग्रेजों के टकराव तो पूर्वाभ्यास मात्र थे। इन टकरावों से प्राप्त अनुभव का बंगाल में अच्छी तरह उपयोग किया गया।

बंगाल तब भारत का सबसे उपजाऊ और धनी प्रांत था। इसके उद्योग-धंधे और व्यापार बहुत विकसित थे। प्रांत से ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके कर्मचारियों के लाभदायक व्यापारिक हित जुड़े थे। वर्ष 1717 में मुगल सम्राट के एक शाही फरमान द्वारा अंग्रेजों को बहुमूल्य विशेषाधिकार मिले हुए थे। इस फरमान के अनुसार कंपनी को बिना कर चुकाए बंगाल से अपने सामान का आयात-निर्यात करने की आजादी मिली हुई थी, और इन मालों की आवाजाही पर पास या दस्तक जारी रखने का उसे अधिकार था। कंपनी के कर्मचारियों को भी निजी व्यापार की छूट थी, हालांकि उनको फरमान की सुरक्षा प्राप्त न थी। उनको वही कर देने पड़ते थे जो भारतीय व्यापारियों को। यह फरमान कंपनी और बंगाल के नवाब के बीच झगड़े की जड़ बना हुआ था। इसका एक नतीजा यह था कि बंगाल की सरकार को राजस्व की हानि होती थी। दूसरे, कंपनी को दस्तक जारी करने का जो अधिकार मिला था, उसका दुरुपयोग कंपनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार पर भी कर न चुकाने के लिए करते थे। मुर्शिद कुली खान से लेकर अलीवर्दी खान तक बंगाल के सभी नवाबों ने 1717 के फरमान की अंग्रेजों की व्याख्या पर आपत्ति की थी। उन्होंने कंपनी को खज़ाने में एकमुश्त रकमें देने के लिए मजबूर कर दिया था और दस्तकों के दुरुपयोग को सख्ती से बंद करा दिया

था। इस मामले में कंपनी को भी नवाब का अधिकार मानना पड़ा था, मगर उसके कर्मचारी इस अधिकार से बचने और उसका उल्लंघन करने का कोई मौका नहीं छोड़ते थे।

पानी तब सर से ऊपर आ गया जब 1756 में युवक और जल्द क्रोधित हो जाने वाला सिराजुद्दौला अपने दादा अलीवर्दी खान की जगह गद्दी पर बैठा। उसने अंग्रेजों से मांग की कि वे जिन शर्तों पर मुर्शिद कुली खान के जमाने में व्यापार करते थे, उन्हीं शर्तों पर अब भी व्यापार करें। अंग्रेजों ने जो दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों को हराकर खुद को ताकतवर महसूस करते थे, इस बात को मानने से इनकार कर दिया। वे अपने मालों पर नवाब को कर चुकाने को तैयार नहीं हुए, उल्टे उन्होंने उन भारतीय मालों पर भारी महसूल लगा दिए जो कलकत्ता आते थे। (कलकत्ता तब उनके नियंत्रण में था) युवक नवाब स्वाभाविक था कि क्रोधित हो उठता। उसे शंका थी कि कंपनी उसकी शत्रु है और बंगाल की गद्दी की लड़ाई में उसके दुशमनों का साथ दे रही है। बात तब हद से आगे बढ़ गई, जब नवाब से आज्ञा लिए बगैर कंपनी ने कलकत्ता की किलाबंदी शुरू कर दी क्योंकि उसे तब चंद्रनगर में जमे फ्रांसीसियों के साथ युद्ध की आशंका थी। सिराज ने सही तौर पर इस हरकत को अपनी प्रभुता पर एक चोट समझा। कोई भी स्वतंत्र शासक अपनी धरती पर व्यापारियों की किसी निजी कंपनी को किले खड़ा करने और निजी युद्ध चलाने की छूट भला कैसे देता। दूसरे शब्दों में सिराज इस पर तैयार था कि यूरोपीय लोग व्यापारी बनकर ही रहें और मालिक बनने की कोशिश न करें उसने अंग्रेजों और फ्रांसीसियों, दोनों को आज्ञा दी कि वे कलकत्ता और चंद्रनगर की अपनी किलेबंदियां गिरा दें और एक दूसरे से लड़ने से बाज आएं। फ्रांसीसी कंपनी ने तो इस आज्ञा का पालन किया पर अंग्रेज़ कंपनी ने इसे मानने से इनकार कर दिया क्योंकि कर्नाटक में मिली विजय ने उसकी महत्त्वाकांक्षाओं और आत्मविश्वास दोनों को बढ़ा दिया था। वह नवाब की इच्छा के खिलाफ भी बंगाल में जमे रहने और अपनी शर्तों पर व्यापार करने पर अड़ी थी। इस कंपनी ने अपनी सभी गतिविधियों को नियंत्रित करने के ब्रिटिश सरकार के अधिकार को स्वीकार किया था। ब्रिटेन में ब्रिटिश सरकार ने उसके व्यापार और उसकी ताकत पर जो अंकुश लगाया था उसे कंपनी ने भीगी बिल्ली बनकर स्वीकार कर लिया था। वर्ष 1693 में उसका चार्टर समाप्त हो जाने पर संसद ने पूर्व में व्यापार करने का अधिकार उससे छीन लिया था, और तब कंपनी ने ब्रिटेन के सम्राट, संसद और राजनेताओं को भारी रिश्वत दी थी (केवल एक वर्ष में उसने 80 हजार पौंड घूस में दिए थे) फिर भी अंग्रेज़ कंपनी मांग कर रही थी कि बंगाल के नवाब की चाहे जो आज्ञा हो, उसे बंगाल में मुक्त व्यापार के पूरे अधिकार मिलने चाहिए। यह नवाब की प्रभुता के लिए सीधे-सीधे एक चुनौती थी। कोई भी शासक संभवतः इस बात को स्वीकार न करता। सिराजुद्दौला में इतनी राजबुद्धि थी कि वह अंग्रेजों की चालों के दूरगामी प्रभावों को समझ सके। उसने उनसे अपने देश के कानून मनवाने का निर्णय किया।

जोश में आकर मगर बेकार की जल्दीबाजी में और पर्याप्त तैयारी किए बिना सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार की अंग्रेज़ फैक्टरी पर कब्जा कर लिया, फिर कलकत्ता की ओर कूच किया और 20 जून 1756 को फोर्ट विलियम पर अधिकार कर लिया। तब अपनी आसानी से मिली इस जीत की खुशी मनाने वह कलकत्ता से वापस आ गया और अपने जहाजों में बैठकर भागते अंग्रेजों पर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। यह एक गलती थी क्योंकि उसने दुश्मन की ताकत को कम करके आंका था।

अंग्रेज़ अधिकारियों ने समुद्र के निकट फुल्टा में शरण ली जिसे उनकी जहाजरानी संबंधी श्रेष्ठता ने सुरक्षित बना दिया था। यहां अब वे मद्रास में सहायता

मिलने की प्रतीक्षा करने लगे, और इस बीच वे नवाब के दरबार के प्रमुख लोगों के साथ साजिश और गद्दारी का ताना-बाना बुनते रहे। इनमें प्रमुख थे—मीर जाफर जो मीर बख्शी के पद पर था, मानिकचंद जो कलकत्ता का अधिकारी था, अमीचंद जो एक धनी व्यापारी था, जगतसेठ जो बंगाल का सबसे बड़ा बैंकर था, और खादिम खान जिसकी कमान में नवाब की सेना का एक बड़ा भाग था। मद्रास से एडमिरल वाटसन और कर्नल क्लाइव की कमान में एक बड़ी नौसैनिक और सैनिक सहायता भी आ पहुंची। क्लाइव ने 1757 के आरंभ में दोबारा कलकत्ता को जीत लिया, और नवाब को मजबूर करके अंग्रेजों की सारी मांगे मनवा लीं।

अंग्रेजी फिर भी संतुष्ट न हुए। उनका उद्देश्य इससे कहीं बहुत अधिक था। उन्होंने सिराजुद्दौला की जगह किसी पिट्‌ठू को बिठाने का फैसला किया। बंगाल की गद्दी पर युवक नवाब की जगह मीर जाफर को बिठाने की जो साजिश नवाब के दुश्मनों ने रची थी, उसमें शामिल होने के बाद अंग्रेजों ने नवाब के सामने ऐसी मांगें रखीं जिन्हें पूरा करना असंभव था। दोनों पक्षों को लग गया कि उन्हें जल्द ही एक निर्णायक युद्ध लड़ना होगा। 23 जून 1757 को मुर्शिदाबाद से 20 मील दूर प्लासी के मैदान में उनकी सेनाएं आमने-सामने हुईं। प्लासी का यह निर्णायक युद्ध केवल कहने को युद्ध था। अंग्रेज़ पक्ष के केवल 29 लोग मरे जबकि नवाब के लगभग 500 लोग मारे गए। मीर जाफर और राय दुर्लभ जैसे गद्दारों की कमान में नवाब की काफी सेना लड़ाई में उतरी ही नहीं। नवाब के सैनिकों का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा ही मीर मादन और मोहनलाल की अगुआई में बहादुरी से अच्छी तरह लड़ता रहा। नवाब को मजबूर होकर भागना पड़ा। मगर वह पकड़ा गया और मीर जाफर के बेटे मीरन के हाथों मारा गया।

बंगाल के कवि नवीनचंद्र सेन के अनुसार प्लासी के युद्ध के बाद "भारत के लिए शाश्वत दुख की काली रात" का आरंभ हुआ। अंग्रेजों ने मीर जाफर को बंगाल का नवाब घोषित किया और फिर उससे अपना इनाम मांगने लगे। कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुक्त व्यापार का निर्विवाद अधिकार मिल गया। उसे कलकत्ता के पास चौबीस परगना की जमींदारी भी मिली। कलकत्ता पर हमले के हर्जाने के रूप में मीर जाफर ने कंपनी को और नगर के व्यापारियों को एक करोड़ सतहत्तर लाख रुपए दिए साथ ही कंपनी के अधिकारियों को 'उपहारों' अर्थात् रिश्वतों के रूप में बड़ी-रकमें दी गईं। उदाहरण के लिए क्लाइव को बीस लाख और वाट्स को दस लाख रुपए से अधिक की रकमें मिलीं। क्लाइव ने बाद में अनुमान लगाया कि पिट्‌ठू नवाब से कंपनी और उसके नौकरों को तीन करोड़ रुपए से अधिक मिले हैं। इसके अलावा यह भी मान लिया गया कि ब्रिटिश व्यापारियों और अधिकारियों को अपने निजी व्यापार पर कोई कर नहीं देना होगा।

प्लासी के युद्ध का असीम ऐतिहासिक महत्त्व रहा। इसने बंगाल तथा अंततः पूरे भारत पर अंग्रेजों के अधिकार का रास्ता खोल दिया। इसने अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बढ़ाई और एक ही बार में अंग्रेजों को भारतीय साम्राज्य के प्रमुख दावेदारों की कतार में ला खड़ा किया। बंगाल से प्राप्त भारी राजस्व के सहारे उन्होंने एक शक्तिशाली सेना खड़ी की और इसी से उन्होंने शेष भारत की विजय का खर्च उठाया। बंगाल पर उनके नियंत्रण की अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की लड़ाई में निर्णायक भूमिका रही। अंतिम बात यह है कि प्लासी की विजय ने कंपनी और उसके नौकरों को इस योग्य बनाया कि वे बंगाल की असहाय जनता को लूटकर बेपनाह दौलत जमा कर सकें। जैसा कि ब्रिटिश इतिहासकार एडवर्ड थांप्सन और जी. टी. गैरेट ने लिखा है :

> किसी क्रांति का आयोजन करना दुनिया का सबसे लाभदायी खेल समझा गया है। अंग्रेजों के मन में

सोने का ऐसा लालच भर गया जो कोर्तेस और पिजारो के काल के स्पेनवासियों के बाद कभी देखने को नहीं मिला था। अब खासतौर पर बंगाल को तब तक चैन नहीं मिलने वाला था जब तक उसके खून की एक-एक बूंद न निचुड़ जाए।

हालांकि मीर जाफर ने कंपनी की सहायता से गद्दी पाई थी, मगर जल्द ही वह इस सौदे पर पछताने लगा। कंपनी के अधिकारियों की उपहार और रिश्वत संबंधी मांगों ने जल्द ही उसका खजाना खाली कर दिया, और इस बारे में पहल खुद क्लाइव ने की। जैसा कि कर्नल मालसन ने लिखा है, कंपनी के अधिकारियों का अब एक ही उद्देश्य था कि "जितना लूट सको, लूटो; मीर जाफर सोने की एक ऐसी थैली है जिसमें जब जी चाहे हाथ डाल लो।" खुद कंपनी के लालच का कोई मुकाबला न था। कंपनी के डायरेक्टरों ने यह मानकर कि उनके हाथ कामधेनु गाय लग गई है और यह कि बंगाल की दौलत कभी खत्म न होगी, यह आज्ञा जारी की कि बंबई और मद्रास प्रेसिडेंसियों का भी बंगाल खर्च उठाए और अपने राजस्व से कंपनी के भारत से होने वाले पूरे निर्यात का माल खरीदे। कंपनी अब भारत के साथ व्यापार ही नहीं कर रही थी बल्कि बंगाल के नवाब पर अपने नियंत्रण का फायदा उठाकर प्रांत की दौलत भी लूट रही थी।

मीर जाफर को जल्द ही पता चल गया कि कंपनी और उसके अधिकारियों की सारी मांगें पूरी कर पाना असंभव था। अब ये अधिकारी भी अपनी आशाएं पूरी न कर पाने के कारण नवाब की आलोचना करने लगे थे। इसलिए उन्होंने अक्तूबर 1760 में मीर जाफर को मजबूर किया कि वह अपने दामाद, मीर कासिम के हक में गद्दी छोड़ दे। मीर कासिम ने अपने आकाओं की इस कृपा के बदले कंपनी को बर्दवान, मिदनापुर और चटगांव जिलों की जमींदारी सौंप दी और बड़े अंग्रेज़ अधिकारियों को अच्छे-अच्छे उपहार दिए जिनकी कुल कीमत 29 लाख रुपए थी।

फिर भी अंग्रेजों की इच्छाएं पूरी न हो सकीं और जल्द ही मीर कासिम बंगाल में उनकी स्थिति और उनकी चालों के लिए खतरा बन गया। वह एक योग्य, कुशल और शक्तिशाली शासक था और खुद को विदेशी नियंत्रण से मुक्त कराने पर अड़ा हुआ था। उसने महसूस किया कि अपनी आजादी बनाए रखने के लिए एक भरा हुआ खजाना और एक कुशल सेना की आवश्यकता थी। इसलिए उसने सार्वजनिक अव्यवस्था को संभालने, राजस्व प्रशासन से भ्रष्टाचार मिटाकर अपनी आय बढ़ाने और यूरोपीय तर्ज पर एक आधुनिक और अनुशासित सेना खड़ी करने की कोशिशें कीं। यह सब अंग्रेजों को पसंद न था। उन्हें सबसे ज्यादा नापसंद यह बात थी कि नवाब 1717 के फरमान का कंपनी के नौकरों द्वारा दुरुपयोग रोकने की कोशिश कर रहा था जबकि इन नौकरों की मांग थी कि उनका माल चाहे निर्यात के लिए हो या यहीं उपयोग के लिए, उस पर कोई चुंगी न लगाई जाए। इससे हानि भारतीय व्यापारियों को होती थी क्योंकि उन्हें वे कर भी देने पड़ते थे जिनसे विदेशी पूरी तरह मुक्त थे। इसके अलावा कंपनी के नौकर गैर-कानूनी ढंग से अपने भारतीय व्यापारी मित्रों को दस्तकें (पास) बेच देते थे और ये भारतीय इस तरह अंदर के करों के भुगतान से बच जाते थे। इन दुरुपयोगों के कारण ईमानदार भारतीय व्यापारी बेईमानी से भरी प्रतियोगिता में बर्बाद होने लगे और नवाब के हाथ से राजस्व का एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत जाता रहा। साथ ही, कंपनी और उसके नौकर भारतीय अधिकारियों और जमींदारों को उपहार और घूस देने के लिए बाध्य करते थे। वे भारतीय दस्तकारों, किसानों और व्यापारियों को अपना माल अंग्रेजों को सस्ता बेचने और अंग्रेजों का माल महंगा खरीदने पर मजबूर करते थे। जो लोग ऐसा न करते उन्हें अकसर कोड़े मारे जाते या जेल भेज दिया जाता। हाल ही में एक ब्रिटिश इतिहासकार पर्सीवल स्पियर ने इस काल को "खुली और निर्लज्जतापूर्ण

1765 ई० में भारत
भारत की वर्तमान बाह्य सीमा
पेशावर
कश्मीर
पंजाब
पानीपत
मुगल
दिल्ली
राजपूताना
जोधपुर
जयपुर
अजमेर
आगरा
ग्वालियर
लखनऊ
अवध
इलाहाबाद
पटना
बिहार
बंगाल
मराठा राज्य
बड़ोदा
गुजरात
नागपुर
(पुर्तगाली) दीव
(पुर्तगाली) दमन
बम्बई
पूना
सतारा
निजाम
हैदराबाद
(पुर्तगाली) गोआ
मछलीपट्टनम
मैसूर
मद्रास
कालीकट
पांडिचेरी (फ्रांसीसी)
फोर्ट सेंट डेविड
देवीकोटा (अंग्रेजी)
कलकत्ता
निर्देश
अंग्रेजी राज्य
निजाम
मैसूर
मराठा
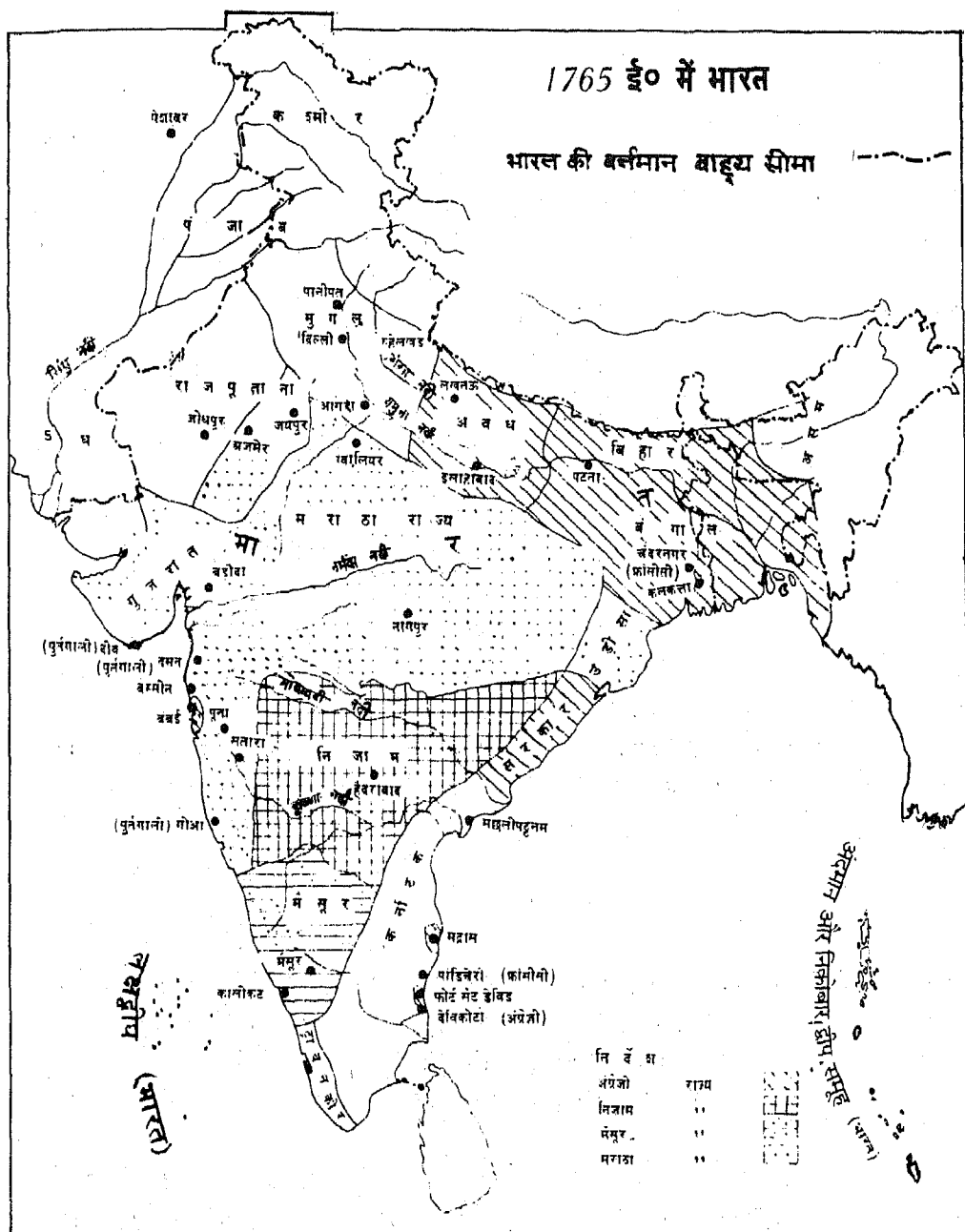
लूट-पाट का युग" बताया है। वास्तव में अपनी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध बंगाल, धीरे-धीरे नष्ट हो रहा था।

मीर कासिम को लगा कि अगर ये बदमाशियां जारी रहीं तो वह कभी बंगाल को शक्तिशाली न बना सकेगा और न ही खुद को कंपनी के चुंगल से मुक्त कर सकेगा। इसलिए उसने यह कड़ा कदम उठाया कि आंतरिक व्यापार पर सभी महसूल खत्म कर दिए और इस तरह अपनी प्रजा को वे छूटें दे दीं जो अंग्रेजों ने बलपूर्वक प्राप्त की थीं। मगर विदेशी व्यापारी अपने और भारतीय व्यापारियों के बीच समानता हो, यह बर्दाश्त करने को अब तैयार न थे। उन्होंने भारतीय व्यापारियों पर दोबारा महसूल लगाए जाने की मांग की। एक और लड़ाई अब सामने नजर आ रही थी। सच्चाई यह थी कि अब बंगाल के दो स्वामी नहीं हो सकते थे। मीर कासिम तो यह समझता था कि वह एक स्वतंत्र शासक है, मगर अंग्रेज़ यह मांग कर रहे थे कि वह उनके हाथों की कठपुतली बना रहे क्योंकि उन्होंने ही उसे गद्दी पर बिठाया था।

अनेक लड़ाइयों के बाद मीर कासिम 1763 में हरा दिया गया। तब वह अवध भाग गया जहां उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला और भगोड़े मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय के साथ एक समझौता किया। कंपनी की सेना के साथ इन तीनों सहयोगियों की मुठभेड़ 22 अक्तूबर 1764 को बक्सर में हुई जिसमें ये तीनों हारे। यह भारतीय इतिहास के सबसे निर्णायक युद्धों में से एक था क्योंकि इसने दो बड़ी भारतीय शक्तियों की संयुक्त सेना पर अंग्रेजी सेना की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। इस युद्ध ने अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का निर्विवाद शासक बना दिया और अवध भी उनकी दया का मुहताज हो गया।

इस बीच 1765 में क्लाइव बंगाल का गवर्नर बनकर लौट आया था। उसने बंगाल में सत्ता पाने और शासन के सारे अधिकार नवाब से छीनकर कंपनी को दिलाने का यह अवसर न चूकने का फैसला किया। वर्ष 1763 में अंग्रेजों ने मीर जाफर को दोबारा नवाब बना दिया था और कंपनी तथा उसके अधिकारियों के लिए बड़ी-बड़ी रकमें ली थीं। मीर जाफर के मरने पर उन्होंने उसके दूसरे बेटे निजामुद्दौला को गद्दी पर बिठाया और बदले में उससे 20 फरवरी 1765 को एक नई संधि पर दस्तखत करा लिए। इस संधि के अनुसार नवाब को अपनी अधिकांश सेना भंग कर देना था और बंगाल का शासन एक नायब सूबेदार के सहारे चलाना था जिसकी नियुक्ति कंपनी करती और जिसे कंपनी की स्वीकृति के बिना नहीं हटाया जा सकता था। इस तरह कंपनी ने बंगाल के प्रशासन

नवाब शुजाउद्दौला

(निजामत) पर पूरा अधिकार जमा लिया। कंपनी की बंगाल कौंसिल के सदस्यों ने एक बार फिर नए नवाब से लगभग 15 लाख रुपए झटक लिए।

शाह आलम द्वितीय अभी भी साम्राज्य का नाममात्र का प्रमुख था। उससे कंपनी ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी (अर्थात् राजस्व वसूल करने का अधिकार) प्राप्त कर लिया। इस तरह बंगाल के ऊपर उसके नियंत्रण को कानूनी मान्यता मिल गई और इस सबसे समृद्ध भारतीय प्रांत का पूरा राजस्व उसके हाथों में आ गया। बदले में कंपनी ने शाह आलम द्वितीय को 26 लाख रुपए दिए और उसे कोरा और इलाहाबाद जिले भी जीतकर दे दिए। सम्राट 6 वर्षों तक इलाहाबाद के किले में अंग्रेजों का लगभग कैदी बनकर रहा।

अवध के नवाब शुजाउद्दौला को भी लड़ाई के हर्जाने के रूप में कंपनी को पचास लाख रुपए देने पड़े। इसके अलावा, दोनों ने एक संधि पर हस्ताक्षर किए। इसके अनुसार अगर नवाब पर बाहरी हमला होता तो कंपनी उसकी सहायता करती, शर्त यह थी कि नवाब को अपनी सहायता के लिए भेजी गई सेना के बदले में कंपनी को धन देना पड़ता। इस समझौते के द्वारा अवध का नवाब भी कंपनी का आश्रित बनकर रह गया।

बंगाल के प्रशासन की दोहरी व्यवस्था

1765 ई. से ईस्ट इण्डिया कंपनी बंगाल की वास्तविक स्वामी अवश्य ही हो गई। कंपनी की सेना का बंगाल पर एकछत्र नियंत्रण स्थापित हो गया और राजनीति की संपूर्ण शक्ति इसके हाथों में आ गई। अपनी आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए नवाब कंपनी पर पूरी तरह आश्रित हो गया था।

दीवान के रूप में कंपनी सीधे ही स्वयं राजस्व वसूल करने लगी। कंपनी को अपना उप-सुबेदार नामांकित करने का अधिकार मिल गया। इस तरह कंपनी का निज़ामत अथवा पुलिस और न्यायिक शक्तियों पर पूरा नियंत्रण स्थापित हो गया। इतिहास में इस व्यवस्था को 'दोहरी' या 'द्वैध' सरकार कहा जाता है। यह व्यवस्था अंग्रेजों के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुई। इस प्रकार कंपनी का सत्ता पर पूरा अधिकार हो गया जबकि उनके ऊपर किसी प्रकार की जिम्मेदारी नहीं थी। प्रशासन कादायित्व नवाब और उसके पदाधिकारियों पर था हालांकि इनका निर्वाह करने की शक्ति उनके पास नहीं रही। अब शासन की विफलताओं के लिए भारतीयों पर दोषारोपण किया जा सकता था जबकि इससे प्राप्त लाभों का उपयोग कंपनी करती थी। बंगाल की जनता के लिए यह बहुत क्लेशपूर्ण और घातक परिस्थिति थी क्योंकि उनके हितों की रक्षा न तो कंपनी ही करती थी न नवाब।

कंपनी के अधिकारी बंगाल की जनता पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे और ये अत्याचार दिन-ब-दिन बढ़ते ही जा रहे थे। क्लाइव के शब्दों में :

"मैं केवल इतना ही कहूंगा कि स्वेच्छाचारी शासन, भ्रांति, घूसखोरी, भ्रष्टाचार और जबरन धन खसोटने का ऐसा दृश्य बंगाल के अलावा किसी भी अन्य देश में कभी देखा-सुना नहीं गया। इतनी अन्यायपूर्ण लूट-खसोट से कंपनी बेशुमार संपत्ति बटोरने में जुटी हुई थी। जब से मीर जाफर ने दो बार सूबेदारी संभाली थी, बंगाल, बिहार और उड़ीसा इन तीनों प्रांतों से 30 लाख स्टर्लिंग पौंड की राजस्व वसूली का काम सीधे कंपनी के अधिकारियों की मुट्ठी में आ गया था। कंपनी के अधिकारी नवाब से लेकर सत्ता से जुड़े छोटे से छोटे ज़मीदारों तक प्रत्येक व्यक्ति पर शुल्क थोप देते थे और उसे जबरदस्ती वसूल करते थे।"

कंपनी के पदाधिकारी अपनी ओर से बंगाल की संपदा को दोनों हाथों से बटोर रहे थे जिसके परिणास्वरूप बंगाल कंगाली के कगार पर आ पहुंचा। कंपनी ने भारतीय माल खरीदने के लिए इंगलैंड से धन भेजना बंद कर दिया। इसके स्थान पर वे बंगाल से प्राप्त राजस्व से ही भारतीय माल खरीदते और इसे विदेशों में

बेचते। इस धन को कंपनी की लागत-पूंजी समझा जाता था और इसे कंपनी के 'लाभ' के रूप में स्वीकार किया जाता था। सबसे बढ़कर बात यह थी कि 'मुनाफे' के इस धन में से ब्रिटिश सरकार भी अपना हिस्सा चाहती थी। 1767 ई. में ब्रिटिश सरकार ने कंपनी को चार लाख पौंड का भुगतान करने का आदेश दिया।

1766-1767 और 1768 ई. में बंगाल के लगभग 57 लाख पौंड की धन-निकासी हुई। इस 'दोहरे' शासन का दुष्परिणाम यह हुआ कि बंगाल से धन-निकासी के फलस्वरूप यह दुर्भाग्यशाली प्रांत दरिद्र हो गया और इसकी दशा जर्जर हो गई। 1707 ई. में बंगाल में अकाल पड़ा। यह अकाल मानव जाति के इतिहास में पड़े भयंकर अकालों में से एक सिद्ध हुआ। लाखों की संख्या में लोगों की मृत्यु हुई और बंगाल की एक-तिहाई जनसंख्या को इस विध्वंस के भीषण परिणाम भुगतने पड़े। हालांकि यह अकाल वर्षा के अभाव के कारण पड़ा था, इसका विनाशकारी प्रभाव कंपनी के नीतियों के फलस्वरूप बहुत बढ़ गया था।

वारेन हेस्टिंग्ज (1772-85) और कार्नवालिस (1786-93) के युद्ध

1772 तक ईस्ट इंडिया कंपनी भारत की एक प्रमुख शक्ति बन चुकी थी, और अब आगे-विजय से पहले इसके इंग्लैंड में बैठे डायरेक्टर और भारत में इसके अधिकारी बंगाल में अपनी स्थिति को मजबूत बना लेना चाहते थे। फिर भी भारतीय राजाओं के आपसी मामलों में दखल देने की उनकी आदत ने और इलाका तथा धन के उनके लालच ने जल्द ही उनको अनेक युद्धों में उलझा दिया।

1766 में उन्होंने मैसूर के हैदर अली पर हमले में हैदराबाद के निज़ाम का साथ दिया। पर हैदर अली ने मद्रास कौंसिल को अपनी शर्तों पर शांति की संधि करने के लिए मजबूर कर दिया। फिर 1775 में अंग्रेजों का मराठों से टकराव हुआ। तब मराठों में शासन के लिए एक कड़ा संघर्ष चल रहा था जिसमें बालक पेशवा माधवराव द्वितीय के समर्थक नाना फड़नवीस के नेतृत्व में एक ओर थे और रघुनाथ राव के समर्थक दूसरी ओर थे। बंबई के ब्रिटिश अधिकारियों ने रघुनाथ राव की ओर हस्तक्षेप का निश्चय किया। उन्हें आशा थी कि उनके देशवासियों ने बंगाल और मद्रास में जो कुछ कर दिखाया था, वैसा ही कुछ काम वे कर सकेंगे और नतीजे में उनके धन-लाभ होगा। इस कारण वे मराठों के साथ एक लंबी लड़ाई में उलझ गए जो 1775 से 1782 तक चली।

यह भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए बहुत अशुभ घड़ी थी। सभी मराठा सरदार पेशवा और उसके प्रधानमंत्री नाना फड़नवीस की ओर से एक हो गए। दक्षिण भारत के शासक अपने बीच अंग्रेजों की उपस्थिति से बहुत दिनों से चिढ़े हुए थे और इस घड़ी का फायदा उठाकर हैदर अली और निजाम ने कंपनी के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। इस तरह अब अंग्रेजों को मराठों, मैसूर और हैदराबाद के शक्तिशाली गठजोड़ का सामना करना पड़ रहा था। इसके अलावा 1776 में अमरीका की जनता ने विद्रोह कर दिया था और इस लड़ाई में अंग्रेजों की हार पर हार हो रही थी। फ्रांसीसी अपने पुराने प्रतिद्वंद्वियों की इन कठिनाइयों का फायदा उठाना चाहते थे और उसका भी मुकाबला अंग्रेजों को करना पड़ रहा था।

पर भारत में इस समय अंग्रेजों का नेतृत्व जोशीला और अनुभवी गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्ज कर रहा था। उसने पूरे विश्वास और दृढ़ता के साथ अपने कदम उठाए। युद्ध में जीत किसी पक्ष की नहीं हुई और युद्ध थम-सा गया। वर्ष 1782 की सल्बई की संधि के साथ शांति स्थापित हुई। इस संधि के अनुसार स्थिति को जैसी वह थी, वैसी ही बनाए रखना था। इससे अंग्रेज़ भारतीय शासकों की मिली-जुली शक्ति का सामना करने से बच गए।

इस युद्ध में जिसे प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध कहा

जाता है, किसी की जीत नहीं हुई। मगर इससे अंग्रेज़ 20 वर्षों के लिए मराठों की ओर से निश्चिंत हो गए जो तब भारत की सबसे बड़ी शक्ति थे। इस समय का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने बंगाल सीडें में अपनी स्थिति को मजबूत बनाया जबकि मराठे आपसी झगड़ों में अपनी शक्ति बर्बाद करते रहे। इसके अलावा सल्बई की संधि के कारण अंग्रेज़ मैसूर पर दबाव डालने में सफल रहे, क्योंकि मराठों ने उनसे वादा किया कि हैदर अली से अपनी खोई हुई जमीन वापस लेने में वे अंग्रेजों की सहायता करेंगे। अंग्रेज फिर एक बार भारतीय शासकों में फूट डालने में सफल रहे।

इस बीच 1780 में हैदर अली से युद्ध एक बार फिर आरंभ हो गया। अपने पुराने कारनामे दोहराते हुए हैदरअली ने कर्नाटक में अंग्रेज़ सेनाओं को बार-बार हराया और उन्हें बड़ी संख्या में आत्मसमर्पण करने पर बाध्य कर दिया। जल्द ही लगभग पूरा कर्नाटक उसके कब्जे में आ गया। पर अंग्रेजों की शक्ति और कूटनीति ने एक बार फिर उन्हें बचा लिया। वारेन हेस्टिंग्ज ने निजाम को गुंटूर का जिला देकर तोड़ लिया और उसे ब्रिटिश-विरोधी गठजोड़ से अलग करा दिया। वर्ष 1781-82 में उसने मराठों से शांति-समझौता कर लिया और इस तरह उसकी सेना का एक बड़ा भाग मैसूर के साथ युद्ध के लिए मुक्त हो गया। जुलाई 1781 में आयरकूट की कमान में ब्रिटिश सेना ने पोर्टो नोवो में हैदर अली को हराकर मद्रास को बचा लिया। दिसंबर 1782 में हैदर अली की मृत्यु के बाद उसके बेटे टीपू सुल्तान ने युद्ध जारी रखा। चूंकि दोनों में से कोई भी पक्ष दूसरे को हराने की स्थिति में न था, इसलिए उन्होंने मार्च 1784 में शांति-संधि कर ली और एक-दूसरे को जीते हुए सारे इलाके लौटा दिए इस तरह यह तो सिद्ध हो गया कि अंग्रेज़ अभी इतने कमजोर हैं कि मराठों या मैसूर को नहीं हरा सकते, पर भारत में अपने बल-बूते पर खड़े होने की योग्यता उन्होंने निश्चित ही दिखा दी थी।

मैसूर के साथ अंग्रेजों का तीसरा टकराव उनके लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ। वर्ष 1784 की संधि
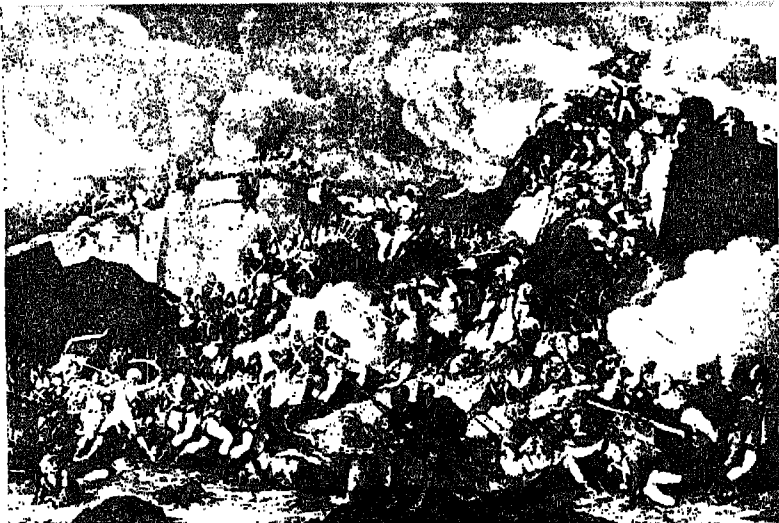
श्रीरंगपट्टम पर धावा

ने टीपू और अंग्रेजों के झगड़े की जड़ को समाप्त नहीं किया था, बल्कि युद्ध को केवल टाल भर दिया था। ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी टीपू के जानी दुश्मन थे। वे उसे दक्षिण में अपना सबसे शक्तिशाली शत्रु समझते थे जो दक्षिण भारत की जीत में उनके लिए प्रमुख बाधक बना हुआ था। टीपू भी अंग्रेजों से सख्त नफरत करता था और अपनी स्वाधीनता के लिए सबसे बड़ा खतरा समझकर उन्हें भारत से बाहर खदेड़ने पर अड़ा हुआ था। दोनों के बीच 1789 में फिर युद्ध भड़क उठा, और अंततः 1792 में टीपू की हार हुई। श्रीरंगपट्टम में हुई संधि के अनुसार टीपू ने अपना आधा राज्य अंग्रेजों और उसके सहयोगियों को दे दिया और 330 लाख रुपए हर्जाना भी दिया।

लार्ड वेलेजली के काल में अंग्रेजों का प्रसार

भारत में ब्रिटिश शासन का दूसरा बड़ा प्रसार लार्ड वेलेजली (1798-1805) के काल में हुआ। वह 1798 में ऐसे समय में भारत आया था जब अंग्रेज़ पूरी दुनिया में फ्रांस के साथ जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहे थे।

इस समय तक अंग्रेजों की नीति यह थी कि अपने लाभों और साधनों की स्थिति को सुदृढ़ बनाया जाए, और नए इलाके तभी जीते जाएं जब बड़े भारतीय शासकों को दुश्मन बनाए बिना सुरक्षापूर्वक ऐसा कर सकना संभव हो। वेलेजली ने फैसला किया कि समय आ चुका है कि जितने अधिक भारतीय राज्य संभव हों, ब्रिटिश नियंत्रण में लाए जाएं। वर्ष 1797 तक दो प्रमुख भारतीय शक्तियों अर्थात् मैसूर और मराठों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। भारत में राजनीतिक परिस्थितियां प्रसार के लिए अनुकूल थीं : प्रसार करना अब आसान भी था और लाभप्रद भी।

अपने राजनीतिक उद्देश्य पूरे करने के लिए वेलेजली ने तीन उपायों का सहारा लिया—सहायक संधि प्रथा, खुला युद्ध और पहले से अधीन बनाए जा चुके शासकों का इलाका हड़पना। किसी भारतीय शासक को पैसा लेकर ब्रिटिश सेना की मदद देने की नीति तो बहुत पुरानी थी, फिर भी वेलेजली ने इस नीति को एक निश्चित रूपरेखा दी और इसका उपयोग भारतीय शासकों को कंपनी के अधीन बनाने के लिए किया। उसकी सहायक संधि प्रथा की नीति के अनुसार किसी सहयोगी भारतीय राज्य के शासक को ब्रिटिश सेना अपने राज्य में रखनी पड़ती थी तथा उसके रख-रखाव के लिए अनुदान देना पड़ता था। यह सब कहने को उसकी सुरक्षा के लिए किया जाता था, मगर वास्तव में यह उस भारतीय शासक से कंपनी को खिराज दिलवाने का एक ढंग था। कभी-कभी कोई शासक वार्षिक अनुदान न देकर अपने राज्य का कोई भाग दे देता था। सहायक संधि के अनुसार आमतौर पर भारतीय शासक को यह भी मानना पड़ता था कि वह अपने दरबार में एक ब्रिटिश रेजीडेंट रखेगा, अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना किसी और यूरोपीय को अपनी सेवा में नहीं रखेगा, और गवर्नर-जनरल से सलाह किए बिना किसी दूसरे भारतीय शासक से कोई वार्ता नहीं करेगा। इसके बदले अंग्रेज़ उस शासक की दुश्मनों से रक्षा करने का वचन देते। वे सहयोगी के अंदरूनी मामलों में दखल न देने का भी वादा करते, पर यह वादा ऐसा था जिसे कभी-कभी ही पूरा किया गया।

वास्तव में सहायक संधि पर हस्ताक्षर करके कोई भारतीय राज्य अपनी स्वाधीनता लगभग गंवा ही बैठता था। वह आत्मरक्षा के, कूटनीतिक संबंध बनाने के, विदेशी विशेषज्ञ रखने के तथा पड़ोसियों के साथ आपसी झगड़े के अधिकार ही खो बैठता था। वास्तव में उस भारतीय शासक की बाहरी मामलों में सारी प्रभुता समाप्त हो जाती और वह ब्रिटिश रेजीडेंट के अधिकाधिक अधीन होता जाता जो राज्य के रोजमर्रा के प्रशासन में हस्तक्षेप करता रहता था। इसके अलावा इस प्रथा के कारण सुरक्षा प्राप्त राज्य अंदर से खोखला होने लगता था। अंग्रेजों की दी हुई सहायक सेना का खर्च बहुत

अधिक होता था और वास्तव में वह उस राज्य की क्षमता से काफी बाहर होता था। मनमाने ढंग से तय किए गए और बनावटी ढंग से बढ़ाए जाने वाले इस अनुदान के कारण उस राज्य की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न और जनता निर्धन हो जाती थी। इस सहायक संधि प्रथा के कारण सुरक्षा प्राप्त राज्य की सेनाएं भी भंग कर दी गईं। लाखों सैनिक और अधिकारी अपनी पैतृक जीविका से वंचित हो गए जिससे देश में बदहाली और गरीबी फैल गई। इसके अलावा सुरक्षाप्राप्त राज्यों के शासक अपनी जनता के हितों को अनदेखा तथा उनका दमन करने लगे क्योंकि अब उन्हें जनता का डर नहीं रह गया था। चूंकि अंग्रेजों ने उन्हें अंदरूनी और बाहरी दुश्मनों से रक्षा का वचन दिया था, इसलिए उनमें अब अच्छे शासक बनने का कोई लोभ नहीं रह गया।

दूसरी तरफ सहायक संधि की प्रथा अंग्रेजों के लिए अत्यंत लाभदायक थी। अब वे भारतीय राज्यों के खर्च पर एक बड़ी सेना रख सकते थे। अब वे अपने खुद के क्षेत्र से बहुत दूर लड़ाइयां लड़ सकते थे क्योंकि कोई भी युद्ध होता तो या तो उनके सहयोगियों के क्षेत्र में होता या उनके शत्रुओं के। वे अपने सुरक्षा प्राप्त सहयोगी के रक्षा और विदेशी संबंधों के मामलों पर पूरा नियंत्रण रख रहे थे, उसकी जमीन पर एक शक्तिशाली सेना रखते थे, और जब भी चाहे उसे 'अयोग्य' घोषित करके उसका शासन समाप्त कर उसके क्षेत्र को हड़प सकते थे। जहां तक अंग्रेजों का सवाल था, सहायक संधि की यह प्रथा, एक ब्रिटिश लेखक के शब्दों में, "अपने सहयोगियों को बकरों की तरह तब तक खिला-पिलाकर मोटा रखने की प्रथा थी जब तक वे जिबह करने के काबिल न हो जाएं।"

लार्ड वेलेजली ने 1798 और 1800 में हैदराबाद के निजाम के साथ सहायक संधियां कीं। सहायक सेनाओं के खर्च के नाम पर नगद पैसा देने के बजाए निजाम ने कंपनी को अपने राज्य का एक भाग दे दिया।

1801 में अवध नवाब को सहायक संधि के लिए मजबूर किया गया। एक बड़ी सहायक सेना के बदले में नवाब को मजबूर होकर अपना लगभग आधा राज्य अंग्रेजों को देना पड़ा जिसमें रुहेलखंड का इलाका और गंगा-यमुना का दोआब आ जाते थे। उसकी अपनी सेना लगभग पूरी तरह भंग कर दी गई और अंग्रेजों को यह अधिकार मिल गया कि वे उसके राज्य के किसी भी भाग में अपनी सेना तैनात कर सकें।

वेलेजली मैसूर, कर्नाटक और सूरत के साथ और भी कड़ाई से पेश आया। निश्चित ही मैसूर का टीपू सुल्तान कभी सहायक संधि के लिए तैयार नहीं हुआ। उल्टे उसे 1792 में अपना जो आधा राज्य देना पड़ा था, उसी को वह कभी भूल न सका। वह अंग्रेजों के साथ अपने अवश्यंभावी युद्ध के लिए अपनी सेना को लगातार मजबूत बनाता रहा। उसने क्रांतिकारी फ्रांस के साथ गठजोड़ की बात भी चलाई। उसने एक ब्रिटिश-विरोधी गठजोड़ बनाने के लिए अफगानिस्तान, अरब और तुर्की को भी अपने दूत भेजे।

ब्रिटिश सेना ने 1799 में टीपू पर हमला किया, और एक संक्षिप्त मगर भयानक युद्ध के बाद फ्रांसीसी सहायता पहुंचने के पहले ही उसे हरा दिया। टीपू ने अभी भी गिड़गिड़ाकर शांति की भीख मांगने से इनकार कर दिया। उसने गर्वपूर्वक घोषणा की कि "काफिरों का दयनीय दास बनकर और उनके पेंशन प्राप्त राजाओं और नवाबों की सूची में शामिल होकर जीने से अच्छा एक योद्धा की तरह मर जाना है।" अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम की रक्षा करते हुए वह 4 मई 1799 को बहादुरों की मौत मरा। उसकी सेना अंत तक वफादार बनी रही।

टीपू का लगभग आधा राज्य अंग्रेजों और उनके सहयोगी निजाम के बीच बंट गया। मैसूर राज्य का शेष भाग उन राजाओं के वंशजों को वापस दे दिया गया जिनसे हैदर अली ने राज्य छीना था। नए राजा को मजबूर करके एक विशेष सहायक संधि पर हस्ताक्षर कराए गए कि गवर्नर-जनरल आवश्यकता समझे तो

राज्य का शासन खुद संभाल ले। वास्तव में मैसूर को कंपनी पर पूरी तरह आश्रित बना दिया गया।

1801 में लार्ड वेलेजली ने कर्नाटक के पिट्ठू नवाब पर एक नई संधि लाद दी और उसे मजबूर किया कि वह पेंशन लेकर अपना राज्य कंपनी को सौंप दे। अब मैसूर से मालाबार समेत जो क्षेत्र छीने गए थे, उनमें कर्नाटक को मिलाकर मद्रास प्रेसिडेंटी बनाई गई जो 1947 तक जारी रही। इसी तरह तंजौर और सूरत राज्य भी हड़प लिए गए और उनके शासकों को पेंशन देकर किनारे कर दिया गया।
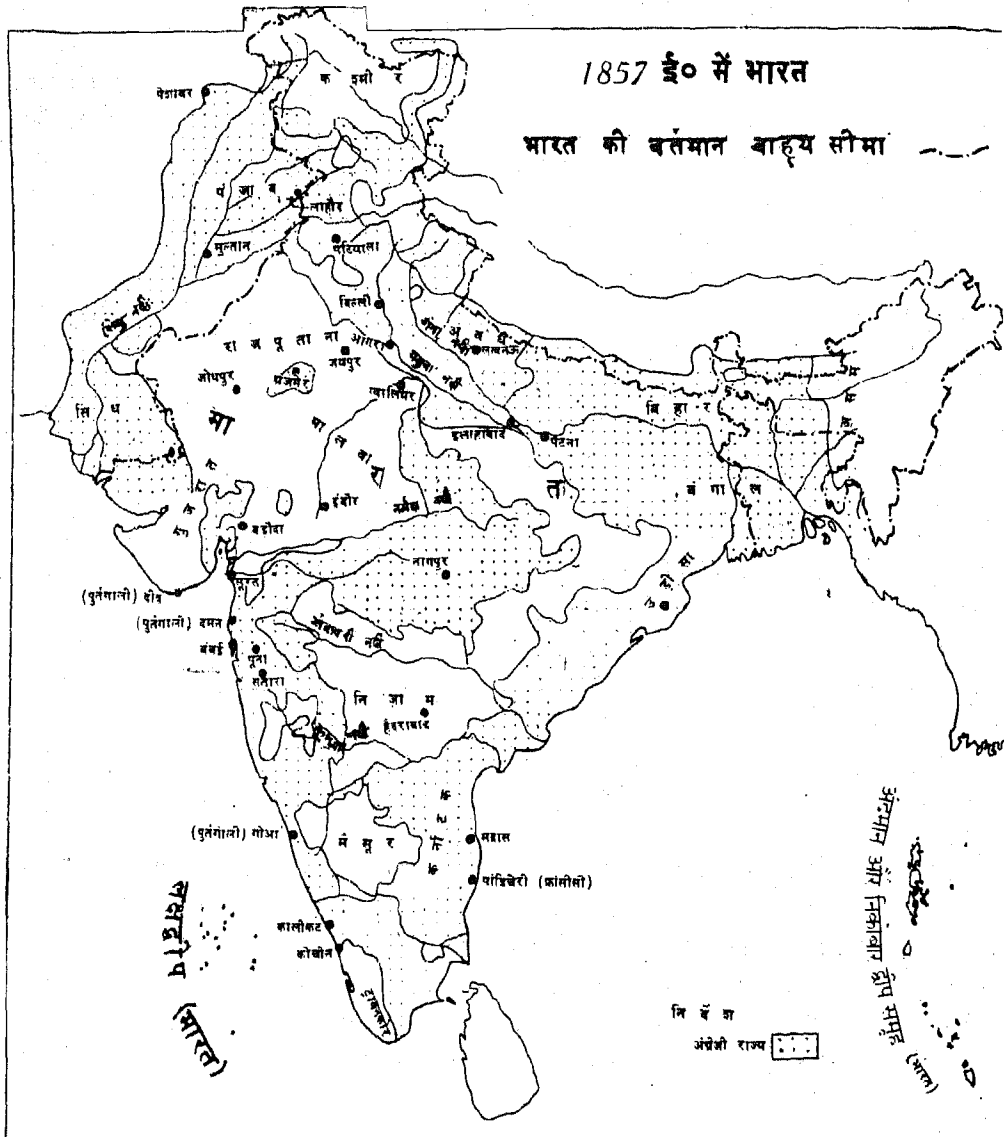
अब एक प्रमुख शक्ति के रूप में केवल मराठे ही ब्रिटिश प्रभुत्व से बचे हुए थे। अब वेलेजली ने उनकी ओर ध्यान देना आरंभ किया और उनके अंदरूनी मामलों में खुलकर हस्तक्षेप करने लगा।

इस समय मराठा साम्राज्य पांच बड़े सरदारों का एक महासंघ था। ये थे पूना का पेशवा, बड़ौदा का गायकवाड़, ग्वालियर का सिंधिया, इंदौर का होल्कर, और नागपुर का भौंसले। पेशवा इस महासंघ का नाममात्र का प्रमुख था। लेकिन ये सभी सरदार आपसी झगड़ों में कट-मर रहे थे और बढ़ते हुए विदेशियों के खतरे की ओर से बेखबर थे।

वेलेजली ने बार-बार पेशवा और सिंधिया के आगे सहायक संधि का प्रस्ताव रखा था। मगर दूरदर्शी नाना फड़नवीस ने इस जाल में फंसने से इंकार कर दिया था। मगर 25 अक्तूबर 1802 को जब दिवाली के दिन होल्कर ने पेशवा और सिंधिया की मिली-जुली सेना को हरा दिया तो कायर पेशवा बाजीराव द्वितीय भागकर अंग्रेजों की शरण में जा पहुंचा और वर्ष 1802 के अंतिम दिन उसने बसाई में एक सहायक संधि पर हस्ताक्षर कर दिए।

यह जीत कुछ आसानी से ही मिल गई थी। मगर एक बात पर वेलेजली गलत था : अभिमानी मराठा सरदार बिना लड़ाई के अपनी स्वाधीनता की परंपरा छोड़ने वाले नहीं थे। मगर संकट की इस घड़ी में भी वे साझे शत्रु के खिलाफ एकजुट नहीं हुए। जब सिंधिया और भोंसले अंग्रेजों से लड़ रहे थे, तब होल्कर चुपचाप दूर पड़ा था और गायकवाड़ अंग्रेजों की मदद कर रहा था। फिर जब होल्कर ने तलवार उठाई तो भोंसले और सिंधिया ने अपना बदला चुकाया।

नाना फड़नवीस

दक्षिण में आर्थर वेलेजली की कमान में ब्रिटिश सेना ने असाय में सितंबर 1803 में और फिर अरगांव में नवंबर में सिंधिया और भोंसले की मिली-जुली सेना को हराया। उत्तर में लार्ड लेक ने नवंबर की पहली तारीख को लसवाड़ी में सिंधिया की सेना को तहस-नहस कर दिया और अलीगढ़, दिल्ली और आगरा पर कब्जा कर लिया। भारत का अंधा सम्राट एक बार फिर कंपनी का पेंशनखोर हो गया। मित्र मराठा राज्यों को शांति की बीतचीत चलानी पड़ी। अब वे दोनों कंपनी के अधीनस्थ सहयोगी बन गए। उन्होंने अंग्रेजों को अपने राज्यों के कुछ भाग दिए, अपने दरबारों में

अंग्रेज़ रेजिडेंट रखे और अंग्रेजों की सहमति के बिना यूरोपीयों को सेवा में न रखने का वचन दिया। अब उड़ीसा के समुद्र तट पर और गंगा-यमुना के दोआब पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया। पेशवा उनके हाथों की एक कठपुतली बनकर रह गया।

वेलेजली ने अब अपना ध्यान होल्कर पर केंद्रित किया। पर यशवंतराव होल्कर अंग्रेजों के लिए काफी भारी साबित हुआ और अंत तक ब्रिटिश सेना से लड़ता रहा। होल्कर के सहयोगी भरतपुर के राजा ने लेक को, जब उसने राजा के किले को तोड़ने की असफल कोशिश की, भारी नुकसान पहुंचाया। इसके अलावा होल्कर परिवार के साथ अपनी पुरानी दुश्मनी भुलाकर सिंधिया उससे हाथ मिलाने की बात सोचने लगा। दूसरी ओर, ईस्ट इंडिया कंपनी के शेयर होल्डरों को पता चला कि युद्ध के जरिए प्रसार की नीति बहुत महंगी पड़ रही थी और उनका मुनाफा इससे कम हो रहा था। कंपनी का कर्ज जो 1797 में 170 लाख पौंड था 1806 तक बढ़कर 310 लाख पौंड हो चुका था। इसके अलावा ब्रिटेन के वित्तीय साधन ऐसे समय में खत्म हो रहे थे जब नेपोलियन यूरोप में एक बार फिर एक बड़ा खतरा बन रहा था। ब्रिटिश राजनेताओं और कंपनी के डायरेक्टरों को लगा कि अब आगे प्रसार रोक देने, बर्बाद कर देने वाले खर्च बंद कर देने, और भारत में ब्रिटेन को जो कुछ हाल में उपलब्ध हुआ था उसे ही सुरक्षित करने और मजबूत बनाने का समय आ चुका है। इसलिए वेलेजली को भारत से वापस बुला लिया गया और कंपनी ने जनवरी 1806 में राजघाट की संधि के द्वारा होल्कर के साथ शांति स्थापित कर ली और उसे उसके राज्य का एक बड़ा भाग लौटा दिया।

वेलेजली की प्रसार की नीति सफलता के निकट पहुंची ही थी कि रोक दी गई थी। फिर भी इसका नतीजा यह हुआ था कि ईस्ट इंडिया कंपनी भारत की सबसे बड़ी शक्ति बन चुकी थी। कंपनी की न्यायिक सेवा के एक युवक अधिकारी हेनरी रोबरक्ला ने 1805 में लिखा :

भारत में मौजूद हर अंग्रेज़ गर्व से भरा हुआ और अकड़ा हुआ है। वह अपने को एक विजित जनता का विजेता मानता है और अपने नीचे के हर व्यक्ति को कुछ श्रेष्ठता की भावना के साथ देखता है।

लार्ड हेस्टिंग्ज के काल में प्रसार (1813-22)

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध ने मराठा सरदारों की शक्ति को तोड़ दिया था, पर उनके साहस को नहीं तोड़ सका था उन्होंने 1817 में अपनी खोई स्वाधीनता और प्रतिष्ठा को फिर से पाने का एक और हताशपूर्ण प्रयत्न किया। मराठा सरदारों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने में पहल पेशवा ने की जो ब्रिटिश रेजिडेंट के कड़े नियंत्रण में छटपटा रहा था। पेशवा ने नवंबर 1817 में पूना में अंग्रेज़ रेजिडेंट पर हमला किया। अप्पा साहब ने नागपुर स्थित रेजीडेंसी पर हमला किया और माधवराव होल्कर युद्ध की तैयारी करने लगा।

गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज 1813-22 ने पूरी ताकत के साथ जवाबी हमला किया। उसने सिंधिया को ब्रिटिश अधीनता स्वीकार करने को मजबूर किया, और पेशवा, भौंसले और होल्कर की सेनाओं को हराया। पेशवा को गद्दी से उतारकर और पेंशन देकर कानपुर के पास बिठूर में बिठा दिया गया। उसका राज्य हड़पकर बंबई की विस्तारित प्रेसिडेंसी बनाई गई। होल्कर और भौंसले ने सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया। मराठों के गर्व को संतुष्ट करने के लिए पेशवा की जमीन पर सतारा का छोटा-सा राज्य बनाया गया और उसे छत्रपति शिवाजी के एक वंशज को दे दिया गया जो पूरी तरह अंग्रेजों पर निर्भर होकर सतारा शासन चलाता रहा। दूसरे भारतीय राज्यों के शासकों की तरह अब मराठा सरदार भी ब्रिटिश सत्ता की दया पर आश्रित हो गए।

राजपूताना के राज्य कई दशकों से सिंधिया और

होल्कर के प्रभुत्व में थे। मराठों के पतन के बाद वे लोग भी अपनी स्वाधीनता का फिर से दावा करने में असमर्थ थे और उन्होंने तत्काल ही अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली।

इस तरह 1818 तक पंजाब और सिंध को छोड़कर पूरा भारतीय उपमहाद्वीप अंग्रेजों के नियंत्रण में आ चुका था। इस पूरे क्षेत्र के एक भाग पर सीधे अंग्रेजों का शासन था और बाकी भाग पर अनेक भारतीय शासक राज्य कर रहे थे जिन पर अंग्रेजों का पूरा-पूरा जोर चलता था। इन राज्यों के पास अपनी सेनाएं नहीं के बराबर थीं, और उनके कोई स्वतंत्र विदेशी संबंध नहीं थे। उनके राज्यों में उन्हीं पर नियंत्रण रखने के लिए जो ब्रिटिश सेना तैनात थी उसके भारी खर्च उनको उठाने पड़ते थे। वे अपने अंदरूनी मामलों में स्वायत्त तो थे, मगर इस सिलसिले में भी रेजिडेंट के रूप में अंग्रेजों के अधिकार को स्वीकार करते थे। वे लगातार आजमाइश की हालत में बने रहे।

ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ बनाने का काम (1818-57)

पूरे भारत को जीतने का काम अंग्रेजों ने 1818 से 1857 तक के काल में किया। सिंध और पंजाब भी जीत लिए गए तथा अवध, मध्य प्रांत और बहुत सारे छोटे-छोटे राज्यों का अधिग्रहण कर लिया गया।

सिंध की विजय : यूरोप और एशिया में अंग्रेजों और रूसियों की शत्रुता बढ़ रही थी और अंग्रेजों को भय था कि अफगानिस्तान या फारस के रास्ते रूसी भारत पर हमला कर सकते हैं। सिंध की विजय इसी का परिणाम थी। रूस को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अफगानिस्तान और फारस में अपना प्रभाव बढ़ाने का फैसला किया। उसने यह भी महसूस किया कि यह नीति तभी सफल हो सकेगी जब सिंध को ब्रिटिश नियंत्रण में लाया जाए। सिंध नदी के व्यापारिक उपयोग की संभावनाएं भी इस लालच का एक कारण थीं।

1832 की एक संधि के द्वारा सिंध की सड़कों और नदियों को ब्रिटिश व्यापार के लिए खोल दिया गया था। सिंध के अमीर कहलाने वाले सरदारों से 1839 में एक सहायक संधि पर हस्ताक्षर कराए गए। अंत में पहले के इन वादों को भुलाकर कि उनके राज्य पर कोई आंच नहीं आएगी, सर चार्ल्स नेपियर ने 1843 में एक संक्षिप्त अभियान के बाद सिंध का अधिग्रहण कर लिया। इससे पहले नेपियर ने अपनी डायरी में लिखा था कि "हमें सिंध पर कब्जा करने का कोई हक नहीं है, फिर भी हम ऐसा करेंगे, और यह बदमाशी का एक बहुत ही लाभदायक, उपयोगी और मानवीय उदाहरण होगा।" यह काम करने के बदले उसे पुरस्कारस्वरूप सात लाख रुपए मिले।

पंजाब की विजय : जून 1839 में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता फैल गई, और वहां ताबड़तोड़ सरकारें आईं और गईं। स्वार्थी और भ्रष्ट नेताओं का बोलबाला हो गया। अंत में सत्ता बहादुर और देशभक्त मगर एकदम अनुशासनहीन सेना के हाथों में आई। इसके बाद अंग्रेज़ सतलुज पार पांच पानियों के देश को लालच भरी निगाहों से देखने लगे, हालांकि उन्होंने 1809 में रणजीतसिंह के साथ स्थायी मित्रता की संधि पर हस्ताक्षर किए थे।

अंग्रेजों के युद्धोन्मादी कार्यों और पंजाब के भ्रष्ट सरदारों के साथ उनकी साजिशों के कारण पंजाब की सेना भड़क उठी। वर्ष 1845 के बसंत में यह समाचार पंजाब पहुंचा कि पुल बनाने के काम में आने वाली नावें बंबई से सतलुज किनारे स्थित फिरोजपुर के लिए भेजी गई हैं। आगे के इलाकों में बैरकें बनाई गई हैं और उनमें अतिरिक्त सेना रखी गई है, और पंजाब से लगने वाली सीमा के लिए अतिरिक्त रेजीमेंटें भेजी जा रही हैं। पंजाब की सेना को विश्वास हो गया कि अंग्रेज़ पंजाब पर कब्जा करने पर आमादा थे, और फिर पंजाब की सेना ने जवाबी कार्रवाईयां कीं। जब

दिसंबर में सेना ने सुना कि प्रधान सेनापति लार्ड गफ और गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिंग्ज फिरोजपुर की ओर बढ़ रहे हैं तब उसने भी हमला करने का फैसला किया। इस तरह 13 दिसंबर 1845 को दोनों के बीच युद्ध छिड़ गया। इस विदेशी खतरे के आगे हिंदू, मुसलमान और सिख फौरन एक हो गए। पंजाब की सेना बहुत बहादुरी और उदाहरणीय साहस के साथ लड़ी। लेकिन उसके कुछ नेता पहले ही गद्दार बन चुके थे। प्रधानमंत्री राजा लालसिंह और प्रधान सेनापति मिस्सर तेजसिंह का शत्रु के साथ गुप्त पत्रव्यवहार जारी था। पंजाब की सेना हार स्वीकार करने और 8 मार्च 1846 को लाहौर में एक अपमानजनक समझौते पर हस्ताक्षर करने को बाध्य हो गई। अंग्रेजों ने जलंधर के दोआब को हड़प लिया और पचास लाख रुपए नगद लेकर जम्मू और कश्मीर को राजा गुलाबसिंह डोगरा के हवाले कर दिया। पंजाब की सेना को घटाकर 20,000 पैदल और 12,000 घुड़सवार सेना तक सीमित कर दिया गया और एक भारी ब्रिटिश सेना लाहौर में तैनात कर दी गई।

बाद में 16 दिसंबर 1846 को एक और समझौता हुआ जिसके अनुसार राज्य के एक-एक विभाग के सारे मामलों में लाहौर स्थित अंग्रेज़ रेजिडेंट को पूरा अधिकार दे दिया गया। इसके अलावा राज्य के किसी भी भाग में सेना तैनात करने की छूट अंग्रेजों को मिल गई। अब अंग्रेज़ रेजिडेंट ही पंजाब का वास्तविक शासन बन बैठा और पंजाब अपनी स्वाधीनता खोकर एक अधीन राज्य बन गया।

लेकिन भारत में खुलकर साम्राज्यवादी आक्रमणों का समर्थन करने वाला ब्रिटिश अधिकारियों का भाग अभी भी असंतुष्ट था, और वह पंजाब पर सीधे-सीधे ब्रिटिश शासन लादना चाहता था। इसका अवसर उसे 1848 में मिला जब स्वतंत्रता-प्रेमी पंजाबियों ने अनेकों स्थानीय विद्रोह छेड़ दिए। इनमें से दो प्रमुख विद्रोहों के नेता मुल्तान के मूलराज और लाहौर के पास के छतरसिंह अटारीवाला थे। एक बार फिर पंजाबियों की निर्णायक हार हुई। इस अवसर का फायदा उठाकर लार्ड डलहौजी ने पंजाब को हड़प लिया। इस तरह भारत का अंतिम स्वाधीन राज्य भी भारत के ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया।

डलहौजी की अधिग्रहण की नीति (1848-56)

लार्ड डलहौजी 1848 में गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया। वह शुरू से ही इस बात पर आमादा था कि जितने बड़े इलाके पर संभव हो, प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन स्थापित किया जाए। उसने घोषणा की थी कि "भारत के सभी देशी राज्यों का खात्मा अब कुछ ही समय की बात है।" उसकी नीति का उद्देश्य भारत को ब्रिटेन का निर्यात बढ़ाना था। दूसरे साम्राज्यवादी आक्रमणकारियों की तरह डलहौजी को भी विश्वास था कि भारत के देशी राज्यों के लिए ब्रिटेन का निर्यात इसलिए घट रहा था कि इन राज्यों के भारतीय शासक उनका शासन ठीक से नहीं चला रहे हैं। इसके अलावा वह समझता था कि "भारतीय सहयोगी" भारत में ब्रिटिश विजय में जितने सहायक हो सकते थे उतने हो चुके हैं, और अब उनसे छुटकारा पाने में ही लाभ है।

लार्ड डलहौजी ने अपनी अधिग्रहण की नीति के लिए जिस साधन का सहारा लिया, वह था राज्य विलय का सिद्धांत (डाक्ट्रिन ऑफ लैप्स)। इस सिद्धांत के अनुसार अगर किसी सुरक्षाप्राप्त राज्य का शासक बिना एक स्वाभाविक उत्तराधिकारी के मर जाए तो उसका राज्य उसके दत्तक उत्तराधिकारी को नहीं सौंपा जाएगा जैसी कि सदियों से इस देश में परंपरा चलती आ रही थी। इसके बजाए, अगर उत्तराधिकारी गोद लेने के काम को पहले से अंग्रेज़ अधिकारियों की सहमति प्राप्त न होगी तो वह राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिया जाएगा। 1848 में सतारा और वर्ष 1854 में नागपुर और झांसी समेत अनेक राज्यों का इसी सिद्धांत के अनुसार अधिग्रहण कर लिया गया था।

1857 ई० में भारत
भारत की वर्तमान बाह्य सीमा
क श्मी र
पेशावर
पं जा ब
लाहौर
मुल्तान
पटियाला
दिल्ली
रा ज पू ता ना
आगरा
जयपुर
जोधपुर
अजमेर
ग्वालियर
लखनऊ
सि ध
इलाहाबाद
पटना
बि हा र
बं गा ल
इंदौर
बड़ोदा
सूरत
नागपुर
(पुर्तगाली) दीव
(पुर्तगाली) दमन
बंबई
पूना
सतारा
नि जा म
हैदराबाद
(पुर्तगाली) गोआ
मैसूर
मद्रास
पांडिचेरी (फ्रांसीसी)
कालीकट
कोचीन
लक्षद्वीप (भारत)
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
निर्देश
अंग्रेजी राज्य
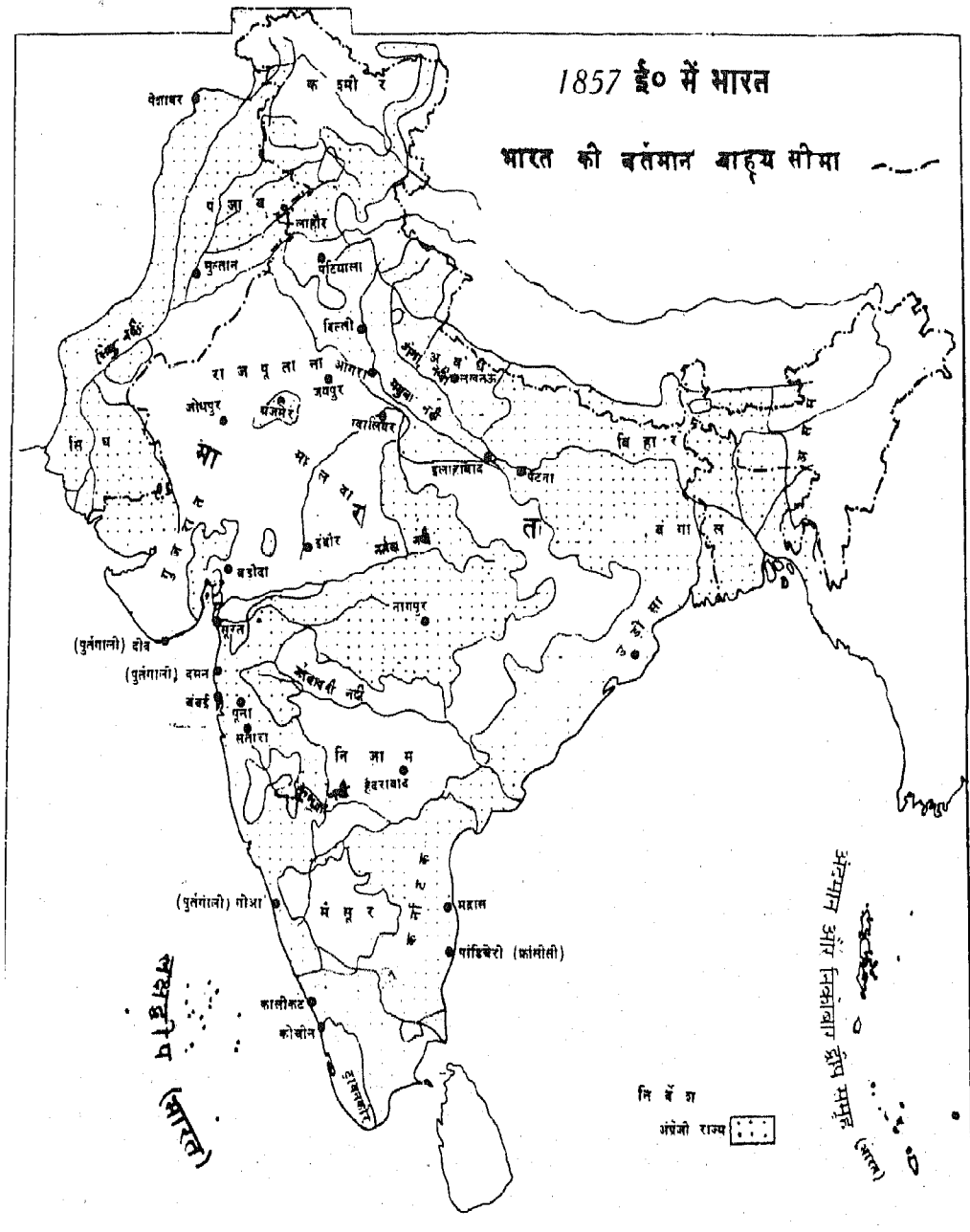
डलहौजी ने अनेक भूतपूर्व शासकों के अधिकारों को मान्यता देने और उन्हें पेंशन देने से भी इनकार कर दिया। इस तरह कर्नाटक और सूरत के नवाबों और तंजौर के राजा की उपाधियां छीन ली गईं। इसी तरह भूतपूर्व पेशवा बाजीराव द्वितीय, जिसे बिठूर का राजा बना दिया गया था, जब मरा तो डलहौजी ने उसका वेतन या पेंशन उसके दत्तक पुत्र नाना साहब को देने से इनकार कर दिया।

लार्ड डलहौजी की निगाहें अवध के साम्राज्य को हड़पने पर भी लगी थीं। पर इस काम में कुछ बाधाएं थीं। पहली यह कि बक्सर की लड़ाई के बाद से ही अवध के नवाब अंग्रेजों के सहयोगी रहे थे। इसके अलावा इन तमाम वर्षों में वे अंग्रेजों के सबसे अधिक आज्ञाकारी भी रहे थे। अवध के नवाब के कई उत्तराधिकारी थे और इसलिए उस पर राज्य विलय का सिद्धांत भी लागू नहीं किया जा सकता था। अवध के नवाब को राज्य से वंचित करने के लिए किसी और बहाने की जरूरत थी। अंत में, लार्ड डलहौजी ने अवध की जनता की दशा सुधारने के विचार का सहारा लिया। नवाब वाजिद अली शाह पर इल्जाम लगाया गया कि उन्होंने अपना शासन ठीक से नहीं चलाया है और सुधार लागू करने से इनकार कर दिया है इसके बाद उनके राज्य को 1856 में हड़प लिया गया।

निःसंदेह अवध के शासन का पतन वहां की जनता के लिए कष्ट का कारण था। अवध के नवाब भी अपने समय के दूसरे शासकों की तरह स्वार्थी और
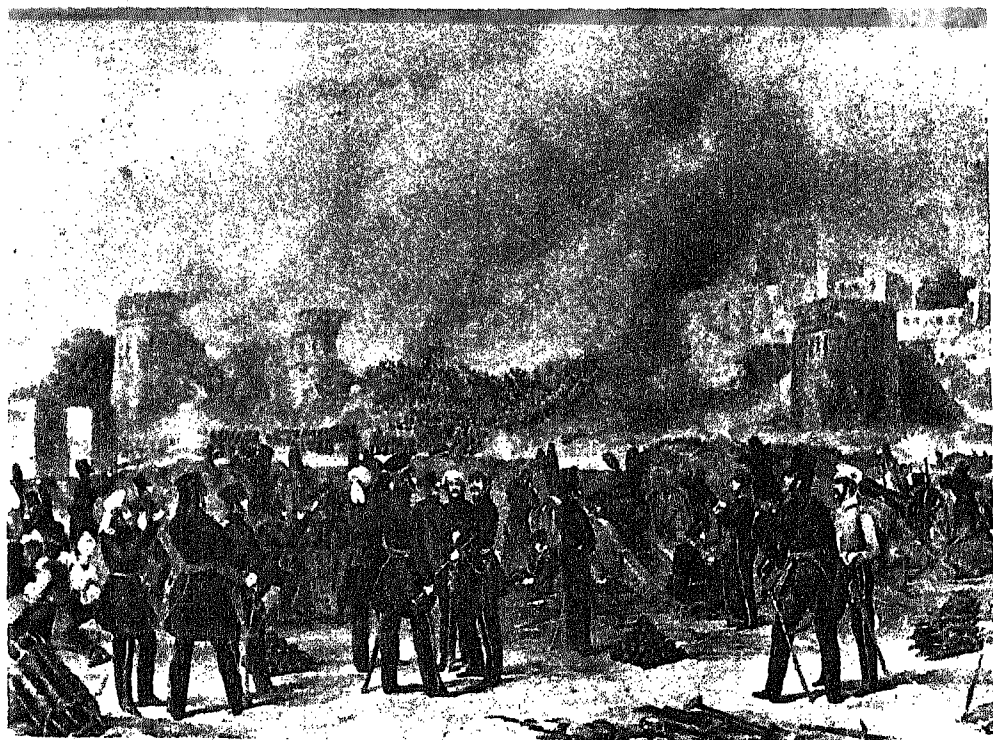
द्वितीय ब्रिटिश-सिक्ख युद्ध के दौरान ब्रिटिश फौज द्वारा मुलतान पर धावा, 1849

अय्याशियों में डूबे हुए थे और प्रशासन ठीक से चलाने या जनता की भलाई करने की चिंता नहीं करते थे। पर इस हालात के लिए अंशतः अंग्रेज़ भी जिम्मेदार थे जो 1801 से ही अवध पर नियंत्रण किए हुए थे और परोक्ष रूप से वहां राज कर रहे थे। वास्तव में डलहौजी का लालच इस कारण से था कि अवध अपनी बेपनाह दौलत के साथ मैनचेस्टर में तैयार मालों के लिए एक अच्छा बाजार बन सकता था; यही चीज थी जो उसकी तथाकथित 'मानवतावादी' भावनाओं के पीछे काम कर रही थी। और ऐसे ही कारणों से कच्चे कपास की ब्रिटेन की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए डलहौजी ने 1853 में निजाम से बरार का कपास-उत्पादक प्रांत ले लिया था।

यह बात हमें स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि देशी राज्यों के बने रहने या हड़पे जाने का उस समय कोई अधिक महत्त्व नहीं रह गया था। वास्तव में तब कोई भारतीय राज्य था भी नहीं। सुरक्षाप्राप्त देशी राज्य भी उसी तरह ब्रिटिश साम्राज्य के भाग थे जिस तरह कंपनी के प्रत्यक्ष शासन वाले इलाके। अगर कुछ राज्यों पर ब्रिटिश नियंत्रण का स्वरूप बदला गया तो केवल अंग्रेजों की सुविधा के लिए। वहां की जनता के हित का इस परिवर्तन से कोई संबंध न था।

अभ्यास

1. निम्नांकित शब्दों का अर्थ स्पष्ट कीजिए :
   फैक्टरी (कारखाना), दस्तक, द्वैध शासन, निज़ामत, दीवानी, अधीन राज्य।
2. पंद्रहवीं सदी के अंत के आसपास से लेकर अठारहवीं सदी के मध्य के आसपास के बीच यूरोप के साथ भारत के व्यापार का विवेचन कीजिए। विभिन्न व्यापारिक कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धाओं और टकराओं का विवेचन कीजिए और यह भी बताइए कि अंततः इनको कैसे हल किया गया।
3. दक्षिण भारत के आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धों का वर्णन कीजिए इनके परिणामों का विवेचन कीजिए।
4. बंगाल के नवाब और अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच होने वाले युद्ध के कारण बताइए। उन कारकों का विवेचन कीजिए जिनके कारण अंग्रेज़ विजयी हुए। इसके परिणामों पर भी प्रकाश डालिए।
5. उन घटनाओं का वर्णन कीजिए जिनकी वजह से बक्सर का युद्ध हुआ। इस युद्ध के नतीजे क्या हुए?
6. 1775 से 1782 की अवधि को भारत में ब्रिटिश सत्ता के लिए "अंधकारकाल" क्यों कहा गया है? इसकी व्याख्या कीजिए।
7. वेलजली ने भारत में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार के लिए जो तरीके अपनाए उनका वर्णन कीजिए। इन तरीकों की क्षमता का आकलन कीजिए और अपने तर्क के समर्थन में उदाहरण भी दीजिए।
8. मैसूर के साथ ब्रिटिश लोगों के युद्धों का जो सिलसिला चला था, उसका इतिहास बताइए।
9. मराठा और ब्रिटिश लोगों के बीच जो संघर्ष हुए उनके मुख्य चरणों का वर्णन कीजिए। उन घटनाओं के आरंभ तथा विकास का वर्णन कीजिए जिनके कारण मराठा शक्ति का लोप हो गया। इसके नतीजों का विवेचन कीजिए।

10. अवध और सिंध को अपने राज्य में मिलाने के लिए अंग्रेजों ने जो कदम उठाए उनका विवेचन कीजिए।
11. उदाहरण देकर डलहौजी की विजय तथा राज्यों को मिलाने की नीति का वर्णन कीजिए।
12. सत्रहवीं सदी में अंग्रेजों पुर्तगालियों और फ्रांसीसियों ने जहां-जहां अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित किए थे, भारत के मानचित्र में उनको दिखाइए।
13. वर्ष 1766, 1805 और 1856 में भारत के जिन भू-भागों पर प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन था, भारत के मानचित्र पर उनको प्रदर्शित कीजिए।
14. निम्नांकित दस्तावेजों को पढ़िए तथा उनके ऊपर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिएः
    क. प्लासी की लड़ाई के पहले अंग्रेज़ अधिकारियों के साथ मीर जाफर द्वारा की गई संधि।
    ख. शाह आलम द्वितीय द्वारा जारी किया गया फरमान जिसमें बंगाल बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को दी गई थी।
    ग. 12 अक्टूबर 1800 को ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और निज़ाम के बीच की गई संधि।

अध्याय : 3

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक नीतियां और प्रशासनिक ढांचा (1757-1857)

भारत के विशाल साम्राज्य को हथिया लेने के बाद इस पर नियंत्रण रखने और शासन चलाने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी को उपयुक्त तरीके तैयार करने पड़े। वर्ष 1757 से 1857 की लंबी अवधि के दौरान कंपनी की प्रशासनिक नीति अक्सर बदलती रही। फिर भी इसने अपना मुख्य लक्ष्य कभी आंखों से ओझल नहीं होने दिया, वे लक्ष्य थे : कंपनी के मुनाफे में बढ़ोतरी, भारत पर अधिकार को ब्रिटेन के लिए फायदेमंद बनाना, तथा भारत पर ब्रिटिश पकड़ को कायम रखना और उसे सुदृढ़ करना; इसके अतिरिक्त जितने उद्देश्य थे वे इन उद्देश्यों की मदद के लिए थे। भारत सरकार का प्रशासनिक ढांचा इन्हीं लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बनाया और विकसित किया गया था। इस मामले में मुख्य ज़ोर कानून और व्यवस्था को बनाए रखने पर दिया जाता था ताकि बिना व्यवधान के भारत के साथ व्यापार किया जा सके और इसके संसाधनों का दोहन किया जा सके।

सरकार का ढांचा

ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों ने 1765 में जब बंगाल पर नियंत्रण कर लिया तो इसके प्रशासनिक ढांचे में कोई नया परिवर्तन करने का उनका नाममात्र को भी इरादा नहीं था। वे सिर्फ अपना लाभकारी व्यापार जारी रखना चाहते थे और चाहते थे कि कर वसूल कर उसको इंग्लैंड भेजते रहें। वर्ष 1765 से 1772 तक, जब दोहरी शासन व्यवस्था चल रही थी। भारतीय अधिकारियों को पहले जैसे काम करने की अनुमति थी लेकिन ऐसा वे ब्रिटिश गवर्नर तथा ब्रिटिश अधिकारियों की देख-रेख में ही कर सकते थे। भारतीय अधिकारियों के पास दायित्व थे लेकिन अधिकार नहीं थे, इसके विपरीत कंपनी के अधिकारियों के पास अधिकार पूरे थे लेकिन उनका कोई दायित्व नहीं था। दोनों ही तरफ के अधिकारी भ्रष्ट और दुराचारी लोग थे। वर्ष 1772 में कंपनी ने दोहरी शासन व्यवस्था समाप्त कर दी और बंगाल का शासन अपने हाथ में लेकर अपने अधिकारी नियुक्त कर दिए। लेकिन विशुद्ध रूप से व्यापार करने वाली कंपनी में जो अंतर्निहित बुराइयां होती हैं, वे जल्दी ही स्पष्ट झलकने लगीं।

इस समय तक ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापार कंपनी थी जिसका ढांचा पूर्वी देशों से व्यापार के लिए बनाया गया था। इसके साथ ही इसका सर्वोच्च अधिकारी इंग्लैंड में रहता था, वह भारत से हज़ारों मील की दूरी पर था। इसके बावजूद करोड़ों लोगों के ऊपर इसने राजनीतिक आधिपत्य कायम कर लिया था। इस असामान्य स्थिति के कारण ब्रिटिश सरकार के आगे अनेक समस्याएं खड़ी हो गईं। ईस्ट इंडिया कंपनी और

उसके साम्राज्य का ब्रिटेन में बैठे कंपनी के अधिकारीगण हजारों मील दूर भारत स्थित अधिकारियों और सैनिकों की विशाल संख्या पर किस प्रकार नियंत्रण करें? बंगाल, मद्रास और बंबई में बिखरे हुए कंपनी के अधिकार-क्षेत्रों के लिए भारत में एक ही नियंत्रण केंद्र किस प्रकार स्थापित किया जाए?

इनमें से पहली समस्या सबसे विकट थी और सबसे महत्त्वपूर्ण भी। इसके अलावा यह समस्या ब्रिटेन में जारी दलगत और संसदीय दांव-पेंचों से, अंग्रेज़ राजनेताओं की राजनीतिक महत्वकांक्षाओं से और अंग्रेज़ व्यापारियों के व्यापारिक लोभ से भी घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी। बंगाल के भारी संसाधन कंपनी के हाथों में आ गए थे और उसके मालिकों ने फौरन ही लाभांश की दर बढ़ाकर 1767 में दस प्रतिशत कर दी थी, और 1771 में उन्होंने इसे और भी बढ़ाकर साढ़े बारह प्रतिशत करने का प्रस्ताव रखा था। कंपनी के अंग्रेज़ सेवकों ने अपनी स्थिति का लाभ उठाकर गैर-कानूनी और असमान व्यापार से तथा भारतीय शासकों और जमींदारों से जबर्दस्ती रिश्वतें और 'तोहफ़े' वसूल करके तेज़ी से धन कमाया था। क्लाइव जब 34 वर्ष की आयु में इंग्लैंड लौटा तो उसके पास इतनी संपत्ति थी कि उसे प्रति वर्ष 40,000 पौंड की आय हो सके।

कंपनी द्वारा दिए जा रहे लाभांश की ऊंची दरों और उसके अधिकारी जो भारी संपत्ति लेकर स्वदेश लौटते उसने ब्रिटिश समाज के दूसरे वर्गों में भी ईर्ष्या की आग भड़का दी। कंपनी के एकाधिकार के कारण पूर्व के साथ व्यापार न कर पा रहे व्यापारी, उद्योगपतियों का उभरता वर्ग, तथा आम तौर पर, ब्रिटेन में मुक्त उद्यम की उभरती शक्तियां--ये सभी उस लाभकारी भारतीय व्यापार और भारत की विशाल संपत्ति में हिस्सा बंटाना चाहते थे जिसका अभी तक कंपनी और उसके सेवक ही उपयोग कर रहे थे। इसलिए इस व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को तोड़ने के लिए जी-तोड़ कोशिश की और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने बंगाल में कंपनी के शासन पर हमला किया। उन्होंने भारत से ब्रिटेन लौटने वाले कंपनी के अधिकारियो को अपना खास निशाना बनाया। इन अधिकारियों को 'नवाब' कहकर उनकी हंसी उड़ाई जाती थी तथा प्रेस में और मंच पर उनका मज़ाक उड़ाया जाता था। अभिजात वर्ग ने उनका बहिष्कार किया और भारतीय जनता का शोषक और उत्पीड़क कहकर उनकी निंदा की। उनके दो खास निशाने क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज़ थे। कंपनी के विरोधियों को आशा थी कि 'नवाबों' की निंदा करके वे कंपनी को अलोकप्रिय बना सकेंगे और फिर उसे स्थानच्युत कर सकेंगे।

अनेक मंत्री और संसद के दूसरे सदस्य भी बंगाल की संपत्ति से लाभ उठाने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने जनसमर्थन पाने के लिए कंपनी को मजबूर किया कि वह ब्रिटिश सरकार को खिराज दे ताकि भारत से प्राप्त राजस्व के सहारे इंग्लैंड में टैक्सों या सार्वजनिक ऋणों को बोझ कम किया जा सके। वर्ष 1767 में संसद ने एक कानून बनाकर कंपनी के लिए ब्रिटिश खज़ाने में प्रति वर्ष चार लाख पौंड देना अनिवार्य बना दिया। ब्रिटेन के अनेक राजनीतिक विचारक और राजनेता कंपनी और उसके अधिकारियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाना चाहते थे, क्योंकि उन्हें डर था कि शक्तिशाली बनकर कंपनी और उसके अधिकारी अंग्रेज़ राष्ट्र और उसकी राजनीति को भ्रष्ट कर सकते थे। 18वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन की राजनीति अत्यंत ही भ्रष्ट हो चुकी थी। कंपनी और उसके अधिकारियों ने अपने एजेंटों के लिए पैसे के बल पर हाउस ऑफ कामंस की सदस्यताएं प्राप्त की थीं। अनेक अंग्रेज़ राजनेताओं को चिंता लगी थी कि भारत की लूट के बल पर कंपनी और उसके अधिकारी ब्रिटिश सरकार पर निर्णायक प्रभाव डालने की स्थिति में आ जाएंगे। कंपनी और उसके विशाल भारतीय साम्राज्य पर अंकुश लगाना आवश्यक था, वरना भारत की स्वामिनी बनकर

कंपनी ब्रिटिश प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित कर लेगी और ब्रिटिश जनता की स्वतंत्रता नष्ट करने की स्थिति में आ जाएगी।

मात्र कंपनी को प्राप्त विशेषाधिकारों पर अर्थशास्त्रियों के उस उभरते वर्ग ने भी चोट की जो मुक्त व्यापार और उद्योग पर आधारित पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व करते थे। शास्त्रीय अर्थशास्त्र के संस्थापक एडम स्मिथ ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "राष्ट्रों की संपत्ति" (वेल्थ ऑफ नेशंस) में सीमित सदस्यता वाली कंपनियों की निंदा कीः

> इस तरह इस प्रकार की सीमित कंपनियां अनेक अर्थों में क्षतिकारी हैं। वे जिन देशों में स्थापित होती हैं उनके लिए कमोबेश असुविधाजनक होती हैं, और जिन देशों में दुर्भाग्य से उनकी सरकार स्थापित हो चुकी है, उनके लिए विध्वंस का कारण होती हैं।

इस तरह ब्रिटिश राज्य तथा कंपनी के अधिकारियों के पारस्परिक संबंधों का पुनर्गठन आवश्यक हो गया। फिर एक समय ऐसा आया जब कंपनी को सरकार से दस लाख पौंड का ऋण मांगना पड़ा। लेकिन अगर कंपनी के अनेक शक्तिशाली शत्रु थे तो संसद में उसके शक्तिशाली मित्र भी थे। इसके अलावा सम्राट जार्ज तृतीय उसके संरक्षक थे। इसलिए कंपनी ने जमकर शत्रुओं का सामना किया। अंत में संसद ने एक समझौते का रास्ता निकाला, जिसके अनुसार कंपनी के हितों तथा ब्रिटिश समाज के विभिन्न प्रभावशाली वर्गों के बीच एक नाज़ुक संतुलन कायम हो गया। यह तय किया गया कि कंपनी के भारतीय प्रशासन की बुनियादी नीतियों पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण रहेगा ताकि भारत में ब्रिटिश शासन को ब्रिटेन के उच्च वर्गों के सामूहिक हित में चलाया जा सके। साथ ही पूर्व के साथ व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार बना रहेगा तथा भारत में अपने अधिकारी नियुक्त करने का उसका बहुमूल्य अधिकार भी उसी के हाथों में रहेगा। भारत के प्रशासन का विस्तृत ब्यौरा कंपनी के डायरेक्टरों के लिए छोड़ दिया गया।

वर्ष 1773 का रेगुलेटिंग एक्ट कंपनी की गतिविधियों से संबंधित पहला महत्त्वपूर्ण संसदीय कानून था। इस कानून के कारण कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के गठन में परिवर्तन हुआ तथा उनकी गतिविधियां ब्रिटिश सरकार की निगरानी में आ गईं। पर रेगुलेटिंग एक्ट व्यवहार में जल्द ही बेकार सिद्ध हो गया। इसके कारण ब्रिटिश सरकार को कंपनी पर प्रभावी और निर्णायक नियंत्रण नहीं मिल सका। यह कानून कंपनी और उसके उन विरोधियों के झगड़े को भी सुलझा नहीं सका जो लगातार शक्तिशाली और मुखर होते जा रहे थे। इसके अलावा कंपनी अपने शत्रुओं के हमलों का निशाना बनी रही, क्योंकि उसके भारतीय अधिकार-क्षेत्रों का प्रशासन भ्रष्ट, दमनकारी और आर्थिक दृष्टि से विनाशकारी ही बना रहा।

रेगुलेटिंग एक्ट के दोषों तथा ब्रिटिश राजनीति के उतार-चढ़ाव के कारण 1784 में एक और कानून बनाना पड़ा जिसे पिट का इंडिया एक्ट कहा जाता है। इस कानून के बल पर ब्रिटिश सरकार का कंपनी के मामलों पर तथा उसके भारतीय प्रशासन पर पूरा नियंत्रण स्थापित हो गया। उसने भारतीय मामलों की देख-रेख के लिए छः कमिश्नर नियुक्त किए। इसी को बोर्ड ऑफ कंट्रोल कहा जाता है जिसमें दो कैबिनेट मंत्री भी शामिल होते थे। अब कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स और भारत सरकार के कार्यों का मार्गदर्शन और संचालन इसी बोर्ड ऑफ कंट्रोल को करना था। इस कानून ने भारत के शासन को गवर्नर-जनरल तथा तीन सदस्यों वाली एक कौंसिल के हाथों में दे दिया ताकि अगर एक सदस्य का समर्थन भी गर्वनर-जनरल को प्राप्त हो तो वह अपनी बात मनवा सके। इस कानून ने बंबई और मद्रास प्रेसिडेंसियों को युद्ध, कूटनीति और राजस्व के मामलों में स्पष्ट शब्दों में बंगाल के अधीन कर दिया। इस कानून के साथ भारत में ब्रिटिश विजय का एक

नया युग आरंभ हुआ। इस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी ब्रिटेन की राष्ट्रीय नीति का एक साधन बन गई, और अब भारत का शासन इस प्रकार चलाया जाना था कि उससे ब्रिटेन के शासक वर्गों के सभी भागों के हित पूरे हो सकें। भारत और चीन के साथ व्यापार पर अपना एकाधिकार सुरक्षित पाकर कंपनी भी संतुष्ट हो गई। भारत में ब्रिटिश अधिकारियों को नियुक्त करने तथा सेवा मुक्त करने का लाभदायी अधिकार डायरेक्टरों के हाथों में बना रहा। इसके अलावा भारत की सरकार को भी उन्हीं के माध्यम से चलाए जाने की व्यवस्था थी।

पिट के इंडिया एक्ट ने वह सामान्य ढांचा तो निर्धारित कर दिया जिसमें भारत की सरकार 1857 तक चलाई गई, पर बाद के कानूनों ने अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए जिनसे कंपनी की शक्तियों और विशेषाधिकारों में धीरे-धीरे कमी आई। वर्ष 1776 में गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दे दिया गया कि वह भारतीय साम्राज्य की शांति, सुरक्षा या उसके हितों को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपनी कौंसिल की राय को ठुकरा सके।

वर्ष 1813 के चार्टर एक्ट के अनुसार भारतीय व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार समाप्त हो गया और सभी ब्रिटिश नागरिकों को भारत के साथ व्यापार करने की छूट दे दी गई। पर चाय के व्यापार पर और चीन के साथ व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार बना रहा। किंतु भारत की सरकार तथा उसका राजस्व कंपनी के हाथों में ही बने रहे। भारत में अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार भी कंपनी के हाथों में ही रहा। वर्ष 1833 के चार्टर एक्ट ने चाय के व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया। साथ ही कंपनी के सभी ऋण भारत सरकार ने अपने ऊपर ले लिए। अब उसे ही कंपनी के सभी शेयर होल्डरों को उनकी पूंजी पर साढ़े दस प्रतिशत लाभांश भी देना था। बोर्ड ऑफ कंट्रोल के कड़े नियंत्रण में रहकर भारत में सरकार कंपनी चलाती रही।

इस तरह ऊपर वर्णित विभिन्न संसदीय कानूनों ने कंपनी तथा उसके भारतीय प्रशासन को पूरी तरह ब्रिटिश सरकार के अधीन बना दिया। साथ ही यह भी माना जाने लगा कि भारत का रोजमर्रा का प्रशासन 6,000 मील दूर रहकर नहीं चलाया जा सकता, न ही उस पर निगरानी रखी जा सकती है। इसलिए गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल को सर्वोच्च अधिकार दे दिया गया। चूंकि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर कौंसिल की राय को ठुकराने का अधिकार भी गवर्नर-जनरल को था, इसलिए अब वह भारत का वास्तविक और प्रभावी शासक बन गया और ब्रिटिश सरकार की निगरानी, नियंत्रण तथा मार्गदर्शन में शासन चलाने लगा।

अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंग्रेजों ने भारत में प्रशासन की एक नई प्रणाली स्थापित की। लेकिन इस प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करने से पहले अच्छा यह होगा कि हम उन उद्देश्यों को समझ लें जिनकी पूर्ति के लिए यह प्रणाली बनाई गई। क्योंकि किसी देश की प्रशासन प्रणाली का प्रमुख कार्य यह होता है कि वह उसके शासकों के उद्देश्यों और लक्ष्यों की पूर्ति कर सके। अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य यह था कि कंपनी से लेकर लंकाशायर के उद्योगपतियों तक ब्रिटेन के विभिन्न वर्गों के अधिकतम लाभ के लिए वे भारत का आर्थिक शोषण कर सकें। वर्ष 1793 में गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल सरकार के लिए दो प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए। ये उद्देश्य थे, 'राजनीतिक सुरक्षा सुनिश्चित करना' तथा 'भारत पर अधिकार को ईस्ट इंडिया कंपनी तथा ब्रिटिश राष्ट्र के लिए यथासंभव लाभदायी बनाना।' साथ ही भारत पर विजय तथा उस पर विदेशी शासन का पूरा खर्च भी स्वयं भारत से ही निकाला जाना था। इसलिए भारत में अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों की जांच-पड़ताल परम आवश्यक है।

भारत में अंग्रेजों की आर्थिक नीतियां (1757-1857)

वाणिज्य-नीति : वर्ष 1600 से 1757 तक भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की भूमिका एक ऐसे व्यापारिक निगम की थी जो भारत में माल या बहुमूल्य धातुएं लाता था तथा उनके बदले कपड़े, मसाले, आदि भारतीय माल लेकर उन्हें विदेशों में बेचता था। इसके मुनाफे का मुख्य स्रोत विदेशों में भारतीय माल का विक्रय था। स्वाभाविक था कि कंपनी ब्रिटेन और दूसरे देशों में भारतीय मालों के लिए नए बाजार लगातार खोजती रहती थी। इस प्रकार उसने भारतीय मालों का निर्यात बढ़ाया, तथा उनके उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। यही कारण था कि भारतीय शासक भारत में कंपनी द्वारा फैक्टरियों की स्थापना को सह लेते, बल्कि इसे प्रोत्साहित भी करते थे।

पर आरंभ से ही ब्रिटिश उद्योगपति ब्रिटेन में भारत वस्त्रों की लोकप्रियता से ईर्ष्या करते रहे। वस्त्रों का फैशन एकाएक बदल गया तथा अंग्रेजों के खुरदुरे ऊनी कपड़ों की जगह हल्के सूती वस्त्रों ने ले ली। प्रसिद्ध उपन्यास राबिन्सन क्रूसो के लेखक डेनियल डिफो की शिकायत थी कि "भारतीय वस्त्र हमारे घरों, हमारे कक्षों तथा हमारे शयनागारों में भी प्रवेश कर चुके हैं, पर्दे, गद्दे, कुर्सियां और अंत में हमारे बिस्तर भी मलमल या भारतीय वस्तुओं के अलावा कुछ नहीं रहे।" भारतीय मालों के ब्रिटेन में विक्रय को कम कराने या समाप्त कराने के लिए ब्रिटिश उद्योगपतियों ने अपनी सरकार पर दबाव डाला। वर्ष 1720 तक छापेदार या रंगे सूती वस्त्रों के व्यापार पर प्रतिबंध लगाने वाले कानून बन चुके थे। वर्ष 1760 में एक भद्र महिला को आयातित रूमाल रखने पर दो सौ पोंड का जुर्माना देना पड़ा था। इसके अलावा सादे वस्त्रों के आयात पर भारी महसल लगाए गए। हालैंड को छोड़कर दूसरे यूरोपीय देशों ने भी भारतीय वस्त्रों के आयात पर या तो प्रतिबंध लगा दिए या उन पर भारी आयात-शुल्क लगा दिए। लेकिन इन कानूनों के बावजूद भारत के रेशमी और सूती वस्त्र 18वीं सदी के मध्य तक विदेश बाज़ारों में जमे रहे। मगर तब तक नई और विकसित प्रौद्योगिकी के आधार पर ब्रिटेन का वस्त्र उद्योग पनपने लगा था।

भारत के साथ कंपनी के व्यापारिक संबंधों में 1757 के प्लासी-युद्ध के बाद एक गुणात्मक परिवर्तन आया। अब बंगाल पर अपने राजनीतिक नियंत्रण के सहारे कंपनी भारतीय व्यापार और उत्पादन पर एकाधिकारपूर्ण नियंत्रण स्थापित कर सकती थी और अपना भारतीय व्यापार बढ़ा सकती थी। इसके अलावा कंपनी ने भारतीय मालों का निर्यात बढ़ाने के लिए, बंगाल से प्राप्त राजस्व का भी उपयोग किया। वर्ष 1750-51 में भारतीय कारखानेदारी ने ब्रिटेन को 1.5 लाख पौंड का भारतीय माल निर्यात किया था, जिसे कंपनी की गतिविधियों के कारण 1797-98 तक बढ़कर 5.8 लाख पौंड हो जाना चाहिए था। पर ऐसा हुआ नहीं। कंपनी ने अपनी राजनीतिक शक्ति का उपयोग करके बंगाल के बुनकरों पर अपनी शर्तें लादीं और उन्हें अपना माल कम तथा निर्धारित दामों पर बल्कि घाटे पर भी बेचने के लिए बाध्य किया। इसके अलावा अब उनकी मेहनत भी आजाद नहीं रहीं। उनमें से अनेकों कंपनी के लिए कम मजदूरी पर काम करने को मजबूर किए गए तथा भारतीय कारखानेदारों के लिए उनके काम करने पर रोक लगा दी गई। कंपनी ने अपने भारतीय या विदेशी प्रतिद्वंद्वी व्यापारियों को बाहर कर दिया तथा बंगाल के दस्तकारों को अधिक मजदूरी या दाम देने से उन्हें रोके रखा। कंपनी के नौकरों ने कच्चे कपास की बिक्री पर एकाधिकार कर लिया तथा उसके लिए बंगाल के बुनकरों से मनमाने दाम वसूलने लगे। इस तरह बुनकर खरीदने वाले तथा बेचने वाले, दोनों ही रूप में घाटे में रहे। साथ ही इंगलैंड में भारतीय वस्त्रों पर भारी आयात-शुल्क भी देने पड़ते थे। ब्रिटिश सरकार अपने उभरते हुए मशीनी उद्योग
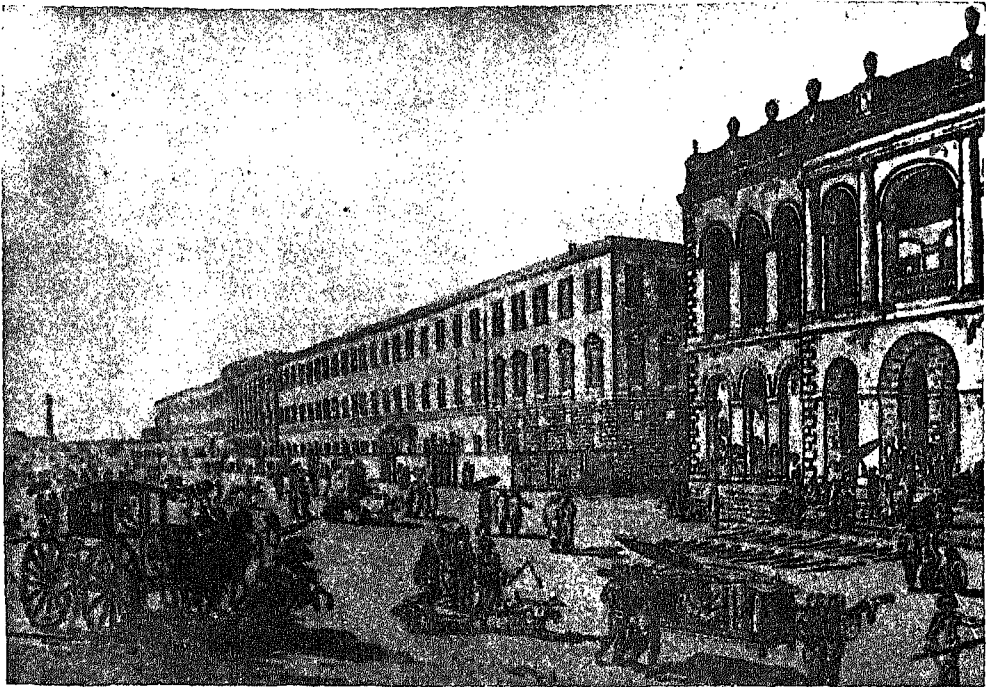
कलकत्ता की राइटर्स बिल्डिंग। मूलरूप से इसे ईस्ट इंडिया कंपनी के नौकरों (जिन्हें लेखक के रूप में जाना जाता था) के लिए बनाया गया था जब वे भारत में आए थे ताकि उन्हें इसमें ठहराया जा सके। बाद में इसका उपयोग प्रशासनिक कार्यालय के रूप में किया जाने लगा।

की सुरक्षा देने पर अडिग थी क्योंकि उसके माल अभी भी सस्ते और बेहतर भारतीय मालों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। फिर भी भारतीय मालों की कुछ साख बनी रही। भारतीय हस्त शिल्प को असल धक्का 1813 के बाद लगा जब उसके हाथों से विदेशी बाजार ही नहीं छिन गए, बल्कि इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उससे स्वयं भारतीय बाज़ार भी छिन गया।

ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने उसकी अर्थव्यवस्था तथा भारत के साथ उसके आर्थिक संबंधों को पूरी तरह बदलकर रख दिया। 18वीं सदी के उत्तरार्ध तथा 19वीं सदी के पहले कुछ दशकों में ब्रिटेन में महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण हुए। आधुनिक मशीनों, कारखाना प्रणाली तथा पूंजीवाद के आधार पर ब्रिटिश उद्योगों का तेज़ी से विकास और प्रसार हुआ। इस विकास को अनेक कारणों से बल मिला।

इसके पहले की सदियों में ब्रिटेन का विदेशी व्यापार तेज़ी से फैलता आया था। युद्धों और उपनिवेशवाद के द्वारा ब्रिटेन ने अनेक विदेशी बाज़ारों पर एकाधिकार कायम कर लिया था। इन निर्यात-बाज़ारों के कारण ब्रिटेन के निर्यातक-उद्योगों का उत्पादन तेज़ी से बढ़ा, जिसमें उत्पादन तथा संगठन की आधुनिकतम तकनीकों का उपयोग किया गया। अफ्रीका, वेस्ट इंडीज, लातीनी अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, चीन और सबसे बढ़कर भारत ने निर्यात के लिए असीम अवसर प्रदान किए। यह बात सूती वस्त्र उद्योग के लिए खास तौर पर सही थी जो ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति का प्रमुख वाहक

बन गया। ब्रिटेन ने अब तक व्यापार की एक ओपनिवेशिक प्रणाली स्थापित कर ली थी जिससे औद्यौगिक क्रांति को बल मिला और औद्योगिक क्रांति ने बदले में इस प्रणाली को और भी मजबूत बनया। उपनिवेश तथा अल्पविकसित देश ब्रिटेन को अपने खेतों ओर खदानों के कच्चे माल का निर्यात करते और ब्रिटेन उन्हें अपने कारखानों का तैयार माल बेचता।

दूसरे, नई मशीनों और कारखानों में लगाने के लिए देश में पर्याप्त पूंजी जमा हो चुकी थी। इसके अलावा यह पूंजी सामंत वर्ग के हाथों में न थी जो इसे विलासी जीवन और भोग में खर्च कर डालता, बल्कि यह व्यापारियों और उद्योगपतियों के हाथों में थी जो इसे उद्योग और व्यापार में लगाने के लिए उत्सुक थे। इस मामले में अफ्रीका, एशिया, वेस्ट इंडीज तथा लातीनी अमरीका से तथा ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके नौकरों द्वारा भारत से प्लासी-युद्ध के बाद ले जाई गई पूंजी ने औद्योगिक प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

तीसरे, जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने फलते-फूलते उद्योगों की अधिक और सस्ते श्रम की आवश्यकताएं पूरी कीं। वर्ष 1740 के बाद ब्रिटेन की जनसंख्या तेज़ी से बढ़ी; 1780 के बाद के पचास वर्षों में यह दोगुनी हो गई।

चौथे, ब्रिटेन में एक ऐसी सरकार थी जिस पर व्यापारियों तथा उद्योगपतियों का प्रभाव था और इसलिए उसने बाज़ारों तथा उपनिवेशों के लिए दूसरे देशों से जमकर युद्ध किया।

पांचवे, अधिक उत्पादन की मांगें प्रौद्योगिकी के विकास द्वारा पूरी की गई। ब्रिटेन के उभरते उद्योगों ने हरग्रीव्स, वाट, क्रांपटन, कार्टराइट तथा दूसरे लोगों के आविष्कारों का भरपूर उपयोग किया। इनमें से अनेकों आविष्कार सदियों पहले हुए थे, मगर अब उनका उपयोग होने लगा। इन आविष्कारों तथा भाप की शक्ति का पूरा फायदा उठाने के लिए अब उत्पादन को अधिकाधिक कारखानों तक सीमित किया जाने लगा। यह भी ध्यान रहे कि इन आविष्कारों ने औद्योगिक क्रांति को जन्म नहीं दिया था। बल्कि फैलते बाज़ारों के लिए उत्पादन तेज़ी से बढ़ाने की उद्योगपतियों की इच्छा तथा इसके लिए आवश्यक पूंजी लगा सकने की उनकी क्षमता के ही कारण तब तक विद्यमान प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा सका और नए आविष्कारों की आवश्यकता का अनुभव किया गया। वास्तव में उद्योग के लिए संगठन ने तकनीकी परिवर्तनों को मानव विकास की एक स्थायी विशेषता बना दिया। इस दृष्टि से देखें तो औद्योगिक क्रांति कभी समाप्त ही नहीं हुई क्योंकि 18वीं सदी के मध्य से ही आधुनिक उद्योगों और प्रौद्योगिकी का लगातार एक चरण से दूसरे चरण तक विकास होता रहा है।

औद्योगिक क्रांति के कारण ब्रिटिश समाज में बुनियादी परिवर्तन आए। इसके कारण तीव्र आर्थिक विकास हुआ जो आज ब्रिटेन तथा यूरोप, सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और जापान के उच्च जीवन स्तर का आधार है। वास्तव में 19वीं सदी के आरंभ से पहले तक आज के आर्थिक दृष्टि से उन्नत और पिछड़े देशों के जीवन स्तरों में बहुत स्पष्ट अंतर नहीं था। पिछड़े देशों में औद्योगिक क्रांति का न होना ही वह चीज है जिसके कारण आज की दुनिया में आय के अधिक अंतर देखे जाते हैं।

औद्योगिक क्रांति के कारण ब्रिटेन का अधिकाधिक नगरीकरण होता गया। अधिकाधिक लोग कारखानों वाले नगरों में बसने लगे। वर्ष 1750 में ब्रिटेन में 50,000 से अधिक जनसंख्या वाले केवल दो नगर थे जबकि 1851 में इनकी संख्या 29 हो चुकी थी।

समाज में एकदम दो नए वर्गों का उदय हुआ। एक वर्ग औद्योगिक पूंजीपतियों का था जो कारखानों के मालिक थे, और दूसरा वर्ग मज़दूरों का था जो दैनिक मज़दूरी पर अपनी श्रम शक्ति बेचते थे। पहले वर्ग का तेज़ी से विकास हुआ और वह अभूतपूर्व समृद्धि का

उपभोग करने लगा, जबकि श्रम करने वाले गरीब मजदूरों को आरंभ में आंसू के घूंट पीने पड़े। वे अपने ग्रामीण वातावरण से उजाड़ दिए गए और उनकी परंपरागत जीवन-पद्धति छिन्न-भिन्न और नष्ट कर दी गई। अब उन्हें नगरों में रहना पड़ता था जो धूल-धक्कड़ और धुएं से भरे थे। उनके घरों में स्थान बहुत ही कम होता था और वे गंदगी से भरे होते थे। उनमें से अधिकांश को अंधेरे, धूप से वंचित गंदी बस्तियों में रहना पड़ता था। इन सबका मार्मिक वर्णन चार्ल्स डिकेंस ने अपने उपन्यासों में किया है। कारखानों और खदानों में काम के घंटे असहनीय सीमा तक लंबे होते थे; कभी-कभी प्रतिदिन 14 से 16 घंटों तक काम करना पड़ता था। मजदूरी बहुत ही कम थीं। स्त्रियों और बच्चों को भी इतनी ही कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। कभी-कभी चार-पांच वर्ष के बच्चों को भी कारखानों और खदानों में लगा दिया जाता था। एक मजदूर का जीवन आम तौर पर गरीबी, कड़ी मेहनत, बीमारियों और कुपोषण का जीवन होता था। केवल 19वीं सदी के उत्तरार्ध में ही उनकी आमदनी में थोड़ी-बहुत वृद्धि हो सकी।

उद्योगपतियों के एक शक्तिशाली वर्ग के उदय ने भी भारतीय प्रशासन और इसकी नीतियों पर गहरा प्रभाव डाला। साम्राज्य में इस वर्ग की दिलचस्पी ईस्ट इंडिया कंपनी की दिलचस्पी से बहुत भिन्न थी। भारतीय दस्तकारों के निर्यात पर एकाधिकार होने से या भारतीय धन के सीधे-सीधे दोहन से इस वर्ग को कोई लाभ नहीं मिला। जब इस वर्ग की संख्या शक्तिशाली और इसके राजनीतिक प्रभाव में वृद्धि हुई तो वह कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार पर चोट करने लगा। चूंकि इस वर्ग का मुनाफा व्यापार नहीं बल्कि कारखानों के उत्पादन की देन था, इसलिए वह तैयार भारतीय माल के आयात को नहीं बल्कि अपने माल का भारत को निर्यात तथा भारत से कपास जैसे कच्चे मालों के आयात को प्रोत्साहन देना चाहता था। वर्ष 1769 में ब्रिटिश उद्योगपतियों ने एक कानून बनवाकर कंपनी को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वह प्रति वर्ष 3,80,000 पौंड से अधिक मूल्य के ब्रिटिश कारखानों के माल का निर्यात करे हालांकि इस सौदे में कंपनी को बहुत घाटा हुआ। वर्ष 1793 में उन्होंने कंपनी को मजबूर किया कि वह अपने जहाजों में उन्हें प्रति वर्ष 3,000 टन माल ढोने की छूट दे। पूर्वी देशों, खासकर भारत को 1794 में 156 पौंड के ब्रिटिश सूती कपड़ों का निर्यात हुआ, मगर 1813 तक यह निर्यात बढ़कर 1,10,000 पौंड का, अर्थात लगभग 700 गुना हो गया। लेकिन यह बढ़ोतरी भी लंकाशायर के उद्योगपतियों की आशा से कम सिद्ध हुई जो अब भारत में अपना निर्यात बढ़ाने के नए-नए तरीके ढूंढने लगे। जैसा कि आर.सी. दत्त ने 1901 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि इकानामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में आगे चलकर लिखा, 1812 की पार्लियामेंटरी सेलेक्ट कमेटी के प्रयास का उद्देश्य "यह पता लगाना था कि उनकी (भारतीय कारखानेदारों) की जगह ब्रिटिश कारखानेदारों को कैसे दी जाए, और भारतीय उद्योगों की कीमत पर ब्रिटिश उद्योगों को कैसे प्रोत्साहित किया जाए।"

ईस्ट इंडिया कंपनी को, पूर्वीय व्यापार पर कंपनी के एकाधिकार को, और भारत के राजस्व और निर्यात-व्यापार पर नियंत्रण के जरिए कंपनी की शोषण पद्धति को ब्रिटिश कारखानेदार अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति में प्रमुख बाधा समझते थे। 1793 तथा 1813 के बीच उन्होंने कंपनी तथा उसके व्यापारिक विशेषाधिकारों के खिलाफ एक शक्तिशाली अभियान चलाया और अंततः 1813 में भारतीय व्यापार पर उसका एकाधिकार समाप्त कराने में वे सफल रहे।

इस घटना के बाद भारत के साथ ब्रिटेन के आर्थिक संबंधों का एक नया युग आरंभ हुआ। खेतिहर भारत को अब औद्योगिक इंग्लैंड का आर्थिक उपनिवेश बनना पड़ा।

भारत सरकार ने अब मुक्त व्यापार अर्थात् ब्रिटिश

माल के अबाध भारत-प्रवेश की नीति अपनाई। भारतीय दस्तकारियों का अब ब्रिटेन के मशीनों से बने माल के साथ भयानक और असमान प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा तथा वे नष्ट होने लगीं। भारत में ब्रिटिश माल बिना किसी शुल्क के या मामूली आयात-शुल्क के साथ आने लगा। नए-नए इलाके जीतकर तथा अवध जैसे संरक्षित राज्यों पर सीधा कब्जा करके ब्रिटिश सामान के खरीदारों की संख्या बढ़ाने का प्रयास भी भारत सरकार ने किया। अनेक ब्रिटिश अधिकारियों, राजनीतिक नेताओं तथा व्यापारियों ने जमीन की लगान घटाने की पैरवी भी की ताकि किसान बेहतर स्थिति में हों और विदेशी कारखानों में बना माल खरीद सकें। उन्होंने भारत के पश्चिमीकरण का समर्थन भी किया ताकि अधिकाधिक भारतीयों में पश्चिमी मालों के प्रति रुचि का विकास हो सके।

हाथ से तैयार भारतीय माल उन ब्रिटिश कारखानों के बहुत ही सस्ते मालों का मुकाबला न कर सके जो नए आविष्कारों तथा और बड़े पैमाने पर भाप की शक्ति का उपयोग करके अपनी उत्पादन क्षमता को तेज़ी से बढ़ा रहे थे। कोई भी सरकार अगर केवल भारतीयों के हितों की शुभचिंतक होती तो वह ऊंचे आयात-शुल्क लगाकर भारतीय उद्योगों का संरक्षण देती और इस प्रकार जो समय मिलता उसमें पश्चिम से नई तकनीकों का आयात कर चुकी होती। 18वीं सदी में ब्रिटेन ने अपने उद्योगों के लिए यही किया; उस समय फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका यही कर रहे थे; अनेक दशकों बाद सोवियत संघ और जापान ने यही किया; विदेशी शासकों ने केवल यही नहीं किया कि भारतीय उद्योगों को संरक्षण नहीं दिया, बल्कि उन्होंने विदेशी मालों को भारत में प्रवेश की खुली छूट दे दी। विदेशों से आयात तेज़ी से बढ़ चला। केवल ब्रिटिश सूती कपड़ों का निर्यात 1813 में 11,00,000 पौंड था जो 1856 तक बढ़कर 63,00,000 पौंड हो गया।

मगर भारत पर लादी गई मुक्त व्यापार की यह नीति एकतरफा थी। भारत के दरवाजे तो विदेशी मालों के लिए खुले छोड़ दिए गए, मगर जो भारतीय माल ब्रिटिश मालों से प्रतियोगिता कर सकते थे, उन पर ब्रिटेन में प्रवेश के लिए भारी आयात-शुल्क लगा दिए गए। जब अंग्रेजों का उद्योग भारतीय दस्तकारियों की तुलना में प्रौद्योगिक श्रेष्ठता प्राप्त कर चुका था, तब भी अंग्रेज़ वाजिब तथा समान शर्तों पर भारतीय माल नहीं खरीदते थे। ब्रिटेन में अनेकों प्रकार के भारतीय मालों पर ऊंचा आयात-शुल्क जब तक जारी रहा जब तक उनका निर्यात लगभग बंद ही नहीं हो गया। उदाहरण के लिए 1824 में भारत के मोटे सूती कपड़ों पर आयात-शुल्क की दर 67.5 प्रतिशत तथा भारतीय मलमल पर 37.5 प्रतिशत थी। ब्रिटेन में प्रवेश के लिए भारतीय चीनी पर जो शुल्क लगता था वह उसकी लागत के तीन गुने से भी अधिक होता था। कुछ मामलों में इंग्लैंड में यह शुल्क 400 प्रतिशत से भी अधिक हो गया। इस प्रकार के प्रतिबंधमूलक शुल्क तथा मशीन उद्योग के विकास के परिणामस्वरूप दूसरे देशों के लिए भारत का निर्यात तेज़ी से गिर गया। ब्रिटिश व्यापारिक नीति की बेईमानी का वर्णन ब्रिटिश इतिहासकार एच.एच. विल्सन ने इन शब्दों में किया है :

> यह बात साक्ष्य में कही गई कि उस समय तक भारत के सूती और रेशमी माल इंग्लैंड में तैयार मालों की तुलना में 50 से 60 प्रतिशत कम कीमत पर भी बेचकर मुनाफा कमाया जा सकता था। इसलिए परिणामस्वरूप (भारतीय मालों) पर उनकी कीमतों की 70 से 80 प्रतिशत तक शुल्क लगाकर, इंग्लैंड के मालों को संरक्षण देना आवश्यक हो गया है। अगर ऐसा न होता और अगर ऐसे प्रतिबंधमूलक शुल्कों और आदेशों का उपयोग न किया जाता तो पैसेले तथा मैनचेस्टर के कारखाने अपने आरंभकाल में ही बंद हो चुके होते और

भाप की शक्ति का उपयोग करके भी उनको शायद दोबारा आरंभ नहीं किया जा सकता था। उनका जन्म भारतीय कारखानेदारों का बलिदान देकर ही संभव हो सका। अगर भारत स्वतंत्र होता तो वह भी बदले की कार्रवाई करता, ब्रिटिश मालों पर प्रतिबंधमूलक शुल्क लगाता, और इस तरह अपने उत्पादक उद्योगों को नष्ट होने से बचा लेता। पर उसे आत्मरक्षा का यह कदम उठाने की अनुमति न थी, और वह विदेशियों की दया का मोहताज था। बिना कोई शुल्क चुकाए ब्रिटेन के माल उस पर लाद दिए गए और विदेशी कारखानेदारों ने राजनीतिक अन्याय का सहारा लेकर अपने उन प्रतियोगियों को दबाए रखा और अंततः उनका गला घोंट दिया जिनके साथ बराबरी की शर्तों पर वे प्रतियोगिता नहीं कर सकते थे।

भारत को अब मजबूर किया गया कि अपने तैयार माल का निर्यात करने की जगह वह कच्चा कपास और कच्चा रेशम जैसे कच्चे मालों का निर्यात करें जिनकी कि ब्रिटिश उद्योगों को सख्त जरूरत थी, या फिर नील या चाय जैसे बागानों के उत्पादनों का या अनाजों का निर्यात करे जिनकी ब्रिटेन में कमी थी। वर्ष 1856 में भारत ने 43,00,000 पौंड के कच्चे कपास का निर्यात किया मगर तैयार सूती माल का निर्यात केवल 8,10,000 पौंड का था। इस वर्ष भारत ने 29,00,000 पौंड के अनाजों, 17,30,000 पौंड के नील तथा 7,70,000 पौंड के कच्चे रेशम का निर्यात भी किया गया। अंग्रेजों ने चीन में भारतीय अफीम की बिक्री को भी प्रोत्साहन दिया और उस समय भी दिया जबकि चीनियों ने अफीम के जहरीले तथा हानिकारक गुणों के कारण अफीम प्रतिबंध लगा दिया था। पर इस व्यापार से ब्रिटिश व्यापारियों को भारी मुनाफा तथा कंपनी द्वारा नियंत्रित भारतीय प्रशासन को भारी राजस्व मिलते थे। दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटेन में अफीम के आयात पर कड़ा प्रतिबंध था। 19वीं सदी के अंत तक भारत का निर्यात मुख्यतः कच्चे कपास, जूट और रेशम, तिलहन, गेहूं, खालों और चमड़ों, तथा नील और चाय तक सीमित था।

इस तरह 1813 के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापारिक नीति का निर्धारण ब्रिटिश उद्योग की आवश्यकताओं के अनुसार होने लगा। इसका मुख्य उद्देश्य भारत को ब्रिटेन के कारखानों के माल का उपभोक्ता तथा कच्चे मालों का निर्यातक बनाना था।

संपत्ति का दोहन : भारत की संपत्ति और संसाधनों का एक हिस्सा अंग्रेज़ ब्रिटेन को भेज रहे थे और इसके बदले भारत को पर्याप्त आर्थिक या भौतिक लाभ नहीं मिल रहा था। यह आर्थिक दोहन ब्रिटिश शासन की खास विशेषता थी। इसके पहले बुरी से बुरी भारतीय सरकारों ने भी जनता से चूसी गई दौलत का उपयोग देश के अंदर ही किया था। चाहे उन्होंने इस धन को सिंचाई की नहरें या ट्रंक रोड बनाने पर खर्च किया, महल, मंदिर या मस्जिद बनाने में लगाया, युद्धों और विजयों के लिए उसका उपयोग किया, या व्यक्तिगत भोग-विलास में उसे उड़ाया, मगर वह धन अंततः भारतीय उद्योग और व्यापार को ही प्रोत्साहित करता था और भारतीयों को रोजगार देता था। इसका कारण यह था कि विदेशी विजेता, जैसे कि मुगल, भी जल्द ही भारत में बस गए और उन्होंने इसी को अपना घर बना लिया। पर अंग्रेज़ हमेशा विदेशी ही बने रहे। भारत में काम कर रहे या व्यापार कर रहे लगभग सभी अंग्रेज़ ब्रिटेन वापस जाने की योजना बनाते रहते थे। भारत की सरकार पर नियंत्रण विदेशी व्यापारियों की एक कंपनी का और ब्रिटेन की सरकार का था। परिणामस्वरूप भारतीय जनता से प्राप्त करों (taxes) और आय का बहुत बड़ा हिस्सा अंग्रेज़ भारत में नहीं बल्कि अपने देश ब्रिटेन में खर्च करते थे।

बंगाल से संपत्ति का यह दोहन वर्ष 1757 में आरंभ हुआ और इसके बाद कंपनी के नौकर भारतीय

शासकों, जमींदारों, व्यापारियों और साधारण जनता से झटककर जमा की गई बेपनाह दौलत अपने देश ले जाने लगे। वर्ष 1758 और 1765 के बीच उन्होंने लगभग 60 लाख पौंड की दौलत ब्रिटेन भेजी। वर्ष 1765 में बंगाल के नवाब को जमीन की कुल जितनी मालगुजारी प्राप्त हुई, उसकी यह रकम चार गुनी से भी अधिक थी। इस भयानक दोहन में कंपनी के व्यापारिक मुनाफे शामिल नहीं थे और यह कमाई भी प्रायः गैर-कानूनी कमाई से कम नहीं होती थी। वर्ष 1765 में कंपनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त कर ली और इस तरह राजस्व पर उसका नियंत्रण स्थापित हो गया। जल्द ही कंपनी ने अपने नौकरों से भी बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष दोहन की व्यवस्था खड़ी कर ली। वह बंगाल के राजस्व से ही भारतीय माल खरीदकर उनका निर्यात करने लगी। इन खरीदों को 'पूंजीनिवेश' कहा जाता था। इस तरह इन 'पूंजीनिवेशों' के रूप में बंगाल का धन इंग्लैंड भेजा जाता था। मिसाल के लिए 1765 से 1770 के बीच कंपनी ने मालों के रूप में लगभग 40 लाख पौंड का धन बाहर भेजा तो बगाल मात्र के राजस्व का लगभग 33 प्रतिशत था। 18वीं सदी के अंत तक भारत की राष्ट्रीय आय का लगभग 9 प्रतिशत बाहर भेजा जा रहा था। पर वास्तविक दोहन और भी अधिक था, क्योंकि अंग्रेज़ अधिकारियों के वेतनों और दूसरी आयों का तथा अंग्रेज व्यापारियों के व्यापारिक लाभों का एक बड़ा हिस्सा भी इंग्लैंड ही जाता।

इस दोहन के नतीजे में भारत का निर्यात उसके आयात से बढ़ गया मगर इसका कोई लाभ भारत को न मिला। हालांकि वार्षिक दोहन की ठीक-ठीक रकम का हिसाब अभी तक नहीं लगाया जा सका है, और इतिहासकारों में इसे लेकर मतभेद भी हैं, पर कम से कम 1757 और 1857 के बीच इस दोहन की वास्तविकता को ब्रिटिश अधिकारी बड़े पैमाने पर स्वीकार करते थे। उदाहरण के लिए हाउस ऑफ लार्ड्स की सेलेक्ट कमेटी के अध्यक्ष और बाद में भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड एलनबरो ने 1840 में स्वीकारा कि भारत से "आशा की जाती थी कि वह इस देश (ब्रिटेन) को प्रति वर्ष 20 से 30 लाख पौंड-स्टर्लिंग के बीच कोई रकम भेजे और बदले में मामूली मूल्य के सैनिक भंडारों के अलावा किसी बात की आशा न करें।" मद्रास के बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के अध्यक्ष जॉन सुलिवन ने टिप्पणी की कि "हमारी प्रणाली बहुत कुछ स्पंज की तरह काम करती है जो गंगा के तटों से सभी अच्छी चीजें सोखकर थेम्स के तटों पर निचोड़ देती हैं।"

वर्ष 1858 के बाद यह दोहन बढ़ता ही गया, हालांकि अब ब्रिटिश प्रशासक और साम्राज्यवादी लेखक इसकी सच्चाई से इनकार करने लगे। 19वीं सदी के अंत में यह दोहन भारत की राष्ट्रीय आय का लगभग 6 प्रतिशत था और उसकी राष्ट्रीय बचत का लगभग एक-तिहाई था। खासकर 18वीं सदी में और 19वीं सदी के आरंभ में, अर्थात् ब्रिटेन के औद्योगीकरण के आरंभिक काल में भारत से बाहर ले जाए गए इस धन की ब्रिटेन में पूंजीवादी विकास के लिए पूंजी जुटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि उस काल में दोहन की यह रस्म ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का लगभग दो प्रतिशत होती थी। अगर हम इस बात को ध्यान में रखें कि उस समय अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग सात प्रतिशत ब्रिटेन उद्योग और कृषि में लगाता था, तो इस आंकड़े का महत्त्व समझ में आ सकता है।

यातायात और संचार के साधनों का विकास : 19वीं सदी के मध्य तक भारत में यातायात के साधन बहुत पिछड़े हुए थे। यातायात बैलगाड़ी और तांगों तक सीमित था। ब्रिटिश शासकों ने महसूस किया कि अगर ब्रिटिश मालों को भारत में बड़े पैमाने पर खपाना हैं और ब्रिटिश उद्योगों के लिए यहां से कच्चे माल प्राप्त करना है तो यहां यातायात की एक सस्ती और आसान

प्रणाली का विकास करना आवश्यक है। तब उन्होंने नदियों में स्टीमर चलाए और सड़कों को सुधारना आरंभ किया। कलकत्ता से दिल्ली तक ग्रैंड ट्रंक रोड पर 1839 में काम आरंभ हुआ और 1850 के दशक में पूरा हुआ। सड़कों द्वारा देश के प्रमुख नगरों, बंदरगाहों और मंडियों को जोड़ने के प्रयास भी किए गए। पर यातायात में वास्तविक सुधार रेलों के आरंभ होने के बाद ही हो पाया।

जार्ज स्टीवेंसन का बनाया पहला रेल इंजन इंग्लैंड में 1814 में पटरियों पर चलाया गया। वहां 1830 तथा 1840 के दशकों में रेलों का तेज़ी से विकास हुआ। जल्द ही भारत में भी तेज़ी से रेल लाइनें बिछाने के लिए दबाव पड़ने लगा। ब्रिटिश उद्योगपतियों को आशा थी कि इस प्रकार देश के भीतर के दूरदराज के इलाकों का विशाल तथा अभी तक पकड़ से बाहर रहा बाजार भी उन्हें मिल जाएगा तथा उनकी भूखी मशीनों तथा उनके चलाने वालों के भारतीय कच्चे माल तथा खाद्य-सामग्री का निर्यात आसान हो जाएगा। ब्रिटिश बैंकरों और निवेशकर्ताओं को भी लगा कि उनकी अतिरिक्त पूंजी सुरक्षा के साथ भारत में रेलों के विकास में लगाई जा सकती थी। ब्रिटेन के इस्पात- उत्पादकों को लगा कि उनके उत्पादनों, जैसे पटरियों, इंजनों, डिब्बों तथा दूसरी मशीनों आदि की बिक्री इससे बढ़ सकती है। जल्द ही भारत सरकार ने भी इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया। उसे रेलों के रूप में एक और अच्छी बात भी नजर आई कि इनसे सैनिकों की भर्ती और आवाजाही और तेज़ी से हो सकेगी और इस प्रकार और भी प्रभावी और कुशल ढंग से देश का प्रशासन चलाना तथा आंतरिक विद्रोहों और बाहरी हमलों से अपने शासन की सुरक्षा कर सकना संभव हो सकेगा।

भारत में रेल-लाइन बिछाने का पहला सुझाव 1831 में मद्रास में आया था। पर इस रेल के डिब्बों को घोड़े खींचने वाले थे। भारत में भाप से चलने वाली रेलों का पहला प्रस्ताव 1834 में इंग्लैंड में रखा गया। इंग्लैंड के रेलवे प्रोमोटरों, वित्तपतियों, भारत से व्यापार कर रहे व्यापारिक घरानों तथा कपड़ा उत्पादकों से इस प्रस्ताव को तगड़ा राजनीतिक समर्थन मिला। तय हुआ कि प्राइवेट कंपनियां भारत में रेल लाइनें बिछाएं और रेलें चलाएं। भारत सरकार ने जमानत दी कि इन कंपनियों को उनकी पूंजी पर कम से कम पांच प्रतिशत लाभ मिलेगा। बंबई और ठाणे के बीच पहली रेल-लाइन यातायात के लिए 1853 में खोल दी गई।

वर्ष 1849 में भारत का गवर्नर-जनरल बनने वाला लार्ड डलहौजी यहां तेज़ी से रेलें बिछाने के विचार का पक्का समर्थक था। 1853 में लिखे एक प्रसिद्ध नोट में उसने रेलों के विकास का एक व्यापक कार्यक्रम सामने रखा। उसने चार प्रमुख ट्रंक लाइनों के एक जाल का प्रस्ताव रखा जो देश के अंदरूनी भागों को बड़े बंदरगाहों से तथा देश के विभिन्न भागों को आपस में जोड़ सकें।

वर्ष 1869 के अंत तक जमानत-प्राप्त कंपनियां 6,000 किलोमीटर से अधिक लाइन बिछा चुकी थीं। पर यह प्रणाली काफी खर्चीली और धीमी साबित हुई। इसलिए 1869 में भारत सरकार ने सरकारी उद्यम के रूप में नई रेल लाइनें बिछाने का फैसला किया। लेकिन रेलों के प्रसार की गति अभी भी भारत के अधिकारियों तथा ब्रिटेन के व्यापारियों को संतुष्ट न कर सकी। वर्ष 1880 के बाद प्राइवेट कंपनियों और सरकार, दोनों ने रेल-लाइनें बिछाईं। वर्ष 1905 तक लगभग 45,000 किलोमीटर लंबी रेल-लाइनें बिछाई जा चुकी थीं। भारतीय रेलवे के विकास के तीन महत्त्वपूर्ण पक्षों को ध्यान में रखना आवश्यक है। पहला, इन रेल लाइनों में 350 करोड़ रुपए से अधिक की पूंजी लगी थी और यह पूंजी लगभग पूरी की पूरी ब्रिटिश पूंजीनिवेशकों की थी; इसमें भारतीय पूंजी का भाग नगण्य था। दूसरा, आरंभ के 50 वर्षों में इनमें वित्तीय घाटा ही होता रहा तथा वे लगने वाली पूंजी पर ब्याज तक नहीं दे सकती थीं। प्राइवेट कंपनियों ने जो रेल लाइनें बिछाई थीं उनका घाटा तो भारत सरकार ने पूरा किया क्योंकि वह लगाई

गई पूंजी पर एक निश्चित लाभ देने की जमानत दे चुकी थी। वर्ष 1850 के दशक में ब्रिटेन में ब्याज की दर लगभग तीन प्रतिशत थी; उसे देखते हुए लाभ की यह पांच प्रतिशत की दर आकर्षक थी। तीसरा, रेलों की योजना तैयार करने, उनका निर्माण करने तथा उनके प्रबंध में भारत और उसकी जनता के आर्थिक और राजनीतिक विकास को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया था। इसके विपरीत, खास ध्यान भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक हितों की पूर्ति का रखा गया था। ये रेल लाइनें मुख्यतः भारत के अंदरूनी भागों में स्थित कच्चे माल पैदा करने वाले क्षेत्रों को निर्यात करने वाले बंदरगाहों से जोड़ने के लिए बिछाई गई थीं। भारतीय उद्योग बाज़ारों तथा कच्चे मालों की आपूर्ति करने वाले क्षेत्रों की आवश्यकताओं को अनदेखा किया गया था। इसके अलावा रेल-भाड़े इस प्रकार तय किए गए थे कि आयात-निर्यात को बढ़ावा मिले तथा वस्तुओं के अंदरूनी आवागमन को हतोत्साहित किया जा सके। ब्रिटेन के साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए बर्मा तथा पश्चिमोत्तर भारत में भारी लागत से अनेक रेल लाइनें बिछाई गईं।

अंग्रेजों ने एक कुशल और आधुनिक डाक-प्रणाली भी कायम की तथा तार की व्यवस्था की शुरुआत की। वर्ष 1853 में कलकत्ता और आगरा के बीच पहली तार लाइन को आरंभ किया गया। लार्ड डलहौजी ने डाक-टिकटों को भी आरंभ किया। इससे पहले जब भी कोई पत्र डाक के हवाले किया जाता तो नगद पैसा देना पड़ता था। उसने डाक की दरें भी घटा दीं तथा पूरे देश में कहीं भी पत्र भेजने के लिए एक समान दर रखी जो एक अधन्नी (पुराने दो पैसे) थी। उसके सुधारों से पहले पत्र पर डाक-टिकट कितना लगेगा, यह इस पर निर्भर था कि वह कितनी दूर जाएगा। कभी-कभी तो एक पत्र पर इतना डाक-खर्च आता जो एक कुशल भारतीय मजदूर की चार दिन की मज़दूरी के बराबर होता था।

मालगुजारी की नीति : आयात के लिए भारतीय दस्तकारों के तथा दूसरे माल खरीदने, पूरे भारत की विजय का खर्च उठाने और ब्रिटिश शासन को मजबूत करने, आज के हिसाब से बहुत अधिक वेतन देकर ऊंचे प्रशासकीय तथा सैनिक पदों पर हज़ारों अंग्रेजों को नियुक्त करने, तथा भारतीय ग्रामों और दूर-दराज के क्षेत्रों में उपनिवेशवाद की पूरी-पूरी घुसपैठ के लिए आवश्यक आर्थिक और प्रशासकीय खर्च उठाने के लिए कंपनी को भारतीय राजस्व की आवश्यकता थी। इसका मतलब था भारतीय किसानों के लिए करों (taxation) के बोझ से भारी बढ़ोत्तरी। वास्तव में 1813 तक प्रशासन और न्याय प्रणाली में जितने भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए उनका लक्ष्य मालगुजारी का संग्रह बढ़ाना ही था। कंपनी के व्यापार और मुनाफों के लिए, प्रशासन के खर्च के लिए तथा भारत में अंग्रेजों के प्रसार हेतु युद्धों के खर्च के लिए धन जुटाने का भार मुख्यतः भारतीय किसानों अर्थात् रैयत को ही उठाना पड़ा। असल बात यह है कि अंग्रेज़ किसानों पर करों का भारी बोझ डाले बिना भारत जैसे विशाल देश को जीत ही नहीं सकते थे।

एक लंबे समय से भारत के शासक खेतिहर पैदावार का एक भाग जमीन की मालगुजारी के रूप में लेते आए थे। यह मालगुजारी या तो कर्मचारियों की सहायता से सीधे-सीधे ली जाती थी या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे बिचौलियों, जैसे जमींदारों, मालगुजारों आदि के माध्यम से ली जाती थी जो काश्तकार से मालगुजारी वसूल करते और उसका एक भाग अपने कमीशन के रूप में रख लेते थे। ये बिचौलिए मुख्यतः मालगुजारी वसूल करने वाले ही होते थे हालांकि कभी-कभी जिस क्षेत्र में वे मालगुजारी वसूल करते वहां उनकी कुछ जमीन भी होती थी।

इस्तमरारी बंदोबस्त : जैसा कि हम पढ़ चुके हैं, कंपनी ने 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर ली थी, अर्थात् उसे वहां मालगुजारी

जमा करने का अधिकार मिल गया था। आरंभ में उसने मालगुजारी की वसूली की पुरानी प्रणाली को जारी रखने का ही प्रयास किया हालांकि जमा की जाने वाली रकम उसने बढ़ा दी थी। वह रकम जो 1722 में 14,290,000 रुपए और 1764 में 18,180,000 रुपये थी, 1771 में बढ़कर 23,400,000 रुपए हो चुकी थी। वर्ष 1773 में कंपनी ने अप्रत्यक्ष रूप से इस वसूली की व्यवस्था का निश्चय किया। वारेन हेस्टिंग्ज ने मालगुजारी की वसूली के अधिकार को नीलाम पर लगाकर सबसे बड़ी बोली बोलने वाले को दे दिया। पर यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। चूंकि जमींदार तथा दूसरे सटोरिए एक-दूसरे से बढ़कर बोली लगाते, इसलिए मालगुजारी की रकम तो बढ़ गई, पर वास्तविक वसूली प्रति वर्ष घटती-बढ़ती रहती और अधिकारियों की आशाओं तक शायद ही कभी पहुंची। इससे कंपनी की आय एक ऐसे समय में अस्थिरता का शिकार हुई जबकि उसे पैसे की सख्त जरूरत थी। इसके अलावा खेती में सुधार के लिए न तो रैयत कोई प्रबंध करते और न ही जमींदार, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं होता था कि अगले वर्ष कितने की बोली लगेगी और अगले वर्ष वसूली का अधिकार किसे मिलेगा।

यही वह समय था जब स्थायी रूप से मालगुजारी की एक निश्चित रकम निर्धारित करने का विचार सामने आया। लंबे विचार-विमर्श के बाद अंततः लार्ड कार्नवालिस ने 1793 में बंगाल और बिहार में इस्तमरारी बंदोबस्त की प्रथा का आरंभ किया। इसकी दो खास विशेषताएं थीं। पहली यह कि जमींदारों और मालगुजारों को भूस्वामी बना दिया गया। उन्हें अब रैयतों से मालगुजारी की वसूली के लिए केवल सरकार के एजेंट का ही काम नहीं करना था, बल्कि अब वे अपनी जमींदारी के इलाके की सारी जमीन के मालिक बन गए। उनके स्वामित्व के अधिकार को वंशगत और हस्तांतरणीय बना दिया गया। दूसरी तरफ काश्तकारों का दर्जा गिर गया और अब वे बंटाईदार होकर रह गए और वे जमीन पर अपने लंबे समय से चले आ रहे अधिकारों तथा पारंपरिक अधिकारों से वंचित कर दिए गए। चरागाहों और जंगलों की जमीनों, सिंचाई की नहरों, मछली-पालन के तालाबों तथा झोंपड़ी डालने की जमीनों के इस्तेमाल के अधिकार और लगान में वृद्धि से सुरक्षा—ये उनके कुछ ऐसे अधिकार थे जिनसे उनको वंचित कर दिया गया। वास्तव में बंगाल तथा बिहार के बंटाईदारों को अब पूरी तरह जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया। ऐसा करने का कारण यह था कि जमींदार कंपनी की मालगुजारी संबंधी बेहिसाब मांगें समय पर पूरी कर सकें।

दूसरे, जमींदारों को किसानों से जो भी लगान मिलता उसका 10/11 भाग उन्हें राज्य को दे देना पड़ता था और वे केवल 1/11 भाग अपने पास रख सकते थे। लेकिन मालगुजारी की जो रकम उन्हें देनी थी वह हमेशा के लिए निश्चित कर दी गई थी। अगर काश्त का क्षेत्र बढ़ने या खेती में सुधार आने के कारण, बंटाईदार को चूसने की जमींदार की क्षमता अधिक होने के कारण या किसी अन्य कारण से जमींदार की जागीर का लगान बढ़ जाए तो वह बढ़ी हुई रकम पूरी-पूरी अपने पास रख सकता था। इसमें राज्य कभी भी कोई हिस्सा नहीं मांगता था। साथ ही, अगर किसी कारण से फसल नष्ट हो जाए तो भी, जमींदार को मालगुजारी निश्चित तिथि को नियमपूर्वक चुकानी पड़ती थी, वरना उसकी जमीनें बेच दी जाती थीं।

आरंभ में मालगुजारी की रकमों का निर्धारण मनमाने ढंग से और जमींदारों से परामर्श किए बिना किया गया। इसके पीछे अधिकारियों का उद्‌देश्य अधिकतम धन जमा करना था। फलस्वरूप मालगुजारी की बहुत अधिक दरें तय की गईं। वर्ष 1765-66 और 1793 के बीच मालगुजारी संबंधी मांग लगभग दोगुनी हो गई। इस्तमरारी बंदोबस्त की योजना तैयार करने वाले कार्नवालिस के बाद गवर्नर-जनरल बनने वाले जॉन शोर ने हिसाब लगाया कि अगर बंगाल के कुल उत्पादन

को 100 मान लिया जाए तो इसमें 45 पर सरकार का दावा होता था, जमींदारों और उनके नीचे के बिचौलियों को 15 मिलता था तथा वास्तविक काश्तकार के पास केवल 40 ही रहता था। मालगुजारी की इस अत्यधिक तथा असंभव मांग का एक परिणाम यह हुआ कि 1794 और 1807 के बीच जमींदारों की लगभग आधी जमीनें बेच दी गईं।

बाद में अधिकारी और गैर-अधिकारी सभी ने आमतौर पर यह माना कि 1793 के पहले बंगाल और बिहार के जमींदारों के पास जमीन के अधिकांश भाग पर मालिकाना हक नहीं थे। तब प्रश्न यह उठता है कि फिर अंग्रेजों ने उन्हें मालिकों के रूप में क्यों स्वीकार किया? इसकी व्याख्या यह है कि यह अंशतः एक गलतफ़हमी का नतीजा था। उस समय इंगलैंड में खेती का केंद्रीय चरित्र भूस्वामी होता था और अंग्रेज़ अधिकारियों ने जमींदारों को इन्हीं भूस्वामियों का भारतीय प्रतिरूप मान लिया। फिर भी यह ध्यान रहे कि अंग्रेज़ अधिकारी एक महत्त्वपूर्ण सिलसिले में इन दोनों की स्थिति में स्पष्ट अंतर करते थे। ब्रिटेन का भूस्वामी बंटाईदार ही नहीं बल्कि राज्य की निगाहों में भी जमीन का मालिक होता था। पर बंगाल में जमींदार बंटाईदार के लिए तो भूस्वामी होता था। पर स्वयं राज्य के अधीन होता था। वास्तव में वह स्वयं ही ईस्ट इंडिया कंपनी का लगभग बंटाईदार होकर रह गया था। ब्रिटिश भूस्वामी के विपरीत जो अपनी आय का एक बहुत छोटा भाग ही भूमिकर के रूप में देता था, बंगाल का जमींदार कहने के लिए जिस जमीन का मालिक था, उससे प्राप्त आय का 10/11 भाग कर के रूप में दे देता था। वह अगर समय पर मालगुजारी न जमा कर सके तो बड़ी ही बेमुरव्वती के साथ अपनी जमीन से बाहर फेंक दिया जाता था और उसकी जागीर बेच दी जाती थी।

दूसरे इतिहासकारों का विचार है कि जमींदारों को जमीनों के मालिक मानने का निर्णय मूलतः राजनीतिक, आर्थिक, वित्तीय और प्रशासकीय कारणों से प्रेरित था। इसके तीन मार्गदर्शक कारण थे। इनमें से पहला कारण चतुराई भरी राजविद्या का परिणाम था अर्थात् इसके पीछे राजनीतिक सहयोगी बनाने की आवश्यकता काम कर रही थी। ब्रिटिश अधिकारी यह बात समझ रहे थे कि चूंकि वे भारत में विदेशी हैं, इसलिए उनका शासन तब तक अस्थायित्व का मारा रहेगा जब तक वे अपने और भारतीय जनता के बीच मध्यस्थों का काम करने वाले स्थानीय समर्थकों का सहारा नहीं लेते। इस तर्क का तात्कालिक महत्त्व भी था क्योंकि 18वीं सदी के आखिरी चतुर्थांश में बंगाल में बड़ी संख्या में जनविद्रोह हुए थे। इसलिए उन्होंने जमींदारों के एक ऐसे धनी और विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग का सृजन किया जो अपने अस्तित्व का कारण ब्रिटिश शासन को समझते थे और इसलिए अपने बुनियादी हितों से बाध्य होकर उसका समर्थन करते थे। वास्तव में यह आशा आगे चलकर एकदम सही साबित हुई क्योंकि स्वाधीनता के उभरते हुए आंदोलन का विरोध करते हुए जमींदारों ने एक वर्ग के रूप में विदेशी सरकार का समर्थन किया। दूसरा और संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण विचार वित्तीय सुरक्षा का था। वर्ष 1793 से पहले अपनी आय के प्रमुख स्रोत अर्थात् जमीन की मालगुजारी में होने वाले उतार-चढ़ावों से कंपनी लगातार पीड़ित रही। चूंकि प्रसार के लिए होने वाले युद्धों में लगी सेना का, बंगाल, मद्रास और बंबई के नागरिक प्रशासन का, और निर्यात के लिए तैयार मालों की खरीद का पूरा खर्च बंगाल के राजस्व से ही उठाया जाता था, इसलिए कंपनी लगातार वित्तीय संकट का शिकार रही। इस्तमरारी बंदोबस्त के कारण एक स्थायी आय की जमानत मिल गई। जमींदारों की नवसृजित संपत्ति ही इसकी जमानत थी। इसके अलावा इस्तमरारी बंदोबस्त ने कंपनी की आय को बहुत अधिक बढ़ा दिया क्योंकि अब मालगुजारी की ऐसी दरें निर्धारित की गईं जैसी दरें पहले कभी भी नहीं थीं। थोड़े से जमींदारों के माध्यम से मालगुजारी की वसूली लाखों काश्तकारों से सीधे संबंध रखने की

अपेक्षा बहुत आसान और कम खर्चीली भी लगी। तीसरे, आशा की गई कि इस्तमरारी बंदोबस्त कारण खेतिहार उत्पादन बढ़ा सकेगा। चूंकि यह तय था कि जमींदार की आय बढ़ने पर भी भविष्य में मालगुजारी नहीं बढ़ाई जाएगी, इसलिए जमींदारों को इस बात की प्रेरणा मिली कि वे खेती का क्षेत्रफल और कृषि की उत्पादकता बढ़ाएं जैसा कि ब्रिटेन में वहां के भूस्वामी कर रहे थे।

जमींदारों के इस्तमरारी बंदोबस्त को बाद में उड़ीसा, मद्रास के उत्तरी जिलों और बनारस जिले में भी लागू कर दिया गया।

मध्य भारत के कुछ भागों और अवध में अंग्रेजों ने अस्थायी जमींदारी की एक व्यवस्था लागू की। इस व्यवस्था में जमींदारों को जमीन का मालिक तो बना दिया गया पर उन्हें जो मालगुजारी देनी पड़ती थी उसका समय-समय पर पुनर्निर्धारण किया जाता था। विदेशी सरकार की वफादारी के साथ सेवा करने वाले व्यक्तियों को जमीनें देने का सिलसिला जब सरकार ने आरंभ किया तो पूरे भारत में एक और प्रकार के जमींदार पैदा हुए।

रैयतवारी बंदोबस्त : दक्षिणी और दक्षिणी-पश्चिमी भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना से जमीन के बंदोबस्त की नई समस्याएं उठ खड़ी हुईं। अधिकारियों का मत था कि इन क्षेत्रों में बड़ी जागीरों वाले ऐसे जमींदार नहीं हैं जिनके साथ मालगुजारी के बंदोबस्त किए जा सकें और इसलिए वहां जमींदार प्रथा लागू करने से स्थिति उलट-पुलट जाएगी। रीड और मुनरो के नेतृत्व में मद्रास के अनेक अधिकारियों ने यह सिफारिश की कि सीधे वास्तविक काश्तकारों के साथ बंदोबस्त किया जाए। उन्होंने यह भी बतलाया कि इस्तमरारी बंदोबस्त की प्रथा में कंपनी वित्तीय दृष्टि से घाटा उठा रही थी क्योंकि उसे मालगुजारी में जमींदारों को हिस्सा देना पड़ता था और वह जमीन से होने वाली आमदनी के बढ़ने पर उसमें से हिस्सा नहीं मांग सकती थी। इसके अलावा काश्तकार अब जमींदारों की दया पर छोड़ दिए गए थे जो उन पर मनमाना जुल्म ढा सकते थे। उन्होंने (मद्रास के अधिकारियों ने) जिस व्यवस्था का प्रस्ताव रखा उसे रैयतवारी बंदोबस्त कहा जाता है। इस प्रथा में काश्तकार जमीन के जिस टुकड़े को जोतता-बोता था उसका मालिक मान लिया जाता था, शर्त यह थी कि वह उस जमीन की मालगुजारी देता रहे। रैयतवारी प्रथा के समर्थकों का दावा था कि यह पहले से ही मौजूद व्यवस्था को ही जारी रखती थी। मुनरो का कहना था : "यह वह प्रथा है जो भारत में हमेशा ही रही है।" अंततः 19वीं सदी के आरंभ में मद्रास और बंबई प्रेसिडेंसियों के कुछ भागों में रैयतवारी बंदोबस्त लागू किया गया। इस प्रथा के अंतर्गत कोई स्थायी बंदोबस्त नहीं किया गया। प्रत्येक बीस-तीस वर्ष पर इसका पुनर्निर्धारण किया जाता था और तब आम तौर पर मालगुजारी बढ़ा दी जाती थी।

रैयतवारी बंदोबस्त ने कृषक स्वामित्व की किसी प्रथा को जन्म नहीं दिया। किसानों ने भी जल्दी ही देख लिया कि अनेक जमींदारों की जगह एक दानवाकार जमींदार ने अर्थात् राज्य ने ले ली है, कि वे सरकार के बंटाईदार मात्र हैं जो नियमपूर्वक मालगुजारी न भरें तो उनकी जमीनें बेच दी जाएंगी। वास्तव में आगे चलकर सरकार ने खुलकर यह दावा किया कि जमीन की मालगुजारी कोई कर न होकर लगान है। जमीन पर रैयत के मालिकाना हक को तीन अन्य कारणों ने भी समाप्त कर दिया : (1) अधिकांश क्षेत्रों में निर्धारित मालगुजारी बहुत अधिक होती थी और अच्छे से अच्छे मौसमों में भी रैयत के पास किसी तरह गुजर-बसर करने के साधन ही बचते थे। उदाहरण के लिए मद्रास में जब यह व्यवस्था की गई सरकार ने कुल उत्पादन का 45 से 55 प्रतिशत भाग मालगुजारी के रूप में मांगा। बंबई में भी स्थिति लगभग इतनी ही बुरी थी। (2) सरकार ने जब जी चाहे मालगुजारी बढ़ाने का अधिकार अपने हाथ में रखा। (3) अगर

रैयत की फसल सूखा या बाढ़ से थोड़ा-बहुत या पूरी तरह नष्ट हो जाए तो भी उसे मालगुजारी देनी पड़ती थी।

महलवारी प्रथा : गंगा के दोआब में पश्चिमोत्तर प्रांत में, मध्य भारत के कुछ भागों में और पंजाब में जमींदारी प्रथा का एक संशोधित रूप लागू किया गया जिसे महलवारी प्रथा कहा जाता है। इस व्यवस्था में मालगुजारी की बंदोबस्त अलग-अलग गांवों या जागीरों (महलों) के आधार पर उन जमींदारों या उन परिवारों के मुखियों के साथ किया गया जो सामूहिक रूप से उस गांव या महल का भूस्वामी होने का दावा करते थे। पंजाब में ग्राम प्रथा के नाम से जानी जाने वाली एक संशोधित महलवारी प्रथा लागू की गई। महलवारी क्षेत्रों में भी मालगुजारी का समय-समय पर पुनर्निर्धारण किया जाता था।

जमींदारी तथा रैयतवारी, ये दोनों प्रथाएं देश की परंपरागत भूमि-प्रथाओं से मूलतः भिन्न थीं। अंग्रेजों ने भूमि में एक नए प्रकार की निजी संपत्ति इस प्रकार पैदा की कि उसका लाभ काश्तकारों को नहीं मिला। पूरे देश में अब भूमि को बेची जासकने, गिरवी रखी जा सकने और हस्तांतरित की जा सकने वाली वस्तु बना दिया गया। ऐसा मुख्यतः सरकार के राजस्व को सुरक्षित रखने के लिए किया गया। अगर जमीन को हस्तांतरित की जाने तथा बेची जा सकने वाली वस्तु नहीं बनाया जाता तो सरकार के लिए काश्तकार से मालगुजारी वसूल कर सकना बहुत कठिन होता क्योंकि काश्तकार के पास रकम अदा करने के लिए कोई बचत या कोई वस्तु नहीं होती थी। अब वह मालगुजारी जमा कर सकने के लिए जमीन की जमानत देकर धन उधार ले सकता था या उसका एक हिस्सा बेच भी सकता था। अगर वह ऐसा करने से इनकार करता तो सरकार मालगुजारी की रकम निकालने के लिए उसकी जमीन को नीलाम कर सकती थी और अक्सर ऐसा करती भी थी। जमीन को निजी संपत्ति बनाने का एक कारण यह विश्वास भी था कि स्थायित्व का अधिकार मिलने पर ही भूस्वामी या रैयत उसमें सुधार करने के प्रयास करेगा।

जमीन को आसानी से खरीदा और बेचा जा सकने वाला एक माल बनाकर अंग्रेजों ने देश में प्रचलित भूमि-प्रथाओं में एक बुनियादी परिवर्तन कर दिया। भारतीय ग्रामों का स्थायित्व और उनकी निरंतरता का ढांचा चरमरा उठा। वास्तव में इससे ग्रामीण समाज का पूरा ढांचा ही अब टूटकर बिखरने लगा।

अभ्यास

1. निम्नांकित शब्दों के अर्थ स्पष्ट कीजिए :
   मुक्त व्यापार, पूंजीवाद, आर्थिक दोहन, द्वैध शासन, "नवाब"।
2. उन कारणों का विवेचन कीजिए जिनके चलते ब्रिटिश सरकार तथा ईस्ट इंडिया कंपनी को आपसी संबंधों का पुनर्गठन करना पड़ा।
3. ब्रिटिश सरकार ने 1765 से 1833 के बीच कंपनी से ब्रिटिश साम्राज्य के अधिग्रहण के लिए जो कदम उठाए उनका वर्णन कीजिए।
4. "इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति ने भारत से इंग्लैंड के आर्थिक संबंधों का पूरी तरह रुपांतरण कर दिया। भारत में ब्रिटिश लोगों ने जो आर्थिक नीति अपनाई, उसके संदर्भ में उपयुक्त कथन की व्याख्या कीजिए।

5. बंगाल पर ब्रिटिश विजय के आरंभिक काल से अंग्रेजों द्वारा ब्रिटेन के लिए भारतीय संपदा के दोहन का विवेचन कीजिए। "आर्थिक दोहन" को भारत में ब्रिटिश शासन की विशेषता क्यों माना जाता है?
6. भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान परिवहन और संचार व्यवस्था के विकास का वर्णन कीजिए। यह ब्रिटेन की आर्थिक और राजनीतिक नीतियों से किस प्रकार जुड़ा हुआ था।
7. भारत में ब्रिटिश शासकों की राजस्व नीति के आधारभूत उद्देश्य क्या थे? ब्रिटिश शासकों द्वारा आरंभ की गई भूराजस्व व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए। भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना पर उसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
8. 1773 से 1853 के बीच भारतीय मामलों के विषय में ब्रिटिश संसद ने जो विधेयक पारित किए, उनकी एक सूची बनाइए। उनकी मुख्य बातों का उल्लेख करते हुए उन पर अलग-अलग टिप्पणियां लिखिए।

अध्याय : 4

प्रशासनिक संगठन और सामाजिक तथा सांस्कृतिक नीति

इसके पहले हम पढ़ चुके हैं कि 1784 तक ईस्ट इंडिया कंपनी के भारतीय प्रशासन को ब्रिटिश सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया था और उसकी आर्थिक नीतियां ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को देखते हुए निर्धारित की जाने लगी थीं। अब हम उस संगठन की चर्चा करेंगे जिसके जरिए कंपनी ने अपने नव प्राप्त उपनिवेश की शासन व्यवस्था का संचालन किया।

आरंभ में कंपनी ने भारत स्थित अपने इलाकों का प्रशासन भारतीयों के हाथों में छोड़ दिया था और तब उसकी गतिविधियां देख-रेख तक ही सीमित रह गई थीं। मगर उसने जल्दी ही समझ लिया कि प्रशासन के पुराने तौर-तरीकों का अनुसरण करने से ब्रिटिश उद्देश्य ठीक से प्राप्त नहीं हो सकते। फलस्वरूप कंपनी ने प्रशासन के कुछ पहलुओं को अपने हाथों में ले लिया। वारेन हेस्टिंग्स और कार्नवालिस के शासन काल में ऊपर के प्रशासन में आमूल परिवर्तन किया गया और नई व्यवस्था की नींव अंग्रेजी प्रशासन ढांचे की तर्ज पर रखी गई। नए क्षेत्रों में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार, नई समस्याओं, नई आवश्यकताओं, नए अनुभवों और नए विचारों के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में प्रशासन की व्यवस्था में अधिक गंभीर परिवर्तन हुए। मगर इन परिवर्तनों के दौरान साम्राज्यवाद के व्यापक उद्देश्यों को कभी नहीं भुलाया गया।

भारत में ब्रिटिश प्रशासन तीन खंभों पर टिका हुआ था। वे थे नागरिक सेवा (सिविल सर्विस), सेना और पुलिस। ऐसा दो वजहों से था। पहला कारण, ब्रिटिश भारत के प्रशासन का मुख्य लक्ष्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना तथा ब्रिटिश शासन को स्थायी बनाना था। कानून और व्यवस्था के अभाव में ब्रिटिश सौदागर और ब्रिटिश विनिर्माता अपनी वस्तुओं को भारत के कोने-कोने में बेचने की उम्मीद नहीं रख सकते थे। फिर विदेशी होने के कारण अंग्रेज भारतीय जनता का स्नेह पाने की आशा नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने भारत पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए जन समर्थन के बदले शक्ति का सहारा लिया। ड्यूक ऑफ वेलिंग्टन ने अपने भाई लॉर्ड वेल्सली के मातहत भारत में काम किया था उसने यूरोप जाने पर लिखा :

> "भारत में सरकार की व्यवस्था, सत्ता की नींव और उसे संभाले रखने तथा सरकार के कार्यकलापों को चलाने के तौर-तरीके समान उद्देश्य के लिए यूरोप में अपनाए गए और तौर-तरीकों के बिल्कुल भिन्न हैं ... वहां संपूर्ण सत्ता की नींव और उपकरण तलवार हैं।"

नागरिक सेवा (सिविल सर्विस)

नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) का जन्मदाता लॉर्ड कार्नवालिस था। जैसा कि पहले के एक अध्याय में हम देख चुके हैं, आरंभ से ही पूर्व में ईस्ट इंडिया कंपनी का

व्यापार कर्मचारियों के जरिए होता था। कर्मचारियों को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी मगर उन्हें अपना निजी व्यापार करने की इजाजत थी। बाद में जब कंपनी एक क्षेत्रीय शक्ति बन गई, तब उन्हीं कर्मचारियों ने प्रशासनिक कार्य करने आरंभ किए। वे तब अत्यंत भ्रष्ट हो गए। स्थानीय बुनकरों और दस्तकारों, सौदागरों और जमींदारों का उत्पीड़न कर, राजाओं और नवाबों से घूस और नजराना ऐंठकर और गैर-कानूनी निजी व्यापार के जरिए उन्होंने अकथनीय संपदा इकट्ठी की, जिसको लेकर सेवानिवृत्त हो इंग्लैंड चले गए। क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने उनके भ्रष्टाचार को समाप्त करने के प्रयास किए, मगर वे इस काम में आंशिक रूप से ही सफल रहे।

कार्नवालिस 1786 में भारत का गवर्नर-जनरल बन कर आया। वह प्रशासन को स्वच्छ बनाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था मगर उसने महसूस किया कि कंपनी के कर्मचारी तब तक ईमानदारी और कुशलतापूर्वक काम नहीं कर सकते जब तक उन्हें पर्याप्त वेतन नहीं दिए जाते। इसीलिए उसने निजी व्यापार तथा अफसरों द्वारा नजराने और घूस लिए जाने के खिलाफ सख्त कानून बनाए। साथ ही उसने कंपनी के कर्मचारियों के वेतन भी बढ़ा दिए। उदाहरण के लिए, जिले के कलक्टर का वेतन 1500 रुपए प्रति माह निर्धारित किया गया। इसके अतिरिक्त उसे अपने जिले की कुल वसूल की गई राजस्व रकम का एक प्रतिशत दिया जाना तय हुआ। वस्तुतः कंपनी की नागरिक सेवा, संसार में सबसे अधिक भुगतान पाने वाली सेवा हो गई। कार्नवालिस ने यह भी निर्धारित किया कि नागरिक सेवा में पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर होगी जिससे उसके सदस्य बाहरी प्रभाव से मुक्त रहें।

लार्ड वेल्सली ने 1800 में नागरिक सेवा में आने वाले युवा लोगों के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज खोला। कंपनी के निदेशकों ने उसकी कार्रवाई को पसंद नहीं किया और 1806 में उन्होंने कलकत्ता के कालेज की जगह इंग्लैंड में हेलीबरी के अपने ईस्ट इंडियन कालेज में प्रशिक्षण का काम आरंभ किया।

1853 तक नागरिक सेवा में सारी नियुक्तियां ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशक करते रहे। बोर्ड ऑफ कंट्रोल के सदस्यों को खुश करने के लिए उन्होंने उन्हें कुछ नियुक्तियां करने का मौका दिया। निदेशकों ने इस लाभप्रद और बहुमूल्य विशेषाधिकार को बनाए रखने के लिए बहुत संघर्ष किया और जब संसद ने उनके अन्य आर्थिक और राजनीतिक विशेषाधिकारों को छीन लिया तब भी उन्होंने इस विशेषाधिकार को छोड़ने से इनकार कर दिया। अंततोगत्वा 1853 में वे उसे खो बैठे जब चार्टर एक्ट ने यह कानूनी व्यवस्था लागू कर दी कि नागरिक सेवा में सारे प्रवेश प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा किए जाएंगे।

कार्नवालिस के जमाने से ही भारतीय नागरिक सेवा की एक खास विशेषता थी : भारतीयों को बड़ी सख्ती से पूरी तरह अलग रखना। अधिकृत तौर पर 1793 में यह व्यवस्था की गई थी कि प्रशासन में उन सारे ऊंचे ओहदों पर जहां 500 पौंड सालाना से अधिक वेतन मिलता था, केवल अंग्रेज़ ही नियुक्त हो सकते हैं। इस नीति को सरकार की अन्य शाखाओं जैसे सेना, पुलिस, न्यायपालिका और इंजीनियरिंग में भी लागू किया गया। कार्नवालिस की जगह गवर्नर-जनरल बनकर भारत आने वाले जान शोर के शब्दों में:

> अंग्रेजों का बुनियादी सिद्धांत सारे भारतीय राष्ट्र को हर संभव तौर पर अपने हितों और फायदों के लिए गुलाम बनाना था। भारतवासियों को हर सम्मान, प्रतिष्ठा या ओहदे से वंचित रखा गया है जिन्हें स्वीकार करने के लिए छोटे-से-छोटे अंग्रेजों की भी चिरौरी की जा सकती है।

अंग्रेजों ने ऐसी नीति का अनुसरण क्यों किया? इसके लिए अनेक कारक संयुक्त रूप से जिम्मेदार थे। सर्वप्रथम, उन्हें विश्वास था कि ब्रिटिश विचारों, संस्थानों,

और व्यवहारों पर आधारित कोई प्रशासन केवल अंग्रेज़ कार्यकर्ताओं द्वारा ही पूरी तरह स्थापित किया जा सकता है और फिर भारतीय लोगों की योग्यता और ईमानदारी पर उनको भरोसा नहीं था। उदाहरण के लिए, कोर्ट ऑफ डायरेक्टरस के अध्यक्ष चार्ल्स ग्रांट ने भारतीय जनता की निंदा करते हुए कहा कि वह "मनुष्यों की अत्यंत पतित और निकृष्ट नस्ल है जिसमें नैतिक जिम्मेदारी की नाममात्र की भावना रह गई है.. .. और जो अपने दुर्गुणों के कारण विपन्नता में धंसी हुई है।" इसी तरह कार्नवालिस का विश्वास था कि "हिन्दुस्तान का हर निवासी भ्रष्ट है।" यह उल्लेखनीय है कि यह आलोचना कुछ हद तक तत्कालीन भारतीय अफसरों और जमींदारों के एक छोटे वर्ग पर जरूर लागू होती थी। मगर यह आलोचना अगर नहीं तो समान रूप से भारत स्थित ब्रिटिश अफसरों पर भी लागू होती थी। वस्तुतः कार्नवालिस ने उन्हें ऊंचे वेतन देने का प्रस्ताव इसीलिए रखा था कि उन्हें प्रलोभन से दूर रखने में सहायता मिले और वे ईमानदार तथा आज्ञाकारी बन सकें। मगर उसने पर्याप्त वेतन का यह उपाय भारतीय अफसरों के बीच से भ्रष्टाचार हटाने के लिए लागू करने के बारे में कभी नहीं सोचा।

वास्तव में, सेवाओं के उच्च वेतनमानों से भारतीयों को वंचित रखने की नीति जान बूझ कर अपनाई गई थी। इन सेवाओं की जरूरत उस समय भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना करने तथा उसे मजबूत बनाने के लिए थी। जाहिर है कि यह काम भारतीयों पर नहीं छोड़ा जा सकता था जिसमें अंग्रेजों की तरह ब्रिटिश हितों के लिए न सहज सहानुभूति थी और न उनकी समझदारी। इसके अलावा ब्रिटिश समाज के प्रभावशाली वर्ग चाहते थे कि इंडियन सिविल सर्विस और दूसरी लाभप्रद नौकरियों पर उनका एकाधिकार बना रहे और वे पद उनके बेटों की नियुक्ति के लिए ही सुरक्षित रहें। वस्तुतः इन नियुक्तियों को लेकर उनके बीच घनघोर संघर्ष हुए। नियुक्ति करने का अधिकार कंपनी के निदेशकों और ब्रिटिश मंत्रिमंडल के बीच बहुत दिनों तक विवाद का विषय बना रहा। ऐसी स्थिति में अंग्रेज़ भारतवासियों को कैसे इन जगहों पर आने देते। मगर छोटे ओहदों के लिए भारतवासियों को बड़ी संख्या में भर्ती किया गया क्योंकि वे अंग्रेजों की अपेक्षा कम वेतन पर तथा आसानी से उपलब्ध थे।

भारतीय नागरिक सेवा (इंडियन सिविल सर्विस) धीरे-धीरे दुनिया की एक अत्यंत कुशल और शक्तिशाली सेवा के रूप में विकसित हो गई। उसके सदस्यों को काफी अधिकार थे और बहुधा वे नीति-निर्माण के कार्य में भाग लेते थे। उन्होंने आजादी, ईमानदारी और कठिन परिश्रम की कतिपय परंपराएं विकसित कीं यद्यपि इन गुणों ने स्पष्टतया भारतीय हितों को नहीं बल्कि ब्रिटिश हितों को साधा। उनको यह विश्वास हो गया कि भारत पर शासन करने का उन्हें लगभग दैवी अधिकार मिल गया है। भारतीय नागरिक सेवा (इंडियन सिविल सर्विस) को बहुधा 'इस्पात का चौखटा' कहा गया है जिसने भारत में ब्रिटिश शासन का पोषण किया और लंबी अवधि तक बनाए रखा। कालक्रम से भारतीय जीवन में जो कुछ भी प्रगतिशील और उन्नत बातें थीं उनकी वह विरोधी बन गई और इस प्रकार वह उदीयमान भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के हमले का निशाना बनीं।

सेना

भारत में ब्रिटिश राज के दूसरे महत्त्वपूर्ण स्तंभ के रूप में सेना थी। उसने चार महत्त्वपूर्ण कार्य किए। वह भारतीय शक्तियों को जीतने के लिए औजार बनी। उसने विदेशी प्रतिद्वंद्वियों से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की, और सदा वर्तमान आंतरिक विद्रोह के खतरे से ब्रिटिश प्रभुसत्ता की रक्षा की और एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा का भी यह प्रमुख हथियार थी।

कंपनी की अधिकांश सेना भारतीय सिपाहियों की थी जिन्हें मुख्य रूप से उन क्षेत्रों से भर्ती किया गया था

जो अभी उत्तर प्रदेश और बिहार में हैं। उदाहरण के लिए, 1857 में भारत में कंपनी की फौज में 3,11,400 सैनिक थे जिनमें से 2,65,900 भारतीय थे। मगर उसके अफसर निश्चित रूप से कार्नवालिस के जमाने से केवल अंग्रेज़ होते थे। 1856 में सेना में केवल तीन ऐसे भारतीय थे जिनको 300 रुपए प्रतिमाह वेतन मिलता था और सबसे ऊंचा भारतीय अफसर एक सूबेदार था। बड़ी संख्या में भारतीय सैनिकों को काम पर लगाना पड़ता था क्योंकि ब्रिटिश सैनिक अपेक्षाकृत अधिक खर्चीले थे। इसके अलावा, ब्रिटेन की जनसंख्या इतनी कम थी कि वह शायद भारत को जीतने के लिए बड़ी संख्या में सैनिक नहीं दे सकती थी। संतुलन के लिए फौज के सारे अफसर अंग्रेज़ रखे जाते थे और भारतीय सैनिकों को नियंत्रण में रखने के लिए ब्रिटिश सैनिकों को एक निश्चित संख्या में रखा जाता था। आज इस पर बड़ा अचरज होता है कि मुट्ठी भर विदेशी ऐसी फौज के जरिए भारत को जीत और नियंत्रित कर सके, जिसमें भारतीयों का बहुमत था। ऐसा दो कारणों से संभव हुआ। एक ओर उस समय देश में आधुनिक राष्ट्रीयता का अभाव था। बिहार या अवध के किसी सैनिक ने न यह सोचा और न ही वह यह सोच सकता था कि मराठों या पंजाबियों को हराने में कंपनी की सहायता कर वह भारत विरोधी हो रहा है। दूसरी ओर, भारतीय सैनिक की यह बड़ी पुरानी परंपरा रही थी कि वह जिससे वेतन पाए उसकी निष्ठापूर्वक सेवा करे। इसे आमतौर से नमकहलाली कहा जाता था। दूसरे शब्दों में, भारतीय सैनिक भाड़े का एक बढ़िया सिपाही था और कंपनी एक अच्छी वेतनदाता थी। उसने अपने सैनिकों को नियमित रूप से और अच्छा वेतन दिया। यह एक ऐसी चीज थी जो भारतीय शासक और सरदार उस समय नहीं कर रहे थे।

पुलिस

पुलिस ब्रिटिश शासन का तीसरा स्तंभ थी। उसका सृजन करने वाला भी कार्नवालिस ही था। उसने जमींदारों को पुलिस कार्यों से मुक्त कर दिया और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक नियमित पुलिस दल की स्थापना की। इसके लिए उसने थानों की पुरानी भारतीय व्यवस्था को लिया और उसे आधुनिक बनाया। दिलचस्प बात यह है कि पुलिस व्यवस्था के मामले में भारत ब्रिटेन से आगे हो गया। उस समय तक ब्रिटेन में पुलिस व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। कार्नवालिस ने थानों की व्यवस्था स्थापित की। हर थाने का प्रधान दरोगा होता था। दरोगा भारतीय होता था। बाद में, पुलिस के जिला सुपरिंटेंडेंट (अधीक्षक) का पद बनाया गया। सुपरिंटेंडेंट जिले में पुलिस संगठन का प्रधान हो गया। पुलिस में भी भारतीयों को सभी ऊंचे ओहदों से अलग रखा गया। गांवों में पुलिस की जिम्मेदारियों को चौकीदार निभाते थे जिनका भरण-पोषण गांव वाले करते थे। पुलिस धीरे-धीरे डकैती जैसे प्रमुख अपराधों को कम करने में सफल हो गई। पुलिस ने विदेशी नियंत्रण के विरुद्ध बड़े पैमाने पर षड्यंत्रों को भी रोका और जब राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ तब पुलिस का इस्तेमाल उसे दबाने के लिए किया गया। लोगों के साथ व्यवहार में भारतीय पुलिस ने असहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया। संसद की एक समिति ने 1813 की अपनी एक रिपोर्ट में बताया कि "पुलिस ने शांतिप्रिय निवासियों को उसी तरह लूटा-मारा जैसे डकैत करते थे जबकि डकैतों को दबाने के लिए उसका आयोजन किया गया था।" और गर्वनर-जनरल बैंटिक ने 1832 में लिखाः

> जहां तक पुलिस का सवाल है, वह जनता का रक्षक होने की स्थिति से कोसों दूर है। इस संबंध में जनता की भावना को बिना निम्नलिखित तथ्य का सहारा लिए मैं अच्छी तरह नहीं रख सकता। हाल के एक रेगुलेशन से बढ़कर कुछ भी अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकता। इस रेगुलेशन के अनुसार अगर कोई डकैती हुई तो पुलिस को तब तक जांच करने की मनाही है जब तक लुटे

गए व्यक्ति उसे नहीं बुलाएं : कहने का मतलब यह है कि गडरिया भेडिए से बड़ा भुक्खड़ हिंसक पशु है।

न्यायिक संगठन

दीवानी और फौजदारी कचहरियों के श्रेणीबद्ध संगठन के जरिए न्याय प्रदान करने की एक नई व्यवस्था की नींव अंग्रेजों ने रखी। इस व्यवस्था को वारेन हेस्टिंग्ज ने आरंभ किया मगर कार्नवालिस ने 1793 में इसे और सुदृढ़ बनाया। हर जिले में एक दीवानी अदालत कायम की गई जिसका प्रमुख जिला जज होता था जो नागरिक सेवा का सदस्य होता था। इस तरह कार्नवालिस ने दीवानी जज और कलक्टर के ओहदों को अलग-अलग कर दिया। जिला अदालत के फैसलों के खिलाफ अपील पहले दीवानी अपील की चार प्रांतीय अदालतों में हो सकती थी। अपील की आखिरी सुनवाई सदर दीवानी अदालत ही कर सकती थी। जिला अदालत के नीचे रजिस्ट्रार की अदालतें थी जिनके प्रधान यूरोपवासी होते थे, और अनेक छोटी अदालतें थीं जिनके प्रधान भारतीय जज होते थे जिन्हें मुंसिफ और अमीन कहा जाता था। फौजदारी मुकदमों का निबटारा करने के लिए कार्नवालिस ने बंगाल प्रेसिडेंसी को चार डिविजनों में बांट दिया। उसने उनमें से हर एक में एक क्षेत्रीय न्यायालय (कोर्ट्स ऑफ सर्किट) स्थापित किया जिनके प्रधान नागरिक सेवा के लोग होते थे। इन अदालतों के नीचे छोटे-छोटे मुकदमों का फैसला करने के लिए बड़ी संख्या में भारतीय मजिस्ट्रेट होते थे। क्षेत्रीय न्यायालय (कोर्ट्स ऑफ सर्किट) के फैसलों के खिलाफ सदर निजामत अदालत में अपील की जा सकती थी। फौजदारी अदालतों ने मुस्लिम फौजदारी कानून को संशोधित किया और कम सख्त रूप में उनको लागू किया जिससे शरीर के अंगों को काटने या इस प्रकार की अन्य सजाएं देने की मनाही कर दी गई। दीवानी अदालतों ने उस पारंपरिक कानून को लागू किया जो किसी क्षेत्र या जनता के किसी हिस्से के बीच बहुत पुराने जमाने से चला आ रहा था। विलियम बैंटिक ने 1831 में अपील कर प्रांतीय अदालतों तथा क्षेत्रीय न्यायालयों को खत्म कर दिया। उनका काम पहले कमीशनों और बाद में जिला जजों और जिला कलक्टरों को सौंप दिया गया। बैंटिक ने न्यायायिक सेवा में काम करने वाले भारतीयों के दरजे और अख्तियार बढ़ा दिए। उसने भारतीयों को डिप्टी मजिस्ट्रेट, सबऑर्डिनेट जज और प्रिंसिपल सदर अमीन नियुक्त किए। सदर दीवानी अदालत और सदर निजामत अदालत की जगह 1865 में कलकत्ता, मद्रास और बंबई में उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) स्थापित किए गए।

अधिनियम (enactment) तथा पुराने कानूनों को संहिताबद्ध (codification) करने की प्रक्रियाओं के द्वारा अंग्रेजों ने कानूनों की एक नई प्रणाली स्थापित की। भारत में न्याय की परंपरागत प्रणाली मुख्य रूप से प्रचलित कानून पर आधारित थी जो लंबी परंपरा और रिवाज से निकली थी यद्यपि अनेक कानून शास्त्रों और शरियत तथा शाही फरमानों पर आधारित थे। हालांकि अंग्रेज़ आमतौर से प्रचलित कानून को लागू करते रहे, लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने कानूनों की एक नई प्रणाली विकसित की। उन्होंने रेगुलेशन लागू किए, तत्कालीन कानूनों को संहिताबद्ध किया और उन्हें बहुधा न्यायिक व्याख्याओं के द्वारा सुव्यवस्थित करके आधुनिक बनाया। वर्ष 1833 के चार्टर एक्ट के कानून बनाने के सारे अख्तियार कौंसिल की सहमति से गर्वनर-जनरल को दे दिए। इन सबका मतलब था कि अब भारतीय उत्तरोत्तर मानव-निर्मित कानूनों के तहत रहेंगे जो अच्छे-बुरे कुछ भी हो सकते हैं। मगर वे स्पष्ट रूप से मानवीय तर्क की उपज थे। दूसरे शब्दों में, लोग उन कानूनों के तहत नहीं रहेंगे जिनका आंख मूंद कर पालन करना पड़ता था और उनके औचित्य पर इसलिए उंगली नहीं उठाई जाती थी क्योंकि वे दैवी और पवित्र माने जाते थे।

सरकार ने 1833 में लॉर्ड मैकाले के नेतृत्व में

भारतीय कानूनों को संहिताबद्ध करने के लिए एक विधि आयोग (*Law Commission*) नियुक्त किया। उसके परिश्रम के फलस्वरूप भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code) पश्चिमी देशों से लाई गई दीवानी प्रक्रिया और दंड प्रक्रिया संहिताएं और कानूनों की अन्य संहिताएं आईं। अब सारे देश में एक ही प्रकार के कानून लागू हो गए और उन्हें न्यायालयों की समरूप प्रणाली के जरिए लागू किया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत को न्यायिक रूप से एक सूत्रबद्ध किया गया।

कानून का शासन : अंग्रेजों ने कानून के शासन या विधि-शासन (*Rule of Law*) की आधुनिक अवधारणा को लागू किया। इसका तात्पर्य था कि उनका प्रशासन कम से कम सैद्धांतिक रूप में कानूनों के अनुसार चलाया जाएगा, न कि शासक की सनक या वैयक्तिक इच्छा के अनुसार। कानूनों ने प्रजा के अधिकारों, विशेषाधिकारों और जिम्मेदारियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया था। बेशक, व्यवहार में अफसरशाही और पुलिस को मनमाने अख्तियार थे और उन्होंने जनता के अधिकारों और स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप किया। कानून का शासन कुछ हद तक व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता की गारंटी था। यह सही है कि भारत के पिछले शासक आम तौर से रीति-रिवाज से बंधे होते थे, मगर उन्हें अपनी इच्छानुसार कोई भी प्रशासनिक कदम उठाने का कानूनी अधिकार था और उनसे बड़ी कोई ऐसी सत्ता नहीं थी जिसके सामने उनकी कार्रवाईयों को चुनौती दी जा सके। कभी-कभी भारतीय शासकों और सरदारों ने अपनी इच्छानुसार इस शक्ति का प्रयोग किया। दूसरी ओर, ब्रिटिश शासन के अंतर्गत प्रशासन मुख्य रूप से कानूनों के आधार पर न्यायालयों द्वारा उनकी की गई व्याख्या के अनुसार चलाया जाता था। कानून बहुधा त्रुटिपूर्ण होते थे। कानून जनता द्वारा लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के द्वारा नहीं बल्कि विदेशी शासकों द्वारा निरंकुश तरीकों से बनाए जाते थे। कानून सरकारी कर्मचारियों तथा पुलिस के हाथों में काफी अख्तियार दे देते थे। मगर शायद एक विदेशी राज़ के अंतर्गत यह अवश्यंभावी था। विदेशी राज स्वभावतः लोकतांत्रिक या स्वतंत्रतावादी नहीं हो सकता।

कानून के सम्मुख समानता : अंग्रेज़ी राज के दौरान भारतीय विधि प्रणाली कानून के सम्मुख समानता की अवधारणा पर आधारित थी। इसका मतलब था कि कानून की निगाहों में सारे मनुष्य बराबर हैं। जाति, धर्म या वर्ग के आधार पर बिना किसी भेदभाव के एक ही कानून सब लोगों पर लागू होता था। पहले न्याय प्रणाली जाति के भेदभावों का ख्याल करती थी और तथाकथित उच्च जाति और निम्न जाति के बीच भेदभाव करती थी। एक ही अपराध के लिए एक गैर-ब्राह्मण की अपेक्षा एक ब्राह्मण को हल्का दंड दिया जाता था। इसी प्रकार जमींदारों और सामंतो को वास्तविक रूप से उतना कड़ा दंड नही दिया जाता था जितना एक आम आदमी को। वस्तुतः उनके खिलाफ उनकी कार्रवाईयों के लिए अक्सर मुकदमा नहीं चलाया जाता था। अब दीन-हीन लोग भी न्यायालय में जा सकते थे।

मगर कानून के सम्मुख समानता के इस उत्कृष्ट सिद्धांत का एक अपवाद भी था। वह यह कि यूरोपवासियों और उनके वंशजों के लिए अलग-अलग अदालत और यहां तक कि अलग कानून भी थे। उनके खिलाफ फौजदारी मुकदमों की सुनवाई केवल यूरोपीय जज ही कर सकते थे। अनेक अंग्रेज़ अधिकारियों, सैनिक अधिकारियों, बागान मालिकों और सौदागरों ने भारतीय लोगों के साथ अंहकारी, निष्ठुर और यहां तक कि क्रूर व्यवहार किया लेकिन जब उनके खिलाफ मुकदमा चलाने के प्रयास हुए तब उन्हें अप्रत्यक्ष और अनुचित संरक्षण दिया गया और फलस्वरूप मुकदमों की सुनवाई करने वाले अनेक यूरोपीय जजों ने उन्हें हल्की सजा दी या ऐसे ही रिहा कर दिया। जैसा

कि ऊपर कहा जा चुका है, उनके खिलाफ मुकदमों की सुनवाई केवल यूरोपीय जज ही कर सकते थे। फलस्वरूप प्रायः न्याय की हत्या होती थी।

व्यवहार में एक अन्य प्रकार की कानूनी असमानता उभर कर आई। न्याय काफी मंहगा हो गया क्योंकि कोर्ट फीस का भुगतान करना पड़ता था, वकील करने पड़ते थे और गवाहों के खर्च को पूरा करना होता था। आमतौर से कचहरियां दूर शहरों में होती थीं। मुकदमे वर्षों तक चलते थे। जटिल कानून अशिक्षित और गैर-जानकार किसानों की समझदारी से बाहर थे। निरपवाद रूप से धनी लोग कानूनों और कचहरियों को अपने पक्ष में मोड़ सकते थे। किसी गरीब आदमी को निचली अदालत से अपील सुनने वाली सबसे बड़ी अदालत तक न्याय की लंबी प्रक्रिया में ले जाने और फलस्वरूप उसे पूरी तरह बर्बाद करने की धमकी ही उसे घुटने टेकने के लिए मजबूर कर देती थी। इसके अलावा पुलिस तथा शेष प्रशासकीय तंत्र के अंदर व्याप्त भ्रष्टाचार न्याय नहीं मिलने देता था। अधिकारी बहुधा धनी लोगों का पक्ष लेते थे। बिना सरकारी कार्रवाई से डरे जमींदार रैयतों पर अत्याचार करते थे। इसके विपरीत, अंग्रेजी राज्य के पहले जो न्याय प्रणाली थी वह अपेक्षाकृत अनौपचारिक, शीघ्र और कम खर्चीली थी। इस प्रकार यद्यपि नई न्याय-प्रणाली उस हद तक प्रगतिशील थी जिस हद तक वह कानून के शासन और कानून के सम्मुख समानता के प्रशासकीय सिद्धांतों तथा विवेकपूर्ण और मानवोचित मानव निर्मित कानूनों पर आधारित थी, तथापि वह कुछ अन्य दृष्टियों से बहुत खराब थी। उदाहरण के लिए, वह अब अधिक खर्चीली हो गई थी और लोगों को न्याय पाने में काफी विलंब होता था।

सामाजिक और सांस्कृतिक नीति

हम देख चुके हैं कि ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन और विनियमन ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों में किया और व्यवस्था और सुरक्षा की गारंटी के लिए एक आधुनिक प्रशासन व्यवस्था की स्थापना की। वर्ष 1813 तक अंग्रेजों ने देश के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में गैर-हस्तक्षेप की नीति अपनाई, मगर 1813 के बाद उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के रूपांतरण के लिए सक्रिय कदम उठाए। इसके पहले उन्नीसवीं सदी के दौरान ब्रिटेन में नए हितों और नए विचारों का उदय हुआ था। औद्योगिक क्रांति अठारहवीं सदी के मध्य में आरंभ हुई थी जिसके फलस्वरूप औद्योगिक पूंजीवाद का विकास ब्रिटिश समाज के सभी पहलुओं को तेजी से बदल रहा है। उदीयमान औद्योगिक हितों ने भारत को अपनी वस्तुओं के लिए बड़े बाजार के रूप में बदलना चाहा। ऐसा केवल शांति बनाए रखने और नीति के जरिए नहीं हो सकता था बल्कि भारतीय समाज के आंशिक रूपांतरण और आधुनिकीकरण की आवश्यकता थी। और इस प्रकार, इतिहासकारों थॉम्पसन और गैरट के शब्दों में, "पुरानी बटमारी की मनोदशा और तरीके आधुनिक उद्योगवाद तथा पूंजीवाद की मनोदशा तथा तरीके में बदल गए।"

विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने भी मानवीय प्रगति की नई प्रत्याशाएं उत्पन्न कर दीं। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों के दौरान ब्रिटेन तथा यूरोप में नए विचारों का एक नया ज्वार देखा गया जिसने भारतीय समस्याओं के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण को प्रभावित किया। सारे यूरोप में "सोच-विचार, तौर-तरीकों और नैतिकता के नए दृष्टिकोण सामने आ रहे थे।" 1789 की महान फ्रांसीसी क्रांति ने अपने स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के संदेश द्वारा शक्तिशाली जनतांत्रिक भावनाएं उत्पन्न कीं और आधुनिक राष्ट्रीयता की शक्ति को फैलाया। नई प्रवृत्ति का चिंतन के क्षेत्र में प्रतिनिधित्व बेकन, लॉक, वाल्तेयर, रूसो, कांट, ऐडम स्मिथ और बेंथम और साहित्य के क्षेत्र में वर्ड्सवर्थ, बायरन, शैली और चार्ल्स डिकेंस ने किया। नया चिंतन अठारहवीं शताब्दी

की बौद्धिक क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति और औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न हुआ था स्वभावतया इस नए चिंतन का प्रभाव भारत में महसूस किया गया तथा उसने सरकार की शासकीय धारणाओं को भी कुछ हद तक प्रभावित किया।

नए चिंतन की तीन मुख्य विशेषताएं थीं: विवेकशीलता या तर्क और विज्ञान में विश्वास, मानवतावाद या मनुष्य के प्रति प्रेम, और मानव की प्रगति करने की क्षमता में आस्था और विवेकशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण इस बात का सूचक था कि केवल वही चीज सही मानी जाएगी जो मानवतर्क के अनुकूल हो और व्यवहार में जिसकी परीक्षा की जा सके। सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों की वैज्ञानिक प्रगति तथा उद्योग में विज्ञान के प्रयोग से प्राप्त उत्पादन की विशाल शक्तियां मानवीय तर्कशक्ति का प्रकट प्रमाण थीं। मानवतावाद इस धारणा पर आधारित था कि प्रत्येक मानव प्राणी अपने आप ही साध्य है और इसी रूप में उसका सम्मान किया जाना चाहिए और उसे महत्त्व दिया जाना चाहिए। किसी भी मनुष्य को यह अधिकार नहीं हो सकता कि वह दूसरे मनुष्य को अपने सुख का माध्यम समझे। मानवतावादी दृष्टिकोण ने व्यक्तिवाद, उदारतावाद और समाजवाद के सिद्धांतों को जन्म दिया। प्रगति के सिद्धांत के अनुसार सभी समाजों को समय के साथ अवश्य बदलना होता है। कोई भी चीज न जड़ थी और न जड़ हो सकती है। इसके अलावा मनुष्य में प्रकृति और समाज को विवेकशील तथा उचित रूपरेखा के अनुसार फिर से ढालने की क्षमता है।

यूरोप में चिंतन की नई लहरों का पुराने दृष्टिकोण से टकराव हुआ। भारत संबंधी नीति निर्धारित करने वालों तथा भारतीय प्रशासन चलाने वालों के बीच दृष्टिकोणों में संघर्ष हुआ। पुराने दृष्टिकोण को रूढ़िवादी या परंपरागत दृष्टिकोण कहा जाता था। यह दृष्टिकोण भारत में यथासंभव कम से कम परिवर्तन करने का पक्षपाती था। इस दृष्टिकोण के शुरू के काल में प्रतिनिधि वारेन हेस्टिंग्स और प्रसिद्ध लेखक तथा सांसद एडमंड बर्क थे और बाद के प्रतिनिधि प्रसिद्ध अफसर मुनरो, मैलकम, एल्फिस्टन और मेटकाफ थे। रूढ़िवादियों का कहना था कि भारतीय सभ्यता यूरोपीय सभ्यता से भिन्न थी मगर अवश्यंभावी रूप से उससे निकृष्ट नहीं थी। उनमें से अनेक भारतीय दर्शन और संस्कृति की इज्जत और प्रशंसा करते थे। यह महसूस करते हुए कि कुछ पश्चिमी विचारों और रिवाजों को लागू करना जरूरी हो सकता है उन्होंने प्रस्ताव किया कि उन्हें बहुत सावधानीपूर्वक और धीरे-धीरे लागू किया जाए। सामाजिक स्थिरता को सर्वोपरि रखते हुए, उन्होंने तेज बदलाव के किसी भी कार्यक्रम का विरोध किया। उन्होंने महसूस किया कि व्यापक या जल्दबाजी में किए गए परिवर्तन देश में तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करेंगे। इंग्लैंड और ब्रिटिश शासन के बिल्कुल अंत तक भारत में रूढ़िवादी दृष्टिकोण प्रभावशाली बना रहा। वस्तुतः भारत में ब्रिटिश अफसरों का बहुमत आमतौर से रूढ़िवादी दृष्टिकोण वाला था।

रूढ़िवादी दृष्टिकोण की जगह पर 1800 तक बड़ी तेज़ी से नया दृष्टिकोण आने लगा था जो भारतीय समाज और संस्कृत का कटु आलोचक था। भारतीय सभ्यता को गतिहीन कहकर उसकी निंदा की गई और उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। भारतीय रीति-रिवाजों को असभ्यता का प्रतीक माना गया, भारतीय संस्थानों को भ्रष्ट और पतनोन्मुख बतलाया गया तथा भारतीय चिंतन को संकीर्ण और अवैज्ञानिक कहा गया। ब्रिटेन के अधिकांश अफसरों और लेखकों तथा राजनेताओं ने इस आलोचनात्मक दृष्टि का प्रयोग भारत की राजनीतिक और आर्थिक दासता को उचित बतलाने तथा यह घोषित करने के लिए किया कि वह उन्नति करने योग्य नहीं है और इसलिए उसे स्थायी रूप से ब्रिटिश संरक्षण में रहना चाहिए। मगर थोड़े से अंग्रेज़ जिन्हें 'रेडिकल्स' (Radicals) कहा जाता था संकुचित

आलोचना और साम्राज्यवादी दृष्टिकोण की सीमा से बाहर गए। उन्होंने विकसित मानवतावादी और विवेकशील चिंतन को भारतीय स्थिति पर लागू करने का प्रयत्न किया। विवेक बुद्धि के सिद्धांत के फलस्वरूप उनकी धारणा थी कि यह आवश्यक नहीं है कि भारत हमेशा पतित बना रहे क्योंकि विवेक, बुद्धि और विज्ञान के रास्ते चलकर सभी समाजों में उन्नति करने की क्षमता है। मानवतावादी चिंतन ने उनके अंदर भारत की जनता की दशा सुधारने का जज़बा पैदा किया। उन्नति के सिद्धांत ने उनमें यह विश्वास पैदा किया कि भारतीयों की दशा अवश्य सुधरेगी और इस प्रकार ब्रिटिश समाज के श्रेष्ठतर तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले 'रेडिकल्स' ने भारत को विज्ञान तथा मानवतावाद के आधुनिक प्रगतिशील संसार का भाग बनाना चाहा। उनके अनुसार आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान, दर्शन और साहित्य को अपनाकर वस्तुतः व्यापक और नए तरीके से परिवर्तन के जरिए भारत की कुरीतियों का निराकरण हो सकता है। उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में भारत आने वाले कुछ अफसर भी रेडिकल्स दृष्टिकोण से गंभीर रूप से प्रभावित थे। यही नहीं, 1830 के बाद इंग्लैंड में सुधारक व्हिग सत्तारूढ़ थे।

मगर यहां पर इस बात पर बल देने की जरूरत है कि ऐसे ईमानदार और लोकहितैषी अंग्रेजों की संख्या बहुत कम थी और ब्रिटिश प्रशासन पर उनका प्रभाव कभी निर्णायक नहीं रहा। ब्रिटिश भारत के प्रशासन में शासक तत्व साम्राज्यवादी और शोषक बने रहे। वे नए विचारों को तभी ग्रहण करते और सुधारवादी उपायों को तभी और उसी हद तक लागू करते थे, जब व्यापारिक हितों और मुनाफे की प्रवृत्तियों से वे नहीं टकराते थे। भारत का आधुनिकीकरण उस हद तक ही हो सकता था जिससे कि अपेक्षाकृत आसानी से और पूरे तौर पर ब्रिटिश भारत के संसाधनों का अपने हित में शोषण कर सकें। इस प्रकार भारत के आधुनिकीकरण को अनेक अंग्रेज़ अधिकारियों, व्यवसायियों और राजनेताओं ने स्वीकार कर लिया था क्योंकि हिंदुस्तानियों को ब्रिटिश वस्तुओं का बेहतर ग्राहक बनाना था तथा उन्हें विदेशी शासन स्वीकार करने के लिए तैयार करना था। वास्तव में बहुत रेडिकल्स भारत संबंधी नीति पर विचार करने में अब अपने विश्वासों को भूल गए। जैसा कि उन्होंने ब्रिटेन में किया उस तरह जनतांत्रिक सरकार की स्थापना के लिए प्रयास करने के बदले उन्होंने भारत में एक अपेक्षाकृत अधिक सत्तावादी शासन की मांग की जिसे उन्होंने पितृसत्तावादी कहा। इस दृष्टि से वे रूढ़िवादियों के साथ थे। रूढ़िवादी भी पितृसत्तावाद के कट्टर हिमायती थे जिसके अंतर्गत भारतीय जनता के साथ बच्चों जैसा व्यवहार किया जाएगा और उन्हें प्रशासन से अलग रखा जाएगा। भारत स्थित ब्रिटिश प्रशासकों की मूल दुविधा यही थी कि कुछ सीमा तक आधुनिकीकरण के बिना भारत में ब्रिटिश हितों को नहीं साधा जा सकता था परंतु पूर्ण आधुनिकीकरण ऐसी शक्तियों को जन्म देता जो उनके हितों के विरुद्ध जाती और काफी आगे चलकर देश में ब्रिटिश प्रभुत्व के लिए खतरे पैदा कर देती। इसलिए, उन्हें आंशिक आधुनिकीकरण की अत्यंत सावधानी से संतुलित नीति अपनानी पड़ी। इस नीति का मतलब था : कुछ क्षेत्रों में आधुनिकीकरण करना और अन्य क्षेत्रों में उसके रास्ते में रोड़े अटकाना या उसे नहीं होने देना। दूसरे शब्दों में, आधुनिकीकरण को भी उपनिवेशवादी सीमा के भीतर रहना था और उपनिवेशवाद को बढ़ावा देना था।

भारतीय समाज और संस्कृति के आधुनिकीकरण की नीति को ही ईसाई धर्म प्रचारकों तथा विलियम विल्बर-फोर्स और ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशक मंडल के अध्यक्ष चार्ल्स ग्रांट जैसे धर्मपरायण लोगों ने बढ़ावा दिया, जो चाहते थे कि भारत में ईसाई धर्म फैले। उन्होंने भी भारतीय समाज के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाया मगर उन्होंने धार्मिक आधार पर ऐसा किया। उनका उत्कट विश्वास था कि ईसाई धर्म ही एकमात्र

सच्चा धर्म है और अन्य सारे धर्म झूठे हैं। उन्होंने पश्चिमीकरण के एक कार्यक्रम को इस उम्मीद से समर्थन दिया कि उसके परिणामस्वरूप अंततोगत्वा देश ईसाई धर्म को अपना लेगा। उन्होंने सोचा कि पाश्चात्य ज्ञान की रोशनी अपने धर्मों में लोगों के विश्वास को खत्म कर देगी और उन्हें ईसाई धर्म का स्वागत करने तथा उसे अपनाने के लिए प्रेरित करेगी। इसलिए उन्होंने देश में आधुनिक स्कूल, कालेज और अस्पताल खोले। मगर धर्म प्रचारकों को विवेकशील 'रेडिकल्स' का बहुधा अनचाहे सहायक होना पड़ता था। 'रेडिकल्स, का वैज्ञानिक दृष्टिकोण न केवल हिंदू या मुस्लिम पौराणिक गाथाओं की बल्कि ईसाई पौराणिक गाथाओं की भी जड़ें खोदता था। जैसा कि प्रोफेसर एच.एच. डाडवेल ने बतलाया है : "अपने ही देवताओं की मान्यता पर शंका प्रकट करने की शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने (पाश्चात्य प्रभाव में आए भारतीयों ने) बाइबल की प्रामाणिकता और उसके वृत्तांत की सच्चाई पर भी संदेह व्यक्त किया।" धर्म प्रचारकों ने पितृसत्तावादी साम्राज्यवादी नीतियों का भी समर्थन किया क्योंकि वे कानून तथा व्यवस्था और ब्रिटिश प्रभुत्व को अपने धार्मिक प्रचार के काम के लिए आवश्यक समझते थे। यह आशा दिलाकर कि ईसाई धर्म ग्रहण करने वाले ब्रिटिश वस्तुओं के अच्छे ग्राहक होंगे, उन्होंने ब्रिटिश सौदागरों और विनिर्माताओं से उनका समर्थन प्राप्त करना चाहा।

'रेडिकल्स' को राजा राममोहन राय और उसी तरह के अन्य भारतीयों ने अपना पूर्ण समर्थन दिया। ऐसे भारतीय इस तथ्य के प्रति सचेत थे कि उनका देश और समाज काफी नीचे गिर गया है। वे जाति संबंधी पूर्वाग्रहों तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों से ऊब गए थे और उनका विश्वास था कि भारत की मुक्ति विज्ञान और मानवतावाद के द्वारा ही हो सकती है। हम इन भारतीयों के दृष्टिकोण और गतिविधियों के बारे में अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

भारत सरकार ने व्यापक रूप से आधुनिकीकरण के बदले सावधानी और धीमी गति से नए परिवर्तन लाने की जो नीति अपनाई उसके लिए जिम्मेदार अन्य कारणों में भारत स्थित ब्रिटिश अधिकारियों में रूढ़िवादी दृष्टिकोण का बोलबाला और यह धारणा थी कि भारतीयों के धार्मिक ख्यालों तथा सामाजिक रिवाजों में हस्तक्षेप करने से भारतीय जनता के बीच क्रांतिकारी प्रतिक्रिया हो सकती है। यहां तक कि अत्यंत कट्टर 'रेडिकल्स' ने भी इस चेतावनी की ओर ध्यान दिया क्योंकि ब्रिटिश शासक वर्ग के अन्य सदस्यों के साथ उन्होंने भी भारत में, ब्रिटिश शासन की सुरक्षा और स्थायित्व की कामना की, जिसके सामने हर अन्य विचार का महत्त्व गौण था। वस्तुतः आधुनिकीकरण की नीति को 1858 के बाद धीरे-धीरे छोड़ दिया गया क्योंकि भारतीय योग्य शिष्य सिद्ध हुए और वे अपने समाज के आधुनिकीकरण तथा अपनी संस्कृति पर जोर दे की दिशा में बढ़े। उन्होंने मांग की कि उन पर स्वतंत्रता, समानता और राष्ट्रीयता के आधुनिक सिद्धांत के अनुसार शासन किया जाए। ब्रिटिश लोगों ने सुधारकों को अपना समर्थन देना क्रमशः बंद कर दिया। धीरे-धीरे उन्होंने समाज के कट्टरपंथियों का पक्ष लेना शुरू किया। उन्होंने जातिवाद तथा सांप्रदायिकता को भी बढ़ावा दिया।

लोकोपकारी कार्रवाईयां

भारतीय समाज को उसकी कुरीतियों से मुक्त करने के लिए किए गए ब्रिटिश सरकार के प्रयास कुल मिलाकर बहुत कम थे और इसलिए उनका कुछ विशेष परिणाम नहीं हुआ। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी 1829 में सती प्रथा को गैर-कानूनी घोषित करने की कार्रवाई। विलियम बैंटिक ने घोषित किया कि पति की चिता पर विधवा के जल मरने की कार्रवाई में जो भी सहयोगी होंगे उन्हें अपराधी माना जाएगा। इससे पहले ब्रिटिश शासकों ने सतीप्रथा को रोकने के प्रश्न पर उदासीन

रुख अपनाया था। उन्हें डर था कि सती प्रथा के खिलाफ कोई भी कार्रवाई करने से रूढ़िवादी भारतीय नाराज हो जाएंगे। जब राजा राममोहन राय और अन्य प्रबुद्ध भारतीयों तथा धर्मप्रचारकों ने इस अमानवीय प्रथा को खत्म करने के लगातार आंदोलन किए तब जाकर सरकार सती प्रथा को रोकने के लोकोपकारी क़दम उठाने के लिए सहमत हुई। भूतकाल में अकबर और औरंगजेब, पेशवाओं और जयपुर के राजा जयसिंह ने इस कुप्रथा को दबाने के लिए प्रयास किए लेकिन वे असफल रहे। कुछ भी हो, इस प्रथा को गैर-कानूनी घोषित करने के लिए बैंटिक प्रशंसा का पात्र है। इस कुप्रथा के कारण 1815 और 1818 के बीच केवल बंगाल में ही 800 महिलाओं ने अपनी जान गंवाई थी। बैंटिक इसलिए भी प्रशंसा का पात्र है कि उसने सती प्रथा के रुढ़िवादी समर्थकों के विरोध के सामने झुकने से इनकार कर दिया।

पैदा होते ही लड़कियों को मार देने की प्रथा कुछ राजपूत खानदानों तथा अन्य जातियों में प्रचलित थी। इसके मुख्य कारण थे लड़ाइयों में बड़ी संख्या में मरने के कारण नौजवानों की कमी तथा ऊसर क्षेत्रों में जीविकोपार्जन में कठिनाइयां। यह प्रथा पश्चिम और मध्य भारत में दहेज की कुप्रथा के भयंकर रूप में विद्यमान होने के कारण प्रचलित थी। शिशु हत्या को रोकने के संबंध में कानून 1795 और 1802 में बनाए गए थे मगर उन्हें सख्ती से बैंटिक और हार्डिंग ने ही लागू किया। हार्डिंग ने नर बलि की प्रथा को खत्म करने के लिए भी कानून बनाया। यह प्रथा गोंड नाम की आदिम जाति में प्रचलित थी। भारत सरकार ने 1856 में हिंदू विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून पास किया। सरकार ने पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर और अन्य सुधारकों द्वारा इसके पक्ष में लगातार आंदोलन चलाने के बाद यह कार्रवाई की। इस कानून के तात्कालिक प्रभाव कुछ विशेष नहीं हुए।

इन सब सरकारी सुधारों ने भारतीय समाज कुव्यवस्था को सतही तौर पर ही प्रभावित किया तथा जनता के विशाल बहुमत के जीवन पर इसका कोई खास असर नहीं पड़ा। शायद एक विदेशी सरकार के लिए इससे अधिक कुछ करना संभव भी नहीं था।

आधुनिक शिक्षा का प्रसार

अंग्रेज़ आधुनिक शिक्षा आरंभ करने में अधिक सफल रहे। निःसंदेह आधुनिक शिक्षा का प्रसार केवल सरकार के प्रयास से ही नहीं हुआ। ईसाई धर्मप्रचारकों और बड़ी संख्या में प्रबुद्ध भारतीयों ने भी इस कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अपने शासन के पहले 60 वर्षों के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी प्रजा की शिक्षा में नाममात्र दिलचस्पी ली। वह मुनाफा कमाने वाली एक व्यापारिक संस्था रही। परंतु इसके दो बहुत ही छोटे अपवाद रहे। वारेन हेस्टिंग्ज ने 1781 में मुस्लिम कानून और संबद्ध विषयों के अध्ययन और पढ़ाई के लिए कलकत्ता मदरसा कायम किया। जोनाथन डंकन ने 1791 में हिंदू कानून और दर्शन के अध्ययन के लिए वाराणसी में संस्कृत कालेज स्थापित किया। वह वाराणसी में रेजिडेंट था। दोनों संस्थाओं की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि उनसे कंपनी की अदालतों में न्याय-प्रशासन के लिए योग्य भारतीय नियमित रूप से मिल सकें।

धर्मप्रचारकों और उनके समर्थकों तथा उनके लोकोपकारी व्यक्तियों ने कंपनी पर तुरंत दबाव डालना आरंभ किया कि वह भारत में आधुनिक धर्मनिरपेक्ष पश्चिमी शिखा को बढ़ावा दे। यद्यपि अनेक भारतीयों सहित समाजसेवी लोगों की धारणा थी कि आधुनिक ज्ञान ही देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कुरीतियों की सर्वोत्तम दवा है, लेकिन धर्मप्रचारकों को विश्वास था कि आधुनिक शिक्षा अपने धर्मों में लोगों की आस्था को खत्म कर देगी और वे ईसाई धर्म ग्रहण करने के लिए प्रेरित होंगे। एक मामूली सी शुरुआत

1813 में की गई जब चार्टर एक्ट में विद्वान भारतीयों को बढ़ावा देने तथा देश में आधुनिक विज्ञानों के ज्ञान को प्रोत्साहित करने का सिद्धांत शामिल कर लिया गया।ऐक्ट ने कंपनी को इस उद्देश्य के लिए एक लाख रुपए खर्च करने का निर्देश दिया। मगर 1823 तक कंपनी के अधिकारियों ने इस काम के लिए यह तुच्छ रकम भी नहीं दी।

वर्षों तक देश में इस प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद चलता रहा कि यह खर्च किस दिशा में किया जाए। कुछ लोगों का कहना था कि यह रकम केवल आधुनिक पाश्चात्य अध्ययनों को प्रोत्साहन देने के लिए खर्च की जाए, अन्य लोगों की इच्छा थी कि पाश्चात्य विज्ञान और साहित्य की पढ़ाई छात्रों को नौकरियों के लिए तैयार करने के लिए की जाए, मगर मुख्य जोर परंपरागत भारतीय विद्या के प्रसार पर दिया जाए। जो लोग पाश्चात्य विद्या का प्रसार चाहते थे, उनके बीच इस मुद्दे पर विवाद खड़ा हो गया कि आधुनिक स्कूलों और कालेजों में शिक्षा का कौन सा माध्यम अपनाया जाए। कुछ लोगों ने भाषाओं (जिन्हें उस समय *Vernaculars* कहा जाता था) के प्रयोग की सिफारिश की जबकि अन्य लोगों ने अंग्रेजी के इस्तेमाल की वकालत की। दुर्भाग्यवश, इस प्रश्न को लेकर काफी उलझन पैदा हो गई। अनेक लोग माध्यम के रूप में अंग्रेजी तथा अध्ययन के विषय में अंग्रेजी के बीच, तथा माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं और अध्ययन की मुख्य विषय-वस्तु के रूप में परंपरागत भारतीय विद्या के बीच भेद नहीं कर पाए।

दोनों विवाद 1835 में तब खत्म हुए, जब भारत सरकार ने निर्णय किया कि जो भी सीमित संसाधन वह देने को तैयार है, उसे वह पाश्चात्य विज्ञान तथा पाश्चात्य साहित्य को केवल अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पढ़ाने के लिए लगाएगी। लार्ड मैकाले उस समय गवर्नर-जनरल की कौंसिल का विधि सदस्य था, उसने एक प्रसिद्ध आलोकपत्र (*minute*) में यह तर्क दिया कि भारतीय भाषाएं इतनी विकसित नहीं हैं कि इस उद्देश्य को पूरा कर सकें, और "प्राच्य विद्या यूरोपीय विद्या से बिल्कुल निकृष्ट है।" यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि मैकाले के विचार विज्ञान तथा चिंतन के क्षेत्रों में भारत की भूतकालीन उपलब्धियों के प्रति पूर्वाग्रह तथा अज्ञान से भरे हुए थे, फिर भी उसका यह दावा सही था कि भौतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्रों में यूरोपीय ज्ञान तत्कालीन भारतीय ज्ञान से श्रेष्ठतर था। एक जमाना था जब भारतीय ज्ञान सबसे अधिक उन्नत था वह बहुत दिनों से गतिहीन हो गया था तथा वास्तविकता से उसका कोई संपर्क नहीं रह गया था। इसलिए राजा राममोहन राय के नेतृत्व में उस समय के अधिकांश प्रगतिशील भारतीयों ने जोरदार ढंग से पाश्चात्य ज्ञान के अध्ययन की वकालत की। वे पाश्चात्य ज्ञान को "आधुनिक पश्चिम के वैज्ञानिक तथा लोकतांत्रिक चिंतन के खज़ाने की कुंजी" के रूप में देखते थे। उन्होंने यह भी माना की परंपरागत शिक्षा ने अंधविश्वास, डर और सत्तावाद को जन्म दिया है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने माना कि देश की मुक्ति आगे बढ़ने में है न कि पीछे जाने में। वस्तुतः उन्नीसवीं और बीसवीं सदियों के किसी भी प्रमुख भारतीय ने इस दृष्टिकोण को कभी नहीं छोड़ा। इसके अतिरिक्त आधुनिक इतिहास के संपूर्ण काल में पाश्चात्य ज्ञान को ग्रहण करने के लिए उत्सुक भारतीयों ने सरकार पर दबाव डाला कि वह आधुनिक ढर्रे पर अपनी शैक्षिक गतिविधियों का प्रसार करे।

भारत सरकार ने, विशेषकर बंगाल में, 1835 के निर्णय पर तेज़ी से कार्रवाई की और अपने स्कूलों और कालेजों में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बना दिया। उसने बड़ी संख्या में प्राथमिक स्कूल खोलने के बदले थोड़े से अंग्रेजी स्कूल और कालेज खोले। लोक शिक्षा की उपेक्षा करने के कारण बाद में इस नीति की तीव्र आलोचनाएं हुईं। वस्तुतः आधुनिक और उच्चतर शिक्षा संस्थान खोलने पर जोर देने की नीति गलत नहीं थी।

अगर और कुछ नहीं तो प्राथमिक स्कूलों के लिए शिक्षकों को शिक्षित और प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में स्कूलों और कालेजों की आवश्यकता थी। मगर उच्च शिक्षा के प्रसार के साथ ही आम जनता को शिक्षित करने का काम भी हाथ में लिया जाना चाहिए था। सरकार इसके लिए तैयार नहीं थी क्योंकि वह शिक्षा पर मामूली रकम से अधिक खर्च नहीं करना चाहती थी। शिक्षा पर खर्च की कमी को पूरा करने के लिए अधिकारियों ने तथाकथित "अधोगामी निस्यंदन सिद्धांत" या नीचे की ओर छन कर जाने के सिद्धांत (Downward filtration theory) का सिद्धांत लिया। चूंकि शिक्षा के मद में दी गई धनराशि के द्वारा मुट्ठी भर लोगों को ही शिक्षित किया जा सकता था, इसलिए यह तय हुआ कि उसे उच्च और मध्यम वर्गों के थोड़े से लोगों को शिक्षित करने पर खर्च किया जाए। उन लोगों से यह आशा की जाती थी कि वे जनसाधारण को शिक्षित करने और उनके बीच आधुनिक विचारों का प्रचार करने का काम अपने ऊपर लेंगे। इस प्रकार यह समझा गया कि शिक्षा और आधुनिक विचार उच्च वर्गों से छन कर या निकल कर निचले वर्गों के लोगों को प्राप्त होंगे। यह नीति ब्रिटिश शासन के बिल्कुल अंत तक चली हालांकि इसे सरकारी तौर पर 1854 में छोड़ दिया गया था। यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि यद्यपि शिक्षा रिसकर नीचे नहीं गई किंतु आधुनिक विचार बहुत हद तक आम लोगों के बीच फैले हालांकि शासकों ने जिस रूप में चाहा था, उस रूप में ऐसा नहीं हुआ। स्कूलों और पाठ्यपुस्तकों के जरिए नहीं बल्कि राजनीतिक दलों, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं और सार्वजनिक मंचों के माध्यम से शिक्षित भारतीयों का बुद्धिजीवियों ने ग्रामीण और शहरी जनता के बीच जनतंत्र, राष्ट्रीयता, साम्राज्यवाद विरोध और सामाजिक और आर्थिक समानता तथा न्याय के विचारों का प्रचार किया। यदि शिक्षा इन विचारों की वाहक बनी भी तो ऐसा उसने परोक्ष रूप से ही किया। इसने लोगों को भौतिक और समाजविज्ञानों तथा मानविकी में कुछ साहित्य उपलब्ध कराया। इससे उनकी सामाजिक विवेचन की क्षमता बढ़ी। अन्यथा इस शिक्षा का ढांचा और खाका, इसके लक्ष्य तथा पद्धतियाँ और पाठ्यक्रम की रचना साम्राज्यवाद को सुरक्षित रखने के लिए की गई थी।

भारत में शिक्षा के विकास में भारत मंत्री (Secretary of State) की 1854 की शिक्षा विषयक विज्ञप्ति (Educational Dispatch) एक और महत्त्वपूर्ण कदम थी। इस विज्ञप्ति ने भारत सरकार से जन शिक्षा की जिम्मेदारी लेने को कहा। इस प्रकार उसने "अधोगामी निस्यंदन सिद्धांत" को कम से कम कागजी तौर पर तो छोड़ दिया। लेकिन व्यवहार में, सरकार ने शिक्षा के प्रसार के लिए कुछ भी नहीं किया और उस पर नाममात्र खर्च किया। विज्ञप्ति द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार सभी प्रांतों में शिक्षा विभाग बने और 1857 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में संबद्धकारी (affiliating) विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। प्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटर्जी 1858 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम दो स्नातकों में से थे।

सभी बड़े-बड़े दावों के बावजूद, कंपनी और बाद में ब्रिटिश राज के अधीन भारत सरकार ने भारत में पाश्चात्य विद्या या किसी भी अन्य विद्या के प्रसार में वस्तुतः कोई गंभीर दिलचस्पी नहीं ली। यहां तक कि जो सीमित प्रयास किया गया, वह उन कारकों का परिणाम था, जिनका लोक कल्याण की भावनाओं से कोई संबंध नहीं था। इस दिशा में आधुनिक शिक्षा के पक्ष में प्रगतिशील भारतीयों, विदेशी ईसाई धर्म प्रचारकों, और लोकोपकारी अफसरों तथा अन्य अंग्रेजों का आंदोलन कुछ महत्त्व रखता है। मगर सबसे महत्त्वपूर्ण कारण था, प्रशासन का खर्च कम करने की चिंता। इसके लिए सरकार शिक्षित भारतीयों की संख्या बढ़ाना चाहती थी जिससे प्रशासन और ब्रिटिश व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की छोटे कर्मचारियों की बड़ी और बढ़ती हुई जरूरतों

को पूरा किया जा सके। शिक्षित भारतीय अपेक्षाकृत सस्ते पड़ते थे। इन कामों के लिए पर्याप्त संख्या में अंग्रेजों को बाहर से लाना बहुत ही खर्चीला था और शायद संभव भी नहीं था। सस्ते क्लर्कों की संख्या बढ़ाने पर जोर देने के फलस्वरूप स्कूलों और कालेजों में आधुनिक शिक्षा दी जाने लगी जिसने वहां शिक्षा प्राप्त करने वालों को कंपनी के प्रशासन में काम करने लायक बनाया। साथ ही इन संस्थानों ने अंग्रेजी पर जोर दिया जो स्वामियों और प्रशासन की भाषा थी। अंग्रेजों की शिक्षा नीति का एक अन्य प्रयोजन इस धारणा से निकला था कि शिक्षित भारतीय इंग्लैंड में बनी वस्तुओं के बाजार का भारत में विस्तार करेंगे। अंत में, पाश्चात्य शिक्षा भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करेगी, विशेषकर इस कारण से कि उसने भारत के ब्रिटिश विजेताओं और उनके प्रशासन की महिमा का गान किया था। उदाहरण के लिए, मैकाले ने निर्देश दिया थाः

> हमें ऐसा वर्ग बनाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे और उन करोड़ों लोगों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, दुभाषिए का काम कर सके; यह उन लोगों का वर्ग हो जो रक्त और रंग की दृष्टि से भारतीय मगर रुचि, विचारों, आचरण तथा बुद्धि की दृष्टि से अंग्रेज़ हों।

इस प्रकार अंग्रेजों ने आधुनिक शिक्षा का उपयोग देश में अपनी राजनीतिक सत्ता को मजबूत बनाने के लिए करना चाहा।

परंपरागत भारतीय शिक्षा प्रणाली धीरे-धीरे सरकारी समर्थन के अभाव और उससे भी अधिक, 1844 की सरकारी घोषणा के कारण समाप्त हो गई, जिसके अनुसार सरकारी रोजगार के लिए आवेदन करने वालों को अंग्रेजी का ज्ञान होना चाहिए। इस घोषणा ने अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों को अधिक लोकप्रिय बना दिया और अधिकाधिक छात्रों को परंपरागत स्कूलों को छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया।

शिक्षा प्रणाली की एक मुख्य कमजोरी थी, आम जनता की शिक्षा की उपेक्षा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में जन-साक्षरता की स्थिति 1821 की तुलना में 1921 में शायद ही अच्छी थी। वर्ष 1911 में 94 प्रतिशत और 1921 में 92 प्रतिशत भारतीय निरक्षर थे। शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं की जगह अंग्रेजी के ऊपर अधिक जोर ने जनता में शिक्षा का प्रसार नहीं होने दिया। उसमें शिक्षित लोगों और जनता के बीच भाषा तथा संस्कृति की खाई पैदा करने की प्रवृत्ति भी नजर आने लगी। चूंकि छात्रों को स्कूलों तथा कालेजों में फीस देनी पड़ती थी, इसलिए शिक्षा काफी मंहगी थी, अतः धनी वर्गों और शहरी लोगों का इस पर एकाधिकार हो गया था। लगभग एक सौ साल तक यह शिक्षा इतनी सीमित थी कि यह परंपरागत शिक्षा की क्षति की भरपाई करने में भी असफल रही।

प्रारंभिक शिक्षा नीति में एक सबसे बड़ी खामी थी लड़कियों की शिक्षा की बिल्कुल अवहेलना। लड़कियों की शिक्षा के लिए धन की कोई भी व्यवस्था नहीं की गई थी। ऐसा अंशतः इसलिए हुआ कि सरकार चिंतित थी कि रूढ़िवादी भारतीयों की भावनाओं को चोट न पहुंचे। इससे भी बढ़कर यह बात थी कि विदेशी अधिकारियों की नजर में स्त्री-शिक्षा की कोई तात्कालिक उपयोगिता नहीं थी क्योंकि स्त्रियों को सरकारी दफ्तरों में क्लर्क नहीं बनाया जा सकता था। परिणाम यह हुआ कि 1921 में भी केवल 2 प्रतिशत भारतीय स्त्रियां लिख-पढ़ सकती थीं और 1919 में केवल 490 लड़कियां बंगाल प्रेसिडेंसी के हाई स्कूलों की चार उच्च कक्षाओं में पढ़ रही थीं।

कंपनी के प्रशासन ने वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा की भी उपेक्षा की। 1857 तक देश में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में केवल तीन ही मेडिकल कालेज थे। उच्चतर तकनीकी शिक्षा देने के लिए केवल एक ही इंजीनियरिंग कालेज रुड़की में था। उसके दरवाजे केवल यूरोपवासियों तथा यूरेशियन लोगों के लिए खुले हुए थे।

इन कमजोरियों में से अधिकांश की जड़ में वित्तीय समस्या थी। सरकार शिक्षा पर कभी एक मामूली रकम से अधिक खर्च करने को तैयार नहीं थी। यहां तक कि 1886 में भी उसने अपनी लगभग 47 करोड़ रुपयों की निवल आय में से एक करोड़ रुपए ही शिक्षा पर खर्च किए।

अभ्यास

1. निम्नांकित शब्दों के अर्थ स्पष्ट कीजिए :
   व्यक्तिवाद, निस्यंदन का सिद्धांत, बालिका वध, कानून का नियम, उदारवाद, विवेकवाद, मानववाद।
2. प्रशासन नागरिक सेवा, सेना तथा न्यायपालिका के पीछे छिपे उद्देश्यों के विशेष संदर्भ में भारतीय प्रशासन की आधारभूत विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
3. "भारतीय नागरिक सेवा को फौलादी ढांचा माना जाता है जिसने भारत में ब्रिटिश शासन को आगे बढ़ाया और सुदृढ़ किया।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
4. "भारत में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत न्याय प्रणाली कानून की समानता की अवधारणा पर आधारित थी।" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
5. भारत में ब्रिटिश शासकों की सामाजिक और सांस्कृतिक नीतियों को प्रभावित करने वाले आधुनिक विचारों की क्या मुख्य विशेषताएं थीं? इनके प्रभाव का स्वरूप क्या था और इन्होंने कहां तक प्रभावित किया, इसका विवेचन कीजिए।
6. भारत में ब्रिटिश अधिकारियों ने सामाजिक सुधार के क्षेत्र में क्या और कौन से वैधानिक उपाय किए।
7. भारत में शिक्षा के क्षेत्र में ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा उठाए गए कदमों का विवरण दीजिए। इन कदमों के उद्देश्यों तथा प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
8. भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार के प्रशासकीय ढांचे को दर्शाने वाला एक चार्ट बनाओ।
9. नीचे दिए गए विषय पर सामग्री एकत्र करो :
   सामूहिक परियोजना के रूप में
   (क) सती प्रथा के उन्मूलन संबंधी विवाद
   (ख) भारत में आधुनिक शिक्षा और परंपरागत शिक्षा संबंधी विवाद।

अध्याय : 5

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण

जबरदस्त बौद्धिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल उन्नीसवीं सदी के भारत की विशेषता थी। आधुनिक पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव और विदेशी शक्ति द्वारा पराजित होने की चेतना के चलते लोगों में नई जागृति पैदा हुई। जनता में इस बात का एहसास हो चुका था कि भारतीय सामाजिक ढांचे और सांस्कृतिक दुर्बलताओं की वजह से मुट्ठी भर विदेशियों ने भारत को उपनिवेश में बदल दिया है। समझदार भारतीय लोगों ने अपने समाज की शक्ति तथा कमजोरी को जाना और इसकी कमजोरियों को दूर करने के उपाय भी खोजने लगे। भारत की बहुसंख्यक जनता ने पश्चिम के साथ समझौता करना अस्वीकार कर दिया। इन लोगों ने परंपरागत भारतीय विचारों और संस्थाओं में अपनी आस्था व्यक्त की। दूसरी बात यह थी कि लोग धीरे-धीरे यह मानने लगे कि अपने समाज में फिर से प्राण फूंकने के लिए आधुनिक पश्चिमी विचारों के कुछ तत्वों को आत्सात करना पड़ेगा। मानवतावाद, विवेक पर आधारित सिद्धांतों और आधुनिक विज्ञान ने उन्हें खास तौर से प्रभावित किया, क्योंकि इस बात पर लोगों में मतभेद था कि किस प्रकार के सुधार किए जाएं तथा कितना सुधार किया जाना चाहिए। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के सभी बुद्धिजीवी इस विश्वास के थे कि सामाजिक और धार्मिक सुधारों की तत्काल जरूरत है।

राममोहन राय : इस जागरण के मुख्य नेता राममोहन राय थे जिन्हें आधुनिक भारत का प्रथम नेता मानना एकदम उचित है। अपने देश और जनता के प्रति गहरे प्रेम से प्रेरित होकर आजीवन उसके सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक और राजनीतिक नवोत्थान के लिए राममोहन राय ने कठिन परिश्रम किया। समसामयिक भारतीय समाज की जड़ता और भ्रष्टाचार से उन्हें काफी कष्ट हुआ। उस समय भारतीय समाज में जाति और परंपरा का बोलबाला था। लोकधर्म अंधविश्वासों से भरा हुआ था। इसका फायदा अज्ञानी लोग और भ्रष्ट पुरोहित उठाते थे। उच्च वर्ग के लोग स्वार्थी थे और उन लोगों ने अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए सामाजिक हितों की बलि दी। राममोहन राय के मन में प्राच्य दार्शनिक विचार-धाराओं के प्रति गहन प्रेम और आदर था। लेकिन वे यह भी सोचते थे कि केवल पश्चिमी संस्कृति से ही भारतीय समाज का पुनरुत्थान संभव था।

खासतौर पर वे चाहते थे कि उनके देश के लोग विवेकशील दृष्टि और वैज्ञानिक सोच अपनाएं तथा नर-नारियों की मानवीय प्रतिष्ठा और सामाजिक समानता के सिद्धांत को स्वीकार कर लें। वे यह

भी चाहते थे कि देश में आधुनिक पूंजीवादी उद्योग आरंभ किए जाएं।

राममोहन राय प्राच्य और पाश्चात्य चिंतन के संश्लिष्ट (मिले-जुले) रूप के प्रतिनिधि थे। वे विद्वान थे और संस्कृत, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, ग्रीक और हिब्रू सहित एक दर्जन से अधिक भाषाएं जानते थे। युवावस्था में उन्होंने वाराणसी में संस्कृत साहित्य और हिंदू दर्शन तथा पटना में कुरान और फारसी तथा अरबी साहित्य का अध्ययन किया था। वे जैन धर्म और भारत के अन्य धार्मिक आंदोलनों तथा पंथों से अच्छी तरह परिचित थे। बाद में उन्होंने पाश्चात्य चिंतन और संस्कृति का गहरा अध्ययन किया। मूल बाइबिल का अध्ययन करने के लिए उन्होंने ग्रीक और हिब्रू भाषाएं सीखीं। उन्होंने 1809 में फारसी में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "एकेश्वरवादियों को उपहार" (Gift to Monotheists) लिखी जिसमें उन्होंने अनेक देवताओं में विश्वास के विरुद्ध और एकेश्वरवाद के पक्ष में वजनदार तर्क दिए।

वे 1814 में कलकत्ता में बस गए और उन्होंने जल्द ही नौजवानों के एक समूह को अपनी ओर आकर्षित कर लिया जिनके सहयोग से उन्होंने आत्मीय सभी आरंभ की। तब से लेकर जीवन भर बंगाल के हिंदुओं में प्रचलित धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ उन्होंने एक जोरदार संघर्ष चलाया। विशेष रूप से, उन्होंने मूर्तिपूजा, जाति की कट्टरता और निरर्थक धार्मिक कृत्यों के प्रचलन का जोरदार विरोध किया। इन रिवाजों को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने पुरोहित वर्ग की निंदा की। उनकी धारणा थी कि सभी प्रमुख प्राचीन हिंदू धर्मग्रंथों ने एकेश्वरवाद की शिक्षा दी है। अपने दावे को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने वेदों और पांच प्रमुख उपनिषदों के बंगला अनुवाद प्रकाशित किए। उन्होंने एकेश्वरवाद के समर्थन में कई पुस्तक-पुस्तिकाएं लिखीं।

यद्यपि अपने दार्शनिक विचारों के समर्थन में उन्होंने प्राचीन विशेषज्ञों को उद्धृत किया तथापि अंततोगत्वा उन्होंने मानवीय तर्क शक्ति का सहारा लिया जो, उनके विचार से, किसी भी सिद्धांत-प्राच्य या पाश्चात्य-की सच्चाई की अंतिम कसौटी है। उनकी धारणा थी कि वेदांत-दर्शन मानवीय तर्क शक्ति पर आधारित है। किसी भी स्थिति में आदमी को तब पवित्र ग्रंथों, शस्त्रों और विरासत में मिली परंपराओं से हट जाने में नहीं हिचकिचाना चाहिए जब मानवीय तर्क शक्ति का वैसा तकाजा हो और वे परंपराएं समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो रही हों। इस बात का उल्लेख जरूरी है कि राममोहन राय ने अपने विवेकशील दृष्टिकोण का प्रयोग केवल भारतीय धर्मों और परंपराओं तक ही सीमित नहीं रखा। उससे उनके अनेक ईसाई धर्मप्रचारक मित्रों को निराशा हुई जिन्होंने उम्मीद लगाई थी कि हिंदू धर्म की विवेकशील समीक्षा उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित करेगी। राममोहन राय ने ईसाई धर्म, विशेषकर उसमें निहित अंध आस्था के तत्वों को भी विवेक शक्ति के अनुसार देखने पर जोर दिया। उन्होंने 1820 में 'प्रीसेप्ट्स ऑफ जीसस' नाम की पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उन्होंने 'न्यू टेस्टामेंट' के नैतिक और दार्शनिक संदेश को उसकी चमत्कारी कहानियों से अलग करने की कोशिश की। उन्होंने 'न्यू टेस्टामेंट' के नैतिक और दार्शनिक संदेश की प्रशंसा की। वे चाहते थे कि ईसा मसीह के उच्च नैतिक संदेश को हिंदू धर्म में समाहित कर लिया जाए। इससे ईसाई धर्म प्रचारक उनके विरोधी बन गए।

इस प्रकार राममोहन राय का मानना था कि न तो भारत के भूतकाल पर आंखें मूंदकर निर्भर रहा जाए और न ही पश्चिम का अंधानुकरण किया जाए। दूसरी ओर, उन्होंने ये विचार रखे कि विवेक बुद्धि का सहारा लेकर नए भारत को सर्वोत्तम प्राच्य और पाश्चात्य विचारों को प्राप्त कर संजो रखना चाहिए। अतः उन्होंने चाहा कि भारत पश्चिमी देशों

से सीखे, मगर सीखने की यह क्रिया एक बौद्धिक और सर्जनात्मक प्रक्रिया हो जिसके द्वारा भारतीय संस्कृति और चिंतन में जान डाल दी जाए। इस प्रक्रिया का अर्थ भारत पर पाश्चात्य संस्कृति को थोपना नहीं हो। इसलिए वे हिंदू धर्म में सुधार के हिमायती और हिंदू धर्म की जगह ईसाई धर्म लाने के विरोधी थे। उन्होंने ईसाई धर्म प्रचारकों की हिंदू धर्म और दर्शन पर अज्ञानपूर्ण आलोचनाओं का जवाब दिया। साथ ही उन्होंने अन्य धर्मों के प्रति अत्यंत मित्रतापूर्ण रुख अपनाया। उनका विश्वास था कि बुनियादी तौर पर सभी धर्म एक ही संदेश देते हैं कि उनके अनुयायी भाई-भाई हैं।

जिंदगी भर राममोहन राय को अपने निडर धार्मिक दृष्टिकोण के लिए भारी कीमत चुकानी पड़ी। रूढ़िवादियों ने मूर्ति पूजा की आलोचना तथा ईसाई धर्म और इस्लाम की दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रशंसा करने के कारण उनकी निंदा की। उन्होंने उनका सामाजिक तौर पर बहिष्कार किया। उनकी मां ने भी बहिष्कार करने वालों का साथ दिया। उन्हें विधर्मी और जातिबहिष्कृत कहा गया।

उन्होंने 1828 में ब्रह्म सभा नाम की एक नई धार्मिक संस्था की स्थापना की जिसको बाद में ब्रह्मसमाज कहा गया। इसका उद्देश्य हिंदू धर्म को स्वच्छ बनाना और एकेश्वरवाद की शिक्षा देना था। नई संस्था के दो आधार थे, तर्क शक्ति और वेद तथा उपनिषद्। उसे अन्य धर्मों की शिक्षाओं को भी समाहित करना था। ब्रह्मसमाज ने मानवीय प्रतिष्ठा पर जोर दिया, मूर्तिपूजा का विरोध किया तथा सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों की आलोचना की।

राममोहन राय एक महान चिंतक थे; और कर्मठ व्यक्ति थे। राष्ट्र-निर्माण का शायद ही कोई पहलू था जिसे उन्होंने अछूता छोड़ा हो। वस्तुतः जैसे उन्होंने हिंदू धर्म को अंदर रहकर सुधारने का काम आरंभ किया, वैसे ही उन्होंने भारतीय समाज के सुधार के लिए आधार तैयार किया। सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध उनके आजीवन जेहाद का सबसे बढ़िया उदाहरण अमानवीय सती प्रथा के खिलाफ ऐतिहासिक आंदोलन था। उन्होंने 1818 में इस प्रश्न पर जनमत खड़ा करने का काम आरंभ किया। एक और पुराने शास्त्रों का प्रमाण देकर दिखलाया कि हिंदू धर्म सती प्रथा के विरोध में था, दूसरी ओर उन्होंने लोगों की तर्कशक्ति, मानवीयता और दया भाव की दुहाई दी। वे कलकत्ता के शमशानों में जाते और विधवाओं के रिश्तेदारों से उनके आत्मदाह के कार्यक्रम को त्याग देने के लिए समझाते-बुझाते। उन्होंने समान विचार वाले लोगों को संगठित किया जो इन कृत्यों पर कड़ी निगाह रखें और विधवाओं को सती होने के लिए मजबूर करने की हर कोशिश को रोकें। जब रूढ़िवादी हिंदूओं ने संसद को याचिका दी कि वह सती प्रथा पर पाबंदी लगाने संबंधी बैंटिंक की कार्रवाई को मंजूरी न दे तब उन्होंने बैंटिंक की कारर्वाई के पक्ष में प्रबुद्ध हिंदुओं की ओर से एक याचिका दिलवाई।

वे औरतों के पक्के हिमायती थे। उन्होंने औरतों की परवशता की निंदा की तथा इस प्रचलित विचार का विरोध किया कि औरतें पुरुषों से बुद्धि में या नैतिक दृष्टि से निकृष्ट हैं। उन्होंने बहुविवाह तथा विधवाओं की अवनत स्थिति की आलोचना की। औरतों की स्थिति को सुधारने के लिए उन्होंने मांग की कि उन्हें विरासत और संपत्ति संबंधी अधिकार दिए जाएं।

राममोहन राय आधुनिक शिक्षा के सबसे प्रारंभिक प्रचारकों में से थे। वे आधुनिक शिक्षा को देश में आधुनिक विचारों के प्रचार का प्रमुख साधन समझते थे। डेविड हेअर ने 1817 में कलकत्ता में प्रसिद्ध हिंदु कालेज की स्थापना की। वह 1800 में एक घड़ीसाज के रूप में भारत आया था, मगर उसने अपनी सारी जिंदगी देश में आधुनिक शिक्षा के प्रसार

में लगा दी। हिंदू कालेज की स्थापना और उसकी अन्य शिक्षा संबंधी परियोजनाओं के लिए राममोहन राय ने हेअर को अत्यंत जोरदार समर्थन दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने कलकत्ता में 1817 से अपने खर्च से एक अंग्रेजी स्कूल चलाया जिसमें अन्य विषयों के साथ ही यांत्रिकी (*Mechanics*) और वाल्तेयर के दर्शन की पढ़ाई होती थी। उन्होंने 1825 में एक वेदांत कालेज की स्थापना की जिसमें भारतीय विद्या और पाश्चात्य सामाजिक तथा भौतिक विज्ञानों की पढ़ाई की सुविधाएं उपलब्ध थीं।

राममोहन राय बंगाल में बंगला को बौद्धिक संपर्क का माध्यम बनाने के लिए समान रूप से उत्सुक थे। उन्होंने बंगला व्याकरण पर एक पुस्तक की रचना की। अपने अनुवादों, पुस्तिकाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं के जरिए बंगला भाषा की एक आधुनिक और सुरूचिपूर्ण शैली विकसित करने में उन्होंने सहायता दी।

भारत में राष्ट्रीय चेतना के उदय की पहली झलक का राममोहन राय प्रतिनिधित्व करते थे। एक स्वतंत्र और पुनरूत्थानशील भारत का स्वप्न उनके चिंतन और कार्यों का मार्गदर्शन करता था। उनका विश्वास था कि भारतीय धर्मों और समाज से भ्रष्ट तत्वों को जड़मूल से उखाड़ फेंकने की कोशिश कर और एकेश्वरवाद का वेदांतिक संदेश देकर वे भिन्न-भिन्न समूहों में बंटे भारतीय समाज की एकता का आधार तैयार कर रहे हैं। उन्होंने जातिप्रथा की कट्टरता का विशेष रूप से विरोध किया, जो, उनके अनुसार, "हमारे बीच एकता के अभाव का स्त्रोत रहा है।" उनका ख्याल था कि जातिप्रथा दोहरी कुरीति है: उसने असमानता पैदा की है और जनता को विभाजित किया है और उसे "देशभक्ति की भावनाओं से वंचित रखा है।" इस प्रकार, उनके अनुसार, धार्मिक सुधार का एक लक्ष्य राजनीतिक उत्थान था।

राममोहन राय भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत थे। जनता के बीच वैज्ञानिक, साहित्यिक और राजनीतिक ज्ञान के प्रचार, तात्कालिक दिलचस्पी के विषयों पर जनमत तैयार करने, और सरकार के सामने जनता की मांगों और शिकायतों को देखने के लिए उन्होंने बंगला, फारसी, हिंदी और अंग्रेजी में पत्र-पत्रिकाएं निकालीं।

वे देश के राजनीतिक प्रश्नों पर जन-आंदोलन के प्रवर्तक भी थे। बंगाल के जमींदारों की उत्पीड़क कार्रवाइयों की उन्होंने निंदा की, जिन्होंने किसानों को दयनीय स्थिति में पहुंचा दियाा था। उन्होंने मांग की कि वास्तविक किसानों द्वारा दिए जाने वाले अधिकतम लगान को सदा के लिए निश्चित कर दिया जाना चाहिए जिससे वे भी 1793 के स्थायी बंदोबस्त से फायदा उठा सकें। उन्होंने लाखिराज (rent-free) जमीन पर लगान निर्धारित करने के प्रयासों के प्रति भी विरोध प्रकट किया। उन्होंने कंपनी के व्यापारिक अधिकारों को खत्म करने तथा भारतीय वस्तुओं पर से भारी निर्यात शुल्कों को हटाने की भी मांग की और उच्च सेवाओं के भारतीयकरण कार्यपालिका और न्यायपालिका को एक दूसरे से अलग करने, जूरी के जरिए मुकदमों की सुनवाई और भारतीयों तथा युरोपवासियों के बीच न्यायिक समानता की भी उन्होंने मांग की।

अंतर्राष्ट्रीयता और राष्ट्रों के बीच मुक्त सहयोग में राममोहन राय का पक्का विश्वास था। कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने ठीक ही लिखा है, "राममोहन अपने समय में, संपूर्ण मानव समाज में एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने आधुनिक युग के महत्त्व को पूरी तरह समझा। वे जानते थे कि मानव सभ्यता का आदर्श अलग-अलग रहने में नहीं बल्कि चिंतन और क्रिया के सभी क्षेत्रों में व्यक्तियों तथा राष्ट्रों के आपसी भाई चारे में निहित है।" राममोहन राय ने अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं में गहरी दिलचस्पी ली और हर जगह उन्होंने स्वतंत्रता, जनतंत्र और राष्ट्रीयता के आंदोलन का

समर्थन तथा हर प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और जुल्म का विरोध किया। 1821 में नेपल्स में क्रांति की विफलता की ख़बर से वे इतने दुखी हो गए कि उन्होंने अपने सारे सामाजिक कार्यक्रमों को रद्ध कर दिया। दूसरी ओर, स्पेनिश अमरीका में 1823 में क्रांति की सफलता पर उन्होंने एक सार्वजनिक भोज देकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। आयरलैंड की दुरस्थ जमींदारों के उत्पीड़क राज में दयनीय स्थिति की उन्होंने निंदा की। उन्होंने सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि अगर संसद रिफार्म बिल पास करने में असफल रही तो वे ब्रिटिश साम्राज्य छोड़कर चले जाएंगे।

सिंह की तरह राममोहन राय निडर थे। किसी उचित उद्देश्य का समर्थन करने में वे कभी नहीं हिचकिचाए। सारी जिंदगी व्यक्तिगत हानि और कठिनाई सहकर भी उन्होंने सामाजिक अन्याय और असमानता के खिलाफ संघर्ष किया। समाज सेवा करते हुए उनका बहुधा अपने परिवार, धनी जमींदार और शक्तिशाली धर्म प्रचारकों, उच्च्य अफसरों और विदेशी अधिकारियों से टकराव हुआ। मगर वे न तो कभी डरे और न ही कभी अपने अपनाए हुए रास्ते से विचलित हुए।

उन्नीसवों सदी के पूर्वार्ध में राममोहन राय भारतीय आकाश के सबसे चमकीले सितारे जरूर थे मगर वे अकेले सितारे नहीं थे। उनके अनेक विशिष्ट सहयोगी, अनुयायी और उत्तराधिकारी थे। शिक्षा के क्षेत्र में डच घड़ीसाज डैविड हेअर और स्काटिश धर्म प्रचारक अलेक्जेंडर डफ् ने उनकी बड़ी सहायता की। अनेक भारतीय सहयोगियों में द्वारका नाथ टैगोर सबसे प्रमुख थे। उनके अन्य प्रमुख अनुयायी थे, प्रसन्न कुमार टैगोर, चंद्रशेखर देव, और ब्रह्म सभा के प्रथम मंत्री ताराचंद चक्रवर्ती।

डेरोजिओ और यंग बंगाल

उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक के अंतिम वर्षों तथा चौथे दशक के दौरान बंगाली बुद्धिजीवियों के बीच एक आमूल परिवर्तनकारी प्रवृत्ति पैदा हुई। यह प्रवृत्ति राममोहन राय की अपेक्षा अधिक आधुनिक थी और उसे यंग बंगाल आंदोलन के नाम से जाना जाता है। उसका नेता और प्रेरक नौजवान एंग्लो इंडियन हेनरी विवियन डेरोजिओ था। डेरोजिओ का जन्म 1809 में हुआ था। उसने 1826 से 1831 तक हिंदू कालेज में पढ़ाया। डेरोजिओ में आश्चर्यजनक प्रतिभा थी। उसने महान फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरणा ग्रहण की और अपने जमाने के अत्यंत क्रांतिकारी विचारों को अपनाया। वह अत्यंत प्रतिभाशाली शिक्षक था जिसने अपनी युवावस्था के बावजूद अपने इर्द-गिर्द अनेक तेज और श्रद्धालू छात्रों को इकट्ठा कर लिया था। उसने उन छात्रों को विवेकपूर्ण और मुक्त ढंग से सोचने, सभी आधारों की प्रामाणिकता की जांच करने, मुक्ति, समानता और स्वतंत्रता से प्रेम करने तथा सत्य की पूजा करने के लिए प्रेरित किया। डेरोज़िओ और उसके प्रसिद्ध अनुयायी जिन्हें डेरोजिअन और यंग बंगाल कहा जाता था, प्रचंड देशभक्त थे। डेरोजिओं आधुनिक भारत का शायद प्रथम राष्ट्रवादी कवि था। उदाहरण के लिए, उसने 1827 में लिखाः

My country! in the days of glory past
A beautous halo circled round thy brow,
and worshipped as a diety thou wast.
Where is that glory, where that reverence now?
Thy eagle pinion is chained down at last,
And grovelling in the lowly dust art thou,
Thy minstrel hath no wreath to wave for thee
save the sad story or thy misery!

मेरे देश! बीती हुई गरिमा के दिनों में तुम्हारे ललाट के चारों ओर एक सुंदर प्रभामंडल व्याप्त

था और पूजा एक देवता के समान होती थी। वह गरिमा कहां है? अब वह श्रद्धा कहां है? आखिरकार गरूड़ के समान तुम्हारे पंखों को जंजीर से जकड़ दिया गया है और तुम नीचे धूल में औंधे पड़े हो। तुम्हारे चरण को तुम्हारी विपन्नता की दुखद कहानी के सिवाय गूंथने के लिए कोई माला नहीं है।

उसके एक शिष्य काशी प्रसाद घोष ने लिखाः

Land of the Gods and lofty name;
Land of the fair and beauty's spell;
Land of the bards of mighty fame,
My native land! for e'ever farewell
(1830)

देवताओं और उच्च नाम वाली भूमि; मनोहर और सौंदर्य से सम्मोहित करने वाली; अत्यधिक यशस्वी चरणों की भूमि; मेरी जन्मभूमि सदा के लिए अलविदा! (1830)

But woe me! I never shall live to behold,
That day of thy triumph, when firmly and bold,
Thou shalt mount on the wings of an eagle on high,
To the region of knowledge and blest liberty. (1861)

मगर हाय! तुम्हारी विजय का वह दिन देखने के लिए मैं कभी जिंदा नहीं रहूंगा जब दृढ़ता और दिलेरी से तुम गरूड़ के पंखों पर बैठोगी और ऊपर ज्ञान और सुखद स्वतंत्रता के क्षेत्र में उड़ान भरोगी। (1831)

डेरोजिओ को उसकी क्रांतिकारिता के कारण 1831 में हिंदु कालेज से हटा दिया गया और वह उसके तुरंत बाद 22 वर्ष की युवावस्था में हैजे से मर गया। उसके अनुयायियों ने पुरानी और ह्रसोन्मुख प्रथाओं, कृत्यों और रिवाजों की घोर आलोचना की। वे नारी अधिकारों के पक्के हिमायती थे। उन्होंने नारी-शिक्षा की मांग की किंतु वे किसी आंदोलन को जन्म देने में सफल नहीं हुए क्योंकि उनके विचारों को फलने-फूलने के लिए सामाजिक स्थितियां उपयुक्त नहीं थीं। उन्होंने किसानों के मसायल के सवाल को नहीं उठाया और उस समय भारतीय समाज में ऐसा कोई और वर्ग या समूह नहीं था जो इनके प्रगतिशील विचारों का समर्थन करता। यही नहीं, वे जनता के साथ अपने संपर्क नहीं बना सके। वस्तुतः उनकी क्रांतिकारिता किताबी थी; वे भारतीय वास्तविकता को पूरी तरह से समझने में असफल रहे। इतना होते हुए भी, डेरोजिओ के अनुयायियों ने जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों पर समाचारपत्रों, पुस्तिकाओं और सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा शिक्षित करने की राममोहन राय की परंपरा को आगे बढ़ाया। उन्होंने कंपी के चार्टर (सनद) के संशोधन, प्रेस की स्वतंत्रता, विदेश स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीय मजदूरों के साथ बेहतर व्यवहार, जूरी द्वारा मुकदमों की सुनवाई, अत्याचारी जमींदारों से रैयतों की सुरक्षा और सरकारी सेवाओं के उच्चतर वेतनमानों में भारतीयों को रोजगार देने जैसे सार्वजनिक प्रश्नों पर आम आंदोलन चलाए। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रसिद्ध नेता सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने डेरोजिओ के अनुयायियों को "बंगाल में आधुनिक सभ्यता के अग्रदूत, हमारी जाति के पिता कहा जिनके सद्गुण उनके प्रति श्रद्धा पैदा करेंगे और जिनकी कमजोरियों पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया जाएगा।"

देवेंद्रनाथ ठाकुर, ईश्वर चंद्र विद्यासागर

ब्रह्मसमाज बना रहा मगर उसमें कोई खास दम नहीं था। रवींद्रनाथ ठाकुर के पिता देवेंद्रनाथ ठाकुर ने उसे पुनर्जीवित किया। देवेंद्रनाथ भारतीय विद्या की सर्वोत्तम परंपरा तथा नवीन पाश्चात्य चिंतन की उपज थे। उन्होंने राममोहन राय के विचारों के प्रचार के

लिए 1839 में तत्वबोधिनी सभा की स्थापना की। उसमें राममोहन राय और डेरोजिओ के प्रमुख अनुयायी तथा ईश्वर चंद्र विद्यासागर और अक्षय कुमार दत्त जैसे स्वतंत्र चिंतक शामिल हो गए। तत्वबोधिनी सभा और उसके मुख्य पत्र 'तत्वबोधिनी पत्रिका' ने बंगला भाषा में भारत के सुव्यवस्थित अध्ययन को बढ़ावा दिया। उसने बंगाल के बुद्धिजीवियों को विवेकशील दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया। वर्ष 1843 में देवेंद्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्मसमाज का पुनर्गठन किया और उसमें नया जीवन डाला। समाज ने सक्रिय रूप से विधवा पुनर्विवाह, बहुर्विवाह के उन्मूलन, नारी शिक्षा, रैयत की दशा में सुधार, और आत्म संयम के आंदोलन का समर्थन किया।

भारत में उस समय एक दूसरा बड़ा व्यक्तित्व उभर कर सामने आया। यह व्यक्तित्व पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर का था। विद्यासागर महान विद्वान और समाज-सुधारक थे। उन्होंने अपना सारा जीवन समाज सुधार के कार्य में लगा दिया। उनका जन्म 1820 में एक गरीब परिवार में हुआ था। उन्होंने अपने को शिक्षित करने के लिए कठिनाइयों से संघर्ष किया और अंत में वे 1851 में संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल के पद पर पहुंचे। यद्यपि वे संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे तथापि उनके दिमाग के दरवाजे पाश्चात्य चिंतन में जो कुछ सर्वोत्तम था उसके लिए खुले हुए थे। वे भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के एक सुखद संयोग का प्रतिनिधित्व करते थे। इन सबके अलावा उनकी महानता उनकी सच्चरित्रता और प्रखर प्रतिभा में निहित थी। उनमें असीम साहस था तथा उनके दिमाग में किसी प्रकार का भय नहीं था। जो कुछ भी उन्होंने सही समझा उसे कार्यान्वित किया। उनकी धारणाओं और कार्य, तथा उनके चिंतन और व्यवहार के बीच कोई खाई नहीं थी। उनका पहनावा सादा, उनकी आदतें स्वाभाविक और व्यवहार सीधा था। वे एक महान मानवतावादी थे। उनमें गरीबों, अभागों और उत्पीड़ित लोगों के लिए अपार सहानुभूति थी।

बंगाल में आज भी उनके उदात्त चरित्र, नैतिक गुणों और अगाध मानवतावाद के संबंध में अनेक कहानियां प्रचलित हैं। उन्होंने सरकारी सेवा से त्यागपत्र दे दिया क्योंकि वे अनुचित सरकारी हस्तक्षेप को बर्दाश्त नहीं कर सके। गरीबों के प्रति उनकी उदारता अचंभे में डालने वाली थी। शायद ही कभी उनके पास कोई गर्म कोट रहा क्योंकि निरपवाद रूप से उन्होंने अपना कोट जो भी नंगा सड़क पर पहले मिला, उसे दे दिया।

आधुनिक भारत के निर्माण में विद्यासागर का योगदान अनेक प्रकार का था। उन्होंने संस्कृत पढ़ाने के लिए नई तकनीक विकसित की। उन्होंने एक बंगला वर्णमाला लिखी जो आज तक इस्तेमाल में आती है। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा बंगला में आधुनिक गद्य शैली के विकास में सहायता दी। उन्होंने संस्कृत कालेज के दरवाजे गैर-ब्राह्मण विद्यार्थियों के लिए खोल दिए क्योंकि वे संस्कृत के अध्ययन पर ब्राह्मण जाति के तत्कालीन एकाधिकार के विरोधी थे। संस्कृत अध्ययन को स्वगृहीत अलगाव के नुकसानदेह प्रभावों से बचाने के लिए उन्होंने संस्कृत कालेज में पाश्चात्य चिंतन का अध्ययन आरंभ किया। उन्होंने एक कालेज की स्थापना में सहायता दी जो अब उनके नाम पर है।

सबसे अधिक, विद्यासागर को उनके देशवासी भारत की पददलित नारी जाति को ऊंचा उठाने में उनके योगदान के कारण आज भी याद करते हैं। इस-क्षेत्र में वे राममोहन राय के सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुए। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह के लिए एक लंबा संघर्ष चलाया। उनके मानवतावाद को हिंदू विधवाओं के कष्टों ने पूरी तरह उभारा। उन्होंने उनकी दशा को सुधारने के लिए अपना सब कुछ दे दिया और अपने को वस्तुतः बर्बाद कर लिया। उन्होंने 1855 में विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में अपनी शक्तिशाली आवाज उठाई और इस काम में अगाध

परंपरागत विद्या का सहारा लिया। जल्द ही विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में एक शक्तिशाली आंदोलन आरंभ हो गया जो आज तक चल रहा है। वर्ष 1855 के अंतिम दिनों में बंगाल, मद्रास, बंबई, नागपुर और भारत के अन्य शहरों से सरकार को बड़ी संख्या में याचिकाएं दी गईं जिनमें विधवाओं के पुनर्विवाह को कानूनी बनाने के लिए एक ऐक्ट पास करने का अनुरोध किया। यह आंदोलन सफल रहा और एक कानून बनाया गया। हमारे देश की उच्च जातियों में पहला कानूनी हिंदू विधवा पुनर्विवाह कलकत्ता में 7 दिसंबर 1856 को विद्यासागर की प्रेरणा से और उनकी ही देख-रेख में हुआ। देश के विभिन्न भागों में अनेक अन्य जातियों की विधवाओं को प्रचलित कानून के तहत यह अधिकार पहले से ही प्राप्त था। एक प्रत्यक्ष-द्रष्टा ने उपर्युक्त विधवा पुनर्विवाह समारोह का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है:

> "मैं वह दिन कभी नहीं भुला पाऊंगा जब पंडित विद्यासागर अपने मित्र, दुल्हे के साथ एक बड़ी बारात में आगे-आगे आए तब दर्शकों की भीड़ इतनी बड़ी थी कि घूमने-फिरने के लिए एक इंच जगह भी नहीं थी, और कई लोग बड़े नालों में गिर गए, उन दिनों कलकत्ता की सड़कों के किनारे नाले बने होते थे। समारोह के बाद हर जगह चर्चा का यह विषय बन गया; बाज़ारों और दुकानों में, सड़कों पर, सार्वजनिक चौराहों पर, छात्रावासों में, भद्र लोगों की बैठकों में, दफ्तरों और दूर ग्रामीण घरों में इसकी चर्चा होने लगी, जहां औरतों ने भी बड़ी गंभीरता से उस पर आपस में विचार-विमर्श किया। शांतिपुर के बुनकरों ने एक विचित्र प्रकार की स्त्रियों की साड़ी तैयार की जिसके किनारों पर एक नव-रचित गीत की पंक्ति बुनी गई थी जिसमें कहा गया था "विद्यासागर चिरंजीवी हों।"

विधवा पुनर्विवाह की वकालत करने के कारण विद्यासागर को पोंगापंथी हिंदुओं की कटु शत्रुता का सामना करना पड़ा। कभी-कभी उनकी जान लेने की धमकी दी गई। किंतु निडर होकर वे अपने रास्ते पर आगे बढ़े। उनके इस काम में जरूरतमंद दंपत्तियों की आर्थिक सहायता भी शामिल थी। उनके प्रयासों से, 1855 और 1860 के बीच 25 विधवा पुनर्विवाह हुए।

विद्यासागर ने 1850 में बालविवाह का विरोध किया। उन्होंने जीवन भर बहुर्विवाह के विरूद्ध आंदोलन चलाया। वे नारी-शिक्षा में भी गहरी दिलचस्पी रखते थे। स्कूलों के सरकारी निरीक्षक की हैसियत से उन्होंने 35 बालिका विद्यालयों की स्थापना की जिनमें से कईयों को उन्होंने अपने खर्च से चलाया। बैथुन स्कूल के मंत्री की हैसियत से वे उच्च नारी-शिक्षा के अग्रदूतों में से थे।

बेथुन स्कूल की स्थापना 1849 में कलकत्ता में हुई। वह नारी-शिक्षा के लिए उन्नीसवीं सदी के पांचवें और छठे दशकों में चलाए गए शक्तिशाली आंदोलन का पहला परिणाम था। यद्यपि नारी-शिक्षा भारत के लिए कोई नई चीज नहीं थी, तथापि उसके विरूद्ध काफी पूर्वाग्रह व्याप्त था। कुछ लोगों की यह भी धारणा थी कि शिक्षित औरतें अपने पतियों को खो बैठेंगी। लड़कियों को आधुनिक शिक्षा देने की दिशा में सबसे पहले 1821 में ईसाई धर्म प्रचारकों ने कदम उठाए। मगर ईसाई धार्मिक शिक्षा पर जोर देने के कारण उनके प्रयास सफल नहीं हो सके। बेथुन स्कूल को विद्यार्थी प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई हुई। युवा छात्राओं के खिलाफ नारे लगाए गए और उन्हें गालियां दी गईं। कई बार उनके अभिभावकों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। अनेक लोगों का ख्याल था कि पाश्चात्य शिक्षा पाने वाली लड़कियां अपने पतियों को अपना गुलाम बना देंगी।

पश्चिमी-भारत में सुधार आंदोलन के पथप्रदर्शक

बंगाल पर पाश्चात्य विचारों का असर काफी पहले

महसूस किया गया था, पश्चिमी भारत में यह असर अपेक्षाकृत बाद में महसूस किया गया था। वर्ष 1818 में ही बंगाल प्रभावशाली ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आ गया था। बंबई के बाल शास्त्री जांबेकर प्रथम सुधारकों में से थे जिन्होंने ब्राह्मणवादी कट्टरता की आलोचना की और हिंदूओं की आम प्रथाओं में सुधार लाने की कोशिश की। वर्ष 1832 में उन्होंने 'दर्पण' नाम के एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरंभ किया था। इस पत्रिका के उद्देश्य इस प्रकार थे : "अज्ञान और त्रुटियों के धुंध को दूर भगाना, जिनके कारण लोगों के दिमाग बंद हो गए थे तथा लोगों पर ऐसा प्रकाश डालना जिस प्रकाश से दूसरे देशों की तुलना में यूरोप के लोग दुनिया में आगे बढ़ चुके थे।" 1849 मे महाराष्ट्र में "परमहंस मंडली" की स्थापना की गई। इसके संस्थापक एक ईश्वर में विश्वास रखते थे तथा मूल रूप से उनकी दिलचस्पी जातपात के बंधनों को तोड़ने में थी। जब इसकी बैठक होती थी तब इसके सदस्य तथाकथित नीच जातियों के हाथ का पकाया हुआ भोजन करते थे। विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा में भी वे विश्वास करते थे। इस मंडली की शाखाएं पूना, सतारा और महाराष्ट्र के अन्य नगरों में भी स्थापित की गई। नौजवानों के ऊपर इस मंडली के प्रभाव को याद करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार आर. जी. भंडारकर लिखते हैं : "शाम के समय जब हम लोग बाहर टहलने के लिए निकलते थे तब जातपात के भेदभाव के विषय में आपस में बातचीत करते थे और इस पर भी बात होती थी कि ऊंच-नीच के भेदभाव की वजह से देश का बहुत ज्यादा नुकसान हुआ है। इस बात की भी चर्चा होती थी कि इनको दूर किए बिना देश की असली तरक्की हो ही नहीं सकती है।"

कुछ पढ़े-लिखे युवकों ने मिलकर 1848 में छात्रों की एक साहित्यिक और वैज्ञानिक संस्था बनाई। इसकी दो शाखाएं थीं : गुजराती और मराठी ध्यान प्रसारक मंडलियां। यह मंडलियां सामाजिक प्रश्नों और आम वैज्ञानिक विषयों पर व्याख्यान आयोजित किया करती थीं। महिलाओं की शिक्षा के लिए स्कूल आरंभ करना भी इस संस्था के लक्ष्यों में एक लक्ष्य था। वर्ष 1851 में ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी ने पूना में लड़कियों का एक स्कूल खोला। इसके तत्काल बाद और कई स्कूल खुल गए। इन स्कूलों को सक्रिय रूप से बढ़ावा देने वालों में जगन्नाथ सेठ और भाऊ दाजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फुले महाराष्ट्र में विधवा विवाह आंदोलन की अगली पंक्ति के नेता थे। वर्ष 1850 में विष्णु शास्त्री पंडित ने "विधवा-विवाह समाज" स्थापित किया। करसोनदास मलजी इस क्षेत्र के दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ता थे। वर्ष 1852 में उन्होंने गुजराती भाषा में विधवा विवाह के समर्थन के लिए "सत्य प्रकाश" नाम की पत्रिका निकाली।

महाराष्ट्र में नई शिक्षा और नए सामाजिक सुधारों के प्रवक्ता गोपाल हरि देशमुख थे, जो आगे चलकर 'लोकहितवादी' उपनाम से विख्यात हुए। आधुनिक, मानवतावादी तथा धर्मनिरपेक्ष मूल्यों और विवेकसंगत सिद्धांतों के आधार पर भारतीय समाज के पुनर्गठन की उन्होंने वकालत की। ज्योतिबा फुले नीची मानी जाने वाली मली जाति में पैदा हुए थे। महाराष्ट्र के गैर-ब्राह्मण और अछूत जातियों की दयनीय सामाजिक स्थिति को वे भी अच्छी तरह समझते थे। ऊंची जातियों के प्रभुत्व और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के खिलाफ वे जीवन भर अभियान चलाते रहे।

दादाभाई नौरोजी बंबई के एक और प्रमुख समाज सुधारक थे। वे 'पारसी धर्म सुधार संगठन' के संस्थापकों में से थे। पारसी कानून संघ के जन्मदाताओं में वे भी थे। इस संगठन ने महिलाओं को कानूनी हक दिलाने के लिए तथा पारसी लोगों की शादी और उत्तराधिकार संबंधी समान कानून बनाने के लिए आंदोलन किए।

सुधारकों ने शुरू से अपना संघर्ष मुख्य रूप से

भारतीय भाषाओं के अखबारों और साहित्य के माध्यम से चलाया। भारतीय भाषाएं अपनी भूमिका सफलतापूर्वक निभा सकें, इसके लिए उन्होंने प्रारंभिक पाठ्यपुस्तकें बनाने जैसा काम भी अपने हाथ में लिया। उदाहरण के लिए ईश्वर चंद्र विद्यासागर तथा रवींद्रनाथ ठाकुर, दोनों ही महानुभावों ने बंगला की प्रारंभिक कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं। इन पुस्तकों को आज भी इस्तेमाल किया जा रहा है। वास्तव में आम जनता के बीच आधुनिक तथा सुधारवादी विचारों का प्रसार मूलतः भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही हुआ।

यह बात भी हमें ध्यान रखनी चाहिए कि उन्नीसवीं शताब्दी के सुधारकों का महत्त्व उनकी संख्या के आधार पर नहीं तय किया जाना चाहिए। वास्तव में वे लोग जो नई धारा के प्रवर्तक थे। उन्हीं के विचारों और क्रियाकलापों का नए भारत की रचना पर निर्णायक असर पड़ा।

अभ्यास

1. उन्नीसवीं सदी में भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण में राजा राममोहन राय के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
2. उन सामाजिक बुराइयों का वर्णन कीजिए जिनके खिलाफ सुधार आंदोलन चलाए गए थे।
3. उन कमियों का वर्णन कीजिए जिनके कारण भारतीय महिलाओं को कष्ट झेलना पड़ा था। उन सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलनों का विवेचन कीजिए जो नारी मुक्ति के लिए चलाए गए थे।
4. आधुनिक भारत के निर्माण में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने किस प्रकार योगदान किया।
5. "युवा बंगाल आंदोलन" से आप क्या समझते हैं? इसका जनक कौन था? बताइए कि बंगाल के सामाजिक सांस्कृतिक जागरण में इसका क्या स्थान है?
6. सामाजिक सुधार के प्रश्नों को धार्मिक सुधार के प्रश्नों के साथ मिलाना क्यों जरूरी था? उदाहरण के साथ इसका विवेचन कीजिए।
7. पश्चिमी भारत में सामाजिक और धार्मिक सुधारों के आरंभ और विकास पर प्रकाश डालिए।
8. सामाजिक और धार्मिक सुधारक नेताओं की चुनी हुई रचनाओं को पढ़ो तथा उनके जीवन, कार्य तथा विचारों के विषय में टिप्पणियां लिखिए।

अध्याय : 6

1857 का विद्रोह

सन् 1857 ई. में उत्तरी और मध्य भारत में एक शक्तिशाली जनविद्रोह उठ खड़ा हुआ और उसने ब्रिटिश शासन की जड़ें तक हिलाकर रख दीं। इसका आरंभ तो कंपनी की सेना के भारतीय सिपाहियों से हुआ, लेकिन जल्द ही एक व्यापक क्षेत्र के लोग भी इसमें शामिल हो गए। लाखों-लाख किसान, दस्तकार तथा सिपाही एक साल से अधिक समय तक बहादुरी से लड़ते रहे और अपनी मिसाली वीरता और बलिदानों से उन्होंने भारतीय जनता के इतिहास में एक नया शानदार अध्याय जोड़ा।

सामान्य कारण

1857 का विद्रोह सिपाहियों के असंतोष का परिणाम मात्र नहीं था। वास्तव में यह औपनिवेशिक शासन के चरित्र, उसकी नीतियों, उसके कारण कंपनी के शासन के प्रति जनता के संचित असंतोष का और विदेशी शासन के प्रति उनकी घृणा का परिणाम था। एक शताब्दी से अधिक समय तक अंग्रेज इस देश पर धीरे-धीरे अपना अधिकार बढ़ाते जा रहे थे, और इस काल में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में विदेशी शासन के प्रति जन-असंतोष तथा घृणा में वृद्धि होती रही। यही वह असंतोष था जो आखिर एक जनविद्रोह के रूप में भड़क उठा।

जन-असंतोष का संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण कारण अंग्रेजों द्वारा देश का आर्थिक शोषण तथा देश के परंपरागत आर्थिक ढांचे का विनाश था। इन दोनों बातों ने बहुत बड़ी संख्या में किसानों, दस्तकारों तथा हस्त-शिल्पियों को, और साथ ही बड़ी संख्या में परंपरागत जमींदारों तथा मुखिया लोगों को निर्धनता के मुंह में झोंक दिया। हमने आरंभिक ब्रिटिश शासन के विनाशकारी आर्थिक प्रभाव का एक अन्य अध्याय में वर्णन किया है। अंग्रेजों की जमीन और राजस्व संबंधी नीतियां तथा कानून और प्रशासन की व्यवस्था इस असंतोष के अन्य सामान्य कारण रहे। खासकर जमीन की बहुत अधिक लगान के कारण जमीन का मालिकाना अधिकार बहुत सारे किसानों के हाथ से निकलकर व्यापारियों और सूदखोरों के हाथों में चला गया और वे कर्ज के भारी बोझ तले दबकर रह गए। ये नए जमींदार उन परंपराओं से अपरिचित थे जो पुराने जमींदारों को किसानों से जोड़कर रखती थीं, और इसलिए उन्होंने लगान को बेपनाह बढ़ाकर किसानों को तबाह कर दिया। जो किसान लगान अदा नहीं कर सके, उनसे जमीनें छीन ली गईं। किसानों की इस तबाही का नतीजा उन 12 बड़े तथा अनेक छोटे अकालों के रूप में सामने आया जो 1770 और 1857 के बीच में फूटे। इसी राह अनेक जमींदार भी भूराजस्व की मांग बढ़ाने के कारण परेशान हुए और उन्हें खतरा पैदा हो गया कि उनकी जमींदारी की जमीनें तथा अधिकार जब्त हो जाएंगे तथा गांव में उनकी स्थिति घट जाएगी। जब अधिकारियों,

व्यापारियों तथा सूदखारों जैसे शुद्ध रूप से बाहरी लोगों ने उनकी जगह ले ली तब अपनी स्थिति में गिरावट पर उनका असंतोष और बढ़ गया। इसके अलावा निचले स्तरों पर प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार ने साधारण जनता को बुरी तरह प्रभावित किया। पुलिस, छोटे अधिकारी तथा निचली अदालतें भ्रष्टाचार के मामले में बहुत बदनाम रहे। विद्रोह के कारणों की चर्चा करते हुए 1859 में एक ब्रिटिश अधिकारी, विलियम एडवर्ड ने लिखा है कि पुलिस को "जनता कोढ़-समान समझती थी" और पुलिस का दमन और लूट-खसोट हमारी सरकार के प्रति जनता के असंतोष का एक प्रमुख कारण था। छोटे अधिकारी रैयत तथा जमींदारों को सताकर अपना घर भरने का कोई अवसर नहीं चूकते थे। न्याय की पेचीदा प्रणाली का लाभ उठाकर धनी लोग गरीबों का दमन करते रहे। लगान, भू-राजस्व या कर्ज पर चढ़ने वाले सूद का बकाया वसूल करने के लिए किसानों को कोड़े से पीटना, कष्ट देना या जेल भेज देना आम बातें थीं। अपनी बढ़ती गरीबी के कारण लोग हताश हो गए, तथा अपनी स्थिति में सुधार की आशा में आम विद्रोह में शामिल हो गए।

समाज के मध्य तथा उच्च वर्ग, खासकर उत्तर भारत में, प्रशासन के अच्छी आय वाले, ऊंचे पदों में शामिल नहीं किए जाते थे। इसका उन पर बुरा असर पड़ा। एक के बाद एक देशी रजवाड़ों के नष्ट होने का नतीजा यह हुआ कि जो भारतीय इन रजवाड़ों के प्रशासन और अदालतों में ऊंचे पदों पर थे, वे जीविका के साधन खो बैठे। अंग्रेजों का अधिकार जमने के कारण जो लोग सांस्कृतिक गतिविधियों के जरिए जीविका कमाते थे, वे भी बरबाद हो गए। भारतीय शासक कला और साहित्य के संरक्षक थे और विद्वानों, धर्मगुरूओं तथा फकीरों आदि की सहायता करते रहते। जब इन शासकों के अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी ने छीन लिए तो यह संरक्षण भी एकाएक समाप्त हो गया और जो लोग इस पर निर्भर थे, वे गरीबी के चंगुल में जा फंसे। धर्मोपदेशकों, पंडितों और मौलवियों ने, जो यह महसूस कर रहे थे कि उनका पूरा भविष्य खतरे में है, विदेशी शासन के प्रति घृणा पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ब्रिटिश सरकार की अलोकप्रियता का एक और प्रमुख कारण उसका विदेशी होना भी था। अंग्रेज़ भारत में लगातार विदेशी ही बने रहे। उनके और भारतीय लोगों के बीच कोई सामाजिक संबंध या संपर्क नहीं रहा। पहले के विदेशी शासकों की तरह अंग्रेजों ने उच्च वर्गों के भारतीयों से भी सामाजिक मेल-जोल नहीं बढ़ाया। उल्टे, वे प्रजातीय श्रेष्ठता के नशे में चूर रहे तथा भारतीयों के साथ अपमानजनक और धृष्टतापूर्ण बर्ताव करते रहे। जैसा कि सर सैयद अहमद खान ने बाद में लिखा है : "उच्चतम श्रेणियों के देशी लोग तक भी बिना अंदरूनी डर के तथा बिना कांपे हुए कभी अधिकारियों के सामने उपस्थित नहीं हुए।" सबसे बड़ी बात यह है कि अंग्रेज़ भारत में बसने, इसे अपना घर बनाने नहीं आए थे। उनका प्रमुख उद्देश्य धन कमाना तथा उस धन को लेकर ब्रिटेन लौटना होता था। भारत की जनता अपने नए शासकों के इस मूल विदेशी चरित्र को अच्छी तरह पहचानती थी। उन्होंने कभी भी अंग्रेजों को अपना शुभचिंतक नहीं माना और उनके एक-एक क्रियाकलाप को शंका की दृष्टि से देखते रहे। इस तरह उनके अंदर एक धुंधली-सी ब्रिटिश-विरोधी भावना पहले से मौजूद थी जो 1857 के विद्रोह से पहले भी अनेक अंग्रेज़-विरोधी जनविद्रोहों में अभिव्यक्त होती रही।

जनता के बीच बढ़ते असंतोष के इस काल में कुछ ऐसी घटनाएं भी हुईं जिनसे अंग्रेज़ सेनाओं की अपराजेयता का भ्रम टूट गया और लोगों में यह विश्वास पनपने लगा कि ब्रिटिश शासन के दिन अब बहुत थोड़े रह गए हैं। पहले अफगान युद्ध (1838-42), पंजाब के युद्धों (1845-49) तथा क्रीमियाई युद्ध

(1854-56) में अंग्रेज़ सेनाओं की बुरी तरह पराजय हुई। वर्ष 1855-56 में बिहार और बंगाल की संथाल जनजातियों के लोग कुल्हाड़े तथा तीर-धनुष लेकर विद्रोह पर उतर आए और अपने क्षेत्र से कुछ समय के लिए ब्रिटिश शासन का सफाया करके उन्होंने एक जनविद्रोह की क्षमताओं को स्पष्ट कर दिया। हालांकि इन युद्धों में जीत आखिरकार अंग्रेजों की ही हुई और उन्होंने संथाल विद्रोह को भी कुचल डाला, फिर भी प्रमुख मुकाबलों में हुए नुकसानों से स्पष्ट हो गया कि एक एशियाई सेना भी डटकर लड़े तो अंग्रेज़ सेना को हरा सकती है। वास्तव में, अंग्रेजों की शक्ति को कम समझकर भारतीयों ने इस समय एक बड़ी राजनीतिक भूल की। इस भूल की एक बड़ी कीमत 1857 के विद्रोहियों को चुकानी पड़ी। परंतु साथ ही इस कारण के ऐतिहासिक महत्त्व को नहीं भूलना चाहिए। जनता केवल इसलिए विद्रोह नहीं करती कि वह अपने शासकों को उखाड़ फेंकना चाहती है; इसके साथ ही उसमें यह भरोसा भी होना चाहिए कि यह काम वह कामयाबी के साथ कर सकती है।

वर्ष 1856 में लार्ड डलहौजी ने अवध को ब्रिटिश शासन में मिला लिया। पूरे भारत में तथा खास तौर पर अवध में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई। विशेष रूप से, इसके कारण अवध में और कंपनी की सेना में विद्रोह का वातावरण बन गया। डलहौजी के इस काम से कंपनी के सिपाही नाराज हो गए; इन सिपाहियों में 75,000 अवध के थे। अखिल भारतीय भावना के अभाव में इन सिपाहियों ने बाकी भारत को जीतने में अंग्रेजों की सहायता की थी। लेकिन उनके अंदर क्षेत्रीय और स्थानीय निष्ठा थी और उन्हें यह बात बुरी लगी कि उनका अपना प्रांत विदेशी अधिकार में आ गया था। इसके अलावा, अवध के अधिग्रहण के कारण सिपाहियों की आय पर भी बुरा असर पड़ा। अब अवध में उनके परिवारों के पास जो जमीनें थीं उन पर उन्हें अधिक टैक्स देने पड़ रहे थे।

अवध के अधिग्रहण के लिए डलहौजी ने जो तर्क दिया था, वह यह था कि वह जनता को नवाब के कुप्रबंध से तथा तालुकदारों के दमन से मुक्ति दिलाना चाहता था। परंतु वास्तव में जनता को कोई राहत नहीं मिली। उल्टे, साधारण जनता को अब पहले से अधिक भू-राजस्व तथा खाने-पीने की वस्तुओं, मकानों, खोमचों तथा ठेलों, अफीम और न्याय पर अधिक टैक्स देने पड़ रहे थे। नवाब का प्रशासन तथा सेना भंग होने से हज़ारों कुलीन तथा भद्र लोग, अधिकारी तथा उनके साथ-साथ उनके अमले के लोग तथा सिपाही बेरोजगार हो गए। लगभग हर किसान के घर में कोई न कोई बेरोजगार हुआ। इसी तरह

नाना साहब

जो व्यापारी, दुकानदार तथा दस्तकार अवध के दरबार तथा कुलीनों की सेवा करते थे, उनकी भी जीविका चली गई। इसके अलावा, अधिकांश तालुकदारों तथा जमींदारों की जागीरें भी अंग्रेजों ने जब्त कर लीं। संपत्तिहीन बने इन तालुकदारों की संख्या लगभग 21,000 थी। अपनी खोई जागीरों और सामाजिक स्थिति को पुनः प्राप्त करने के लिए बेचैन ये लोग ब्रिटिश शासन के सबसे खतरनाक दुश्मन बन गए।

डलहौजी द्वारा अवध तथा कई अन्य राज्यों के अधिग्रहण ने देशी रजवाड़ों के शासकों में खलबली मचा दी। अब उन्हें पता चला कि अंग्रेजों के प्रति उनके झुक-झुककर वफादारी जताने के बाद राज्य फैलाने की अंग्रेजों की भूख शांत नहीं हुई। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि अंग्रेजों की राजनीतिक प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का लगा। कारण कि भारतीय शासकों के प्रति अपने मौखिक या लिखित वादों तथा समझौतों को उन्होंने बार-बार तोड़ा था, उनका राज्य हड़पा था, या उनको अपना अधीन बनाकर उनके सरों पर अपने आदमी बिठा दिए थे। राज्य हड़पने या उन्हें अधीन बनाने की यह नीति नानासाहब, झांसी की रानी तथा बहादुरशाह जैसे अनेक शासकों को अंग्रेजों का कट्टर दुश्मन बनाने के लिए सीधे-सीधे जिम्मेदार थी। नानासाहब आखिरी पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे। अंग्रेज़ बाजीराव द्वितीय को जो पेंशन दे रहे थे, वह नानासाहब को देने से इनकार कर दिया तथा उनको अपनी पैतृक राजधानी पूना से बहुत दूर, कानपुर में रहने पर बाध्य किया। इसी तरह झांसी को हड़पने की अंग्रेजों की जिद ने स्वाभिमानी रानी लक्ष्मीबाई का गुस्सा भड़काया। रानी की इच्छा यह थी कि उनके स्वर्गीय पति के सिंहासन पर उनका दत्तक पुत्र बैठे। वर्ष 1849 में डलहौजी ने मुगल वंश की प्रतिष्ठा पर यह घोषणा करके चोट की थी कि बहादुरशाह के उत्तराधिकारी को ऐतिहासिक लाल किला छोड़कर दिल्ली के बाहर कुतुबमीनार के एक बहुत छोटे निवास स्थान में रहना होगा। और 1856 में कैनिंग ने यह घोषणा की कि बहादुरशाह की मृत्यु के बाद मुगलों से सम्राट की पदवी छीन ली जाएगी और वे सिर्फ राजा ही कहे जाएंगे।

ब्रिटिश शासन के विरोध में ज़नता के खड़े होने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि इस शासन के कारण धर्म खतरे में है। इस भय का प्रमुख कारण उन ईसाई मिशनरियों की गतिविधियां थीं जो "हर जगह स्कूलों, अस्पतालों, जेलों और बाज़ारों में देखे जाते थे"। ये मिशनरी लोगों को ईसाई बनाने के प्रयास करते तथा हिन्दू धर्म और इस्लाम पर सार्वजनिक रूप से तीखा और भोंडा प्रहार करते थे। वे जनता की पुरानी और प्रिय परंपराओं और मान्यताओं की खुलकर हंसी उड़ाते और उनकी निंदा करते थे। साथ ही, उन्हें पुलिस का संरक्षण प्राप्त था। उन्होंने जब कुछ लोगों का सचमुच धर्म-परिवर्तन कराया तो जनता को अपने धर्म के सामने उपस्थित खतरे का जीता-जागता प्रमाण मिल गया। जनता को आशंका थी कि विदेशी सरकार इन मिशनरियों की गतिविधियों को संरक्षण देती है। सरकार के कुछ कामों तथा बड़े अधिकारियों की कुछ गतिविधियों से इस आशंका को और बल मिला। वर्ष 1850 में सरकार ने एक कानून बनाया जिसके अनुसार धर्म बदलकर ईसाई बनने वालों को अपनी पैतृक संपत्ति में अधिकार मिल गया। इसके अलावा, सरकार अपने खर्च पर सेना में ईसाई उपदेशक या पादरी रखती थी। अनेक नागरिक और सैनिक अधिकारी मिशनरी प्रचार को प्रोत्साहन देना तथा सरकारी स्कूलों और जेलों तक में ईसाई धर्म की शिक्षा की व्यवस्था करना अपना धार्मिक कर्तव्य मानते थे।

अनेक लोगों की रूढ़िवादी धार्मिक और सामाजिक भावनाएं उन मानवतावादी उपायों के कारण भी भड़कीं जो सरकार ने भारतीय सुधारकों की सलाह पर किए।

उनका मत था कि एक विदेशी ईसाई सरकार को उनके धर्म और उनकी परंपराओं में हस्तक्षेप करने का कोई हक नहीं था। सती-प्रथा का उन्मूलन, विधवा-पुनर्विवाह संबंधी कानून, तथा लड़कियों के लिए पश्चिमी शिक्षा की व्यवस्था इन लोगों को ऐसे ही अनाधिकारी हस्तक्षेप की तरह लगे। पहले के भारतीय शासकों ने मंदिरों और मस्जिदों से जुड़ी जमीन को, उनके पुजारियों या सेवा-संस्थाओं को कर से मुक्त रखा था। अब इनसे कर वसूल करने की सरकारी नीति से भी लोगों की धार्मिक भावनाओं को चोट लगी। इसके अलावा, इन जमीनों पर निर्भर अनेक ब्राह्मण और मुस्लिम परिवार गुस्से से उबल उठे और यह प्रचार करने लगे कि अंग्रेज़ उनके धर्म को नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

1857 का विद्रोह कंपनी के सिपाहियों के विद्रोह से आरंभ हुआ। इसलिए हमें यह देखना होगा कि ये सिपाही जिन्होंने अपनी निष्ठापूर्ण सेवा से कंपनी को भारत-विजय में समर्थ बनाया था और जिन्हें अच्छी प्रतिष्ठा तथा आर्थिक सुरक्षा प्राप्त थी, क्यों एकाएक विद्रोही हो उठे। यहां पहली बात ध्यान में रखने की यह है कि ये सिपाही कुछ भी हों, भारतीय समाज के अंग थे और इसलिए दूसरे भारतीयों पर जो कुछ गुजरती थी उसे ये भी कुछ हद तक महसूस करके दुखी होते थे। समाज के दूसरे वर्गों, खासकर किसानों की आशाएं, इच्छाएं और दुख-दर्द इन सिपाहियों के बीच भी प्रतिबिंबित होते थे। यह सिपाही दरअसल 'वर्दीधारी किसान' ही था। अगर ब्रिटिश शासन के विनाशकारी आर्थिक कृत्यों से उनके निकट संबंधी पीड़ित होते थे तो उस पीड़ा को ये सिपाही भी महसूस करते थे। वे भी इस सामान्य विश्वास से ग्रस्त थे कि अंग्रेज़ उनके धर्मों में दखलअंदाजी कर रहे थे और सभी भारतीयों को ईसाई बनाने पर आमादा थे। उनके अपने अनुभव भी इस विश्वास को बल देते थे। वे जानते थे कि सेना में राज्य के खर्च पर ईसाई धर्मोपदेशक मौजूद थे। इसके अलावा, कुछ ब्रिटिश अधिकारी भी धार्मिक जोश में आकर सिपाहियों के बीच ईसाई धार्मिक प्रचार किया करते थे। सिपाहियों की अपनी धार्मिक या जातिगत शिकायतें भी थीं। उन दिनों भारतीय लोग जाति के नियमों आदि का कड़ाई से पालन करते थे। सैनिक अधिकारियों की तरफ से सिपाहियों का जाति या पंथ के चिह्नों के उपयोग पर, दाढ़ी रखने या पगड़ी पहनने पर प्रतिबंध था। वर्ष 1856 में एक कानून बना जिसके अनुसार हर नए भर्ती होने वाले सिपाही को आवश्यकता हो तो समुद्र पार जाकर भी सेवा करने की जमानत देनी पड़ती थी। इससे भी सिपाहियों की भावनाओं को चोट लगी, क्योंकि उस समय की हिंदू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार समुद्र-यात्रा पाप थी और इसके दंड में किसी को जाति-बाहर भी कर दिया जाता था।

सिपाहियों को अनेक दूसरी शिकायतें भी थीं। अधिकारियों तथा सिपाहियों के बीच एक बहुत बड़ी खाई पैदा हो गई थी, तथा ब्रिटिश अधिकारी सिपाहियों से अक्सर अपमान का व्यवहार करते थे। एक तत्कालीन ब्रिटिश प्रेक्षक ने लिखा है कि "अधिकारी और सिपाही परस्पर मित्र नहीं, बल्कि एक दूसरे के लिए अजनबी ही रहे हैं। सिपाही को एक हीन प्राणी माना जाता है। उसे डांटा-फटकारा जाता है। उसके साथ बुरा बर्ताव होता है उसे 'निग्गर' जैसा समझा जाता है। उसे 'सुअर' कहकर पुकारा जाता है। ..... छोटे अधिकारी .... उसे एक हीन प्राणी मानकर व्यवहार करते हैं।" अगर भारतीय सिपाही अपने अंग्रेज़ समकक्ष जितना श्रेष्ठ योद्धा हो तो भी उसे कम पैसा दिया जाता था और अंग्रेज़ सिपाही से भी बुरे ढंग से रखा या खिलाया-पिलाया जाता था। इसके अलावा, उसको उन्नति की आशाएं भी नहीं के बराबर थीं। कोई भी भारतीय 60-70 रूपए मासिक पाने वाले सूबेदार से ऊपर नहीं उठ सकता था।

वास्तव में, सिपाही का जीवन ही कठिनाइयों से भरा था। स्वाभाविक था कि सिपाही इस बनावटी तथा उन लादी गई हीनता से खुश नहीं थे। जैसा कि ब्रिटिश इतिहासकार टी.आर. होल्म्स ने लिखा है:

> "अगर वह हैदर जैसी सैनिक चतुरी का परिचय दे तो भी वह जानता है कि वह एक मध्य स्तरीय अंग्रेज़ अधिकारी (*Subaltern*) जितना वेतन नहीं पा सकता, और लगभग 30 वर्ष तक निष्ठापूर्वक सेवा करने के बाद जो पद वह प्राप्त करेगा वह भी उसे इंग्लैंड से नए-नए आए किसी रंगरूट की हुक्मअदायगी से सुरक्षित नहीं कर सकेगा।"

सिपाहियों के असंतोष का एक और भी तात्कालिक कारण, हाल में जारी वह आदेश था कि सिंध या पंजाब में तैनाती के समय उन्हें विदेश सेवा भत्ता (बट्टा) नहीं मिलेगा। इस आदेश के कारण सिपाहियों की बहुत अधिक संख्या के वेतन में बड़ी कटौती हुई। अवध अनेक सिपाहियों का घर था, उसके हड़पे जाने ने उनकी भावनाओं को आग की तरह भड़का दिया।

वास्तव में, सिपाहियों के असंतोष के पीछे एक लंबा इतिहास रहा है। बंगाल में बहुत पहले, 1764 में ही एक सिपाही विद्रोह घटित हो चुका था। अधिकारियों ने 30 सिपाहियों को तोपों के मुंह पर बांध कर उड़ा दिया था और इस प्रकार विद्रोह को दबा दिया था। वर्ष 1806 में वेल्लूर में सिपाहियों ने विद्रोह किया था, मगर भयानक हिंसा का सहारा लेकर इसे दबा दिया गया था और कई सौ सिपाही युद्ध में मारे गए थे। वर्ष 1824 में बैरकपुर में सिपाहियों की 47वीं रेजीमेंट ने समुद्री रास्ते से बर्मा जाने से इनकार कर दिया था। यह रेजीमेंट तोड़ दी गई थी, इसके निहत्थे सिपाहियों पर तोपखाने ने गोले बरसाए थे, और सिपाहियों के नेताओं को फांसी दे दी गई थी। 1844 में वेतन और बट्टा के सवाल पर सात बटालियनों ने विद्रोह किया। इसी तरह अफगान युद्ध के दौरान अफगानिस्तान में तैनात सिपाही विद्रोह करने ही वाले थे। सेना में व्याप्त असंतोष को व्याप्त करने के लिए एक मुसलमान और एक हिंदु सूबेदार को गोली मार दी गई थी। सिपाहियों में असंतोष इस कदर व्यापक हो चुका था कि 1858 में बंगाल के लेफ्टिनेंट-गवर्नर, फ्रेडरिक हैलीडे, को कहना पड़ा था कि बंगाल की फौज "कमोबेश बागी और हमेशा विद्रोह के लिए तैयार थी और तय है कि कभी न कभी अगर संयोगवश उत्तेजना तथा अवसर मिले तो वह विद्रोह कर बैठती।"

इस तरह बड़ी तादाद में भारतीय जनता तथा कंपनी के सिपाहियों के बीच विदेशी शासन के प्रति व्यापक और तीखी नापसंदगी बल्कि घृणा भी मौजूद थी। आगे चलकर सैयद अहमद खान ने अपनी पुस्तक 'काज़ेज ऑफ दि इंडियन म्यूटिनी' में इस भावना को इस प्रकार व्यक्त किया :

> "धीरे-धीरे यह सोच भारतीयों की आदत बन गई कि सभी कानून उन्हें नीचे गिराने और तबाह करने और उन्हें तथा उनके देशवासियों को उनके धर्म से वंचित करने की दृष्टि से बनाए गए थे..... अंत में एक समय वह आया जब सभी लोग अंग्रेज़ सरकार को एक धीमा जहर, रेत की रस्सी या आग की घातक लौ समझने लगे। वे यह मानने लगे कि अगर आज वे सरकार के चंगुल से बच भी निकलें तो कल तो वे फसेंगे ही, और अगर कल भी बच निकले तो तीसरे दिन उनकी बरबादी अवश्यंभावी है ...
>
> लोग सरकार में परिवर्तन होते हुए देखना चाहते थे और ब्रिटिश शासन की जगह दूसरे शासन के आने के विचार से दिली खुशी महसूस करते थे।"

इसी तरह, दिल्ली में विद्रोहियों द्वारा जारी एक घोषणा में कहा गया था :

पहली बात यह कि हिंदुस्तान में जहां 200 रूपए

मालगुजारी होनी चाहिए थी, वहां उन्होंने 300 रूपए वसूले हैं और जहां 400 रूपए होने चाहिए थे वहां उन्होंने 500 रूपए खसोटे हैं, और अभी भी वे अपनी मांगें बढ़ाए जाने पर अड़े हुए हैं। जनता को भिखमंगा बना दिया गया है। दूसरे, उन्होंने चौकीदारी टैक्स को दोगुना, चार गुना और दस गुना बढ़ा दिया है, और जनता को तबाह करना चाहते हैं। तीसरे, सभी प्रतिष्ठित और विद्वान लोगों की रोजी मारी गई है तथा लाखों-लाख लोग जीवन की आवश्यकताओं से वंचित हैं। जब रोजी की तलाश में कोई एक जिले से दूसरे जिले में जाना चाहता है तो हर प्राणी पर सड़क की चुंगी के नाम पर छः पाई ली जाती है तथा उसे हर गाड़ी पीछे 4 से 8 आने तक देने पड़ते हैं। केवल वे ही लोग जो ये सब चुकाते हैं, सार्वजनिक सड़कों पर यात्रा करने की छूट पाते हैं। हम अत्याचारियों के दमन का कहां तक वर्णन करें। धीरे-धीरे स्थिति यहां तक आ गई कि यह सरकार हर व्यक्ति का धर्म नष्ट करने पर तुल चुकी है।

1857 का विद्रोह ब्रिटिश नीतियों और साम्राज्यवादी शोषण के प्रति जन-असंतोष का उभार था। परंतु यह आकस्मिक घटना नहीं थी। लगभग एक शताब्दी तक पूरे भारत में ब्रिटिश आधिपत्य के विरूद्ध तीव्र जन-प्रतिरोध होते रहे थे। बंगाल और बिहार में जैसे ही ब्रिटिश शासन स्थापित हुआ, सशस्त्र विद्रोह शुरू हो गए, और जैसे-जैसे यह नए क्षेत्रों को जीतता गया, वहां भी ये विद्रोह फूटते गए। देश के किसी न किसी भाग में सशस्त्र विरोध के बिना शायद ही कोई साल या एक बड़े विद्रोह के बिना शायद ही कोई दशक गुजरा हो। 1763 और 1856 के बीच 40 से अधिक बड़े विद्रोह और सैकड़ों छोटे विद्रोह हुए। इन विद्रोहों का नेतृत्व अक्सर राजा, नवाब, जमींदार, भूस्वामी और पोलीगार करते थे, मगर लड़ने वाली फौजों में किसान, दस्तकार और पदच्युत भारतीय शासकों या जागीर और शस्त्रागार से वंचित कर दिए गए जमींदारों और पोलीगारों के भूतपूर्व सैनिक होते थे। ये लगभग निरंतर चलने वाले विद्रोह कुल मिला कर बहुत भयानक होते थे, मगर अपने प्रसार में ये पूरी तरह स्थानीय तथा एक-दूसरे से असंबद्ध होते थे। उनके प्रभाव भी स्थानीय ही होते थे।

तात्कालिक कारण

1857 ई. तक विद्रोह के लिए बारूद जमा हो चुका था, केवल इसमें एक जलती तीली पड़ने की देर थी। चर्बी मिले कारतूसों की घटना ने यह चिनगारी भी बारुद को दिखा दी और सिपाहियों के विद्रोह पर उतर आने पर साधारण जनता भी उठ खड़ी हुई।

नए एनफील्ड राइफल का उपयोग सबसे पहले सेना में ही आरंभ किया गया। इसके कारतूसों पर चर्बी सने कागज का खोल चढ़ा होता था और कारतूस को राइफल में भरने से पहले उसके सिरे को दांतों से काटना पड़ता था। कुछ उदाहरणों में इस खोल में गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया गया था। इससे हिंदू तथा मुसलमान सिपाही, दोनों भड़क उठे। उन्हें लगा कि चर्बीदार कारतूसों का प्रयोग उनके धर्म को भ्रष्ट कर देगा। इनमें से अनेकों का विश्वास था कि सरकार जान-बूझकर उनके धर्म को नष्ट करने तथा उन्हें ईसाई बनाने के प्रयत्न कर रही है। बगावत का वक्त आ पहुंचा था।

विद्रोह का आरंभ उसकी प्रगति

वर्ष 1857 का विद्रोह स्वतः स्फूर्त और अनियोजित था या यह किसी सावधानीपूर्वक तथा गुप्त रूप से किए गए संगठन-कार्य का परिणाम था? निश्चित रूप से इस सवाल का जवाब दे सकना कठिन है। वर्ष 1857 के विद्रोह के इतिहास का एक अजीब पहलू यह है कि इसका अध्ययन लगभग पूरी तरह ब्रिटिश
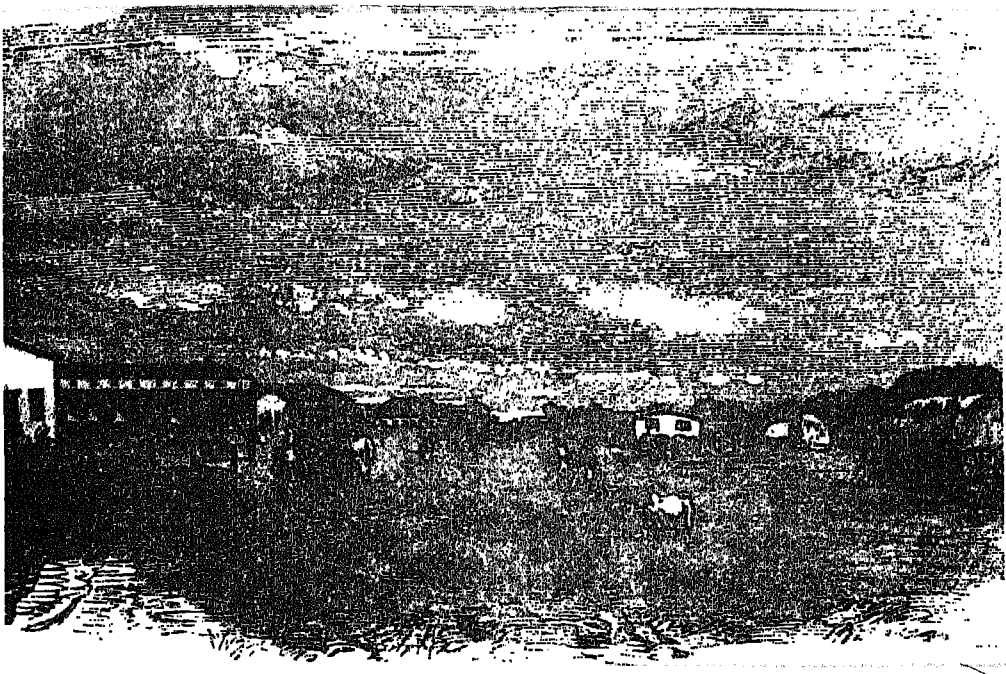
मेरठ की बैरकें, यहीं से विद्रोह की शुरुआत हुई थी

दस्तावेजों पर आधारित है। विद्रोही अपने पीछे कोई दस्तावेज नहीं छोड़ गए। चूंकि वे गैर-कानूनी ढंग से काम कर रहे थे, इसलिए शायद वे कोई लिखित दस्तावेज नहीं रखते थे। फिर यह भी कि वे हरा दिए गए तथा कुचल दिए गए और घटनाओं के बारे में उनके विवरण उनके साथ ही नष्ट हो गए। अंतिम बात यह कि बाद में भी वर्षों तक अंग्रेज़ विद्रोह के बारे में किसी भी सहानुभूतिपूर्ण उल्लेख को दबाते रहे तथा जो भी विद्रोहियों का पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करता उसके खिलाफ कड़ी कार्यवाही करते रहे।

इतिहासकारों तथा लेखकों के एक वर्ग का दावा है कि यह विद्रोह एक व्यापक तथा सुसंगठित षड्यंत्र का परिणाम था। इसके सबूत में वे चपातियों तथा लाल कमल के फूलों के गांव-गांव पहुंचने की घटनाओं तथा घुमक्कड़ सन्यासियों, फकीरों तथा मदारियों के प्रचार का उल्लेख करते हैं। दूसरे लेखक इतने ही दावे के साथ इस बात से इनकार करते हैं कि विद्रोह के पीछे कोई सुनियोजित तैयारी थी। उनका कहना है कि विद्रोह से पहले या बाद में भी रद्दी कागज का एक टुकड़ा तक ऐसा नहीं मिला जिससे सुसंगठित षड्यंत्र का संकेत मिलता हो। किसी गवाह तक ने इस तरह का कोई दावा कभी नहीं किया।

विद्रोह का आरंभ 10 मई, 1857 को दिल्ली से 36 मील दूर मेरठ में हुआ। फिर यह तेज़ी से बढ़ता हुआ पूरे उत्तर भारत में फैल गया। जल्द ही उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण से नर्मदा तक तथा पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक एक विस्तृत भू-भाग इसकी चपेट में आ गया।

मेरठ में विद्रोह के भड़कने से पहले भी बैरकपुर में मंगल पांडे शहीद हो चुके थे। वे एक नौजवान

बहादुरशाह द्वितीय

सिपाही थे जिनको अकेले विद्रोह करने तथा अपने अधिकारियों पर हमला करने के कारण 29 मार्च, 1857 को फांसी दे दी गई थी। ये तथा ऐसी ही अनेक घटनाएं इस बात का संकेत थीं कि सिपाहियों में असंतोष तथा विद्रोही भाव पक रहे थे। फिर इसके बाद मेरठ में विस्फोट हुआ। 24 अप्रैल को तीसरी देशी घुड़सवार सेना के 90 लोगों ने चर्बीदार कारतूस लेने से इंकार कर दिया। उनमें से 85 को 9 मई को बरखास्त करके दस-दस साल की बामशक्कत सजाएं दी गईं और जंजीरों में जकड़ दिया गया। इससे मेरठ में तैनात भारतीय सिपाहियों में एक आम विद्रोह भड़क उठा। फिर अगले ही दिन, 10 मई को उन्होंने अपने कैदी साथियों को छुड़ा लिया, अपने अधिकरियों को मार डाला तथा विद्रोह का झंडा बुलंद कर लिया। फिर जैसे कि कोई चुंबक उनको खींच रहा हो, वे सूर्यास्त के बाद दिल्ली की ओर चल पड़े मेरठ के सिपाही जब अगली सुबह दिल्ली में दिखाई पड़े तो वहां की पैदल सेना आकर उनके साथ मिल गई। उन्होंने अपने यूरोपीय अधिकारियों को मार डाला और शहर को घेर लिया। बागी सिपाहियों ने बूढ़े और शक्तिहीन बहादुरशाह जफर को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। दिल्ली जल्द ही इस महान विद्रोह का केंद्र बन गई। तथा बहादुरशाह इसके महान प्रतीक बन गए। इस अंतिम मुगल बादशाह को जिस तरह स्वतः स्फूर्त ढंग से देश का नेता बना दिया गया, वह इस तथ्य का प्रमाण था कि मुगल खानदान के लंबे शासन ने इस खानदान को भारत की राजनीतिक एकता का प्रतीक बना दिया था। केवल इस एक कार्य के द्वारा सिपाहियों ने एक फौजी विद्रोह को एक क्रांतिकारी युद्ध में बदल दिया। यही कारण है कि पूरे देश के विद्रोही सिपाहियों के कदम अपने आप दिल्ली की ओर मुड़ गए, और विद्रोह में भाग लेने वाले सभी भारतीय राजाओं ने मुगल सम्राट के प्रति अपनी वफादारी घोषित करने में कतई देर नहीं लगाई। फिर सिपाहियों के कहने पर या संभवतः उनके दबाव में बहादुरशाह ने भारत के सभी राजाओं और सरदारों को पत्र लिखा और उनसे आग्रह किया कि ब्रिटिश साम्राज्य से लड़ने

और उसको हटाने के लिए वे भारतीय राज्यों का एक महासंघ स्थापित करें।

जल्द ही बंगाल की पूरी सेना विद्रोह में शामिल हो गई और यह तेज़ी से फैल गया। अवध, रुहेलखंड, दोआब, बुंदेलखंड, मध्य भारत, बिहार का एक बड़ा भाग, और पूर्वी पंजाब इन सभी जगहों पर ब्रिटिश साम्राज्य चरमरा उठा। अनेक रजवाड़ों में शासक तो अंग्रेज़ मालिकों के प्रति वफादार बने रहे, मगर उनकी फौजों में विद्रोह भड़क उठा या भड़कने के करीब आ गया। इंदौर के अनेक फौजी विद्रोह करके सिपाहियों से आ मिले। इसी तरह ग्वालियर के 20,000 से अधिक फौजी तांत्या टोपे और झांसी की रानी के साथ चले गए। राजस्थान तथा महाराष्ट्र के अनेक छोटे सरदार अपनी जनता का भरोसा पाकर विद्रोही बन गए; उनकी यह जनता अंग्रेजों की कट्टर दुश्मन थी। हैदराबाद तथा बंगाल में भी छिटपुट विद्रोह हुए।

यह विद्रोह जितना अधिक व्यापक था उतनी ही इसमें गहराई भी थी। पूरे उत्तरी और मध्य भारत में सिपाहियों के विद्रोह ने नागरिक जनता को भी आम विद्रोह के लिए प्रेरित किया। सिपाहियों द्वारा ब्रिटिश सत्ता के समाप्त किए जाने के बाद साधारण जनता भी हथियार लेकर उठ खड़ी हुई और अक्सर बल्लमों, कुल्हाड़ों, तीर-धनुष, लाठियों और हंसियों, तथा देशी बंदूकों के साथ लड़ती रही। लेकिन अनेक जगहों पर सिपाहियों से भी पहले या जहां कोई फौज तैनात नहीं थी, वहां भी जनता ने विद्रोह का आरंभ किया। किसानों, दस्तकारों, दुकानदारों, दिहाड़ी वाले मजदूरों और जमींदारों की व्यापक भागीदारी ऐसी चीज थी जिसने विद्रोह को उसकी वास्तविक शक्ति दी तथा इसे जन-विद्रोह का चरित्र भी दिया, खासकर उन क्षेत्रों में जो आज उत्तर प्रदेश तथा बिहार में शामिल हैं। इस क्षेत्र में किसानों तथा जमींदारों ने सूदखोरों तथा अपनी जमीन से बेदखल करने वाले नए जमींदारों पर हमले करके अपनी तकलीफों को खुलकर जाहिर किया।

विद्रोह का लाभ उठाकर उन्होंने सूदखोरों की खाता-बहियों तथा कर्जों के दस्तावेजों को नष्ट कर दिया। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा स्थापित अदालतों, तहसील कार्यालयों, मालगुजारी के दस्तावेजों तथा थानों पर हमले किए। यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि अनेक लड़ाइयों में सामान्य जनता की संख्या सिपाहियों से कहीं बहुत ज्यादा थी। एक अनुमान के अनुसार अवध में अंग्रेजों से लड़ते हुए मरने वाले लगभग 1,50,000 लोगों में 1,00,000 से अधिक सामान्य नागरिक थे।

यह भी ध्यान रहे कि जहां जनता विद्रोह में शामिल नहीं हुई, वहां भी लोगों ने विद्रोहियों के साथ बहुत सहानुभूति का व्यवहार किया। वे विद्रोहियों की हर जीत पर खुश होते रहे तथा अंग्रेजों के वफादार रहने वाले सैनिकों का सामाजिक बहिष्कार करते रहे।

तांत्या टोपे

विद्रोही सैनिकों की एक टुकड़ी

उन्होंने ब्रिटिश सेना के साथ सक्रिय शत्रुता का व्यवहार किया, उसे सहायता या सूचना देने से इनकार कर दिया, और उसे गलत सूचना देकर गुमराह तक किया। 'लंदन टाइम्स' अखबार के संवाददाता के रूप में 1858-59 में भारत का भ्रमण करने वाले डब्ल्यू. एच. रसल ने लिखा है :

> कोई भी मिसाल ऐसी नहीं कि किसी गोरे की गाड़ी पर दोस्ताना निगाह पड़ती हो...... उफ! ये आंखों की भाषा! शक की गुंजाइश कहां है? गलत समझाने की गुंजाइश कहां है? यही तो वह चीज है जिससे मैंने समझा कि हमारी जाति का अक्सर बहुत से लोगों को कोई डर नहीं होता और यह कि नफरत तो इससे सभी करते हैं।

वर्ष 1857 के विद्रोह का जन-चरित्र उस समय भी स्पष्ट हुआ जब अंग्रेजों ने इसे कुचलने की कोशिश की। उन्होंने विद्रोही सिपाहियों को ही नहीं दबाया, बल्कि दिल्ली, अवध, पश्चिमोत्तर प्रांत, आगरा, मध्य भारत और पश्चिम बिहार की जनता के खिलाफ भी एक भरपूर और निर्मम लड़ाई उनको लड़नी पड़ी। पूरे के पूरे गांव जला दिए गए, तथा ग्रामीण और नगरीय जनता का कत्ले-आम किया गया। अंग्रेजों को एक-एक करके गांवों से लड़ना पड़ा तथा उत्तरी भारत के अनेक भागों को फिर से जीतना पड़ा। लोगों को बिना किसी मुकदमें के फांसी देना तथा फांसी के बाद सबके सामने पेड़ों से लटकाना पड़ा। इन सबसे पता चलता है कि इन क्षेत्रों में विद्रोह कितना फैल चुका था।

वर्ष 1857 के विद्रोह की शक्ति बहुत कुछ हिंदू-मुस्लिम एकता में निहित थी। सैनिक तथा जनता हो या नेता, हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच पूरा-पूरा सहयोग देखा गया। सभी विद्रोहियों ने एक मुसलमान बहादुरशाह को अपना सम्राट स्वीकार कर लिया था। मेरठ के हिंदू सिपाहियों के मन में पहला विचार दिल्ली की ओर कूच करने का ही आया। हिंदू और मुसलमान विद्रोही और सिपाही एक दूसरे की भावनाओं का पूरा-पूरा सम्मान करते थे। उदाहरण के लिए, विद्रोह जहां भी सफल हुआ वहीं हिंदुओं की भावनाओं का आदर करते हुए फौरन ही गौ-हत्या बंद करने के आदेश जारी कर दिए गए। इसके अलावा, नेतृत्व में हर सतह पर हिंदुओं तथा मुसलमानों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त था। विद्रोह में हिंदू-मुस्लिम एकता की भूमिका का परोक्ष रूप से एक वरिष्ठ ब्रिटिश अधिकारी, एचिंसन ने स्वीकार किया है। बहुत कड़वे मन से वह लिखता है : "इस मामले में हम मुसलमानों को हिंदुओं से नहीं लड़ा सकते।" वास्तव में, 1857 की घटनाओं से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मध्य काल में तथा 1858 से पहले भारत की जनता और राजनीति अपने मूल रूप में सांप्रदायिक नहीं थी।

वर्ष 1857 के विद्रोह के प्रमुख केंद्र दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेली, झांसी तथा आरा (बिहार) थे। दिल्ली में प्रतीक रूप में कहने को विद्रोह के नेता सम्राट बहादुरशाह थे, परंतु वास्तविक नियंत्रण एक सैनिक समिति के हाथों में था जिसके प्रमुख

जनरल बख्त खान थे। इन्होंने ही बरेली के सैनिकों का नेतृत्व किया था तथा उनको दिल्ली ले आए थे। ब्रिटिश सेना में वे तोपखाने के एक मामूली सूबेदार थे। बख्त खान विद्रोह के प्रमुख केंद्र में साधारण तथा निम्न वर्गीय जनता के प्रतिनिधि थे। विद्रोह के नेतृत्व की जंजीर में सबसे कमजोर कड़ी शायद सम्राट बहादुरशाह ही थे। उनका कमजोर व्यक्तित्व, उनकी अधिक आयु और नेतृत्व के गुणों का अभाव—इनके कारण विद्रोह के प्रमुख केंद्र में ही राजनीतिक दुर्बलता आई तथा इससे विद्रोह को अकथनीय हानि पहुंची।

कानपुर में विद्रोह के नेता नानासाहब थे जो अंतिम पेशवा, बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे। सिपाहियों की सहायता से अंग्रेजों को कानपुर से खदेड़कर नानासाहब ने स्वयं को पेशवा घोषित कर दिया। साथ ही साथ बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित करके उन्होंने अपने को उनका प्रतिनिधि घोषित किया। नानासाहब की ओर से लड़ने का भार मुख्यतः उनके विश्वसनीय सेवक तात्यां टोपे के सिपाहियों पर था। अपनी देशभक्ति, शौर्यमय युद्ध तथा कुशल छापामार कार्यवाहियों के कारण तात्या टोपे अमर हो चुके थे। नानासाहब के एक और विश्वसनीय सेवक अजीमुल्लाह थे। वे राजनीतिक प्रचार-कार्य के माहिर थे। दुर्भाग्य से, नानासाहब ने कानपुर में अंग्रेजों को सुरक्षित निकाल देने का वादा करने के बावजूद उन्हें धोखे से मारकर अपनी बहादुरी पर कलंक का टीका लगा दिया।

लखनऊ में विद्रोह का नेतृत्व अवध की महारानी बेगम हजरत महल कर रही थीं। उन्होंने अपने नाबालिग बेटे बिरजीस कदर को अवध का नवाब घोषित कर दिया। लखनऊ के सिपाहियों तथा अवध के किसानों और जमीदारों की सहायता से बेगम ने अंग्रेजों के खिलाफ चौतरफा युद्ध छेड़ दिया। जब अंग्रेज़ शहर छोड़ने के लिए मजबूर हो गए तो उन्होंने रेजीडेंसी
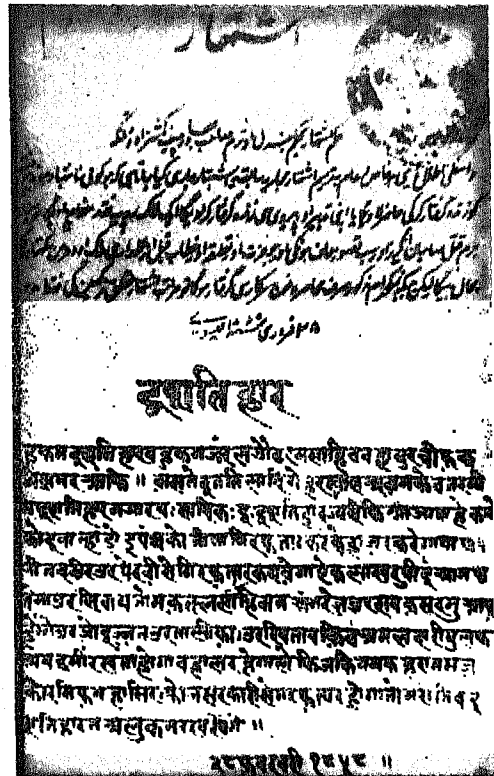
जनरल आउट्रम द्वारा जारी किया गया पर्चा जिसमें इस बात का ऐलान किया गया है कि धोंदू पंत (नाना साहब) को पकड़वाने वाले को एक लाख का पुरस्कार दिया जाएगा।

की इमारत में शरण ले ली। आखिर में रेजीडेंसी का घेरा कामयाब नहीं हुआ क्योंकि छोटी सी ब्रिटिश सेना उदाहरणीय धैर्य तथा बहादुरी से लड़ती रही।

1857 के विद्रोह के महान नेताओं में से भारतीय इतिहास की महानतम वीरांगनाओं में से एक थीं—झांसी की युवा महारानी लक्ष्मीबाई। जब अंग्रेजों ने झांसी की गद्दी के लिए एक उत्तराधिकारी गोद लेने के रानी के अधिकार को नहीं माना, उनके राज्य का अपहरण कर लिया तथा उन्हें धमकी दी कि झांसी के सैनिकों को विद्रोह के लिए भड़काने के लिए उन्हें उत्तरदायी माना जाएगा, तब रानी विद्रोहियों से

विद्रोहियों को तोप के मुंह से बांधा जा रहा है ताकि उन्हें उड़ाया जा सके

आ मिलीं। रानी कुछ समय तक अनिश्चय की स्थिति में रहीं। लेकिन जब उन्होंने विद्रोहियों का साथ देने का फैसला कर लिया तो बहुत बहादुरी के साथ उन्होंने अपने सैनिकों का नेतृत्व किया। तब से लेकर आज तक उनके शौर्य, साहस तथा सैनिक कुशलता की गाथाएं देशवासियों को प्रेरणा देती आ रही हैं। अंग्रेजों के साथ उनकी एक भयानक लड़ाई हुई जिसमें "स्त्रियां तक तोपें चलाते और गोला-बारूद बांटती देखी गईं।" उसके बाद रानी को झांसी से बाहर भागना पड़ा। तब उन्होंने अपने अनुयायियों को शपथ दिलाई कि "हम अपने हाथों अपनी आजाद शाही (स्वतंत्र राज्य) की कब्र नहीं खोदेंगे।" तांत्या टोपे तथा अपने अफगान रक्षकों की सहायता से उन्होंने ग्वालियर पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों के वफादार महाराज सिंधिया ने रानी से लड़ने की एक कोशिश की, मगर उनके अधिकांश सैनिक रानी से जा मिले। सिंधिया ने आगरा जाकर अंग्रेजों की शरण ली। यह बहादुर रानी सिपाही के वेश में, एक घोड़े पर सवार होकर लड़ते हुए 17 जून 1858 को वीरगति को प्राप्त हुई। उनके साथ एक मुस्लिम लड़की भी शहीद हुई जो उनकी बचपन की साथी थी।

बिहार में विद्रोह के प्रमुख नेता कुंवर सिंह थे जो आरा के पास जगदीशपुर के एक तबाह और असंतुष्ट जमींदार थे। लगभग 80 वर्ष के होते हुए भी वे विद्रोह के संभवतः सबसे प्रमुख सैनिक नेता तथा रणनीतिज्ञ थे। फैजाबाद के मौलवी अहमदुल्लाह
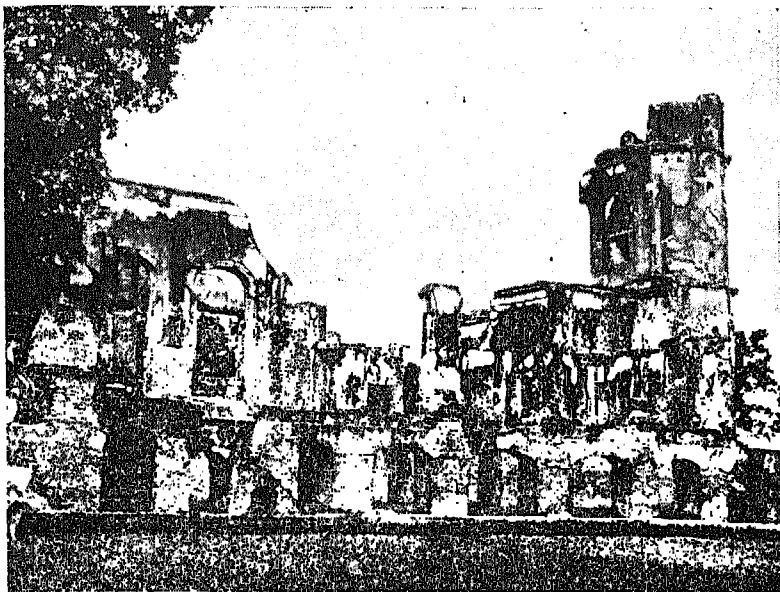
लखनऊ रेजिडेंसी

विद्रोह के एक और प्रमुख नेता थे। वे मद्रास के रहने वाले थे और वहीं से उन्होंने सशस्त्र विद्रोह का प्रचार कार्य शुरू कर दिया था। जनवरी 1857 में वे उत्तर में फैजाबाद आ गए। यहां उन्होंने ब्रिटिश सैनिकों की उस कंपनी से एक भीषण लड़ाई लड़ी जो उनको राजद्रोह के प्रचार से रोकने के लिए भेजी गई थी। जब मई में आम बगावत भड़क उठी तो वे अवध में इसके एक मान्य नेता के रूप में उभरे।

विद्रोह के सबसे महान वीर सिपाही ही थे। इनमें से अनेकों ने युद्धक्षेत्र में अद्भुत साहस का परिचय दिया। हज़ारों सैनिकों ने निःस्वार्थ भाव से अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। सबसे बड़ी बात यह है कि इन सैनिकों का दृढ़ निश्चय तथा बलिदान ही था जिसने अंग्रेजों को भारत से लगभग खदेड़ ही दिया था। इस देशभक्तिपूर्ण संघर्ष में उन्होंने अपने मन में गहरे बैठे धार्मिक पूर्वाग्रहों की भी कुर्बानी दे दी। उन्होंने विद्रोह तो किया था चर्बीदार कारतूसों के सवाल पर, मगर घृणित विदेशियों को बाहर भगाने की धुन में वे लड़ाइयों में जमकर इन्हीं चर्बीदार कारतूसों का प्रयोग करते रहे।

विद्रोह की कमजोरियां और उसका दमन

वर्ष 1857 का विद्रोह बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ था और जनता का व्यापक समर्थन इसे प्राप्त था, फिर भी यह पूरे देश को या भारतीय समाज के सभी अंगों तथा वर्गों को अपनी लपेट में नहीं ले सका। यह दक्षिणी भारत तथा पूर्वी और पश्चिमी भारत के अधिकांश भागों में नहीं फैल सका क्योंकि इन क्षेत्रों में पहले अनेकों विद्रोह हो चुके थे। भारतीय रजवाड़ों के अधिकांश शासक तथा बड़े जमींदार पक्के स्वार्थी तथा अंग्रेजों की शक्ति से भयभीत थे और वे विद्रोह में शामिल नहीं हुए। इसके विपरीत ग्वालियर के सिंधिया, इंदौर के होल्कर, हैदराबाद के निजाम,

जोधपुर के राजा तथा दूसरे राजपूत शासक, भोपाल के नवाब, पटियाला, नाभा और जींद के सिख शासक तथा पंजाब के दूसरे सिख सरदार, कश्मीर के महाराजा, नेपाल के राणा तथा दूसरे अनेक सरदारों और अनेकों बड़े जमींदारों ने विद्रोह को कुचलने में अंग्रेजों की सक्रिय सहायता की। वास्तव में भारतीय शासकों में एक प्रतिशत से अधिक विद्रोह में शामिल नहीं हुए। गवर्नर-जनरल कैनिंग ने बाद में टिप्पणी की, इन शासकों तथा सरदारों ने "तूफान के आगे बांध की तरह काम किया; वर्ना यह तूफान एक ही लहर में हमें बहा ले जाता।" मद्रास, बंबई, बंगाल तथा पश्चिमी पंजाब में जनता विद्रोहियों में हमदर्दी रखती थी, फिर भी ये प्रांत अप्रभावित रहे। इसके अलावा, असंतुष्ट तथा बेदखल जमींदारों को छोड़कर उच्च तथा मध्य

रानी लक्ष्मी बाई और तांत्या टोपे

वर्गों के अधिकांश लोग विद्रोहियों के आलोचक थे। संपन्न वर्गों के अधिकांश लोग विद्रोहियों के प्रति ठंडे बने रहे या उनका सक्रिय विरोध किया। यहां तक कि विद्रोह में शामिल अवध के बहुत से तालुकदारों (बड़े जमींदारों) ने, अंग्रेजों से यह आश्वासन पाकर कि उनकी जागीरें उन्हें वापस दे दी जाएंगी, विद्रोह से किनारा कर लिया। इससे एक लंबा खिंचता हुआ छापामार संघर्ष चला सकना अवध के किसानों और सिपाहियों के लिए बहुत कठिन हो गया।

ग्रामीण जनता के हमलों का खास निशाना सूदखोर थे। इसलिए वे स्वाभाविक तौर पर विद्रोह के शत्रु थे। लेकिन धीरे-धीरे व्यापारी भी इसके शत्रु बन गए। युद्ध का खर्च जुटाने के लिए विद्रोहियों को उन पर भारी कर लगाने पड़े थे या सेना को भोजन देने के लिए उनके अनाज-गोदामों पर कब्जा करना पड़ा था। व्यापारी प्रायः अपनी दौलत और माल छिपा देते थे तथा विद्रोहियों को मुफ्त में सामान देने से मना कर देते थे। बंगाल के जमींदार भी अंग्रेजों के वफादार बने रहे। आखिरकार वे अंग्रेजों की ही पैदावार थे। इसके अलावा बिहार में जमींदारों के प्रति किसानों की शत्रुता ने बंगाल के जमींदारों को भी डरा दिया था। इसी तरह बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास के बड़े व्यापारियों ने भी अंग्रेजों का साथ दिया। कारण कि उनका अधिकांश मुनाफा अंग्रेज़ व्यापारियों के साथ होने वाले विदेशी व्यापार तथा आर्थिक संबंधों से होता था।

आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने भी विद्रोह का साथ नहीं दिया। विद्रोही जिस प्रकार अंधविश्वासों का उपयोग करते या प्रगतिशील सामाजिक उपायों का विरोध करते थे, उससे ये भारतीय बिदककर दूर हो गए। जैसा कि हमने देखा है, शिक्षित भारतीय देश का पिछड़ापन समाप्त करना चाहते थे। उनके मन में यह गलत विश्वास भरा था कि अंग्रेज़ आधुनिकीकरण के ये काम पूरा करने में उनकी सहायता करेंगे, जबकि जमींदारों, पुराने शासकों और सरदारों, तथा दूसरे सामंती तत्वों के नेतृत्व में लड़ने वाले विद्रोही देश को पीछे ले जाएंगे। कुछ समय बाद ही शिक्षित भारतीयों ने अपने अनुभवों से जाना कि विदेशी शासन देश का आधुनिकीकरण करने में न सिर्फ असमर्थ साबित हुआ, बल्कि उसने उसे गरीब और पिछड़ा बनाए रखा। इस मामले में 1857 के क्रांतिकारी अधिक दूरदर्शी सिद्ध हुए। उन्हें विदेशी शासन की बुराइयों तथा उससे मुक्ति पाने की आवश्यकता की कहीं बेहतर और सहज समझ हासिल थी। दूसरी ओर, शिक्षित लोगों की तरह उन्होंने यह बात नहीं समझी कि देश विदेशियों के चंगुल में ठीक इसीलिए फंसा था कि वह सड़े-गले रिवाजों, परंपराओं तथा संस्थाओं से चिपका हुआ था। वे यह समझ सकने में असफल रहे कि देश की मुक्ति पुराने सामंती राजतंत्र की ओर पलटने में नहीं बल्कि आगे बढ़कर एक आधुनिक समाज, आधुनिक अर्थव्यवस्था, वैज्ञानिक शिक्षा तथा आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं को गले लगाने से ही संभव थी। कुछ भी हो, यह नहीं कहा जा सकता कि शिक्षित भारतीय राष्ट्रद्रोही या विदेशी शासन के भक्त थे। जैसा कि 1858 के बाद की घटनाओं ने दिखाया, जल्द ही ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक शक्तिशाली और आधुनिक आंदोलन का नेतृत्व उन्होंने संभाल लिया।

भारतीयों में एकता के अभाव के चाहे जो कारण रहे हों, यह विद्रोह के लिए घातक सिद्ध हुआ। लेकिन विद्रोहियों के लक्ष्य को धक्का पहुंचाने वाली यह अकेली कमजोरी नहीं थी। उनके पास आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य युद्ध सामग्री की भी कमी थी। अधिकांश तो भालों और तलवारों जैसे पुराने हथियारों से ही लड़ रहे थे। उनका संगठन भी ठीक नहीं था। सिपाही बहादुर तथा स्वार्थरहित तो थे मगर उनमें अनुशासन की कमी भी थी। कभी-कभी तो वे अनुशासित सेना के बजाए दंगाई भीड़ की तरह व्यवहार करते। विद्रोह

इकाइयों के पास सैनिक कार्यवाही की साझी योजनाओं, अधिकार संपन्न प्रमुखों या केंद्रीकृत नेतृत्व का भी अभाव था। देश के विभिन्न भागों में हो रहे विद्रोहों के बीच कोई तालमेल नहीं था। विदेशी शासन के प्रति एक साझी घृणा को छोड़कर और कोई संबंध-सूत्र नेताओं के बीच नहीं था। किसी क्षेत्र विशेष से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के बाद उन्हें पता भी नहीं होता था कि उसकी जगह किस प्रकार की राजनीतिक सत्ता या संस्थाएं स्थापित की जाएं। वे एक-दूसरे के प्रति शंकित तथा ईर्ष्याग्रस्त थे और अक्सर आत्मघाती झगड़ों में उलझ पड़ते थे। इसी तरह किसान मालगुजारी के दस्तावेजों तथा सूदखोरों के बही-खातों को नष्ट करने तथा नए जमींदारों को खदेड़ने के बाद समझ नहीं पाते थे कि आगे क्या करें, और इसलिए निष्क्रिय हो जाते थे।

वास्तव में विद्रोह की कमजोरियां व्यक्तियों की कमियों से भी कहीं अधिक गहराई में निहित थीं। इस आंदोलन को भारत को गुलाम बनाने वाले उपनिवेशवाद की या आधुनिक विश्व की कोई खास समझ नहीं थी। इसके पास एक भविष्योन्मुख कार्यक्रम, सुसंगत विचारधारा, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य या भावी समाज और अर्थव्यवस्था के प्रति एक स्पष्ट दृष्टि का अभाव था। विद्रोह सत्ता पर अधिकार के बाद लागू किए जाने वाले किसी सामाजिक विकल्प से रहित था। इस तरह इस आंदोलन में तरह-तरह के तत्व शामिल थे जो केवल ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी घृणा द्वारा ही जुड़े हुए थे। इनमें से हरेक की अपनी-अपनी शिकायतें थीं और स्वतंत्र भारत की राजनीति की अपनी-अपनी धारणाएं थीं। एक आधुनिक, प्रगतिशील कार्यक्रम के अभाव में प्रतिक्रियावादी राजा और जमींदार क्रांतिकारी आंदोलन का नेतृत्व हथियाने में सफल हो गए। लेकिन विद्रोह के सामंती चरित्र पर हमें बहुत जोर नहीं देना चाहिए। सिपाही तथा साधारण जनता धीरे-धीरे एक भिन्न प्रकार का नेतृत्व विकसित कर रहे थे। विद्रोह को सफल बनाने का प्रयास भी उन्हें नए प्रकार का संगठन तैयार करने को बाध्य कर रहा था। उदाहरण के लिए, दिल्ली में प्रशासकों की एक समिति बनाई गई थी जिसके दस सदस्यों में छः सिपाही तथा चार नागरिक थे। इसमें सभी निर्णय बहुमत द्वारा लिए जाते थे। यह समिति सभी सैनिक तथा प्रशासकीय निर्णय सम्राट के नाम पर करती थी। नई सांगठनिक संरचनाएं तैयार करने की इस तरह की कोशिशें विद्रोह के दूसरे केंद्रों में भी की गई। बेंजामिन डिज़राइली ने उस समय ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दी थी कि अगर समय रहते विद्रोह नहीं कुचला गया तो "रंगमंच पर भारतीय राजाओं के अलावा कुछ और पात्र भी दिखाई देंगे तथा उनसे भी उन्हें (अंग्रेजों को) जूझना पड़ेगा।"

भारतीयों में एकता का यह अभाव भारतीय इतिहास के इस चरण में संभवतः अपरिहार्य था। भारत अभी आधुनिक राष्ट्रवाद से अपरिचित था। देशप्रेम का मतलब अपनी छोटी-सी बस्ती, क्षेत्र या अधिक से अधिक अपनी राजसत्ता के प्रति प्रेम था। सांझे अखिल भारतीय हितों का तथा इस चेतना का कि ये हित सभी भारतीयों को परस्पर जोड़ते हैं, अभी उदय नहीं हुआ था। वास्तव में 1857 के विद्रोह ने भारतीय जनता को एक साथ जोड़ने में तथा उनमें एक देश का वासी होने की चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अंत में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद जिसके पास एक विकासमान पूंजीवादी अर्थव्यवस्था थी, जो दुनिया भर में शक्ति के शिखर पर बैठा था, तथा जिसे अधिकांश भारतीय शासकों तथा सरदारों का सहयोग प्राप्त था, सैनिक दृष्टि से विद्रोहियों से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। ब्रिटिश सरकार ने देश में भयानक संख्या में सेना, धन तथा अस्त्र-शस्त्रों को झोंक दिया, हालांकि खुद अपने इस दमन के लिए भारतीयों को बाद में

पूरी-पूरी कीमत चुकानी पड़ी। विद्रोह कुचल दिया गया। मात्र साहस एक ऐसे शक्तिशाली तथा दृढ़ निश्चय शत्रु के आगे नहीं ठहर सका जिसका हर कदम नियोजित था। विद्रोहियों को बहुत पहले ही एक भारी धक्का तब लगा जब अंग्रेजों ने एक लंबे तथा भयानक युद्ध के बाद 20 सिंतबर, 1857 को दिल्ली पर कब्जा कर लिया। बूढ़े सम्राट बहादुरशाह बंदी बना लिए गए। उनके राजकुमार पकड़कर वहीं मार डाले गए। सम्राट पर मुकद्दमा चला तथा उन्हें निर्वासित कर रंगून भेज दिया गया। वहीं अपनी किस्मत पर आंसू बहाते हुए कि उन्हें उनकी जन्मभूमि से बहुत दूर कर दिया गया था, वे 1862 में स्वर्गवासी हुए। इस तरह महान मुगलवंश आखिरकार पूरी तरह नष्ट हो गया।

दिल्ली के पतन के साथ विद्रोह का केंद्र बिंदु नष्ट हो गया। विद्रोह के दूसरे नेता बहादुरी से यह असमान युद्ध लड़ते रहे, मगर अंग्रेजों ने उनके खिलाफ एक शक्तिशाली हमला केंद्रित कर दिया था। जान लारेंस, आउट्रम, हेवलाक, नील, कैंपबेल और ह्यू रोज कुछ ऐसे ब्रिटिश कमानदार थे जिन्होंने इस युद्ध में सैनिक ख्याति प्राप्त की। विद्रोह के सभी महान नेता एक के बाद एक खेत रहे। नानासाहब की कानपुर में हार हुई। अंत तक हार न मानकर तथा आत्मसमर्पण से इनकार करके वे 1859 के आरंभ में नेपाल की ओर कूच कर गए, और फिर उनका कोई पता नहीं चला। तात्या टोपे मध्य भारत के जंगलों में जा छिपे और वहीं से एक भयानक और शानदार छापामार युद्ध चलाते रहे, जब तक कि अप्रैल 1859 में वे सोते समय एक जमींदार दोस्त की गद्दारी के कारण पकड़े नहीं गए। जल्दी-जल्दी उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें 15 अप्रैल, 1859 को मौत की सजा दे दी गई। झांसी की रानी पहले ही, 17 जून, 1858 को युद्धभूमि में लड़ते हुए शहीद हो चुकी थीं। 1859 तक कुंवरसिंह, बख्त खान, बरेली के खान बहादुर खान, नानासाहब के भाई राव साहब और मौलवी अहमदुल्लाह सभी स्वर्गवासी हो चुके थे जबकि अवध की बेगम हजरतमहल मजबूर होकर नेपाल में जा छिपी थीं।

1859 के अंत तक भारत पर ब्रिटिश सत्ता पूरी तरह पुनर्स्थापित हो चुकी थी। परंतु विद्रोह व्यर्थ नहीं गया। यह हमारे इतिहास का एक शानदार पड़ाव है। यह पुराने ढंग के भारत को तथा उसके परंपरागत नेतृत्व को बचाने का एक हताशपूर्ण प्रयास तो था ही, परंतु यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए भारतीय जनता का पहला महान संघर्ष भी था। इसने एक आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन के विकास का आधार तैयार कर दिया। वर्ष 1857 के वीरतापूर्ण तथा देशभक्तिपूर्ण विद्रोह ने तथा उसके पहले के अनेकों विद्रोहों ने भारतीय जनता के मन पर एक अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध की शानदार स्थानीय परंपराएं कायम कीं तथा आगे के स्वाधीनता संग्राम में भारतीय जनता के लिए प्रेरणा का एक अक्षुण्ण स्त्रोत प्रदान किया। इस विद्रोह के वीरों की गाथाएं जल्द ही घर-घर में गूंजने लगीं, भले ही उनके नामों के उच्चारण मात्र से शासक बौखलाते रहे हों।

अभ्यास

1. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध जन-असंतोष का विवेचन कीजिए। किस सीमा तक 1857 का जन-विद्रोह इस असंतोष का परिणाम था?

2. 1857 की घटना के लिए परिस्थितियां पैदा करने में डलहौजी को किस सीमा तक जिम्मेदार माना जा सकता है? इसका आकलन कीजिए।
3. वे कौन से कारक थे जिनकी वजह से ब्रिटिश शासन के खिलाफ सिपाही विद्रोह भड़क उठा? वे इस विद्रोह के प्रमुख आधार थे, इस कथन का विवेचन कीजिए।
4. 1857 के विद्रोह में भारतीय राजाओं की भूमिका का विवेचन कीजिए। ब्रिटिश शासकों ने उनको किस प्रकार पुरस्कृत किया?
5. पश्चिमी शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने इस विद्रोह से अपने को अलग क्यों रखा? इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
6. 1857 के विद्रोह के असफल होने के कारणों की समीक्षा कीजिए।
7. 1857 की विरासत का विवेचन कीजिए।
8. 1857 के दौरान हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच एकता के महत्त्व का विश्लेषण कीजिए।
9. दिल्ली 1857 के जन-विद्रोह का प्रमुख केंद्र क्यों बना?
10. निम्नांकित नेताओं की 1857 के विद्रोह के दौरान की भूमिका से संबंधित सामग्री एकत्र कीजिए और उन पर टिप्पणियां लिखिए:
    बहादुरशाह द्वितीय, नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई, कुंवरसिंह, मौलवी अहमदुल्ला, तांत्या टोपे, खान बहादुर खान
11. ब्रिटेन के भारत विजय से लेकर 1856 तक ब्रिटिश विरोधी जितने भी विद्रोह हुए, उनकी एक सूची तैयार कीजिए। भारत का एक मानचित्र लेकर उसमें इनके स्थान तथा समय वर्ष अंकित करो।
12. भारत के मानचित्र पर उन प्रमुख केंद्रों को प्रदर्शित करो, जहां-जहां विद्रोह हुआ था।

अध्याय : 7

1858 के बाद प्रशासनिक परिवर्तन

1857 के विद्रोह ने भारत में ब्रिटिश प्रशासन को गहरा धक्का दिया और उसका पुनर्गठन अनिवार्य बना दिया। विद्रोह के बाद के दशकों में भारत सरकार के ढांचे और नीतियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था और सरकार में परिवर्तन के लिए भारत में उपनिवेशवाद के एक नए चरण का आरंभ अधिक महत्त्वपूर्ण था।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में औद्योगिक क्रांति का प्रसार और तीव्रीकरण हुआ। धीरे-धीरे यूरोप के दूसरे देश, अमरीका और जापान का भी औद्योगीकरण हुआ, और विश्व की अर्थव्यवस्था में ब्रिटेन की उत्पादन संबंधी और वित्तीय श्रेष्ठता समाप्त हो गई। अब बाज़ारों, कच्चे माल के स्त्रोतों और विदेशी पूंजी-निवेश के अवसरों के लिए दुनिया भर में तेज प्रतियोगिता आरंभ हो गई। उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों के लिए प्रतियोगिता और कड़ी और तीखी हो गई, क्योंकि नई औपनिवेशिक विजयों के लिए क्षेत्र कम होते गए। ब्रिटेन को अब विश्व पूंजीवाद में अपनी प्रमुख स्थिति बनाए रखने के लिए नए-नए विकसित हो रहे देशों की चुनौती का सामना करना पड़ रहा था। इसलिए उसने अपने वर्तमान साम्राज्य पर अपने नियंत्रण को मजबूत बनाने और उसे और फैलाने के लिए जोरदार कोशिशें आरंभ कर दीं।

इसके अलावा 1850 के बाद रेलवे में और भारत सरकार को दिए गए ऋणों के रूप में बहुत अधिक ब्रिटिश पूंजी लगी थी। कुछ पूंजी चाय के बागानों,

1929 में वाइसराय के साथ राजे महाराजे

कोयला खदानों, जूट मिलों, जहाजरानी, व्यापार और बैंकिंग में भी लगी थी। इस ब्रिटिश पूंजी को आर्थिक और राजनीतिक खतरों से सुरक्षित बनाने के लिए आवश्यक था कि भारत में ब्रिटिश शासन को और ठोस बनाया जाए। परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी नियंत्रण को और भी सख्त बनाया गया, और साम्राज्यवादी विचारधारा भी और मजबूती से स्थापित हुई जिसे लिटन, डफरिन, लांसडाउन, एल्गिन और सबसे बढ़कर कर्जन के वायसराय-काल की प्रतिक्रियावादी नीतियों में भी देखा जा सकता था।

प्रशासन

1858 में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित एक कानून ने शासन का अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर ब्रिटिश सम्राट को दे दिया। इसके पहले भारत पर सत्ता कंपनी के डायरेक्टरों और बोर्ड ऑफ कंट्रोल की थी, पर अब शासन का भार एक ब्रिटिश सरकार के मंत्री जिसे भारत मंत्री अथवा सेक्रेटरी ऑफ स्टेट कहा जाता था को दे दिया और उसकी सहायता के लिए एक कौंसिल नियुक्त कर दी गई। यह भारत सचिव ब्रिटिश कैबिनेट का सदस्य और इस प्रकार संसद के प्रति उत्तरदायी होता था। इस तरह भारत पर सत्ता अंततः संसद के ही हाथों में थी।

इस कानून के अनुसार भारत का शासन पहले की ही तरह एक गवर्नर-जनरल को चलाना था, हालांकि अब उसे वायसराय अर्थात् सम्राट के व्यक्तिगत प्रतिनिधि की पदवी दे दी गई। समय के साथ-साथ नीतियों और उनको लागू करने के मामले में वायसराय अधिकाधिक ब्रिटिश सरकार के अधीन होता गया। प्रशासन के तमाम छोटे-छोटे मामलों पर भी भारत सचिव का नियंत्रण होता था। इस तरह भारत के मामलों पर अंतिम और व्यापक नियंत्रण जिस अधिकारी का था, वह भारत से हज़ारों मील दूर लंदन में बैठा होता था। इस स्थिति में सरकार की नीतियों पर भारतीय जनमत का प्रभाव पहले से भी कम हो गया। दूसरी ओर ब्रिटिश उद्योगपतियों, व्यापारियों और बैंकरों का भारत सरकार पर प्रभाव और भी बढ़ गया। इस तरह भारतीय प्रशासन 1858 के पहले की तुलना में और भी प्रतिक्रियावादी हो गया क्योंकि अब उदारतावाद का दिखावा भी धीरे-धीरे बंद कर दिया गया।

भारत के लिए 1858 के कानून में व्यवस्था थी कि गवर्नर-जनरल के साथ एक एक्जिक्यूटिव कौंसिल (कार्यकारी परिषद) होगी जिसके सदस्य विभिन्न विभागों के प्रमुख और गवर्नर-जनरल के अधिकारिक सलाहकार होंगे। यही कौंसिल सारे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार करके बहुमत से निर्णय लेती थी, हालांकि गवर्नर-जनरल कौंसिल के किसी भी महत्त्वपूर्ण फैसले को रद्द कर सकता था।

1861 के इंडियन कौंसिल्स एक्ट में गवर्नर-जनरल की कौंसिल को कानून बनाने की गरज से और भी बड़ा बना दिया गया, और इसलिए उसे इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल नाम दिया गया। गवर्नर-जनरल को एक्जिक्यूटिव कौंसिल में 6 से 12 सदस्य तक बढ़ाने का अधिकार था, जिनमें से कम से कम आधे का गैर-अधिकारी होना अनिवार्य था। ये भारतीय भी हो सकते थे और अंग्रेज भी। इंपीरियल लेजिस्टेटिव कौंसिल को कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं थे, इसलिए उसे आरंभिक कोटि का या कमजोर संसद भी नहीं माना जा सकता। यह मात्र एक सलाहकार समिति थी जो सरकार की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार नहीं कर सकती थी, और वित्तीय प्रश्नों पर तो हरगिज नहीं कर सकती थी। बजट पर तो इसका कतई नियंत्रण नहीं था। यह प्रशासन के कामों पर विचार नहीं कर सकती थी और सदस्य उनके बारे में कोई सवाल नहीं कर सकते थे। दूसरे शब्दों में लेजिस्लेटिव कौंसिल का एक्जिक्यूटिव पर कोई नियंत्रण न था। इसके अलावा इसके द्वारा पारित कोई भी विधेयक गवर्नर-जनरल के अनुमोदन

के बिना कानून नहीं बन सकता था। सबसे बड़ी बात यह थी कि भारत सचिव इसके द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को रद्द कर सकता था। इस तरह लेजिस्लेटिव कौंसिल का एक मात्र महत्त्वपूर्ण काम यह था कि वह सरकारी कदमों पर हां करे और यह आभास कराए कि ये सभी कदम एक संसदीय संस्था द्वारा बनाए गए कानून हैं। सिद्धांततः भारतीय दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने के लिए कुछ गैर-अधिकारी भारतीय सदस्य भी कौंसिल में शामिल कर लिए गए थे। लेकन लेजिस्लेटिव कौंसिल में भारतीय सदस्यों की संख्या बहुत कम थी, और वे भारतीय जनता द्वारा चुने हुए न होकर गवर्नर-जनरल द्वारा नामजद किए जाते थे फिर गवर्नर-जनरल भी हमेशा ही इसके लिए राजा-महाराजाओं और उनके मंत्रियों, बड़े जमींदारों, बड़े व्यापारियों या सेवानिवृत वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों का ही चयन करता था। वे भारतीय जनता या विकसित हो रही राष्ट्रवादी भावना का कोई प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। भारत की सरकार अभी भी 1858 के पहले की तरह विदेशी और निरंकुश सरकार बनी रही। फिर यह सब आकस्मिक भी न था बल्कि सोची-समझी नीति का अंग था। वर्ष 1861 में संसद में इंडियन कौंसिल बिल पेश करते हुए भारत सचिव चार्ल्स वुड ने कहा थाः "सारे अनुभव हमें यही बतलाते हैं कि जब एक विजेता जाति दूसरी जाति पर शासन करती है तो एक निरंकुश सरकार ही शासन का सबसे नरम रूप हो सकती है।"

प्रांतीय प्रशासन : शासन की सुविधा के लिए अंग्रेजों ने भारत को प्रांतों में बांट रखा था। इनमें से बंगाल, मद्रास और बंबई प्रांतों को प्रेसिडेंसी कहा जाता था। इन प्रेसिडेंसियों को प्रशासन एक गवर्नर तीन-सदस्यों वाली एक कौंसिल की सहायता से चलाता था, और उनकी नियुक्ति सम्राट करता था। प्रेसिडेंसियों की सरकारों को दूसरी प्रांतीय सरकारों से अधिक अधिकार और शक्तियां प्राप्त थीं। इन दूसरे प्रांतों का शासन गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त लेफ्टिनेंट गवर्नर और चीफ कमिश्नर चलाते थे।

वर्ष 1833 के पहले प्रांतीय सरकारों को बहुत स्वायत्तता प्राप्त थी। पर 1833 में उनसे कानून बनाने के अधिकार ले लिए गए थे और उनके व्यय पर सख्त केंद्रीय नियंत्रण लगा दिया गया था। पर अनुभवों से जल्द ही पता चल गया कि भारत जैसे विशाल देश का शासन सख्त केंद्रीकरण के सिद्धांत पर कुशलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकता।

अति-केंद्रीकरण की यह बुराई वित्त के मामलों में सबसे अधिक स्पष्ट थी। पूरे देश से और अनेक स्रोतों से राजस्व जमा होकर केंद्र में पहुंचता था और तब केंद्र उसे प्रांतीय सरकारों में बांटता था। प्रांतों के व्यय की छोटी-छोटी बातों पर भी केंद्र सरकार का सख्त नियंत्रण होता था। लेकिन यह प्रणाली व्यवहार में बहुत बर्बादी का कारण सिद्ध हुई। प्रांतीय सरकारों द्वारा राजस्व के कुशलतापूर्वक संग्रह पर निगरानी रखना या उनके खर्च पर पर्याप्त नियंत्रण रखना केंद्रीय सरकार के लिए संभव न था। इसलिए अधिकारियों ने सार्वजनिक वित्त का विकेंद्रीकरण करने का फैसला किया।

प्रांतीय वित्त को केंद्रीय वित्त से अलग करने की दिशा में पहला कदम 1870 में लार्ड मेयो ने उठाया। पुलिस, जेल, शिक्षा, चिकित्सा सेवाओं और सड़कों जैसी कुछ सेवाओं के प्रशासन के लिए प्रांतीय सरकारों को निर्धारित रकम दे दी जाती थी और उनको इस धन का अपनी इच्छानुसार उपयोग करने को कहा जाता था। वर्ष 1877 में लार्ड मेयो की इस योजना को लार्ड लिटन ने और फैलाया। उसने प्रांतीय सरकारों को भू-राजस्व; उत्पादन शुल्क; सामान्य प्रशासन और कानून तथा न्याय-व्यवस्था जैसी कुछ और सेवाएं भी सौंप दीं। इसके अतिरिक्त व्यय का भार उठाने के लिए प्रांतीय सरकार को उस प्रांत विशेष से स्टैंप, उत्पादन कर, तथा आय कर जैसे कुछ स्त्रोतों से प्राप्त आय का एक निश्चित भाग दिया जाने लगा। इस व्यवस्था में

1882 में और भी परिवर्तन किए गए। प्रांतों की निर्धारित धन देने की प्रणाली समाप्त कर दी गई, और उसके बजाए यह किया गया कि किसी प्रांत को कुछ स्त्रोतों से प्राप्त पूरी आय दे दी जाएगी और साथ ही अन्य स्त्रोतों से प्राप्त आय का एक निश्चित भाग दिया जाएगा। इस तरह राजस्व के सारे स्रोतों से प्राप्त आय का एक निश्चित भाग दिया जाएगा। इस तरह राजस्व के सारे स्रोतों को तीन भागों में बांट दिया गया— सामान्य, प्रांतीय, तथा वे जिनसे प्राप्त आय केंद्र और प्रांतों के बीच बंटनी थी।

ऊपर चर्चा किए गए वित्तीय विकेंद्रीकरण के विभिन्न कदमों का अर्थ यह नहीं था कि एक वास्तविक प्रांतीय स्वायत्तता का आरंभ हो गया था या प्रांतीय प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी होने लगी थी। इसके बजाए उनकी प्रकृति प्रशासकीय पुनर्गठन की थी जिसका उद्देश्य व्यय कम कराना और आय को बढ़ाना था। सिद्धांत और व्यवहार दोनों में केंद्र सरकार का बर्चस्व बना रहा और केंद्र का प्रांतीय सरकारों पर प्रभावी और व्यापक नियंत्रण जारी रहा। यह अपरिहार्य था क्योंकि केंद्रीय और प्रांतीय, दोनों ही सरकारें पूरी तरह भारत सचिव और ब्रिटिश सरकार के अधीन थीं।

स्थानीय संस्थाएं : वित्तीय कठिनाइयों के कारण सरकार ने प्रशासन का और भी विकेंद्रीकरण किया और नगरपालिकाओं तथा जिला परिषदों द्वारा स्थानीय शासन को प्रोत्साहित किया। औद्योगिक क्रांति ने 19वीं सदी में यूरोपीय अर्थव्यवस्था और समाज को धीरे-धीरे बदलकर रख दिया था। यूरोप के साथ भारत के बढ़ते संपर्कों तथा साम्राज्यवाद और आर्थिक शोषण की नई विधियों के कारण आवश्यक हो गया था कि अर्थव्यवस्था, सफाई-व्यवस्था और शिक्षा के क्षेत्र में यूरोप में हुई प्रगति को भारत में भी लागू किया जाए। इसके अलावा उभरता हुआ भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन भी नागरिक जीवन में आधुनिक सुधारों को लागू किए जाने की मांग कर रहा था। इस तरह जनता के लिए शिक्षा, सफाई व्यवस्था, जल की आपूर्ति, बेहतर सड़कों तथा अन्य नागरिक सुविधाओं की जरूरत अधिकाधिक महसूस की जा रही थी। सरकार अब इनको और अनदेखा नहीं कर सकती थी। लेकिन सेना और रेलवे पर हो रहे भारी खर्चों के कारण वित्त-व्यवस्था पहले ही डावांडोल हो रही थी। चूंकि गरीब जनता पर करों का बोझ पहले ही बहुत अधिक था और इसमें और बढ़ोतरी करने से सरकार के खिलाफ जन असंतोष बढ़ने का डर था, इसलिए सरकार नए कर लगाकर आय भी नहीं बढ़ा सकती थी। दूसरी तरफ सरकार ऊंचे वर्गों, खासकर ब्रिटिश नागरिक अधिकारियों, बागानों के मालिकों और व्यापारियों पर कर लगाना नहीं चाहती थी। पर अधिकारियों को लग रहा था कि अगर जनता को यह लगे कि उन पर लगे नए करों से प्राप्त आमदनी का इस्तेमाल उसी के कल्याण के लिए होना है, तो वह कर देने में नहीं हिचकिचाएगी। इसलिए निर्णय किया गया कि शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई और जल-आपूर्ति जैसे विषय स्थानीय संस्थाओं को दे दिए जाएं और वे स्थानीय कर लगाकर उनका खर्च निकालें। अनेक अंग्रेजों ने एक और आधार पर भी स्थानीय संस्थाओं की स्थापना के लिए जोर डाला। उनका मत था कि किसी न किसी रूप में प्रशासन से भारतीयों को जोड़ने से वे राजनीतिक रूप से असंतुष्ट नहीं होंगे। भारत में सत्ता पर अंग्रेजों के एकाधिकार को खतरे में डाले बिना भारतीयों को केवल स्थानीय संस्थाओं के स्तर पर ही जोड़ा जा सकता था।

सबसे पहले 1864 और 1868 के बीच स्थानीय संस्थाओं की स्थापना हुई। पर लगभग हर मामले में इनके सदस्य नामजद होते थे और इनका अध्यक्ष जिला मजिस्ट्रेट होता था। इसलिए ये संस्थाएं किसी भी तरह स्थानीय स्वशासन नहीं कही जा सकती थीं और प्रबुद्ध भारतीयों ने भी उन्हें ऐसा नहीं माना। वे इन्हें जनता से नए कर उगाहने का साधन मात्र समझते थे।

इस दिशा में बहुत हिचकते हुए एक अपर्याप्त कदम 1882 में लार्ड रिपन की सरकार ने उठाया। एक सरकारी प्रस्ताव में ग्रामीण और नगरीय स्थानीय संस्थाओं द्वारा, जिनके अधिकांश सदस्य गैर-अधिकारी हों, स्थानीय मामलों के प्रबंध की एक नीति निर्धारित की गई। जहां भी अधिकारियों को चुनाव-प्रणाली लागू करना संभव लगे वहां इन गैर-अधिकारी सदस्यों को जनता द्वारा चुने जाना था। इस प्रस्ताव में किसी स्थानीय संस्था के अध्यक्ष के रूप में किसी गैर-अधिकारी के चुनाव की छूट भी दी गई। लेकिन सभी जिला परिषदों और अनेक नगरपालिकाओं में चुने हुए सदस्य अल्प मत में होते थे। इसके अलावा वे बहुत थोड़े से मतदाताओं द्वारा चुने जाते थे, क्योंकि मत देने का अधिकार बहुत ही सीमित था। जिलों के अधिकारी ही जिला परिषदों के अध्यक्ष बने रहे, हालांकि धीरे-धीरे गैर-अधिकारी नगरपालिका समितियों के अध्यक्ष बनने लगे। सरकार ने स्थानीय संस्थाओं की गतिविधियों पर कड़ा नियंत्रण लगाने और उनको अपने विवेक के अनुसार निलंबित या भंग करने का अधिकार अपने हाथ में रखा। नतीजा यह हुआ कि कलकत्ता, मद्रास और बंबई के प्रेसिडेंसी नगरों को छोड़कर हर जगह स्थानीय संस्थाएं सरकारी विभाग बनकर रह गई, और स्थानीय स्वशासन के अच्छे उदाहरण न बन सकीं। तो भी राजनीतिक रूप से जागरूक भारतीयों ने रिपन के प्रस्ताव का स्वागत किया और इन स्थानीय संस्थाओं में सक्रिय रूप से इस आशा के साथ भाग लिया कि समय आने पर उनको स्थानीय स्वशासन के कारगर साधन के रूप में परिवर्तित किया जा सकेगा।

सेना में परिवर्तन

वर्ष 1858 के बाद सेना का सावधानी के साथ पुनर्गठन किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य एक और विद्रोह न होने देना था। शासकों ने देखा कि उनकी संगीनें ही उनके शासन का एकमात्र सुरक्षित आधार थीं। भारतीय सैनिकों की विद्रोह की क्षमता को अगर एकदम समाप्त न किया जा सके तो उसे यथासंभव कम करने के लिए अनेक कदम उठाए गए। पहली बात यह कि सेना पर यूरोपीय सैनिकों का वर्चस्व सावधानी के साथ सुनिश्चित किया गया। सेना में भारतीयों के मुकाबले यूरोपीयों का भाग बढ़ा दिया गया। बंगाल की सेना में अब यह अनुपात एक और दो का तथा मद्रास और बंबई की सेनाओं में दो और पांच का था। इसके लिए भौगोलिक और सैनिक महत्त्व के स्थानों पर यूरोपीय सेनाओं को तैनात किया गया। तोपखाने (और बाद में बीसवीं सदी में टैंकों तथा बख्तर-बंद गाड़ियों) जैसे सेना के महत्त्वपूर्ण विभाग पूरी तरह यूरोपीयों के हाथों में रखे गए। अधिकारी वर्ग से भारतीयों को बाहर रखने की पुरानी नीति का सख्ती से पालन किया जाने लगा। वर्ष 1914 तक कोई भी भारतीय कभी सूबेदार के पद से ऊपर नहीं उठ सका। दूसरे, सेना के भारतीय अंग का संगठन "संतुलन और जवाबी संतुलन" तथा "बांटो और राज करो" की नीति के आधार पर किया गया ताकि किसी ब्रिटिश-विरोधी विद्रोह के लिए एकजुट होने का उनको अवसर न मिल सके। सेना की भर्ती में जाति, क्षेत्र और धर्म के आधार पर भेदभाव किए जाने लगे। यह कहानी गढ़ी गई कि भारतीयों में कुछ "लड़ाकू" जातियां और कुछ "गैर-लड़ाकू" जातियां हैं। अवध, बिहार, मध्य भारत और दक्षिण भारत के सैनिकों ने ही आरंभ में अंग्रेजों की भारत-विजय में सहायता की थी, पर 1857 के विद्रोह में उनके भाग लेने के कारण उनको "गैर-लड़ाकू" घोषित कर दिया गया। अब बड़ी संख्या में सेना में उनको भर्ती करना बंद कर दिया गया। दूसरी ओर, विद्रोह को कुचलने में सहायता देने वाले पंजाबियों, गोरखों और पठानों को "लड़ाकू" जाति घोषित किया गया और उनको बड़ी संख्या में भर्ती किया जाने लगा। वर्ष 1875 तक ब्रिटिश भारत की सेना का आधा भाग पंजाबियों का था। साथ ही भारतीय रेजीमेंटों को तमाम जातियों और वर्गों का

मिश्रण बना दिया गया कि ये सभी एक-दूसरे को संतुलित करती रहें। सैनिकों की सांप्रदायिक, जातिगत, कबीलाई और क्षेत्रीय निष्ठाओं को प्रोत्साहित किया गया ताकि उनके बीच राष्ट्रवाद की भावना न फैल सके। उदाहरण के लिए, अनेक रेजीमेंटों में जातियों और संप्रदायों के आधार पर कंपनियां बनाई गईं। भारत सचिव चार्ल्स वुड ने 1861 में वायसराय कैनिंग को एक पत्र में लिखा :

> मैं एक ऐसी बड़ी सेना कभी देखना नहीं चाहता जिसकी भावनाएं और पूर्वाग्रह और संपर्क वैसे ही हों, जिसे अपनी शक्ति का भरोसा है और जो मिलकर विद्रोह करने को इतनी उत्सुक हो। अगर एक रेजीमेंट विद्रोह करे तो दूसरी रेजीमेंट को उससे इतना कटा हुआ देखना पसंद करूंगा कि वह उस पर गोली चलाने के लिए भी तैयार हो।

इस तरह भारतीय सेना शुद्ध रूप से भाड़े की सेना बनी रही। इसके अलावा उसे बाकी जनता के जीवन और विचारों से अलग रखने के सारे प्रयास किए गए। हर संभव उपाय द्वारा उसे राष्ट्रवादी विचारों से दूर रखा गया। समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और राष्ट्रवादी प्रकाशनों को सैनिकों तक नहीं पहुंचने दिया जाता था। लेकिन जैसा कि हम आगे देखेंगे, ऐसे सभी उपाय अंततः नाकाम रहे और भारतीय सेना के अंगों ने भारत के स्वाधीनता-संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय सेना आगे चलकर बहुत ही खर्चीली सैनिक शक्ति बन गई। वर्ष 1904 में भारतीय राजस्व का लगभग 52 प्रतिशत इस पर खर्च हो रहा था। इसका कारण यह था कि यह एक से अधिक उद्देश्य पूरे कर रही थी। उस समय सबसे और महत्त्वपूर्ण उपनिवेश होने के नाते भारत की रूसी, फ्रांसीसी और जर्मन साम्राज्यवादियों से लगातार रक्षा करनी पड़ती थी। इससे भारतीय सेना की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। दूसरे, भारतीय सैनिकों को केवल भारत की रक्षा ही नहीं करनी पड़ती थी। भारतीय सेना एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश सत्ता और शासन को फैलाने और मजबूत बनाने का प्रमुख साधन थी। अंतिम बात यह कि सेना का ब्रिटिश भाग कब्जा बनाए रखने वाली सेना का काम कर रहा था। देश पर ब्रिटिश अधिकार की आखिरी जमानत यहीं था। मगर इसका खर्च भारत के राजस्व से पूरा किया जाता था और यह भारत के लिए बहुत बड़ा बोझ था।

सार्वजनिक सेवाएं

हम ऊपर देख चुके हैं कि भारत सरकार पर भारतीयों का नियंत्रण नहीं के बराबर था। कानून बनाने या प्रशासन की नीतियां निर्धारित करने में उनकी कोई भूमिका नहीं रखी गई थी। साथ ही उन्हें नौकरशाही से अलग रखा जाता था जो इन नीतियों को लागू करती थी। प्रशासन में अधिकार और उत्तरदायित्व के सारे पदों पर इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य बैठे होते थे जिनकी भर्ती लंदन में होने वाली खुली वार्षिक प्रतियोगिता-परीक्षाओं के द्वारा की जाती थी। इन परीक्षाओं में भारतीय भी बैठ सकते थे। वर्ष 1863 में यह परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले पहले भारतीय सत्येंद्रनाथ ठाकुर थे जो रवींद्रनाथ ठाकुर के बड़े भाई थे। उसके बाद लगभग हर साल एक-दो भारतीय सिविल सर्विस के गौरवपूर्ण पदों पर पहुंचते रहे, मगर अंग्रेजों की अपेक्षा उनकी संख्या बहुत ही नगण्य थी। वास्तव में सिविल सर्विस के दरवाजे भारतीयों के लिए बंद ही रहे क्योंकि वे अनेक बाधाओं से ग्रस्त थे। यह परीक्षा अंग्रेजी के माध्यम से होती थी जो एक विदेशी भाषा थी। यह प्राचीन ग्रीक और लैटिन के ज्ञान पर आधारित थी जिसे इंग्लैंड में लंबे और खर्चीले अध्ययन के बाद ही प्राप्त किया जा सकता था। साथ ही सिविल सर्विस परीक्षा में बैठने की आयु जो 1859 में 23 वर्ष थी, 1878 में घटाकर 19 वर्ष कर दी गई। अगर 23 वर्ष के भारतीय युवक के लिए सिविल सर्विस प्रतियोगिता में सफल होना कठिन था तो 19 वर्ष के भारतीय

युवक के लिए यह असंभव ही था।

इसी तरह प्रशासन के दूसरे विभागों, जैसे पुलिस, सार्वजनिक निर्माण, चिकित्सा, डाक और तार, जंगल, इंजीनियरिंग, कस्टम और बाद में रेलवे में भी बड़े और अधिक वेतन पाने वाले पद ब्रिटिश नागरिकों के लिए सुरक्षित रखे जाते थे।

सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर यूरोपीयों का यह वर्चस्व आकस्मिक न था। भारत के शासकों का मत था कि भारत में ब्रिटिश शासन को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था। इस तरह 1893 में भारत सचिव लार्ड किंबरले ने यह व्यवस्था रखी कि "सिविल सर्विस के सदस्यों में यूरोपीयों की हमेशा एक पर्याप्त संख्या का होना अत्यंत आवश्यक है।" वायसराय लांसडाउन ने इस बात पर जोर दिया कि "अगर इस विशालकाय साम्राज्य को सुरक्षित रखना है तो इसकी सरकार का यूरोपीयों के हाथों में होना एक अनिवार्यता है।"

भारतीयों के दबाव में 1918 के बाद प्रशासकीय सेवाओं का धीरे-धीरे भारतीकरण किया गया। लेकिन नियंत्रण और अधिकार के पद फिर भी अंग्रेजों के हाथों में बने रहे। इसके अलावा लोगों को जल्द ही पता चल गया कि इन सेवाओं के भारतीकरण से उनके हाथों में राजनीतिक शक्ति तो आई ही नहीं है। इन सेवाओं में शामिल भारतीय ब्रिटिश शासन के एजेंट का काम करते थे और वफादारी के साथ ब्रिटेन के साम्राज्यवादी उद्देश्यों की पूर्ति करते थे।

रजवाड़ों के साथ संबंध

वर्ष 1857 के विद्रोह के कारण अंग्रेजों ने भारतीय रजवाड़ों के प्रति अपनी नीति बदल दी। वर्ष 1857 से पहले वे भारतीय राज्यों को हड़पने का कोई भी अवसर नहीं चूकते थे। यह नीति अब छोड़ दी गई। अनेक भारतीय शासक अंग्रेजों के वफादार ही नहीं रहे थे बल्कि विद्रोह को कुचलने में उनकी सक्रिय रूप से सहायता भी की थी। जैसा कि वायसराय कैनिंग ने कहा था, इन शासकों ने "तूफान में तरंगरोधकों" का काम किया था। उनकी वफादारी का इनाम अब इस घोषणा के रूप में दिया गया कि उनके उत्तराधिकारी गोद लेने के अधिकार को मान्यता दी जाएंगीं तथा भविष्य में उनके राज्यों का कभी भी अधिग्रहण नहीं किया जाएगा। इसके अलावा विद्रोह के अनुभव ने ब्रिटिश अधिकारियों को विश्वास दिला दिया था कि जनता के विरोध या विद्रोह की स्थिति में ये रजवाड़े उनके कारगर सहयोगी हो सकते हैं। वर्ष 1860 में कैनिंग ने लिखा था :

> बहुत पहले सर जान मालकोम ने यह बात कही थी कि अगर हम पूरे भारत को जिलों में बांट दें तो भी वास्तविकता ऐसी नहीं है कि हमारा साम्राज्य पचास वर्षों तक भी जारी रह सके। पर अगर हम बिना किसी राजनीतिक सत्ता दिए मात्र शाही उपकरणों के रूप में अनेक देशी रजवाड़ों को बनाए रखें तो भारत में हम तब तक बने रहेंगें जब तक कि समुद्र पर हमारा वर्चस्व बना रहेगा। इस मत की ठोस सच्चाई, में मुझे कोई संदेह नहीं है और हाल की घटनाओं के बाद इस मत पर ध्यान देना पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो गया है।

इसलिए रजवाड़ों को भारत में ब्रिटिश शासन के ठोस स्तंभ बनाकर रखने का निर्णय किया गया। जैसा कि ब्रिटिश इतिहासकार पी.ई. राबर्ट्स ने कहा है : "साम्राज्य के आधार के रूप में उनको बनाए रखना तब से ब्रिटिश नीति का एक सिद्धांत रहा है।"

फिर भी रजवाड़ों को बनाए रखना रजवाड़ों के प्रति ब्रिटिश नीति का केवल एक पक्ष है। ब्रिटिश अधिकारियों का उन पर पूर्ण नियंत्रण इस नीति का दूसरा पक्ष है। वर्ष 1857 के विद्रोह से पहले अंग्रेज़ व्यवहार में इन रजवाड़ों के आंतरिक मामलों में हमेशा दखल देते रहे थे, मगर फिर भी सिद्धांत रूप में उनको सहयोगी और स्वाधीन शक्ति माना जाता रहा था।

अब यह स्थिति एकदम बदल दी गई। अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए राजाओं को अब ब्रिटेन को सर्वोपरि शक्ति मानना पड़ता था। वर्ष 1876 में पूरे भारतीय उपमहाद्वीप पर ब्रिटेन की सत्ता पर जोर देने के लिए रानी विक्टोरिया ने भारत की साम्राज्ञी का पद भी संभाल लिया। बाद में लार्ड कर्जन ने भी यह बात स्पष्ट की कि राजा-महाराजा अपने राज्यों का शासन केवल ब्रिटिश सम्राट के एजेंटों के रूप में करेंगे। राजाओं ने इस अधीनता की स्थिति को भी स्वीकार कर लिया और स्वेच्छापूर्वक साम्राज्य के पिछलग्गू बन गए क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें अपने राज्यों के शासक बने रहने का आश्वासन दिया गया था।

अंग्रेजों ने सर्वोपरि शक्ति के रूप में रजवाड़ों के आंतरिक शासन पर निगरानी के अधिकार का भी दावा किया। वे रेजिडेंटों के जरिये रजवाड़ों के रोजमर्रा के प्रशासन में केवल दखल ही नहीं देते रहे, बल्कि मंत्रियों और दूसरे बड़े अधिकारियों को नियुक्त करने और हटाने के अधिकार पर भी उन्होंने जोर दिया। कभी-कभी शासकों को ही हटा दिया जाता था या उन्हें उनकी शक्तियों से वंचित कर दिया जाता था। इस तरह के हस्तक्षेप का एक कारण अंग्रेजों की इच्छा थी कि इन राज्यों में एक आधुनिक प्रशासन स्थापित किया जाए ताकि ब्रिटिश भारत से उनका पूर्ण एकीकरण हो सके। इसके अलावा अखिल भारतीय पैमाने पर रेलों, डाक-तार व्यवस्था, मुद्रा-प्रणाली और एक सांझे आर्थिक जीवन के विकास ने भी इस एकीकरण को और उसके फलस्वरूप हस्तक्षेप को और बढ़ाया। हस्तक्षेप का एक दूसरा कारण अनेक राज्यों में लोकतांत्रिक-जन आंदोलनों और राष्ट्रवादी आंदोलनों का उभरना था। एक ओर तो ब्रिटिश अधिकारियों ने राजाओं को इन आंदोलनों को दबाने में सहायता दी, और दूसरी ओर उन्होंने इन राज्यों में प्रशासन के गंभीर दुरूपयोगों को समाप्त करने के प्रयास भी किए।

प्रशासन संबंधी नीतियां

भारत के प्रति अंग्रेजी का दृष्टिकोण और फलस्वरूप में उनकी नीतियां 1857 के विद्रोह के बाद और भी बदतर हो गई। वर्ष 1857 से पहले उन्होंने, निरुत्साह से और झिझक-झिझक कर ही सही, भारत का आधुनिकीकरण करने की कोशिशें की थीं। पर अब वे समझ-बूझकर प्रतिक्रियावादी नीतियां अपनाने लगे। जैसा कि इतिहासकार पर्सीवल स्पियर ने लिखा है: "प्रगति के साथ भारत की सरकार का प्रेम भाव अब समाप्त हो गया।"

हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रशासन से भारतीयों को प्रभावी ढंग से भाग लेने से रोकने के लिए किस प्रकार भारत और इंग्लैंड में प्रशासनिक संस्थाओं, भारतीय सेवा और सिविल सर्विस को पुनर्गठित किया गया था। पहले कम से कम यही कहा जाता था कि अंग्रेज़ भारतीयों को स्वशासन के लिए "प्रशिक्षित" और तैयार कर रहे हैं और अंततः राजनीतिक सत्ता भारतीयों को सौंप देंगे। पर अब यह बात खुलकर कही जाने लगी कि अपने सामाजिक और सांस्कृतिक दोषों के कारण भारतीय अपना शासन चला सकने में अयोग्य हैं और उन पर अंग्रेजों का शासन अनिश्चित काल तक बना रहना चाहिए। यह प्रतिक्रियावादी नीति अनेक क्षेत्रों में दिखाई पड़ी।

बांटो और राज करो : भारतीय शासकों की फूट का लाभ उठाकर और उन्हें एक-दूसरे से लड़ाकर अंग्रेजों ने भारत पर विजय प्राप्त की थी। वर्ष 1858 के बाद उन्होंने जनता के खिलाफ राजाओं को, एक प्रांत के खिलाफ दूसरे प्रांत को, एक जाति के खिलाफ दूसरी जाति को, एक समूह के खिलाफ दूसरे समूह को, और सबसे अधिक, मुसलमानों के खिलाफ हिंदुओं को खड़ा करके बांटो और राज करो की इस नीति को जारी रखने का फैसला किया।

वर्ष 1857 के विद्रोह में हिंदुओं और मुसलमानों

की जो एकता देखने को मिली थी, उसमें विदेशी शासक दरार डाल चुके थे। वे उभरते राष्ट्र वादी आंदोलन को कमजोर बनाने के लिए इस एकता को तोड़ने पर आमादा थे। सच यह है कि उन्होंने इसका कोई अवसर नहीं छोड़ा। विद्रोह के फौरन बाद उन्होंने मुसलमानों का दमन करना, बड़े पैमाने पर उनकी जमीन-जायदाद जब्त करना आरंभ कर दिया, और हिंदुओं को अपना तरफदार घोषित किया। वर्ष 1870 के बाद यह नीति उलट दी गई, और उच्च तथा मध्य वर्गीय मुसलमानों को राष्ट्रवादी आंदोलन के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश की गई।

शिक्षित भारतीयों को धार्मिक आधार पर बांटने के लिए सरकारी सेवाओं में सरकार ने बहुत चालाकी के साथ लोभ का इस्तेमाल किया। औद्योगिक-वाणिज्यिक पिछड़ेपन के कारण तथा सामाजिक सेवाओं के लगभग पूर्ण अभाव के कारण शिक्षित भारतीय तकरीबन पूरी तरह सरकारी सेवा पर निर्भर थे। उनके सामने दूसरे उपाय नहीं के बराबर थे। इस कारण उनके बीच सरकारी पदों के लिए तीखी प्रतियोगिता आरंभ हो गई। सरकार ने इस प्रतियोगिता का लाभ उठाकर प्रांतीय और सांप्रदायिक विद्वेष और घृणा को भड़काया। उसने वफादारी के बदले सांप्रदायिक आधार पर सरकारी कृपा का आश्वासन दिया, और इस प्रकार शिक्षित मुसलमानों को शिक्षित हिंदुओं के खिलाफ उभारा।

शिक्षित भारतीयों के प्रति शत्रुता : वर्ष 1833 के बाद भारत सरकार ने आधुनिक शिक्षा को जमकर प्रोत्साहन दिया था। वर्ष 1857 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे और उसके बाद उच्च शिक्षा तेज़ी से फैली थी। वर्ष 1857 के विद्रोह में शिक्षित भारतीयों के भाग लेने से इनकार करने पर अनेक अंग्रेज़ अधिकारियों ने उनकी प्रशंसा की थी। परंतु शिक्षित भारतीयों के प्रति यह अनुकूल सरकारी दृष्टिकोण जल्द ही उलट गया। कारण कि उनमें से अनेक लोग हाल में प्राप्त आधुनिक ज्ञान का उपयोग करके ब्रिटिश शासन के साम्राज्यवादी चरित्र का विश्लेषण करने लगे थे और उन्होंने प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी की मांगें सामने रखी थीं। इसलिए जब वे जनता के बीच राष्ट्रवादी आंदोलन का संगठन करने लगे और उन्होंने 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की तो अधिकारी उच्च शिक्षा के पक्के दुश्मन बन बैठे। अब सरकारी अधिकारी उच्च शिक्षा को फैलने से रोकने के लिए सक्रियतापूर्वक उपाय करने लगे। वे शिक्षित भारतीयों पर अब नाक-भौं सिकोड़ते तथा उनको 'बाबू' कहकर उनका मज़ाक उड़ाते।

इस तरह जो भारतीय आधुनिक पश्चिमी ज्ञान प्राप्त कर चुके थे तथा आधुनिकता के आधार पर प्रगति के पक्ष में थे, अंग्रेज़ उनके खिलाफ हो गए। ऐसी प्रगति भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बुनियादी हितों और नीतियों के खिलाफ थी। शिक्षित भारतीयों और उच्च शिक्षा के प्रति इस सरकारी विरोध से पता चलता है कि भारत में ब्रिटिश शासन में प्रगति की जो भी संभावनाएं थीं, वे इस समय तक समाप्त हो चुकी थीं।

जमींदारों के प्रति दृष्टिकोण : प्रगतिशील तथा शिक्षित भारतीयों के प्रति शत्रुता की भावना रखने के साथ ही अंग्रेजों ने अब भारतीयों के सबसे प्रतिक्रियावादी वर्गों, जैसे राजाओं, जमींदारों और भूस्वामियों की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया। हम ऊपर पहले ही दिखा चुके हैं कि सरकार ने अब राजाओं के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल दिया था और उभरते हुए जन आंदोलनों और राष्ट्रवादी आंदोलनों के खिलाफ उनका उपयोग करने का प्रयास कर रही थी। इसी ढंग से जमींदारों और भूस्वामियों को भी खुश किया गया। उदाहरण के लिए, अवध के अधिकांश ताल्लुकदारों की जमीनें उन्हें लौटा

दी गई। जमींदारों और भूस्वामियों को भारतीय जनता के परंपरागत और 'स्वाभाविक' नेता कहकर उछाला गया। उनके हितों और विशेषाधिकारों की रक्षा की जाने लगी। किसानों के हितों के खिलाफ जमीन पर उनके अधिकार को सुरक्षा दी गई और राष्ट्रवादी रूझान वाले शिक्षित वर्ग के खिलाफ उनका इस्तेमाल किया जाने लगा। वर्ष 1876 में वायसराय लार्ड लिटन ने खुलकर घोषणा की कि "अब आगे इंग्लैंड के सम्राट एक शक्तिशाली देशी अभिजात वर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं, सहानुभूतियों और हितों से संबद्ध समझा जाना चाहिए। बदले में जमींदारों और भूस्वामियों ने यह स्वीकार किया कि समाज में उनकी स्थिति तभी तक है जब तक ब्रिटिश शासन बना रहेगा," और इस तरह वे इसके पक्के समर्थक हो गए।

समाज-सुधार के प्रति दृष्टिकोण : रूढ़िवादी वर्गों से सहयोग की इस नीति के अनुसार अंग्रेजों ने समाज-सुधारकों की सहायता करने की पुरानी नीति छोड़ दी। उनका मत था कि सती-प्रथा का उन्मूलन, विधवा-पुनर्विवाह की आज्ञा, आदि समाज-सुधार के कदम 1857 के विद्रोह के एक प्रमुख कारण थे। इसलिए धीरे-धीरे उन्होंने रूढ़िवादियों का पक्ष लेना आरंभ कर दिया और समाज-सुधारकों का समर्थन बंद कर दिया।

अपनी पुस्तक "भारत : एक खोज" में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है : "भारत के प्रतिक्रियावादियों के साथ इस स्वाभाविक गठजोड़ के कारण ब्रिटिश शासन अनेक बुरी प्रथाओं और कर्मकांडों का रक्षक तथा समर्थक बन गया, हालांकि वह अन्यथा इनकी निंदा करता था।" वास्तव में अंग्रेज़ इस मामले में सांप-छंछुदर वाली स्थिति में थे। अगर वे समाज-सुधार का समर्थन करें और इसके लिए कानून बनाएं तो रूढ़िवादी भारतीय उनका विरोध करेंगे और यह कहेंगे कि एक विदेशी सरकार को भारतीयों के अंदरूनी सामाजिक मामलों में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरी ओर, अगर वे ऐसे कानून न बनाएं तो सामाजिक बुराइयों के बने रहने में सहायक होंगे और सामाजिक दृष्टि से प्रगतिशील भारतीय उनकी निंदा करेंगे। फिर भी यह ध्यान रहे कि अंग्रेज़ सामाजिक प्रश्नों पर हमेशा उदासीन ही नहीं रहे। यथास्थिति को बनाए रखकर उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक बुराइयों को सुरक्षित ही रखा। इसके अलावा, राजनीतिक लाभ के लिए जातिवाद और सांप्रदायवाद को प्रोत्साहित करके उन्होंने सामाजिक प्रतिक्रिया को भी जमकर प्रोत्साहन दिया।

सामाजिक सेवाओं का अत्यधिक पिछड़ापन : 19वीं सदी में यूरोप में शिक्षा, सफाई और जन स्वास्थ्य, जल-आपूर्ति और ग्रामीण सड़कों जैसी सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई थी, पर भारत में ये सेवाएं अत्याधिक पिछड़ी बनी रहीं। भारत सरकार अपनी भारी आमदनी का अधिकांश भाग सेना, युद्धों और प्रशासकीय सेवाओं पर खर्च कर रही थी, और सामाजिक सेवाएं पैसे के लिए तरस रही थी। उदाहरण के लिए, 1886 में भारत सरकार को कुल 47 करोड़ रूपयों का राजस्व प्राप्त हुआ। इसमें लगभग 19.41 करोड़ सेना पर और 17 करोड़ प्रशासन पर खर्च किए गए, मगर शिक्षा, चिकित्सा और जन-स्वास्थ्य पर 2 करोड़ रूपये से भी कम और सिंचाई पर केवल 65 लाख खर्च किए गए। सफाई, जल-आपूर्ति और जन-स्वास्थ्य पर झिझक-झिझककर जो थोड़े-बहुत कदम उठाए गए, वे भी आमतौर पर नगरों तक और उनमें भी तथाकथित सिविल लाइनों अर्थात् नगरों के ब्रिटिश या आधुनिक भाग तक सीमित रहे। ये सेवाएं मुख्यतः यूरोपीय तथा नगरों के यूरोपीय भागों में रहने वाले थोड़े से उच्चवर्गीय भारतीयों के लिए ही थीं।

श्रम संबंधी कानून : 19वीं सदी में आधुनिक कारखानों और बागानों के मजदूरों की हालत बहुत ही दयनीय

थी। प्रतिदिन उनको 12 से 16 घंटों तक काम करना पड़ता और आराम के लिए सप्ताह में एक दिन की छुट्टी भी न मिलती। स्त्रियों और बच्चों को भी पुरुषों जितना ही काम करना पड़ता था। मजदूरी बहुत कम, प्रति माह 4 से 20 रूपये तक थी। कारखाने लोगों से भरे होते, उनमें प्रकाश और हवा की कमी होती और वे बेहद गंदे होते। मशीनों पर काम करना खतरे से भरा था और आए दिन दुर्घटनाएं होती रहती थीं।

यूं तो भारत सरकार पूंजीपतियों की समर्थक थी, फिर भी उसे आधुनिक कारखानों की बुरी स्थिति के प्रभावों को कम करने के लिए आधे मन से कुछ कदम उठाने पड़े जो एकदम अपर्याप्त थे। कई कारखानों के मालिक अनेक भारतीय भी थे। इस बारे में सरकार मानवीय भावनाओं से अंशतः ही प्रेरित हुई। ब्रिटेन के उद्योगपति फैक्टरी कानून बनाने के लिए सरकार पर लगातार दबाव डाल रहे थे। उन्हें डर था कि भारत में मजदूरी कम होने के कारण भारतीय उद्योगपति भारतीय बाजार में उन्हें जल्द ही प्रतियोगिता में पीट देंगे। पहला इंडियन फैक्टरी एक्ट 1881 में बनाया गया। यह कानून मुख्यतः बाल-श्रम से संबंधित था। इसमें कहा गया कि 7 वर्ष से कम के बच्चों को कारखानों में नहीं लगाया जाएगा, 7 से 12 वर्ष तक के बच्चों से प्रतिदिन 9 घंटे से अधिक काम नहीं लिया जाएगा और बच्चों को महीने में चार छुट्टियां भी मिलेंगी। इस कानून में खतरनाक मशीनों को अच्छी तरह अलग-थलग रखने की व्यवस्था भी थी। दूसरा इंडियन फैक्टरीज़ एक्ट 1891 में बनाया गया। इसमें सभी मजदूरों के लिए साप्ताहिक छुट्टी की व्यवस्था थी। स्त्रियों के लिए प्रतिदिन काम के 11 घंटे निश्चित किए गए तथा बच्चों के लिए काम का समय घटाकर 7 घंटे कर दिया गया। मगर पुरुषों के काम के घंटों के लिए अभी भी कोई सीमा नहीं तय की गई।

चाय और काफी के जिन बागानों के मालिक अंग्रेज़ थे उन पर इन दोनों में से कोई भी कानून लागू नहीं किया गया उल्टे विदेशी बागान-मालिकों को मजदूरों का अत्याधिक निर्मम शोषण करने में सरकार ने हर तरह की सहायता दी। अधिकांश चाय बागान असम में स्थित थे जिसकी आबादी बहुत कम थी जहां जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकर थी। इसलिए बागानों पर काम करने के लिए बाहर से मजदूर लाने पड़ते थे। मगर बाहरी मजदूरों को बागानों के मालिक अच्छा वेतन देकर नहीं लाते थे। इसके बजाए धोखा-धड़ी करके और बलपूर्वक उन्हें भर्ती किया जाता और बागानों पर उन्हें लगभग गुलामों की तरह रखा जाता। भारत सरकार ने इन बागान मालिकों की पूरी सहायता की तथा उनकी सहायता के लिए 1863, 1865, 1870, 1873 और 1882 में दंड-कानून बनाए। कोई मजदूर किसी बाग पर जाकर काम करने के समझौते पर दस्तखत करने के बाद काम करने से इंकार नहीं कर सकता था। मजदूर द्वारा समझौते का कोई भी उल्लंघन एक दंडनीय अपराध था। बाग के मालिक को उसे गिरफ्तार करने तक का अधिकार था।

फिर भी, उभरते हुए ट्रेड यूनियन आंदोलन के दबाव में 20वीं सदी में कुछ बेहतर श्रम कानून बने। तो भी भारतीय मजदूर वर्ग की हालत अत्यंत दयनीय बनी रही। औसत मजदूर को पूरा भोजन-वस्त्र भी मुस्किल से मिलता था। ब्रिटिश शासन में भारतीय मजदूरों की हालत का वर्णन जर्मनी के प्रसिद्ध आर्थिक इतिहासकार प्रोफेसर युर्गेन कुत्सींस्की ने 1938 में इन शब्दों में किया था : "आधा पेट खाकर रहने वाला, जानवरों की तरह प्रकाश, हवा और पानी से रहित घरों में रहने वाला भारतीय औद्योगिक मजदूर औद्योगिक पूंजीवाद की पूरी दुनिया में सबसे अधिक शोषित मजदूरों में से है।"

प्रेस पर प्रतिबंध : भारत में छापाखाने की शुरुआत अंग्रेजों ने की थी और इस तरह एक आधुनिक प्रेस की

बुनियाद उन्होंने डाली थी। शिक्षित भारतीयों ने जल्द ही समझ लिया कि जनमत को शिक्षित करने तथा आलोचना और निंदा के द्वारा सरकार की नीतियों को प्रभावित करने में प्रेस की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। समाचार-पत्र आरंभ करने तथा उन्हें एक सशक्त राजनीतिक साधन बनाने में राममोहन राय, विद्यासागर, दादाभाई नौरोजी, जस्टिस रानाडे, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, लोकमान्य तिलक, जी. सुब्रमन्य एयर, सी. करुनोकर मेनन, मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, बिपिनचंद्र पाल और दूसरे भारतीयों ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रेस धीरे-धीरे राष्ट्रवादी आंदोलन का एक प्रमुख अस्त्र बन गया।

वर्ष 1835 में चार्ल्स मेटकाफ ने भारतीय प्रेस को प्रतिबंधों से मुक्त कर दिया था। इस कदम का शिक्षित भारतीयों ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया था। लेकिन राष्ट्रवादी धीरे-धीरे प्रेस का इस्तेमाल जनता में राष्ट्रवादी चेतना जगाने के लिए और सरकार की प्रतिक्रियावादी नीतियों की कड़ी आलोचना करने के लिए करने लगे। इससे अधिकारी भारतीय प्रेस के विरोधी हो गए और उसकी आजादी को कम करने का उन्होंने फैसला किया। इसके लिए 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट बनाया गया। इस कानून ने भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों की आजादी पर कड़ी बंदिशें लगाई। भारतीय राष्ट्रवादी जनमत तब तक जागरूक हो चुका था और उसने इस कानून के बनाए जाने का जोरदार विरोध किया। इस विरोध का तात्कालिक प्रभाव पड़ा और इस कानून को 1882 में रद्द कर दिया गया। इसके बाद लगभग 25 वर्षों तक भारतीय प्रेस को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त रही। लेकिन 1905 के बाद जुझारु स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के 1908 और 1910 में कड़े प्रेस कानून फिर बनाए गए।

जातीय शत्रुता

भारतीयों पर हुकूमत बनाए रखने के लिए उनसे सामाजिक दूरी बनाए रखना आवश्यक है, यह मानकर अंग्रेज़ हमेशा भारतीयों से कटे-कटे रहे। वे स्वयं को जातीय दृष्टि से श्रेष्ठ भी मानते थे। वर्ष 1857 के विद्रोह ने तथा विद्रोह के दौरान दोनों पक्षों द्वारा किए गए अत्याचारों ने भारतीयों और अंग्रेजों के बीच की खाई को और चौड़ा कर दिया। अब अंग्रेज़ खुलकर जातीय श्रेष्ठता के सिद्धांत का प्रचार करने और जातीय दंभ दिखाने लगे। "केवल यूरोपीयों के लिए" आरक्षित रेलों के डिब्बे, रेलवे स्टेशनों के प्रतीक्षालय, पार्क, होटल, स्विमिंग पूल, क्लब आदि इस नस्लवाद के स्पष्ट उदाहरण थे। इससे भारतीय स्वयं को अपमानित महसूस करते। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में:

> "हम भारतीयों को नस्लवाद के सभी रूपों का ज्ञान ब्रिटिश शासन के आरंभ-काल से ही रहा है। इस शासन की पूरी विचारधारा भद्रजन और स्वामी जाति की रही है, और सरकार का पूरा ढांचा इसी विचारधारा पर आधारित रहा है; बल्कि स्वामी जाति का विचार साम्राज्यवाद में ही निहित है। इस बारे में कोई दुराव-छिपाव नहीं था तथा शक्ति संपन्न लोग खुलकर इसकी घोषणा करते थे। शब्दों से भी कहीं अधिक प्रभावी यह व्यवहार था जो इन शब्दों के साथ जुड़ा होता था और पीढ़ी-दर-पीढ़ी, साल-दर-साल एक राष्ट्र के रूप में भारत को और व्यक्तिगत रूप से भारतीयों को अपमान, घृणा और अपमानजनक व्यवहार का शिकार बनाया जाता रहा। हमसे कहा जाता कि अंग्रेज एक शासक जाति हैं और उन्हें हम पर शासन करने तथा हमें बंधन में रखने का ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है, और अगर हम विरोध करते तो हमें 'शासक जाति के सिंह-समान गुणों' की याद दिला दी जाती थी।"

विदेश नीति

ब्रिटिश शासन में पड़ोसियों के साथ भारत के संबंध

एक नए आधार पर विकसित हुए। इसके दो कारण थे। संचार के आधुनिक साधनों के विकास तथा देश के राजनीतिक और प्रशासकीय सुदृढ़ीकरण ने भारत सरकार को प्रेरित किया कि वह देश की प्राकृतिक, भौगोलिक सीमाओं तक अपना विस्तार करे। यह सुरक्षा और आंतरिक दृढ़ता, दोनों के लिए आवश्यक था। इसके फलस्वरूप सीमाओं पर अनिवार्य रूप से कुछ टकराव हुए। दुर्भाग्य से भारत सरकार प्राकृतिक और परंपरागत सीमाओं के बाहर भी कभी-कभी चली जाती थी। दूसरा और नया कारण भारत सरकार का विदेशी चरित्र था। एक स्वतंत्र देश की विदेश नीति विदेशियों द्वारा शासित किसी देश की विदेश नीति से मूलतः भिन्न होती है। एक स्वतंत्र देश की विदेश नीति उसकी जनता की आवश्यकताओं और हितों पर आधारित होती है। जबकि एक पराधीन देश की विदेश नीति शासक देश के हितों की पूर्ति करती है। भारत के मामले में सरकार ने जिस विदेश नीति को अपनाया उसका संचालन लंदन में बैठी ब्रिटिश सरकार करती थी। एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश सरकार के दो प्रमुख लक्ष्य थे अपने बहुमूल्य भारतीय साम्राज्य की रक्षा करना और एशिया तथा अफ्रीका में ब्रिटेन के व्यापार और अन्य आर्थिक हितों को आगे बढ़ाना। इन दो लक्ष्यों के कारण अंग्रेजों ने भारत की प्राकृतिक सीमाओं से बाहर भी अपना प्रसार किया और नए इलाके जीते। इसके अलावा, इन लक्ष्यों के कारण ब्रिटिश सरकार का यूरोप के दूसरे साम्राज्यवादी राष्ट्रों से टकराव भी हुआ क्योंकि ये राष्ट्र भी एशिया और अफ्रीका में अपने इलाके बढ़ाना और व्यापार फैलाना चाहते थे।

भारतीय साम्राज्य की रक्षा करने, ब्रिटेन के आर्थिक हितों को आगे बढ़ाने तथा दूसरी यूरोपीय शक्तियों को भारत से दूर रखने की धुन में भारत की ब्रिटिश सरकार ने अक्सर भारत के पड़ोसी देशों पर आक्रमण किए। दूसरे शब्दों में ब्रिटिश शासन के दिनों में पड़ोसियों के साथ भारत के संबंध अंततः ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आवश्यकताओं से निर्धारित होते थे।

लेकिन भारत की विदेश नीति ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आवश्यकता पूरी तो करती थी, पर उसे लागू करने का खर्च भारत को बरदाश्त करना पड़ता था। ब्रिटिश हितों की पूर्ति के लिए भारत को अपने पड़ोसियों के साथ अनेक युद्ध करने पड़े, भारतीय सैनिकों को अपना खून बहाना पड़ा, और उसके भारी खर्च पूरे करने के लिए भारतीयों को कर चुकाने पड़ते थे।

नेपाल के साथ युद्ध (1814) : भारतीय साम्राज्य को उसकी प्राकृतिक भौगोलिक सीमा तक फैलाने की अंग्रेजों की धुन के साथ सबसे पहले उनका उत्तर में स्थित नेपाल से टकराव हुआ। अक्तूबर 1814 में दोनों देशों की सीमा पुलिस के बीच झड़प हुई जिससे खुला युद्ध आरंभ हो गया। सैनिक शक्ति, धन और सामग्री, सभी दृष्टियों से अंग्रेज़ नेपालियों से श्रेष्ठ थे। अंत में नेपाल सरकार को ब्रिटेन की शर्तों पर शांति की बातचीत करनी पड़ी। उसे अपने यहां एक ब्रिटिश रेजिडेंट रखना पड़ा। उसे गढ़वाल तथा कुमाऊं के जिले छोड़ने पड़े तथा तराई के क्षेत्रों पर भी अपना दावा त्यागना पड़ा। उसे सिक्किम से भी हट जाना पड़ा। इस समझौते से अंग्रेजों को अनेक लाभ हुए। उनका भारतीय साम्राज्य अब हिमालय तक फैल गया। मध्य एशिया के साथ व्यापार में उन्हें अब अधिक सुविधा हो गई। उन्हें हिल-स्टेशन बनाने के लिए शिमला, मसूरी और नैनीताल जैसे महत्त्वपूर्ण स्थान भी मिल गए। इसके अलावा भारी संख्या में ब्रिटिश भारत की सेना में शामिल होकर गोरखों ने उसकी शक्ति और भी बढ़ा दी।

बर्मा पर विजय : 19वीं सदी में तीन बार स्वतंत्र बर्मा से युद्ध करके अंततः उस पर कब्जा कर लिया। बर्मा और ब्रिटिश भारत का टकराव सीमा संबंधी झड़पों से

आरंभ हुआ। उसे प्रसारवादी आकांक्षाओं ने और उकसाया। बर्मा के जंगल संबंधी संसाधनों पर ब्रिटिश व्यापारियों की लालची निगाहें बहुत पहले से गड़ी थीं और वे उसकी जनता को भी अपने कारखानों के माल निर्यात करने के लिए बेचैन थे। ब्रिटिश अधिकारी भी बर्मा तथा शेष दक्षिण-पूर्व एशिया में फ्रांसीसियों के व्यापारिक और राजनीतिक प्रभाव को बढ़ने से रोकना चाहते थे।

18वीं सदी में जब बर्मा और ब्रिटिश भारत अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे, तो दोनों की सीमाएं आ मिलीं। सदियों के अंदरूनी कलह के बाद बर्मा में सम्राट अलौंगपाय ने 1752-60 में एकता स्थापित करने में सफलता पाई थी। इरावती नदी के तट पर स्थित अवा में शासन कर रहे उसके उत्तराधिकारी बोदावपाय ने बार-बार स्याम पर आक्रमण किया, अनेकों चीनी हमलों को नाकाम बनाया, 1785 में अराकान और 1813 में मणिपुर के सीमावर्ती राज्यों पर अधिकार किया और इस प्रकार बर्मा की सीमा को ब्रिटिश भारत की सीमा तक फैला दिया। पश्चिम की ओर बढ़ना जारी रखते हुए उसने असम और ब्रह्मपुत्र घाटी के लिए एक खतरा पैदा कर दिया। अंततः 1822 में बर्मियों ने असम को जीत लिया। अराकान और असम पर बर्मा की विजय के बाद उसकी और बंगाल की अस्पष्ट सीमाओं पर लगातार झड़पों का एक युग आरंभ हो गया।

वर्ष 1824 में ब्रिटिश भारत के शासकों ने बर्मा के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। आरंभ में कुछ समय तक हारते रहने के बाद ब्रिटिश सेनाओं ने अंततः असम, कछार, मणिपुर और अराकान से बर्मियों को बाहर कर दिया। मई 1824 में ब्रिटिश नौसेना ने समुद्र के रास्ते रंगून पर अधिकार कर लिया और राजधानी अवा से 45 मील दूर तक पहुंच गए। यांदवों की संधि के द्वारा फरवरी 1826 में शांति स्थापित हुई। बर्मा की सरकार ने (1) लड़ाई के हर्जाने के रूप में एक करोड़ रूपए देने की, (2) अराकान और तेनासेरिम के समुद्र तटीय प्रांतों पर से अधिकार छोड़ने की, (3) असम, कछार और जयंतिया पर सारे दावे छोड़ देने की, (4) मणिपुर को स्वतंत्र राज्य स्वीकार करने की, (5) ब्रिटेन के साथ एक व्यापारिक संधि की बातचीत चलाने की, (6) अवा में एक ब्रिटिश रेजिडेंट रखने तथा कलकत्ता में एक बर्मी दूत नियुक्त करने की शर्तें मान लीं। इस संधि के द्वारा अंग्रेजों ने बर्मा को उसके अधिकांश समुद्र तट से वंचित कर दिया, और भावी प्रसार के लिए बर्मा में अपनी जड़ें मजबूत कर लीं।

वर्ष 1852 में जो दूसरा बर्मा युद्ध छिड़ा, वह लगभग पूरी तरह ब्रिटेन के व्यापारिक लोभ का परिणाम था। इमारती लकड़ी का व्यापार करने वाली ब्रिटिश फर्मों ने अब तक ऊपरी बर्मा के जंगलों की इमारती लकड़ी में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। इसके अलावा अंग्रेजों को लगा कि बर्मा की विशाल जनसंख्या ब्रिटेन के सूती कपड़ों और दूसरे औद्योगिक मालों की बिक्री के लिए एक बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध करा सकती है। अंग्रेज़ जो बर्मा के दो तटीय प्रांतों पर पहले ही कब्जा जमाए बैठे थे, अब बाकी देश के व्यापारिक संबंधों पर भी अपना नियंत्रण स्थापित करना चाह रहे थे। वे यह भी चाहते थे कि शांति से हो या युद्ध से, वे अपने व्यापारिक प्रतियोगियों, अर्थात फ्रांसीसियों या अमरीकियों के पैर जमाने से पहले बर्मा पर अपनी जकड़ को मजबूत बना लें। अंग्रेजी सेना की एक बड़ी टुकड़ी अप्रैल 1852 को बर्मा रवाना कर दी गई। इस बार का युद्ध 1824-26 के युद्ध की अपेक्षा बहुत कम समय तक चला, और अंग्रेजों की विजय भी बहुत निणार्यक रही। अंग्रेजों ने अब बर्मा के अकेले बचे तटीय प्रांत पेगू को भी हड़प लिया। फिर भी दक्षिणी बर्मा पर प्रभावी नियंत्रण जमाने से पहले अंग्रेजों को तीन साल तक जनता की एक भयानक छापामार लड़ाई का सामना करना पड़ा। अब बर्मा के पूरे समुद्र तट पर और उसके पूरे समुद्री व्यापार पर अंग्रेजों का

नियंत्रण हो चुका था। इस लड़ाई को लड़ने की मुख्य जिम्मेदारी भारतीय सैनिकों को उठानी पड़ी और इसका खर्च भारतीय धन से पूरा किया गया।

पेगू के अधिग्रहण के बाद अनेक वर्षों तक बर्मा और ब्रिटेन के बीच शांति बनी रही। फिर भी अंग्रेज़ ऊपरी बर्मा में पैर फैलाने की कोशिशें करते रहे। ब्रिटेन के व्यापारियों और उद्योगपतियों को खास लोभ इसका था कि बर्मा के रास्ते चीन से व्यापार संभव था। वर्ष 1885 में सम्राट थिबाऊ ने फ्रांस के साथ व्यापार संबंधी एक संधि की। बर्मा में फ्रांसीसियों का बढ़ता हुआ प्रभाव अंग्रेजों को जलन का शिकार बनाए हुए था। ब्रिटिश व्यापारियों को डर था कि कहीं उनके फ्रांसीसी और अमरीकी प्रतिद्वंद्वी बर्मा के विशाल बाजार पर अधिकार न कर लें। अब ब्रिटेन में चैंबर ऑफ कामर्स ने तथा रंगून में बैठे ब्रिटिश व्यापारियों ने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि वह ऊपरी बर्मा पर फौरन कब्जा करे। ब्रिटिश सरकार स्वयं भी इसके लिए इच्छुक थी। 13 नवंबर 1885 को अंग्रेजों ने बर्मा पर हमला किया। 28 नवंबर 1885 को सम्राट थिबाऊ ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा उसके राज्य को जल्द ही भारतीय साम्राज्य में मिला लिया गया।

बर्मा पर विजय तो बहुत आसान रही पर उस पर शासन करना इतना आसान नहीं रहा। सेना के देशभक्त सैनिकों और अधिकारियों ने आत्मसमर्पण करने से इंकार कर दिया। उन्होंने घने जंगलों में शरण ले ली और वहीं से एक व्यापक छापामार युद्ध चलाते रहे। दक्षिण बर्मा की जनता भी विद्रोह के लिए उठ खड़ी हुई। जनविद्रोह को कुचलने के लिए अंग्रेजों को लगातार पांच वर्षों तक 40,000 की सेना का प्रयोग करना पड़ा। इस लड़ाई तथा इसके बाद विद्रोह को कुचलने के अभियान का खर्च भी भारतीय खज़ाने से ही लिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बर्मा में आधुनिक प्रकार का एक जोरदार राष्ट्रवादी आंदोलन उठ खड़ा हुआ। ब्रिटिश माल और प्रशासन के बहिष्कार का एक व्यापक अभियान चला और होम रूल की मांग सामने रखी गई। बर्मा के राष्ट्रवादियों ने जल्द ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से हाथ मिला लिया। बर्मा के स्वाधीनता संग्राम को कमजोर कर सकने की आशा में 1935 में अंग्रेजों ने बर्मा को भारत से अलग कर दिया। बर्मी राष्ट्रवादियों ने इस कदम का विरोध किया। बर्मा का राष्ट्रवादी आंदोलन द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ऊं आंग सान के नेतृत्व में अपनी चरम सीमा पर जा पहुंचा। अंततः 4 जनवरी 1948 को बर्मा ने अपनी स्वाधीनता प्राप्त की।

अफगानिस्तान के साथ संबंध : अफगानिस्तान के साथ संबंधों के स्थायी बनने से पहले भारत की ब्रिटिश सरकार के उससे दो युद्ध हुए। ब्रिटिश दृष्टिकोण से अफगानिस्तान की भौगोलिक स्थिति बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। रूस की ओर से संभावित सामरिक चुनौती का सामना करने तथा मध्य एशिया में ब्रिटेन के व्यापारिक हितों को आगे बढ़ाने के लिए अफगानिस्तान भारत की सीमा के बाहर एक अगणी चौकी का काम कर सकता था। और कुछ नहीं तो वह दो शत्रु शक्तियों के बीच एक सुविधाजनक तटस्थ देश भी हो सकता था। अंग्रेज़ अफगानिस्तान में रूस के प्रभाव को कमजोर बनाना और समाप्त करना तो चाहते थे, पर वे अफगानिस्तान को मजबूत बनते भी नहीं देखना चाहते थे। वे उसे एक कमजोर तथा बंटा हुआ देश ही बनाए रखना चाहते थे ताकि आसानी से उसपर नियंत्रण कर सकें।

अंग्रेज़ अफगानिस्तान के स्वतंत्र शासक दोस्त मुहम्मद को हटा कर उसकी जगह किसी 'मित्र' अर्थात् पिट्ठू शासक को बिठाना चाहते थे। उनकी निगाह अब शाह शुजा पर पड़ी जिससे 1809 में गद्दी छिन गई थी और जो लुधियाना में अंग्रेजों का पेंशनखोर बनकर रह रहा था। अंग्रेजों ने अफगानिस्तान की गद्दी के लिए उसी का समर्थन करने का निश्चय

किया। अब उन्होंने बिना किसी कारण या बहाने के अफगानिस्तान के अंदरूनी मामलों में दखल देने तथा इस छोटे से पड़ोसी देश पर हमला करने का निश्चय किया। यह हमला फरवरी 1839 में किया गया। अधिकांश अफगान कबीलों को अब तक रिश्वत देकर खरीदा जा चुका था। अगस्त 1839 को काबुल पर अंग्रेजों का कब्जा हुआ और उन्होंने फौरन गद्दी पर शाह शुजा को बिठा दिया। पर शाह शुजा को अफगानिस्तान की जनता घृणा की दृष्टि से देखती थी, खासकर इसलिए कि वह विदेशी संगीनों का सहारा लेकर फिर से शासक बना था। अनेक अफगान कबीलों ने विद्रोह कर दिया। फिर एकाएक 2 नवंबर 1841 को काबुल में विद्रोह छिड़ गया और हट्टे-कट्टे अफगान ब्रिटिश सेनाओं पर टूट पड़े।

अंग्रेजों ने मजबूर होकर 11 दिसंबर 1841 को अफगान सरदारों से एक समझौता किया और बात मान ली कि वे अफगानिस्तान से चले जाएंगे और दोस्त मुहम्मद को फिर से गद्दी पर बिठाया जाएगा। पर बात यहीं खत्म नहीं हुई। जब अंग्रेज़ अफगानिस्तान छोड़ रहे थे, पूरे रास्ते भर उन पर जगह-जगह हमले हुए। 16,000 सैनिकों में से केवल एक ही जिंदा सीमा तक पहुंचा, और अनेकों जीवित रहे पर युद्धबंदी बनकर। इस तरह अंग्रेजों का अफगान अभियान बुरी तरह असफल रहा। अब ब्रिटिश भारत की सरकार ने एक नए अभियान की तैयारी की। 16 सितंबर 1842 को उन्होंने दोबारा काबुल पर अधिकार कर लिया। पर उन्होंने पिछले अनुभव से अच्छी तरह सबक लिया था। हाल की हार और अपमान का बदला ले चुकने के बाद उन्होंने दोस्त मुहम्मद से समझौता कर लिया तथा काबुल को खाली करके उन्होंने दोस्त मुहम्मद को अफगानिस्तान का स्वतंत्र शासक मान लिया।

प्रथम अफगान युद्ध में डेढ़ करोड़ रूपए से अधिक का खर्च आया था तथा लगभग 20,000 सैनिक मारे गए थे।

अंग्रेजों ने अब अफगानिस्तान के अंदरूनी मामलों में दखल न देने की नीति अपनाई। वर्ष 1860 के दशक में क्रीमियाई युद्ध में हारने के बाद जब रूस ने मध्य एशिया पर ध्यान देना आरंभ किया तो अंग्रेजों ने अफगानिस्तान को एक तटस्थ देश के रूप में मजबूत बनाने की नीति अपनाई। उन्होंने काबुल के अमीर को अपने अंदरूनी दुश्मनों पर काबू पाने तथा विदेशी शत्रुओं से अपनी स्वाधीनता बनाए रखने में हर तरह की सहायता दी। इस तरह हस्तक्षेप न करने तथा कभी-कभी सहायता देने की नीति अपनाकर उन्होंने अमीर को रूस के साथ हाथ मिलाने से रोके रखा।

वर्ष 1870 के बाद पूरी दुनिया में साम्राज्यवाद का पुनरूत्थान हुआ। अंग्रेजों और रूस की शत्रुता भी बढ़ी। अब एक बार फिर ब्रिटिश राजनेताओं ने अफगानिस्तान को अपने प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण में लाने की बात सोची ताकि वे मध्य एशिया में ब्रिटेन के प्रसार के लिए एक आधार का काम दे सकें। अफगान शासक शेर अली पर ब्रिटेन की शर्तें लादने के लिए उन्होंने 1878 में अफगानिस्तान पर एक और हमला किया। इसे ही दूसरा अफगान युद्ध कहा जाता है। मई 1879 में शांति स्थापित हुई जब शेर अली के बेटे याकूब खान ने गंदमक की संधि पर हस्ताक्षर किए। इस संधि के द्वारा अंग्रेजों को वह सब कुछ मिल गया जो वे चाहते थे। उन्हें कुछ सीमावर्ती जिले मिल गए, काबुल में एक रेजिडेंट रखने का अधिकार मिल गया, और अफगानिस्तान की विदेश नीति पर उनका नियंत्रण स्थापित हो गया।

अंग्रेजों की सफलता बहुत समय तक नहीं बनी रही। चूंकि अफगानों के राष्ट्रीय स्वाभिमान को चोट पहुंची थी, इसलिए अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक बार फिर उठ खड़े हुए। विद्रोही अफगान सैनिकों ने 3 सितंबर 1879 को ब्रिटिश रेजिडेंट मेजर केवान्यारी तथा उसके सैनिक के अंगरक्षक पर हमला करके उन्हें मार डाला। अफगानिस्तान पर अंग्रेजों ने एक बार फिर

हमला करके उस पर अधिकार कर लिया। पर अफगान अपनी बात स्पष्ट कर चुके थे। अंग्रेजों ने फिर एक बार अपनी नीति बदली तथा एक मजबूत और मित्रवत् अफगानिस्तान के अंदरूनी मामलों में दखल न देने की पुरानी नीति अपनाई। दोस्त मुहम्मद के पोते अब्दुर्रहमान को अफगानिस्तान का नया शासक स्वीकार किया गया। अब्दुर्रहमान ने भी ब्रिटेन को छोड़कर किसी और शक्ति से राजनीतिक संबंध न रखने की बात मान ली। इस तरह अफगानिस्तान के अमीर का अपनी विदेश नीति पर नियंत्रण नहीं रहा और इस सीमा तक वह एक पराधीन शासक बन गया। पर साथ ही अपने देश के अंदरूनी मामलों पर उसका पूरा अधिकार बना रहा।

प्रथम विश्वयुद्ध तथा 1917 की रूसी क्रांति ने आंग्ल-अफगान संबंधों को एक नया मोड़ दिया। अफगान अब ब्रिटिश नियंत्रण से पूर्ण स्वाधीनता की मांग करने लगे। हबीबुल्ला जो 1909 में अब्दुर्रहमान के बाद अमीर बना था, की 20 फरवरी 1919 को हत्या कर दी गई। इसके बाद उसके लड़के अमानुल्ला, जो नया अमीर बना, ने ब्रिटिश भारत के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। वर्ष 1921 में शांति स्थापित हुई और एक संधि के द्वारा अफगानिस्तान को अपने विदेशी मामलों में अपनी स्वाधीनता वापस मिल गई।

अभ्यास

1. 1858 के बाद भारतीय प्रशासन में किए गए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का विवेचन कीजिए। इस विवेचन में संविधानिक विकास, प्रांतीय प्रशासन, स्थानीय निकायों, सेना और नागरिक सेवाओं को विशेष रूप से ध्यान में रखिए।
2. 1858 के बाद जमींदारों, राजाओं, शिक्षित भारतीयों और समाज सुधारों के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीतियों और रूझानों में परिवर्तनों का विवेचन कीजिए। इन परिवर्तनों के पीछे क्या उद्देश्य निहित थे?
3. सांप्रदायिकता और अन्य विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा देने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों की व्याख्या कीजिए।
4. उन्नीसवीं सदी के दौरान भारत के पड़ोसी देशों के साथ ब्रिटिश सरकार की नीतियों के आधारभूत उद्देश्य क्या थे?
5. अफगानिस्तान के प्रति ब्रिटिश नीति का वर्णन कीजिए और उन परिस्थितियों की चर्चा कीजिए, जिनकी वजह से बर्मा को ब्रिटिश राज में मिला लिया गया।
6. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंधों का वर्णन कीजिए।
7. भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा बरते गए नस्ली भेदभाव की विवेचना कीजिए।
8. भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान मजदूर वर्ग की दशा और ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाए गए फैक्टरी श्रम कानूनों का वर्णन कीजिए।
9. भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान बागान मजदूरों की दशा का वर्णन कीजिए।

10. औपनिवेशिक भारत में सामाजिक सेवाओं की दशा का विवेचन कीजिए।
11. भारत के मानचित्र पर उस हिस्से को दर्शाइए जो ब्रिटिश नियंत्रण में था और उसे भी जो राजाओं के अधीन था।
12. 1858 के बाद ब्रिटिश सरकार ने सरकार और प्रशासन का जो ढांचा खड़ा किया उसका एक चार्ट तैयार कीजिए।

अध्याय : 8

ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव

ब्रिटिश विजय का भारत पर स्पष्ट और गहरा आर्थिक प्रभाव पड़ा। भारतीय अर्थव्यवस्था का शायद ही कोई पहलू रहा जिसमें अच्छी या बुरी दिशा में पूरे ब्रिटिश शासन काल में परिवर्तन नहीं हुआ।

परंपरागत अर्थव्यवस्था का विघटन

अंग्रेजों ने जो आर्थिक नीतियां अपनाई उनसे भारत की अर्थव्यवस्था का रूपांतरण एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में हो गया, जिसके स्वरूप और ढांचे का निर्धारण ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरूरतों के अनुसार हुआ। इस दृष्टि से ब्रिटिश विजय पहले की सभी विदेशी जीतों से भिन्न थी। पहले के सभी विजेताओं ने भारतीय राजनीतिक शक्तियों को उखाड़ फेंका मगर उन्होंने देश के आर्थिक ढांचे में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किए। वे धीरे-धीरे भारतीय राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन के भाग बन गए। किसान, दस्तकार, और व्यापारी अपनी जिंदगी पहले की तरह ही जीते रहे। स्वावलंबी ग्राम अर्थव्यवस्था की बुनियादी आर्थिक बनावट को सदा बनाए रखा गया। शासकों के बदलनें का मतलब था उन कर्मचारियों में परिवर्तन जो किसान के अधिशेष को वसूल करते थे। मगर ब्रिटिश विजेता बिल्कुल भिन्न थे। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के परंपरागत ढांचे को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके अलावा, वे कभी भारतीय जीवन का अभिन्न अंग नहीं बन सके। वे भारत में हमेशा विदेशी बने रहे, भारतीय संसाधनों का उपयोग करते रहे और भारतीय समृद्धि को नजराने के रूप में ले जाते रहे।

भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों के अधीन करने के अनेक और विविध परिणाम हुए।

दस्तकारों और शिल्पकारों की बर्बादी : शहरी हस्तशिल्पों का एकाएक और बहुत जल्द पतन हो गया। इन शिल्पों के कारण भारत का नाम समूची सभ्य दुनिया में शताब्दियों से लिया जाता रहा था। इस पतन का मुख्य कारण था : इंग्लैंड से आयात की जाने वाली मशीनों द्वारा बनाई गई सस्ती वस्तुओं के साथ प्रतिद्वंद्विता। जैसा कि हम देख चुके हैं, अंग्रेजों ने 1813 के बाद एकतरफा मुक्त व्यापार की नीति भारत पर लाद दी और ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं, विशेषकर सूती वस्त्रों की तुरंत बड़ी भरमार हो गई। आदिम तकनीकों से बनी भारतीय वस्तुएं भाप से चलने वाली शक्तिशाली मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर बनाई गई वस्तुओं की प्रतिद्वंद्विता में नहीं टिक सकीं।

भारतीय उद्योगों, विशेषकर ग्रामीण दस्तकार उद्योगों की बर्बादी, रेलवे के बनते ही काफी तेज़ी से हुई। रेलवे द्वारा ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं के देश के सुदूर गांवों में पहुंचने और परंपरागत उद्योगों की जड़ें खोदने में

सहायता मिली। जैसा कि अमरीकी लेखक डी. एच. बुकानन ने लिखा है : "अलग-थलग रहने वाले स्वावलंबी गांव के कवच को इस्पात की रेल ने बेध दिया, तथा उसकी प्राण शक्ति को क्षीण कर दिया।"

सूत कातने तथा सूती कपड़ा बुनने के उद्योगों को सबसे अधिक धक्का लगा। रेशमी और ऊनी वस्त्र उद्योगों की हालत भी कोई अच्छी नहीं रही। लोहा, मिट्टी के बर्तन, शीशा, कागज, धातु, बंदूकें, जहाजरानी, तेलघानी, चमड़ा-शोधन और रंगाई उद्योगों की हालत भी बुरी हो गई।

विदेशी वस्तुओं की भरमार के अलावा कुछ अन्य कारक भी थे जिनका जन्म ब्रिटिश जीत के कारण हुआ और जिन्होंने भारतीय उद्योगों के विनाश में योगदान दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके कर्मचारियों ने अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल के दस्तकारों पर अत्याचार किए। उन्होंने दस्तकारों को अपनी वस्तुएं बाजार कीमत से कम पर बेचने तथा अपनी सेवाओं को प्रचलित मजदूरी से कम पर देने के लिए मजबूर किया। उन्होंने अनेक दस्तकारों को अपने पुश्तैनी पेशे छोड़ने के लिए विवश किया। सामान्यतयः कंपनी द्वारा निर्यात को दिए गए प्रोत्साहन से भारतीय हस्तशिल्पों को फायदा होता, मगर इस अत्याचार के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान ब्रिटेन तथा यूरोप में भारतीय वस्तुओं के आयात पर लगाए गए उच्च आयात शुल्कों तथा अन्य प्रतिबंधों और उनके साथ ही ब्रिटेन में आधुनिक विनिर्माण उद्योगों के विकास के फलस्वरूप 1820 के बाद यूरोपीय बाज़ारों के दरवाज़े भारतीय विनिर्माताओं के लिए वस्तुतः बंद हो गए। भारतीय शासकों और उनके राजदरबारों के जो शहरी हस्तशिल्प की वस्तुओं के मुख्य ग्राहक थे, धीरे-धीरे लुप्त हो जाने से भी इन उद्योगों को बड़ा धक्का लगा। उदाहरण के लिए, सैनिक हथियारों का उत्पादन पूरी तरह भारतीय राज्यों पर निर्भर था। अंग्रेज़ अपने सारे सैनिक और अन्य सरकारी सामान ब्रिटेन में खरीदते थे। इसके अलावा, शासक वर्ग के रूप में भारतीय शासकों और कुलीन पुरुषों का स्थान ब्रिटिश अधिकारियों तथा सैनिक अफसरों ने लिया जिन्होंने बिलकुल निरपवाद रूप से अपने देश के उत्पादनों को अपनाया। कच्चे मालों को निर्यात करने की ब्रिटिश नीति से भी भारतीय हस्तशिल्पों को धक्का लगा क्योंकि कपास और चमड़े जैसे कच्चे मालों की कीमतें बढ़ गई। इससे हस्तशिल्प की वस्तुओं की कीमतें बढ़ गई तथा विदेशी के साथ प्रतियोगिता में ठहरने की उनकी क्षमता घट गई।

भारतीय हस्तशिल्पों की तबाही उन शहरों की तबाही के रूप में सामने आई जो अपनी विनिर्मित वस्तुओं के लिए मशहूर थे। जो शहर युद्ध तथा लूटखसोट के विध्वंस के बाद भी टिके रहे थे, वे ब्रिटिश विजय के कारण जिंदा नहीं रह सके। ढाका, सूरत, मुर्शिदाबाद और कई अन्य घनी आबादी वाले समृद्ध औद्योगिक केंद्र जन-शून्य हो गए तथा खंडरात बन गए। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक नगर की जनसंख्या मुश्किल से कुल जनसंख्या का 10 प्रतिशत रह गई थी। गवर्नर-जनरल विलियम बैंटिक ने 1834-35 में लिखा :

> "इस दरिद्रता के समान दरिद्रता वाणिज्य के इतिहास में शायद ही कभी रही है। बुनकरों की हड्डियां भारत के मैदानों को विरंजित कर रही हैं।"

यह महाविपदा इस कारण भी बढ़ गई कि परंपरागत उद्योगों के पतन के साथ ब्रिटेन और पश्चिम यूरोप की तरह आधुनिक मशीन उद्योगों का विकास नहीं हुआ। फलस्वरूप, तबाह हस्तशिल्पी और दस्तकार वैकल्पिक रोजगार पाने में असफल रहे। उनके सामने एक ही रास्ता था : कृषि को अपनाना। इसके अलावा, ब्रिटिश शासन ने गांवों में आर्थिक जीवन के संतुलन को बिगाड़ दिया। ग्रामीण शिल्पों के धीरे-धीरे विनाश ने ग्रामीण क्षेत्र में कृषि तथा घरेलू उद्योग की एकता को

तोड़ दिया और इस प्रकार, स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विनाश में योगदान दिया। एक ओर, करोड़ों किसानों को, जो अंशकालिक कताई तथा बुनाई द्वारा अपनी आय को पूरा करते थे, अब मुख्य रूप से खेती पर निर्भर रहना पड़ा, दूसरी ओर, करोड़ों दस्तकार अपनी परंपरागत जीविका को खो बैठे तथा खेतिहर मजदूर या छोटे काश्तकार बन गए जिनके पास छोटे-छोटे खेत थे। उनके कारण जमीन पर बोझ बढ़ा।

इस प्रकार ब्रिटिश जीत के कारण देश में अव-औद्योगीकरण (deindustrialisation) आया और कृषि पर लोगों की निर्भरता बढ़ी। पहले के काल के लिए कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं है मगर जनगणना की रिपोर्टों के अनुसार केवल 1901 और 1941 के बीच कृषि पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत 63.7 प्रतिशत से बढ़कर 70 प्रतिशत हो गया। कृषि पर बढ़ता हुआ यह दबाव ब्रिटिश शासन के दौरान भारत की घोर गरीबी के मुख्य कारणों में से एक था।

वस्तुतः भारत अब औद्योगिक ब्रिटेन का एक कृषि उपनिवेश हो गया। ब्रिटेन को भारत की आवश्यकता अपने उद्योगों के लिए कच्चे मालों के स्रोत के रूप में थी। सूती कपड़ा उद्योग में यह तब्दीली सुस्पष्ट थी। भारत सदियों से सूती वस्तुओं का संसार में सबसे बड़ा निर्यातकर्ता था, मगर अब वह ब्रिटिश सूती उत्पादनों का आयात करने वाला तथा कपास का निर्यात करने वाला बन गया।

किसानों की दरिद्रता : ब्रिटिश शासन के अंतर्गत किसान भी धीरे-धीरे दरिद्र हो गए। यद्यपि वे अब अंदरूनी लड़ाइयों से मुक्त थे तथापि उनकी आर्थिक हालत खराब हो गई और वह लगातार गरीबी में धसते गए।

बंगाल में ब्रिटिश शासन के आरंभ में ही यथासंभव अधिकतम भूराजस्व उगाहने की क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स की नीति के कारण इतना विध्वंस हुआ कि कार्नवालिस ने भी शिकायत भरे लहजे में कहा कि एक-तिहाई बंगाल "एक जंगल में बदल गया है जिसमें केवल वनचर ही रहते हैं।" बाद में भी कोई सुधार नहीं हुआ। दोनों, स्थायी बंदोबस्त तथा अस्थायी बंदोबस्त वाले जमींदारी क्षेत्रों में किसानों की हालत अत्यंत दयनीय रही उन्हें जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया जिन्होंने लगानों को असहनीय सीमाओं तक बढ़ा दिया तथा उन्हें अब्वाब देने और बेगार करने के लिए मजबूर किया। जमींदारों ने किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार किए।

रैयतवारी और महलवारी क्षेत्रों में किसानों की हालत कोई बेहतर नहीं थी। वहां सरकार ने जमींदारों का स्थान लिया तथा अत्यधिक भूराजस्व निर्धारित किया। शुरू में भूराजस्व उत्पादन का एक-तिहाई से लेकर आधा तक होता था। भारी मात्रा में भूराजस्व का निर्धारण उन्नीसवीं सदी में दरिद्रता की वृद्धि तथा कृषि की अवनति के मुख्य कारणों में से एक था। अनेक समसामयिक लेखकों और अधिकारियों ने इस तथ्य का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, बिशप हेबर ने 1826 में लिखा :

> "मेरा ख्याल है कि न तो देशी और न ही यूरोपीय कृषक कराधान की वर्तमान दर पर समृद्ध बन सकता है। जमीन की आधी सकल पैदावार सरकार ले लेती है ... हिंदुस्तान [उत्तर भारत] में मैंने शाही अफसरों में यह आम भावना पाई ... कि देशी राज्यों की प्रजा की तुलना में कंपनी के प्रांतों के किसान, कुल मिलाकर बदतर, गरीब और पस्तहिम्मत हैं, और यहां मद्रास में जहां जमीन आम तौर से कम उपजाऊ है, विषमता और स्पष्ट है। तथ्य यह है कि कोई भी देशी राजा हमारे जितना लगान नहीं मांगता।"

यद्यपि भूराजस्व की रकम वर्ष प्रति वर्ष बढ़ती गई (वह 1857-58 में 15.3 करोड़ रुपए थी जो बढ़कर 1936-37 में 35.8 करोड़ रुपए हो गई), तथापि

कीमतों और उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ कुल उत्पादन के अनुपात के रूप में खास तौर से बीसवीं शताब्दी में भूराजस्व की प्रवत्ति घटने की थी। भूराजस्व में कोई सानुपातिक वृद्धि नहीं की गई क्योंकि अतिशय राजस्व वसूल करने के विनाशकारी परिणाम स्पष्ट हो गए। मगर अब तक कृषि पर जनसंख्या का दबाव इतना बढ़ गया था कि बाद के वर्षों में किसानों का अपेक्षाकृत कम भूराजस्व भी कंपनी के प्रारंभिक वर्षों के उच्च भूराजस्व के समान ही भारी सिद्ध हुआ। बहरहाल बीसवीं शताब्दी में कृषि अर्थव्यवस्था नष्ट हो चुकी थी तथा भूस्वामियों, सूदखोरों और सौदागरों का सुदूर गांवों तक में प्रवेश हो चुका था।

उच्च भूराजस्व निर्धारण इसलिए भी विनाशकारी साबित हुआ कि उसके बदले किसानों को कोई आर्थिक प्रतिफल नहीं मिला। कृषि-सुधार पर सरकार ने बहुत कम खर्च किया। उसने अपनी लगभग सारी आय ब्रिटिश भारत के प्रशासन की आवश्यकताओं को पूरा करने, इंग्लैंड को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नजराना भेजने, तथा ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों को साधने में लगा दी। यहां तक कि कानून और व्यवस्था बनाए रखने से किसान की अपेक्षा सौदागर तथा महाजन को फायदा पहुंचा।

अत्याधिक भूराजस्व की रकम के नुकसानदेह परिणामों को उसको वसूल करने के कठोर तरीके ने और भी भयंकर बना दिया। भूराजस्व निर्धारित तारीखों पर तत्परता के साथ भुगतान करना पड़ता था। भले ही पैदावार सामान्य से कम रही हो या बिल्कुल ही न हुई हो। खराब फसल वाले वर्षों में किसानों के लिए भूराजस्व की अदायगी बड़ी कठिन थी, भले ही वह अच्छी फसल के सालों में भूराजस्व आसानी से दे पाए हों।

जब भी किसान भूराजस्व अदा करने में असफल रहे, तब सरकार ने राजस्व की बकाया रकम वसूल करने के लिए उसकी जमीन को नीलाम कर दिया। मगर अधिकतर स्थितियों में किसान ने अपनी जमीन का कुछ हिस्सा बेचकर भूराजस्व अदा किया। नीलामी की स्थिति में उसे अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ा।

बहुधा राजस्व भुगतान करने में असमर्थता के कारण किसान को महाजन से ब्याज की ऊंची दरों पर कर्ज लेना पड़ता था। जमीन से सदा के लिए हाथ धोने के बदले किसान अपनी जमीन किसी महाजन या अपने पड़ोसी धनी किसान के पास गिरवी रखकर कर्ज लेना बेहतर समझते थे। जब भी उनका खर्च उनकी आय से नहीं चल पाता था उन्हें महाजन के पास जाना पड़ता था। मगर एक बार कर्ज में फंसने के बाद उनके लिए उससे निकल पाना मुश्किल था। महाजन ऊंची दरों पर ब्याज लेता था और गलत हिसाब-किताब, जाली दस्तखतों और कर्जदार को कर्ज की वास्तविक रकमों से अधिक पर दस्तखत करने के लिए मजबूर करने जैसी धूर्तता-पूर्ण कार्रवाईयों द्वारा किसानों को तब तक कर्ज में फंसाया जाता था जब तक वे अपनी जमीन से हाथ नहीं धो बैठते।

महाजन को नई कानून प्रणाली तथा राजस्व नीति से बहुत मदद मिली। अंग्रेजी राज के पहले महाजन ग्राम समुदाय के अधीन होता था। वह ऐसा आचरण नहीं कर सकता था जिसे गांव के बाकी लोग बिल्कुल ही पसंद न करें। उदाहरण के लिए, वह बहुत अधिक दरों पर ब्याज नहीं ले सकता था। वस्तुतः ब्याज की दरों का निर्धारण चलन तथा जनमत द्वारा होता था। इसके अलावा, वह कर्जदार की जमीन पर कब्जा नहीं कर सकता था। अधिक से अधिक वह कर्जदार की व्यक्तिगत चल संपत्ति जैसे गहनों, या खेतों में खड़ी फसलों के कुछ हिस्से ले सकता था। जमीन को हस्तांतरण योग्य बनाकर ब्रिटिश भूराजस्व व्यवस्था ने महाजन या धनी किसान को जमीन हड़पने में समर्थ बना दिया। यहां तक कि अंग्रेजों द्वारा अपनी कानून प्रणाली और पुलिस के फलस्वरूप स्थापित शांति और सुरक्षा के फायदे महाजन को मिले जिसके हाथों में

कानून ने अपार शक्ति दे दी थी; उसने पैसे की ताकत का इस्तेमाल मुकदमे की खर्चीली प्रक्रिया को अपने पक्ष में अपने हित को साधने के लिए कर लिया। इसके अतिरिक्त, साक्षर और चालाक महाजन ने आसानी से किसान की अज्ञानता तथा निरक्षरता का इस्तेमाल कानून की जटिल प्रक्रियाओं को तोड़ मरोड़ कर अनुकूल न्यायिक निर्णय प्राप्त करने के लिए किया। धीरे-धीरे रैयतवारी और महलवारी क्षेत्रों के किसान कर्ज में डूबते ही चले गए और अधिकाधिक जमीन महाजनों, सौदागरों, धनी किसानों और अन्य धनी वर्गों के हाथों में चली गई। यही प्रक्रिया जमींदारी क्षेत्रों में भी हुई जहां किसान अपने काश्तकारी अधिकार खो बैठे और उन्हें जमीन से बेदखल कर दिया गया या वे महाजन के बटाईदार बन गए।

किसानों के हाथों से जमीन के हस्तांतरण की प्रक्रिया अभाव तथा अकाल के कालों में तेज हो गई। भारतीय किसान के पास संकट के समय के लिए शायद ही कोई बचत होती थी और जब भी फसल खराब हो जाती थी तब उसे महाजन का आश्रय लेना पड़ता था। उसे महाजन का सहारा न केवल भूराजस्व अदा करने बल्कि अपने तथा अपने परिवार के भोजन की व्यवस्था करने के लिए भी लेना पड़ता था।

उन्नीसवीं सदी के अंत तक महाजन ग्रामीण क्षेत्र का मुख्य अभिशाप तथा ग्रामीण जनता की बढ़ती हुई दरिद्रता का एक महत्त्वपूर्ण कारण बन गया था। 1911 में कुल ग्रामीण ऋण तीन अरब रुपए आंका गया था। वर्ष 1937 तक वह 18 अरब रुपए तक पहुंच गया। पूरी प्रक्रिया एक दुश्चक्र बन गई थी। कराधान तथा बढ़ती हुई गरीबी के बोझ ने किसानों को कर्ज में फंसा दिया था। कर्ज के परिणामस्वरूप भी उनकी गरीबी बढ़ी। वस्तुतः किसान बहुधा यह नहीं समझ सके कि महाजन साम्राज्यवादी शोषण तंत्र में एक अवश्यंभावी दाता है। और उन्होंने अपना गुस्सा उसी पर उतारा क्योंकि उन्हें वही अपनी दरिद्रता का स्पष्ट कारण लगा। उदाहरण के लिए, 1857 के विद्रोह के दौरान जहां भी किसानों ने विद्रोह किया, वहां उनके हमले का पहला निशाना था महाजन और उसकी बहियां। किसानों की ये कार्रवाईयां आम बात हो गई।

कृषि के बढ़ते हुए वाणिज्यीकरण ने भी महाजन सह-सौदागर को किसान का शोषण करने में मदद दी। गरीब किसान को फसल तैयार होते ही जो भी कीमत मिले उस पर अपनी पैदावार बेचने के लिए मजबूर कर दिया जाता था क्योंकि उसे सरकार, जमींदार, तथा महाजन की मांगों को समय पर पूरा करना पड़ता था। इस कारण वह अनाज के व्यापारी की दया पर निर्भर हो जाता था। व्यापारी अपनी शर्तों पर अनाज खरीदता था। व्यापारी बाजार कीमत से कम पर अनाज खरीद लेता था। इस प्रकार कृषि की पैदावारों के बढ़ते हुए व्यापार का अधिक लाभ व्यापारी को मिला, जो बहुधा गांव का महाजन भी होता था।

जमीन हाथों से निकलने तथा अव-औद्योगीकरण और आधुनिक उद्योग के अभाव के कारण जमीन पर बढ़ते हुए बोझ ने भूमिहीन किसानों और तबाह दस्तकारों तथा हस्तशिल्पियों को काफी ऊंचे लगान पर महाजनों तथा जमींदारों से रैयत या कम से कम मजदूरी पर खेतिहर मजदूर बनने के लिए मजबूर किया। इस प्रकार किसान वर्ग को सरकार, जमींदार या भूस्वामी और महाजन के तिहरे बोझ से कुचल दिया गया। इन तीनों द्वारा अपने हिस्से ले लेने के बाद इतना नहीं बचता था कि खेतिहर तथा उसके परिवार का निर्वाह हो सके। यह हिसाब लगाया गया कि 1950-51 में भूलगान तथा महाजन का ब्याज 14 अरब रूपए था यानी उस साल के कुल कृषि उत्पादन का लगभग एक-तिहाई। परिणामस्वरूप किसान वर्ग की गरीबी बढ़ती गई। साथ ही अकालों की बारंबारता तथा भंयकरता भी बढ़ गई। जब भी सूखे या बाढ़ के कारण फसलें खराब हो गईं तथा अभाव की स्थिति आयी तब लाखों की संख्या में लोग मरे।

पुराने जमींदारों की तबाही तथा नई व्यवस्था का उदय

ब्रिटिश शासन के कुछ आरंभिक दशकों में बंगाल तथा मद्रास के पुराने जमींदार तबाह हो गए ऐसा खासकर सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को राजस्व वसूली के अधिकार नीलाम करने की वारेन हेस्टिंग्स की नीति के कारण हुआ। वर्ष 1793 के स्थायी बंदोबस्त का आरंभिक प्रभाव भी ऐसा ही हुआ। भूराजस्व का भारी बोझ (सरकार कुल लगान का 10/11 ले लेती थी) और वसूली संबंधी सख्त कानून ने, जिसके तहत राजस्व की अदायगी में विलंब होने पर जमींदारी संपत्तियां बड़ी कठोरता से नीलाम कर दी गईं; शुरू के कुछ वर्षों के दौरान बड़ी ही विध्वंसकारी भूमिका अदा की। बंगाल के अनेक बड़े जमींदार बिल्कुल तबाह हो गए तथा अपने जमींदारी अधिकारों को बेचने पर मजबूर हो गए। वर्ष 1815 तक बंगाल की लगभग आधी भूसंपत्ति पुराने जमींदारों के हाथों से निकलकर सौदागरों तथा अन्य धनी वर्गों के पास चली जा चुकी थी। पुराने जमींदार गांवों में रहते आए थे और रैयतों के प्रति कुछ नरमी दिखाने की उनकी परंपरा रही थी। सौदागर तथा पैसे वाले अन्य वर्ग आमतौर से शहरों में रहते थे और कठिन परिस्थितियों का बिना ख्याल किए वे रैयत से पाई-पाई निष्ठुरता से वसूल करते थे। वे बिल्कुल बेईमान थे और रैयतों के प्रति उनके मन में कोई सहानुभूति नहीं थी। वे किसानों से बहुत अधिक ऐंठते तथा जब भी चाहते उन्हें बेदखल कर देते थे।

उत्तर मद्रास में स्थायी बंदोबस्त और उत्तर प्रदेश में अस्थायी जमींदारी बंदोबस्त भी स्थानीय जमींदार के लिए समान रूप से कठोर थे।

मगर जमींदारों की दशा में जल्द ही तेज़ी से सुधार हुआ। जमींदार भूराजस्व समय पर अदा कर सकें, इसके लिए अधिकारियों ने रैयतों पर उनके अधिकार बढ़ा दिए। फलस्वरूप रैयतों के परंपरागत अधिकार समाप्त हो गए। अब जमींदारों ने लगान को अधिकतम सीमा तक बढ़ाने के लिए कमर कस ली। फलस्वरूप वे जल्द ही समृद्ध हो गए।

रैयतवारी क्षेत्रों में भी जमींदार-रैयत संबंधों की प्रणाली धीरे-धीरे फैल गई। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, अधिकाधिक जमीन महाजनों, सौदागरों और धनी किसानों के हाथ में चली गई, जो रैयतों के द्वारा खेती करवाते थे। भारतीय धनी वर्गों द्वारा जमीन खरीदने और जमींदार बनने का एक कारण यह भी था कि उद्योग में पूंजी के निवेश की कोई खास गुंजाइश नहीं थी। बटाईदारी एक अन्य प्रक्रिया थी, जिसके जरिए इस जमींदारी प्रथा का प्रसार हुआ। अनेक खुद मालिक किसानों तथा काश्तकारी अधिकार प्राप्त रैयतों ने, जिनका जमीन पर स्थायी अधिकार था, स्वयं खेती करने के बदले जमीन के लिए उतावले रैयतों को अत्याधिक लगान पर पट्टे पर जमीन देना अधिक सुविधाजनक पाया। कालक्रम से यह नई जमींदारी प्रथा न सिर्फ जमींदारी क्षेत्रों में बल्कि रैयतवारी क्षेत्रों में भी कृषि की मुख्य विशेषता बन गई।

जमींदारी प्रथा के प्रसार की एक उल्लेखनीय विशेषता थी बिचौलियों का उदय। चूंकि खेतिहर रैयतों को आम तौर से कोई सुरक्षा नहीं थी और जमीन पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव के कारण रैयतों में जमीन के लिए परस्पर प्रतियोगिता थी, इसलिए जमीन का लगान बढ़ता गया। जमींदारी और नए भूस्वामियों ने लगान वसूल करने के अपने अधिकार को लाभदायक शर्तों पर अन्य इच्छुक लोगों को दे दिया। मगर लगान बढ़ने के साथ-साथ भाड़े पर जमीन लेने वालों ने भी जमीन संबंधी अपने अधिकारों को किराए पर लगा दिया। इस प्रकार इस प्रक्रिया की एक श्रृंखला बन गई जिससे वास्तविक किसान तथा सरकार के बीच लगान पाने वाले अनेक बिचौलिए आ गए। बंगाल में कुछ स्थितियों में उनकी संख्या पचास तक पहुंच गई। असहाय खेतिहर रैयतों की दशा, जिन्हें ही अंततोगत्वा उच्च जमींदारों के झुंड का असहनीय बोझ उठाना

पड़ता था, इतनी खराब थी कि उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनमें से अनेक की हालत तो गुलामों जैसी थी।

जमींदारों तथा भूस्वामियों के उदय और फलने-फूलने का एक अत्यंत नुकसानदेह परिणाम था स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघर्ष के दौरान उनकी राजनीतिक भूमिका। संरक्षित राज्यों के राजाओं के साथ ये विदेशी शासकों के मुख्य राजनीतिक समर्थक बन गए तथा उन्होंने उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध किया। यह महसूस कर कि उनका अस्तित्व ब्रिटिश शासन के कारण है, उन्होंने ब्रिटिश सरकार को सदा बनाए रखने के लिए जी तोड़ कोशिश की।

कृषि में ठहराव और उसकी अवनति

कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव, अत्यधिक भूराजस्व निर्धारण, जमींदारी प्रथा के पनपने, बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता और किसानों की बढ़ती हुई दरिद्रता के फलस्वरूप भारतीय कृषि गतिहीन होने लगी और यहां तक कि उसका अपकर्ष भी होने लगा। परिणामस्वरूप प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम होने लगी। वर्ष 1901 तथा 1939 के बीच कुल कृषि उत्पादन 14 प्रतिशत कम हो गया।

कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव तथा बिचौलियों की बढ़ती हुई संख्या के कारण जमीन न सिर्फ छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गई बल्कि उसका अपखंडन भी हो गया। जमीन इतने छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गई कि उनमें से अधिकांश अपने जोतने वालों का भरण-पोषण भी नहीं कर सकते थे। बहुसंख्यक किसानों की अति दरिद्रता के कारण उनके पास इतने संसाधन नहीं होते थे जिनसे वे अच्छे मवेशी और बीजों, अधिक खाद तथा उर्वरकों और उत्पादन की उन्नत तकनीकों का इस्तेमाल कर कृषि में सुधार लाते। सरकार और जमींदार दोनों द्वारा चूसे जाने वाले किसान को कृषि में सुधार लाने के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती थी। आखिरकार जिस जमीन पर वह खेती करता था वह विरले ही उसकी अपनी संपत्ति होती थी और कृषि में सुधारों के कारण जो भी फायदा होता उसका अधिकांश दूरस्थ जमींदारों और महाजनों का गिरोह ले लेता। जमीन के उपविभाजन तथा अपखंडन ने भी सुधारों को मुश्किल बना दिया था।

इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों में धनी जमींदारों ने बहुधा जमीन में पूंजी लगाई जिससे उसकी उत्पादकता बढ़ सके और बढ़ी हुई आय में उनको हिस्सा मिल सके। मगर भारत में दूरस्थ जमींदार ने, वे नए रहे हों या पुराने कोई उपयोगी कार्य नहीं किया। वे केवल लगान प्राप्तकर्ता ही रहे। बहुधा जमीन में उनकी कोई जड़ें नहीं होती थीं और उन्होंने लगान वसूल करने के सिवाए उसमें कोई व्यक्तिगत दिलचस्पी भी नहीं ली। इसलिए, जमीन में उत्पादक निवेश करने की अपेक्षा अपने रैयतों को और भी चूसकर अपनी आय को बढ़ाना उन्होंने न सिर्फ संभव माना बल्कि श्रेयस्कर भी समझा।

सरकार कृषि के सुधार और आधुनिकीकरण में सहायता कर सकती थी। मगर सरकार ने अपने ऊपर इस प्रकार की कोई भी जिम्मेदारी स्वीकार करने से इंकार कर दिया। ब्रिटिश भारत की वित्तीय व्यवस्था की एक विशेषता यह थी कि जबकि कराधान का मुख्य बोझ किसान के कंधों पर था, सरकार ने उस पर उसका एक बहुत छोटा हिस्सा ही खर्च किया। किसान और कृषि की अवहेलना का एक उदाहरण था, लोक कार्यों और कृषि सुधारों की उपेक्षा। भारत सरकार ने 1905 तक रेलवे पर 3 अरब 60 करोड़ रूपए से अधिक खर्च किए मगर उसी दौरान सिंचाई पर उसने 50 करोड़ रूपए से कम खर्च किए। रेलवे की मांग ब्रिटिश व्यवसायी कर रहे थे जबकि सिंचाई से करोड़ों भारतीय किसानों का भला होता। तो भी सिंचाई ही एक ऐसा क्षेत्र था जिसमें सरकार ने आगे की ओर कुछ कदम बढ़ाए।

ऐसे समय जब सारे संसार में कृषि को आधुनिक बनाया जा रहा था तथा कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए जा रहे थे, भारतीय कृषि टेक्नोलोजी की दृष्टि से निश्चल बनी हुई थी, उसमें शायद ही किसी आधुनिक मशीन का इस्तेमाल हो रहा था। सबसे खराब बात यह थी कि साधारण उपकरण भी सदियों पुराने थे। उदाहरण के लिए, 1951 में केवल 9,30,000 लोहे के हल इस्तेमाल किए जा रहे थे जबकि काठ के हलों की संख्या 3 करोड़ 18 लाख थी। अजैविक उर्वरकों का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं होता था जबकि अधिकांश पशु खाद (उदाहरण के लिए गोबर, मल और मवेशियों की हड्डियां) बरबाद हो जाती थीं। वर्ष 1922-23 में कुल फसल वाली जमीन के केवल 1.9 प्रतिशत में ही उन्नत बीज का प्रयोग होता था। वर्ष 1938-39 तक यह प्रतिशत बढ़कर केवल 11 प्रतिशत तक ही पहुंच पाया था। इतना ही नहीं, कृषि शिक्षा पूर्णतया उपेक्षित थी। वर्ष 1939 में सारे भारत में केवल छः कृषि कालेज थे जिनमें सिर्फ 1,306 विद्यार्थी पढ़ते थे। बंगाल, बिहार, उड़ीसा और सिंध में एक भी कृषि कालेज नहीं था। स्वाध्याय के जरिए सुधार लाने में भी किसान समर्थ नहीं थे। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा या यहां तक कि साक्षरता तक का कुछ प्रसार नहीं हुआ था।

आधुनिक उद्योगों का विकास

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की एक महत्त्वपूर्ण घटना मशीनों के बड़े पैमाने पर आधारित उद्योगों की स्थापना थी। भारत में मशीन युग का आरंभ तब हुआ जब उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में सूती कपड़ा, जूट और कोयला खान उद्योगों की स्थापना हुई। पहली कपड़ा मिल 1853 में कावसजी नाना भाई ने बंबई में शुरू की, और पहली जूट मिल 1855 में रिशरा (बंगाल) में स्थापित की गई। इन उद्योगों का विस्तार धीरे-धीरे मगर लगातार हुआ। वर्ष 1879 में भारत में 56 सूती कपड़ा मिलें थीं जिनमें लगभग 43,000 लोग काम करते थे। वर्ष 1882 में 20 जूट मिलें थीं, जो अधिकतर बंगाल में थीं और उनमें लगभग 20,000 लोग काम करते थे। वर्ष 1905 तक भारत में 206 सूती मिलें हो गई थीं जिनमें करीब 1,96,000 लोग काम करते थे। वर्ष 1901 में 36 से भी अधिक मिलें थीं जिनमें करीब 1,15,000 लोग काम पर लगे थे। कोयला खान उद्योगों में 1906 में करीब एक लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ था। अन्य यांत्रिक उद्योग जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं सदी के शुरू में विकसित हुए उनमें कपास की ओटाई तथा दबाने, चावल, आटे तथा इमारती लकड़ी की मिलें, चर्म शोधनालय, ऊनी कपड़े के कारखाने, कागज और चीनी की मिलें, लोहा और इस्पात के कारखाने, तथा नमक, अभ्रक और शोरे जैसे खनिज उद्योग थे। बीसवीं सदी के चौथे दशक में सीमेंट, कागज, दियासलाई, चीनी और शीशा उद्योग विकसित हुए। मगर इन सब उद्योगों का अवरूद्ध विकास हुआ।

अधिकतर आधुनिक भारतीय उद्योगों पर ब्रिटिश पूंजी का स्वामित्व या नियंत्रण था। विदेशी पूंजीपति भारतीय उद्योग में ऊंचे मुनाफों की संभावनाओं के कारण उसकी ओर आकर्षित हुए। श्रम अत्यंत सस्ता था; कच्चे माल तुरंत और सस्ती दरों पर उपलब्ध थे, और अनेक वस्तुओं के लिए भारत और उसके पड़ोसियों ने तैयार बाजार उपलब्ध कराया। चाय, जूट और मैंगनीज जैसे अनेक भारतीय उत्पादनों के लिए सारे संसार में बना-बनाया बाजार था। दूसरी ओर, अपने देश में विदेशी पूंजीपतियों को लाभप्रद निवेश के अवसर कम मिल रहे थे। उस समय, औपनिवेशिक सरकार और उसके अधिकारी सभी प्रकार की सहायता तथा रियायतें देने को तैयार थे।

विदेशी पूंजी ने अनेक उद्योगों में भारतीय पूंजी को दबा दिया। केवल सूती कपड़ा उद्योग में आरंभ में भारतीयों का बहुत बड़ा हिस्सा था, और बीसवीं सदी

उन्नीसवीं सदी में कलकत्ता बंदरगाह का एक दृश्य। इंग्लैंड से ब्रिटिश उत्पादों को जहाज से यहाँ लाया जाता था

के चौथे दशक में चीनी उद्योग का विकास भारतीयों ने किया। भारतीय पूंजीपतियों को आरंभ से ही ब्रिटिश मैनेजिंग एजेंसियों और ब्रिटिश बैंकों की ताकत के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा। किसी भी उद्यम के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए भारतीय व्यवसायियों को उस क्षेत्र में प्रबल ब्रिटिश मैनेजिंग एजेंसियों के सामने झुकना पड़ता था। अनेक स्थितियों में भारतीयों की कंपनियों पर भी विदेशी स्वामित्व और नियंत्रण वाली मैनेजिंग एजेंसियों का दबदबा होता था। भारतीयों को बैंकों से ऋण मिलने में भी कठिनाई होती थी। अधिकतर बैंकों पर ब्रिटिश अर्थपतियों का प्रभाव था। अगर उनको कर्ज मिलते भी थे तो उन्हें ऊंची दरों पर ब्याज देने पड़ते थे जबकि विदेशी काफी आसान शर्तों पर कर्ज ले सकते थे। निःसंदेह, भारतीयों ने धीरे-धीरे अपने बैंक और बीमा कंपनियां विकसित करनी शुरू कर दीं। वर्ष 1914 में भारत की कुल बैंक जमा के 70 प्रतिशत से भी अधिक पर विदेशी बैंकों का अधिकार था; 1937 तक उनका हिस्सा बढ़कर 57 प्रतिशत हो गया।

भारतीय आर्थिक जीवन में अपना बोलबाला बनाए रखने के लिए भारत स्थित ब्रिटिश उद्यम ने मशीन और उपकरण देने वाले ब्रिटिश संभरणकर्ताओं, जहाजरानी, बीमा कंपनियों, विपणन संगठनों, सरकारी अधिकारियों तथा राजनीतिक नेताओं से घनिष्ठ संबंध का फायदा उठाया। इसके अलावा, सरकार ने भारतीय पूंजी की अपेक्षा विदेशी पूंजी का पक्ष लेने की नीति जानबूझ कर अपनाई।

भारत सरकार की रेलवे नीति ने भी भारतीय उद्यम के प्रति भेदभाव किया; रेलवे भाड़े की दरों नें देशी उत्पादनों के बदले विदेशों से आई वस्तुओं को प्रोत्साहन दिया। आयातित वस्तुओं की अपेक्षा भारतीय वस्तुओं का वितरण कठिन और खर्चीला था।

भारतीयों द्वारा उद्योग स्थापित करने में एक अन्य गंभीर कठिनाई यह थी कि देश में भारी या पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का लगभग पूरा अभाव था। इन

उद्योगों के बिना अन्य उद्योगों का तेज और स्वतंत्र विकास नहीं हो सकता था। लोहा और इस्पात उत्पन्न करने या मशीन बनाने के लिए भारत के पास बड़े संयंत्र नहीं थे। इंजीनियरिंग उद्योगों के नाम पर कुछ छोटी-छोटी मरम्मती वाले वर्कशाप थे और धातु उद्योगों के नाम पर थोड़े से लोहे और पीतल की फाउंड्रियां थीं। भारत में इस्पात का उत्पादन सबसे पहले 1913 में हुआ। इस प्रकार भारत में इस्पात, धातुकर्म, मशीन, रसायन और तेल जैसे बुनियादी उद्योगों का अभाव था। विद्युत शक्ति के विकास में भी भारत पिछड़ा हुआ था।

मशीनों पर आधारित उद्योगों के अलावा, उन्नीसवीं सदी में नील, चाय और काफी जैसे बागान उद्योगों का भी विकास हुआ। उन पर पूरी तरह से यूरोपीय स्वामित्व था। नील का इस्तेमाल सूती कपड़ा उद्योग में रंगाई के लिए होता था। नील से रंग बनाने का उद्योग भारत में अठारहवीं सदी के अंत में शुरु किया गया। वह बंगाल और बिहार में फला-फूला। किसानों पर अत्याचार करने के कारण निलहे (Indigo planters) बदनाम हो गए। उन्होंने नील की खेती करने के लिए किसानों को मजबूर किया। इस उत्पीड़न का सजीव चित्रण प्रसिद्ध बंगला लेखक दीनबंधु मित्र ने अपने नाटक 'नील दर्पण' में 1860 में किया। एक संश्लिष्ट रंग के आविष्कार से नील उद्योग को बड़ा धक्का लगा और धीरे-धीरे उसका ह्रास हो गया। चाय उद्योग का विकास 1850 के बाद असम, बंगाल, दक्षिण भारत तथा हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में हुआ। चाय उद्योग पर विदेशी स्वामित्व होने के कारण सरकार ने लगान मुक्त जमीन तथा अन्य सुविधाएं देकर उनकी सहायता की। कालक्रम से चाय का उपयोग सारे भारत में होने लगा। चाय निर्यात की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु बन गई। इस दौरान काफी बागानों का विकास दक्षिण भारत में हुआ।

बागान तथा विदेशी स्वामित्व वाले अन्य उद्योगों
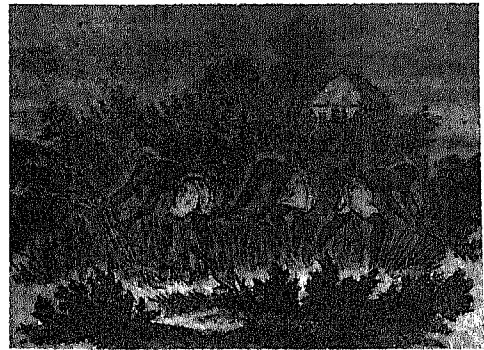
नील का एक बागान

से भारतीय जनता को कोई खास फायदा नहीं हुआ। उनके वेतन और मुनाफे देश से बाहर जाते थे। उन्होंने अपने वेतन का एक बड़ा भाग उच्च वेतनभोगी विदेशियों पर खर्च किया। उन्होंने अपने अधिकांश उपकरण विदेशों में खरीदे। उनके अधिकतर तकनीकी कर्मचारी विदेशी थे। उनके अधिकांश उत्पादन विदेशी बाज़ारों में बिकते थे और बिक्री से प्राप्त विदेशी मुद्रा का इस्तेमाल ब्रिटेन करता था। इन उद्योगों से भारतीयों को एक ही फायदा हुआ कि अकुशल लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा हुए। मगर इन उद्योगों में अधिकांश मजदूरों को बहुत कम मजदूरी मिलती थी तथा उन्हें अत्यन्त कठिन स्थितियों में लंबे समय तक काम करना पड़ता था। इसके अलावा, बागानों में लगभग गुलामी की स्थिति थी।

कुल मिलाकर भारत में औद्योगिक प्रगति बड़ी धीमी और दुःखदायी रही। औद्योगिक प्रगति उन्नीसवीं सदी में सूती कपड़ा, जूट उद्योगों और चाय बागानों तथा बीसवीं सदी के चौथे दशक में चीनी और सीमेंट तक ही सीमित रही। वर्ष 1946 में भी, कारखानों में काम करने वाले 40 प्रतिशत मजदूर सूती कपड़ा और जूट उद्योगों में लगे हुए थे। उत्पादन और रोजगार दोनों दृष्टियों से भारत का आधुनिक औद्योगिक विकास अन्य देशों के आर्थिक विकास या भारत की

आवश्यकताओं की तुलना में नगण्य था। वस्तुतः उसने देशी हस्तशिल्पों के ह्रास को भी पूरा नहीं किया। उसके गरीबी और जमीन पर जनसंख्या के बढ़ते हुए दबाव की समस्याओं पर कोई खास असर नहीं पड़ा। भारत के औद्योगीकरण की नगण्यता इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि 1951 में 35 करोड़ 70 लाख की कुल जनसंख्या में से केवल 23 लाख लोग आधुनिक औद्योगिक उद्यमों में लगे थे। इसके अलावा, 1858 के बाद शहरी और ग्रामीण हस्तशिल्पों का ह्रास अनवरत जारी रहा। भारतीय योजना आयोग ने हिसाब लगाया है कि प्रोसेसिंग तथा विनिर्माण में लगे लोगों की संख्या 1901 में 1 करोड़ 3 लाख थी जो घटकर 1951 में 88 लाख हो गई यद्यपि इस दौरान जनसंख्या में लगभग 40 प्रतिशत वृद्धि हुई। सरकार ने पुराने देशी उद्योगों के संरक्षण, पुनर्स्थापना, पुनःसंगठन तथा आधुनिक उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए कोई प्रयास नहीं किया।

इसके अलावा, आधुनिक उद्योग भी सरकारी सहायता के बिना और बहुधा ब्रिटिश नीति के विरूद्ध विकसित हुए। ब्रिटिश विनिर्माता भारतीय सूती कपड़ा उद्योग तथा अन्य उद्योग को अपना प्रतिद्वंद्वी समझते थे और उन्होंने सरकार पर दबाव डाला कि वह भारत में औद्योगिक विकास को न सिर्फ प्रोत्साहित करे बल्कि उसे सक्रिय रूप से अनुत्साहित करे। इस प्रकार ब्रिटिश नीति ने भारतीय उद्योगों के विकास को कृत्रिम रूप से प्रतिबंधित तथा धीमा किया।

इतना ही नहीं, भारतीय उद्योगों को अपने शैशव काल में संरक्षण की आवश्यकता थी। उनका विकास उस समय हुआ जब ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमरीका ने शक्तिशाली उद्योग स्थापित कर लिए थे और इसलिए, भारतीय उद्योग उनकी प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकते थे। वस्तुतः ब्रिटेन सहित सभी अन्य देशों ने विदेशी विनिर्मित वस्तुओं के आयात पर भारी आयात शुल्क लगाकर अपने नवजात उद्योगों को संरक्षण दिया था। मगर भारत स्वतंत्र देश नहीं था। उसकी नीतियों ब्रिटेन निर्धारित करता था। नीति-निर्धारण ब्रिटिश उद्योगपतियों के हितों में किया जाता था। ब्रिटिश उद्योगपतियों ने अपने उपनिवेश पर मुक्त व्यापार की नीति लाद दी थी। इसी कारण भारत सरकार ने, जिस प्रकार यूरोप और जापान की सरकारें अपने शिशु-उद्योगों को सहायता दे रही थी उस प्रकार नव-स्थापित भारतीय उद्योगों को वित्तीय तथा अन्य सहायता देने से इंकार कर दिया। उसने तकनीकी शिक्षा के लिए पर्याप्त इंतजाम नहीं किए। 1951 तक तकनीकी शिक्षा बहुत पिछड़ी रही। इससे देश का औद्योगिक पिछड़ापन और भी बढ़ गया। 1939 में देश भर में केवल 7 इंजीनियरिंग कालेज थे जिनमें 2,217 विद्यार्थी पढ़ते थे। अनेक भारतीय परियोजनाएं उदाहरण के लिए, जहाजों, रेल इंजनों, मोटर गाड़ियों, और हवाई जहाजों के निर्माण से संबंधित परियोजनाएं इसलिए नहीं शुरू की जा सकीं कि सरकार ने कोई सहायता देने से इंकार कर दिया।

अंततोगत्वा बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशकों में, उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीय पूंजीपति वर्ग के दबावों के कारण भारत सरकार को मजबूर होकर भारतीय उद्योगों को तटकर संबंधी कुछ सरंक्षण देना पड़ा। मगर फिर यहां भी सरकार ने भारतीयों के उद्योगों के प्रति सौतेली मां जैसा व्यवहार किया। भारतीयों के उद्योगों जैसे सीमेंट, लोहा और इस्पात और शीशा को या तो सरंक्षण ही नहीं दिया गया या दिया गया तो वह बहुत अपर्याप्त था। इसके अलावा, ब्रिटिश आयातित वस्तुओं को 'साम्राज्यी वरीयता' (Imperial Preferences) की प्रणाली के अंतर्गत भारतीयों के जोरदार विरोध के बावजूद, विशेष रियायतें दी गईं।

भारतीय औद्योगिक विकास की एक खास बात यह थी कि वह क्षेत्रीय दृष्टि से अत्यंत असंतुलित था। भारतीय उद्योग देश के कुछ क्षेत्रों और शहरों में ही

संकेंद्रित थे। देश के अधिकतर भाग बिल्कुल अर्ध-विकसित थे। इस असमान क्षेत्रीय आर्थिक विकास के कारण न केवल आय के वितरण में असमानता आई बल्कि राष्ट्रीय एकीकरण के स्तर पर भी प्रभाव पड़ा। इससे एक एकीकृत भारत के निर्माण का कार्य अधिक कठिन हो गया।

देश के सीमित औद्योगिक विकास का भी एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज में दो नए सामाजिक वर्गों ने जन्म लिया और उनका विकास हुआ। ये वर्ग थे—औद्योगिक पूंजीपति वर्ग तथा आधुनिक मजदूर वर्ग। ये दोनों वर्ग भारतीय इतिहास में बिल्कुल नए थे क्योंकि आधुनिक खानें, उद्योग और परिवहन के साधन नए थे।

यद्यपि ये वर्ग भारतीय जनसंख्या के अत्यंत छोटे भाग थे तथापि उन्होंने नई टेक्नोलोजी, आर्थिक संगठन की नई प्रणाली, नए सामाजिक संबंधों, नए विचारों और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व किया। वे पुरानी परंपराओं, रीति-रिवाजों, जीवन के तौर-तरीकों से दबे हुए नहीं थे। सर्वोपरि बात यह थी कि उनका दृष्टिकोण अखिल भारतीय था। इसके अलावा देश के औद्योगिक विकास में दोनों की गहरी दिलचस्पी थी। इसलिए उनका आर्थिक और राजनीतिक महत्त्व तथा उनकी भूमिकाएं उनकी संख्या के अनुपात में काफी अधिक थीं।

दरिद्रता और अकाल

भारत में ब्रिटिश शासन की एक प्रमुख बात, तथा ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का एक खास परिणाम हुआ भारतीय जनता में अत्यंत दरिद्रता का साम्राज्य। यद्यपि इतिहासकारों में इस बात को लेकर मतभेद हैं कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में गरीबी बढ़ती जा रही थी या नहीं; तथापि इस तथ्य पर कोई मतभेद नहीं है कि पूरे ब्रिटिश शासन काल के दौरान अधिकतर भारतीय हमेशा भुखमरी के कगार पर रहते थे। समय बीतने के साथ-साथ भारतीयों के लिए रोजगार या जीविका प्राप्त करना कठिन होता गया। ब्रिटिश आर्थिक शोषण, देशी उद्योगों का ह्रास, उनकी जगह लेने में आधुनिक उद्योगों की विफलता, करों की ऊंची दरें, भारत से धन ढोकर ब्रिटेन ले जाना, कृषि का एक पिछड़ा हुआ ढांचा तथा गरीब किसानों का जमींदारों, भूस्वामियों, राजाओं, महाजनों, व्यापारियों और राज्य द्वारा शोषण—इन सबने भारतीय जनता को अत्यंत दरिद्र बना दिया तथा उसे प्रगति करने नहीं दिया। भारत की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था एक निम्न आर्थिक स्तर पर ठहरी रही।

जनता की दरिद्रता की पराकाष्ठा अकालों की एक श्रृंखला में हुई, जिन्होंने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत के सभी हिस्सों में अपनी विनाशकारी लीला दिखाई। इनमें से पहला अकाल पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 1860-61 में पड़ा जिसमें दो लाख आदमियों की जानें गई। वर्ष 1865-66 में अकाल ने उड़ीसा, बंगाल, बिहार और मद्रास को धर दबोचा और 20 लाख लोगों की जानें ले लीं। केवल उड़ीसा में 10 लाख लोग मर गए। 1868-70 के अकाल में 14 लाख से अधिक लोग पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बंबई और पंजाब में मर गए। राजपूताना भी अकाल से प्रभावित था। वहां के अनेक राज्यों को अपनी एक-चौथाई से एक-तिहाई जनसंख्या तक से हाथ धोना पड़ा।

1943 में बंगाल का अकाल—जैनुल आबेदीन द्वारा बनाया गया रेखा चित्र

उस समय तक का शायद सबसे भंयकर अकाल 1876-78 में मद्रास, मैसूर, हैदराबाद, महाराष्ट्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब में पड़ा। महाराष्ट्र में 8 लाख लोग मरे। मद्रास में लगभग 35 लाख लोगों की जानें गईं। मैसूर को अपनी करीब 20 प्रतिशत जनसंख्या से हाथ धोना पड़ा तथा उत्तर प्रदेश में 12 लाख से अधिक लोग मर गए। सूखे के कारण 1896-97 में देशव्यापी अकाल पड़ा जिस से साढ़े नौ करोड़ से अधिक लोग प्रभावित हुए जिनमें से करीब 45 लाख लोग मर गए। और फिर 1899-1900 का अकाल उसके तुरंत ही बाद आया और उससे व्यापक तबाही हुई। राहत कार्यों द्वारा लोगों की जानें बचाने में सरकारी प्रयत्नों के बावजूद 25 लाख से अधिक व्यक्ति मर गए। इन बड़े अकालों के अलावा अनेक स्थानीय अकाल पड़े तथा अभाव की स्थितियां आईं। एक ब्रिटिश लेखक विलियम डिग्बी ने हिसाब लगाया है कि 1854 से 1901 तक कुल मिलाकर 2,88,25,000 से अधिक लोग अकाल से मरे। एक और अकाल 1943 में बंगाल में पड़ा जिसमें करीब 30 लाख लोग मर गए। ये अकाल और उनमें मरने वालों की भारी संख्या इस बात का संकेत देती है कि गरीबी और भुखमरी की जड़ें भारत में कितनी गहरी हो गई थीं।

भारत स्थित अनेक अंग्रेज़ अधिकारियों ने उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारत की दरिद्रता की भंयकर वास्तविकता को स्वीकार किया। उदाहरण के लिए, गवर्नर-जनरल की कौंसिल के एक सदस्य चार्ल्स इलियट ने टिप्पणी की :

> "मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आधी कृषि जनसंख्या को एक साल के अंत से दूसरे साल के अंत तक यह पता नहीं होता कि पेट भर खाना कैसा होता है।"

'इंपीरियल गजेटियर' के संकलनकर्ता विलियम हंटर ने स्वीकार किया कि "भारत के 4 करोड़ लोगों को अपर्याप्त भोजन पर जीवन बिताने की आदत हो गई है।" बीसवीं सदी में स्थिति और भी खराब हो गई। एक भारतीय को उपलब्ध भोजन की मात्रा में 1911 और 1941 के बीच 30 वर्षों के दौरान 29 प्रतिशत तक की कमी हुई।

भारत के आर्थिक पिछड़ेपन और गरीबी के अनेक अन्य संकेत थे। राष्ट्रीय आय संबंधी प्रसिद्ध विशेषज्ञ कोलिन क्लार्क ने हिसाब लगाया है कि 1925-34 के दौरान संसार में सबसे कम प्रति व्यक्ति आय भारत और चीन की थी। एक अंग्रेज़ की आय एक भारतीय की आय से 5 गुना अधिक थी। इसी प्रकार बीसवीं सदी के चौथे दशक के दौरान आधुनिक चिकित्सा विज्ञानों तथा सफाई के कारण हुई प्रगति के बावजूद एक भारतीय की औसत जीवन प्रत्याशा केवल 32 वर्ष थी। अधिकतर पश्चिम यूरोपीय और उत्तर अमरीकी देशों में औसत आयु 60 वर्ष से ऊपर थी।

भारत का आर्थिक पिछड़ापन और उसकी निर्धनता प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण नहीं थी, वह मनुष्य निर्मित थी। भारत के प्राकृतिक संसाधन भरपूर मात्रा में थे। यदि उनका ठीक प्रकार से प्रयोग किया जाता तो वे जनता में पर्याप्त समृद्धि ला सकते थे। भारत एक विरोधाभासी चित्र प्रकट करता था—एक समृद्ध देश, जिसमें निर्धन लोग रहते थे। इस स्थिति के कारण थे—विदेशी शासन और शोषण और एक पिछड़ी हुई कृषि और औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था जो वस्तुतः उसके पूरे ऐतिहासिक और सामाजिक विकास का परिणाम थी।

भारत की भौगोलिक स्थिति या प्राकृतिक संसाधनों की कमी या यहां के लोगों में अंतर्निहित कोई चारित्रिक कमी अथवा क्षमता का अभाव भारत की गरीबी का कारण नहीं था। यह मुगल काल का अवशेष भी नहीं था और न ही यहां की गरीबी ब्रिटिश पूर्व अतीत का नतीजा था। मुख्य रूप से यह पिछली दो सदियों के इतिहास का नतीजा था। भारत इसके पहले किसी भी रुप में पश्चिमी देशों की तुलना में पिछड़ा हुआ देश नहीं था। उस समय

दुनिया के देशों के बीच रहन-सहन के स्तर में बहुत ज्यादा फर्क नहीं था। संक्षेप में, इस दौरान पश्चिमी देशों का विकास हुआ, उनमें संपन्नता आई और भारत को आधुनिक उपनिवेशवाद के अधीन होना पड़ा तथा इसका विकास अवरूद्ध कर दिया गया। जिन दिनों भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था, आज के सभी विकसित देशों ने लगभग उसी दौरान अपना विकास किया था। अधिकांश विकसित देशों का विकास 1850 के बाद हुआ। दुनिया के विभिन्न हिस्सों के जीवन स्तर में 1750 तक बहुत अधिक फर्क नहीं था। इस संबंध में ध्यान देने की दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के शुरू होने की तिथियां और बंगाल पर ब्रिटेन की विजय की तिथि बहुत पास पास है।

एक आधारभूत तथ्य यह है कि जिस सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रक्रिया ने ब्रिटेन में औद्योगिक विकास और सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगति को जन्म दिया उसी ने भारत में आर्थिक अल्पविकास और सामाजिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन को जन्म देकर उसको कायम रखा। इसकी वजह साफ है। ब्रिटेन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अपनी अर्थव्यवस्था के अधीन रखा तथा अपनी जरूरतों के मुताबिक भारत की आधारभूत सामाजिक प्रवृत्तियों को उसने निर्धारित किया। इसका नतीजा यह हुआ कि भारतीय कृषि और उद्योग में ठहराव आया। जमींदार, भूस्वामियों, राजे रजवाड़ों, सूदखोरों, सौदागरों, पूंजीपतियों और विदेशी शासकों तथा उनके अहलकारों ने किसानों और मजदूरों का जमकर शोषण किया। देश में गरीबी और बीमारी फैली और लोग अर्धभुखमरी के कगार पर पहुंच गए।

अभ्यास

1. निम्नांकित पदों के अर्थ स्पष्ट कीजिए :
   संरक्षण की नीति, साम्राज्यकीय प्राथमिकता, अनुपस्थित भूस्वामी।
2. ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत को किस प्रकार आर्थिक उपनिवेश के रूप में बदल दिया गया?
3. उन विभिन्न कारकों का विवेचन कीजिए जिनके कारण अंततः भारतीय उद्योग चौपट हो गए भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर इसका क्या प्रभाव पड़ा?
4. ब्रिटिश नीतियों का भारत के किसानों पर क्या असर पड़ा, इसका विवेचन कीजिए। उन कारकों को स्पष्ट कीजिए जिनके कारण ग्रामीण दरिद्रता पैदा हुई तथा भारत में बहुधा अकाल पड़े।
5. वे कौन से कारण थे जिनके चलते भारत में पुराने जमींदार खत्म हो गए और नए भूस्वामी अस्तित्व में आए। पुरानी जमींदारी प्रथा की तुलना में नए भूस्वामियों की क्या विशेषताएं थीं।
6. ब्रिटिश शासन के दौरान जो न्याय प्रणाली तथा कानून व्यवस्था चलाई गई, उसने सूदखोरों को किस तरह फायदा पहुंचाया।
7. ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कृषि का विकास अवरूद्ध था। इसके कारणों का विवेचन कीजिए।
8. भारत में आधुनिक उद्योगों के विकास की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए। ब्रिटिश शासन ने किस तरह इन उद्योगों के विकास पर रूकावट डाली।

9. भारत के मानचित्र में उन केंद्रों को दर्शाइए जहां ब्रिटिश शासन के दौरान आधुनिक उद्योग स्थापित किए गए थे।
10. ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में पड़ने वाले अकालों की सूची तैयार कीजिए। उनके सामने जिस वर्ष अकाल पड़ा था, उसका भी संकेत कीजिए और यह भी बताइए कि किस क्षेत्र में अकाल पड़ा और उसमें कितने लोगों की मृत्यु हुई।

नए भारत का उदय– राष्ट्रवादी आंदोलन, 1858-1905

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेज़ी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का आरंभ हुआ। दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव पड़ी। आगे चलकर इसी के नेतृत्व में विदेशी शासन से स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चलाया, और अंत में 15 अगस्त, 1947 को भारत मुक्त हो गया।

विदेशी प्रभुत्व के परिणाम

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब रूप में उदित हुआ। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता दी। ब्रिटिश शासन तथा उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामों ने ही भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के लिए भौतिक नैतिक और बौद्धिक परिस्थितियां तैयार कीं।

इस आंदोलन की जड़ें भारतीय जनता के हितों तथा भारत में ब्रिटिश हितों के टकराव में थीं। अंग्रेजों ने अपने हितों को पूरा करने के लिए ही भारत को अधीन बनाया था और इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर वे भारत का शासन चलाते थे। वे अक्सर ब्रिटेन के लाभ के लिए भारतीयों की भलाई को भी ध्यान में नहीं रखते थे। धीरे-धीरे भारतीयों ने अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेजों के दूसरे प्रमुख वर्गों के हितों के लिए उनके अपने हितों का बलिदान दिया जाता रहा है।

स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण बनता गया और भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का आधार यही तथ्य था। यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्व बन चुका था। विशेष बात यह है कि भारतीयों की बढ़ती हुई संख्या इस तथ्य को समझने लगी थी।

भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समूह ने धीरे-धीरे यह देखा कि उसके हित अंग्रेज़ शासकों के हाथों में असुरक्षित हैं। किसान देख रहे थे कि सरकार जमीन की मालगुजारी के नाम पर उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा उनसे ले लेती थी। सरकार और उसकी पुलिस, उसकी अदालतें और उसके अधिकारी, सभी उन जमींदारों और भूस्वामियों के समर्थक और रक्षक थे जो किसान से कसकर लगान वसूलते थे, वे उन व्यापारियों तथा सूदखोरों के रक्षक थे जो तरह-तरह से किसान को धोखा देते, उसका शोषण करते तथा उसकी जमीन उससे छीन लेते थे। जब कभी किसान जमींदारों और सूदखोरों के दमन के खिलाफ उठ खड़े होते, पुलिस तथा सेना कानून और व्यवस्था के नाम पर उनको कुचल दिया करती थी।

दस्तकार और शिल्पी यह महसूस कर रहे थे कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तबाह कर रही थी और उनके पुनर्वास के लिए कुछ नहीं कर रही थी।

आगे चलकर बीसवीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के मजदूरों ने भी पाया कि सारी जबानी हमदर्दी के बावजूद सरकार पूंजीपतियों का, खासकर विदेशी पूंजीपतियों का ही साथ देती थी। जब कभी मजदूर ट्रेड यूनियन बनाने तथा हड़तालों, प्रदर्शनों और दूसरे संघर्षों के द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करते, सरकार का पूरा तंत्र उनके खिलाफ उठ खड़ा होता। इसके अलावा उन्होंने यह भी महसूस किया कि बढ़ती बेरोजगारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगीकरण से संभव है, और यह कार्य केवल एक स्वाधीन सरकार कर सकती है।

भारतीय समाज के दूसरे समूह भी कुछ कम असंतुष्ट नहीं थे। शिक्षित भारतीयों का उभरता हुआ वर्ग अपने देश की दयनीय आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को समझने के लिए नए-नए प्राप्त आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहा था। पहले जिन लोगों ने 1857 में ब्रिटिश शासन का इस आशा में समर्थन किया था कि विदेशी होने के बावजूद यह शासन देश को एक आधुनिक तथा औद्योगिक देश बनाएगा, वे अब धीरे-धीरे निराश होने लगे थे। आर्थिक दृष्टि से उन्हें आशा थी कि ब्रिटिश पूंजीवाद ने जैसे ब्रिटेन में उत्पादक शक्तियों को विकसित किया था, उसी प्रकार वह भारत की उत्पादक शक्तियों को भी विकसित करेगा। लेकिन उन्होंने यह पाया कि ब्रिटेन के पूंजीवाद के इशारों पर भारत में ब्रिटिश शासन ने जो नीतियां अपनाई थीं वे देश को आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा या अल्पविकसित बनाए हुए थीं और उसकी उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक हो रही थीं।

राजनीतिक स्तर पर शिक्षित भारतीय समुदाय को यह लगा कि अंग्रेजों ने पहले भारत को स्वशासन का मार्ग दिखाने के जो भी दावे किए थे, उन सबको वे भूल चुके थे। अधिकांश ब्रिटिश अधिकारियों तथा राजनीतिक नेताओं ने खुली घोषणा की थी कि अंग्रेज़ भारत में बने रहेंगे। इसके अलावा भाषण, प्रेस तथा व्यक्ति को और अधिक स्वतंत्रता देने की जगह अंग्रेज़ उन पर अधिकाधिक प्रतिबंध लगाते जा रहे थे। अंग्रेज़ अधिकारियों तथा लेखकों ने भारतीयों को जनतंत्र या स्वशासन की दृष्टि से अयोग्य घोषित कर दिया था। संस्कृति के क्षेत्र में भी शासक उच्च शिक्षा और आधुनिक विचारों के प्रसार के बारे में अधिकाधिक नकारात्मक, बल्कि शत्रुतापूर्ण रवैया अपना रहे थे।

उभरते हुए भारतीय पूंजीपति वर्ग में बहुत धीरे-धीरे राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना विकसित हुई। लेकिन इस वर्ग ने भी धीरे-धीरे महसूस किया कि वह साम्राज्यवाद के कारण नुकसान उठा रहा था। सरकार की व्यापार, चुंगी, कर तथा यातायात संबंधी नीतियों के कारण इसके विकास में भारी बाधाएं आ रही थीं। नया तथा कमजोर वर्ग होने के नाते इसे अपनी कमजोरियों की भरपाई के लिए सरकार की सक्रिय सहायता की जरूरत थी। लेकिन उनको कोई सहायता नहीं मिली। इसके विपरीत सरकार और उसकी नौकरशाही उन विदेशी पूंजीपतियों का साथ दे रही थीं जो अपने विशाल संसाधनों के साथ भारत आकर यहां के सीमित औद्योगिक क्षेत्र को हथिया रहे थे। भारतीय पूंजीपतियों का विशेष विरोध विदेशी पूंजीपतियों की सख्त प्रतियोगिता के प्रति था। इस तरह भारतीय पूंजीपतियों ने भी महसूस किया कि उनके अपने स्वतंत्र विकास तथा साम्राज्यवाद के बीच एक अंतर्विरोध था, और यह कि एक राष्ट्रीय सरकार ही भारतीय व्यापार और उद्योगों के तीव्र विकास की परिस्थितियां तैयार कर सकती थी।

जैसा कि हमने पहले देखा है, भारतीय समाज में केवल जमींदार, भूस्वामी तथा राजे-महाराजे ही ऐसी वर्ग थे जिनके हित विदेशी शासकों के हितों से मेल

खाते थे और इसलिए वे अंत तक विदेशी शासन का साथ देते रहे। लेकिन इन वर्गों से भी बहुत से लोग राष्ट्रीय आंदोलन में आए। उस समय के राष्ट्रवादी वातावरण में देशभक्ति की भावना ने बहुतों को प्रभावित किया। इसके अलावा प्रजातीय भेदभाव तथा श्रेष्ठता की नीतियों ने प्रत्येक विचारशील, स्वाभिमानी भारतीय में घृणा जगाकर उसे उठ खड़ा किया, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न रहा हो। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं ब्रिटिश शासन के विदेशी चरित्र ने भी राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया को जन्म दिया। कारण यह है कि विदेशी दासता गुलाम जनता के दिलों में हमेशा ही देशभक्ति की भावनाएं पैदा करती है।

संक्षेप में, विदेशी साम्राज्यवाद का अपना चरित्र तथा भारतीय जनता पर उसका हानिकारक प्रभाव, इन बातों के कारण ही भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन का धीरे-धीरे जन्म और विकास हुआ। यह आंदोलन एक राष्ट्रीय आंदोलन था क्योंकि यह समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों को प्रेरित कर रहा था कि वे अपने मतभेद भुलाकर अपने शत्रु के खिलाफ एकजुट हों।

देश का प्रशासकीय और आर्थिक एकीकरण

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भारत का एकीकरण हो चुका था और वह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का विकास आसानी से हुआ। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे पूरे देश में सरकार की एकसमान, आधुनिक प्रणाली लागू कर दी थी और इस तरह इसका प्रशासकीय एकीकरण हो चुका था। ग्रामीण और स्थानीय आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विनाश तथा अखिल भारतीय पैमाने पर आधुनिक व्यापार तथा उद्योग की स्थापना के कारण भारत का आर्थिक जीवन निरंतर एक इकाई के रूप में ढलता चला गया तथा देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के आर्थिक हित परस्पर संबद्ध हुए। उदाहरण के लिए, भारत के किसी एक भाग में अकाल फूटता या वस्तुओं की कमी होती तो दूसरे सभी भागों में भी खाद्य-सामग्री की कीमतों तथा उपलब्धता पर उसका प्रभाव पड़ता था। इसके अलावा, रेलवे, तार, तथा एकीकृत डाक व्यवस्था के शुभारंभ ने भी देश को एकजुट बना दिया था और जनता, खासकर नेताओं के पारस्परिक संपर्क को बढ़ावा दिया था।

इस सिलसिले में भी, विदेशी शासन का अस्तित्व ही एकता का कारण बन गया, हालांकि यह शासन सामाजिक वर्ग, जाति, धर्म या क्षेत्र का भेद किए बिना पूरी भारतीय जनता का दमन करता था। पूरे देश के लोगों ने देखा कि वे एक ही शत्रु अर्थात ब्रिटिश शासन, के हाथों पीड़ित थे। एक तरफ तो एक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण बन गया, और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष तथा उस संघर्ष के दौरान उपजी एकजुटता की भावना ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमी विचार और शिक्षा

उन्नीसवीं सदी में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा के प्रसार के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में भारतीयों ने एक आधुनिक, बुद्धिसंगत, धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक तथा राष्ट्रवादी राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। वे यूरोपीय राष्ट्रों के समसामयिक राष्ट्रवादी आंदोलनों का अध्ययन, उसकी प्रशंसा तथा उनका अनुकरण करने के प्रयत्न भी करने लगे। रूसो, पेन, जान स्टुअर्ट मिल तथा दूसरे पाश्चात्य विचारक उनके राजनीतिक मार्गदर्शक बन गए जबकि मैजिनी, गैरीबाल्डी तथा आयरलैंड के राष्ट्रवादी नेता उनके राजनीतिक आदर्श हो गए।

विदेशी दासता के अपमान की चुभन को सबसे पहले इन्हीं शिक्षित भारतीयों ने महसूस किया। विचारों से आधुनिक बनकर इन लोगों ने विदेशी शासन की बुराईयों के अध्ययन की योग्यता भी प्राप्त कर ली।

उन्हें एक आधुनिक, मजबूत समृद्ध और एकताबद्ध भारत की कल्पना से प्रेरणा प्राप्त होती रही। कालांतर में, इन्हीं में से बेहतरीन तत्व राष्ट्रीय आंदोलन के नेता और संगठनकर्ता बने।

हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि राष्ट्रीय आंदोलन आधुनिक शिक्षा प्रणाली की उपज नहीं था, बल्कि वह ब्रिटेन तथा भारत के हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ था। इस प्रणाली ने किया यह कि शिक्षित भारतीयों को पाश्चात्य विचार अपनाकर राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व संभालने तथा उसे एक जनतांत्रिक और आधुनिक दिशा देने में समर्थ बनाया। वास्तविकता यह है कि स्कूलों तथा कालेजों में अधिकारीगण विदेशी शासन के प्रति विनम्रता और सेवा का भाव ही जगाने के प्रयत्न करते थे। राष्ट्रवादी विचार तो आधुनिक विचारों के सामान्य प्रसार के कारण आए। चीन तथा इंडोनेशिया जैसे दूसरे एशियाई देशों में तथा पूरे अफ्रीका में भी आधुनिक और राष्ट्रवादी विचार फैले हालांकि वहां आधुनिक स्कूलों और कालेजों की संख्या बहुत ही कम थी।

आधुनिक शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों के दृष्टिकोणों तथा हितों में एक सीमा तक एकजुटता और समानता पैदा की। इस सिलसिले में अंग्रेजी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह आधुनिक विचारों के प्रसार का साधन बन गई। यह देश के विभिन्न भाषाई क्षेत्रों के शिक्षित भारतीयों के बीच विचारों के आदान-प्रदान तथा संपर्क का भी माध्यम बन गई। लेकिन जल्दी ही अंग्रेजी साधारण जनता में आधुनिक ज्ञान के प्रसार में बाधक भी बन गई। यह शिक्षित नागरिक वर्गों को साधारण जनता, खासकर ग्रामीण जनता से अलग रखने का काम भी करने लगी। भारत के राजनीतिक नेताओं ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझा। दादाभाई नौरोजी, सैयद अहमद खान, और जस्टिस रानाडे से लेकर तिलक और गांधीजी तक सभी ने शिक्षा प्रणाली में भारतीय भाषाओं को एक बड़ी भूमिका दिए जाने की मांग पर आंदोलन किए। वास्तव में, जहां तक साधारण जनता का सवाल था, आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं, उनमें विकसित हो रहे साहित्य तथा सबसे अधिक तो भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय प्रेस के कारण हुआ।

प्रेस तथा साहित्य की भूमिका

वह प्रमुख साधन प्रेस था जिसके द्वारा राष्ट्रवादी भारतीयों ने देशभक्ति की भावनाओं का, आधुनिक आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक विचारों का प्रचार किया तथा एक अखिल भारतीय चेतना जगाई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी समाचारपत्र निकले। उनके पन्नों पर सरकारी नीतियों की लगातार आलोचना होती थी, भारतीय दृष्टिकोण को सामने रखा जाता था, लोगों को एकजुट होकर राष्ट्रीय कल्याण के काम करने को कहा जाता था, तथा जनता के बीच स्वशासन, जनतंत्र, औद्योगीकरण, आदि के विचारों को लोकप्रिय बनाया जाता था। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं को भी परस्पर विचारों को आदान-प्रदान करने में प्रेस ने समर्थ बनाया।

उपन्यासों, निबंधों, देशभक्तिपूर्ण काव्य, आदि के रूप में राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। बंगला में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय तथा रवींद्रनाथ टैगोर, असमी में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, मराठी में विष्णु शास्त्री चिपलुणकर तमिल में सुब्रामन्य भारती, हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र और उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे।

भारत के अतीत की खोज

अनेक भारतीय इस कदर पस्त हो चुके थे कि वे अपनी स्वशासन की क्षमता में एकदम भरोसा खो बैठे थे। इसके अलावा उस समय के कई ब्रिटिश अधिकारी और लेखक लगातार यह बात दोहराते रहते थे कि

भारतीय लोग कभी भी अपना शासन चलाने के योग्य नहीं थे, कि हिंदू और मुसलमान हमेशा आपस में लड़ते रहे हैं, कि भारतीयों के भाग्य में ही विदेशियों के अधीन रहना लिखा है, कि उनका धर्म और सामाजिक जीवन पतित और असभ्य रहे हैं और इस कारण वे लोकतंत्र या स्वशासन तक के काबिल नहीं हैं। इस प्रचार का जवाब देकर अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने जनता में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगाने के प्रयत्न किए। वे गर्व से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर संकेत करते और आलोचकों अशोक, चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य और अकबर जैसे शासकों की राजनीतिक उपलब्धियों पर ध्यान दिलाया। इस कार्य में विद्धानों ने कला, स्थापत्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और राजनीति में भारत की राष्ट्रीय धरोहर की फिर से खोज करने में जो कुछ किया, उससे इन राष्ट्रवादी नेताओं को बल तथा प्रोत्साहन मिला। दुर्भाग्य से कुछ राष्ट्रवादी नेता दूसरे छोर तक चले गए तथा भारत के अतीत की कमजोरियों और पिछड़ेपन से आंखें चुराकर गैर-लोचनात्मक ढंग से उसे महिमामंडित करने लगे। खास तौर पर प्राचीन भारत की उपलब्धियों का प्रचार करने तथा मध्यकालीन भारत की उतनी ही महान उपलब्धियों को अनदेखा करने की प्रवृति ने भी बहुत नुकसान पहुंचाया। इसके कारण हिंदुओं में सांप्रदायिक भावनाओं के विकास को प्रोत्साहन मिला। साथ ही इसकी जवाबी प्रवृत्ति के रूप में मुसलमान सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रेरणा पाने के लिए अरबों तथा तुर्कों के इतिहास की ओर नजर करने लगे। इसके अलावा, पश्चिम के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की चुनौती का जवाब देते समय बहुत से भारतीय यह बात भी भूल जाते थे कि भारत की जनता कई क्षेत्रों में सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी थी। इससे गर्व तथा आत्मसंतोष की एक झूठी भावना पनपी जो भारतीयों को अपने समाज के आलोचनात्मक अध्ययन से रोकती थी। इसके कारण सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ेपन के खिलाफ संघर्ष कमजोर हुआ, तथा अनेक भारतीय दूसरे देशों में पनपी नई प्रवृत्तियों और नए विचारों से विमुख रहे।

शासकों का जातीय दंभ

भारत में राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का एक गौण परंतु महत्त्वपूर्ण कारण जातीय श्रेष्ठता का वह दंभ था जो भारतीयों के प्रति अनेक अंग्रेजों के व्यवहार में पाया जाता था। इस जातीय दंभ का एक कड़वा और प्रचलित रूप तब देखने को मिलता था, जब कोई अंग्रेज़ किसी भारतीय से किसी विवाद में उलझा होता था और न्याय व्यवस्था अंग्रेज़ का पक्ष लेती थी। जैसा कि जी.ओ. ट्रेवेलियन ने 1864 में लिखा है : "हमारे अपने देश के एक व्यक्ति का बयान भी अदालतों में अनेकों हिंदुओं से अधिक महत्त्व रखता है। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें शक्ति का एक भयानक साधन एक बेईमान और चालाक अंग्रेज़ के हाथों में पहुंच जाता है।"

यह जातीय दंभ जाति, धर्म, प्रांत या वर्ग का भेदभाव किए बिना तमाम भारतीयों को एक समान हीन करार देता था। वे यूरोपीय लोगों के क्लबों में नहीं जा सकते थे और अक्सर उन्हें किसी गाड़ी के उस डिब्बे में यात्रा की अनुमति नहीं थी जिसमें यूरोपीय यात्री जा रहे हों। इससे उनमें राष्ट्रीय अपमान का बोध हुआ तथा अंग्रेजों के मुकाबले वे अपने-आपको एक जनगण के रूप में देखने लगे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्थाएं

1870 के दशक तक यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि भारतीय राष्ट्रवाद इतनी ताकत और गति अर्जित कर चुका है कि वह भारतीय राजनीति में एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर सके।

दिसंबर 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में अखिल भारतीय पैमाने पर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की पहली संगठित अभिव्यक्ति हुई। लेकिन इसके

पहले भी अनेक संस्थाएं स्थापित हो चुकी थीं।

जैसा कि हमने इसके पहले पढ़ा है, राजा राममोहन राय पहले ऐसे भारतीय नेता थे जिन्होंने भारत में राजनीतिक सुधारों के लिए आंदोलन चलाया। वर्ष 1836 के बाद देश के विभिन्न भागों में अनेक सार्वजनिक समितियां स्थापित हुई। इन सभी समितियों पर धनी तथा अभिजात लोगों का प्रभुत्व था जिनको तब "गणमान्य व्यक्ति" कहा जाता था, और इसका चरित्र प्रांतीय या स्थानीय था। इन्होंने प्रशासन में सुधार और प्रशासन में भारतीय लोगों की भागीदारी के लिए काम किया तथा ब्रिटिश संसद को लंबे-लंबे प्रार्थनापत्र भेजे जिनमें भारतीयों की मांगें रखी जाती थीं।

1858 के बाद के काल में शिक्षित भारतीयों तथा अंग्रेजों के भारतीय प्रशासन के बीच की खाई धीरे-धीरे बढ़ती गई। ब्रिटिश शासन के चरित्र तथा भारतीयों के लिए उसके दुष्परिणामों का अध्ययन करने के बाद ये शिक्षित भारतीय भारत में ब्रिटिश नीतियों के अधिकाधिक मुखर आलोचक बन गए। उनका असंतोष धीरे-धीरे राजनीतिक कार्यकलाप में अभिव्यक्त हुआ। उस समय तक मौजूद समितियां, राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों को संतुष्ट करने में असफल रहीं।

1866 में लंदन में दादाभाई नौरोजी ने ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की स्थापना की। इसका उद्देश्य भारतीय प्रश्नों पर विचार करना तथा भारत के कल्याण की दिशा में ब्रिटेन के नेताओं को प्रभावित करना था। बाद में उन्होंने प्रमुख भारतीय नगरों में भी इस एसोसिएशन की शाखाएं स्थापित कीं। वर्ष 1825 में जन्में दादाभाई ने अपना पूरा जीवन राष्ट्रीय आंदोलन को समर्पित कर दिया। जल्द ही उन्हें भारत का पितामह (ग्रैंड ओल्ड मैन ऑफ इंडिया) कहा जाने लगा। वे भारत के पहले आर्थिक विचारक भी थे। अपने अर्थशास्त्रीय लेखन में उन्होंने सिद्ध किया कि भारत की गरीबी का कारण अंग्रेजों द्वारा उसका शोषण तथा यहां का धन ब्रिटेन भेजना था। तीन बार दादाभाई को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना अध्यक्ष चुनकर उनका सम्मान किया। वास्तव में वे भारत के उन जनप्रिय राष्ट्रवादी नेताओं की लंबी कतार के अग्रणी नेता थे जिनका नाम भर जनता के हृदय में हलचल मचाने के लिए काफी था।

कांग्रेस-पूर्व राष्ट्रवादी संगठनों में सबसे महत्त्वपूर्ण कलकत्ता में स्थापित इंडियन एसोसिएशन थी। बंगाल के युवा राष्ट्रवादी ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन की रूढ़िवादी और जमींदार-समर्थक नीतियों से धीरे-धीरे ऊब रहे थे। वे व्यापक सार्वजनिक महत्त्व के सवालों पर लंबा राजनीतिक आंदोलन छेड़ना चाहते थे। प्रतिभाशाली लेखक-वक्ता सुरेंद्रनाथ बनर्जी के रूप में उन्हें एक नेता भी मिल गया। बनर्जी अपने अधिकारियों द्वारा बहुत ही अन्यायपूर्ण ढंग से इंडियन सिविल सर्विस से बाहर कर दिए गए थे क्योंकि ये अधिकारी

सुरेंद्रनाथ बनर्जी

अपनी सर्विस में किसी स्वतंत्र विचारों वाले भारतीय की उपस्थिति नहीं बर्दाश्त कर सके। बनर्जी ने 1875 में कलकत्ता के छात्रों के सामने राष्ट्रवादी विषयों पर प्रभावशाली भाषण देकर अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया। सुरेंद्रनाथ तथा आनंदमोहन बोस के नेतृत्व में बंगाल के इन युवा राष्ट्रवादियों ने जुलाई 1876 में इंडियन एसोसिएशन की नींव रखी। इस एसोसिएशन ने अपने सामने राजनीतिक प्रश्नों पर भारतीय जनता को एकताबद्ध करने का लक्ष्य रखा। अपनी ओर बड़ी संख्या में जनता को खींचने के लिए इसने निर्धन वर्गों के लिए कम सदस्यता शुल्क निर्धारित किया। बंगाल के शहरों और गांवों तथा बंगाल से बाहर अनेक शहरों में भी इस एसोसिएशन की कई शाखाएं खोली गईं।

भारत के दूसरे भागों में भी युवक लोग सक्रिय थे। जस्टिस रानाडे तथा उनके साथियों ने 1870 में पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना की। एम.वीर राघवाचारी, जी. सुब्रामन्य अय्यर, आनंद चारुलू तथा दूसरों ने 1884 में मद्रास महाजन सभा की नींव डाली। फिरोशाह मेहता, के.टी. तेलंग, बदरुद्दीन तैयबजी तथा दूसरों ने 1885 में बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन बनाया।

इस तरह जो राष्ट्रवादी एक साझे शत्रु अर्थात विदेशी शासन और शोषण के खिलाफ राजनीतिक एकता की आवश्यकता महसूस कर रहे थे, उनके लिए एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन की स्थापना का समय आ चुका था। तब तक मौजूद संगठनों ने एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य पूरा किया था, परंतु उनका क्षेत्र और कार्यकलाप बहुत सीमित थे। वे अधिकतर स्थानीय प्रश्नों को उठाते थे तथा उनकी सदस्यता और नेतृत्व एक शहर या एक प्रांत के ही थोड़े से लोगों तक सीमित थे। यहां तक कि इंडियन एसोसिएशन भी एक अखिल भारतीय संस्था नहीं बन सकी थी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं की एक अखिल भारतीय संगठन बनाने की योजनाएं अनेक भारतीय जन तैयार करते आ रहे थे। लेकिन इस विचार को एक ठोस और अंतिम रूप देने का श्रेय एक सेवानिवृत अंग्रेज़ सिविल सर्वेंट, ए.ओ. ह्यूम को जाता है। उन्होंने प्रमुख भारतीय नेताओं से संपर्क किया और उनके सहयोग से बंबई में दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया। इसकी अध्यक्षता डब्ल्यू सी. बनर्जी ने की तथा इसमें 72 प्रतिनिधि शामिल

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में सम्मिलित प्रतिनिधि, बंबई 1885

थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्य इस प्रकार घोषित किए गए—देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करना, जाति-धर्म-प्रांत का भेद किए बिना राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित तथा मजबूत करना, जनप्रिय मांगों को निरूपण तथा उन्हें सरकार के सामने रखना, और सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना।

कहा जाता है कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे ह्यूम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षित भारतीयों में बढ़ रहे असंतोष की सुरक्षित निकासी के लिए एक 'सेफ्टी वाल्व' बनाना था। वे असंतुष्ट राष्ट्रवादी शिक्षित वर्गों तथा असंतुष्ट किसान जनता के आपसी मेल को रोकना चाहते थे।

मगर यह 'सेफ्टी वाल्व' का सिद्धांत सच्चाई का

बहुत छोटा अंश है और यह पूरा अपर्याप्त तथा भ्रामक है। राष्ट्रीय कांग्रेस सबसे बढ़कर राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों की इस आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती थी कि उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिए कार्यरत एक राष्ट्रीय संगठन बनाया जाए। हम पहले ही देख चुके हैं कि कुछ जबर्दस्त शक्तियों के कार्यरत होने के परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय आंदोलन पहले से ही फैल रहा था। इस आंदोलन के जन्म के लिए किसी एक व्यक्ति या कुछेक व्यक्तियों को श्रेय नहीं दिया जा सकता। ह्यूम के अपने उद्देश्य भी मिले-जुले थे। वे 'सेफ्टी वाल्व' बनाने के विचार से कहीं अधिक श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित थे। वे भारत से तथा इसके गरीब किसानों से सचमुच प्यार करते थे। कुछ भी हो, राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म देने में जिन भारतीय नेताओं ने ह्यूम से सहयोग किया वे ऊंचे चरित्र वाले देशभक्त लोग थे। उन्होंने जान-बूझकर ह्यूम की सहायता इसलिए ली कि वे राजनीतिक कार्यकलाप के आरंभ में ही अपने प्रयासों के प्रति सरकार की शत्रुता मोल लेना नहीं चाहते थे। उन्हें आशा थी कि एक सेवानिवृत सिविल सर्वेंट की उपस्थिति अधिकारियों की आशंकाओं का समाधान करेगी। अगर ह्यूम कांग्रेस का उपयोग एक 'सेफ्टी वाल्व' के रूप में करना चाहते थे तो कांग्रेस के आरंभिक नेताओं को आशा थी कि वे ह्यूम का उपयोग एक 'तड़ित चालक' के रूप में कर सकेंगे।

इस तरह 1885 में राष्टीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में, विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष आरंभ हो गया। इसके बाद तो राष्ट्रीय आंदोलन बढ़ता ही गया तथा देश और देश की जनता ने स्वाधीन होने तक आराम को हराम जाना। आरंभ से ही कांग्रेस ने एक पार्टी नहीं, बल्कि एक आंदोलन का काम किया। वर्ष 1886 में कांग्रेस के 436 प्रतिनिधि विभिन्न स्थानीय संगठनों तथा समूहों द्वारा चुने गए थे। इसके बाद कांग्रेस हर वर्ष दिसंबर में और हर बार देश के एक नए भाग में अपने अधिवेशन करती रही। जल्द ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हज़ारों में पहुंच गई। इसके प्रतिनिधियों में अधिकांश लोग वकील, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, अध्यापक और जमींदार होते थे। 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक कादंबिनी गांगुली ने कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित किया। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुंचा दी गई थीं।

कादंबिनी गांगुली

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कोई एक धारा नहीं थी जिसमें राष्ट्रवाद की नदी आगे बढ़ी। प्रांतीय सम्मेलन, और स्थानीय समितियों और राष्ट्रवादी समाचारपत्र भी बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रमुख उद्घोषक थे। खासकर प्रेस राष्ट्रवादी विचारों तथा राष्ट्रवादी आंदोलन को फैलाने का प्रमुख साधन बन गया था। इस काल के अधिकांश समाचारपत्र निश्चित ही व्यापार के रूप में नहीं चलाए जाते थे बल्कि राष्ट्रवादी गतिविधियों के मुखपत्र के रूप में आरंभ किए जाते थे। राष्ट्रीय
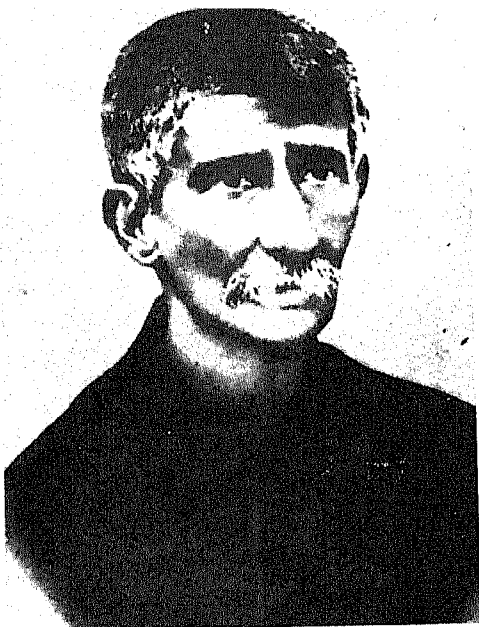
शिशिर कुमार घोष

बदरुद्दीन तैयब जी

जी. सुब्रमण्य अय्यर

दादा भाई नौरोजी और दिनशा ई. वाचा के साथ गोपाल कृष्ण गोखले (दाहिने खड़े)। यह चित्र लन्दन में 1897 में लिया गया था।

कांग्रेस के आरंभिक वर्षों में इसके कुछ महान अध्यक्षों के नाम इस प्रकार थेः दादाभाई नौरोजी, बदरूद्दीन तैयबजी, फिरोशाह मेहता, पी. आनंद चारुलू , सुरेंद्रनाथ बनर्जी, रोमेशचंद्र दत्त, आनंदमोहन बोस और गोपाल कृष्ण गोखले। इस काल में कांग्रेस तथा राष्ट्रीय आंदोलन के कुछ और प्रमुख नेता महादेव गोविंद रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, शिशिरकुमार तथा मोतीलाल घोष नामक दो भाई, मदनमोहन मालवीय, जी. सुब्रामन्य अय्यर, सी. विजयराघवाचारी और दिनशा ई. वाचा थे।

आरंभिक राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम और कार्यकलाप

आरंभ के राष्ट्रवादी नेताओं का विश्वास था कि देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए सीधी लड़ाई लड़ना अभी व्यावहारिक नहीं था। जो बातें कार्यसूची में शामिल थी, वे थीं राष्ट्रीय भावनाओं को जगाना तथा मजबूत करना, बड़ी संख्या में भारतीय जनता को राष्टवादी राजनीति की धारा में लाना और राजनीति तथा राजनीतिक आंदोलन के लिए उन्हें शिक्षित करना। इस बारे में पहला महत्त्वपूर्ण कार्य राजनीतिक प्रश्नों में जनता की रुचि विकसित करना तथा देश में जनमत का संगठन करना था। दूसरे, राष्टीय स्तर पर लोकप्रिय मांगों का निरूपण किया जाना था ताकि उभरते हुए जनमत को एक अखिल भारतीय स्वरूप मिल सके। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि पहले पहल राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं में राष्टीय एकता पैदा की जाए।

आरंभिक राष्ट्रीय नेता इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि भारत अभी हाल ही में एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में पहुंचा है; दूसरे शब्दों में, भारत अभी एक नवोदित राष्ट्र था। भारत के राष्टीय स्वरूप को बहुत सावधानी से निखारने की आवश्यकता थी। भारतीयों को बहुत होशियारी से एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया जाना था। राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीयों को क्षेत्र, जाति या धर्म के भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित और मजबूत करने के लिए लगातार डटकर काम करना था। आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक मांगों का निर्धारण इस बात को दृष्टि में रखकर किया कि भारतीय जनता को एक साझे आर्थिक-राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करना है।

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना

साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना आरंभिक राष्ट्रवादियों का संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कार्य था। उन्होंने तत्कालीन औपनिवेशिक आर्थिक शोषण के सभी तीनों रूपों, अर्थात व्यापार, उद्योग तथा वित्त के द्वारा शोषण पर ध्यान दिया। उन्होंने अच्छी तरह समझा कि ब्रिटेन के आर्थिक साम्राज्यवाद का मूल तत्व भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना था। भारत में एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के मूल तत्वों को विकसित करने के ब्रिटिश प्रयासों का उन्होंने तीखा विरोध किया। ये तत्व थेः कच्चा माल पैदा करने वाले देश, ब्रिटिश उद्योगों में पैदा माल के लिए मंडी, तथा विदेशी पूंजी के निवेश के क्षेत्र के रूप में भारत का रुपांतरण। उन्होंने इस औपनिवेशिक ढांचे पर आधारित सरकार की लगभग सभी महत्त्वपूर्ण आर्थिक नीतियों के खिलाफ एक शक्तिशाली आंदोलन खड़ा किया।

आरंभिक राष्ट्रवादी भारत की बढ़ती गरीबी तथा आर्थिक पिछड़ेपन और यहां आधुनिक उद्योग-धंधों तथा कृषि के विकास की असफलता को लेकर दुखी थे। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया। दादाभाई नौरोजी ने 1881 में ही घोषित कर दिया था कि ब्रिटिश शासन "एक स्थायी, बढ़ता हुआ तथा लगातार बढ़ता हुआ विदेशी आक्रमण" है जो "धीरे-धीरे सही, मगर पूरी तरह देश को नष्ट कर रहा है।" भारत के परंपरागत

हस्त उद्योगों को नष्ट करने तथा आधुनिक उद्योगों के विकास में बाधा डालने के लिए राष्ट्रवादियों ने सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की। उनमें अधिकांश ने भारतीय रेलवे, बागानों तथा उद्योगों में विदेशी पूंजी के भारी निवेश का विरोध किया। उनका तर्क यह था कि इससे भारतीय पूंजीपतियों का उत्पीड़न होगा और भारत की अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक प्रणाली पर ब्रिटेन का दबदबा और मजबूत होगा। उन्हें विश्वास था कि विदेशी पूंजी के निवेश से मौजूदा पीढ़ी ही नहीं बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए भी गंभीर आर्थिक और राजनीतिक खतरे पैदा होंगे। उन्होंने बतलाया कि भारत की निर्धनता को दूर करने का प्रमुख उपाय आधुनिक उद्योगों का तीव्र विकास है। वे चाहते थे कि सरकार चुंगी द्वारा संरक्षण तथा प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता देकर आधुनिक उद्योगों को प्रोत्साहन दे। भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने स्वदेशी, अर्थात भारतीय मालों के उपयोग तथा ब्रिटिश मालों के बहिष्कार के विचार को प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए, 1896 में एक व्यापक स्वदेशी कार्यक्रम के अंग के रूप में पूना तथा महाराष्ट्र के दूसरे नगरों में विदेशी वस्त्रों की खुलेआम होली जलाई गई।

राष्ट्रवादियों को शिकायत थी कि भारत की दौलत इंग्लैंड ले जाई जा रही है, और उन्होंने मांग की कि इस दोहन को रोका जाए। किसानों पर करों का बोझ कम करने के लिए उन्होंने जमीन की मालगुजारी घटाने के सवाल पर निरंतर आंदोलन चलाया। इनमें से कुछ ने उन अर्ध-सामंती कृषि संबंधों की भी आलोचना की जिनको अंग्रेज़ बनाए रखना चाहते थे। बागान-मजदूरों के काम की परिस्थितियों में सुधार के लिए भी राष्ट्रवादियों ने आंदोलन छेड़े। उन्होंने भारी करों को भारत की गरीबी का एक कारण बताया और नमक कर खत्म करने तथा जमीन की मालगुजारी घटाने की मांग की। उन्होंने भारत सरकार के भारी फौजी खर्चों की निंदा की तथा इसे घटाने की मांग की। समय गुजरने के साथ-साथ अधिकाधिक राष्ट्रवादी इस निष्कर्ष पर पहुंचते गए कि विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा देश का आर्थिक शोषण, उसे निर्धन बनाना तथा उसके आर्थिक पिछड़ेपन को बनाए रखना, ये ऐसी बातें थीं जो विदेशी शासन के कुछ लाभकारी पहलुओं पर पानी फेर देती थीं। जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा के लाभों के प्रश्न पर दादाभाई नौरोजी ने इस प्रकार की टिप्पणी की :

> मजे की बात यह है कि भारत में जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा प्राप्त है, मगर यथार्थ में ऐसी कोई बात नहीं है। केवल एक ही अर्थ या रूप में जीवन और संपति की सुरक्षा प्राप्त है, अर्थात लोग एक-दूसरे की या देशी तानाशाहों की हिंसा से सुरक्षित हैं .... परंतु इंग्लैंड की अपनी जकड़ से संपत्ति को सुरक्षा नहीं है और परिणामस्वरूप जीवन को बिल्कुल सुरक्षा प्राप्त नहीं है। भारत की संपत्ति सुरक्षित नहीं है। जो कुछ सुरक्षित और अच्छी तरह सुरक्षित है, वह यह है कि इंग्लैंड पूरी तरह सुरक्षित तथा निश्चित है और इस तरह पूरी सुरक्षा पाकर वह इस समय तीन या चार करोड़ पौंड प्रति वर्ष की दर से भारत की संपत्ति बाहर ले जा रहा है, या यहीं उसका भक्षण कर रहा है. ..इसलिए मैं यह कहने की जुर्रत करूंगा कि भारत की संपत्ति या उसके जीवन को सुरक्षा प्राप्त नहीं है...भारत के लाखों-लाख लोगों के लिए जीवन का अर्थ 'आधा-पेट भोजन', या भुखमरी, या अकाल और महामारी है।

कानून और व्यवस्था के बारे में दादाभाई ने लिखाः

> भारत में एक कहावत प्रचलित है—"पीठ पर मार लो भैया, मगर पेट पर लात मत मारो।" देशी तानाशाह के अधीन जनता जो कुछ पैदा करती है उसे अपने पास रखती और उपयोग करती है, हालांकि कभी-कभी उसे पीठ पर कुछ हिंसा झेलनी पड़ती है। ब्रिटिश भारत की तानाशाही में मनुष्य शांति के साथ रह रहा है और ऐसी कोई हिंसा

यहां नहीं है। परंतु उसका सहारा उसे अनदेखे, शांतिपूर्ण तथा बहुत बारीक ढंग से उससे छिनता जा रहा है। वह शांति के साथ भूखा रहता है तथा शांति के साथ मर जाता है और यह सब पूरे कानून और व्यवस्था के साथ हो रहा है।

आर्थिक प्रश्नों पर राष्ट्रीयवादी आंदोलन के कारण अखिल भारतीय स्तर पर यह विचार फैला कि ब्रिटिश शासन भारत के शोषण पर आधारित है, भारत को गरीब बना रहा है तथा आर्थिक पिछड़ापन और अल्प विकास पैदा कर रहा है। ब्रिटिश शासन से परोक्ष ढंग से जो भी लाभ हुए हों, उनके मुकाबले ये हानियां कहीं बहुत अधिक थीं।

सांविधानिक सुधार

शुरू के राष्ट्रवादियों का आरंभ से ही यह विश्वास था कि भारत में अंततः लोकतांत्रिक स्वशासन लागू होना चाहिए। लेकिन उन्होंने इस लक्ष्य को फौरन प्राप्त किए जाने की मांग नहीं की। उनकी तात्कालिक मांगें अत्यधिक साधारण थीं। वे एक-एक कदम उठाकर स्वाधीनता की मंजिल तक पहुंचना चाहते थे। वे बहुत सावधान भी थे कि सरकार उनकी गतिविधियों को कुचल न दे। वर्ष 1885 से 1892 तक वे विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार की ही मांग उठाते रहे।

उनके आंदोलन के दबाव में ब्रिटिश सरकार को 1892 में भारतीय परिषद् कानून पास करना पड़ा। इस कानून द्वारा शाही विधायी परिषद् तथा प्रांतीय परिषदों में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। इनमें से कुछ सदस्यों को भारतीय अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुन सकते थे, मगर बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहता। राष्ट्रवादी 1892 के कानून से पूरी तरह असंतुष्ट थे तथा उन्होंने इसे मज़ाक बतलाया। उन्होंने परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा उन्हें अधिक अधिकार दिए जाने की मांग उठाई। खास तौर पर उन्होंने सार्वजनिक धन पर भारतीयों के नियंत्रण की मांग की तथा वह नारा दिया जो इससे पहले अमरीकी जनता ने अपने स्वाधीनता के युद्ध के दौरान लगाया था। यह नारा था : "प्रतिनिधित्व नहीं तो कर (Tax) भी नहीं।" पर साथ ही साथ वे अपने लोकतांत्रिक मांगों के आधार को व्यापक बनाने में असफल रहे; उन्होंने जनता के लिए या स्त्रियों के लिए मताधिकार की मांग नहीं की।

बीसवीं सदी के आरंभ तक राष्ट्रवादी नेता और आगे बढ़ चुके थे और उन्होंने आस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे स्वशासित उपनिवेशों की तर्ज पर ब्रिटिश साम्राज्य के अंदर रहकर ही स्वशासन (स्वराज्य) का दावा पेश किया। कांग्रेस के मंच से इस मांग को 1905 में गोखले और 1906 में दादाभाई नौरोजी ने उठाया।

प्रशासकीय और अन्य सुधार

आरंभिक राष्ट्रवादी व्यक्तिवादी प्रशासकीय फैसलों के निर्भीक आलोचक थे तथा उन्होंने भ्रष्टाचार, निकम्मापन और दमन से ग्रस्त शासन प्रणाली के सुधार के लिए अथक प्रयास किए। जो सबसे महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय सुधार वे चाहते थे, वह यह था कि प्रशासकीय सेवाओं के उच्चतर पदों का भारतीयकरण हो। उन्होंने आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक आधारों पर यह मांग उठाई। आर्थिक, दृष्टि से उच्चतर पदों पर यूरोपीय एकाधिकार दो कारणों से हानिकारक था : (अ) यूरोपीय लोगों को बहुत ऊंचे वेतन दिए जाते थे और इसे भारत का प्रशासन बहुत खर्चीला हो जाता था, जबकि समान योग्यता वाले भारतीयों को कम वेतन पर रखा जा सकता था, और (ब) यूरोपीय लोग अपने वेतन का एक बड़ा भाग भारत से बाहर भेज देते थे और उनको पेंशन भी इंग्लैंड में अदा किया जाता था। इससे भारत की संपत्ति का दोहन और बढ़ता था। राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रवादियों का मत था कि इन सेवाओं का भारतीयकरण करने पर प्रशासन भारत की आवश्यकताओं के प्रति और सजग होता। इस प्रश्न के

नैतिक पक्ष को 1897 में गोपालकृष्ण गोखले ने इस प्रकार रखाः

> विदेशी प्रशासन का अत्यधिक खर्चीलापन बहरहाल इसकी अकेली बुराई नहीं है। यह एक नैतिक बुराई भी है; और बल्कि यह बड़ी बुराई है। वर्तमान व्यवस्था में भारतीय जाति का कद घटने या उसकी वृद्धि के रूकने की प्रक्रिया चल रही है। हमें अपना पूरा जीवन, उसका एक-एक दिन हीनता के वातावरण में जीना पड़ रहा है और हममें जो श्रेष्ठता है उसे भी झुकना पड़ रहा है.. .....हमारी मनुष्यता जिन महानता ऊंचाईयों को छू सकती है, वहां तक वर्तमान व्यवस्था में हम कभी नहीं पहुंच सकेंगे। प्रत्येक स्वशासी जनगण को जिस नैतिक ऊंचाई का अनुभव होता है, उसे हम महसूस नहीं कर सकते। हमारी प्रशासकीय और सैनिक योग्यताएं उपयोग के बिना धीरे-धीरे नष्ट हो जाएंगी और हम अपने ही देश में लकड़ी काटने वालों या कुएं से पानी निकालने वालों के रूप में जड़ होकर रह जाएंगे।

राष्ट्रवादियों की मांग थी कि न्यायिक अधिकारों को कार्यकारी अधिकारों से अलग किया जाए ताकि पुलिस तथा नौकरशाही के मनमाने अत्याचारों से जनता को कुछ सुरक्षा मिले। उन्होंने जनता के साथ पुलिस या दूसरे सरकारी अमलों के दमनकारी और निरंकुश व्यवहार के खिलाफ आंदोलन छेड़े। उन्होंने कानूनी प्रक्रिया में लगने वाली देरी तथा न्याय-व्यवस्था के ऊंचे खर्च की आलोचना की। उन्होंने भारत के पड़ोसी देशों के प्रति आक्रामक विदेश नीति का विरोध किया। उन्होंने बर्मा के अपहरण, अफगानिस्तान पर हमले तथा पश्चिमोत्तर भारत की आदिवासी जनता के दमन का भी विरोध किया।

उन्होंने सरकार से आग्रह किया कि वह राज्य की ओर से कल्याणकारी गतिविधियां चलाए। उन्होंने जनता में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार पर बहुत अधिक जोर दिया। उन्होंने तकनीकी और उच्च शिक्षा की सुविधाएं बढ़ाने की मांग भी उठाई।

सूदखोरों के चंगुल से किसानों को बचाने के लिए उन्होंने कृषि बैंकों की स्थापना की मांग की। वे चाहते थे कि सरकार खेती के विकास तथा देश को अकाल से बचाने के लिए बड़े पैमाने पर सिंचाई की योजनाएं लागू करे। उन्होंने चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाने तथा पुलिस को ईमानदार, कुशल तथा जनप्रिय बनाने के लिए पुलिस व्यवस्था में सुधार की मांगें भी उठाई।

राष्ट्रवादी नेताओं ने उन भारतीय मजदूरों के पक्ष में भी आवाज उठाई जो गरीबी से मजबूर होकर, रोजगार की तलाश में दक्षिण अफ्रीका, मलाया, मारीशस, वेस्ट इंडीज या ब्रिटिश गुयाना चले जाते थे। इनमें से अधिकांश देशों में उन्हें निर्मम दमन तथा जातीय भेदभाव का सामना करना पड़ता था। यह बात दक्षिण अफ्रीका के बारे में खास तौर पर सच थी, जहां भारतीयों के मूलभूत मानव अधिकारों की रक्षा के लिए मोहनदास करमचंद गांधी एक जनसंघर्ष चला रहे थे।

नागरिक अधिकारों की रक्षा

आरंभ में ही राजनीतिक चेतना-प्राप्त भारतीय लोकतंत्र ही नहीं, बल्कि भाषण, प्रेस, विचार तथा संगठन की स्वतंत्रता जैसे आधुनिक नागरिक अधिकारों के प्रति भी आकर्षित थे। जब भी सरकार इन नागरिक अधिकारों को सीमित करने के प्रयास करती, वे जमकर उनका बचाव करते। यही वह काल था जिसमें राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्य के फलस्वरूप आम तौर पर पूरी भारतीय जनता तथा खास तौर पर शिक्षित वर्गों में लोकतांत्रिक विचार अपनी जड़ें जमाने लगे। वास्तव में लोकतांत्रिक स्वतंत्रता का संघर्ष स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष का अभिन्न अंग बन गया। वर्ष 1897 में बंबई की सरकार ने बाल गंगाधर तिलक, दूसरे कई नेताओं और समाचारपत्रों के संपादकों को सरकार के

खिलाफ असंतोष भड़काने के लिए गिरफ्तार कर लिया और उन पर मुकद्दमा चलाया। उनको लंबी-लंबी कैद की सजाएं दी गईं। इसी के साथ पूना के दो नेता नाटू भाइयों, को बिना किसी मुकद्दमे के अंडमान भेज दिया गया। जनता की स्वतंत्रता पर इस हमले का पूरे देश में विरोध हुआ। तिलक जिन्हें अभी तक मुख्यतः महाराष्ट्र में ही जाना जाता था, रातों-रात अखिल भारतीय नेता बन गए।

राजनीतिक कार्य की विधियां

1905 तक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन पर उन लोगों का वर्चस्व था जिनको प्रायः नरमपंथी राष्ट्रवादी कहा जाता है। कानून की सीमा में रहकर सांविधानिक आंदोलन तथा धीरे-धीरे, व्यवस्थित ढंग से राजनीतिक प्रगति—इन शब्दों में नरमपंथियों की राजनीतिक कार्यपद्धति को संक्षेप में रखा जा सकता है। उनका विश्वास था कि अगर जनमत को उभारा और संगठित किया जाए और प्रार्थनापत्रों, सभाओं, प्रस्तावों तथा भाषणों के द्वारा अधिकारियों तक जनता की मांगों को पहुंचाया जाए तो वे धीरे-धीरे एक-एक करके इन मांगों को पूरा करेंगे।

इसलिए उनके राजनीतिक कार्य की दो दिशाएं थीं। प्रथम, भारत की जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए एक शक्तिशाली जनमत तैयार करना, तथा जनता को राजनीतिक प्रश्नों पर शिक्षित और एकताबद्ध करना। राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव तथा प्रार्थनापत्र भी मूलतः इसी लक्ष्य द्वारा निर्देशित थे। हालांकि देखने में तो उनके स्मरणपत्र और प्रार्थनापत्र सरकार को संबोधित थे, मगर उनका वास्तविक उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना था। उदाहरण के लिए जब 1891 में युवक गोखले ने पूना सार्वजनिक सभा द्वारा सावधानी के साथ तैयार करके भेजे गए एक स्मरणपत्र के बाद सरकार द्वारा दिए गए दो पंक्तियों के उत्तर पर अपनी निराशा व्यक्त की तो जस्टिस रानाडे ने इसकी व्याख्या इस प्रकार कीः

> आप अपने देश के इतिहास में हमारे स्थान को नहीं समझते। ये स्मरणपत्र कहने को सरकार के नाम संबोधित है। वास्तव में ये जनता को संबोधित है ताकि वह जान सकें कि इन विषयों पर कैसे विचार करना चाहिए। यह काम किसी परिणाम की आशा किए बिना अभी उनके वर्षों तक चलाया जाना चाहिए, क्योंकि इस तरह की राजनीति इस देश के लिए एकदम नई वस्तु है।

दूसरे, आरंभिक राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करना चाहते थे ताकि जिस प्रकार से सुधार राष्ट्रवादी द्वारा सुझाए गए थे उनको लागू किया जाए। नरमपंथी राष्ट्रवादियों का विश्वास था कि ब्रिटिश जनता और संसद भारत के साथ न्याय तो करना चाहती थी, मगर उन्हें यहां की वास्तविक स्थिति की जानकारी नहीं थी। इसलिए भारतीय जनमत को शिक्षित करने के साथ-साथ नरमपंथी राष्ट्रवादी ब्रिटिश जनमत को शिक्षित करने के प्रयास भी कर रहे थे। इस उद्देश्य से उन्होंने ब्रिटेन में जमकर प्रचार-कार्य किया। भारतीय पक्ष को सामने रखने के लिए प्रमुख भारतीयों के दल ब्रिटेन भेजे गए। वर्ष 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति बनाई गई। इस समिति ने 1890 में इंडिया नामक एक पत्रिका भी निकालनी आरंभ की। दादाभाई नौरोजी ने अपने जीवन तथा आय का एक बड़ा हिस्सा इंग्लैंड में रहकर वहां की जनता में भारत की मांगों का प्रचार करने में लगा दिया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अध्ययनकर्ता कभी-कभी भ्रम में पड़ जाते हैं, जब वे पाते हैं कि प्रमुख भारतीय नेता अंग्रेजों के प्रति वफादारी की बड़ी-बड़ी कसमें खाते थे। इन कसमों का अर्थ हर्गिज यह नहीं है कि वे सच्चे देशभक्त नहीं थे या वे कायर लोग थे। उनका दिल से विश्वास था कि ब्रिटेन के

साथ भारत का राजनीतिक संबंध बने रहना इतिहास के उस चरण में भारत के हित में था। इसलिए उनकी योजना अंग्रेजों को भगाने की नहीं बल्कि ब्रिटिश शासन का रूपांतरण करके उसे एक राष्ट्रीय शासन के समान बनाने की थी। बाद में जब उन्होंने ब्रिटिश शासन की बुराइयों को तथा सुधार की राष्ट्रवादी मांगों को स्वीकार करने में सरकार की असफलता को समझा तो उनमें से अनेक ने ब्रिटिश शासन के प्रति वफादारी की कसम खाना बंद करके भारत के लिए स्वशासन की मांग उठानी आरंभ कर दी। इसके अलावा उनमें से अनेक केवल इसलिए नरमपंथी थे क्योंकि वे समझते थे कि विदेशी शासकों को खुलकर चुनौती देने का समय अभी नहीं आया था।

जनता की भूमिका

सुकुचित सामाजिक सुधार आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन की बुनियादी कमजोरी थी। अभी जनता में इस आंदोलन की पैठ नहीं हुई थी। वास्तव में जनता में नेताओं की कोई राजनीतिक आस्था नहीं थी। सक्रिय राजनीतिक संघर्ष छेड़ने की समस्याओं का वर्णन करते हुए गोपालकृष्ण गोखले ने कहा कि "देश में विभाजन तथा उपविभाजन की एक अंतहीन शृंखला है, जनता का अधिकांश भाग अज्ञान से भरा हुआ तथा विचार और भावना के पुराने तरीकों से कसकर चिपका हुआ है, और यह जनता हर प्रकार के परिवर्तन की विरोधी हैं और परिवर्तन को समझती नहीं है।" इस प्रकार नरमपंथी नेताओं का विश्वास था कि औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जुझारू जन-संघर्ष तभी छेड़ा जा सकता है जबकि भारतीय समाज के बहुविध तत्वों को एक राष्ट्र के सूत्र में बांधा जा चुका हो। परंतु वास्तव में यही तो वह संघर्ष था जिनके दौरान भारतीय राष्ट्र का निर्माण हो सकता था। जनता के प्रति इस गलत दृष्टिकोण का नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक चरण में जनता की एक निष्क्रिय भूमिका ही रही। इससे राजनीतिक नरमी का जन्म हुआ। जनता के समर्थन के अभाव में वे जुझारू राजनीतिक उपाय नहीं अपना सकते थे। हम आगे देखेंगे कि बाद के राष्ट्रवादी लोग नरमपंथियों से ठीक इसी अर्थ में भिन्न थे।

फिर भी आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन के संकुचित सामाजिक आधार से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह उन्हीं सामाजिक वर्गों के संकुचित हितों तक सीमित था जो इसमें शामिल थे। इसके कार्यक्रम और इसकी नीतियों भारतीय जनता के सभी वर्गों के हितों से जुड़ी थीं और औपनिवेशिक वर्चस्व के विरुद्ध उदीयमान भारतीय राष्ट्रीय का प्रतिनिधित्व करती थीं।

सरकार का रवैया

आरंभ से ही ब्रिटिश अधिकारी उभरते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के खिलाफ तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति शंकालु थे। वायसराय डफरिन ने ह्यूम को यह सुझाव दिया कि कांग्रेस राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक मामलों को देखे, और यह इस तरह उसने राष्ट्रीय आंदोलन को दिशाभ्रष्ट करना चाहा। लेकिन कांग्रेस के नेताओं ने ऐसा परिवर्तन करने से इनकार कर दिया। परंतु जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय कांग्रेस अधिकारियों के हाथों का खिलौना नहीं बन सकती और यह धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रवाद का केंद्रबिंदु बनती जा रही थी। अब ब्रिटिश अधिकारी खुलकर राष्ट्रीय कांग्रेस तथा दूसरे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की आलोचना और निंदा करने लगे। डफरिन से लेकर नीचे तक के सभी ब्रिटिश अधिकारी राष्ट्रवादी नेताओं को "बेवफा बाबू", "राजद्रोही ब्राह्मण" तथा "हिंसक खलनायक" कहने लगे। कांग्रेस को "राजद्रोह का कारखाना" कहा जाने लगा। डफरिन ने 1887 में एक सार्वजनिक भाषण में राष्ट्रीय कांग्रेस पर हमला किया तथा उसे 'जनता के एक बहुत सूक्ष्म भाग' का प्रतिनिधि बताकर उसकी हंसी उड़ाई।

लार्ड कर्जन ने 1890 में विदेश सचिव को बतलाया

कि "कांग्रेस का महल भरभरा रहा है और भारत में रहते हुए मेरी मुख्य महत्त्वकांक्षा यह है कि मैं शांति के साथ इसे मरने में सहयोग दे सकूं।" भारतीय जनता की बढ़ती एकता उनके शासन के लिए एक बड़ा खतरा है, यह महसूस करके अंग्रेज़ अधिकारियों ने "बांटों और राज करो" की नीति को और भी जमकर लागू किया। उन्होंने सैयद अहमद खान, बनारस के राजा शिवप्रसाद तथा दूसरे ब्रिटिश-समर्थक व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया कि वे कांग्रेस के खिलाफ आंदोलन चलाएं। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों में भी फूट डालने की कोशिश की। राष्ट्रवाद का विकास रोकने के लिए उन्होंने एक तरफ छोटी-छोटी छूटें देने और दूसरी तरफ निर्मम दमन करने की नीति अपनाई। फिर भी, अधिकारियों का यह विरोध राष्ट्रीय आंदालेन का विकास रोकने में असफल रहा।

आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन का मूल्यांकन

कुछ आलोचकों का विचार है कि राष्ट्रवादी आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस को आरंभिक चरण में अधिक सफलता नहीं मिली। जिन सुधारों के लिए राष्ट्रवादियों ने आंदोलन छेड़े उनमें से बहुत थोड़े सुधार ही सरकार ने लागू किए।

इस आलोचना में बहुत कुछ सच्चाई है। मगर आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन को असफल घोषित करना भी आलोचकों के लिए सही नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जो काम उन्होंने हाथ में लिए थे, उसकी तात्कालिक कठिनाईयों को देखते हुए, इस आंदोलन का इतिहास बहुत उज्जवल है। यह अपने समय की सबसे प्रगतिशील शक्ति का सूचक था। यह एक व्यापक राष्ट्रीय जागृति लाने तथा जनता में एक ही भारतीय राष्ट्र के सदस्य होने की भावना जगाने में सफल रहा। इसने भारतीय जनता को उनके साझे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हितों से जुड़े होने तथा साम्राज्यवाद के रूप में एक साझे शत्रु के अस्तित्व के प्रति जागरुक किया और इस प्रकार उनको एक राष्ट्र में एकताबद्ध किया। इसने जनता को राजनीतिक कार्य में प्रशिक्षित किया, उनमें जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रताओं, धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, उनमें आधुनिक दृष्टिकोण जगाया तथा ब्रिटिश शासन की बुराइयों को उनके सामने रखा।

सबसे बड़ी बात यह है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सही चरित्र को निर्ममतापूर्वक उजागर करने में आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अग्रगामी भूमिका निभाई। उन्होंने लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न को देश की राजनीतिक रूप से पराधीन स्थिति से जोड़ा। साम्राज्यवाद की उनकी शक्तिशाली अर्थशास्त्रीय आलोचना ब्रिटिश शासन के खिलाफ बाद के सक्रिय जनसंघर्ष के दौरान राष्ट्रवादी आंदोलन का एक प्रमुख अस्त्र बन गई। अपने आर्थिक आंदोलनों के द्वारा ब्रिटिश शासन के निमर्म, शोषक चरित्र को बेनकाब करके उन्होंने उसके नैतिक आधारों को भी कमजोर किया। आरंभिक राष्ट्रीवादी आंदोलन ने एक साझा राजनीतिक-आर्थिक कार्यक्रम भी पेश किया जिसके आधार पर भारतीय जनता एकजुट होकर बाद में

कांग्रेस के आरंभिक काल के कुछ नेता : बैठे हुए (बांए से दाएं) वी. चक्रवर्ती, ए. चौधुरी, कृष्णा स्वामी अयूयर, दरभंगा महाराज, दादा भाई नौरोजी, रास विहारी घोष, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, खड़े (बांए से दाएं) रतन टाटा, गोपाल कृष्ण गोखले, दिनशा वाचा, रमेशचंद्र दत्त, भूपेंद्रनाथ बसु, एस.पी. सिन्हा।

राजनीतिक संघर्ष चला सकी। इसने वह राजनीतिक सत्य सामने रखा कि भारत का शासन भारतीयों के हित में चलना चाहिए। इसने राष्ट्रवाद के प्रश्न को भारतीय जीवन का एक प्रमुख प्रश्न बना दिया। इसके अलावा, नरमपंथियों का राजनीतिक कार्य धर्म, भावुकता या खोखली भावना की दुहाई न देकर जनता के जीवन की ठोस वास्तविकता के ठोस अध्ययन और विशेषण पर आधारित था। आरंभिक आंदोलन की कमजोरियों को तो बाद की पीढ़ियों ने दूर कर दिया और उसकी उपलब्धियां आगे के वर्षों में एक और जोरदार राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बन गई। इसलिए हम कह सकते हैं कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरंभिक राष्ट्रवादियों ने वह बुनियाद बनाई जिस पर राष्ट्रीय आंदोलन आगे और भी विकसित हुआ। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत के निर्माताओं में ऊंचा स्थान मिलना चाहिए।

अभ्यास

1. किस रूप में आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद भारत में भारतीय जनता और ब्रिटिश लोगों के आपसी हितों के टकराव का नतीजा था?
2. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतीय राष्ट्रवाद को जन्म देने वाले प्रमुख कारकों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। इस विषय में विदेश प्रभुत्व, देश प्रशासनिक तथा आर्थिक एकीकरण, पश्चिमी शिखा और विचार, प्रेस सांस्कृतिक विरासत और नस्लीदंभ की भूमिका का विवेचन कीजिए।
3. इस दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए कि भारत के अतीत की पुनः खोज राष्ट्रीय आंदोलन के लिए मिला-जुला वरदान था।
4. राष्ट्रीय आंदोलन में जमींदारों, भूस्वामियों और राजाओं की भूमिका का विवेचन कीजिए।
5. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में निम्नांकित के योगदान का वर्णन कीजिए :
   क. दादाभाई नौरोजी
   ख. सुरेंद्रनाथ बनर्जी
   ग. गोपाल कृष्ण गोखले
   घ. बाल गंगाधर तिलक
6. 1885 से 1905 के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार के रवैये की विवेचना कीजिए।
7. 1905 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्यों का विवेचन कीजिए। इस चरण को नरम दलीय चरण क्यों कहा जाता है? इस दौरान राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य कमजोरियां क्या थीं?
8. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में नरम दल के लोगों के योगदान की विवेचना कीजिए?
9. आरंभिक राष्ट्रवादियों द्वारा की गई साम्राज्यवाद की आर्थिक आलोचना का विवेचन कीजिए। उन स्थितियों का वर्णन कीजिए जिनके चलते भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनी। वर्ष 1885 से पहले देश के विभिन्न भागों में जो राजनीतिक संगठन बने उनकी चर्चा कीजिए।
10. सामूहिक परियोजना के एक हिस्से के रूप में कांग्रेस के संकल्पों, भाषणों तथा राष्ट्रीय आंदोलन

के आरंभिक नेताओं की रचनाओं के चुने हुए अंशो का एक संकलन तैयार कीजिए। इस परियोजना में एक मानचित्र को भी शामिल किया जा सकता है जिसमें उन-उन स्थानों तथा वर्षों को दर्शाया गया हो जहां-जहां और जब-जब कांग्रेस के अधिवेशन हुए थे। 1885-1905 के दौरान होने वाले कांग्रेस के अध्यक्षों के चित्र, अन्य नेताओं के चित्र और इस काल की अन्य स्रोत सामग्रियों का संकलन भी इस परियोजना के अंतगर्त किया जा सकता है।

अध्याय : 10

नए भारत का उदय—
1858 के बाद के धार्मिक और सामाजिक सुधार

राष्ट्रवाद तथा लोकतंत्र की वह उठती लहर, जिसने स्वतंत्रता के संघर्ष को जन्म दिया था उन आंदोलनों के रूप में भी सामने आई जिनका उद्देश्य सामाजिक संस्थाओं तथा भारतीय जनता के धार्मिक दृष्टिकोण का सुधार करना और उनका लोकतंत्रीकरण करना था। अनेक भारतीयों ने यह अनुभव किया कि सामाजिक और धार्मिक सुधार आधुनिक ढंग से देश का चौतरफा विकास करने तथा राष्ट्रीय एकता और एकजुटता को विकसित करने के लिए आवश्यक है। राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास, नई आर्थिक शक्तियों का उदय, शिक्षा का प्रसार, आधुनिक पश्चिमी विचारों तथा संस्कृति का प्रभाव, तथा दुनिया के बारे में पहले से अधिक जानकारी; इन सभी बातों ने भारतीय समाज के पिछड़ेपन तथा पतन के बारे में लोगों की चेतना को बढ़ाया ही नहीं बल्कि सुधार के संकल्प को और मजबूत किया। उदाहरण के लिए, केशवचंद्र सेन ने कहा :

> आज हम जो कुछ अपने ईद-गिर्द देखते हैं वह एक पतित राष्ट्र है—एक ऐसा राष्ट्र जिसकी प्राचीन महानता ध्वंस होकर बिखरी पड़ी है। इसका राष्ट्रीय साहित्य और विज्ञान, इसका धर्मशास्त्र और दर्शन, इसका उद्योग और वाणिज्य, इसकी सामाजिक समृद्धि और घरेलू सरलता तथा मधुरता, यह सभी समाप्त हो चुकी बातों की तरह लगभग जा ही चुकी हैं। जब हम अपने चारों ओर बढ़ते आध्यात्मिक, सामाजिक तथा बौद्धिक सूनेपन का दुखद तथा निराशाजनक दृश्य देखते हैं तो हम इसमें कालिदास के—काव्य, विज्ञान तथा सभ्यता के—देश को पहचानने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं।

इसी तरह स्वामी विवेकानंद ने भारतीय जनता की स्थिति को इन शब्दों में व्यक्त किया :

> चिथड़ों में लिपटे वृद्धों और युवकों के यहां-वहां भटकते कृशकाय ढांचे, जिनके चेहरों पर सैकड़ों वर्षों की निराशा तथा गरीबी ने गहरी झुर्रियां डाल रखी हैं, हर जगह पाए जाने वाले गाएं, बैल तथा भैंस जैसे पशु—उनकी आंखों में वही गहरी उदासी, वही दुर्बल शरीर; सड़क के किनारे बिखरा कूड़ा और गद—क्या यही हमारा आज का भारत है? महलों के ठीक पड़ोस में चरमराती झोंपड़ियां; मंदिर के ठीक पास कूड़े के ढेर; तड़क-भड़क वस्त्रों में सजे व्यक्ति के साथ-साथ चलता हुआ लंगोट पहने सन्यासी; अच्छे भोजन तथा तमाम सुविधाओं से संपन्न व्यक्ति को दया की भीख मांगती और बेचमक निगाहों से देखता हुआ एक भूख का मारा व्यक्ति,—क्या हमारा अपना देश है! भयानक प्लेग तथा कालरा के कारण भयानक तबाही; देश के पोर-पोर को चबाता हुआ मलेरिया; मनुष्य की दूसरी प्रकृति बन चुकी भुखमरी और अर्ध-भुखमरी; तांडव-नृत्य करता हुआ अकाल का दानव, तीस

करोड़ लोगों का यह समूह जो कहने भर को मनुष्य हैं, अपने ही देशवासियों तथा विदेशी राष्ट्रों द्वारा पीड़ित होकर जीवनहीन किसी आशा, किसी अतीत, किसी भविष्य से वंचित ऐसे कुटिल चरित्र के लोग जो केवल गुलामों को शोभा दे, जिनके लिए अपने ही भाइयों की संपत्ति असह्य है उन बलवानों के तलवे चाटते हुए जो बलहीनों को प्राणाघातक चोटें पहुंचा रहे हैं ऐसे भोंडे तथा निकृष्ट अंधविश्वासों से ग्रस्त तो स्वाभाविक तौर पर कमजोर तथा भविष्य से निराश लोगों में आ जाते हैं ... किसी भी नैतिक मानदंड से रहित ... इस तरह के तीन करोड़ प्राणी जो भारत के शरीर पर इस तरह रेंग रहे हैं जैसे कि सड़ती और बदबू देती लाशों के ऊपर कीड़े रेंगते हैं—हमारे बारे में यही वह तस्वीर है जो स्वाभाविक तौर पर अंग्रेज़ अधिकारियों के सामने उभरती है।

इस तरह 1858 के बाद पहले की सुधारवादी प्रवृत्ति का आधार और व्यापक हुआ। राजा राममोहन राय तथा ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे आरंभिक सुधारवादियों के काम को धार्मिक तथा सामाजिक सुधार के प्रमुख आंदोलनों ने और आगे बढ़ाया।

धार्मिक सुधार

विज्ञान, जनतंत्र तथा राष्ट्रवाद की आधुनिक दुनिया की आवश्यकताओं के अनुसार अपने समाज को ढालने की इच्छा लेकर तथा यह संकल्प करके कि इस रास्ते में कोई बाधा नहीं रहने दी जाएगी, विचारशील भारतीयों ने अपने पारंपरिक धर्मों के सुधार का काम आरंभ किया। कारण कि धर्म उन दिनों जनता के जीवन का एक अभिन्न अंग था और धार्मिक सुधार के बिना सामाजिक सुधार भी कुछ खास संभव नहीं था। अपने धर्मों के आधार के प्रति सच्चे रहकर भी उन्होंने उनको भारतीय जनता की नई आवश्यकताओं के अनुसार ढाला।

ब्रह्म समाज : राजा राममोहन राय की ब्रह्म परंपरा को 1843 के बाद देवेंद्रनाथ ठाकुर ने आगे बढ़ाया। उन्होंने इस सिद्धांत का भी खंडन किया कि वैदिक ग्रंथ अनुल्लंघनीय हैं। वर्ष 1866 के बाद इस आंदोलन को केशवचंद्र सेन ने आगे जारी रखा। ब्रह्म समाज ने हिंदू धर्म की कुरीतियों को हटाकर, उसे एक ईश्वर की पूजा पर आधारित करके, तथा वेदों को अनुल्लंघनीय न मानकर भी वेदों तथा उपनिषदों की शिक्षाओं के आधार पर उसमें सुधार लाने की कोशिश की। इसने आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के बेहतरीन तत्वों को अपनाने की भी कोशिश की। सबसे बड़ी बात यह है कि उसने अपना आधार मानव-बुद्धि को बनाया तथा उसे यह जानने की कसौटी बतलाया कि प्राचीन या वर्तमान धार्मिक सिद्धांतों और व्यवहारों में क्या उपयोगी तथा क्या अनुपयोगी है। इस कारण धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या के लिए पुरोहित वर्ग को भी ब्रह्म समाज ने अनावश्यक बताया। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार तथा क्षमता प्राप्त है कि वह अपनी बुद्धि की सहायता से यह देखे कि किसी धार्मिक ग्रंथ या सिद्धांत में क्या गलत है और क्या सही है। इस तरह ब्रह्म समाजी मूलतः मूर्तिपूजा तथा अंधविश्वासपूर्ण कर्मकांडों के, बल्कि पूरी ब्राह्मणवादी परंपरा के विरोधी थे। वे बिना किसी पुरोहित की मध्यस्थता के एक ईश्वर की पूजा करते थे।

ब्रह्म लोग महान समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने जाति-प्रथा तथा बाल-विवाह का जमकर विरोध किया। विधवा-पुनर्विवाह समेत स्त्री-कल्याण के सभी उपायों के तथा स्त्री-पुरुषों के बीच आधुनिक शिक्षा के प्रसार के वे समर्थक थे।

ब्रह्म समाज अपने आंतरिक कलह के कारण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में कमजोर पड़ गया। वैसे भी इसका प्रभाव प्रमुखतः नगरीय शिक्षित वर्ग तक ही सीमित था। फिर भी 19वीं तथा 20वीं सदी में बंगाल तथा शेष भारत के बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

महाराष्ट्र में धार्मिक सुधार : बंबई प्रांत में धार्मिक सुधार-कार्य का आरंभ 1840 में परमहंस मंडली ने आरंभ किया। इसका उद्देश्य मूर्तिपूजा तथा जाति-प्रथा का विरोध करना था। पश्चिमी भारत के पहले धार्मिक सुधारक संभवतः गोपाल हरि देशमुख थे जिन्हें जनता 'लोकहितवादी' कहती थी। वे मराठी भाषा में लिखते थे। उन्होंने हिंदू कट्टरपंथ पर भयानक बुद्धिवादी आक्रमण किए और धार्मिक तथा सामाजिक समानता का प्रचार किया। उदाहरण के लिए, 1840 के दशक में उन्होंने लिखा :

> पुरोहित बहुत ही अपवित्र हैं क्योंकि कुछ बातों को बिना उनका अर्थ समझे दुहराते रहते हैं और ज्ञान को इसी रटंत तक भोंडे ढंग से सीमित करके रख देते हैं। पंडित तो पुरोहितों से भी बुरे हैं क्योंकि वे और भी अज्ञानी हैं तथा अहंकारी भी हैं ब्राह्मण कौन हैं और किन अर्थों में वे हमसे भिन्न हैं? क्या उनके बीस हाथ हैं और क्या हममें कोई कमी है? अब जब ऐसे सवाल पूछे जाएं तो ब्राह्मणों को अपनी मूर्खतापूर्ण धारणाएं त्याग देनी चाहिए; उन्हें यह मान लेना चाहिए कि सभी मनुष्य बराबर हैं तथा हर व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार है।

उन्होंने यह भी कहा कि अगर धर्म सामाजिक सुधार की अनुमति नहीं देता तो उसे बदल दिया जाना चाहिए। कारण कि धर्म को मनुष्य ने ही बनाया है और बहुत पहले लिखे गए धर्मग्रंथ हो सकता है कि बाद के काल के लिए प्रासंगिक न रह जाएं। बाद में आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में हिंदू धार्मिक विचारों तथा व्यवहारों में सुधार लाने के लिए प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इसने एक ईश्वर की पूजा का प्रचार किया तथा धर्म को जाति-प्रथा की रूढ़ियों से और पुरोहितों के वर्चस्व से मुक्त कराने का प्रयास किया। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान तथा इतिहासकार आर.जी.भंडारकर और महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901) इसके प्रमुख नेता थे। इस पर ब्रह्म समाज का गहरा प्रभाव था तेलुगू सुधारक वीरेशलिंगम के प्रयासों से इसका प्रसार दक्षिण भारत में भी हुआ। इसी समय महाराष्ट्र में गोपाल गणेश आगरकर भी कार्यरत थे जो आधुनिक भारत के महानतम बुद्धिवादी विचारकों में एक हैं। ये मानव-बुद्धि की क्षमता के प्रचारक थे। परंपरा पर अंध-श्रद्धा तथा भारत के अतीत के झूठे महिमामंडन की भी उन्होंने कड़ी आलोचना की।

रामकृष्ण और विवेकानंद : रामकृष्ण परमहंस (1834-1886) एक संत चरित्र व्यक्ति थे जो त्याग-ध्यान-भक्ति की पारंपरिक विधियों से धार्मिक मुक्ति पाने में विश्वास रखते थे। धार्मिक सत्य की खोज तथा स्वयं में ईश्वर का अनुभव करने के उद्देश्य से वे मुस्लिम तथा ईसाई दरवेशों के साथ भी रहे। उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि ईश्वर तक पहुंचने तथा मुक्ति पाने के कई मार्ग हैं और यह कि मनुष्य की सेवा ईश्वर की सेवा है, क्योंकि मनुष्य ईश्वर का ही मूर्तिमान रूप है।

उनके धार्मिक संदेशों को उनके महान शिष्य स्वामी विवेकानंद (1863-1902) ने प्रचारित किया तथा उनको समकालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने का प्रयास किया। विवेकानंद का सबसे अधिक जोर सामाजिक क्रिया पर था। उन्होंने कहा कि ज्ञान अगर वास्तविक दुनिया में जिसमें हम रहते हैं, कर्म से हीन हो तो व्यर्थ है। अपने गुरु की तरह उन्होंने भी सभी धर्मों की बुनियादी एकता की घोषणा की तथा धार्मिक बातों में संकुचित दृष्टिकोण की निंदा की। जैसा कि 1898 में उन्होंने लिखा था : "हमारी अपनी मातृभूमि के लिए दो महान धर्मों—हिंदुत्व तथा इस्लाम का संयोग ही एकमात्र आशा है।" साथ ही वे भारतीय दर्शन-परंपरा के श्रेष्ठकर दृष्टिकोण में भी विश्वास रखते थे। वे खुद वेदांत के अनुयायी थे जिसे उन्होंने एक पूर्णतः बुद्धिसंगत प्रणाली बतलाया।

विवेकानंद ने भारतीयों की आलोचना की कि बाकी दुनिया से कटकर वे जड़ तथा मृतप्राय हो गए हैं। उन्होंने लिखा : "दुनिया के सभी दूसरे राष्ट्रों से हमारा अलगाव ही हमारे पतन का कारण है और शेष दुनिया की धारा में समा जाना ही इसका एकमात्र समाधान है। गति जीवन का चिन्ह है।"

विवेकानंद ने जाति-प्रथा की तथा कर्मकांड, पूजा-पाठ और अंधविश्वास पर हिंदू धर्म के तत्कालीन जोर देने की निंदा की तथा जनता से स्वाधीनता, समानता तथा स्वतंत्र चिंतन की भावना अपनाने का आग्रह किया। इस बारे में उनकी तीखी टिप्पणी इस प्रकार थी :

> हमारे सामने खतरा यह है कि हमारा धर्म रसोईघर में न बंद हो जाए। हम, अर्थात हममें से अधिकांश न वेदांती हैं, न पौराणिक और न ही तांत्रिक हम केवल 'हमें मत छुओ' के समर्थक हैं। हमारा ईश्वर भोजन के बर्तन में है और हमारा धर्म यह है कि 'हम पवित्र हैं, हमें छूना मत।' अगर यही सब कुछ एक शताब्दी और चलता रहा तो हममें से हर एक व्यक्ति पागलखाने में होगा।

विचारों की स्वतंत्रता के बारे में उन्होंने कहा :

> विचार और कर्म की स्वतंत्रता जीवन, विकास तथा कल्याण की अकेली शर्त है। जहां यह न हो वहां मनुष्य, जाति तथा राष्ट्र सभी पतन के शिकार होते हैं।

अपने गुरु की तरह विवेकानंद भी एक महान मानवतावादी थे। देश की साधारण जनता की गरीबी, बदहाली और पीड़ा से दुखी होकर उन्होंने लिखा है:

> मैं एक ही ईश्वर को मानता हूं जो सभी आत्माओं की एक आत्मा है और सबसे ऊपर है। मेरा ईश्वर दुखी मानव है; मेरा ईश्वर पीड़ित मानव है; मेरा ईश्वर हर जाति का निर्धन मनुष्य है।

शिक्षित भारतीयों से वे कहते हैं :

> जब तक लाखों-लाख लोग भूख तथा अज्ञान से ग्रस्त हैं, मैं हर उस व्यक्ति को देशद्रोही कहूंगा जो उसके खर्च पर शिक्षा पाकर भी उन पर कोई ध्यान नहीं देता।

मानवतावादी राहत-कार्य तथा समाज-कार्य को जारी रखने के लिए 1896 में विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। देश के विभिन्न भागों में इस मिशन की अनेक शाखाएं थीं और इसने स्कूल, अस्पताल और दवाखाने, अनाथालय, पुस्तकालय, आदि खोलकर सामाजिक सेवा के कार्य किए। इस तरह इसका जोर व्यक्ति की मुक्ति नहीं बल्कि सामाजिक कल्याण और समाज सेवा पर था।

स्वामी दयानंद और आर्यसमाज : उत्तर भारत में हिंदू धर्म के सुधार का बीड़ा आर्यसमाज ने उठाया। इसकी स्थापना 1875 में स्वामी दयानंद (1824-1883) ने की थी। उनका मानना था कि तमाम झूठी शिक्षाओं से भरे पुराणों की सहायता से स्वार्थी व अज्ञानी पुरोहितों ने हिंदू धर्म को भ्रष्ट कर रखा था। अपने लिए दयानंद ने वेदों से प्रेरणा प्राप्त की जिनको ईश्वर-कृत होने के नाते वे अनुल्लंघनीय तथा सभी ज्ञान का भंडार मानते थे। उन्होंने उन बाद के सभी धार्मिक विचारों को रद्द कर दिया जो वेदों से मेल नहीं खाते थे। वेदों तथा उनकी अनुल्लंघनीयता पर इस तरह की पूर्ण निर्भरता ने उनकी शिक्षाओं को रूढ़िवादी रंग में रंग दिया क्योंकि उनकी अनुल्लंघनीयता का अर्थ यह है कि मानव-बुद्धि अंतिम निर्णायक नहीं रहीं।

फिर भी, इस दृष्टिकोण का एक बुद्धिसंगत पक्ष भी था। कारण कि ईश्वर-प्रदत्त होने के बावजूद वेदों की व्याख्या उन्हें तथा दूसरे मनुष्यों को ही बुद्धिसंगत ढंग से करनी होगी। वे मानते थे कि प्रत्येक को ईश्वर तक सीधे पहुंचने का अधिकार है। इसके अलावा, हिंदू कट्टरपंथ का समर्थन करने की बजाए उन्होंने इस पर हमला किया तथा इसके खिलाफ एक विद्रोह छेड़ा। परिणामस्वरूप वेदों की अपनी व्याख्या से उन्होंने जो भी शिक्षाएं ग्रहण कीं वे दूसरे भारतीय सुधारकों द्वारा

प्रचारित किए जा रहे धार्मिक व सामाजिक सुधारों से मिलती-जुलती थीं। वे मूर्तिपूजा, कर्मकांड और पुरोहितवाद के तथा खासकर जाति-प्रथा और ब्राह्मणों द्वारा प्रचलित हिंदू धर्म के विरोधी थे। उन्होंने इसी वास्तविक जगत में रह रहे मनुष्यों की समस्याओं की ओर ध्यान दिया तथा दूसरी दुनिया में परंपरागत विश्वास से लोगों का ध्यान हटाया। वे पश्चिमी विज्ञानों के अध्ययन के भी समर्थक थे।

दिलचस्प बात यह है कि स्वामी दयानंद ने केशवचंद्र सेन, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, जस्टिस रानाडे, गोपाल हरि देशमुख तथा दूसरे आधुनिक धर्म-समाज- सुधारकों से मिलकर उनसे वाद-विवाद भी किए थे। वास्तव में आर्यसमाज का इतवारी सभाओं का विचार इस बारे में ब्रह्म समाज तथा प्रार्थनासमाज के व्यवहार से मिलता-जुलता था।

स्वामी दयानंद के कुछ शिष्यों ने बाद में पश्चिमी ढंग की शिक्षा के प्रसार के लिए देश भर में स्कूलों तथा कालेजों का एक पूरा जाल-सा बिछा दिया। इस प्रयास में लाला हंसराज की एक प्रमुख भूमिका रही। दूसरी तरफ कुछ अधिक परंपरावादी शिक्षा के प्रसार के लिए स्वामी श्रद्धानंद ने 1902 में हरिद्वार के निकट गुरुकुल की स्थापना की।

आर्यसमाजी सुधार के प्रखर समर्थक थे। स्त्रियों की दशा सुधारने तथा उनमें शिक्षा का प्रसार करने के लिए उन्होंने बहुत से काम किए। उन्होंने छुआछूत तथा वंश-परंपरा पर आधारित जाति-प्रथा की कठोरताओं का विरोध किया। इस तरह वे सामाजिक समानता के प्रचारक थे तथा उन्होंने सामाजिक एकता को मजबूत बनाया। उन्होंने जनता में आत्मसम्मान तथा स्वावलंबन की भावना भी जगाई। इससे राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला। साथ ही साथ, आर्यसमाज का एक उद्देश्य हिंदुओं को धर्म-परिवर्तन से रोकना भी था। इसके कारण दूसरे धर्मों के खिलाफ़ एक जेहाद छेड़ दिया। यह जेहाद बीसवीं सदी में भारत में सांप्रदायिकता के प्रसार में सहायक एक कारण बन गया। आर्यसमाज के सुधार-कार्य ने समाज की बुराइयां खत्म करके जनता को एकबद्ध करने का प्रयास किया, मगर उसके धार्मिक कार्य में संभवतः अचेतन रूप में ही विकासमान हिंदुओं, मुसलमानों, पारसियों, सिखों और ईसाइयों के बीच पनप रही राष्ट्रीय एकता को भंग करने की ही प्रवृत्ति की। उसे यह बात स्पष्ट नहीं थी कि भारत में राष्ट्रीय एकता धर्मनिरपेक्ष आधार पर तथा धर्म से परे रहकर ही संभव है ताकि यह सभी धर्मों के लोगों को समेट सके।

थियोसोफिकल सोसायटी : थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना संयुक्त राज्य अमरीका में मैडम एच.पी. ब्लावात्सकी तथा कर्नल एच.एस. ओलकाट द्वारा की गई। बाद में ये दोनों भारत आ गए तथा 1886 में मद्रास के करीब अडियार में उन्होंने सोसायटी का मुख्यालय स्थापित किया। वर्ष 1893 में भारत आने वाली श्रीमती एनी बेसेंट के नेतृत्व में थियोसोफी आंदोलन जल्द ही भारत में फैल गया। थियोसोफिस्ट प्रचार करते थे कि हिंदुत्व, जरथुस्त्र मत (पारसी धर्म) तथा बौद्ध मत जैसे प्राचीन धर्मों को पुनर्स्थापित तथा मजबूत किया जाए। उन्होंने आत्मा के पुनरागमन के सिद्धांत का भी प्रचार किया। धार्मिक पुनर्स्थापनावादियों के रूप में थियोसोफिस्टों को बहुत सफलता नहीं मिली। लेकिन आधुनिक भारत के घटनाक्रमों में उनका एक विशिष्ट योगदान रहा। यह पश्चिमी देशों के ऐसे लोगों द्वारा चलाया जा रहा एक आंदोलन था जो भारतीय धर्मों तथा दार्शनिक परंपरा का महिमामंडन करते थे। इससे भारतीयों को अपना खोया आत्मविश्वास फिर से पाने में सहायता मिली, हालांकि अतीत की महानता का झूठा गर्व भी इसने उनके अंदर पैदा किया।

भारत में श्रीमती एनी बेसेंट के प्रमुख कार्यों में एक था बनारस में केंद्रीय हिंदू विद्यालय की स्थापना जिसे बाद में मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया।

सैयद अहमद खान तथा अलीगढ़ आंदोलन : मुसलमानों में धार्मिक सुधार के आंदोलन कुछ देर से उभरे। उच्च वर्गों के मुसलमानों ने पश्चिमी शिक्षा व संस्कृति के संपर्क से बचने की ही कोशिशें कीं। केवल 1857 के महाविद्रोह के बाद ही धार्मिक सुधार के आधुनिक विचार उभरने शुरू हुए। इस दिशा में आरंभ 1863 में कलकत्ता में स्थापित मुहम्मडन लिटरेरी सोसायटी ने किया। इस सोसायटी ने आधुनिक विचारों के प्रकाश में धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों पर विचार-विमर्श को बढ़ावा दिया तथा पश्चिमी शिक्षा अपनाने के लिए उच्च तथा मध्य वर्गों के मुसलमानों को प्रेरित किया।

मुसलमानों में सबसे प्रमुख सुधारक सैयद अहमद खान (1817-1898) थे। वे आधुनिक वैज्ञानिक विचारों से काफी प्रभावित थे तथा जीवन भर इस्लाम के साथ उनका तालमेल करने के लिए प्रयत्नरत रहे। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले यह घोषित किया कि इस्लाम की एकमात्र प्रामाणिक पुस्तक कुरान है और सभी इस्लामी लेखन गौण महत्त्व का है। उन्होंने कुरान की व्याख्या भी समकालीन बुद्धिवाद तथा विज्ञान की रोशनी में की। उनके अनुसार कुरान की कोई भी व्याख्या अगर मानव-बुद्धि, विज्ञान या प्रकृति से टकरा रही हैं तो वह वास्तव में गलत व्याख्या है। उन्होंने कहा कि धर्म के तत्व भी अपरिवर्तनीय नहीं हैं। धर्म अगर समय के साथ नहीं चलता तो वह जड़ हो जाएगा जैसा कि भारत में हुआ है। जीवन भर वे परंपरा के अंध अनुकरण, रिवाजों पर भरोसा, अज्ञान तथा अबुद्धिवाद के खिलाफ संघर्ष करते रहे। उन्होंने लोगों से आलोचनात्मक दृष्टिकोण तथा विचार की स्वतंत्रता अपनाने का आग्रह किया। उन्होंने घोषणा की कि "जब तक विचार की स्वतंत्रता विकसित नहीं होती, सभ्य जीवन संभव नहीं है।" उन्होंने कट्टरपंथ, संकुचित दृष्टि तथा अलग-थलग रहने के खिलाफ भी चेतावनी दी, तथा छात्रों और दूसरे लोगों से खुले दिल वाला तथा सहिष्णु बनने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि बंद दिमाग सामाजिक-बौद्धिक पिछड़ेपन की निशानी है। विश्व भर के अमर साहित्य के अध्ययन की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा :

> (इससे) छात्र उस मानसिकता को समझ सकेगा जिसके सहारे महान व्यक्ति महान प्रश्नों पर विचार करते हैं। उसे पता चलेगा कि सत्य के अनेक पक्ष होते हैं और यह व्यक्तिगत मत का पर्याय या मात्र समकक्ष नहीं होता, और यह कि दुनिया उसके अपने पंथ, समाज या वर्ग से कहीं बहुत अधिक व्यापक है।

सैयद अहमद खान का विश्वास था कि मुसलमानों का धार्मिक और सामाजिक जीवन आधुनिक, पाश्चात्य, वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति को अपनाकर ही सुधर सकता है। इसलिए आधुनिक शिक्षा का प्रचार जीवन-पर्यंत उनका प्रथम ध्येय रहा। एक अधिकारी के रूप में उन्होंने अनेक नगरों में विद्यालय स्थापित किए थे और अनेक पश्चिमी ग्रंथों का उर्दू में अनुवाद कराया था। उन्होंने 1875 में अलीगढ़ में मुहम्मडन एंग्लो-ओरिएंटल कालेज की स्थापना पाश्चात्य विज्ञान तथा संस्कृति का प्रचार करने वाले एक केंद्र के रूप में की। बाद में इस कालेज का विकास अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में हुआ।

सैयद अहमद खान धार्मिक सहिष्णुता के पक्के समर्थक थे। उनका विश्वास था कि सभी धर्मों में एक बुनियादी एकता मौजूद है जिसे व्यावहारिक नैतिक कहा जा सकता है। वे मानते थे कि धर्म व्यक्ति का अपना निजी मामला है और इसलिए वे वैयक्तिक संबंधों में धार्मिक कट्टरता की निंदा करते थे। वे सांप्रदायिक टकराव के भी विरोधी थे। हिंदुओं और मुसलमानों से एकता का आग्रह करते हुए उन्होंने 1883 में कहा था :

> "हम दोनों भारत की हवा में सांस लेते हैं और गंगा-यमुना का पवित्र जल पीते हैं। हम दोनों भारत की धरती का अनाज खाकर जीवित रहते हैं। जीवन और मृत्यु, दोनों में हम एक साथ हैं। भारत में

हमारे निवास ने हम दोनों का खून बदल डाला है, हमारे शरीरों के रंग एक हो चुके हैं, हमारे हुलिए समान हो चुके हैं। मुसलमानों ने अनेक हिंदू रिवाजों को अपना लिया है तथा हिंदुओं ने मुसलमानों के आचार-विचार की बहुत सी बातें ले ली हैं। हम इस कदर एक हो चुके हैं कि हमने एक नई भाषा उर्दू को विकसित किया है जो न हमारी भाषा है और न हिंदुओं की। इसलिए हम अपने जीवन के उन पक्षों को छोड़ दें जो ईश्वर से संबंधित हैं तो निःसंदेह इस आधार पर कि हम दोनों एक ही देश में रहते हैं, हम एक राष्ट्र हैं, तथा देश की, तथा हम दोनों की प्रगति और कल्याण हमारी एकता, पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है जबकि हमारे पारस्परिक मतभेद, अकड़, विरोध तथा दुर्भावना निश्चित ही हमें नष्ट कर देंगी।"

इसके अलावा इस कालेज के कोष में हिंदुओं, पारसियों और ईसाइयों ने जी भी खोलकर दान दिया, और इसके दरवाजे भी सभी भारतीयों के लिए खुले थे। उदाहरण के लिए, 1898 में इस कालेज में 64 हिंदू और 285 मुसलमान छात्र थे। सात भारतीय अध्यापकों में दो हिंदू थे और इनमें एक संस्कृत का प्रोफेसर था। मगर अपने जीवन के अंतिम वर्षों में अपने अनुयायियों को उभरते राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने से रोकने के लिए सैयद अहमद खान हिंदुओं के वर्चस्व की शिकायतें करने लगे थे। यह दुर्भाग्य की बात थी। फिर भी वे बुनियादी तौर पर सांप्रदायिक नहीं थे। वे केवल यह चाहते थे कि मध्य तथा उच्च वर्गों के मुसलमानों का पिछड़ापन खत्म हो। उनकी राजनीति उनके इस दृढ़ विश्वास की उपज थी कि ब्रिटिश सरकार को आसानी से नहीं हटाया जा सकता और इसलिए तात्कालिक राजनीतिक प्रगति संभव नहीं है। दूसरी तरफ, अधिकारियों की जरा सी भी शत्रुता शिक्षा-प्रसार के प्रयास के लिए घातक हो सकती थी जबकि वे इसे वक्त की जरूरत समझते थे। उनका विश्वास था कि जब भारतीय भी विचार व कर्म में अंग्रेजों जितने आधुनिक बन जाएंगे, केवल तभी वे सफलता के साथ विदेशी शासन को ललकार सकेंगे। इसलिए उन्होंने सभी भारतीयों तथा खासकर शैक्षिक रूप से पिछड़े मुसलमानों को सलाह दी कि वे कुछ समय के लिए राजनीति से दूर रहें। उनके अनुसार राजनीति का समय अभी नहीं आया था।

वास्तव में वे अपने कालेज तथा शिक्षा-प्रसार के उद्देश्य के प्रति इस तरह समर्पित हो चुके थे कि इसके लिए अन्य सभी हितों का बलिदान करने को तैयार थे। परिणामस्वरूप, रूढ़िवादी मुसलमानों को कालेज का विरोध करने से रोकने के लिए उन्होंने धार्मिक सुधार के आंदोलन को भी लगभग त्याग दिया था। इसी कारण से वे कोई ऐसा काम नहीं करते थे कि सरकार रूष्ट हो तथा, दूसरी ओर, सांप्रदायिकता और अलगाववाद को प्रोत्साहन देने लगे थे। निश्चित ही यह एक गंभीर राजनीतिक त्रुटि थी जिसके बाद में हानिकारक परिणाम निकले। इसलिए अलावा उनके कुछ अनुयायी उनकी तरह खुले दिल वाले नहीं रहे और वे बाद में इस्लाम का तथा उसके अतीत का महिमामंडन करने लगे तथा दूसरे धर्मों की आलोचना करने लगे।

सैयद अहमद ने सामाजिक सुधार के काम में भी उत्साह दिखाया। उन्होंने मुसलमानों से मध्यकालीन रीति-रिवाज तथा विचार व कर्म की पद्धतियों को छोड़ देने का आग्रह किया। उन्होंने समाज में महिलाओं की स्थिति सुधारने के बारे में लिखा तथा पर्दा छोड़ने तथा स्त्रियों में शिक्षा-प्रसार का समर्थन किया। उन्होंने बहुविवाह प्रथा तथा मामूली-मामूली बातों पर तलाक के रिवाज की भी निंदा की।

सैयद अहमद खान की सहायता उनके कुछ वफादार अनुयायी किया करते थे। इन्हें सामूहिक रूप से अलीगढ़ समूह कहा जाता है। चिराग अली, उर्दू शायर अल्ताफ हुसैन हाली, नजीर अहमद तथा मौलाना शिबली नुमानी अलीगढ़ आंदोलन के कुछ और प्रमुख नेता थे।

मुहम्मद इकबाल : आधुनिक भारत के महानतम कवियों में एक, मुहम्मद इकबाल (1876-1938) ने भी अपनी कविता द्वारा नौजवान मुसलमानों तथा हिंदुओं के दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव डाला। स्वामी विवेकानंद की तरह उन्होंने भी निरंतर परिवर्तन तथा अबाध कर्म पर बल दिया और विराग, ध्यान तथा एकांतवास की निंदा की। उन्होंने एक गतिमान दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया जो दुनिया को बदलने में सहायक हों। वे मूलतः एक मानवतावादी थे। वास्तव में उन्होंने मानव कर्म को प्रमुख धर्म की स्थिति तक पहुंचा दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्य को प्रकृति या सत्ताधीशों के अधीन नहीं होना चाहिए बल्कि निरंतर कर्म द्वारा इस विश्व को नियंत्रित करना चाहिए। उनके विचार में स्थिति को निष्क्रिय रूप से स्वीकार करने से बड़ा पाप कोई नहीं है। कर्मकांड, वैराग तथा दूसरी दुनिया में विश्वास की प्रवृत्ति की निंदा करते हुए उन्होंने कहा कि मनुष्य को इसी जीती-जागती दुनिया में सुख प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। अपनी आरंभिक कविता में उन्होंने देशभक्ति के गीत गाए हैं हालांकि बाद में उन्होंने मुस्लिम अलगाववाद का समर्थन किया।

पारसियों में धार्मिक सुधार : पारसी लोगों में धार्मिक सुधार का आरंभ बंबई में 19वीं सदी के आरंभ में हुआ। वर्ष 1851 में रहमानी मज़्दायासन सभा (रिलीजस रिफार्म एसोसिएशन) का आरंभ नौरोजी फरदूनजी, दादाभाई नौरोजी, एस.एस. बंगाली तथा अन्य लोगों ने किया। इन सभी ने धर्म के क्षेत्र में हावी रूढ़िवाद के खिलाफ आंदोलन चलाया, और स्त्रियों की शिक्षा तथा विवाह और कुल मिलाकर स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के बारे में पारसी सामाजिक रीति-रिवाजों के आधुनिकीकरण का आरंभ किया। कालांतर में पारसी लोग सामाजिक क्षेत्र में पश्चिमीकरण की दृष्टि से भारतीय समाज के सबसे अधिक विकसित अंग बन गए।

सिखों में धार्मिक सुधार : सिख लोगों में धार्मिक सुधार का आरंभ 19वीं सदी के अंत में हुआ जब अमृतसर में खालसा कालेज की स्थापना हुई। लेकिन सुधार के प्रयासों को बल 1920 के बाद मिला जब पंजाब में अकाली आंदोलन का आरंभ हुआ। अकालियों का मुख्य उद्देश्य गुरुद्वारों के प्रबंध का शुद्धिकरण करना था। इन गुरुद्वारों को भक्त सिखों की ओर से भारी मात्रा में जमीनें और धन मिलते थे, परंतु इनका प्रबंध भ्रष्ट तथा स्वार्थी महंतों द्वारा मनमाने ढंग से किया जा रहा था। अकालियों के नेतृत्व में 1921 में सिख जनता ने इन महंतों तथा इनकी सहायता करने वाली सरकार के खिलाफ एक शक्तिशाली सत्याग्रह आंदोलन छेड़ दिया।

जल्द ही अकालियों ने सरकार को मजबूर कर दिया कि वह एक सिख गुरुद्वारा कानून बनाए। यह कानून 1922 में बना और 1925 में इसमें संशोधन किए गए। कभी-कभी इस कानून की सहायता से मगर अधिकतर सीधी कार्यवाही के द्वारा सिखों ने गुरुद्वारों से भ्रष्ट महंतों को धीरे-धीरे बाहर खदेड़ दिया, हालांकि इस आंदोलन में सैकड़ों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा।

ऊपर जिन सुधार आंदोलनों तथा विशिष्ट सुधारकों का वर्णन किया गया है उनसे अलग बहुत से दूसरे इसी तरह के आंदोलन और सुधारक भी 19वीं तथा 20वीं सदी में हुए हैं।

आधुनिक युग के धार्मिक सुधार के आंदोलन में एक बुनियादी समानता पाई जाती है। ये सभी आंदोलन बुद्धिवाद तथा मानवतावाद के दो सिद्धांतों पर आधारित थे, हालांकि अपनी ओर लोगों को खींचने के लिए कभी-कभी वे आस्था तथा प्राचीन ग्रंथों का सहारा भी लेते थे। इसके अलावा, उन्होंने उभरते हुए मध्य वर्ग आधुनिक शिक्षा-प्राप्त प्रबुद्ध लोगों को सबसे अधिक प्रभावित किया। उन्होंने बुद्धिविरोधी धार्मिक कठमुल्लापन तथा अंध-श्रद्धा से मानव बुद्धि की तर्क-विचार की

क्षमता को मुक्त कराने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय धर्मों के कर्मकांडी, अंधविश्वासी, बुद्धिविरोधी तथा पुराणपंथी पक्षों का विरोध किया। उनमें से अनेक ने, किसी ने कम और किसी ने अधिक, धर्म को अंतिम सत्य का भंडार मानने से इंकार कर दिया तथा किसी भी धर्म या उसके ग्रंथों में उपस्थित सत्य को तर्क, बुद्धि तथा विज्ञान की कसौटी पर परखा। स्वामी विवेकानंद ने कहा :

> "क्या धर्म बुद्धि के उन आविष्कारों द्वारा अपना औचित्य सिद्ध करेगा जिनके द्वारा प्रत्येक विज्ञान अपना औचित्य स्थापित करता है? क्या जांच-पड़ताल की वे विधियां जो विज्ञानों तथा ज्ञान के लिए प्रयुक्त होती हैं, धर्म के विज्ञान पर भी लागू की जाएंगी? मेरे विचार में ऐसा ही होना चाहिए, और मैं यह भी मानता हूं कि यह जितनी जल्दी हो उतना ही बेहतर है।"

इनमें से कुछ धर्मसुधारकों ने परंपरा का सहारा लिया और यह दावा किया कि वे केवल अतीत के वास्तविक सिद्धांतों, मान्यताओं और व्यवहारों को ही पुनर्जीवित कर रहे हैं। पर वास्तव में अतीत को पुनर्जीवित नहीं किया जा सका। प्रायः अतीत के बारे में सबकी समझ भी एक जैसी न थी। अतीत का सहारा लेने पर जो समस्याएं उठती हैं उनका वर्णन जस्टिस रानाडे ने किया है, हालांकि खुद उन्होंने अक्सर जनता से आग्रह किया था कि वह अतीत की बेहतरीन परंपराओं को पुनर्जीवित करें। वे लिखते हैं :

> पुनर्जीवित हम करें तो क्या? क्या हम अपनी जनता की पुरानी आदतों को पुनर्जीवित करें जब हमारी जातियों में सबसे पवित्र जाति भी पशु के मांस तथा नशीली शराब का सेवन करती थी जिन्हें हम आज घृणित समझते हैं? क्या हम पुत्रों की बारह श्रेणियों तथा आठ प्रकार के विवाह को पुनर्जीवित करें जिसमें राक्षस-विवाह भी शामिल था तथा जो मुक्त तथा अवैध यौन संबंध को मान्यता देता था?... क्या हम प्रतिवर्ष होने वाले शवमेध को पुनर्जीवित करें जिसमें मनुष्यों तक का देवता के आगे बलिदान दिया जाता था? क्या हम सती और शिशु-हत्या की प्रथाओं को पुनर्जीवित करें?

फिर रानाडे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि समाज एक निरंतर परिवर्तनशील जीवित सत्ता है और कभी अतीत की ओर नहीं पलट सकती। "मृत तथा दफनाए या जलाए जा चुके लोग हमेशा के लिए मरकर दफनाए या जलाए या चुके हैं, और इसलिए मुर्दा अतीत को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता," ऐसा उन्होंने लिखा है। अतीत का नाम लेने वाले प्रत्येक सुधारक ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की कि वह उसके द्वारा सुझाए गए सुधारों के अनुरूप लगे। सुधार तथा उनके दृष्टिकोण प्रायः नवीन होते थे, अतीत के नाम पर केवल उनको उचित ठहराया जाता था। अनेक विचारों को जो आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान से मेल नहीं खाते थे, यह कहा गया कि ये बाद में जोड़े गए हैं यह गलत व्याख्या के परिणाम हैं। चूंकि रूढ़िवादी लोग इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं होते थे इसलिए उनसे सामाजिक सुधारकों का टकराव हुआ, और ये सुधारक कम से कम आरंभिक चरण में धार्मिक और सामाजिक विद्रोहियों के रूप में सामने आए। उदाहरण के लिए, रूढ़िवादियों द्वारा स्वामी दयानंद के विरोध के बारे में लाला लाजपतराय ने यह बात लिखी है :

> स्वामी दयानंद को अपने जीवन में जितने निंदा वचनों तथा उत्पीड़न का निशाना बनना पड़ा उनका अंदाजा इसी एक तथ्य से लगाया जा सकता है कि रूढ़िवादी हिंदुओं ने उनकी जान लेने के अनेक प्रयास किए। उनकी हत्या के लिए हत्यारों को भाड़े पर लिया गया, उनके भाषणों तथा वाद-विवाद के बीच उन पर पत्थर फेंके गये, उनको ईसाइयों का भाड़े का प्रचारक, धर्म विरोधी, नास्तिक, आदि-आदि कहा गया।

इसी तरह सैयद अहमद खान को भी परंपरावादियों के

गुस्से का शिकार होना पड़ा। उन्हें गालियां दी गईं, उनपे फतवे जारी किए गए, तथा जान से मारने की धमकियां तक दी गईं।

धार्मिक सुधार के आंदोलनों के मानवतावादी चरित्र की अभिव्यक्ति पुरोहितवाद तथा कर्मकांड पर उनके हमलों में तथा मानव कल्याण तथा मानव बुद्धि की दृष्टि से धर्मग्रंथों की व्याख्या के व्यक्ति के अधिकार पर दिए गए जोर से हुई। इस मानवतावाद की एक खास बात थी, एक नई मानवतावादी नैतिकता। इसमें यह धारणा भी शामिल थी कि मानवता प्रगति कर सकती है और करती रही है और अंततः वे ही मूल्य नैतिक मूल्य हैं जो मानव-प्रगति में सहायक हों। सामाजिक सुधार के आंदोलन इस नई, मानवतावादी नैतिकता के मूर्त रूप थे।

हालांकि सुधारकों ने अपने-अपने धर्मों में ही सुधार लाने के प्रयत्न किए, मगर सामान्य दृष्टिकोण सर्वव्यापकतावादी था। राममोहन राय विभिन्न धर्मों को एक ही सर्वव्यापी ईश्वर तथा एक धार्मिक सत्य के विशिष्ट रूप समझते थे। सैयद अहमद खान ने कहा कि सभी पैंगम्बरों का एक ही धर्म या दीन था, और अल्लाह ने हर कौम को अपना एक पैंगंबर भेजा है। इसी बात को केशवचंद्र सेन इस प्रकार रखते हैं : "हमारा मत यह नहीं है कि सत्य सभी धर्मों में पाए जाते हें, बल्कि यह है कि सभी स्थापित धर्म सत्य हैं।"

शुद्ध रूप से धार्मिक विचारों के अलावा धर्म-सुधार के इन आंदोलनों ने भारतीयों के आत्मविश्वास, आत्मसम्मान तथा अपने देश पर उनके गर्व को बढ़ाया। उनके धार्मिक अतीत की आधुनिक बुद्धिवादी शब्दों में व्याख्या करके तथा 19वीं सदी के धार्मिक विश्वासों से अनेक भ्रामक तथा बुद्धिविरोधी तत्वों को बाहर फेंककर इन सुधारकों ने अपने अनुयायियों को अधिकारियों के इस व्यंग्य का उत्तर देने योग्य बनाया कि यहां के धर्म व समाज पतनशील और हीन हैं। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार :

> उभरते हुए मध्य वर्गों का राजनीतिक रूझान था और उन्हें धर्म की खोज उतनी नहीं थी, लेकिन उनमें इच्छा थी कि वे किसी सांस्कृतिक मूल का सहारा ले सकें—किसी ऐसी वस्तु का जो उनको उनकी अपनी शक्ति का अनुभव कराए, कोई ऐसी वस्तु जो कुंठा तथा अपमान की उस भावना को कम करे जो विदेशियों की विजय तथा उनके शासन ने उनके अंदर उपजा दिए थे।

धर्म-सुधार के आंदोलनों ने अनेक भारतीयों को इस योग्य बनाया कि वे आधुनिक विश्व से तालमेल बिठा सकें। वास्तव में उनका जन्म ही पुराने धर्मों को एक नए, आधुनिक सांचे में ढालकर उनको समाज के नए वर्गों की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए हुआ था। इस तरह अतीत पर गर्व करके भी भारतीयों ने आम तौर पर आधुनिक विश्व तथा खास तौर पर आधुनिक विज्ञान की मूलभूत श्रेष्ठता को मानने से इनकार नहीं किया।

यह सही है कि कुछ लोगों ने दावा किया कि वे तो केवल मूल, प्राचीनतम धर्मग्रंथों का सहारा ले रहे हैं, और इन ग्रंथों की उन्होंने समुचित व्याख्या की। सुधारमूलक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप अनेक भारतीय जाति-धर्म के विचारों पर आधारित एक संकुचित दृष्टिकोण की जगह एक आधुनिक, इहलौकिक, धर्मनिरपेक्ष तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाने लगे, हालांकि पहले के संकुचित दृष्टिकोण एकदम समाप्त नहीं हो सके। इसके अलावा अधिकाधिक संख्या में लोग अपने भाग्य को निष्क्रिय रहकर स्वीकार करने तथा मरकर दूसरे जीवन के सुधारने की आशा लगाने के बजाए इसी दुनिया में अपने भौतिक व सांस्कृतिक कल्याण की बातें सोचने लगे। इन आंदोलनों ने बाकी दुनिया से भारत के सांस्कृतिक और बौद्धिक अलगाव को भी कुछ हद तक खत्म किया और विश्वव्यापी विचारों में भारतीयों को भागीदार बनाया। साथ ही साथ, वे पश्चिम की हर बात के रोब में नहीं आए, और जो लोग आंखें

मूंदकर पश्चिम की नकल करते थे उनकी खुलकर हंसी उड़ाई गई।

वास्तव में परंपरागत धर्मों व संस्कृति के पिछड़े तत्वों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर तथा आधुनिक संस्कृति के सकारात्मक तत्वों का स्वागत करके भी, अधिकांश धर्म-सुधारकों ने पश्चिम की अंधी नकल का विरोध भी किया और भारतीय संस्कृति व विचार परंपरा के उपनिवेशीकरण के खिलाफ एक विचारधारात्मक संघर्ष चलाया। यहां समस्या दोनों पक्षों के बीच संतुलन स्थापित करने की थी। कुछ लोग आधुनिकीकरण की दिशा में बहुत आगे बढ़ गए तथा संस्कृति संबंधी उपनिवेशवाद को प्रोत्साहित करने लगे। कुछ और लोग थे जो परंपरागत विचारों, संस्कृति और संस्थाओं का पक्ष लेते और उनका महिमामंडन करते थे, और आधुनिक विचारों व संस्कृति के समावेश का विरोध कर रहे थे। सुधारकों में जो श्रेष्ठ थे उनका तर्क यह था कि आधुनिक विचारों तथा संस्कृति को अच्छी तरह तभी अपनाया जा सकता है जब उन्हें भारतीय सांस्कृतिक धारा का अंग बना लिया जाए।

धर्म-सुधार के आंदोलनों के दो नकारात्मक पक्षों को भी ध्यान में रखना चाहिए। प्रथम, ये सभी समाज के एक बहुत छोटे भाग की यानी नगरीय उच्च और मध्य वर्गों की आवश्यकताएं पूरी करते थे। इनमें से कोई भी बहुसंख्य किसानों तथा नगरों की गरीब जनता तक नहीं पहुंचा, और ये लोग अधिकांशतः परंपरागत रीति-रिवाजों में ही जकड़े रहे। कारण यह है कि ये आंदोलन मूलतः भारतीय समाज के शिक्षित व नगरीय भागों की आकांक्षाओं को ही प्रतिबिंबित करते थे।

इनकी दूसरी कमी तो आगे चलकर एक प्रमुख नकारात्मक प्रवृत्ति बन गई। यह कमी पीछे घूमकर अतीत की महानता का गुणगान करने तथा धर्मग्रंथों को आधार बनाने की प्रवृत्ति थी। यह बात इन आंदोलनों की अपनी सकारात्मक शिक्षाओं की विरोधी बन गई। इसने मानव-बुद्धि तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की श्रेष्ठता के विचार को ही धक्का पहुंचाया। इससे नए-नए रूपों में रहस्यवाद तथा नकली वैज्ञानिक चिंतन को बल मिला। अतीत की महानता के गुणगान ने एक झूठे गर्व तथा दंभ को बढ़ावा दिया। अतीत में एक 'स्वर्ण युग' पाने की इच्छा के कारण आधुनिक विज्ञान को पूरी तरह नहीं अपनाया जा सका, और वर्तमान को सुधारने के प्रयत्नों में बाधा पड़ी।

लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इससे हिंदू, मुसलमान, सिख और पारसी फूट के शिकार होने लगे। ऊंची तथा नीची जातियों के हिंदुओं में भी दरार पड़ने लगी। अनेक धर्मों वाले एक देश में धर्म पर जरूरत से ज्यादा जोर देने से फूट की प्रवृत्ति बढ़नी स्वाभाविक थी। इसके अलावा, सुधारकों ने सांस्कृतिक धरोहर के धार्मिक-दार्शनिक पक्षों पर एकतरफा जोर दिया। फिर ये पक्ष सभी लोगों की साझी धरोहर भी नहीं थे। दूसरी तरफ, कला, स्थापत्य, साहित्य, संगीत, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, आदि पर पूरा जोर नहीं दिया गया, हालांकि इनमें जनता के सभी भागों की बराबर भूमिका रही थी। इसके अलावा हर एक हिंदू सुधारक ने भारतीय अतीत के गुणगान को प्राचीन काल तक सीमित रखा। स्वामी विवेकानंद जैसे खुले दिमाग के व्यक्ति तक ने भारत की आत्मा या भारत की उपलब्धियों की चर्चा केवल इसी अर्थ में की। ये सुधारक भारतीय इतिहास के मध्य काल को मूलतः पतन का काल मानते थे। यह विचार अनैतिहासिक ही नहीं था बल्कि सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से हानिकारक भी था। इससे दो कौमों की धारणा पनपी। इसी तरह प्राचीन काल और प्राचीन धर्मों की अनौपचारिक प्रशंसा को निचली जातियों के लोग भी पचा नहीं सके जो सदियों से उसी विध्वंसक जाति-प्रथा के दमन के शिकार रहे जो ठीक उसी प्राचीन काल की उपज थी।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि सभी भारतीय अतीत की भौतिक-सांस्कृतिक उपलब्धियों पर समान रूप से गर्व करें और उससे प्रेरणा प्राप्त करें, इसके

बजाय अतीत कुछेक लोगों की संपत्ति बनकर रह गया। इसके अलावा अतीत भी अनेक खंड़ों में विभाजित होने लगा। मुस्लिम मध्य वर्ग के अनेक लोगों ने तो अपनी परंपरा और अपनी धरोहर पश्चिमी एशिया के इतिहास में खोजना आरंभ कर दिया। हिंदू, मुसलमान, सिख और पारसी तथा बाद में निचली जाति के हिंदू—ये सब सुधार आंदोलनों से प्रभावित हुए थे, मगर अब ये एक दूसरे से कटने लगे। दूसरी तरफ, सुधार आंदोलनों के प्रभाव से दूर रहकर परंपरागत रीति-रिवाजों को मानने वाले हिंदुओं और मुसलमानों में आपसी भाईचारा बना रहा, हालांकि वे अपने-अपने कर्मकांड का पालन करते रहे।

एक समन्वित संस्कृति के विकास की वह प्रक्रिया जो सदियों से चली आ रही थी, उस पर इस कारण से कुछ अंकुश लगा, हालांकि दूसरे क्षेत्रों में भारतीय जनता के राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। इस प्रवृत्ति का दुष्परिणाम तब स्पष्ट हो गया जब यह पाया गया कि मध्य वर्गों में राष्ट्रीय चेतना के तीव्र विकास के साथ-साथ एक और चेतना, अर्थात् सांप्रदायिक चेतना, का विकास भी हो रहा था। आधुनिक काल में सांप्रदायिकता के विकास के अनेक दूसरे कारण भी थे, परंतु अपनी प्रकृति के कारण धर्म-सुधार के आंदोलनों ने निश्चय ही इसमें कुछ योगदान किया।

सामाजिक सुधार

उन्नीसवीं सदी के राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख प्रभाव सामाजिक सुधार के क्षेत्र में देखने को मिला। नवशिक्षित लोगों ने बढ़-बढ़कर जड़ सामाजिक रीतियों तथा पुरानी प्रथाओं से विद्रोह किया। वे अब बुद्धिविरोधी और अमानवीय सामाजिक व्यवहारों को और सहने को तैयार न थे। उनका विद्रोह सामाजिक समानता तथा सभी व्यक्तियों की समान क्षमता के मानवतावादी आदर्शों से प्रेरित था।

समाज-सुधार के आंदोलन में लगभग सभी धर्म-सुधारकों का योगदान रहा। कारण यह कि भारतीय समाज के पिछड़ेपन की तमाम निशानियों, जैसे जाति प्रथा या स्त्रियों की असमानता को अतीत में धार्मिक मान्यता प्राप्त रही है। साथ ही सोशल कांफ्रेंस, भारत सेवक समाज जैसे कुछ अन्य संगठनों तथा ईसाई मिशनरियों ने भी समाज-सुधार के लिए जमकर काम किया। ज्योतिबा गोविंद फूले, गोपाल हरि देशमुख, जस्टिस रानाडे, के.टी. तेलंग, बी.एम. मलाबारी, डी.के. कर्वे, शशिपद बनर्जी, बिपिनचंद्र पाल, वीरेशलिंगम, ई. वी. रामास्वामी नायकर 'पेरियार' और भीमराव अंबेडकर तथा दूसरे प्रमुख व्यक्तियों की भी एक प्रमुख भूमिका रही। बीसवीं सदी में, और खासकर 1919 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन समाज-सुधार का प्रमुख प्रचारक बन गया। जनता तक पहुंचने के लिए सुधारकों ने प्रचार-कार्य में भारतीय भाषाओं का अधिकाधिक सहारा लिया। उन्होंने अपने विचारों को फैलाने के लिए उपन्यासों, नाटकों, काव्य, लघु-कथाओं, प्रेस तथा 1930 के दशक में फिल्मों का भी उपयोग किया।

उन्नीसवीं सदी में कुछ मामलों में समाज-सुधार का कार्य धर्म-सुधार से जुड़ा था, मगर बाद के वर्षों में यह अधिकाधिक धर्मनिरपेक्ष होता गया। इसके अलावा रूढ़िवादी धार्मिक दृष्टिकोण वाले अनेक व्यक्तियों ने भी इसमें भाग लिया। इसी तरह आरंभ में समाज-सुधार बहुत कुछ ऊंची जातियों के नवशिक्षित भारतीयों द्वारा अपने सामाजिक व्यवहार का आधुनिक पश्चिमी संस्कृति व मूल्यों के साथ तालमेल बिठाने के प्रयासों का परिणाम था। लेकिन धीरे-धीरे इसका क्षेत्र व्यापक होकर समाज के निचले वर्गों तक फैल गया और यह सामाजिक क्षेत्र की क्रांतिकारी पुनर्रचना करने लगा। कालांतर में सुधारकों के विचारों व आदर्शों को लगभग सार्वभौमिक मान्यता मिली तथा आज वे भारतीय संविधान के अंग हैं।

समाज-सुधार के आंदोलनों ने मुख्यतः दो लक्ष्यों को पूरा करने के प्रयास किए: (अ) स्त्रियों की मुक्ति तथा उनको समान अधिकार देना, तथा (ब) जाति-प्रथा

की जड़ताओं को समाप्त करना तथा खासकर छुआछूत का खात्मा।

स्त्रियों की मुक्ति : भारत में स्त्रियां अनगिनत सदियों से पुरुषों की अधीन तथा सामाजिक उत्पीड़न का शिकार रही हैं। भारत में प्रचलित विभिन्न धर्मों व उन पर आधारित गृहस्थ-नियमों ने स्त्रियों को पुरुषों से हीन स्थान दिया। इस संबंध में उच्च वर्गों की स्त्रियों की स्थिति किसान औरतों से भी बदतर थी। चूंकि किसान स्त्रियां अपने पुरुषों के साथ खेतों में काम करती थीं, इसलिए उनको बाहर आने-जाने की कुछ अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी, और परिवार में उनकी स्थिति उच्च वर्गों की स्त्रियों से कुछ मामलों में बेहतर थी। उदाहरण के लिए, वे शायद ही कभी पर्दे में रहती हों तथा उनमें से अनेकों को पुनर्विवाह के अधिकार प्राप्त थे।

पारंपरिक विचारधारा में पत्नी और मां की भूमिका में स्त्री की प्रशंसा तो की गई है मगर व्यक्ति के रूप में उसे बहुत हीन सामाजिक स्थान दिया गया है। अपने पति से अपने संबंधों से अलग उसका भी एक व्यक्तित्व है, ऐसा कभी नहीं माना गया। अपनी प्रतिभा या इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिए घरेलू महिला से भिन्न कोई अन्य भूमिका उसे प्राप्त न थी। वास्तव में, उसे पुरुष का पुछल्ला मात्र माना गया। उदाहरण के लिए, हिंदुओं में किसी स्त्री का एक ही विवाह संभव था, मगर किसी पुरुष को अनेक पत्नियां रखने का अधिकार था। मुसलमानों में भी यह बहुपत्नी-प्रथा प्रचलित थी। देश के काफी बड़े भाग में स्त्रियों को पर्दे में रखा जाता था। बाल-विवाह की प्रथा आम थी; आठ-नौ वर्ष के बच्चे भी ब्याह दिए जाते थे। विधवाएं पुनर्विवाह नहीं कर सकती थीं और उन्हें त्यागी व बंदी जीवन बिताना पड़ता था। देश के अनेक भागों में सती-प्रथा प्रचलित थी जिसमें एक विधवा स्वयं को पति की लाश के साथ जला लेती थी।

हिंदू स्त्री को उत्तराधिकार में संपत्ति पाने का हक नहीं था, न उसे अपने दुखमय विवाह को रद्द करने का कोई अधिकार था। मुस्लिम स्त्री को संपत्ति में अधिकार मिलता तो था, मगर पुरुषों का केवल आधा और तलाक के बारे में स्त्री और पुरुष के बीच सैद्धांतिक समानता भी न थी। वास्तव में, मुस्लिम स्त्रियां तलाक से भयभीत रहती थीं। हिंदू व मुस्लिम स्त्रियों की सामाजिक स्थिति तथा उनके मान-सम्मान भी मिलते-जुलते थे। इसके अलावा, दोनों ही सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर पूरी तरह निर्भर थीं। अंतिम बात यह कि शिक्षा के लाभ उनमें से अधिकांश को प्राप्त नहीं थे। साथ ही, स्त्रियों का अपनी दासता को स्वीकार कर लेने, बल्कि इसे सम्मान का प्रतीक समझने के पाठ भी पढ़ाए जाते थे। यह सही है कि भारत में कभी-कभी रजिया सुल्तान, चांद बीवी तथा अहिल्याबाई होलकर जैसी स्त्रियां भी गुजरी हैं। मगर ये उदाहरण मात्र अपवाद हैं और इनसे सामान्य स्थिति में कोई अंतर नहीं आता।

उन्नीसवीं सदी के मानवतावादी व समानतावादी विचारों से प्रेरित होकर समाज-सुधारकों ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन छेड़ा। कुछ सुधारकों ने व्यक्तिवाद तथा समानता के सिद्धांतों का सहारा लिया, तो दूसरों ने घोषणा की कि हिंदू धर्म, इस्लाम या जरथुस्त्र मत स्त्रियों की हीन स्थिति के प्रचारक नहीं हैं और यह कि सच्चा धर्म उन्हें एक ऊंचा सामाजिक दर्जा देता है।

अनेकानेक व्यक्तियों, सुधार समितियों तथा धार्मिक संगठनों ने स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार करने, विधवाओं के पुनर्विवाह को प्रोत्साहन देने, विधवाओं की दशा सुधारने, बाल-विवाह रोकने, स्त्रियों को पर्दे से बाहर लाने, एक पत्नी-प्रथा प्रचलित करने और मध्यवर्गीय स्त्रियों को व्यवसाय या सरकारी रोजगार में जाने के योग्य बनाने के लिए कड़ी मेहनत की। वर्ष 1880 के दशक में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन की पत्नी लेडी डफरिन के नाम पर जब डफरिन अस्पताल खोले गए तो आधुनिक औषधियों तथा प्रसव की आधुनिक

तकनीकों के लाभ भारतीय स्त्रियों को उपलब्ध कराने के प्रयास भी किए गए।

बीसवीं सदी में जुझारू राष्ट्रीय आंदोलन के उदय से स्त्री-मुक्ति के आंदोलन को बहुत बल मिला। स्वतंत्रता के संघर्ष में स्त्रियों ने एक सक्रिय और महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। बंग-भंग विरोधी आंदोलन तथा होम रूल आंदोलन में उन्होंने बड़ी संख्या में भाग लिया। वर्ष 1918 के बाद वे राजनीतिक जुलूसों में भी चलने लगीं, विदेशी वस्त्र और शराब बेचने वाली दुकानों पर धरने देने लगीं, और खादी बुनने तथा उसका प्रचार करने लगीं। असहयोग आंदोलनों में वे जेल गईं तथा जन-प्रदर्शनों में उन्होंने लाठी, आंसू-गैस और गोलियां भी झेलीं। उन्होंने क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। वे विधानमंडलों के चुनावों में वोट देने तथा उम्मीदवारों के रूप में खड़ी भी होने लगीं। प्रसिद्ध कवियित्री सरोजिनी नायडू राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षा बनीं। अनेक स्त्रियां 1937 में बनी जनप्रिय सरकारों में मंत्री या संसदीय सचिव बनीं। उनमें से सैंकड़ों नगरपालिकाओं तथा स्थानीय शासन की दूसरी संस्थाओं की सदस्या तक बनीं। वर्ष 1920 के दशक में जब ट्रेड यूनियन और किसान आंदोलन खड़े हुए तो अक्सर स्त्रियां उनकी पहली पंक्तियों में दिखाई देतीं। भारतीय स्त्रियों की जागृति तथा मुक्ति में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी भागीदारी का रहा। कारण कि जिन्होंने ब्रिटिश जेलों तथा गोलियों को झेला था उन्हें भला कौन हीन कह सकता था। और उन्हें और कब तक घरों में कैद रखकर 'गुडिया' या 'दासी' के जीवन से बहलाया जा सकता था? मनुष्य के रूप में अपने अधिकारों का दावा उन्हें तो करना ही था।

एक और प्रमुख घटनाक्रम था देश में महिला आंदोलन का जन्म। वर्ष 1920 के दशक तक प्रबुद्ध पुरुषगण स्त्रियों के कल्याण के लिए कार्यरत रहे। अब आत्मचेतन तथा आत्मविश्वास-प्राप्त स्त्रियों ने यह काम संभाला। इस उद्देश्य से उन्होंने अनेक संस्थाओं और संगठनों को खड़ा किया। इनमें सबसे प्रमुख था आल इंडिया वूमेन्स कांफ्रेंस जो 1927 में स्थापित हुआ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद समानता के लिए स्त्रियों के संघर्ष में बहुत तेज़ी आई। भारतीय संविधान (1950) की धारा 14 व 15 में स्त्री व पुरुष की पूर्ण समानता की गारंटी दी गई है। वर्ष 1956 के हिंदू उत्तराधिकार कानून ने पिता की संपत्ति में बेटी को बेटे के बराबर अधिकार दिया। वर्ष 1955 के हिंदू विवाह कानून में कुछ विशिष्ट आधारों पर विवाह-संबंध भंग करने की छूट दी गई। स्त्री-पुरुष, दोनों के लिए एक विवाह अनिवार्य बना दिया गया। लेकिन दहेज प्रथा की बुराई अभी तक जारी है हालांकि दहेज लेने और देने, दोनों पर प्रतिबंध है। संविधान स्त्रियों को भी काम करने तथा सरकारी संस्थाओं में नौकरी करने के समान अधिकार देता है। संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांत में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन का सिद्धांत भी शामिल है। स्त्रियों की समानता के सिद्धांत को व्यवहार में लागू करने में अभी भी निश्चित ही अनेक स्पष्ट और अस्पष्ट बाधाएं हैं। इसके लिए एक समुचित सामाजिक वातावरण का निर्माण आवश्यक है। फिर भी समाज-सुधार आंदोलन, स्वाधीनता संग्राम, स्त्रियों के अपने आंदोलन तथा स्वतंत्र भारत के संविधान ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान किए हैं।

जाति-प्रथा के विरुद्ध संघर्ष : जाति-व्यवस्था, समाज-सुधार आंदोलन के हमले का एक और प्रमुख निशाना थी। इस समय हिंदू अनगिनत जातियों में बंटे थे। कोई व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता था उसी के नियमों से उसके जीवन का एक बड़ा भाग संचालित होता था। व्यक्ति किससे विवाह करे तथा किसके साथ भोजन करे, इसका निर्धारण उसकी जाति से ही होता था। उसके पेशे तथा उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्धारण भी बहुत कुछ इसी से होता था। इसके अलावा

जातियों को भी सावधानीपूर्वक अनेक ऊंचे-नीचे दर्जे में रखा गया था। इस व्यवस्था में सबसे नीचे अछूत आते थे जो हिंदू आबादी का लगभग 20 प्रतिशत भाग थे; इन्हीं को बाद में अनुसूचित जातियां कहा गया। ये अछूत अनेकों कठोर निर्योग्यताओं और प्रतिबंधों से पीड़ित थे जो विभिन्न जगहों में भिन्न-भिन्न थीं। उनके स्पर्श मात्र से किसी व्यक्ति को अपवित्र माना जाता था।

देश के कुछ भागों में और खासकर दक्षिण में लोग उनकी छाया तक से बचते थे और इसलिए किसी ब्राह्मण को आता जानकर इन अछूतों को बहुत दूर हट जाना पड़ता था। अछूतों के खाने-पहनने और रहने के स्थान पर भी कड़े प्रतिबंध थे। वह ऊंची जातियों के कुओं, तालाबों से पानी नहीं ले सकता था, इसके लिए अछूतों के लिए कुछ तालाब और कुएं निश्चित होते थे। जहां ऐसे कुएं और तालाब न होते वहां उनको पोखरों और सिंचाई की नालियों का गंदा पानी पीना होता था। वे हिंदू मंदिरों में जा नहीं सकते और न शास्त्र पढ़ सकते थे। अक्सर उनके बच्चे ऊंची जातियों के बच्चों के स्कूल में नहीं जा पाते थे। पुलिस तथा सेना जैसी सरकारी नौकरियां उनके लिए नहीं थीं। अछूतों को 'अपवित्र' समझे जाने वाले गंदे काम, जैसे झाड़ू-बुहारु, जूते बनाना, मुर्दे उठाना, मुर्दा जानवरों की खाल निकालना, खालों तथा चमड़ों को पकाना-कमाना, आदि काम करने पड़ते थे। वे जमीन के मालिक नहीं बन सकते थे और उनमें से अनेकों को बंटाईदारी या खेत-मजदूरी करनी पड़ती थी।

जाति-प्रथा की एक और बुराई भी थी। यह अपमानजनक, अमानवीय और जन्मगत असमानता के जनतंत्र-विरोधी सिद्धांत पर आधारित तो थी ही, साथ ही यह सामाजिक विघटन का कारण भी थी। इसने लोगों को अनेकों समूहों में बांटकर रख दिया था। आधुनिक काल में यह प्रथा एकता की राष्ट्रीय भावना के विकास और जनतंत्र के प्रसार में एक प्रमुख बाधा रही है। यहां यह भी कह दिया जाए कि जातिगत चेतना, खासकर विवाह-संबंधों के बारे में, मुसलमानों, ईसाइयों तथा सिखों में भी रही है, तथा वे भी कम उग्र रूप में ही सही, छुआछूत का पालन करते रहे हैं।

ब्रिटिश शासन ने ऐसी अनेक शक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने धीरे-धीरे जाति-प्रथा की जड़ों को कमजोर किया। आधुनिक उद्योगों, रेलों व बसों के आरंभ से तथा बढ़ते नगरीकरण के कारण खासकर शहरों में विभिन्न जातियों के लोगों के बीच संपर्क को अपरिहार्य बना दिया है। आधुनिक व्यापार-उद्योग ने आर्थिक कार्यकलाप के नए क्षेत्र सभी के लिए पैदा किए हैं। उदाहरण के लिए, एक ब्राह्मण या किसी और ऊंची जाति का व्यापारी चमड़े या जूते के व्यापार का अवसर भी शायद ही छोड़े, और न ही वह डाक्टर या सैनिक बनने का अवसर छोड़ेगा। जमीन की खुली बिक्री ने अनेक गांवों में जातीय संतुलन को बिगाड़कर रख दिया है। एक आधुनिक औद्योगिक समाज में जाति और व्यवसाय का पुराना संबंध चल सकना कठिन है क्योंकि इस समाज में मुनाफा प्रमुख प्रेरणा बनता जा रहा है।

प्रशासन के क्षेत्र में, अंग्रेजों ने कानून के सामने सबकी समानता का सिद्धांत लागू किया, जातिगत पंचायतों से उनके न्यायिक काम छीन लिए, और प्रशासकीय सेवाओं के दरवाजे धीरे-धीरे सभी जातियों के लिए खोल दिए। इसके अलावा, नई शिक्षा प्रणाली पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष है और इसलिए वह मूलतः जातिगत भेदों तथा जातिगत दृष्टिकोण की विरोधी है।

जब भारतीयों के बीच आधुनिक जनतांत्रिक व बुद्धिवादी विचार फैले तो उन्होंने जाति-प्रथा के खिलाफ आवाज उठाना शुरू किया। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफी, सोशल कांफ्रेंस तथा उन्नीसवीं सदी के लगभग सभी महान सुधारकों ने इस पर हमले किए। हालांकि उनमें से बहुतों ने चार वर्णों की प्रथा का पक्ष भी लिया, मगर वे भी जाति-प्रथा के आलोचक थे। उन्होंने खास तौर पर छुआछूत की

अमानवीय प्रथा की निंदा की। उन्होंने यह भी महसूस किया कि राष्ट्रीय एकता तथा राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों में राष्ट्रीय प्रगति तब तक असंभव है जब तक कि लाखों-लाख लोग सम्मान से जीने के अधिकार से वंचित हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन के विकास ने भी जाति-प्रथा को कमजोर बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय आंदोलन उन तमाम संस्थाओं का विरोधी था जो भारतीय जनता को बांटकर रखती थीं। जन-प्रदर्शनों, विशाल जनसभाओं तथा सत्याग्रह के संघर्षों में सबकी भागीदारी ने भी जातिगत चेतना को कमजोर बनाया। कुछ भी हो, वे लोग जो स्वाधीनता और स्वतंत्रता के नाम पर विदेशी शासन से मुक्ति के लिए लड़ रहे थे, जाति-प्रथा का समर्थन नहीं कर सकते थे क्योंकि यह उन सिद्धांतों की विरोधी थी। इस तरह आरंभ से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, बल्कि पूरे राष्ट्रीय आंदोलन ने जातिगत विशेषाधिकारों का विरोध किया, और जाति-लिंग-धर्म के भेदभाव के बिना व्यक्ति के विकास के लिए समान नागरिक अधिकारों तथा समान स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ते रहे।

गांधीजी अपनी सार्वजनिक गतिविधियों में छुआछूत के खात्में को जीवन भर एक प्रमुख काम मानते रहे। 1932 में उन्होंने इस उद्देश्य से अखिल भारतीय हरिजन संघ की स्थापना की। "अस्पृश्यता का जड़-मूल से उन्मूलन का उनका आंदोलन मानवतावाद और बुद्धिवाद पर आधारित था। उनका तर्क कि हिंदू शास्त्रों में छुआछूत को कोई मान्यता नहीं दी गई है। लेकिन अगर कोई शास्त्र छुआछूत का समर्थन करे तो उसे नहीं मानना चाहिए क्योंकि यह सब मानव-सम्मान के विरूद्ध है। उन्होंने कहा कि सत्य किसी पुस्तक के पन्नों तक सीमित नहीं होता।"

उन्नीसवीं सदी के मध्य से अनेक व्यक्तियों व संगठनों ने अछूतों के बीच शिक्षा-प्रसार का काम आरंभ किया (इन अछूतों को बाद में कमजोर वर्ग या अनुसूचित जातियां कहा गया)। उनके लिए स्कूलों तथा मंदिरों के दरवाजे खुलवाने, सार्वजनिक कुओं और तालाबों से उन्हें पानी भरने का अधिकार दिलाने, तथा उनको उत्पीड़ित करने वाली अन्य सामाजिक निर्योग्यताओं और भेदभावों को नष्ट करने के प्रयास किए गए।

शिक्षा तथा जागृति फैली तो निचली जातियों में भी हलचल होने लगी। वे अपने मूल मानव-अधिकारों के प्रति सचेत हुए तथा उनकी रक्षा के लिए उठकर खड़े होने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने ऊंची जातियों के परंपरागत उत्पीड़न के खिलाफ एक शक्तिशाली आंदोलन खड़ा किया। महाराष्ट्र में 19वीं सदी के उत्तरार्ध में एक निचली जाति में जन्में ज्योतिबा फूले ने ब्राह्मणों की धार्मिक सत्ता के खिलाफ जीवन-भर आंदोलन चलाया। यह ऊंची जातियों के प्रभुत्व के खिलाफ उनके संघर्ष का एक अंग था। वे आधुनिक शिक्षा को निचली जातियों की मुक्ति का सबसे शक्तिशाली अस्त्र समझते थे। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने निचली जातियों की लड़कियों के लिए अनेक स्कूल खोले। डाक्टर भीमराव अंबेडकर ने जो खुद एक अनुसूचित जाति के थे, अपना पूरा जीवन जातिगत अत्याचार विरोधी संघर्ष को समर्पित कर दिया। इसके लिए उन्होंने अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ की स्थापना की। अनुसूचित जातियों के दूसरे अनेक नेताओं ने अखिल भारतीय वंचित वर्ग संघ की स्थापना की।

केरल में श्री नारायण गुरु ने जाति-प्रथा के खिलाफ जीवन भर संघर्ष चलाया। उन्होंने ही "मानव जाति के लिए एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर" का प्रसिद्ध नारा दिया। दक्षिण भारत में ब्राह्मणों द्वारा लादी गई निर्योग्यताओं का मुकाबला करने के लिए गैर-ब्राह्मणों ने 1920 के दशक में एक आत्मसम्मान आंदोलन चलाया। पूरे भारत में मंदिरों में अछूतों के प्रवेश की मनाही तथा दूसरे प्रतिबंधों के खिलाफ ऊंची तथा निचली जातियों के लोगों ने मिलकर अनेक सत्याग्रह आंदोलन चलाए।

फिर भी, छुआछूत विरोधी संघर्ष विदेशी शासन में

पूरी तरह सफल नहीं हो सकता था। विदेशी सरकार समाज के रूढ़िवादी तत्वों की शत्रुता मोल लेने से डरती थी। समाज के मूलभूत सुधार का काम केवल स्वतंत्र भारत की सरकार कर सकती थी। इसके अलावा, सामाजिक कल्याण का काम राजनीतिक- आर्थिक कल्याण से गहराई से जुड़ा होता है। उदाहरण के लिए, कमजोर वर्गों की सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए आर्थिक प्रगति आवश्यक है; शिक्षा तथा राजनीतिक अधिकारों के प्रसार के साथ भी यही बात है। इस बात को भारतीय नेताओं ने अच्छी तरह समझा था। उदाहरण के लिए, डा. भीमराव अंबेडकर लिखते हैं :

> "आपके दुखों को कोई इतनी अच्छी तरह दूर नहीं कर सकता जिस तरह आप कर सकते हैं और आप इन्हें तब तक दूर नहीं कर सकते जब तक कि राजनीतिक सत्ता आपके हाथों में न आए ..
>
> हमारे पास एक ऐसी सरकार होनी चाहिए जिसमें सत्ता में बैठे लोग जीवन के सामाजिक व आर्थिक नियमों को संशोधित करने से न डरते हों, जिसकी न्याय और व्यावहारिकता मांग करती हैं। इस भूमिका को ब्रिटिश सरकार कभी नहीं निबाह सकती। केवल जनता की, जनता के लिए, जनता द्वारा चलाई जा रही सरकार, अर्थात दूसरे शब्दों में, केवल एक स्वराज्य सरकार, इस काम को संभव बना सकती है।"

1950 के संविधान नें अतंतः छुआ-छूत के खात्मे के लिए एक कानूनी आधार तैयार किया। इसने घोषणा की कि अस्पृश्यता समाप्त की जा चुकी है और किसी भी रुप में इसका पालन मना है। छुआ-छूत के आधार पर किसी पर कोई भी निर्योग्यता लादना एक अपराध होगा जिसके लिए कानून के अनुसार दंड दिया जाएगा। संविधान कुओं, तालाबों या नहाने के घाटों के उपयोग पर या दुकानों, रेस्तराओं, होटलों और सिनेमाघरों में किसी के प्रवेश पर रोक लगाने से भी मना करता है। इसके अलावा भावी सरकारों के मार्गदर्शन के लिए जो नीति-निर्देशक सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं उनमें से एक में यह बात कही गई है : "राज्य जनकल्याण को प्रोत्साहित करने का प्रयास करेगा, और इसके लिए जितने प्रभावी ढंग से संभव हो सके, एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था लाने तथा उसकी रक्षा करने का प्रयास करेगा जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं का आधार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय हो।" फिर भी जाति-प्रथा की बुराइयों के खिलाफ संघर्ष, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, अभी भी भारतीय जनता का एक प्रमुख कार्यभार है।

अभ्यास

1. उन्नीसवीं सदी के धार्मिक सुधार आंदोलनों में विवेकवादी और मानवतावादी तत्वों की समीक्षा कीजिए। आधुनिक भारत के निर्माण में उनकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
2. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध ने किस तरह धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया?
3. क्यों सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन साथ-साथ चले? विशेष उदाहरण देकर इसकी व्याख्या कीजिए?
4. राजा राममोहन राय के बाद ब्रह्मसमाज की भूमिका तथा गतिविधियों का वर्णन कीजिए।

5. पश्चिमी भारत में सुधार आंदोलनों के आरंभ का पता लगाइए। वे कौन सी मुख्य धार्मिक और सामाजिक बुराइयां थीं जिनके विरुद्ध ये आंदोलन चलाए गए थे।
6. स्वामी विवेकानंद की मुख्य शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए उनको अक्सर कर्मयोगी क्यों कहा जाता है?
7. अपने जमाने में प्रचलित लोकप्रिय हिंदुत्व से स्वामी दयानंद सरस्वती की शिक्षा किस प्रकार अलग थी? धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में आर्य समाज की उपलब्धियों का विवेचन कीजिए।
8. भारत में मुस्लिम समुदाय के पिछड़ेपन के आधारभूत कारण क्या थे? मुस्लिम समुदाय के आधुनिकीकरण में सैयद अहमद खां की भूमिका का वर्णन कीजिए। उन्होंने ऐसा आग्रह क्यों किया कि मुसलमानों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए।
9. पारसियों और सिक्खों के सुधार आंदोलनों का वर्णन कीजिए।
10. महिलाओं की मुक्ति के लिए सुधार आंदोलनों द्वारा उठाए गए कदमों की चर्चा कीजिए।
11. जाति-प्रथा पर आक्रमण सुधार आंदोलन का प्रमुख अंग क्यों था? किस प्रकार अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, सामाजिक बदलाव तथा राजनीतिक विकास और सुधार आंदोलनों से जाति-प्रथा कमजोर हुई?
12. दलित जातियों की गतिविधियों और आंदोलनों की भूमिका का वर्णन कीजिए।
13. सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन की प्रमुख सीमाओं का विवेचन कीजिए।
14. सामूहिक परियोजना के एक हिस्से के रूप में उन संगठनों की एक सूची बनाइए जिन्होंने भारत के अलग-अलग हिस्सों में सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों का नेतृत्व किया। प्रत्येक संगठन के सामने उसकी स्थापना का वर्ष लिखिए, किस क्षेत्र में उसकी स्थापना की गई, इसके प्रभावशाली नेता कौन थे, किस प्रकार के सुधार की संगठन ने वकालत की और इसमें उसको कितनी सफलता मिली। इन सुधार आंदोलन के नेताओं के चुने हुए भाषणों तथा लेखों का एक संकलन भी तैयार कीजिए।

अध्याय : 11

राष्ट्रवादी आंदोलन (1905-18)

उग्र राष्ट्रवाद का विकास

वर्षों के कालक्रम में देश में धीरे-धीरे राष्ट्रवाद (जिसे गरमपंथ भी कहते हैं) का विकास होता आ रहा था। यह 1905 के बंगाल-विभाजन-विरोधी आंदोलन में अभिव्यक्त हुआ।

अपने आरंभिक काल में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने अधिकाधिक लोगों को विदेशी प्रभुत्व की बुराइयों तथा देशभक्ति की भावना विकसित करने की आवश्यकता के प्रति जागरूक बनाया था। उसने शिक्षित भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण दिया था। वास्तव में उसने जनता की भावना को ही बदल दिया था तथा देश में एक नए जीवन का संचार किया था।

साथ ही साथ, राष्ट्रवादियों की एक मांग मानने में ब्रिटिश सरकार की असफलता ने राजनीतिक चेतना-प्राप्त लोगों में उस समय वर्चस्व प्राप्त नरमपंथी नेतृत्व के सिद्धांतों व विधियों के प्रति असंतोष पैदा कर दिया था। नरमपंथी राष्ट्रवादियों की मागें मानने की जगह ब्रिटिश शासक उनकी हंसी उड़ाते और उन्हें नीची निगाहों से देखते थे। परिणामस्वरूप सभाओं, प्रार्थना-पत्रों, स्मरण-पत्रों और विधायिकाओं में भाषणों की जगह और भी जोरदार राजनीतिक कार्रवाइयों और तरीकों की मागें उठने लगीं।

ब्रिटिश शासन के सही चरित्र की पहचान : नरमपंथी राष्ट्रवादियों की राजनीति इस विश्वास पर आधारित थी कि ब्रिटिश शासन को अंदर से सुधारा जा सकता है। लेकिन राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों से संबंधित ज्ञान जब फैला धीरे-धीरे यह विश्वास टूट गया। इसके लिए काफी बड़ी हद तक नरमपंथियों का आंदोलन स्वयं उत्तरदायी था। राष्ट्रवादी लेखकों और आंदोलनकारियों ने जनता की निर्धनता का दोषी ब्रिटिश शासन को ठहराया। राजनीतिक रूप से चेतन भारतीयों को विश्वास था कि ब्रिटिश शासन का उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना, अर्थात भारत की संपत्ति से इंग्लैंड को समृद्ध बनाना है। उन्हें महसूस हुआ कि जब तक भारतीयों द्वारा नियंत्रित और संचालित कोई सरकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जगह नहीं ले लेती, आर्थिक क्षेत्र में भारत शायद ही कुछ प्रगति कर सके। राष्ट्रवादियों ने खासकर यह भी देखा कि भारत के उद्योग तब तक फल-फूल नहीं सकते जब तक कि उन्हें सुरक्षा और प्रोत्साहन देने वाली कोई भारतीयों की सरकार न हो। भारत में 1896 से 1900 के बीच जो भयानक अकाल फूटे और जिनमें 90 लाख से ऊपर लोग मरे, वे जनता की दृष्टि में विदेशी शासन के आर्थिक दुष्परिणामों के जीते-जागते प्रतीक थे।

1892 और 1905 के बीच घटित राजनीतिक घटनाओं ने भी राष्ट्रवादियों को निराश करके उन्हें और

भी उग्र राजनीति के बारे में सोचने को बाध्य किया। वर्ष 1892 का इंडियन कौंसिल एक्ट, जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं, घोर निराशा का कारण सिद्ध हुआ। दूसरी ओर, जनता को जो थोड़े से राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे, उन पर भी हमले किए गए। वर्ष 1898 में एक कानून बनाया गया जिसमें विदेशी शासन के प्रति "असंतोष की भावना" फैलाने को अपराध घोषित किया गया। वर्ष 1899 में कलकत्ता नगर निगम में भारतीय सदस्यों की संख्या घटा दी गई, 1904 में इंडियन आफिशियल सीक्रेट्स एक्ट बना जिसने प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया। वर्ष 1897 में नाटू भाइयों को बिना मुकद्दमा चलाए देशबाहर कर दिया गया और उन पर लगाए गए आरोपों तक को भी जनता को नहीं बतलाया गया। उसी वर्ष लोकमान्य तिलक और दूसरे समाचारपत्र-संपादकों को विदेशी सरकार के प्रति जनता को भड़काने के आरोप में लंबी-लंबी जेल-सजाएं दी गईं। इन सबसे जनता को लगा कि सरकार व्यापक राजनीतिक अधिकार देने के बजाए उन्हें मिले थोड़े से अधिकार भी छीने ले रही है। लार्ड कर्जन के कांग्रेस-विरोधी दृष्टिकोण ने अधिकाधिक लोगों को विश्वास दिलाया कि भारत में ब्रिटिश शासन के रहते राजनीतिक और आर्थिक प्रगति की आशा करना व्यर्थ है। यहां तक कि नरमपंथी नेता गोखले को भी शिकायत थी कि "नौकरशाही खुलकर स्वार्थी और राष्ट्रीय आकांक्षाओं की शत्रु बनती जा रही है।"

सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी ब्रिटिश शासन अब प्रगतिशील नहीं रहा था। प्राथमिक और तकनीकी शिक्षा में कोई प्रगति नहीं हो रही थी। साथ ही अधिकारीगण उच्च शिक्षा के प्रति शंकित हो रहे थे और देश में उसके प्रसार में बाधा डालने की कोशिश तक कर रहे थे। वर्ष 1904 के भारतीय विश्वविद्यालय कानून से राष्ट्रवादियों को लगा कि भारत के विश्वविद्यालयों पर और भी सख्त सरकारी नियंत्रण स्थापित करने तथा उच्च शिक्षा का प्रसार रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

बाल गंगाधर तिलक

अरविंद घोष

इस तरह अधिकाधिक संख्या में भारतीयों को विश्वास होता जा रहा था कि देश की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए स्वशासन आवश्यक है

और राजनीतिक पराधीनता का मतलब भारतीय जनता के विकास का अवरुद्ध होना है।

आत्मसम्मान और आत्मविश्वास का प्रसार : 19वीं सदी के अंत तक भारतीय राष्ट्रवादियों का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बहुत बढ़ा था। उन्हें अपना शासन आप कर सकने तथा देश का विकास कर सकने की अपनी क्षमता में विश्वास हो चुका था। तिलक, अरविंद घोष और बिपिनचंद्र पाल जैसे नेताओं ने राष्ट्रवादियों को आत्मविश्वास का संदेश दिया और उनसे आग्रह किया कि वे भारतीय जनता के चरित्र व क्षमताओं पर भरोसा करें। उन्होंने जनता को बतलाया कि उनकी दुर्दशा का हल उनके अपने हाथों में है और इसके लिए उन्हें निर्भय और बलवान होना चाहिए। स्वामी विवेकानंद कोई राजनीतिक नेता न थे, मगर यह संदेश उन्होंने बार-बार दिया। उन्होंने घोषणा की :

दुनिया में अगर कोई पाप है तो वह निर्बलता है। निर्बलता का त्याग करो; निर्बलता पाप है और निर्बलता मृत्यु है ... सत्य की कसौटी यह है कोई भी वस्तु अगर तुम्हें शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से निर्बल बनाती है तो उसे विष समझ उसका त्याग करो कि उसमें कोई जीवन नहीं है, और वह सत्य नहीं हो सकती।

उन्होंने जनता से यह भी कहा कि वह अतीत के महिमामंडन के भरोसे जीना छोड़ें और मर्दों की तरह भविष्य का निर्माण करें उन्होंने कहा, "हे भगवान, हमारा यह देश अतीत के ऊपर अपनी शाश्वत निर्भरता से कब मुक्त होगा?"

आत्मप्रयास में इस विश्वास के कारण राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार करने की आकांक्षा भी जागी। यह विचार फैला कि अब राष्ट्रवाद के उद्देश्य को ऊंचे वर्गों के थोड़े से शिक्षित भारतीयों तक अब और सीमित नहीं रहना चाहिए। इसके बजाए, जनता की राजनीतिक चेतना को उभारा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, स्वामी विवेकानंद ने लिखा : "भारत की एकमात्र आशा उसकी जनता है। ऊंचे वर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मृतप्राय हैं।" यह महसूस किया जाने लगा था कि स्वाधीनता पाने के लिए जो व्यापक बलिदान आवश्यक है वह केवल जनता ही कर सकती है।

शिक्षा और बेरोजगारी में वृद्धि : 19वीं सदी के अंत तक शिक्षित भारतीयों की संख्या में स्पष्ट वृद्धि हुई थी। इसका एक बड़ा भाग प्रशासन में बहुत कम वेतन पर काम कर रहा था और दूसरे बहुत से लोग बेरोजगार घूम रहे थे। अपनी आर्थिक स्थिति के कारण ये लोग ब्रिटिश सरकार के चरित्र को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगे। उनमें से अनेक उग्र राष्ट्रवादी नीतियों से आकर्षित हुए।

इससे भी महत्त्वपूर्ण था शिक्षा-प्रसार का विचार-धारात्मक पक्ष। शिक्षित भारतीयों की संख्या जितनी बढ़ी, उतना ही लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और आमूल परिवर्तन के पश्चिमी विचारों का प्रभाव भी फैला। ये शिक्षित भारतीय उग्र राष्ट्रवाद के बेहतरीन प्रचारक और अनुयायी सिद्ध हुए। इसके दो कारण थे—वे कम वेतन पाने वाले या बेरोजगार थे, और साथ ही आधुनिक विचार प्रणाली और राजनीति की तथा यूरोपीय और विश्व इतिहास की शिक्षा भी उन्हें मिली थी।

अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव : इस काल की अनेक विदेशी घटनाओं ने भी भारत में उग्र राष्ट्रवाद के विकास को प्रोत्साहित किया। वर्ष 1868 के बाद एक आधुनिक जापान के उदय ने दिखा दिया कि एक पिछड़ा हुआ एशियाई देश भी बिना किसी पश्चिमी नियंत्रण के अपना विकास कर सकता है। कुछ ही दशकों के काल में जापान के नेताओं ने अपने देश को पहले दर्जे की औद्योगिक और सैनिक शक्ति बना दिया था, व्यापक प्राथमिक शिक्षा का आरंभ किया था और एक सक्षम और आधुनिक प्रशासन खड़ा किया था। वर्ष 1896 में

इथियोपिया के हाथों इटली की सेना तथा वर्ष 1905 में जापान के हाथों रूस की हार ने यूरोपीय श्रेष्ठता के भ्रम को तोड़कर रख दिया। एशिया में हर जगह एक छोटे से एशियाई देश के हाथों यूरोप की सबसे बड़ी सैनिक शक्ति की पराजय की खबर को लोगों ने उत्साह के साथ सुना।

18 जून, 1905 को 'कराची क्रोनिकल' नामक समाचारपत्र ने जनता की भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया :

> जो कुछ एक एशियाई देश ने किया है वह दूसरे भी कर सकते हैं ··· अगर जापान रूस की धुनाई कर सकता है तो भारत भी उतनी ही आसानी से इंग्लैंड को धुन सकता है ··· आइए, हम अंग्रेजों को समुद्र में फेंक दें और विश्व की महान शक्तियों के बीच जापान के बराबर अपना स्थान ग्रहण करें।

आयरलैंड, रूस, मिस्र, तुर्की और जापान के क्रांतिकारी आंदोलनों तथा दक्षिण अफ्रीका के बोअर युद्ध ने भारतीयों को विश्वास दिला दिया कि अगर जनता एकजुट और बलिदान के लिए तैयार हो तो शक्तिशाली निरंकुश सरकारों को भी चुनौती दे सकती है। जिस बात की सबसे अधिक आवश्यकता थी वह थी देशभक्ति और आत्मबलिदान की भावना।

उग्र राष्ट्रवादी विचार-संप्रदाय का अस्तित्व : राष्ट्रीय आंदोलन के लगभग आरंभ से ही उग्र राष्ट्रवाद का एक संप्रदाय देश में मौजूद था। इस संप्रदाय के प्रतिनिधि बंगाल में राजनारायण बोस और अश्विनीकुमार दत्त तथा महाराष्ट्र में विष्णु शास्त्री चिपलुंकर जैसे नेता थे। इस संप्रदाय के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि बाल गंगाधर तिलक थे जिन्हें आम तौर पर लोकमान्य तिलक कहते हैं। उनका जन्म 1856 में हुआ था। बंबई विश्वविद्यालय से स्नातक-परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद से ही उन्होंने पूरा जीवन देश-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। वर्ष

लाला लाजपत राय (बांए) बाल गंगाधर तिलक (बीच में) और विपिन चंद्र पाल (दाहिने)

1880 के बाद के दशक में उन्होंने न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना में भाग लिया; यही स्कूल बाद में फर्ग्यूसन कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने अंग्रेजी में 'मरहठा' तथा मराठी में 'केसरी' नामक पत्रों की स्थापना की। वर्ष 1889 से वे 'केसरी' का संपादन करने लगे और इस पत्र के पृष्ठों में वे राष्ट्र वाद का प्रचार करने लगे। उन्होंने जनता को भारत की स्वाधीनता के लिए साहसी, स्वावलंबी और निःस्वार्थ योद्धा होने का पाठ पढ़ाया। 1893 में उन्होंने एक परंपरागत धार्मिक उत्सव, अर्थात गणपति उत्सव का उपयोग गीतों और भाषणों के द्वारा राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार के लिए करना आरंभ कर दिया। वर्ष 1895 में उन्होंने शिवाजी उत्सव का आयोजन आरंभ किया। इसका उद्देश्य महाराष्ट्रीय युवकों के आगे अनुकरण के लिए शिवाजी का उदाहरण सामने रखकर उनमें राष्ट्रवाद की भावना पैदा करना था। वर्ष 1896-97 में उन्होंने महाराष्ट्र में कर न चुकाने का अभियान चलाया। उन्होंने महाराष्ट्र के अकाल- पीड़ित किसानों से कहा कि अगर उनकी फसल चौपट हो जाए तो वे मालगुजारी न दें। जब सरकार के खिलाफ घृणा और असंतोष भड़काने के आरोप में अधिकारियों ने उन्हें 1897 में गिरफ्तार किया तो उन्होंने दिलेरी और बलिदान का एक शानदार उदाहरण सामने रखा। उन्होंने सरकार से क्षमा मांगने

से इंकार कर दिया जिस पर उन्हें 18 महीनों की कड़ी कैद की सजा हुई। इस तरह वे आत्मबलिदान की नई राष्ट्रीय भावना के जीते-जागते प्रतीक बन गए।

20वीं सदी के आरंभ में उग्र राष्ट्रवादी संप्रदाय को एक अनुकूल राजनीतिक वातावरण प्राप्त हुआ। अब इसके समर्थक भी राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे चरण का नेतृत्व करने के लिए आगे बढ़े। तिलक के अलावा उग्र राष्ट्रवाद के दूसरे महत्त्वपूर्ण नेता विपिनचंद्र पाल, अरविंद घोष और लाला लाजपतराय थे। उग्र राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम के विशिष्ट राजनीतिक पहलू इस प्रकार थे—

उनका मत था कि भारतीयों को मुक्ति स्वयं अपने प्रयासों से प्राप्त करनी होगी तथा उन्हें अपनी पतित स्थिति से उबरने के प्रयत्न करने होंगे। उन्होंने घोषणा की कि इस कार्य के लिए बड़े-बड़े बलिदान करने होंगे और तकलीफें सहनी होंगी। उनके भाषण, लेख और राजनीतिक कार्य दिलेरी और आत्मविश्वास से भरपूर थे और अपने देश की भलाई के लिए किसी भी व्यक्तिगत बलिदान को कम समझते थे।

भारत अंग्रेजों के "कृपापूर्ण मार्गदर्शन" और नियंत्रण में प्रगति कर सकता है, इसे मानने से उन्होंने इंकार कर दिया। वे विदेशी शासन से दिल से नफरत करते थे, और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य स्वराज या स्वाधीनता है।

उन्हें जनता की शक्ति में असीम विश्वास था और उनकी योजना जनता की कार्रवाई के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की थी। इसलिए उन्होंने जनता के बीच राजनीतिक कार्य पर और जनता की सीधी राजनीतिक कार्रवाई पर जोर दिया।

प्रशिक्षित नेतृत्व : 1905 तक भारत में ऐसे अनेक नेता थे जो पीछे के काल में राजनीतिक आंदोलनों के मार्गदर्शन तथा राजनीतिक संघर्षों के नेतृत्व संबंधी बहुमूल्य अनुभव प्राप्त कर चुके थे। राजनीतिक कार्यकर्ताओं की एक प्रशिक्षित टुकड़ी के बिना राष्ट्रीय आंदोलन को एक उच्चतर राजनीतिक स्तर तक ले जाना बहुत कठिन होता।

बंगाल का विभाजन (बंग-भंग)

इस तरह 1905 में जब बंगाल को दो टुकड़ों में बांट दिया गया तब तक उग्र राष्ट्रवाद के उदय की परिस्थितियां विकसित हो चुकी थीं। इसी के साथ भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का दूसरा चरण आरंभ होता है। 20 जुलाई, 1905 को लार्ड कर्जन ने एक आज्ञा जारी करके बंगाल को दो भागों में बांट दिया। पहले भाग में पूर्वी बंगाल और असम थे और उसकी आबादी 3.1 करोड़ थी, जबकि दूसरे भाग में, शेष बंगाल था और उसकी जनसंख्या 5.4 करोड़ थी जिसमें 1.8 करोड़ बंगाली और 3.6 करोड़ बिहारी और उड़िया थे। तर्क यह दिया था कि बंगाल का प्रांत इतना बड़ा था कि एक प्रांतीय सरकार द्वारा उसका प्रशासन चला सकना असंभव था। लेकिन जिन अधिकारियों ने यह योजना तैयार की उनके दूसरे, राजनीतिक उद्देश्य भी थे। बंगाल तब भारतीय राष्ट्र विवाद का केंद्र माना जाता था और इस कदम के द्वारा अधिकारीगण बंगाल में राष्ट्रवाद के प्रसार को रोकना चाहते थे। भारत सरकार के गृहसचिव रिसले ने 6 दिसंबर, 1904 को एक अधिकारिक टिप्पणी में लिखा :

> एकजुट बंगाल अपने-आप में एक शक्ति है। बंगाल अगर विभाजित हो तो सभी भागों की दिशाएं अलग-अलग होंगी। यही बात कांग्रेस के नेता महसूस करते हैं; उनकी आशंकाएं पूरी तरह सही हैं और इस योजना का महत्त्व इसी में हैं .... हमारा एक उद्देश्य हमारे शासन के विरोधियों को तोड़ना और इस प्रकार उन्हें कमजोर करना है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और बंगाल के राष्ट्रवादियों ने विभाजन का जमकर विरोध किया। बंगाल के भीतर भी जमींदार, व्यापारी, वकील, छात्र, नगरों के गरीब लोग और स्त्रियां तक, समाज के विभिन्न वर्ग अपने

प्रांत के विभाजन के विरोध में स्वतःस्फूर्त ढंग से उठ खड़े हुए।

राष्ट्रवादियों ने बंगाल के विभाजन को एक प्रशासनीय उपाय ही नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद के लिए एक चुनौती समझा। उन्होंने इसे बंगाल को क्षेत्रीय और धार्मिक आधार पर बांटने का प्रयास माना; धार्मिक आधार पर इसलिए कि पूर्वी भाग में मुसलमानों और पश्चिमी भाग में हिंदुओं का बहुमत था। उन्होंने समझा कि इस प्रकार बंगाल में राष्ट्रवाद को कमजोर और नष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है। इससे बंगाली भाषा और संस्कृति को जबर्दस्त धक्का लगता। उनका तर्क था कि प्रशासन में कुशलता लाने के लिए हिंदी भाषी बिहार और उड़िया भाषी उड़ीसा को प्रांत के बंगाली भाषी क्षेत्र से अलग किया जा सकता है। इसके लिए सरकार ने यह कदम जनमत की पूरी तरह उपेक्षा करके उठाया था। विभाजन के खिलाफ बंगाल के विरोध की तीव्रता का कारण यह कि इसने एक बहुत संवेदनशील व साहसी जनता की भावनाओं को चोट पहुंचाई थी।

बंग-भंग-विरोधी आंदोलन : बंग-भंग-विरोधी आंदोलन या स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन बंगाल के पूरे राष्ट्रीय नेतृत्व के प्रयासों के कारण था, न कि आंदोलन के किसी एक भाग के। आरंभ में इसके प्रमुखतम नेता सुरेंद्रनाथ बनर्जी और कृष्ण कुमार मित्र जैसे नरमपंथी नेता थे, मगर बाद में इसका नेतृत्व उग्र और क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने संभाल लिया। वास्तव में आंदोलन के दौरान नरमपंथी और उग्र राष्ट्रवादियों, दोनों ने एक दूसरे से सहयोग किया।

विभाजन-विरोधी आंदोलन 7 अगस्त 1905 को

कृष्ण कुमार मित्र

आरंभ हुआ। उस दिन कलकत्ता के टाउनहाल में विभाजन के खिलाफ एक बहुत बड़ा प्रदर्शन हुआ इस सभा के बाद प्रतिनिधि आंदोलन को फैलाने के लिए पूरे प्रांत में फैल गए।

विभाजन 16 अक्तूबर, 1905 को लागू किया गया। आंदोलन के नेताओं ने इस दिन को पूरे बंगाल में शोक दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की। उस दिन लोगों ने उपवास रखे। कलकत्ता में हड़ताल हुई। लोग बहुत तड़के ही नंगे पैर चलकर गंगा में स्नान करने पहुंचे। इस अवसर के लिए रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपना प्रसिद्ध गीत "आमार सोनार बांग्ला" लिखा जिसे सड़कों पर जलूसों में शामिल जनता गाती थी। बाद में इस गीत को बंगलादेश ने 1971 में अपनी मुक्ति के बाद अपने राष्ट्रीय गीत के रूप में अपनाया। कलकत्ता की सड़कें "वंदे मातरम" की आवाज से गूंज उठीं और यह गीत रातों-रात बंगाल का राष्ट्रीय गान बन गया; बाद में यही पूरे राष्ट्रीय आंदोलन का राष्ट्रगान बन गया। रक्षाबंधन के उत्सव का एक नए ढंग से उपयोग किया गया। बंगालियों और बंगाल के दो टुकड़ों की अटूट एकता के प्रतीक के रूप में हिंदू-मुसलमानों ने एक-दूसरे की कलाइयों पर राखियां बांधीं।

दोपहर को एक बहुत बड़ा प्रदर्शन किया और वयोवृद्ध नेता आनंदमोहन बोस ने बंगाल की अटूट एकता जतलाने के लिए फेडरेशन हाल की बुनियाद रखी। इस अवसर पर उन्होंने 50,000 लोगों की सभा को संबोधित किया।

Proclamation.

Whereas the Government has thought fit to effectuate the Partition of Bengal in spite of the universal protest of the Bengali nation, we hereby pledge and proclaim that we as a people shall do everything in our power to counteract the evil effects of the dismemberment of our Province and to maintain the integrity of our race. So help us God.

Dated this First day of November in the year Nineteen Hundred and Five and given under

वह घोषना पत्र जो बंगाल विभाजन के विरूद्ध पढ़ा जाता था

स्वदेशी और बहिष्कार : बंगाल के नेताओं को लगा कि केवल प्रदर्शनों, सार्वजनिक सभाओं और प्रस्तावों से शासकों पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। इसके लिए और भी सकारात्मक उपाय करने होंगे जिनसे जनता की भावनाओं की तीव्रता का अच्छी तरह पता चले। इसका परिणाम था स्वदेशी और बहिष्कार। पूरे बंगाल में जनसभाएं की गईं जिनमें स्वदेशी अर्थात् भारतीय वस्तुओं का उपयोग तथा ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार के निर्णय किए और शपथ लिए गए। अनेक जगहों पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई और विदेशी कपड़े बेचने वाली दुकानों पर धरने दिए गए। स्वदेशी आंदोलन को व्यापक सफलता मिली। सुरेंद्रनाथ बनर्जी के अनुसार :

> स्वदेशीवाद जब शक्तिमान था तब उसने हमारे सामाजिक व पारिवारिक जीवन के पूरे ताने-बाने को प्रभावित किया। अगर विवाहों में ऐसी विदेशी वस्तुएं उपहार में दी जातीं जिनके समान वस्तुएं देश में बन सकती हों, तो वे लौटा दी जाती थीं। पुरोहित अक्सर ऐसे समारोहों में धार्मिक कार्य

रवींद्रनाथ टैगोर

करने से इंकार कर देते जिनमें ईश्वर को भेंट में विदेशी वस्तुएं दी जाती थीं। जिन उत्सवों में विदेशी नमक या विदेशी चीनी का उपयोग किया जाता उसमें भाग लेने से मेहमान लोग इनकार कर देते थे।

स्वदेशी आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष आत्मनिर्भरता या आत्मशक्ति पर दिया जाने वाला जोर था। आत्मनिर्भरता का मतलब था राष्ट्र की गरिमा, सम्मान और आत्मविश्वास की घोषणा। आर्थिक क्षेत्र में इसका अर्थ देशी उद्योगों व अन्य उद्यमों को बढ़ावा देना। अनेक कपड़ा मिलें, साबुन और माचिस के कारखाने, हैंडलूम के उद्यम, राष्ट्रीय बैंक और बीमा कंपनियां खुलीं। आचार्य पी.सी.राय ने प्रसिद्ध बंगाल केमिकल स्वदेशी स्टोर्स की स्थापना की। महान कवि रविंद्रनाथ ठाकुर तक ने एक स्वदेशी स्टोर खुलवाने में सहायता की।

संस्कृति के क्षेत्र में स्वदेशी आंदोलन के अनेक परिणाम सामने आए। राष्ट्रवादी काव्य, गद्य और पत्रकारिता का विकास हुआ। इस समय रवींद्रनाथ ठाकुर, रजनीकांत सेन, सैयद अबू मुहम्मद और मुकुंद दास ने देशभक्ति के जो गीत लिखे वे बंगाल में आज भी गाए जाते हैं। उन दिनों आत्मनिर्भरता के लिए और एक रचनात्मक उपाय किया गया वह था – राष्ट्रीय शिक्षा। साहित्यिक, तकनीकी और शारीरिक शिक्षा देने के लिए राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाएं स्थापित कीं क्योंकि वे शिक्षा की तत्कालीन प्रणाली को राष्ट्रवाद से विमुख करने वाली या कम से कम अपर्याप्त मानते थे। 15 अगस्त 1906 को एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई। कलकत्ता में एक राष्ट्रीय कालेज का आरंभ हुआ जिसके प्रधानाचार्य अरविंद घोष थे।

छात्रों, स्त्रियों, मुसलमानों और जनता की भूमिकाएं: स्वदेशी आंदोलन में एक प्रमुख भूमिका बंगाल के युवकों ने निभाई। उन्होंने स्वदेशी का प्रयोग और प्रचार किया तथा विदेशी वस्त्र बेचने वाली दुकानों के आगे धरने आयोजित करने में आगे-आगे रहे। सरकार ने छात्रों को दबाने की हर संभव कोशिश की। जिन स्कूलों और कालेजों के छात्र स्वदेशी आंदोलन में सक्रिय हों उन्हें दंडित करने के आदेश जारी किए गए, उन्हें प्राप्त सहायताएं व विशेषाधिकार छीन लिए गए, और उन्हें विश्वविद्यालय से असंबद्ध कर दिया गया, उनके छात्रों को छात्रवृत्ति की परीक्षाओं में बैठने से रोक दिया गया, तथा उन्हें हर सरकारी नौकरी से वंचित रखने का निर्णय किया गया। राष्ट्रवादी आंदोलन में भाग लेने के दोषी छात्रों के खिलाफ अनुशासन की कार्रवाइयां की गईं। अनेकों पर जुर्माने किए गए; अनेकों स्कूलों व कालेजों से निकाल दिए गए, गिरफ्तार किए गए, और कभी-कभी पुलिस द्वारा लाठियों से पीटे भी गए। फिर

भी छात्रों ने झुकने से इंकार कर दिया।

स्वदेशी आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण बात इसमें स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी थी। शहरी मध्य वर्ग की सदियों से घरों में कैद महिलाएं जुलूसों और धरनों में शामिल हुईं। इसके बाद से राष्ट्रवादी आंदोलन में वे बराबर सक्रिय रहीं।

अनेकों प्रमुख मुसलमान नागरिकों ने भी स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया। इनमें प्रसिद्ध वकील अब्दुर्रसूल, लोकप्रिय आंदोलनकारी लियाकत हुसैन और ब्यापारी गजनवी प्रमुख थे। मौलाना अबुलकलाम आजाद एक क्रांतिकारी आंतकवादी संगठन में शामिल हुए। फिर भी मध्य और उच्च वर्गों के अनेकों दूसरे मुसलमान आंदोलन से अलग रहे या ढाका के नवाब के नेतृत्व में (जिसे भारत सरकार ने 14 लाख रुपयों का एक ऋण दिया था) उन्होंने इस आधार पर विभाजन का समर्थन किया कि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों का बहुमत होगा। ढाका के नवाब और दूसरों को यह सांप्रदायिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए अधिकारियों ने प्रोत्साहित किया। ढाका में भाषण देते हुए लार्ड कर्जन ने कहा कि बंगाल के विभाजन का एक कारण था कि "पूर्वी बंगाल के मुसलमानों में ऐसी एकता स्थापित की जाए जैसी कि पुराने मुसलमान सूबेदार और सम्राटों के समय से देखने को नहीं मिली है।"

आंदोलन का अखिल भारतीय चरित्र : स्वदेशी और स्वराज की गूंज जल्द ही देश के दूसरे प्रांतों में भी गूंजने लगी। बंबई, मद्रास और उत्तर भारत में बंगाल की एकता के समर्थन में तथा विदेशी मालों के बहिष्कार के लिए आंदोलन चलाए गए। स्वदेशी आंदोलन को देश के दूसरे भागों तक पहुंचाने में प्रमुख भूमिका तिलक की रही। तिलक ने जल्द ही समझ लिया कि बंगाल में इस आंदोलन के उभरने के कारण भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास का एक नया अध्याय आरंभ हुआ है। ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनसंघर्ष चलाने तथा आपसी सहानुभूति के बंधन में पूरे देश को बांधने की चुनौती सामने थी, और यह एक अच्छा अवसर था।

उग्र राष्ट्रवाद का विकास : विभाजन-विरोधी आंदोलन की कमान जल्द ही तिलक, विपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष जैसे उग्र राष्ट्रवादियों के हाथों में पहुंच गई। इसके अनेक कारण थे।

प्रथम, नरमपंथियों के नेतृत्व में पहले के विरोधी आंदोलन का कोई खास परिणाम नहीं निकला था। यहां तक कि नरमपंथी जिस उदारवादी भारत-सचिव लार्ड मार्ले से बहुत आशाएं लगाए बैठे थे उसने भी कह दिया कि विभाजन अब एक अंतिम सत्य है जिसे बदला नहीं जा सकता। दूसरे, बंगाल के दोनों भागों, खासकर पूर्वी बंगाल की सरकार ने हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डालने के बड़े प्रयत्न किए। बंगाल में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य के बीज संभवतः इसी समय पड़े। इससे

विपिन चन्द्र पाल

राष्ट्रवादियों का जी खट्टा हो गया। लेकिन जनता को जुझारू और क्रांतिकारी राजनीति की ओर जिस बात ने सबसे अधिक धकेला वह थी सरकार की दमन की नीति। खासकर पूर्वी बंगाल की सरकार ने राष्ट्रवादी आंदोलन को दबाने की बहुत कोशिश की। स्वदेशी आंदोलन में छात्रों को भाग लेने से रोकने के लिए सरकार के प्रयासों का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। पूर्वी बंगाल में सड़कों पर "बंदे मातरम्" का नारा लगाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। जनसभाओं को सीमित कर दिया गया और कभी-कभी उनकी अनुमति भी नहीं दी जाती थी। प्रेस पर नियंत्रण के लिए भी कानून बनाए गए। स्वदेशी कार्यकर्ताओं पर मुकद्दमे चलाए गए और उन्हें लंबी-लंबी जेल-सजाएं दी गईं।

लाला लाजपत राय

अनेक छात्रों को शारीरिक दंड तक दिए गए। 1906 से 1909 के बीच बंगाल की अदालतों में 550 से अधिक राजनीतिक मुकद्दमे आए। बहुत से राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों पर मुकद्दमे चलाए गए और प्रेस की स्वतंत्रता पूरी तरह समाप्त कर दी गई। अनेक शहरों में सैनिक पुलिस लगा दी गई जहां जनता से उसकी झड़पें हुईं। दमन की सबसे बदनाम मिसालों में से एक है, अप्रैल 1906 में बारीसाल में आयोजित बंगाल प्रांतीय सम्मेलन पर पुलिस का हमला। अनेक युवक स्वयंसेवकों को बुरी तरह पीटा गया और सम्मेलन को जबर्दस्ती भंग कर दिया गया। दिसंबर 1908 में बंगाल के नौ नेताओं को देशबाहर कर दिया गया; इनमें आदरणीय नेता कृष्ण कुमार मित्र और अश्विनी कुमार दत्त भी थे। इसके पहले 1907 में पंजाब के नहरी इलाकों में हुए दंगों के बाद लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह देशबाहर कर दिए गए थे। 1908 में महान नेता तिलक को दोबारा गिरफ्तार करके 6 वर्ष जेल की वहशियाना सजा दी गई। मद्रास में चिदंबरम पिल्लै और आंध्र में हरि सर्वोत्तम राव तथा दूसरे लोग बंदी बनाए गए।

चिदंबरम पिल्लै

जब उग्र राष्ट्रवादियों ने मोर्चा संभाला तो उन्होंने स्वदेशी और बहिष्कार के अलावा निष्क्रिय प्रतिरोध का आह्वान भी किया। उन्होंने जनता से आग्रह किया कि वह सरकार के साथ सहयोग न करे और सरकारी सेवाओं, अदालतों सरकारी स्कूल-कालेजों, नगरपालिकाओं और विधानमंडलों का बहिष्कार करे, अर्थात् अरविंद घोष के शब्दों में, "वर्तमान परिस्थितियों में प्रशासन चला सकना असंभव बना दें।" उग्र राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी और विभाजन-विरोधी आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने की कोशिश की और विदेशी शासन से मुक्ति का नारा दिया। अरविंद घोष ने खुलकर घोषणा की कि "राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राण वायु है।" इस तरह बंगाल के विभाजन का प्रश्न गौण हो गया और भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न भारतीय राजनीति का केंद्रीय प्रश्न बन गया। उग्र राष्ट्रवादियों ने आत्मबलिदान का आह्वान भी किया कि इसके बिना कोई भी महान उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता।

फिर भी यह बात याद रखनी चाहिए कि उग्र राष्ट्रवादी भी जनता को सकारात्मक नेतृत्व देने में असफल रहे। वे आंदोलन चलाने के लिए आवश्यक कुशल नेतृत्व और कुशल संगठन नहीं दे सके। उन्होंने जनता को जागृत तो कर दिया मगर यह नहीं समझ सके कि जनता की इस नई-नई निकली शक्ति का उपयोग कैसे करें या राजनीतिक संघर्ष के नए रूप क्या हों। निष्क्रिय प्रतिरोध और असहयोग विचार मात्र बनकर रह गए। वे देश की वास्तविक जनता, अर्थात किसानों तक पहुंचने में भी असफल रहे। उनका आंदोलन नगरों के निम्न और मध्य वर्गों तथा जमींदारी तक सीमित रहा। 1908 के अंत तक उनकी राजनीति एक बंद गली में समा चुकी थी। फलस्वरूप उन्हें दबाने में सरकार काफी हद तक सफल रही। उनका आंदोलन उनके प्रमुख नेता तिलक की गिरफ्तारी का तथा विपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष द्वारा सक्रिय राजनीति से सन्यास का धक्का नहीं झेल सका।

लेकिन राष्ट्रवादी भावनाओं का उभार दब न सका। जनता सदियों पुरानी नींद से जाग चुकी थी और राजनीति में निर्भीक तथा दिलेर रवैया अपनाना सीख चुकी थी। उसने आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ लिया था और जनता की लामबंदी तथा राजनीतिक कार्रवाई के नए रूपों को समझ लिया था। अब उसे एक नया आंदोलन उभरने की प्रतीक्षा थी। इसके अलावा अपने अनुभव से जनता ने कीमती सबक सीखे। गांधीजी ने बाद में लिखा था कि "विभाजन के बाद जनता ने समझ लिया कि प्रार्थनापत्रों के पीछे कुछ शक्ति भी होनी चाहिए और यह कि उसे कष्ट उठाने में समर्थ बनना चाहिए।" वास्तव में विभाजन- विरोधी आंदोलन के कारण

श्यामजी कृष्ण वर्मा

भारतीय राष्ट्रवाद में एक महान और क्रांतिकारी परिवर्तन आया। बाद के राष्ट्रीय आंदोलन ने इस पूंजी का खूब उपयोग किया।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का विकास

सरकार का दमन और साथ में जनता को कुशल नेतृत्व देने में नेताओं की असफलता के कारण उपजी कुंठा जैसी बातों ने क्रांतिकारी राष्ट्रवाद को जन्म दिया। बंगाल के युवकों ने देखा कि शांतिपूर्ण प्रतिरोध और राजनीतिक कार्रवाई के सारे रास्ते बंद हैं। हताश होकर उन्होंने व्यक्तिगत बहादुरी के कार्यों और बम की राजनीति का सहारा लिया। अब उन्हें यह भरोसा नहीं रहा था कि निष्क्रिय प्रतिरोध से राष्ट्रवादी उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि बारीसाल सम्मेलन के बाद समाचार-पत्र 'युगान्तर' ने 22 अप्रैल, 1906 को लिखा : "समस्या का समाधान जनता के अपने हाथों में है। उत्पीड़न के इस अभिशाप को रोकने के लिए भारत के तीस करोड़ लोगों को अपने साठ करोड़ हाथ ऊपर उठाने होंगे। ताकत का सामना ताकत से करना होगा।" लेकिन इन क्रांतिकारी युवकों ने जनक्रांति लाने की कोई कोशिश नहीं की। इसके बजाय उन्होंने आयरलैंड के आतंकवादियों और रूसी ध्वंसवादियों की विधियां अपनाने का फैसला किया कि अलोकप्रिय अधिकारियों का वध किया जाए। इस सिलसिले का आरंभ 1897 में ही हो चुका था जब चापेकर भाइयों ने पूना में दो बदनाम ब्रिटिश अधिकारियों का वध कर डाला था। 1904 में विनायक दामोदर सावरकर ने "अभिनव भारत" नाम से क्रांतिकारियों का एक गुप्त संगठन बनाया था। 1905 के बाद अनेकों समाचारपत्र क्रांतिकारी आतंकवाद की पैरवी करने लगे थे। इनमें बंगाल के "संध्या" और "युगांतर" तथा महाराष्ट्र के "काल" सबसे प्रमुख थे।

दिसंबर 1907 में बंगाल के लेफ्टिनेंट-गवर्नर को जान से मारने की कोशिश की गई। अप्रैल 1908 में खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर में एक बग्घी पर बम फेंका जिसमें वे समझते थे कि बदनाम जज, किंग्सफोर्ड बैठा है। बाद में प्रफुल्ल चाकी ने गिरफ्तारी से बचने के लिए खुद को गोली मार ली, जबकि खुदीराम बोस पर मुकद्दमा चलाकर फांसी दे दी गई। क्रांतिकारी आतंकवाद का आंदोलन अब आरंभ हो चुका था। आतंकवादी युवकों की अनेक गुप्त संस्थाएं अब बन गईं इनमें सबसे प्रमुख थी अनुशीलन समिति जिसके ढाका खंड की ही अकेली 500 शाखाएं थीं। क्रांतिकारी आतंकवादी समितियां जल्द ही देश के दूसरे भागों में भी सक्रिय हो उठीं। उनका हौसला इतना बढ़ चुका था कि जब वायसराय लार्ड हार्डिंग्ज दिल्ली में एक सरकारी जुलूस में हाथी पर बैठा था तब उस पर भी उन्होंने बम फेंका। इस हमले में वायसराय घायल हो गया।

क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियों के केंद्र विदेशों में भी खोले। इसकी पहल लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर और हरदयाल ने की जबकि यूरोप में उनके प्रमुख नेता मादाम भीखाजी कामा और अजीतसिंह थे।

आतंकवादी आंदोलन भी धीरे-धीरे ठंडा पड़ गया। वास्तव में एक राजनीतिक अस्त्र के रूप में आतंकवाद की असफलता निश्चित थी। इसने जनता को गतिमान नहीं बनाया और वास्तव में जनता में इसका कोई आधार न था। लेकिन भारत में राष्ट्रवाद के विकास में आतंकवादियों का बहुमूल्य योगदान रहा है। जैसा कि एक इतिहासकार ने कहा है, "उन्होंने हमें अपने मनुजत्व पर गर्व करना फिर से सिखाया।" हालांकि राजनीतिक रूप से चेतन अधिकांश लोग आतंकवादियों के राजनीतिक दृष्टिकोण से सहमत न थे, फिर भी ये आतंकवादी अपनी वीरता के कारण अपने देशवासियों में बेहद लोकप्रिय हुए।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1905-1914)

बंग-भंग-विरोधी आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

मैडम भीकाजी कामा

अजीत सिंह

पर एक गहरा प्रभाव छोड़ा। विभाजन का विरोध करने के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस के सभी भाग एक हो गए। वर्ष 1905 के कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष गोखले ने विभाजन की और कर्जन के प्रतिक्रियावादी शासन की खुलकर निंदा की। राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंगाल के स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन का भी समर्थन किया।

नरमपंथी व गरमपंथी राष्ट्रवादियों के बीच जमकर सार्वजनिक बहसें हुईं और मतभेद उभरे। गरमपंथी स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन को बंगाल से बाहर देश में भी फैलाया तथा औपनिवेशिक सरकार के साथ किसी भी रूप में जुड़ने का बहिष्कार करना चाहते थे। नरमपंथी बहिष्कार को बंगाल तक और वहां भी केवल विदेशी मालों तक सीमित रखना चाहते थे। वर्ष 1906 में राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए दोनों दलों में रस्साकशी हुई। अंत में समझौता दादाभाई नौरोजी के नाम पर हुआ जिन्हें सभी राष्ट्रवादी एक महान देशभक्त मानते थे। दादाभाई ने अपने अध्यक्षीय भाषण में घोषणा की कि भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य "ग्रेट ब्रिटेन या उपनिवेशों की तरह का स्वशासन या स्वराज्य है।" इस घोषणा ने राष्ट्रवादियों में बिजली की लहर सी दौड़ा दी।

लेकिन राष्ट्रवादी आंदोलन के दोनों भागों के मतभेदों को बहुत समय तक दबाकर नहीं रखा जा सका। अनेक नरमपंथी राष्ट्रवादी घटनाओं के साथ ताल-मेल बिठाकर नहीं चल सके। वे यह नहीं समझ सके कि उनके जिस दृष्टिकोण और जिन विधियों ने पीछे एक ठोस लक्ष्य प्राप्त किया था, अब आगे के लिए पर्याप्त

नहीं रह गए थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन के नए चरण तक नहीं पहुंच सके। दूसरी ओर उग्र राष्ट्रवादियों को रोका जाना पसंद न था। अंत में दिसंबर 1907 में सूरत अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस के दो टुकड़े हो गए। नरमपंथी नेता कांग्रेस संगठन पर कब्जा करने तथा उससे गरमपंथियों को निष्कासित करने में सफल रहे।

लेकिन अंततः इस विभाजन से लाभ किसी भी दल को नहीं हुआ। नरमपंथी नेताओं का राष्ट्रवादियों की नई पीढ़ियों से संपर्क टूट गया। ब्रिटिश सरकार ने भी "फूट डालो और राज करो" का खेल खूब खेला। उन्होंने गरमपंथी राष्ट्रवादियों का दमन किया तथा इसके लिए उन्होंने नरमपंथी राष्ट्रवादियों को अपने पक्ष में लाने के प्रयत्न किए। नरमपंथी राष्ट्रवादियों को खुश करने के लिए उन्होंने 1909 के इंडियन कांसिल्स एक्ट के रूप में सांविधानिक सुधारों की घोषणा की; इसी कानून को 1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों के नाम से जाना जाता है। 1911 में सरकार ने बंगाल का विभाजन समाप्त कर देने की घोषणा भी की। पश्चिमी और पूर्वी बंगाल फिर से मिला दिए गए तथा बिहार और उड़ीसा नाम से एक प्रांत इससे अलग बना दिया गया। इसी के साथ केंद्र सरकार की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली लाई गई।

मार्ले-मिंटो सुधारों में इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल और प्रांतीय परिषदों में चुने हुए सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। लेकिन ऐसे अधिकांश सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होना था, अर्थात् इंपीरियल कौंसिल के मामले में प्रातीय परिषदों के द्वारा और प्रांतीय परिषदों के मामले में नगरपालिकाओं और जिला परिषदों द्वारा चुने हुए सदस्यों में कुछ सीटें जमींदारों और भारत में रह रहे ब्रिटिश पूंजीपतियों के लिए आरक्षित थीं। उदाहरण के लिए, इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के 68 सदस्यों में 36 अधिकारी होते और 5 ऐसे नामजद सदस्य होते जो अधिकारी न हों। शेष 27 सदस्य चुने हुए होते जिनमें 6 बड़े जमींदारों के और 2 ब्रिटिश पूंजीपतियों के प्रतिनिधि होते। इसके अलावा, सुधार के बाद भी ये परिषदें वास्तविक शक्ति से वंचित होतीं और केवल सलाहकार समितियों का काम करतीं। इन सुधारों से ब्रिटिश शासन के लोकतंत्र- विरोधी और विदेशी चरित्र में या विदेशियों द्वारा देश के आर्थिक शोषण में कोई भी परिवर्तन नहीं आया। वास्तव में भारतीय प्रशासन को लोकतांत्रिक स्वरूप देना उनका उद्देश्य था ही नहीं। इस समय मार्ले ने खुलकर कहा कि "अगर यह कहा जा रहा हो कि वर्तमान सुधार प्रत्यक्ष या अनिवार्य रूप से भारत में एक संसदीय प्रणाली की स्थापना की ओर हमें ले जाएंगे, तो कम से कम मेरा इनसे कुछ भी लेना-देना नहीं होगा।" भारत-सचिव के रूप में उसका स्थान लेने वाले लार्ड क्रेव ने 1912 में स्थिति और भी साफ कर दी : "भारत में एक वर्ग ऐसा है जो स्वशासन की आशा लिए हुए है जैसा कि दूसरे डोमिनियनों को दी गई है। मैं भारत के लिए इस तरह का कोई भविष्य नहीं देखता।" 1909 के सुधारों का वास्तविक उद्देश्य नरमपंथियों को भ्रमित करना, राष्ट्रवादियों में फूट डालना, और भारतीयों के बीच एकता को बढ़ने से रोकना था।

इन सुधारों ने अलग-अलग चुनाव मंडलों की प्रणाली भी आरंभ की। इसमें सभी मुसलमानों को मिलाकर उनके अलग चुनाव क्षेत्र बनाए गए थे और इन क्षेत्रों से केवल मुसलमान ही चुने जा सकते थे। यह काम अल्पसंख्यक मुस्लिम संप्रदाय की सुरक्षा के नाम पर किया गया। पर वास्तव में यह हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डालने और भारत में ब्रिटिश शासन को बनाए रखने की नीति का ही अंग था। अलग-अलग चुनाव मंडलों की यह प्रणाली इस धारणा पर आधारित थी कि हिंदुओं और मुसलमानों के राजनीतिक और आर्थिक हित अलग-अलग हैं। यह एक अवैज्ञानिक धारणा थी, क्योंकि धर्म कभी राजनीतिक या आर्थिक हितों का या राजनीतिक संगठन का आधार नहीं हो सकता। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रणाली के व्यवहार में बहुत घातक परिणाम निकले। इसने भारत

के एकीकरण की निरंतर ऐतिहासिक प्रक्रिया में बाधा खड़ी की। यह प्रणाली देश में हिंदू और मुस्लिम, दोनों तरह की संप्रदायिकता के विकास का प्रमुख कारण सिद्ध हुई। मध्यवर्गीय मुसलमानों के शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने तथा इस प्रकार उनको भारतीय राष्ट्रवाद की मुख्य धारा में शामिल करने के बजाए, अलग-अलग चुनाव मंडलों की इस प्रणाली ने विकसित होते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन से उनके अलगाव को और स्थायी बनाया। इससे अलगाववादी प्रवृतियों को बढ़ावा मिला। इसने हिंदू-मुसलमान, सभी भारतीयों की साझी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने से लोगों को रोका।

नरमपंथी राष्ट्रवादियों ने मार्ले-मिंटो सुधारों को पूरा समर्थन नहीं दिया। जल्द ही उन्हें लगने लगा कि इन सुधारों से बहुत अधिक कुछ प्राप्त नहीं हुआ है। फिर भी सुधारों को लागू कराने के लिए उन्होंने सरकार से सहयोग का निर्णय किया। सरकार से यह सहयोग और उग्र राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम का विरोध उनके लिए बहुत महंगा सिद्ध हुआ। धीरे-धीरे जनता में उनकी प्रतिष्ठा और समर्थन कम होते गए और वे एक मामूली से राजनीतिक समूह बनकर रह गए।

सांप्रदायिकता का विकास

उन्नीसवीं सदी के अंत तक राष्ट्रवाद के उदय के साथ-साथ सांप्रदायिकता ने भी सर उठाया और इसके कारण भारतीय जनता और राष्ट्रीय आंदोलन की एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा पैदा हुआ। इसके पहले कि हम सांप्रदायिकता के उदय और विकास का वर्णन करें, इस शब्द की परिभाषा कर लेना उचित होगा।

सांप्रदायिकता मूल रूप से एक विचारधारा है। सांप्रदायिकता दंगे इस विचारधारा के अनेक परिणामों में से केवल एक परिणाम है। सांप्रदायिकता इस विश्वास का नाम है कि चूंकि कुछ लोग किसी एक विशेष धर्म को मानते हैं इसलिए उनके पार्थिव अर्थात् सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हित भी समान होते हैं। यह इस विश्वास का नाम है कि भारत में हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई अलग-अलग और विशिष्ट समुदाय हैं; कि किसी धर्म के मानने वालों के धार्मिक हित ही नहीं बल्कि पार्थिव हित भी समान होते हैं; कि भारतीय राष्ट्र नाम की कोई वस्तु न है और न हो सकती है बल्कि इसके बजाए यहां केवल हिंदू राष्ट्र, मुस्लिम राष्ट्र आदि हैं; कि भारत उपरोक्त कारण से धार्मिक समुदाय का एक महासंघ मात्र है। सांप्रदायिकता में यह दूसरी धारणा भी निहित है कि किसी धर्म के अनुयायियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक हित किसी दूसरे धर्म के मानने वालों के हितों से भिन्न होते हैं। सांप्रदायिकता का तीसरा चरण तब आरंभ होता है जब विभिन्न धर्मों के अनुयायियों या विभिन्न धार्मिक 'समुदायों' के हितों को परस्पर विरोधी और शत्रुतापूर्ण समझा जाने लगता है। इस चरण में संप्रदायवादी यह दावा करते हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों के पार्थिव हित समान नहीं हो सकते और उनके पार्थिव हितों का एक दूसरे से टकराना निश्चित है।

यह बात सही नहीं है कि सांप्रदायिकता मध्य काल का अवशेष है या तब से चला आ रहा है। हालांकि धर्म लोगों के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है और धर्म को लेकर कभी-कभी वे झगड़ते भी रहे हैं, फिर भी 1870 के दशक के पहले तक शायद ही किसी सांप्रदायिक विचारधारा और सांप्रदायिक राजनीति का अस्तित्व रहा हो। सांप्रदायिकता एक आधुनिक प्रवृत्ति है। इसकी जड़ें आधुनिक औपनिवेशिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में निहित हैं।

सांप्रदायिकता का उदय जनता और उसकी भागीदारी पर आधारित एक नई, आधुनिक राजनीति का परिणाम है। इसके कारण जनता से व्यापक संबंध बनाने और उसकी आस्था जीतने तथा नई पहचान कायम करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई। यह प्रक्रिया अनिवार्यतः कठिन, धीमी और जटिल रही। इस प्रक्रिया के लिए

राष्ट्र, वर्ग और सांस्कृतिक भाषायी पहचानों के आधुनिक विचारों का उदय और प्रसार आवश्यक था। नई और अपरिचित होने के कारण ये नई पहचानें भी धीमे-धीमे और उतार-चढ़ाव के साथ विकसित हुईं। अक्सर-बेशतर लोग नई वास्तविकता को समझने, व्यापक संबंध बनाने और नई पहचानें कायम करने के लिए जाति, स्थान, पंथ और धर्म की पुरानी और परिचित पहचानों का उपयोग करते रहे हैं। ऐसा पूरी दुनिया में हुआ है। लेकिन धीरे-धीरे राष्ट्र, जातीयता और वर्ग की नई, आधुनिक और ऐतिहासिक रूप से आवश्यक पहचानें स्थापित हुई हैं। दुर्भाग्य से भारत में अनेक दशकों के बाद भी यह प्रक्रिया अभी तक अधूरी है क्योंकि, जैसा कि कहा जा चुका है, भारत पिछले 150 वर्षों से भी अधिक समय से एक निर्माणाधीन राष्ट्र ही बना रहा है। खासकार धार्मिक चेतना देश के कुछ भागों और जनता के कुछ वर्गों में सांप्रदायिक चेतना बनकर रह गई है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हुआ।

आधुनिक राजनीतिक चेतना खास तौर पर मुसलमानों में देर से विकसित हुई। निम्न मध्य वर्ग के हिंदुओं और पारसियों में राष्ट्रवाद का प्रसार तो हुआ पर उसी वर्ग के मुसलमानों में वह उतनी तेज़ी से नहीं बढ़ सका।

जैसा कि हम देख आए हैं, 1857 के विद्रोह मे हिंदू-मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। वास्तव में विद्रोह को कुचलने के बाद ब्रिटिश अधिकारियों ने मुसलमानों से खास तौर पर बदला चुकाया था। अकेले दिल्ली में 27,000 मुसलमान फांसी से लटका दिए गए थे। इसके बाद मुसलमानों को लगातार शंका की दृष्टि से देखा जाता रहा। पर 1870 के दशक में इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। राष्ट्रवादी आंदोलन के उदय से ब्रिटिश राजनेता भारत में अपने साम्राज्य की सुरक्षा और स्थायित्व को लेकर चिंतित हो उठे। देश में एकजुट राष्ट्रीय भावना के विकास को रोकने के लिए उन्होंने ''फूट डालो और राज करो'' की नीति पर और भी सक्रियता से काम करने और जनता को धार्मिक आधारों पर बांटने का, अर्थात् दूसरे शब्दों में भारत की राजनीति में सांप्रदायिक और अलगाववादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने का फैसला किया। इस कारण से उन्होंने मुसलमानों के 'मसीहा' के रूप में सामने आने तथा मुसलमान जमींदारों, भूस्वामियों और नवशिक्षित वर्गों को अपनी तरफ खींचने का फैसला किया। उन्होंने भारतीय समाज में दूसरी तरह की फूटें भी डालीं। बंगाली वर्चस्व का नाम ले-लेकर उन्होंने प्रांतवाद को हवा दी। अब्राह्मणों को ब्रह्मणों और निचली जातियों को ऊंची जातियों के खिलाफ खड़ा करने के लिए उन्होंने जाति-प्रथा का इस्तेमाल करने की कोशिशें भी कीं। संयुक्त प्रांत और बिहार में हिंदू और मुसलमान हमेशा से शांतिपूर्वक रहते आए थे। वहां उन्होंने उर्दू को हटाकर हिंदी को राजभाषा के पद दिए जाने के आंदोलन को खुलकर प्रोत्साहन दिया। दूसरे शब्दों में, भारतीय समाज के विभिन्न वर्गो की उचित मांगों का भी भारतीय जनता में फूट डालने के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश की। औपनिवेशिक सरकार ने हिंदूओं, मुसलमानों और सिखों को अलग-अलग समुदाय माना। उन्होंने सांप्रदायिक नेताओं को उनके सहधर्मियों के वास्तविक प्रतिनिधि मानने में कोई देर नहीं लगाई। उन्होंने प्रेस, पुस्तिकाओं, पोस्टरों, साहित्य और सार्वजनिक मंचों से जहरीले सांप्रदायिक विचार और सांप्रदायिक घृणा फैलाने की पूरी छूट दी। राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों और लेखकों आदि को जिस तरह अक्सर उत्पीड़ित किया जाता था, यह बात उसके ठीक विपरीत थी।

धार्मिक अलगाववाद की प्रवृत्ति के विकास में सैयद अहमद खान की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। सैयद अहमद खान एक महान शिक्षाशास्त्री और समाज-सुधारक थे, मगर अपने जीवन के अंतिम दिनों में वे रूढ़िवादी विचारों के हो गए थे। वर्ष 1880 के दशक में अपने पहले के विचारों को छोड़कर उन्होंने घोषणा की कि हिंदुओं और मुसलमानों के राजनीतिक हित समान न

होकर भिन्न-भिन्न बल्कि एकदम अलग-अलग हैं, और इस प्रकार उन्होंने मुस्लिम सांप्रदायिकता की नींव डाली। उन्होंने ब्रिटिश शासन के प्रति पूर्ण भक्ति का उपदेश भी दिया। वर्ष 1885 में ज़ब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तो उन्होंने उसका विरोध करने का और बनारस के राजा शिवप्रसाद के साथ मिलकर ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादारी का आंदोलन चलाने का निश्चय किया। वे अब ये भी कहने लगे कि चूंकि हिंदू भारतीय जनता का बहुमत भाग है इसलिए ब्रिटिश शासन के कमजोर पड़ने या समाप्त होने पर वे मुसलमानों को दबाकर रखेंगे। उन्होंने मुसलमानों से आग्रह किया कि वे बदरुद्दीन तैयबजी की कांग्रेस में शामिल होने की अपील पर कोई ध्यान न दें।

ये विचार निःसंदेह अवैज्ञानिक और वास्तविकता से दूर थे। हिंदू और मुसलमान अलग-अलग धर्मों को मानते अवश्य थे, फिर भी इसके कारण उनके आर्थिक और राजनीतिक हित अलग-अलग न थे। भाषा, संस्कृति, जाति, वर्ग, सामाजिक स्थिति, खानपान और वस्त्र-परिधान, सामाजिक कृत्यों आदि में हिंदू अपने साथी हिंदुओं से और मुसलमान दूसरे मुसलमानों से अलग थे। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी हिंदू और मुसलमान जनता तथा वर्गों ने समान जीवन-प्रणालियां विकसित कर ली थीं। एक बंगाली मुसलमान और एक पंजाबी मुसलमान की तुलना में एक बंगाली मुसलमान और एक बंगाली हिंदू में बहुत सी बातें सांझी थीं। इसके अलावा ब्रिटिश साम्राज्यवाद हिंदू-मुसलमान दोनों का बराबर और मिलकर दमन और शोषण कर रहा था। यहां तक कि 1884 में सैयद अहमद खान ने भी लिखा था :

> क्या आप एक ही देश में नहीं रहते? क्या आप एक ही धरती पर जलाए और दफनाए नहीं जाते? क्या आप एक ही जमीन पर नहीं चलते या एक ही मिट्टी पर नहीं रहते? याद रखिए कि हिंदू और मुसलमान शब्द केवल धार्मिक अंतर के लिए हैं, वर्ना सभी लोग, चाहे हिंदू हों या मुसलमान, बल्कि इस देश में रहने वाले ईसाई भी, इस खास अर्थ में एक ही राष्ट्र के सदस्य हैं। इसलिए इन सभी विभिन्न मतों को एक राष्ट्र कहा जा सकता है, और इसलिए देश के, जो सबका देश है, उसके भले के लिए एक-एक व्यक्ति को एकता के सूत्र के बंध जाना चाहिए।

तो प्रश्न यह है : मुसलमानों में सांप्रदायिक और अलगाववादी विचार-प्रवृत्ति कैसे विकसित हुई?

कुछ हद तक इसका कारण शिक्षा, व्यापार और उद्योग में मुसलमानों का तुलनात्मक पिछड़ापन था। मुस्लिम उच्च वर्गों में अधिकांशतः जमींदार और अभिजात लोग थे। चूंकि 19वीं सदी के पहले 70 वर्षों में उच्च वर्ग के मुसलमान बहुत ब्रिटिश-विरोधी, रूढ़िवादी और आधुनिक शिक्षा के दुश्मन थे, इसलिए देश में शिक्षित मुसलमानों की संख्या बहुत कम रही। फलस्वरूप आधुनिक पश्चिमी विचार जिनका आधार विज्ञान, लोकतंत्र और राष्ट्रवाद पर था, मुसलमान बुद्धिजीवियों में नहीं फैले और वे परंपरा के दास और पिछड़े बने रहे। बाद में सैयद अहमन खान, नवाब अब्दुल लतीफ, बदरुद्दीन तैयबजी और दूसरे लोगों के प्रयासों के कारण मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार हुआ। लेकिन मुसलमानों में शिक्षित लोगों का भाग हिंदुओं, पारसियों और ईसाइयों से बहुत कम रहा। इसी तरह उद्योग- व्यापार के विकास में भी मुसलमानों का बहुत कम हाथ रहा था। मुसलमानों में शिक्षितों, उद्योगपतियों और व्यापारियों की कम संख्या के कारण प्रतिक्रियावादी बड़े जमींदार मुस्लिम जनता पर अपना प्रभाव बनाए रखने में सफल रहे। जैसा कि हम देख चुके हैं, भूस्वामी और जमींदार चाहे हिंदू हों या मुसलमान, अपने स्वार्थ के कारण ब्रिटिश शासन का समर्थन करते थे। पर हिंदुओं में आधुनिक बुद्धिजीवियों तथा उभरते हुए व्यापारी और उद्योगपति वर्ग ने जमींदारों से नेतृत्व छीन लिया था। दुर्भाग्य से मुसलमानों की स्थिति इसके ठीक विपरीत रही।

मुसलमानों के शैक्षिक पिछड़ेपन का एक और घातक परिणाम हुआ। चूंकि सरकारी नौकरियों या व्यवसायों के लिए आधुनिक शिक्षा आवश्यक थी, इसलिए इन क्षेत्रों में भी मुसलमान दूसरों से पीछे रहे। इसके अलावा मुसलमानों को 1857 की बगावत के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार मानकर सरकार उनके खिलाफ 1858 से ही जान-बूझकर भेदभाव करती आ रही थी। जब मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा कुछ फैली भी, तब भी एक शिक्षित मुसलमान के सामने व्यवसाय या व्यापार के बहुत कम अवसर थे। तब वह अनिवार्य रूप से सरकारी नौकरी का मुंह देखता था। और कुछ भी हो, एक पिछड़ा उपनिवेश होने के कारण भारत में जनता के लिए रोजगार के बहुत कम अवसर थे। इन हालात में ब्रिटिश अधिकारियों और जी-हुजूर मुसलमान नेताओं के लिए शिक्षित मुसलमानों को शिक्षित हिंदुओं के खिलाफ भड़काना बहुत आसान था। सैयद अहमद खान और दूसरों ने यह मांग उठाई कि सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के साथ खास व्यवहार किया जाए। उन्होंने ऐलान किया कि अगर शिक्षित मुसलमान ब्रिटिश शासन के वफादार रहे तो सरकार नौकरियों तथा दूसरी विशेष कृपाओं के रूप में उन्हें इसका समुचित पुरस्कार देगी। कुछ जी-हुजूर हिंदू और पारसी भी इसी तरह के तर्क देने की कोशिश करते थे, मगर वे हमेशा मामूली अल्पमत में बने रहे। नतीजा यह हुआ कि जब पूरे देश के पैमाने पर स्वतंत्र और राष्ट्रवादी वकील, पत्रकार, छात्र, व्यापारी और उद्योगपति राजनीतिक नेता बन रहे थे तब भी मुसलमानों में वफादार जमींदार और सेवानिवृत सरकारी नौकर ही राजनीतिक जनमत को प्रभावित करते रहे। बंबई वह पहला प्रांत था जहां बहुत पहले ही मुसलमानों ने व्यापार और शिक्षा को अपनाया था, और वहां राष्ट्रीय कांग्रेस की कतारों में बदरुद्दीन तैयबजी, आर. एम. सयानी, ए. भीमजी और युवा वकील मुहम्मद अली जिन्ना जैसे प्रतिभाशाली मुसलमान मौजूद थे। समस्या के इस पक्ष को संक्षेप में सामने रखने के लिए हम जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक "भारत : एक खोज" से एक उद्धरण देते हैं:

> हिंदू और मुसलमान मध्य वर्गों के विकास में एक पीढ़ी या इससे कुछ अधिक समय का अंतर रहा है, और यह अंतर आज भी अनेक राजनीतिक, आर्थिक और दूसरी दिशाओं में दिखाई दे रहा है। यही वह पिछड़ापन है जो मुसलमानों में भय की मानसिकता पैदा करता है।

इतिहास का छात्र होने के नाते हमें यह भी जानना चाहिए कि उन दिनों स्कूलों और कालेजों में जिस तरह से भारतीय इतिहास की शिक्षा दी जाती थी उसके कारण भी शिक्षित हिंदुओं और मुसलमानों में सांप्रदायिक भावनाओं का विकास हुआ। ब्रिटिश इतिहासकारों और उनका अनुकरण करने वाले भारतीय इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के मध्य काल को मुस्लिम काल कहा। तुर्क, अफगान और मुगल शासकों के शासन को मुस्लिम शासन कहा गया। मुस्लिम जनता भी हिंदू जनता जितनी ही पीड़ित और करों के बोझ से दबी थी, और दोनों को शासक, दरबारी, सरदार और जमींदार, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, एक समान अपमान की दृष्टि से देखते थे तथा उन्हें कीड़े-मकोड़े समझते थे, फिर भी इन लेखकों ने ऐलान किया कि मध्यकालीन भारत में सारे मुसलमान शासक थे और सारे ही गैर-मुसलमान शासित थे। वे यह बात सामने न ला सके कि हर जगह की तरह भारत में भी प्राचीन और मध्यकालीन युग में राजनीति का आधार आर्थिक और राजनीतिक हित थे; न कि धार्मिक विचार। शासकों और विद्रोहियों, दोनों ने धर्म का उपयोग अपने भौतिक हितों और महत्वाकांक्षाओं को छिपाने के लिए एक बाहरी खोल के रूप में किया। इसके अलावा ब्रिटिश और सांप्रदायिक इतिहासकारों ने भारत में एक समन्वित संस्कृति की धारणा पर भी चोट की। निश्चित ही भारत में अनेकों प्रकार की संस्कृतियां मौजूद थीं। लेकिन इस विविधता का कोई धार्मिक आधार न था। किसी एक क्षेत्र के लोगों तथा एक ही

क्षेत्र के उच्च और निम्न वर्गों के साझे सांस्कृतिक आचार-विचार होते थे। फिर भी सांप्रदायिक इतिहासकारों का दावा था कि भारत में हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों का अलग-अलग अस्तित्व है।

इतिहास के प्रति हिंदू सांप्रदायिक दृष्टिकोण इस भ्रामक धारणा का भी सहारा होता था कि भारतीय समाज और संस्कृति प्राचीन काल में महानता और आदर्श की ऊंचाइयों पर विराजमान थी, पर मध्य काल में 'मुस्लिम शासन और प्रभुत्व के कारण उसका निरंतर पतन आरंभ हो गया। भारतीय अर्थव्यवस्था और तकनोलॉजी, धर्म और दर्शन, कला और साहित्य, संस्कृति और समाज, फलों, सब्जियों और वस्त्रों में मध्य काल का जो भी बुनियादी योगदान था, उसे नकारा जाने लगा।

इस बात को भी अनेक समकालीन प्रेक्षकों ने देखा-समझा। उदाहरण के लिए, गांधीजी लिखते हैं: "जब तक स्कूलों और कालेजों में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों द्वारा अत्यंत विकृत इतिहास पढ़ाया जाता है तब तक सांप्रदायिक सद्भाव स्थायी रूप से स्थापित नहीं हो सकता था।" साथ ही, इतिहास के प्रति सांप्रदायिक दृष्टिकोण को कविता, नाटकों, ऐतिहासिक उपन्यासों और कहानियों, समाचारपत्रों व लोकप्रिय पत्रिकाओं, बच्चों की पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं और सबसे बढ़कर सार्वजनिक मंचों से मौखिक रूप से, कक्षाओं में अध्यापन, परिवार द्वारा होने वाले सामाजीकरण तथा आपसी बातचीत के द्वारा भी व्यापक रूप से प्रचारित किया गया।

भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माताओं ने इस बात को अच्छी तरह समझा कि एक राष्ट्र के रूप में भारतीयों को ढालना एक धीमा और कठिन काम है और इसके लिए जनता को लंबे समय तक राजनीतिक शिक्षा देनी होगी। इसलिए उन्होंने अल्पसंख्यकों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि राष्ट्रवादी आंदोलन सभी भारतीयों को साझे राष्ट्रीय, आर्थिक और राजनीतिक हितों के आधार पर एकताबद्ध करने का प्रयास करते हुए उनके धार्मिक और सामाजिक अधिकारों की सावधानीपूर्वक रक्षा करेगा। राष्ट्रीय कांग्रेस के 1886 के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए दादाभाई नौरोजी ने स्पष्ट आश्वासन दिया कि कांग्रेस केवल राष्ट्रीय प्रश्न उठाएगी और धार्मिक तथा सामाजिक मामलों में दखल नहीं देगी। 1889 में कांग्रेस ने यह सिद्धांत स्वीकार किया कि अगर किसी प्रस्ताव को कांग्रेस के मुस्लिम प्रतिनिधियों का बहुमत मुसलमानों के लिए हानिकारक समझता है तो उसे स्वीकार नहीं किया जाएगा। कांग्रेस के आरंभिक वर्षों में अनेकों मुसलमान इसमें शामिल हुए। दूसरे शब्दों में, यह समझकर कि राजनीति का आधार धर्म और समुदाय नहीं होने चाहिए, आरंभिक राष्ट्रवादियों ने जनता के राजनीतिक दृष्टिकोण को आधुनिक बनाने की कोशिश की।

दुर्भाग्य से उग्र राष्ट्रवाद जहां सभी दूसरी बातों में आगे की ओर बढ़ा हुआ एक कदम था, वहीं राष्ट्रीय एकता के विकास की दृष्टि से यह एक पिछड़ा हुआ कदम था। कुछ उग्र राष्ट्रवादियों के भाषण और लेखन धार्मिक और हिंदू रंगत में रंगे हुए होते थे। उन्होंनें मध्यकालीन भारतीय संस्कृति को नकार कर प्राचीन भारतीय संस्कृति पर जोर दिया। उन्होंने भारतीय संस्कृति और भारतीय राष्ट को हिंदू धर्म और हिंदुओं से जोड़ा, उन्होंने समन्वित संस्कृति के तत्वों को छोड़ने के प्रयत्न किए। उदाहरण के लिए, तिलक ने शिवाजी और गणपति उत्सवों का प्रचार किया, अरविंद घोष ने अर्धरहस्यवादी ढ़ंग से भारत को माता और राष्ट्रवाद को धर्म बतलाया, आतंकवादी देवी काली के आगे शपथ लेते थे, और बंगाल-विभाजन विरोधी आंदोलन का आरंभ गंगा में डुबकियां लगाकर किया गया। ये बातें शायद ही मुसलमानों को पसंद आतीं। वास्तव में, ऐसे काम उनके धर्म के विपरीत थे, और यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे मुसलमान होते हुए भी इन या ऐसी दूसरी गतिविधियों से अपने को जोड़ें। मुसलमानों से यह

आशा भी नहीं की जा सकती थी कि वे शिवाजी और राणा प्रताप का गुणगान उनकी ऐतिहासिक भूमिकाओं के कारण नहीं, बल्कि 'विदेशियों' के खिलाफ लड़ने वाले 'राष्ट्रीय' नायकों के रूप में किया जाता देखें और उत्साह के साथ वहीं काम स्वयं करें। अगर किसी का मुसलमान होना ही उसे विदेशी कहने का आधार न हो तो अकबर या औरंगजेब को किसी भी तरह विदेशी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में आवश्यकता इस बात की थी कि प्रताप और अकबर या शिवाजी और औरंगजेब की लड़ाई को उसकी विशिष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में एक राजनीतिक संघर्ष के रूप में देखा जाए। अकबर और औरंगजेब को 'विदेशी' कहने तथा प्रताप और शिवाजी को 'राष्ट्रीय' नायक का दर्जा देने का मतलब यह है कि हम आज के भारत में प्रचलित सांप्रदायिक दृष्टिकोण को पीछे के इतिहास पर लागू कर रहे हैं। यह एक विकृति इतिहास ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय एकता के लिए धक्का भी था।

इसका मतलब यह नहीं है कि उग्र राष्ट्रीयवादी मुस्लिम विरोधी या पूरी तरह सांप्रदायवादी थे, बल्कि इसके उलट, तिलक समेत उनमें से अधिकांश हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उनमें से अधिकांश के लिए मातृभूमि या भारत-माता की धारणा एक आधुनिक धारणा थी जिसका धर्म से कोई संबंध न था। उनमें से अधिकांश का राजनीतिक चिंतन अतीत के मोह में ग्रस्त न होकर आधुनिक था। आर्थिक वहिष्कार का उनका प्रमुख राजनीतिक अस्त्र और उनका राजनीतिक संगठन, दोनों वास्तव में बहुत आधुनिक थे। उदाहरण के लिए, 1916 में तिलक ने घोषणा की कि "जो भी इस देश की जनता की भलाई का काम करता है वह चाहे मुसलमान हो या अंग्रेज़, विदेशी नहीं है। 'विदेशीपन' का संबंध हितों से है। विदेशीपन का संबंध निश्चित ही गोरी या काली चमड़ी से या धर्म से नहीं है।" यहां तक कि क्रांतिकारी राष्ट्रवादी भी आयर लैंड, रूस या इटली जैसे यूरोपीय देशों के क्रांतिकारी आंदोलनों से प्रभावित थे, न कि काली पूजा या भवानी पूजा से। पर जैसा कि पहले कहा जा चुका है उग्र राष्ट्रवादियों के राजनीतिक कार्यों और विचारों की कुछ-कुछ हिंदू रंगत हुआ करती थी। यह बात खास तौर पर हानिकारक सिद्ध हुई क्योंकि चालाक ब्रिटिश और ब्रिटिश-समर्थक प्रचारकों ने इस हिंदू रंगत का लाभ उठाकर मुसलमानों के मन में जहर भरा। नतीजा यह हुआ कि शिक्षित मुसलमान बड़ी संख्या में उभरते राष्ट्रवादी आंदोलन से अलग रहे या उसके शत्रु बन गए। इस तरह वे आसानी से अलगाववादी दृष्टिकोण के शिकार हो गए। इस हिंदू रंगत ने हिंदू सांप्रदायवाद को भी वैचारिक सहारा दिया, और राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए अपने बीच से हिंदू-सांप्रदायिक राजनीति और विचारधारा के तत्वों का विनाश कर सकना कठिन हो गया। इससे मुस्लिम राष्ट्रवादियों पर एक मुस्लिम रंगत भी चढ़ी। तो भी वकील अब्दुर्रसूल और हसरत मोहानी जैसे प्रगतिशील

हसरत मोहानी

मुस्लिम बुद्धिजीवी स्वदेशी आंदोलन में बड़ी संख्या में शामिल हुए, मौलाना अबुल कलाम आजाद क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों में शामिल हुए, और मुहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस के प्रमुख युवक नेताओं में से एक के रूप में विख्यात हुए। इसका कारण यह था कि राष्ट्रीय आंदोलन दृष्टिकोण व विचारधारा में मूलतः धर्मनिरपेक्ष ही बना रहा। जब गांधीजी, चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, एम ए. अंसारी, हकीम अजमल खान, खान अब्दुल गफ्फार खान, सुभाष चंद्र बोस, सरदार पटेल, राजेंद्र प्रसाद और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जैसे नेता सामने आए तो यह धर्मनिरपेक्षता और भी मजबूत हुई।

देश के आर्थिक पिछड़ेपन ने भी, जो औपनिवेशिक अल्प विकास की देन था, संप्रदायवाद के उदय में सहायता की। आधुनिक औद्योगिक विकास के अभाव में बेरोजगारी भारत में और खासकर शिक्षित लोगों के लिए तीखी समस्या बन गई। नतीजा यह हुआ कि जो भी नौकरियां थीं उनके लिए प्रतियोगिता बहुत कड़ी थी। दूरदृष्टि रखने वाले भारतीयों ने इस बीमारी को पहचाना और एक ऐसी आर्थिक-राजनीतिक प्रणाली के लिए कार्यरत रहे जिसमें देश का आर्थिक विकास हो और रोजगार की कोई कमी न रहे। लेकिन दूसरे बहुत से लोगों ने इसके लिए नौकरियों में संप्रदाय, प्रांत या जाति के आधार पर आरक्षण जैसे अल्पदर्शी और अल्पावधि वाले हल सुझाए। रोजगार के उपलब्ध और सीमित अवसरों में एक बड़ा हिस्सा पाने के लिए उन्होंने सांप्रदायिक और धार्मिक भावनाएं तथा बाद में जातिगत और प्रांतीय भावनाएं भी भड़काने की कोशिशें कीं। जो लोग हताश होकर रोजगार ढूँढ़ रहे थे उनके लिए ऐसे संकुचित विचारों के प्रति कुछ तात्कालिक आकर्षण अवश्य था। इस स्थिति में सांप्रदायिक हिंदू-मुसलमान नेताओं, जातियों के नेताओं और "फूट डालो तथा राज करो" की नीति चलाने वाले अधिकारीगण को कुछ सफलता अवश्य मिली। अनेक हिंदू हिंद राष्ट्रवाद की और अनेक मुसलमान मुस्लिम राष्ट्रवाद की बातें करने लगे। राजनीतिक रूप से अपरिपक्व लोग यह नहीं समझ सके कि उनकी आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक कठिनाइयां विदेशी शासन में उनकी साझी पराधीनता और आर्थिक पिछड़ेपन की उपज थी, और यह कि केवल साझे प्रयासों के द्वारा ही वे देश को मुक्त करा सकते हैं, उसका आर्थिक विकास कर सकते हैं और इस तरह बेरोजगारी जैसी साझी समस्याओं को हल कर सकते हैं। कुछ लोगों का मत है कि सांप्रदायिकता के विकास का एक प्रमुख कारण यह है कि देश में अनेक धर्म मौजूद हैं। पर ऐसा नहीं है। किसी बहुधार्मिक समाज़ में सांप्रदायिकता का विकास अनिवार्य है, यह बात सही नहीं है। यहां हमें धर्म और सांप्रदायिकता में अंतर करना होगा। धर्म एक विश्वास-प्रणाली है और लोग अपने व्यक्तिगत विश्वासों के एक अंग के रूप में उसका पालन करते हैं। इसके विपरीत सांप्रदायिकता धर्म पर आधारित सामाजिक और राजनीतिक पहचान की विचारधारा का नाम है। धर्म सांप्रदायिकता का कारण नहीं है और न ही सांप्रदायिकता धर्म से प्रेरित होता है। धर्म सांप्रदायिकता में वहीं तक शामिल होता है जहां तक धर्म से बाहर के क्षेत्रों में उपजी राजनीति के साधन के रूप में काम करता है। सांप्रदायिकता का एक बहुत सही वर्णन यह किया गया है कि यह धर्म का राजनीतिक व्यापार है। वर्ष 1937 के बाद धर्म का उपयोग संप्रदायवादियों ने जनता को गतिमान बनाने के लिए किया था। इसलिए धर्मनिरपेक्षता का धर्म से कोई विरोध नहीं है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ केवल यह है कि धर्म व्यक्ति के निजी जीवन तक सीमित रहे और राजनीति तथा राज्य से उसका कोई सरोकार न रहे। जैसा कि गांधीजी ने बार-बार कहा है : "धर्म हर व्यक्ति का निजी मामला है। इसे राजनीति या राष्ट्रीय मामलों से नहीं जोड़ना चाहिए।"

शिक्षित मुसलमानों और बड़े मुस्लिम नवाबों और जमींदारों के बीच अलगाववादी और वफादारी की प्रवृत्तियां

तब चरम सीमा पर पहुंचीं जब 1906 में आगा खान, ढाका के नवाब और नवाब मोहसिनुलमुल्क के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। मुस्लिम लीग की स्थापना एक वफादार, सांप्रदायिक और रूढ़िवादी राजनीतिक संगठन के रूप में हुई, और उसने उपनिवेशवाद की कोई आलोचना नहीं की, बंगाल के विभाजन का समर्थन किया और सरकारी नौकरियों में मुसलमानों के लिए विशेष सुरक्षा प्रावधानों की मांग की। बाद में वायसराय लार्ड मिंटो की सहायता से उसने अलग-अलग चुनाव मंडलों की मांग उठाई और उसे मनवा भी लिया। इस तरह जब राष्ट्रीय कांग्रेस साम्राज्यवाद-विरोधी आर्थिक और राजनीतिक प्रश्न उठा रही थी तब मुस्लिम लीग और प्रतिक्रियावादी नेता यह प्रचार कर रहे थे कि मुसलमानों के हित हिंदुओं के हित से अलग हैं। मुस्लिम लीग की राजनीतिक गतिविधियां विदेशी शासन के खिलाफ नहीं बल्कि हिंदुओं और राष्ट्रीय कांग्रेस के खिलाफ थीं। इसके बाद लीग लगातार कांग्रेस की हर राष्ट्रवादी और लोकतांत्रिक मांग का विरोध करती रही। इस तरह वह अंग्रेजों के हाथों में कठपुतली बनी रही जो कहते रहे कि वे मुसलमानों के 'विशेष हितों' की सुरक्षा करेंगे। लीग जल्द ही उन प्रमुख अस्त्रों में से एक बन गई जिसकी सहायता से अंग्रेज़ उभरते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन से निबटने तथा मुस्लिम शिक्षित वर्ग को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने से रोकने की आशा करते थे।

मुस्लिम लीग की उपयोगिता बढ़ाने के लिए जनता से संपर्क करने तथा उनका नेतृत्व संभालने में भी अंग्रेजों ने उसे प्रोत्साहित किया। यह सही है कि उस समय राष्ट्रवादी आंदोलन पर भी शिक्षित नगर-वासियों का वर्चस्व था, मगर उसका साम्राज्यवाद विरोधी अमीर-गरीब, हिंदू-मुसलमान, सभी भारतीयों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था। दूसरी ओर, मुस्लिम लीग और उसके उच्चवर्गीय नेताओं के हितों की मुस्लिम जनता के हितों से बहुत कम समानता थी और यह मुस्लिम जनता भी हिंदू जनता की ही तरह विदेशी साम्राज्यवाद से पीड़ित थी।

लीग की यह बुनियादी कमजोरी देशभक्त मुसलमानों पर धीरे-धीरे स्पष्ट होती गई। शिक्षित मुसलमान युवक खास तौर पर उग्र राष्ट्रवादी विचारों से आकर्षित थे। इसी समय मौलाना मुहम्मद अली, हकीम अजमल खान, हसन इमाम, मौलाना जफर अली खान, और मजहरुल-हक के नेतृत्व में उग्र राष्ट्रवादी अहरार आंदोलन की स्थापना हुई। ये युवक अलीगढ़ संप्रदाय तथा बड़े नवाबों और जमींदारों की वफादारी की राजनीति को नापसंद करते थे। स्वशासन के आधुनिक विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने उग्र राष्ट्रवादी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के पक्ष में प्रचार किया।

ऐसी ही राष्ट्रवादी भावनाएं पारंपरिक मुसलमान उल्माओं के एक भाग में भी उभर रही थीं। इनका नेतृत्व मदरसा देवबंद करता था। इन विद्वानों में सबसे प्रमुख थे मौलाना अबुल कलाम आजाद जिन्होंने अपने समाचारपत्र 'अल-हिलाल' में बुद्धिवादी और राष्ट्रीय
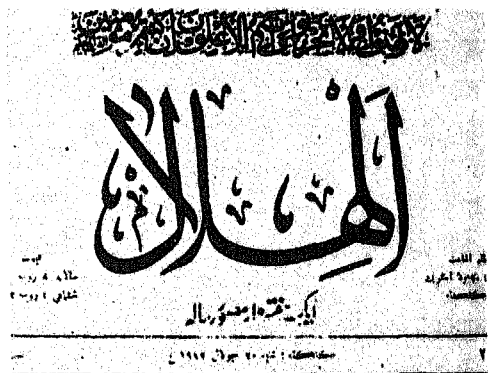
अल हिलाल का मुख पृष्ठ

विचारों का प्रचार किया। इस पत्र की स्थापना उन्होंने 1912 में की थी, जब वे केवल 24 वर्ष के थे। मौलाना मुहम्मद अली, आजाद और दूसरे युवकों ने साहस और निर्भय का संदेश दिया और कहा कि इस्लाम और राष्ट्रवाद में कोई विरोध नहीं है।

वर्ष 1911 में तुर्की की उस्मानिया सल्तनत और इटली के बीच लड़ाई छिड़ गई, और 1912-13 में तुर्की का बल्कान के देशों से युद्ध हुआ। उस समय तुर्की का शासक स्वयं को खलीफा यानी तमाम मुसलमानों का धर्मगुरू भी कहता था। इसके अलावा, मुसलमानों के लगभग सभी धर्म-स्थान तुर्की के साम्राज्य में स्थित थे। भारत में तुर्की के प्रति सहानुभूति की लहर दौड़ गई। डा. एम.ए अंसारी के नेतृत्व में तुर्की की सहायता के लिए एक मेडिकल मिशन भेजा गया। चूंकि बल्कान युद्ध के दौरान और उसके बाद भी ब्रिटेन की नीति तुर्की के प्रति सहानुभूतिपूर्ण न थी, इसलिए तुर्की समर्थक और खलीफा-समर्थक, यानी खिलाफत की भावनाएं साथ ही साम्राज्यवाद-विरोधी भी हो गई। वास्तव में अनेक वर्षों तक, अर्थात् 1912 से 1924 तक मुस्लिम लीगी राष्ट्रवादी युवकों के सामने पूरी तरह दबे रहे।

दुर्भाग्य से बुद्धिजीवी विचारों वाले आजाद जैसे कुछेक लोगों को छोड़कर अधिकांश उग्र राष्ट्रवादी मुस्लिम युवकों ने राजनीति के प्रति आधुनिक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को भी पूरी तरह स्वीकार नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि जिस प्रश्न को सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उन्होंने उठाया वह राजनीतिक स्वाधीनता का नहीं, बल्कि धर्मस्थानों और तुर्क साम्राज्य की रक्षा का प्रश्न था। साम्राज्यवाद के आर्थिक और राजनीतिक दुष्परिणामों को समझने और उनका विरोध करने के बजाय वे साम्राज्यवाद से इस बात पर लड़ रहे थे कि वह खलीफा और उनके धर्म स्थानों के लिए एक खतरा था। तुर्की के प्रति उनकी सहानुभूति का आधार तक भी धार्मिक था। उनकी राजनीतिक अपील धार्मिक भावनाओं को संबोधित थी। इसके अलावा जिन नायकों, कथाओं और सांस्कृतिक परंपराओं का सहारा लिया वे प्राचीन या मध्यकालीन भारतीय इतिहास की न थीं बल्कि पश्चिम एशिया के इतिहास से ली गई थीं। यह सही है कि इस दृष्टिकोण का भारतीय राष्ट्रवाद से तत्काल कोई टकराव नहीं हुआ। बल्कि उसने अपने समर्थकों को साम्राज्यवाद-विरोधी ही बनाया और शिक्षित मुसलमानों में राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति को बल पहुंचाया। लेकिन कालांतर में यह दृष्टिकोण भी हानिकारक सिद्ध हुआ क्योंकि इसने राजनीतिक प्रश्नों को धार्मिक दृष्टिकोण से देखने की आदत को मजबूत बनाया। खैर कुछ भी हो, इस तरह की राजनीतिक गतिविधि मुस्लिम जनता में आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों पर एक आधुनिक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के विकास में सहायक नहीं हुई।

इसी के साथ हिंदू सांप्रदायिकता का भी जन्म हो रहा था और हिंदू-सांप्रदायिकता विचार फैल रहे थे। अनेक हिंदू लेखकों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने मुस्लिम सांप्रदायिकता और मुस्लिम लीग के विचारों और कार्यक्रमों को ही दोहराया। वर्ष 1870 के बाद से ही हिंदू जमींदारों, सूदखोरों और मध्यवर्गीय पेशेवर लोगों ने मुस्लिम-विरोधी भावनाएं भड़काना आरंभ कर दिया था। भारतीय इतिहास की औपनिवेशिक समझ को पूरी तरह अपनाकर ये लोग मध्य काल में 'निरंकुश' मुस्लिम शासन की और 'मुसलमानों के उत्पीड़न' से हिंदुओं को 'बचाने' के संबंध में अंग्रेजों की 'मुक्तिदायी' भूमिका की बातें करते थे और उसके बारे में लिखते थे। संयुक्त प्रांत और बिहार में उन्होंने सही तौर पर हिंदी का सवाल उठाया मगर उसे एक सांप्रदायिक रंग दे दिया, और इस अनैतिहासिक धारणा का प्रचार किया कि उर्दू मुसलमानों की तथा हिंदी हिंदुओं की भाषा है। वर्ष 1890 के तत्काल बाद के वर्षों में पूरे भारत में गौहत्या-विरोधी प्रचार चलाया गया। यह अभियान अंग्रेजों के नहीं बल्कि मुसलमानों के खिलाफ था। उदाहरण के

लिए, ब्रिटिश फौजी छावनियों को बड़े पैमाने पर गौहत्या करने के लिए खुला छोड़ दिया गया।

वर्ष 1909 में पंजाब हिंदू सभा की स्थापना हुई। इसके नेताओं ने राष्ट्रीय कांग्रेस पर इस बात के लिए चोटें कीं कि वे सभी भारतीयों को एक राष्ट के रूप में एकजुट करना चाहते हैं। उन्होंने कांग्रेस की साम्राज्यवाद-विरोधी राजनीति का विरोध किया। इसके बजाए, उन्होंने कहा कि मुसलमानों के खिलाफ संघर्ष में हिंदू विदेशी सरकार को खुश रखें। इसके एक नेता लालचंद ने घोषणा की कि हिंदू स्वयं को "पहले हिंदू और फिर भारतीय" मानें। अप्रैल 1915 में कासिम बाजार के महाराजा की अध्यक्षता में अखिल भारतीय हिंदू महासभा का पहला अधिवेशन हुआ। पर वर्षों तक यह कुछ कमजोर संगठन ही बना रहा। इसका एक कारण यह था कि आधुनिक धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियों और मध्य वर्ग का हिंदुओं में ज्यादा असर था। दूसरी ओर, मुसलमानों पर प्रमुख प्रभाव अभी भी जमींदारों, नौकरशाहों और पारंपरिक धार्मिक मुल्लाओं का ही था। इसके अलावा औपनिवेशिक सरकार हिंदू संप्रदायवाद को कम सहायता और समर्थन देती थी क्योंकि वह मुस्लिम संप्रदायवाद पर पूरी तरह निर्भर थी और एक ही साथ दोनों तरह के संप्रदायवाद को आसानी से खुश नहीं रख सकती थी।.

राष्ट्रवादी और प्रथम विश्वयुद्ध

जून 1914 में पहला विश्वयुद्ध फूट पड़ा। इसमें एक ओर ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, रूस और जापान थे, और अमरीका भी बाद में उनसे आ मिला, और दूसरी ओर जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और तुर्की थे। युद्ध के ये वर्ष भारत में राष्ट्रवाद के परिपक्व होने के दिन थे।

आरंभ में लोकमान्य तिलक समेत, जो जून 1914 में जेल से छूटे थे, भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने सरकार के युद्ध प्रयासों में सहयोग का निश्चय किया। यह निश्चय इस गलत धारणा पर आधारित था कि कृतज्ञ होकर ब्रिटेन भारत की वफादारी का पुरस्कार देगा और भारत स्वशासन की ओर एक लंबी छलांग लगाने में समर्थ होगा। उन्होंने इस बात को पूरी तरह नहीं समझा कि प्रथम विश्वयुद्ध की विभिन्न शक्तियां अपने उपनिवेशों को सुरक्षित रखने के लिए ही लड़ रही थीं।

होम रूल लीग : साथ ही, अनेक भारतीय नेताओं ने स्पष्ट रूप से समझा कि सरकार तब तक कुछ वास्तविक अधिकार नहीं देगी जब तक कि उसके ऊपर जनता का दबाव न डाला जाए। इसलिए एक वास्तविक राजनीतिक जन-आंदोलन आवश्यक था। कुछ और कारण भी राष्ट्रवादी आंदोलन को इसी दिशा में धकेल रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध ने, जिसमें यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियां आपस में लड़ रही थीं, एशियाई जनता के मुकाबले यूरोप के राष्ट्रों के नस्ली श्रेष्ठता की भ्रामक धारणा को नष्ट कर दिया। इसके अलावा युद्ध के कारण भारत के निर्धन वर्गों की बदहाली और भयानक हुई। उनके लिए युद्ध का मतलब था करों का भारी बोझ और रोजमर्रा की जरूरतों का लगातार महंगा होना। ये वर्ग विरोध किसी भी जुझारू आंदोलन में शामिल होने के लिए तैयार थे। परिणास्वरूप, युद्ध के ये वर्ष तीखे राष्ट्रवादी राजनीतिक आंदोलन के वर्ष थे।

लेकिन ऐसा कोई जन-आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में नहीं चल सकता था, क्योंकि वह नरमपंथियों के नेतृत्व में एक निष्क्रिय और जड़ संगठन बन चुकी थी और जनता के बीच उसका कोई राजनीतिक कार्य नहीं रह गया था। इसलिए 1915-16 में दो होम रूल लीगों की स्थापना हुई। इनमें एक के नेता लोकमान्य तिलक थे, तो दूसरा भारतीय संस्कृति और भारतीय जनता की अंग्रेज़ प्रशंसिका श्रीमती एनी बेसेंट और एस. सुब्रामन्य अय्यर के नेतृत्व में था। इन दो होम रूल लीगों ने आपसी सहयोग से पूरे देश में इस मांग को प्रचारित किया कि युद्ध के बाद भारत को होम रूल या स्वशासन दिया जाए। यही वह आंदोलन था जिसके

दौरान तिलक ने अपना प्रसिद्ध नारा दिया था कि "होम रूल मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा।" इन दो लीगों ने बहुत तेज़ी से प्रगति की और होम रूल की मांग पूरे देश में गूंजने लगी। कांग्रेस की निष्क्रियता से दुखी अनेक नरमपंथी राष्ट्रवादी भी होम रूल आंदोलन में शामिल हो गए। इन होम रूल लीगों पर जल्द ही सरकार का प्रकोप टूटा। जून 1917 में एनी बेसेंट को गिरफ्तार कर लिया गया। पर जनता के विरोध के कारण सरकार ने मजबूर होकर सितंबर 1917 में उन्हें छोड़ दिया।

युद्ध के इस काल में क्रांतिकारी आंदोलन का भी विकास हुआ। आतंकवादी संगठन बंगाल और महाराष्ट्र से लेकर पूरे उत्तरी भारत तक फैल गए। इसके अलावा अनेक भारतीय ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र विद्रोह की योजना बनाने लगे। अमरीका और कनाडा में बसे भारतीय क्रांतिकारियों ने 1913 में गदर पार्टी की स्थापना की। इस पार्टी के अधिकांश सदस्य पंजाब के सिख किसान और भूतपूर्व सैनिक थे जो वहां रोजी-रोटी की तलाश में गए थे और जिनको वहां खुले नस्ली और आर्थिक भेदभाव का सामना करना पड़ता था। लाला हरदयाल, मुहम्मद बरकतुल्लाह,

लाला हरदयाल

ऐनी बेसेंट

भगवान सिंह, रामचंद्र और सोहनसिंह भख्ना गदर पार्टी के कुछ प्रमुख नेताओं में से थे। पार्टी का आधार उसका साप्ताहिक पत्र 'गदर' था जिसके सिरे पर "अंग्रेजी राज का दुश्मन" शब्द लिखे होते थे। पत्र 'गदर' ने एक विज्ञापन छापा : "भारत मे विद्रोह फैलाने के लिए बहादुर सिपाहियों की आवश्यकता है। तनख्वाह—मौत; इनाम—शहादत; पेंशन—आजादी; लड़ाई का मैदान—भारत है।" इस पार्टी की विचारधारा बहुत ही धर्मनिरपेक्ष थी। सोहनसिंह भखना, जो बाद में पंजाब के एक प्रमुख किसान नेता बने, के शब्दों में, "हम सिख या पंजाबी नहीं थे। हमारा धर्म देशभक्ति था"। मेक्सिको, जापान, चीन, फिलीपीन, मलाया, सिंगापुर, थाईलैंड, हिंदचीन, तथा पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका जैसे दूसरे देशों में भी पार्टी के सक्रिय सदस्य मौजूद थे।

गदर पार्टी ने भारत में अंग्रेजों से लड़ने के लिए

एक क्रांतिकारी युद्ध चलाने का संकल्प किया था। वर्ष 1914 में जैसे ही प्रथम विश्वयुद्ध फूटा, गदरपंथी हथियार और धन भारत भेजने लगे कि यहां के सैनिकों और स्थानीय क्रांतिकारियों की सहायता से विद्रोह आरंभ किया जाए। कई हजार लोगों ने भारत वापस जाने की इच्छा प्रगट की। उनके खर्च के लिए कई लाख डालर की रकम जमा हो गई। कइयों ने अपनी जीवन भर की बचाई रकम दे दी या जमीन-जायदाद बेच दी। गदरपंथियों ने सुदूर-पूर्व, दक्षिण-पूर्वी एशिया और पूरे भारत में सैनिकों से संपर्क किया और अनेकों रेजीमेंटों को विद्रोह के लिए तैयार कर लिया। अंततः पंजाब में सशस्त्र विद्रोह के लिए 21 फरवरी, 1915 की तारीख निश्चित हुई। दुर्भाग्य से अधिकारियों को इन योजनाओं का पता चल गया और उन्होंने तत्काल कारवाई की। विद्रोही रेजीमेंटों को तोड़ दिया गया और उनके नेताओं को जेल या फांसी की सजाएं दी गईं। उदाहरण के लिए, 23वें घुड़सवार दस्ते के 12 लोगों को फांसी दी गई। पंजाब में गदर पार्टी के नेता और सदस्य बड़े पैमाने पर गिरफ्तार कर लिए गए। उन पर मुकद्दमा चलाया गया जिसमें 42 को फांसी हुई, 114 को उम्र कैद की सजा दी गई और 93 को लंबी-लंबी जेल-सजाएं दी गईं। उनमें से अनेक ने रिहा होने के बाद पंजाब में किरती (मजदूर) और कम्युनिस्ट आंदोलनों की स्थापना की। कुछ प्रमुख गदरी नेता इस प्रकार थेः बाबा गुरमुख सिंह, करतार सिंह सराभा, सोहन सिंह भखना, रहमत अली शाह, भाई परमानंद और मौलवी बरकतुल्लाह।

गदर पार्टी से प्रेरित होकर सिंगापुर में पांचवीं लाइट इन्फैंट्री के 700 लोगों ने जमादार चिश्ती खान और सूबेदार डुंडे खान के नेतृत्व में विद्रोह किया। एक तीखी लड़ाई के बाद वे कुचल दिए गए। इस लड़ाई में अनेक लोग मारे गए। दूसरे 37 लोगों को सार्वजनिक रूप से फांसी दी गई 41 को उम्र कैद की सजा मिली।

भारत में और बाहर दूसरे क्रांतिकारी भी सक्रिय थे
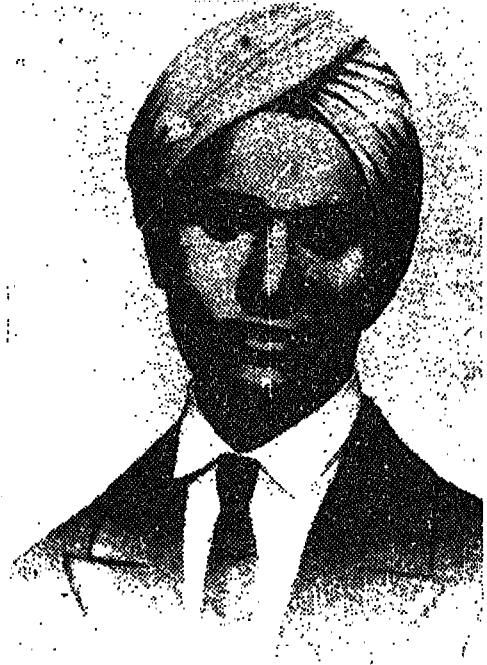
करतार सिंह सराभा

1915 में एक असफल क्रांतिकारी प्रयास में जतीन मुखर्जी, जिन्हें 'बाघा जतीन' कहा जाता था, बालासोर में पुलिस से लड़ते हुए मारे गए। रासबिहारी बोस, राजा महेंद्रप्रताप, लाला हरदयाल, अब्दुर्रहीम, मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी, चंपक रमन पिल्लै, सरदार सिंह राणा और मादाम भीकाजी कामा कुछ ऐसे प्रमुख भारतीय थे जिन्होंने भारत से बाहर क्रांतिकारी गतिविधियां चलाईं; क्रांतिकारी प्रचार किया, और समाजवादियों तथा दूसरे साम्राज्यवाद-विरोधियों का समर्थन भारत की स्वाधीनता के लिए प्राप्त किया।

कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन (1916) : राष्ट्रवादियों को जल्द ही पता चल गया कि उनकी फूट से उनके उद्देश्य की हानि हो रही थी और इसलिए उन्हें सरकार के विरोध में एकजुट होना चाहिए। देश में बढ़ रही

राष्ट्रवादी भावना और राष्ट्रीय एकता की आकांक्षा के कारण 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में ऐतिहासिक महत्त्व की दो घटनाएं हुईं। पहला यह कि कांग्रेस के दोनों धड़े फिर से एक हो गए। पुराने विवादों का अब कोई अर्थ नहीं रह गया था और फूट के कारण कांग्रेस राजनीतिक निष्क्रियता का शिकार हो गई थी। 1914 में जेल से रिहा होने के बाद तिलक ने फौरन बदली हुई स्थिति को समझा और कांग्रेसियों के दोनों धड़ों को एकजुट करने में लग गए। नरमपंथी राष्ट्रवादियों को मनाने के लिए उन्होंने यह घोषणा की : "मैं हमेशा-हमेशा के लिए यह बात कह दूं कि जैसा कि आयरलैंड में आयरिश होम रूलवादी कर रहे हैं, हम भी भारत में प्रशासन-प्रणाली में सुधार के प्रयास कर रहे हैं, न कि सरकार को उखाड़ फेंकने के।" मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि देश के विभिन्न भागों में हिंसा के जो काम किए गए हैं वे न केवल यह कि मुझे अरुचिकर हैं बल्कि मेरी राय में उन्होंने दुर्भाग्य से हमारी राजनीतिक प्रगति की गति को काफी हद तक धीमा किया है। दूसरी तरफ, राष्ट्रवाद की उभरती लहर ने पुराने नेताओं को भी मजबूर किया कि वे लोकमान्य तिलक और अन्य उग्र राष्ट्रवादियों के कांग्रेस में दोबारा आने का स्वागत करें। कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन 1907 के बाद एकता का पहला अधिवेशन था। इसने स्वशासन के लिए और भी सांवैधानिक सुधारों की मांग की।

दूसरे, लखनऊ में अपने पुराने मतभेद भुलाकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने सरकार के सामने साझी राजनीतिक मांगें रखीं। युद्ध और दो होमरूल लीगों के कारण जब देश में एक नई भावना पैदा हो रही थी और कांग्रेस का चरित्र बदल रहा था, तब मुस्लिम लीग में भी धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहे थे। हमने पहले ही देखा है कि शिक्षित मुसलमान युवक उग्र राष्ट्रवादी राजनीति को अपना रहा था। युद्ध के कारण इस दिशा में और भी विकास हुआ। फलस्वरूप 1914 में सरकार ने अबुल कलाम आजाद के पत्र 'अल-हिलाल' और मौलाना मुहम्मद अली के पत्र 'कामरेड' को बंद कर दिया। उसने अली भाइयों (मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली) हसरत मोहानी और अबुल कलाम आजाद को नजरबंद कर लिया। कम से कम अंशतः ही सही युवकों की इस राजनीतिक उग्रता की अभिव्यक्ति लीग में भी हुई। धीरे-धीरे उसने अलीगढ़ संप्रदाय के सीमित राजनीतिक दृष्टिकोण के खोल से बाहर निकलना आरंभ किया और कांग्रेस की नीतियों के करीब आने लगी।

कांग्रेस और लीग की यह एकता कांग्रेस-लीग समझौते पर हस्ताक्षर के साथ स्थापित हुई; इसे आम तौर पर लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। इन दोनों को करीब लाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका लोकमान्य तिलक और मुहम्मद अली जिन्ना की रही क्योंकि दोनों मानते थे कि केवल हिंदू-मुस्लिम एकता के द्वारा ही भारत को स्वशासन प्राप्त हो सकता है। तब तिलक ने घोषणा की थी : "महानुभावों, कुछ लोगों ने यह बात कही है कि हम हिंदुओं ने अपने मुसलमान भाइयों को बहुत सी छूटें दी हैं। मुझे विश्वास है कि जब मैं यह कहता हूं कि हम बहुत कुछ दे ही नहीं सकते तो मैं पूरे भारत के हिंदू समुदाय की भावना का प्रतिनिधित्व कर रहा हूं। अगर स्वशासन के अधिकार केवल मुस्लिम समुदाय को दिए जाएं तो भी मुझे परवाह नहीं होगी .... अगर ये अधिकार हिंदू जनता के निचले और सबसे निचले वर्गों को दिए जाए तो भी मुझे परवाह नहीं होगी। जब हम एक तीसरे दल से लड़ रहे हों तो यह आवश्यक है कि हम इस मंच पर नस्ल से एकजुट, धर्म से एकजुट, सभी तरह के राजनीतिक विश्वासों से एकजुट होकर खड़े हों।" कांग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों ने अपने अधिवेशन में एक ही प्रस्ताव पारित किए, अलग-अलग चुनाव मंडलों के आधार पर राजनीतिक सुधारों की एक साझी योजना सामने रखी और मांग की कि ब्रिटिश सरकार यथाशीघ्र भारत को स्वशासन देने की घोषणा करे। लखनऊ समझौता हिन्दू-मुस्लिम एकता के विकास में एक

महत्त्वपूर्ण कदम था। दुर्भाग्य से इसने हिंदू और मुस्लिम जनता को शामिल नहीं किया और अलग-अलग चुनाव मंडलों के घातक सिद्धांत को स्वीकार कर लिया। यह इस धारणा पर आधारित था कि शिक्षित हिंदुओं और मुसलमानों को दो अलग-अलग राजनीतिक इकाइयां मानकर फिर उनको साथ लाया जाए। दूसरे शब्दों में, उनके राजनीतिक दृष्टिकोण को धर्मनिरपेक्ष बनाने का प्रयास नहीं किया गया जिससे वे समझ सकें कि राजनीति में हिंदू या मुसलमान के रूप में उनके अलग-अलग हित नहीं हैं। इसलिए लखनऊ समझौते के बाद भी भविष्य में भारतीय राजनीति में संप्रदायवाद के फिर से सर उठाने की गुंजाइश बनी रह गई।

फिर भी लखनऊ की घटनाओं का अत्यधिक तात्कालिक प्रभाव पड़ा। नरमपंथी और उग्र राष्ट्रवादियों के बीच तथा राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एकता स्थापित होने से देश बेहद राजनीतिक उत्साह से भर उठा। यहां तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी राष्ट्रवादियों को खुश करना अब जरूरी समझा। अभी तक वह राष्ट्रवादी आंदोलन को कुचलने के लिए भयानक दमन का सहारा लेती आ रही थी। उग्र राष्ट्रवादियों और क्रांतिकारियों को बड़ी संख्या में जेलों में डाला गया था या बदनाम भारत रक्षा कानून और ऐसे ही दूसरे कानूनों के अंतर्गत नजरबंद किया गया था। अब सरकार ने राष्ट्रवादी जनमत को संतुष्ट करने का फैसला किया और 20 अगस्त, 1917 को उसने घोषणा की कि "ब्रिटिश साम्राज्य के एक अभिन्न अंग के रूप में भारत में एक उत्तरदायी सरकार की अधिकाधिक स्थापना की दृष्टि से स्वशासी संस्थाओं का क्रमिक विकास करना" उसकी नीति थी। फिर जुलाई 1918 में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा की गई। पर भारतीय राष्ट्रवाद इतने से ही संतुष्ट न हो सका। वास्तव में अब राष्ट्रीय आंदोलन इस स्थिति में था कि शीघ्र ही अपने तीसरे और अंतिम चरण में प्रवेश कर सके। यह चरण गांधीवादी युग के जनसंघर्षों का चरण था।

अभ्यास

1. निम्नांकित पदों का अर्थ स्पष्ट कीजिए:
   स्वराज्य, स्वदेशी, स्वतंत्र (डोमिनियन) उपनिवेश, सांप्रदायिकता, क्रांतिकारी उग्रवाद, पृथक निर्वाचक मण्डल, खिलाफत, जिम्मेदार सरकार।
2. उन कारकों का विवेचन कीजिए जिनकी वजह से बीसवीं सदी के शुरु में उग्रवादी राष्ट्रवाद अथवा चरमपंथी राष्ट्रवाद का विकास हुआ।
3. उदारपंथी राष्ट्रवादी (नरमदलीय) तथा चरमपंथी (गरमदलीय) राष्ट्रवादियों में क्या प्रमुख भेद थे? अपने राजनीतिक उद्देश्य को प्राप्त करने में गरमदल के लोगों को कहां तक सफलता मिली?
4. बंगाल को विभाजित करने के पीछे ब्रिटिश लोगों के क्या उद्देश्य थे? राष्ट्रीय आंदोलन पर इसका क्या असर पड़ा? स्वदेशी तथा बहिष्कार आंदोलनों के इतिहास का पता लगाइए।
5. सूरत अधिवेशन के समय कांग्रेस क्यों विभाजित हुई? इसके कारणों का विवेचन कीजिए।
6. क्रांतिकारी उग्रवाद के उद्भव और विकास के कारणों का विवेचन कीजिए। भारत और विदेशों में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान और उसके पहले क्रांतिकारियों की गतिविधियों का वर्णन कीजिए। राष्ट्रीय आंदोलन में क्रांतिकारियों की भूमिका का आकलन कीजिए।

7. उन कारकों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए जिनके कारण बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में भारत में सांप्रदायिकता का विकास हुआ। इस संबंध में अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति, उच्च वर्गीय और मध्य वर्गीय मुसलमानों के आर्थिक पिछड़ेपन, भारतीय इतिहास के सांप्रदायिक दृष्टिकोण के व्यापक प्रचार, उग्रवादी विचारों के कुछेक पक्षों और देश के आर्थिक पिछड़ेपन की भूमिका का विवेचन कीजिए।
8. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनके कारण मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। आरंभिक वर्षों में इसकी भूमिका क्या थी, उसका वर्णन कीजिए।
9. मुसलमानों में उग्र राष्ट्रवाद के विकास का विवेचन कीजिए।
10. हिंदू सांप्रदायिकता के उद्भव तथा विकास पर प्रकाश डालिए।
11. 1909 के मार्ले-मिण्टो सुधारों की मुख्य विशेषताएं क्या थीं? मार्ले-मिण्टो सुधारों के जरिए लागू किए गए अलग निर्वाचक मण्डलों के क्या प्रभाव पड़े?
12. लोकमान्य तिलक और एनी बेसेंट द्वारा प्रारंभ किए गए होम रुल लीग का राष्ट्रवादी आंदोलन में क्या योगदान था? इसका विवेचन कीजिए।
13. लखनऊ समझौते की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इसके महत्त्व का विवेचन कीजिए।
14. भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के इतिहास में उग्र राष्ट्रवाद के आविर्भाव ने किस प्रकार एक नए चरण की शुरुआत की?
15. सामूहिक परियोजना के अंग के रुप में निम्नांकित से संबंधित सामग्री संकलित कीजिए। क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों के विचार और गतिविधियां तथा देश के विभिन्न भागों में उनके प्रभाव, भारत के भीतर क्रांतिकारी गतिविधियां और भारत के बाहर क्रांतिकारी नेता और उनकी गतिविधियां और, उदाहरण स्वरूप गदर पार्टी, तथा राष्ट्रवादी आंदोलन के महान नेताओं के कार्य तथा उनका जीवन जैसे लोकमान्य तिलक।

अध्याय : 12

स्वराज के लिए संघर्ष–I (1919-1927)

राष्ट्रीय आंदोलन का तीसरा और अंतिम चरण 1919 में शुरू हुआ जब विशाल जन-आंदोलन का युग आरंभ हुआ। इस काल में भारतीय जनता ने संभवतः विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन-संघर्ष लड़े और भारत की राष्ट्रीय क्रांति विजयी हुई।

जैसा कि हमने पीछे के अध्याय में देखा, प्रथम महायुद्ध (1914-18) के दौरान एक नई राजनीतिक स्थिति विकसित हो रही थी। राष्ट्रवाद की ताकत बढ़ी थी। राष्ट्रवादियों को युद्ध के बाद बड़े राजनीतिक लाभ मिलने की आशाएं थीं, और ये आशाएं पूरी न हो पाने पर वे लड़ने को भी तैयार थे। महायुद्ध के बाद के वर्षों में आर्थिक स्थिति और बिगड़ी। पहले तो कीमतें बढ़ीं और फिर आर्थिक गतिविधियां मंद होने लगीं। युद्ध के दौरान विदेशी आयात के रुक जाने के कारण भारतीय उद्योग फले-फूले थे, मगर अब उनको घाटे होने लगे और वे बंद होने लगे। इसके अलावा, भारत में अब विदेशी पूंजी बड़े पैमाने पर लगाई जाने लगी। भारतीय उद्योगपति चाहते थे कि सरकार आयातों पर भारी कस्टम ड्यूटी लगाकर तथा मदद देकर उनके उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करे। अब उन्हें भी महसूस होने लगा कि केवल एक मजबूत राष्ट्रवादी आंदोलन तथा एक स्वाधीन भारतीय सरकार के द्वारा ही ये लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं। बेरोजगारी तथा महंगाई की मार से पीड़ित मजदूर तथा दस्तकार भी राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय हो उठे। अफ्रीका, एशिया और यूरोप में कुछ जीतें हासिल करके देश लौटे भारतीय सैनिकों ने भी अपने आत्मविश्वास तथा दुनिया के बारे में अपना ज्ञान ग्रामीण क्षेत्रों में फैलाया। बढ़ती गरीबी तथा भारी करों के बोझ से कराहते किसान भी नेतृत्व पाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। नगरों के शिक्षित भारतीय भी बढ़ती बेरोजगारी से त्रस्त थे। इस तरह भारतीय समाज के सभी वर्ग आर्थिक कठिनाइयां महसूस कर रहे थे और इन कठिनाइयों को सूखों, महंगाई और महामारियों ने और बढ़ा दिया था।

अंतर्राष्ट्रीय स्थिति भी राष्ट्रवाद के पुनरोदय के अनुकूल थी। प्रथम महायुद्ध ने पूरे एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रवाद को बहुत बल पहुंचाया था। अपने युद्ध-प्रयासों में जन-समर्थन पाने के लिए मित्र राष्ट्रों अर्थात् ब्रिटेन, अमरीका, फ्रांस, इटली और जापान ने दुनिया के सभी राष्ट्रों के लिए जनतंत्र तथा राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का एक नया युग आरंभ करने का वचन दिया था। लेकिन युद्ध के बाद उन्होंने अपना उपनिवेशवाद खत्म करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। उल्टे, पेरिस शांति सम्मेलन तथा दूसरी सभी संधियों में युद्धकालीन वचन भुला बल्कि तोड़ दिए गए। अफ्रीका, पश्चिमी एशिया तथा पूर्वी एशिया में युद्ध में हारने वाली शक्तियों, अर्थात् जर्मनी और तुर्की के सारे उपनिवेशों को विजेताओं ने आपस

में बांट लिया। इससे एशिया और अफ्रीका में हर जगह जुझारू और भ्रममुक्त राष्ट्रवाद उठ खड़ा होने लगा। भारत में ब्रिटिश सरकार ने सांविधानिक सुधारों के कुछ प्रयास बेदिली से किए, मगर साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि उसका राजनीतिक सत्ता छोड़ने या उसमें भारतीयों को साझेदार बनाने का कोई इरादा नहीं था।

महायुद्ध का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह भी हुआ कि गोरों की प्रतिष्ठा घटी। साम्राज्यवाद के आरंभ से ही यूरोपीय शक्तियों ने अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए जातीय-सांस्कृतिक श्रेष्ठता का स्वांग रचा था। लेकिन युद्ध के दौरान दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ धुआंधार प्रचार किया तथा अपने विरोधियों द्वारा उपनिवेशों में बर्बर और असभ्य व्यवहार का पर्दाफाश किया। स्वाभाविक तौर पर उपनिवेशों की जनता ने दोनों पक्षों पर विश्वास किया और गोरों की श्रेष्ठता का भय उनके मन से उठने लगा।

रूसी क्रांति के प्रभाव से भी राष्ट्रीय आंदोलनों को बहुत बल मिला। रूस में ब्लादिमीर इल्यिच लेनिन के नेतृत्व में वहां की बोल्शेविक (कम्युनिस्ट) पार्टी ने जार का 7 नवम्बर, 1917 में तख्ता पलट दिया और वहां दुनिया के पहले समाजवादी राज्य, सोवियत संघ की स्थापना की घोषणा की। चीन और एशिया के दूसरे भागों में अपना साम्राज्यवादी अधिकारों को एकतरफा तौर पर छोड़कर, एशिया में ज़ार के पुराने उपनिवेशों को आत्मनिर्णय का अधिकार देकर, और अपनी सीमा में रहने वाली उन सभी एशियाई जातीयताओं को, जो पुराने शासन के अधीन उसके दमन का शिकार रही थीं, समान अधिकार देकर, नई सोवियत सत्ता ने उपनिवेशों की जनता में बिजली की लहर दौड़ा दी। रूस की क्रांति ने उपनिवेशों की जनता में एक नई जान फूंकी। इसने उपनिवेशों की जनता को यह महान पाठ पढ़ाया कि साधारण जनता में बेपनाह शक्ति निहित होती है। अगर निहत्थे किसान और मजदूर अपने यहां के अत्याचारियों के खिलाफ एक क्रांति कर सकते हैं तो गुलाम राष्ट्रों की जनता भी अपनी आजादी के लिए लड़ सकती है, बशर्ते कि वह भी उतनी ही एकताबद्ध, संगठित तथा आजादी के लिए लड़ने पर दृढ़ हो।

भारत का राष्ट्रवादी आंदोलन इस बात से भी प्रभावित हुआ कि एशिया और अफ्रीका के दूसरे भाग भी युद्ध के बाद राष्ट्रवादी आंदोलनों से आंदोलित हो रहे थे। भारत ही नहीं बल्कि आयरलैंड, तुर्की, मिस्र तथा उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया के दूसरे अरब देशों, ईरान, अफगानिस्तान, बर्मा, मलाया, इंडोनेशिया, हिंदचीन, फिलीपीन, चीन और कोरिया में भी राष्ट्रवाद की लहर आगे बढ़ी।

राष्ट्रवादी और सरकार विरोधी भावनाओं की उठती लहर से परिचित ब्रिटिश सरकार ने एक बार फिर गुड़ खिलाकर डंडे मारने की, अर्थात् कुछ छूट और दमन की नीति अपनाने का फैसला किया। इस नीति में गुड़ का काम मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों से लिया गया।

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार

ब्रिटिश सरकार के भारत मंत्री एडविन मांटेग्यू तथा वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने 1918 में संविधान-सुधारों की एक योजना सामने रखी जिनके आधार पर 1919 का भारत सरकार कानून बनाया गया। इस कानून में प्रांतीय विधायी परिषदों का आकार बढ़ा दिया गया तथा निश्चित किया गया कि उनके अधिकांश सदस्य चुनाव जीतकर आएंगे। दुहरी शासन प्रणाली के तहत प्रांतीय सरकारों को अधिक अधिकार दिए गए। इस प्रणाली में वित्त, कानून और व्यवस्था आदि कुछ विषय 'आरक्षित' घोषित करके गवर्नर के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखे गए तथा शिक्षा, जन-स्वास्थ्य तथा स्थानीय स्वशासन जैसे कुछ विषयों को हस्तांतरित घोषित करके उन्हें विधायिकाओं के सामने उत्तरदायी मंत्रियों के नियंत्रण में दे दिया गया। इसका अर्थ यह भी था कि जिन विभागों में काफी धन खर्च होता तो वे हस्तांतरित तो होंगे मगर उनमें भी वित्त पर पूरा नियंत्रण गवर्नर का होगा। इसके

अलावा, गवर्नर अपनी समझ से विशिष्ट किसी भी आधार पर मंत्रियों की आज्ञा को रद्द कर सकता था। केंद्र में दो सदनों की व्यवस्था थी। निचले सदन अर्थात् लेजिस्लेटिव असेंबली में कुल 144 सदस्यों में 41 सदस्य नामजद होते थे। ऊपरी सदन अर्थात् कौंसिल ऑफ स्टेट्स में 26 नामजद तथा 34 चुने हुए सदस्य होते थे। गवर्नर-जनरल और उसकी एक्जीक्यूटिव कौंसिल पर विधानमंडल का कोई नियंत्रण न था। दूसरी ओर केंद्र सरकार का प्रांतीय सरकारों पर अबाध नियंत्रण था। इसके अलावा वोट का अधिकार बहुत अधिक सीमित था। 1920 में निचले सदन के लिए कुल 9,09,874 तथा ऊपरी सदन के लिए 17,364 मतदाता थे।

मगर भारतीय राष्ट्रवादी इन मामूली छूटों की मांग से बहुत आगे बढ़ चुके थे। वे अब राजनीतिक सत्ता की छाया मात्र से संतुष्ट होने वाले नहीं थे। अगस्त 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंबई में एक विशेष सत्र बुलाया ताकि सुधार के प्रस्तावों पर विचार किया जा सके। इस अधिवेशन के अध्यक्ष हसन इमाम थे। इस सत्र ने इन प्रस्तावों को ''निराशाजनक और असंतोषजनक'' बतलाकर इनकी जगह प्रभावी स्वशासन की मांग रखी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में कांग्रेस के कुछ वयोवृद्ध नेता सरकार के प्रस्ताव को स्वीकार करने के पक्ष में थे। उन्होंने कांग्रेस छोड़कर इंडियन लिबरल एसोसिएशन की स्थापना की। ये लोग ''उदारवादी'' कहे गए तथा भारत की राजनीति में आगे चलकर उनकी बहुत नगण्य भूमिका रही।

रोलट कानून

भारतीयों को संतुष्ट करने के प्रयास करते समय भी भारत सरकार दमन के लिए तैयार थी। युद्ध के पूरे काल में राष्ट्रवादियों का दमन जारी रहा। क्रांतिकारियों को खोज-खोज कर फांसी पर लटकाया या जेलों में बंद किया जाता था। अबुल कलाम आजाद जैसे दूसरे अनेक राष्ट्रवादी भी सींखचों के पीछे बंद रखे गए थे। अब सरकार ने स्वयं को ऐसी भयानक शक्तियों से लैस करने का फैसला किया जो कानून के शासन के स्वीकृत सिद्धांतों के प्रतिकूल थीं, ताकि वह सरकारी सुधारों से संतुष्ट न होने वाले राष्ट्रवादियों को कुचल सके। मार्च 1919 में सरकार ने केंद्रीय विधान परिषद् के हर-एक भारतीय सदस्य द्वारा विरोध के बावजूद रोलट एक्ट बनाया। इस कानून में सरकार को अधिकार प्राप्त था कि वह किसी भी भारतीय पर अदालत में मुकदमा चलाए और दंड दिए बिना जेल में बंद कर सके। कैदी को अदालत में प्रत्यक्ष उपस्थित करने का जो कानून ब्रिटेन में नागरिक स्वाधीनताओं की बुनियाद था उसे भी निलंबित करने का अधिकार सरकार ने रोलट कानून से प्राप्त कर लिया।

महात्मा गांधी ने नेतृत्व संभाला

लोगों पर रोलट कानून बादल से बिजली की तरह गिरा। युद्ध के दौरान सरकार ने भारत की जनता से जनतंत्र का विस्तार करने का वादा किया था, मगर यह कानून तो एक बेरहम मज़ाक था। जैसे कि भूखे आदमी को भोजन की आशा हो मगर उसे कंकड़ परोसे गए हों। लोकतांत्रिक प्रगति तो नहीं हुई, मगर नागरिक स्वतंत्रताएं और भी कम कर दी गईं। देश में असंतोष फैल गया और इस कानून के खिलाफ एक शक्तिशाली आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इस आंदोलन के दौरान मोहनदास करमचंद गांधी नामक एक नए नेता ने राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर संभाल ली। इस नए नेता ने पुराने नेताओं की एक बुनियादी कमजोरी को खूब पहचाना। दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद से लड़ते हुए उन्होंने संघर्ष का एक नया रूप असहयोग और एक नई तकनीक सत्याग्रह का विकास किया था जिसे अब भारत में अंग्रेजों के खिलाफ आजमाया जा सकता था। इसके अलावा उन्हें भारतीय किसानों की समस्याओं तथा मानसिकता की बुनियादी समझ भी थी और उनके साथ हमदर्दी भी। इसलिए वे किसानों को आकर्षित करके राष्ट्रीय आंदोलन

गांधीजी—नंदलाल बोस द्वारा रचित लाइनो-कट

की मुख्य धारा में लाने में समर्थ रहे। इस तरह वे भारतीय जनता के सभी वर्गों को उभारकर और उनमें एकता कायम करके एक जुझारू राष्ट्रीय जन-आंदोलन खड़ा करने में समर्थ रहे।

गांधीजी और उनके विचार : मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म गुजरात के पोरबंदर नामक स्थान पर 2 अक्तूबर, 1869 को हुआ था। ब्रिटेन में कानून की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे वकालत करने के लिए दक्षिण अफ्रीका चले गए। न्याय की उच्च भावना से प्रेरित होकर उन्होंने उस नस्लवादी अन्याय, भेदभाव और हीनता के खिलाफ संघर्ष किया जिसका शिकार दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशों में भारतीयों को होना पड़ रहा था। भारत से दक्षिण अफ्रीका पहुंचे मजदूरों और व्यापारियों को मत देने का अधिकार नहीं था उन्हें पंजीकरण कराना तथा चुनाव-कर देना पड़ता था। उनको गंदी और भीड़ भरी उन बस्तियों में ही रहना होता था जो उनके लिए निर्धारित थीं। कुछ दक्षिण अफ्रीकी उपनिवेशों में एशियाई और अफ्रीकी लोगे रात के नौ बजे के बाद घर से बाहर नहीं निकल सकते थे और न ही सार्वजनिक फुटपाथों का प्रयोग कर सकते थे। गांधीजी इन स्थितियों के विरोध में चलने वाले संघर्ष के शीघ्र ही नेता बन गए और 1893-94 में वे दक्षिण अफ्रीका के नस्लवादी अधिकारियों के खिलाफ एक बहादुराना मगर असमान संघर्ष चला रहे थे। लगभग दो दशक लंबा यही वह संघर्ष था जिसके दौरान उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह नामक तकनीक का विकास किया। उनके अनुसार एक आदर्श सत्याग्रही सत्यप्रेमी और शांतिप्रेमी होता है, मगर वह जिस बात को गलत समझता है उसे स्वीकार करने से दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देता है। वह गलत काम करने वालों के खिलाफ संघर्ष करते हुए हंसकर कष्ट सहन करता है। यह संघर्ष उसके सत्यप्रेम का ही अंग होता है। लेकिन बुराई का विरोध करते हुए भी वह बुरे से प्रेम करता है। एक सच्चे सत्याग्रही को प्रकृति में घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होता। इसके अलावा वह एकदम निडर होता है। चाहे जो परिणाम हो, वह बुराई के सामने नहीं झुकता। गांधीजी की दृष्टि में अहिंसा कायरों और कमजोरों का अस्त्र नहीं है। केवल निडर और बहादुर लोग ही इसका उपयोग कर सकते हैं। वे हिंसा को कायरता से अधिक स्वीकार्य समझते थे। वर्ष 1920 में अपने साप्ताहिक पत्र ''यंग इंडिया'' में एक प्रसिद्ध लेख में वे लिखते हैं कि ''अहिंसा हमारी प्रजाति का धर्म है जैसे हिंसा पशु का धर्म है'' परंतु ''अगर केवल कायरता और हिंसा में किसी एक को चुनना हो तो मैं हिंसा को चुनने की सलाह दूंगा''' भारत कायरतापूर्वक,

असहाय होकर अपने सम्मान का अपहरण होते देखता रहे, इसके बजाए मैं उसे अपने सम्मान की रक्षा के लिए हथियार उठाते देखना अधिक पसंद करूंगा।" एक जगह उन्होंने अपने पूरे जीवन-दर्शन की व्याख्या इस प्रकार की है :

सत्य और अहिंसा ही वह अकेला धर्म है जिसका मैं दावा करना चाहता हूं। मैं किसी भी परमानवीय शक्ति का दावा नहीं करता; ऐसी कोई शक्ति मुझमें नहीं है।

गांधीजी के दृष्टिकोण का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी था कि वे विचार और कर्म में कोई अंतर नहीं रखते थे। उनका सत्य-अहिंसा-दर्शन जोशीले भाषणों और लेखों के लिए न होकर रोजमर्रा के जीवन के लिए था।

इसके अलावा साधारण जनता की संघर्ष की क्षमता पर गांधीजी को अटूट भरोसा था। उदाहरण के लिए, 1915 में जब मद्रास में उनका स्वागत किया गया तो दक्षिण अफ्रीका में अपने साथ संघर्ष करने वाले साधारण लोगों के बारे में उन्होंने कहा :

आप कहते हैं कि इन महान स्त्री-पुरुषों को प्रेरणा मैंने दी, मगर मैं इस सम्मान को स्वीकार नहीं कर सकता। उल्टे, जरा से भी इनाम की आशा किए बिना श्रद्धा के साथ कोई काम करने वाले इन सीधे-सादे लोगों ने ही मुझे प्रेरणा दी, मुझे अपनी जगह पर अडिग रखा तथा जिन्होंने अपने बलिदान के द्वारा, अपनी महान श्रद्धा के द्वारा तथा महान ईश्वर में अपने महान विश्वास के द्वारा मुझसे वह सब कराया जो मैं कर सका।

इसी तरह 1942 में जब उनसे पूछा गया कि वे "साम्राज्य की शक्ति का सामना" कैसे कर सकेंगे, तो उन्होंने उत्तर दिया : "लाखों-लाख मूक जनता की शक्ति के द्वारा।"

गांधीजी 46 वर्ष की आयु में 1915 में भारत लौटे। पूरे एक वर्ष तक उन्होंने देश का भ्रमण किया और भारतीय जनता की दशा को समझा। फिर उन्होंने 1916 में अहमदाबाद के पास साबरमती आश्रम की स्थापना की जहां उनके मित्रों और अनुयायियों को रहकर सत्य-अहिंसा को समझना तथा व्यवहार करना पड़ता था। उन्होंने संघर्ष की अपनी नई विधि के साथ यहां प्रयोग भी करना आरंभ किया।

चंपारन का सत्याग्रह (1917) : गांधीजी ने सत्याग्रह का अपना पहला बड़ा प्रयोग बिहार के चंपारन जिले में 1917 में किया। यहाँ नील के खेतों में काम करने वाले किसानों पर यूरोपीय निलहे बेहद अत्याचार करते थे। किसानों को अपनी जमीन के कम से कम 3/20 भाग पर नील की खेती करना तथा निलहों द्वारा तय दामों पर नील बेचना पड़ता था। इसी तरह की परिस्थितियां पहले बंगाल में भी रही थीं मगर 1859-61 के काल में एक बड़े विद्रोह के द्वारा वहां के किसानों ने निलहे साहबों से मुक्ति पा ली थी।

गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के संघर्षों की कहानी सुनकर चंपारन के अनेक किसानों ने उन्हें वहां आकर उनकी सहायता का निमंत्रण दिया। गांधीजी बाबू राजेंद्र प्रसाद, मजहरुल-हक जे.बी. कृपलानी, नरहरि पारिख और महादेव देसाई के साथ 1917 में वहां पहुंचे और किसानों की हालत की विस्तृत जांच-पड़ताल करने लगे। जिले के क्रोधोन्मत्त अधिकारियों ने उन्हें चंपारन छोड़ने का आदेश दिया, मगर उन्होंने आदेश का उल्लंघन किया और जेल-मुकदमे के लिए तैयार रहे। सरकार ने मजबूर होकर पिछला आदेश रद्द कर दिया और एक जांच समिति बिठाई जिसके एक सदस्य स्वयं गांधीजी थे। अंततः किसान जिन समस्याओं से पीड़ित थे उनमें कमी हुई। इस तरह भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन की पहली लड़ाई गांधीजी ने जीत ली। चंपारन में उन्होंने वह भयानक गरीबी भी देखी जो भारतीय किसानों के जीवन का अंग थी।

अहमदाबाद में मजदूरों की हड़ताल : सन् 1918 में
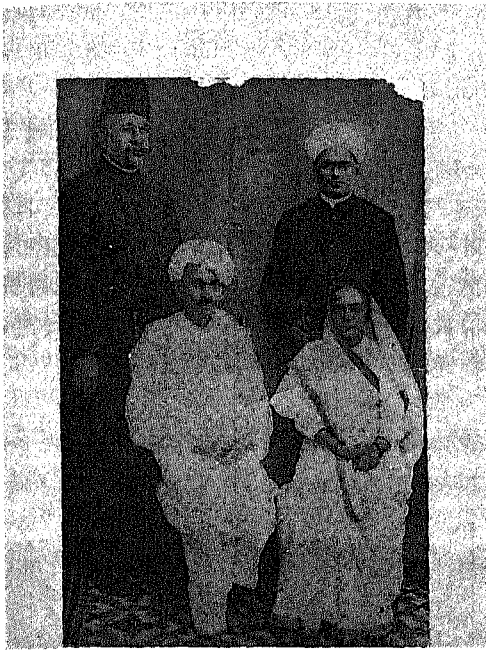
मद्रास में 1915 में जी.ए. नटेशन तथा याकूब हसन के साथ गांधीजी और कस्तूरबा गांधी

गांधीजी ने अहमदाबाद के मजदूरों और मिल मालिकों के एक विवाद में हस्तक्षेप किया। उन्होंने मजदूरों की मजदूरी में 35 प्रतिशत वृद्धि की मांग करने तथा इसके लिए हड़ताल पर जाने की राय दी। लेकिन उन्होंने जोर देकर कहा कि हड़ताल के दौरान मजदूर मालिकों के खिलाफ हिंसा का प्रयोग न करें। मजदूरों के हड़ताल जारी रखने के संकल्प को बल देने के लिए उन्होंने आमरण अनशन किया। उनके अनशन ने मिल मालिकों पर दबाव डाला और वे नरम पड़कर मजदूरी 35 प्रतिशत बढ़ाने पर सहमत हो गए।

सन् 1918 में गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों की फसल चौपट हो गई। मगर सरकार ने लगान छोड़ने से एकदम इनकार कर दिया और पूरा लगान वसूलने पर उतारू हो गई। गांधीजी ने किसानों का साथ दिया और उन्हें राय दी कि जब तक लगान में छूट नहीं मिलती, वे लगान देना बंद कर दें। जब यह खबर मिली कि सरकार ने केवल उन्हीं किसानों से लगान वसूलने के आदेश दिए हैं जो लगान दे सकते हों, तभी यह संघर्ष वापस लिया गया। सरदार वल्लभभाई पटेल उन्हीं नौजवानों में से एक थे जो खेड़ा के किसान-संघर्ष के दौरान गांधीजी के अनुयायी बने थे।

इन अनुभवों ने गांधीजी को जनता के घनिष्ठ संपर्क में ला दिया, और वे जीवन भर उनके हितों की सक्रिय रूप से रक्षा करते रहे। वे वास्तव में भारत के एसे पहले राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंने अपने जीवन और जीवन-पद्धति को साधारण जनता के जीवन से एकाकार कर लिया था। जल्द ही वे गरीब भारत, राष्ट्रवादी भारत और विद्रोही भारत के प्रतीक बन गए। गांधीजी को तीन दूसरे लक्ष्य भी जान से प्यारे थे। इनमें पहला था हिंदू-मुसलमान एकता, दूसरा था छुआछूत विरोधी संघर्ष और तीसरा था देश की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को सुधारना। अपने लक्ष्यों को उन्होंने एक बार संक्षेप में इस प्रकार रखा था :

> मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमे सबसे निर्धन व्यक्ति भी इसे अपना देश समझे और इसके निर्माण में उसकी प्रभावी भूमिका हो—एक ऐसा भारत जिसमें लोगों का कोई उच्च वर्ग और निम्न वर्ग न हो, जिसमें सभी समुदाय पूरे सद्भाव के साथ रहते हों ... इस प्रकार के भारत में छुआछूत नामक कोढ़ के लिए कोई जगह नहीं होगी ... स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार होंगे ... मेरे सपनों का भारत यही है।

गांधी जी एक धर्मपरायण हिंदू थे, मगर उनका सांस्कृतिक-धार्मिक दृष्टिकोण संकुचित न होकर बहुत व्यापक था। उन्होंने लिखा है : "भारतीय संस्कृति न तो पूरी तरह हिंदू है न ही इस्लामी और न ही कोई और संस्कृति। यह सबका समन्वय है।" वे चाहते थे कि भारतीय अपनी संस्कृति में पूरी तरह लीन हों मगर साथ ही दूसरी विश्व-संस्कृतियों से जो कुछ अच्छे तत्व

मिलते हों उन्हें स्वीकार करें। उन्होंने लिखा है :

> मैं चाहता हूं कि जितनी स्वतंत्रता के साथ संभव हो सभी देशों की संस्कृतियों की बयारें मेरे घर में से गुजरें। लेकिन इनमें से किसी बयार के आगे लड़खड़ा जाना मुझे मंजूर नहीं है। दूसरों के घरों में किसी घुसपैठिए, किसी भिखारी या किसी दास की तरह रहना मुझे मंजूर नहीं है।

रोलट कानून के विरुद्ध सत्याग्रह : दूसरे राष्ट्रवादियों की तरह गांधीजी को भी रोलट कानून से धक्का लगा। फरवरी 1919 में उन्होंने एक सत्याग्रह सभा बनाई जिसके सदस्यों ने इस कानून का पालन न करने तथा गिरफ्तारी और जेल जाने का सामना करने की शपथ ली। संघर्ष का यह एक नया रूप था। राष्ट्रवादी आंदोलन, चाहे नरमपंथियों के नेतृत्व में हुआ हो या गरमपंथियों के अभी तक व्यापक नहीं हो पाया था। बड़ी सभाएं और प्रदर्शन, सरकार से सहयोग करने से इनकार, विदेशी वस्त्रों तथा स्कूलों का बहिष्कार या व्यक्तिगत आतंकवादी कार्यवाही अभी तक राजनैतिक कार्य के यही रूप राष्ट्रवादियों को ज्ञात थे। सत्याग्रह ने फौरन ही आंदोलन को एक नए और उच्चतर स्तर तक उठा दिया। अब मात्र आंदोलन करने तथा अपने असंतोष और क्रोध को मौखिक रूप से अभिव्यक्त करने की जगह अब राष्ट्रवादी सक्रिय कार्य भी कर सकते थे।

इसके अलावा इस विधि को किसानों, दस्तकारों और शहरी गरीबों के राजनीतिक समर्थन पर अधिकाधिक निर्भर रहना था। गांधी जी ने राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं से गांवों में जाने का आग्रह किया। उन्होंने समझाया कि भारत वहीं बसता है। उन्होंने राष्ट्रवाद को अधिकाधिक साधारण जनता की ओर मोड़ा। खादी (यानी घर में सूत कातकर घर में बुना गया कपड़ा) इस रूपांतरण का प्रतीक थी और जल्दी ही यह सभी राष्ट्रवादियों का लिबास बन गई। श्रम की महिमा और आत्मनिर्भरता का महत्त्व समझाने के लिए गांधीजी स्वयं रोज सूत कातते थे। उन्होंने कहा कि भारत की मुक्ति तभी संभव है जब जनता नींद से जाग उठे और राजनीति में सक्रिय हो। जनता ने भी गांधीजी के आह्वान का जोरदार स्वागत किया।

वर्ष 1919 में मार्च और अप्रैल महीनों में भारत में अभूतपूर्व राजनीतिक जागरण आया। लगभग पूरा देश एक नई शक्ति से भर उठा। हड़तालें, काम रोको अभियान, जुलूस और प्रदर्शन होने लगे। हिन्दू-मुसलमान एकता के नारे हवाओं में गूँजने लगे। पूरे देश में बिजली की लहर दौड़ गई। भारतीय जनता अब विदेशी शासन के अपमान को और सहने को तैयार नहीं थी।

जलियांवाला बाग का हत्याकांड : सरकार इस जन-आंदोलन को कुचल देने पर आमादा थी। बंबई,
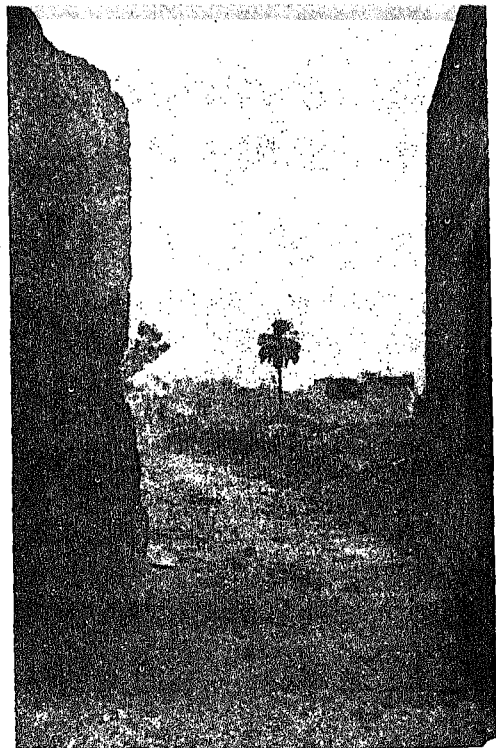
जलियांवाला बाग का निकास द्वार

अहमदाबाद, कलकत्ता, दिल्ली तथा दूसरे नगरों में निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर बार-बार लाठियों और गोलियों का प्रहार हुआ। गांधीजी ने 6 अप्रैल, 1919 को एक शक्तिशाली हड़ताल का आह्वान किया। जनता ने अभूतपूर्व उत्साह से इसका अनुसरण किया। सरकार ने इस जन-प्रतिरोध का सामना, खासकर पंजाब में, दमन से करने का निश्चय किया। इस समय सरकार ने आधुनिक इतिहास का एक सबसे भंयकर राजनीतिक अपराध भी किया। पंजाब में अमृतसर में 13 अप्रैल, 1919 को एक निहत्थी मगर भारी भीड़ अपने लोकप्रिय नेताओं डाक्टर सैफुद्दीन किचलू और डाक्टर सत्यपाल की गिरफ्तारी का विरोध करने के लिए जलियांवाला बाग में जमा हुई। अमृतसर के फौजी कमांडर जनरल डायर ने शहर की जनता को आतंक द्वारा वश में करने का निश्चय किया। जलियांवाला बाग बहुत बड़ा बाग था, मगर इसमें से निकलने का केवल एक रास्ता था,
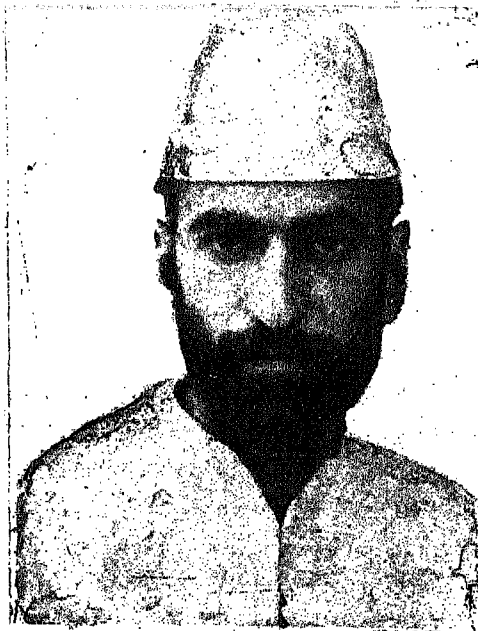
डा. सैफुद्दीन किचलू

शेष तीन ओर से यह मकानों से घिरा था। डायर ने बाग को फौज द्वारा घेर लिया और निकास-द्वार पर एक फौजी दस्ता खड़ा कर दिया। उसके बाद उसने अपने फौजियों को राइफलों और मशीनगनों द्वारा अंदर घिरी भीड़ पर गोली बरसाने का हुक्म दिया। वे तब तक गोली बरसाते रहे जब तक कि गोलियां खत्म न हो गईं। हज़ारों लोग मरे और घायल हुए। इस हत्याकांड के बाद पूरे पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया गया और लोगों पर अत्यंत जंगली किस्म के अत्याचार ढाए गए। एक उदारवादी वकील शिवस्वामी अय्यर ने, जिन्हें सरकार ने नाइट (Knight) के उपाधि दी थी, पंजाब के अत्याचारों के बारे में लिखा है :

> जलियांवाला बाग में लोगों को बिखरने का अवसर दिए बिना सैंकड़ों निहत्थे लोगों का कत्ले-आम, गोलीबारी में घायल सैंकड़ों लोगों की दशा के प्रति जनरल डायर की बेरुखी, जो लोग बिखरकर भागने लगे थे उन पर मशीनगनों से गोलीबारी, लोगों पर सार्वजनिक रूप से कोड़े बरसाना, हज़ारों छात्रों को उपस्थिति जताने के लिए 16 मील दूर प्रतिदिन जाने का आदेश, 500 छात्रों और प्रोफेसरों की गिरफ्तारी और नजरबंदी, 5 से 7 वर्ष के स्कूली बच्चों को भी झंडे की सलामी के लिए परेड में उपस्थित रहने के लिए बाध्य करना, ... एक विवाह-मंडली पर कोड़ों की बारिश, डाक पर सेंसर, छः सप्ताहों तक बादशाही मस्जिद पर ताला, किसी ठोस कारण के बिना लोगों की गिरफ्तारी और नजरबंदी, ... इस्लामिया स्कूल के 6 सबसे बड़े बच्चों पर कोडों की मार, केवल इसलिए कि वे स्कूली बच्चे थे और बड़े बच्चे थे, गिरफ्तार लोगों को खुलेआम बंद रखने के लिए बड़े पिंजड़े का निर्माण, दंड के नए-नए रूपों का अविष्कार जैसे सड़क पर रेंगकर चलने के आदेश, कूदते हुए चलने के आदेश, आदि जो नागरिक या सैनिक किसी भी कानून-प्रणाली के लिए अज्ञात हैं, लोगों को

एक ही बेड़ी में आपस में जकड़कर रखना और उन्हें खुली ट्रकों में 15-15 घंटों तक रखना, निहत्थे नागरिकों के खिलाफ हवाई जहाजों और लेविस गनों तथा वैज्ञानिक युद्ध प्रणाली के नवीनतम ताम-झाम का उपयोग, लोगों को बंधक बनाना, गैर-हाजिर लोगों का हाजिर कराने के लिए उनकी संपत्ति को जब्त और नष्ट करना, हिंदू-मुस्लिम एकता के परिणाम जताने के लिए एक हिंदू और एक मुसलमान को एक ही बेड़ी में जकड़कर रखना, भारतीय घरों का पानी और बिजली काट देना, भारतीय घरों से पंखे हटाकर, यूरोपीयों को उपयोग के लिए दे देना, भारतीयों के सभी वाहनों को लेकर उपयोग के लिए यूरोपीयों को देना... ये सब उस मार्शल लॉ प्रशासन की अनेक घटनाओं में से कुछ-एक हैं जिसने पंजाब में आतंक राज कायम किया है तथा जनता को हिलाकर रख दिया है।

पंजाब की घटनाएं जब लोगों को ज्ञात हुईं तो पूरे देश में भय की एक लहर सी दौड़ गई। साम्राज्यवाद तथा विदेशी शासन जिस सभ्यता का दावा करते थे उसके पर्दे में छिपे घिनौने चेहरे और बर्बरता का जीता-जागता रूप लोगों ने देखा। जनता के इस कष्ट का वर्णन महान कवि और मानवतावादी रचनाकार रवींद्रनाथ ठाकुर ने किया है जिन्होंने इसके विरोध में अपनी 'नाइट' की उपाधि लौटा दी थी। उन्होंने घोषणा की कि.....

> वह समय आ गया है जब सम्मान के प्रतीक अपमान अपने बेमेल संदर्भ में हमारी शर्म को उजागर करते हैं और मैं, जहां तक मेरा सवाल है, सभी विशिष्ट उपाधियों से रहित होकर अपने उन देशवासियों के साथ खड़े होना चाहता हूं जो अपनी तथाकथित क्षुद्रता के कारण मानव जीवन के अयोग्य अपमान को सहने के लिए बाध्य हो सकते हैं।

खिलाफत और असहयोग आंदोलन (1919-22)

खिलाफत आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन में एक नई धारा बही। हम देख चुके हैं कि शिक्षित मुसलमानों की नई पीढ़ियां तथा पारंपरिक मौलवियों और धर्मशास्त्रियों का एक भाग अधिकाधिक उग्रपंथी और राष्ट्रवादी बनते जा रहे थे। लखनऊ समझौते ने हिंदुओं और मुसलमानों की साझी राजनीति गतिविधियों के लिए पहले ही जमीन तैयार कर रखी थी। रोलट कानून विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन ने समूची भारतीय जनता को एक समान प्रभावित किया था और हिंदू-मुसलमान दोनों को राजनीतिक आंदोलन में ले आया था।

उदाहरण के लिए, राजनीतिक गतिविधियों के क्षेत्र में हिंदू-मुसलमान एकता की मिसाल दुनिया के सामने रखने के लिए मुसलमानों ने कट्टर आर्यसमाजी नेता स्वामी श्रद्धानंद को आमंत्रित किया था कि वे दिल्ली की जामा मस्जिद के मिंबर से अपना उपदेश दें इसी तरह अमृतसर में सिखों ने अपने पवित्र स्थान स्वर्ण मंदिर की चाभियां एक मुसलमान नेता डा. किचलू को सौंप दी थीं। अमृतसर में यह राजनीतिक एकता सरकार के दमन के कारण थी। हिंदुओं और मुसलमानों को एक ही बेड़ियां पहनाई गई थीं, एक साथ जमीन पर रेंगकर चलने के आदेश दिए गए थे और एक साथ ही पानी पीने को कहा गया था जबकि एक हिंदू आमतौर पर किसी मुसलमान के हाथों से पानी नहीं पीता था। इस वातावरण में मुसलमानों के बीच राष्ट्रवादी प्रवृत्ति ने खिलाफत आंदोलन की शक्ल ले ली। ब्रिटेन तथा उसके सहयोगियों ने तुर्की की उस्मानिया सल्तनत के साथ जो व्यवहार किया था और जिस तरह उसके टुकड़े करके थ्रेस को हथिया लिया था, राजनीतिक-चेतना प्राप्त मुसलमान उसके आलोचक थे। यह कार्य भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री लायड जॉर्ज के वादे के विपरीत था कि "हम तुर्की को एशिया माइनर और थ्रेस की उस समृद्ध और प्रसिद्ध भूमि से वंचित करने के लिए युद्ध नहीं कर रहे हैं जो नस्ली दृष्टि से मुख्य रूप से तुर्क हैं।" मुसलमानों का यह भी मत था कि तुर्की के सुल्तान को अनेक लोग खलीफा अर्थात् धार्मिक मामलों में मुसलमानों के

प्रमुख मानते थे, और उनकी स्थिति पर आंच नहीं आनी चाहिए। शीघ्र ही अली भाइयों (मुहम्मद अली और शौकत अली), मौलाना आजाद, हकीम अजमल खान और हसरत मोहानी के नेतृत्व में एक खिलाफत कमेटी गठित हो गई और देशव्यापी आंदोलन छेड़ दिया गया।

दिल्ली में नवंबर 1919 में आयोजित अखिल-भारतीय खिलाफत सम्मेलन ने फैसला किया कि अगर उनकी मागें न मानी गईं तो वे सरकार से सहयोग करना बंद कर देंगे। इस समय मुस्लिम लीग पर राष्ट्रवादियों का नेतृत्व था। उसने राजनीतिक प्रश्नों पर राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके आंदोलन का पूरा-पूरा समर्थन किया। अपनी तरफ से लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी समेत तमाम कांग्रेसी नेताओं ने भी खिलाफत आंदोलन को हिंदू-मुसलमान एकता स्थापित करने का, मुसलमान जनता को राष्ट्रीय आंदोलन में लाने का सुनहरा अवसर जाना। वे समझते थे कि हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई, पूंजीपति और मजदूर, किसान और दस्तकार, महिलाएं और युवक, विभिन्न क्षेत्रों के आदिवासी तथा अन्य लोग, अर्थात् भारतीय जनता के सभी अंग अपनी विभिन्न मांगों के लिए संघर्ष करते हुए उसके अनुभव के द्वारा तथा विदेशी शासन को अपना विरोधी समझने के बाद ही राष्ट्रीय आंदोलन में आएंगे। गांधीजी ने खिलाफत आंदोलन को "हिंदुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करने का ऐसा अवसर जाना जोकि आगे सौ वर्षों तक नहीं मिलेगा।" उन्होंने 1920 के आरम्भ में घोषणा की कि खिलाफत का प्रश्न सांविधानिक सुधारों तथा पंजाब के अत्याचारों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने यह भी घोषणा की कि अगर तुर्की के साथ शांति-संधि की शर्तें भारतीय मुसलमानों को संतुष्ट नहीं करतीं तो वे असहयोग आंदोलन छेड़ेंगे। वास्तव में, गांधीजी शीघ्र ही खिलाफत आंदोलन के एक नेता के रूप में उभरे।

मुहम्मद अली

इस बीच सरकार ने रोलट कानून को रद्द करने, पंजाब के अत्याचारों की भरपाई करने या राष्ट्रवादियों की स्वशासन की आकांक्षा को संतुष्ट करने से इनकार कर दिया था। जून 1920 में इलाहाबाद में सभी दलों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें स्कूलों, कालेजों और अदालतों के बहिष्कार का एक कार्यक्रम किया गया। खिलाफत आंदोलन ने 31 अगस्त, 1920 को एक असहयोग का आरंभ किया।

सितंबर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। कुछ ही सप्ताह पहले इसे एक भयानक नुकसान हुआ था जब 1 अगस्त को 64 वर्ष की आयु में लोकमान्य तिलक का निधन हो गया था। जल्द ही इस कमी को गांधीजी, चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरु ने पूरा कर दिया। कांग्रेस ने गांधीजी

अमृतसर में दिसंबर 1919 में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के प्रतिनिधि कुर्सी पर बैठे (दाएं से बाएं) : मदन मोहन मालवीय, एनी बेसेण्ट, स्वामी श्रद्धानंद, मोतीलाल नेहरु, बाल गंगाधर तिलक और अन्य। ज़मीन पर बैठे हुए (बाएं से दाएं) : जवाहरलाल नेहरु, एस. सत्यमूर्ति तथा अन्य।

की इस योजना को स्वीकार कर लिया कि जब तक पंजाब तथा खिलाफत संबंधी अत्याचारों की भरपाई नहीं होती और स्वराज्य स्थापित नहीं होता, सरकार से असहयोग किया जाए। लोगों से आग्रह किया गया कि वे सरकारी शिक्षा संस्थाओं, अदालतों और विधानमंडलों का बहिष्कार करें, विदेशी वस्त्रों का त्याग करें, सरकार से प्राप्त उपाधियां और सम्मान वापस करें, तथा हाथ से सूत कात कर और बुन कर खादी का इस्तेमाल करें बाद में सरकारी नौकरी से इस्तीफा तथा कर चुकाने से इनकार करने को भी इस कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया। फौरन ही कांग्रेस वालों ने चुनाव से नाम वापस ले लिए और जनता ने भी अधिकांशतः उसका बहिष्कार ही किया। सरकार तथा उसके कानूनों के इस अत्यंत शांतिपूर्ण उल्लंघन के इस निर्णय को दिसंबर 1920 में नागपुर में आयोजित कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में अनुमोदित भी कर दिया गया। गांधीजी ने नागपुर में घोषणा की कि "ब्रिटिश जनता यह बात चेत ले कि अगर वह न्याय नहीं करना चाहती तो साम्राज्य को नष्ट करना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य होगा।" नागपुर अधिवेशन मे कांग्रेस के संविधान में परिवर्तन किए गए। प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को अब भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया गया। कांग्रेस का नेतृत्व अब 15 सदस्यों की एक वर्किंग कमेटी को सौंपा गया जिसमे अध्यक्ष और सचिव शामिल थे। इससे कांग्रेस एक निरंतर विद्यमान राजनीतिक संगठन के रूप में काम करने लगी और उसके प्रस्तावों को लागू करने के लिए उसे एक उपकरण भी मिल गया। कांग्रेस का संगठन अब गांवों, छोटे कस्बों और मुहल्लों तक भी फैलने वाला था। सदस्यता शुल्क घटाकर प्रति वर्ष चार आने (आज के 25 पैसे) कर दिया गया ताकि निर्धन ग्रामीण और नगर के निर्धन लोग भी उसके सदस्य बन सकें।

अब कांग्रेस का चरित्र बदल गया। वह विदेशी

1920 में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में भाग लेने आए कुछ नेता। कुर्सी पर बैठे सी. विजयराघवाचा-रियार (बांए से प्रथम), अजमल खां (बांए से तीसरे) और सी.आर. दास (बांए से चौथे)

शासन से मुक्ति के राष्ट्रीय संघर्ष मे जनता की संगठनकर्ता और नेतृत्वकर्ता बन गई। प्रसन्नता की एक लहर चारों ओर फैल गई। राजनीतिक स्वाधीनता भले ही बाद में आए, अब जनता ने गुलामी की मनोवृत्ति को त्यागना आरंभ कर दिया था। मानों कि भारत अब किसी और हवा में सांस ले रहा हो। उन दिनों का उल्लास और उत्साह कुछ विशेष ही था, क्योंकि अब सोया हुआ शेर उठने ही वाला था। इसके अलावा, हिंदू और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रहे थे। साथ ही, कुछ पुराने नेताओं ने अब कांग्रेस छोड़ भी दी थी। राष्ट्रीय आंदोलन में जो नया मोड़ आया था, वह उन्हें पसंद न था। वे आंदोलन तथा राजनीतिक कार्यकलाप के उसी पुराने ढर्रे में विश्वास करते थे जो कानून की चारदीवारी का रत्ती भर भी उल्लंघन ने करे। वे जनता के संगठन हड़तालों, कामबंदियों, सत्याग्रह, कानूनशिकनी, गिरफ्तारी और जुझारू संघर्ष के दूसरे रूपों के विरोध में थे। इस काल में जिन लोगों ने कांग्रेस छोडी उनमें मुहम्मद अली जिन्ना, जी. एस. खापर्डे, विपिनचंद्र पाल और एनी बेसेंट प्रमुख थे ।

वर्ष 1921-22 में भारतीय जनता एक अभूतपूर्व हलचल के दौर से गुजरी। हज़ारों की संख्या में छात्रों ने सरकारी स्कूल-कालेज छोड़कर राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजों में प्रवेश ले लिया। यही समय था जब अलीगढ़ के जामिया मिलिया इस्लामिया (राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय), बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ और गुजरात विद्यापीठ का जन्म हुआ। जामिया मिलिया बाद में दिल्ली चला गया। इन राष्ट्रीय कालेजों और विश्वविद्यालयों में आचार्य नरेंद्र देव, डा. जाकिर हुसैन, और लाला लाजपतराय जैसे विख्यात व्यक्ति शिक्षक का कार्य करते थे। सैकड़ों वकीलों ने अपनी मोटी कमाई वाली वकालतें छोड़ दीं। इनमें देशबंधु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरु, राजेंद्र प्रसाद, सैफुद्दीन किचलू, सी. राजगोपालाचारी, सरदार पटेल, टी. प्रकाशम और आसफ अली जैसे लोग शामिल थे। असहयोग आंदोलन चलाने

के लिए तिलक स्वराज्य कोष स्थापति किया गया और छः माह के अंदर इसमें एक करोड़ रुपया जमा हो गया। स्त्रियों ने बहुत उत्साह दिखाया और अपने गहनों, जेवरों का खुलकर दान किया। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार एक जन-आंदोलन बन गया। पूरे देश में विदेशी वस्त्रों की बड़ी-बड़ी होलियां जलाई गईं। ख़ादी स्वतंत्रता का प्रतीक बन गई। जुलाई 1921 में एक प्रस्ताव पारित करके खिलाफत आंदोलन ने घोषणा की कि कोई मुसलमान ब्रिटिश भारत की सेना में नहीं भरती होगा। सितंबर में 'राजद्रोह' का आरोप लगाकर अली भाइयों को कैद कर लिया गया। गांधीजी ने फौरन आह्वान किया कि इस प्रस्ताव को सैकड़ों सभाओं में पढ़कर सुनाया जाए। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के 50 सदस्यों ने ऐसी ही एक घोषणा की कि जो सरकार सामाजिक, आर्थिक ओर राजनीतिक दृष्टि से भारत का उत्पीड़न कर रही है उसकी सेवा कोई भारतीय न करे। ऐसा ही एक बयान कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने भी जारी किया।

कांग्रेस ने अब आंदोलन को और ऊंचे स्तर तक ले जाने का फैसला किया। इसने हर एक प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को अनुमति दी कि अगर उसकी राय में उस प्रांत की जनता तैयार हो तो वह नागरिक अवज्ञा आंदोलन या ब्रिटिश कानूनों के उल्लंघन का आंदोलन आरंभ कर सकती है और इसमें करों का भुगतान रोकने का आंदोलन भी शामिल किया जा सकता है।

सरकार ने एक बार फिर दमन का सहारा लिया। तब तक कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवक निचले स्तरों पर हिंदू और मुसलमान राजनीतिक कार्यकर्ताओं को एकताबद्ध करने के लिए साथ-साथ ड्रिल का आयोजन करने लगे थे। ऐसे सारे ड्रिल गैर-कानूनी घोषित कर दिए गए। वर्ष 1921 के अंत तक गांधीजी को छोड़कर सारे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रवादी नेता तथा 3,000 दूसरे लोग जेलों में बंद किए जा चुके थे। नवंबर 1921 में ब्रिटिश सिंहासन के उत्तराधिकारी, प्रिंस ऑफ वेल्स जब भारत-भ्रमण पर आए तो उनका स्वागत बड़े-बड़े विरोध-प्रदर्शनों द्वारा किया गया। सरकार ने उनसे निवेदन किया था कि जनता और राजा-महाराजाओं में वफादारी की भावना जगाने के लिए वे भारत की यात्रा पर आए। बंबई में एक प्रदर्शन को कुचलने का प्रयास सरकार ने किया और इसमें 53 लोग मारे गए तथा लगभग 400 घायल हुए। दिसंबर 1921 में अहमदाबाद में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव में कांग्रेस ने अपना "यह दृढ़ मत दोहराया कि जब तक पंजाब और खिलाफत की गलतियों की भरपाई नहीं की जाती और स्वराज्य स्थापित नहीं होता ... वह पहले से भी अधिक जोरदार ढंग से अहिंसक असहयोग का आंदोलन जारी रखेगी।" इस प्रस्ताव में सभी भारतीयों, और खासकर छात्रों, से आग्रह किया गया था कि वे "स्वयंसेवक संगठनों में भरती होकर चुपचाप और बिना किसी प्रदर्शन के अपनी गिरफ्तारी दें। ऐसे सभी सत्याग्रहियों को 'मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसक रहने", हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों, पारसियों, ईसाइयों और यहूदियों में एकता की भावना मजबूत बनाने, तथा स्वदेशी का व्यवहार करने और केवल खादी पहनने की शपथ लेनी पड़ती थी। हिंदू स्वयंसेवकों को सक्रिय रूप से छुआछूत से लड़ने की शपथ भी लेनी होती थी। प्रस्ताव में जनता से यह भी आग्रह किया गया था कि जहां भी संभव हो, वह अहिंसक रहकर व्यक्तिगत या सामूहिक अवज्ञा आंदोलन चलाए।

लोग अब संघर्ष के अगले आह्वान का बेचैनी से इंतजार कर रहे थे। आंदोलन भी अब जनता में गहरी जड़ें जमा चुका था। संयुक्त प्रांत तथा बंगाल के हजारों किसानों ने असहयोग के आह्वान का पालन किया था। संयुक्त प्रांत के कुछ भागों में बंटाईदारों ने जमींदारों की अनुचित मांगें पूरी करने से इंकार कर दिया था। पंजाब में गुरुद्वारों पर भ्रष्ट महंतों का कब्जा खत्म करने के लिए सिख अकाली आंदोलन नामक एक अहिंसक आंदोलन चला रहे थे। असम में चाय-बागानों के मजदूरों

ने हड़ताल की। मिदनापुर के किसानों ने यूनियन बोर्ड के कर देने से इंकार कर दिया था। चिराला की पूरी जनता नगरपालिका के कर चुकाने से इंकार करके शहर छोड़ चुकी थी। पेडन्नापाडु में गांवों के सारे अधिकारियों ने इस्तीफा दे दिया था। डुग्गीराला गोपालकृष्णयूया के नेतृत्व में गुंटूर जिले में एक शक्तिशाली आंदोलन उठ खड़ा हुआ था। उत्तरी केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला कहे जाने वाले मुस्लिम किसानों ने एक शक्तिशाली जमींदार-विरोधी आंदोलन छेड़ रखा था। फरवरी 1919 में वायसराय ने विदेश सचिव को पत्र लिखा कि "शहरों के निम्न वर्गों पर असहयोग आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा है ... कुछ क्षेत्रों में, खासकर असम घाटी के कुछ भागों, संयुक्त प्रांत, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में किसान भी प्रभावित हुए हैं।" 1 फरवरी, 1922 को महात्मा गांधी ने घोषणा की कि अगर सात दिनों के अंदर राजनीतिक बंदी रिहा नहीं किए जाते और प्रेस पर सरकार का नियंत्रण समाप्त नहीं होता तो वे करों की गैर-अदायगी समेत एक सामूहिक नागरिक अवज्ञा आंदोलन छेड़ेंगे।

लेकिन संघर्ष की यह लहर शीघ्र ही उतरने लगी। संयुक्त प्रांत के गोरखपुर ज़िले में 5 फरवरी को चौरी चौरा नामक गांव में 3000 किसानों के एक कांग्रेसी जुलूस पर पुलिस ने गोली चलाई। क्रुद्ध भीड़ ने पुलिस थाने पर हमला करके उसमें आग लगा दी जिससे 22 पुलिसकर्मी मारे गए। इसके पहले भी देश के विभिन्न भागों में भीड़ द्वारा हिंसा की कुछ घटनाएं हो चुकी थीं। गांधीजी को भय था कि जन उत्साह और जोश के इस वातावरण में आंदोलन आसानी से एक हिंसक मोड़ ले सकता है। उन्हें पूरा विश्वास था कि राष्ट्रवादी कार्यकर्ता अभी भी अहिंसा के पाठ को समझ और व्यवहार में अपना नहीं सके हैं और यह समझ न हो तो नागरिक अवज्ञा आंदोलन सफल नहीं हो सकता। हिंसा से उनका कोई संबंध न था, इस बात के अलावा शायद उन्हें यह भी विश्वास था कि अंग्रेज़ आसानी से किसी भी हिंसक आंदोलन को कुचल सकते हैं, क्योंकि जनता में भारी सरकारी दमन के प्रतिरोध की शक्ति अभी भी विकसित नहीं हो सकी थी। इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को रोक देने का फैसला किया। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने 12 फरवरी को गुजरात के बारडोली नामक स्थान पर अपनी मीटिंग की और एक प्रस्ताव द्वारा उन सभी गतिविधियों पर रोक लगा दी जिनसे कानून का उल्लंघन हो सकता था। उसने कांग्रेसजन से आग्रह किया कि वे अपना समय चरखा को लोकप्रिय बनाने, राष्ट्रीय विद्यालय चलाने, छुआछूत मिटाने तथा हिंदू-मुसलमान एकता को प्रोत्साहित करने से रचनात्मक कार्यों में लगाएं।

बारडोली के प्रस्ताव ने पूरे देश को सकते में डाल दिया। आश्चर्यचकित राष्ट्रवादियों में इसकी मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई। कुछ को तो गांधीजी में पूरी श्रद्धा थी और उन्हें विश्वास था कि आंदोलन पर यह रोक संघर्ष की गांधीवादी रणनीति का ही एक भाग है। परंतु दूसरों ने, खासकर युवक राष्ट्रवादियों ने आंदोलन रोके जाने के

असहयोग आंदोलन के स्वयंसेवकों का कलकत्ता में जुलूस

निर्णय का विरोध किया। सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस के एक अत्यंत लोकप्रिय युवक नेता थे, उन्होंने अपनी आत्मकथा "दि इंडियन स्ट्रगल" में लिखा है :

> जिस समय जनता का उत्साह अपनी चरम सीमा को छूने वाला था, उस समय पीछे हट जाने का आदेश देना राष्ट्रीय अनर्थ से कम नहीं था। महात्माजी के प्रमुख सहयोगी देशबंधु दास, पंडित मोतीलाल नेहरु और लाला लाजपतराय जो सब जेलों में थे, भी इस सामूहिक खिन्नता में भागीदार थे। मैं उस समय देशबंधु के साथ था और मैंने देखा कि जिस तरह महात्मा गांधी बार-बार गोलमाल कर रहे थे, उस पर वे क्रोध और दुःख से आपे से बाहर हो रहे थे।

जवाहरलाल नेहरु जैसे दूसरे युवक नेताओं ने भी ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त की। लेकिन जनता और नेतागण, दोनों को गांधीजी में आस्था थी और वे सार्वजनिक रूप से उनके आदेश का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे। खुल कर विरोध किए बिना उन्होंने उनके फैसले को स्वीकार कर लिया। इस तरह पहला असहयोग और नागरिक अवज्ञा (सिविल डिसओबीडिएंस) आंदोलन लगभग समाप्त ही हो गया।

इस नाटक का आखिरी अंक यह था कि स्थिति का पूरा लाभ उठाकर सरकार ने तीखा प्रहार करने का निश्चय किया। उसने 10 मार्च, 1922 को महात्मा गांधी को गिरफ्तार करके उन पर सरकार के प्रति असंतोष भड़काने का आरोप लगाया। गांधीजी को छः वर्षों की कैद की सज़ा सुनाई गई। अदालत में उन्होंने जो बयान दिया उसके कारण यह मुकदमा ऐतिहासिक बन गया। अभियोग पक्ष के आरोपों को स्वीकार करते हुए उन्होंने अदालत से निवेदन किया कि "कानून में जिस बात को स्वेच्छापूर्वक किया गया अपराध समझा जाता है और जो मुझे किसी नागरिक का परम कर्तव्य लगता है, उसके लिए मुझे जिनती कड़ी सजा दी जा सकती है, दी जाए।" उन्होंने ब्रिटिश शासन के एक समर्थक से उसके एक कट्टर आलोचक के रूप में अपने रूपांतरण की विस्तार से व्याख्या की, और कहा :

> अनिच्छापूर्वक मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से भारत पहले जितना असहाय था, उससे कहीं अधिक उस असहाय ब्रिटेन के साथ संबंध ने बना दिया है। निहत्थे भारत के पास किसी भी आक्रमण के प्रतिरोध की शक्ति नहीं है।..........वह इतना निर्धन हो चुका है कि अकालों के प्रतिरोध के लिए उसमें शायद ही कोई शक्ति बची है।....नगरवासियों को शायद ही पता हो कि भारत की आधे पेट खाकर जीवित रहने वाली जनता किस तरह जीवनहीन होती जा रही है। शायद ही उन्हें पता हो कि जो क्षुद्र आराम उन्हें प्राप्त है, वह उस काम की दलाली है जो वे विदेशी शोषकों के लिए करते हैं और यह कि ये मुनाफा और दलाली जनता से चूसी जाती है। शायद ही उन्हें महसूस होता हो कि ब्रिटिश भारत में कानून द्वारा स्थापित सरकार जनता के शोषण के लिए चलाई जाती है। कोई भी लफ्फाजी, आंकड़ों का कोई भी खेल उस साक्ष्य को नहीं मिटा सकते जो अनेक ग्रामों में हड्डियों के ढांचे के रूप में दिखाई देता है। मेरे विचार में कानून के प्रशासन को चेतन या अचेतन रूप से शोषक के लाभार्थ भ्रष्ट किया जा रहा है। इससे भी बड़ा दुर्भाग्य यह है कि अंग्रेजों तथा देश के प्रशासन में लगे उनके भारतीय सहयोगियों को यह नहीं मालूम है कि वे वही अपराध कर रहे हैं जिसका वर्णन करने का मैंने प्रयास किया है। मुझे विश्वास है कि अनेक अंग्रेज और भारतीय अधिकारी ईमानदारी के साथ यह मानते हैं कि वे दुनिया की सबसे अच्छी प्रणालियों में से एक को यहां लागू कर रहे हैं, और यह कि भारत धीमी गति से ही सही, निरंतर प्रगति कर रहा है। वे यह नहीं जानते कि एक ओर आतंकवाद की एक सूक्ष्म पर प्रभावशाली

प्रणाली और शक्ति के संगठित प्रदर्शन और दूसरी ओर जवाबी आक्रमण या आत्मरक्षा की सारी शक्तियों से (भारतीयों के) वंचित कर दिए जाने के कारण जनता को शक्तिहीन बना दिया है तथा उनमें अनुकरण की आदत पैदा कर दी है।

निष्कर्ष रूप में गांधीजी ने यह मत व्यक्त किया कि "बुराई के साथ असहयोग उतना ही पुनीत कर्त्तव्य है जितना कि भलाई के साथ सहयोग।" न्यायाधीश ने कहा कि वह गांधीजी को वही दंड दे रहा है जो 1908 में लोकमान्य तिलक को दिया गया था।

खिलाफत का प्रश्न भी बहुत जल्द अप्रासंगिक हो गया। तुर्की की जनता मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में उठ खड़ी हुई और उसने नवंबर 1922 में सुल्तान को सत्ता से वंचित कर दिया। कमाल पाशा ने तुर्की के आधुनिकीकरण के लिए तथा उसे धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाने के लिए अनेक कदम उठाए। उसने खिलाफत (खलीफा का पद) समाप्त कर दिया और संविधान से इस्लाम को निकालकर राज्य को धर्म से अलग कर दिया। उसने शिक्षा का राष्ट्रीयकरण किया, स्त्रियों को व्यापक अधिकार दिए, यूरोपीय ढंग के कानून बनाए, और खेती के विकास के तथा आधुनिक उद्योग-धंधों की स्थापना के लिए कदम उठाए। इन सभी कदमों ने खिलाफत आंदोलन की बुनियाद ही नष्ट कर दी।

असहयोग आंदोलन में खिलाफत के आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इसके कारण नगरों के मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए और इस तरह देश में उन दिनों राष्ट्रवादी उत्साह तथा उल्लास का जो वातावरण था उसे बनाने में इसका भी एक हद तक योगदान था। परिणामस्वरूप ऐसा कहा जाता है कि धार्मिक चेतना का राजनीति में समावेश हुआ और अंततः सांप्रदायिक शक्तियां मजबूत हुईं। यह बात कुछ हद तक सही भी है। राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा केवल मुसलमानों की एक मांग उठाना कोई गलत नहीं था। समाज के विभिन्न अंग अपनी विशिष्ट मांगों और अनुभवों के द्वारा स्वतंत्रता की आवश्यकता को समझें, ऐसा अपरिहार्य था। फिर भी मुसलमानों की धार्मिक राजनीतिक चेतना को ऊपर उठाकर धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक चेतना के स्तर तक ले जाने में राष्ट्रवादी नेतृत्व कुछ सीमा तक असफल रहा। इसके साथ ही यह भी ध्यान रहे कि खलीफा के प्रति मुसलमानों की चिंता से भी बड़े पैमाने पर उनकी भावनाओं का प्रतिनिधित्व खिलाफत आंदोलन ने किया। वास्तव में यह मुसलमानों में साम्राजयवाद- विरोधी भावनाओं के प्रसार का ही एक पक्ष था। खिलाफत आंदोलन में इन भावनाओं को ही ठोस अभिव्यक्ति मिली। आखिरकार, जब कमाल पाशा ने 1924 में खिलाफत को समाप्त कर दिया तो भारत में कोई प्रतिरोध नहीं हुआ।

यहां यह बात ध्यान रहे कि देखने में असहयोग और नागरिक अवज्ञा आंदोलन तो असफल रहे थे, मगर इसके कारण राष्ट्रीय आंदोलन अनेक अर्थों में और मजबूत हुआ था। राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय आंदोलन अब देश के दूर-दराज के स्थानों तक पहुंच चुके थे। लाखों-लाख किसान, दस्तकार और शहरी गरीब राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए थे। भारतीय समाज के सभी वर्गों का राजनीतिकरण हुआ था। स्त्रियां आंदोलन में उतरी थीं। लाखों-लाख स्त्री-पुरुषों के इसी राजनीतिकरण तथा सक्रियता ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को क्रांतिकारी चरित्र प्रदान किया।

ब्रिटिश शासन दो धारणाओं पर आधारित था—प्रथम, अंग्रेज़ भारतीयों के भले के लिए ही भारत में शासन कर रहे थे और, द्वितीय, यह अजेय था और इसे उखाड़ फेंकना असंभव था। जैसा कि हम देख चुके हैं, पहली धारणा को चुनौती नरमपंथी राष्ट्रवादियों ने दी थी जिन्होंने औपनिवेशिक शासन की एक शक्तिशाली अर्थशास्त्रीय आलोचना सामने रखी थी। अब राष्ट्रीय आंदोलन के सामूहिक चरण में यह हुआ कि इस आलोचना को भाषणों, पर्चों, नाटकों, गीतों, प्रभातफेरियों और समाचार-पत्रों के द्वारा जोशीले आंदोलनकारियों ने जन-जन तक पहुंचा दिया।

ब्रिटिश शासन की अजेयता की धारणा को चुनौती सत्याग्रह और जनसंघर्ष से मिली। जैसा कि "भारत : एक खोज" में जवाहरलाल नेहरु ने लिखा है :

> उनकी (गांधीजी की) शिक्षा का मूल तत्व निर्भीकता थी ... शारीरिक साहस ही नहीं बल्कि मन में भी भय का अभाव ... परंतु भारत में ब्रिटिश शासन का प्रमुख आवेग भय था—व्यापक, दमतोड़, गलाघोंटू भय; सेना, पुलिस, चारों ओर फैली खुफिया पुलिस का भय; अधिकारी वर्ग का भय; दमनकारी कानूनों और जेल का भय; बेरोजगारी और भुखमरी का भय, जो हमेशा आस-पास मंडराते रहते थे। यहीं वह सर्वव्यापी भय था जिसके खिलाफ गांधीजी की शांत और दृढ़ वाणी गूंजी : भय न करो।

असहयोग आंदोलन का एक प्रमुख परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता के मन से भय की भावना उड़ गई। भारत में ब्रिटिश सत्ता की हैवानी ताकत अब उनके लिए डर का कारण न रही। जनता में ऐसा बेपनाह आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जागा जो किसी भी हार या धक्के से नष्ट न हो। इसे गांधीजी ने इस घोषणा के द्वारा व्यक्त किया कि "1920 में जो संघर्ष आरंभ हुआ वह एक समझौता विहीन संघर्ष है चाहे वह एक माह चले या एक साल, या कई माह या कई साल।"

स्वराज्यवादी

वर्ष 1922-28 के दौरान भारतीय राजनीति में बड़ी-बड़ी घटनाएं घटीं। असहयोग आंदोलन के रोके जाने से तात्कालिक रूप में राष्ट्रवादियों के बीच हताशा की भावना फैली। इसके अलावा जिन नेताओं को यह फैसला करना था कि आंदोलन को निष्क्रिय बनने से कैसे बचाया जाए, उनके बीच गहरे मतभेद उभर आए। इनमें से एक विचार के प्रतिनिधि चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरु थे जिन्होंने बदली हुई परिस्थितियों में एक नए प्रकार की राजनीतिक गतिविधि का सुझाव दिया। उनका कहना था कि राष्ट्रवादियों को विधानमंडलों का बहिष्कार समाप्त करके उनमें भाग लेना चाहिए, सरकारी योजनाओं के अनुसार उनके चलने में बाधा डालनी चाहिए, उनकी कमजोरियों को सामने लाना चाहिए, उनको राजनीतिक संघर्ष का क्षेत्र बनाना चाहिए, तथा इस प्रकार जन-उत्साह जगाने में उनका उपयोग करना चाहिए। "अपरिवर्तनवादी" कहे जाने वाले सरदार वल्लभभाई पटेल, डा. अंसारी, बाबू राजेंद्र प्रसाद तथा दूसरे लोगों ने विधानमंडलों में जाने का विराध किया। उन्होंने चेतावनी दी कि संसदीय राजनीति में भाग लेने से जनता के बीच काम की उपेक्षा होगी, राष्ट्रवादी उत्साह कमजोर पड़ेगा और नेताओं के बीच प्रतिद्वंद्विता पैदा होगी। इसलिए ये लोग चरखा चलाने, चरित्र-निर्माण, हिंदू-मुस्लिम एकता, छुआछूत का खातमा तथा गांवों में और गरीबों के बीच निचले स्तरों पर कार्य, जैसे रचनात्मक कार्यों पर जोर देते रहे। उनका कहना था कि इससे देश धीरे-धीरे जन-संघर्ष के एक और दौर के लिए तैयार होगा।

दिसम्बर 1922 में दास और मोतीलाल नेहरु ने कांग्रेस-खिलाफत स्वराज्य पार्टी का स्थापना की। इसके अध्यक्ष दास थे और मोतीलाल नेहरु इसके सचिवों में से एक थे। नई पार्टी को कांग्रेस के अंदर ही एक समूह के रूप में काम करना था। इसने कांग्रेस के सभी कार्यक्रमों को स्वीकार किया, एक बात को छोड़कर कि यह पार्टी कौंसिल के चुनावों में भाग लेगी।

स्वराज्यवादियों तथा "अपरिवर्तनवादियों" के बीच अब एक तीखा राजनीतिक विवाद उठ खड़ा हुआ। गांधीजी इस बीच स्वास्थ्यगत कारणों से 5 फरवरी, 1924 को रिहा कर दिए गए थे, मगर वे भी इसमें एकता कायम करने में असफल रहे। लेकिन दोनों ही पक्ष सूरत में 1907 में हुए विभाजन के कड़वे अनुभव को दोहराने से बचना चाहते थे। गांधीजी की सलाह पर दोनों समूहों ने कांग्रेस में ही रहकर अलग-अलग ढंग से काम करने का फैसला किया।

स्वराज्यवादियों को तैयारी के लिए बहुत कम समय मिला था, मगर नवंबर 1923 के चुनावों में उन्हें अच्छी

सफतला मिली। केंद्रीय धारा-सभा की चुनाव से भरी जाने वाली 101 सीटों में से 42 उन्होंने जीत लीं। दूसरे भारतीय समूहों के सहयोग से उन्होंने केंद्रीय धारा-सभा में तथा अनेक प्रांतीय परिषदों में सरकार को बार-बार हराया। स्वशासन, नागरिक स्वाधीनताओं और औद्योगिक विकास के प्रश्नों पर अपने प्रभावशाली भाषणों के द्वारा उन्होंने आंदोलन चलाया। मार्च 1925 में एक प्रमुख राष्ट्रवादी नेता विट्ठलभाई पटेल को केंद्रीय धारा-सभा का अध्यक्ष (स्पीकर) चुनवाने में भी वे सफल रहे। जिस समय राष्ट्रीय आंदोलन फिर से शक्ति जुटाने में लगा था ऐसे समय में उन्होंने राजनीतिक शून्य को भरा। उन्होंने 1919 में सुधार कानून के खोखलेपन को भी उजागर किया। लेकिन वे भारत की निरंकुश सरकार की नीतियां बदलवाने में असफल रहे, और पहले मार्च 1926 और फिर जनवरी 1930 में उन्हें केंद्रीय धारा-सभा का बहिष्कार करना पड़ा।

इस बीच "अपरिवर्तनवादी" शान्ति के साथ रचनात्मक कार्यों में लगे रहे। इस कार्य के प्रतीक रूप में पूरे देश में सैकड़ों आश्रम स्थापित हुए जिनमें युवा स्त्री-पुरुष चरखा और खादी को प्रोत्साहित करते थे तथा निचली जातियों और आदिवासी जनता के बीच काम करते थे। ऐसे सैकड़ों राष्ट्रीय स्कूल और कालेज स्थापित हुए जिनमें युवक-युवतियों को उपनिवेश-विरोधी विचारधारा में प्रशिक्षित किया जाता था। इसके अलावा रचनात्मक कार्य करने वालों ने नागरिक अवज्ञा आंदोलनों के संगठनकर्ताओं के रूप में उसकी रीढ़ की हड्डी का काम किया।

स्वराज और "अपरिवर्तनवादी" भले ही अपने-अपने ढंग से काम कर रहे हों, लेकिन उनके बीच कोई बुनियादी मतभेद नहीं था। फिर चूंकि दोनों के परस्पर अच्छे संबंध थे और दोनों ही एक-दूसरे के साम्राज्यवाद विरोधी चरित्र को स्वीकार करते थे, इसलिए बाद में, जब एक नए राष्ट्रीय संघर्ष का समय आया तो दोनों असानी से एकजुट हो गए। इस बीच जून 1925 में चितरंजन दास के निधन से राष्ट्रीय आंदोलन और स्वराज्यवादियों को एक और गहरा धक्का लगा।

असहयोग आंदोलन में जब उतार आया और जनता में कुंठा की भावना भर गई ऐसी स्थिति में सांप्रदायिकता अपना घिनौना सिर उठाने लगी। सांप्रदायिक तत्वों नें स्थिति का फायदा उठाकर अपने विचारों का प्रचार किया और 1923 के बाद देश में एक के बाद एक कई सांप्रदायिक दंगे हुए। मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा दिसंबर 1917 में स्थापित फिर सक्रिय हो उठीं। नतीजा यह हुआ कि हम सबसे पहले भारतीय हैं, यह भावना काफी पहले से चली आ रही थी इसको गहरा धक्का लगा। स्वराजवादी पार्टी के नेता मोतीलाल नेहरु और दास कट्टर राष्ट्रवादी थे, मगर सांप्रदायिकता ने इस पार्टी को भी विभाजित कर दिया। "प्रत्युत्तरवादी" (रिस्पाँसिविस्ट) कहे जाने वालों के एक वर्ग ने सरकार को अपना सहयोग करने का प्रस्तपव रखा ताकि तथाकथित हिंदू हितों की रक्षा की जा सके। इस गुट में मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय और एन.सी. केलकर शामिल थे। उन्होंने मोतीलाल नेहरु पर हिंदुओं को धोखा देने, हिंदू-विरोधी होने, गौ हत्या का पक्ष लेनें तथा गौमांस खाने का आरोप लगाया। सत्ता के टुकड़ों को हथियाने के लिए लड़ने में मुस्लिम संप्रदायवादी भी पीछे नहीं रहे। गांधीजी ने बार-बार जोर देकर कहा था कि "हिंदू-मुस्लिम एकता हर काल में और सभी परिस्थितियों में हमारी आस्था होनी चाहिए," उन्होंने ही हस्तक्षेप करके स्थिति सुधारने की कोशिश की। सांप्रदायिक दंगों के रूप में देखी गई दरिंदगी का प्रायश्चित करने के लिए उन्होंनें दिल्ली में मौलाना मुहम्मद अली के घर में सितंबर 1924 में 21 दिनों का उपवास किया। लेकिन उनके प्रयासों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

देश में स्थिति सचमुच गंभीर थी। राजनीतिक उदासीनता आम बात थी, गांधीजी ने राजनीति से संन्यास ले लिया था, स्वराज्यवादी बंट चुके थे और सांप्रदायिकता फल-फूल रही थी। मई 1927 में गांधीजी ने लिखा:

"प्रार्थना और प्रार्थना का प्रत्युत्तर मेरी अकेली आशा है।" लेकिन राष्ट्रीय उभार की शक्तियां चुपके-चुपके बढ़ रही थीं। नवंबर 1927 में जब साइमन कमीशन के गठन की घोषणा हुई तो भारत इस अंधेरे से फिर बाहर निकला और राजनीतिक संघर्ष का एक नया युग आरंभ हुआ।

अभ्यास

1. प्रथम विश्व युद्ध और उसके तत्काल बाद कुछ ऐसी बातें हुईं जिनके कारण एशिया में सामान्य रूप से और भारत में विशेष रूप से ऐसी स्थितियां पैदा हुईं कि चारों और राष्ट्रवाद का ज्वार-सा उमड़ पड़ा। इस पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. राजनीतिक नेता के रूप में गांधीजी के व्यक्तित्व के आरंभिक विकास का वर्णन कीजिए। उनके आधारभूत राजनीतिक विचारों का विवेचन कीजिए।
3. माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। क्यों अधिकांश भारतीय राजनीतिक जनमत ने उन्हें अस्वीकार कर दिया?
4. खिलाफत के प्रश्न का क्या तात्पर्य है? युद्ध के बाद के वर्षों में भारत में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का यह महत्त्वपूर्ण हिस्सा क्यों बन गया?
5. रोलट एक्ट का क्या अर्थ है? इसके किन प्रावधानों ने लोगों में व्यापक आक्रोश उत्पन्न किया। उन आंदोलनों का वर्णन करिए जिनके माध्यम से जनाक्रोश को अभिव्यक्ति मिली तथा यह भी बताइए कि इनको दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने क्या उपाय किए। जलियांवाला बाग की घटना तथा पंजाब और देश के अन्य स्थानों में घटी घटनाओं का हवाला दीजिए।
6. वर्ष 1919 से 1922 के बीच असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन के विकास पर प्रकाश डालिए। उनके मुख्य लक्ष्य और कार्यक्रम क्या थे? असहयोग आंदोलन क्यों वापस ले लिया गया?
7. किस तरह असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन राष्ट्रवादी आंदोलन में नई अवस्था के सूचक थे।
8. स्वराज्यवादी कौन थे? राष्ट्रवादी आंदोलन में उनकी भूमिका और गतिविधियों की विवेचना कीजिए।
9. अपरिवर्तन वादियों की गतिविधियों और उनके महत्त्व का विवेचन कीजिए।
10. असहयोग आंदोलन वापस लेने के बाद के सालों में भयंकर सांप्रदायिक संघर्ष हुए। क्यों?
11. निम्नांकित सामग्री का संकलन कीजिए।
    सामूहिक परियोजना के रूप में 1919-1922 के दौरान स्वतंत्रता संघर्ष के विभिन्न पक्षों के विषयों में संकल्प, समाचार-पत्रों की रपटें, भाषणों के चुने हुए अंश, लेखों के अंश और मुकदमों की सुनवाइयों और जांच रिपोर्टें और तस्वीरें।

अध्याय : 13

स्वराज के लिए संघर्ष–II
(1927 - 1947)

नई शक्तियों का अविर्भाव

वर्ष 1927 में राष्ट्रीय आंदोलन में फिर से शक्ति पाने के अनेक संकेत देखे गए। इसी वर्ष समाजवाद की नई प्रवृति का भी उदय हुआ। मार्क्सवाद और दूसरे समाजवादी विचार बहुत तेज़ी से फैले। राजनीतिक दृष्टि से इस शक्ति की अभिव्यक्ति कांग्रेस के अंदर एक वामपंथ के उदय के रूप में हुई। इस नई प्रवृति के नेता जवाहरलाल नेहरु और सुभाषचंद्र बोस थे। इस वामपंथ ने अपना ध्यान साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष तक ही सीमित नहीं रखा। साथ ही साथ उसने पूंजीपतियों और जमींदारों के आंतरिक वर्गीय शोषण का सवाल भी उठाया।

जवाहरलाल नेहरु और सुभाषचंद्र बोस

भारत के नौजवान सक्रिय हो रहे थे। पूरे देश में नौजवान सभाएं बन रही थीं और छात्रों के सम्मेलन हो रहे थे। पहला अखिल-बंगाल छात्र सम्मेलन अगस्त 1928 में जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता में हुआ। इसके बाद देश में अनेक दूसरे छात्र संगठन बने तथा सैकड़ों छात्र-युवा सम्मेलन आयोजित किए गए। भारत के युवा राष्ट्रवादी धीरे-धीरे समाजवाद की तरफ आकर्षित होने लगे थे और देश जिन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बुराइयों से पीड़ित था, उनके लिए दूरगामी हल सुझाने लगे थे। उन्होंने पूर्ण स्वाधीनता का कार्यक्रम भी सामने रखा तथा उसे लोकप्रिय बनाया। देश में समाजवादी और कम्युनिस्ट गुटों की स्थापना हुई। रूसी क्रांति ने अनेक युवा राष्ट्रवादियों को अपनी ओर आकर्षित किया था। उनमें से अनेक गांधीवादी राजनीतिक विचारों और कार्यक्रमों से असंतुष्ट थे। वे मार्गदर्शन पाने के लिए समाजवादी विचारधारा की ओर मुड़े। मानवेंद्रनाथ राय कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के नेतृत्व-वर्ग में चुने गए; इसके लिए चुने जाने वाले वे पहले भारतीय थे। वर्ष 1924 में सरकार ने मुजफ्फर अहमद और श्रीपाद अमृत डांगे को गिरफ्तार करके उन पर कम्यूनिस्ट विचारों के प्रचार का आरोप लगाया, और उन्हें तथा कुछ और लोगों को लेकर कानपुर षड्यंत्र का मुकदमा चलाया। वर्ष 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी

की स्थापना हुई। इसके अलावा देश के दूसरे भागों में भी मजदूर-किसान पार्टियां बनीं। इन पार्टियों और समूहों ने मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट विचारों का प्रचार किया। साथ ही वे लोग राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस के अभिन्न अंग भी थे।

किसान और मजदूरों में भी पुनः हलचल मच रही थी। संयुक्त प्रांत में बंटाईदारी के कानूनों में संशोधन के लिए बंटाईदारों ने बड़े पैमाने पर आंदोलन चलाया। ये बंटाईदार लगान में कमी, बेदखली से सुरक्षा तथा कर्ज में राहत चाहते थे। गुजरात के किसानों ने जमीन की मालगुजारी बढ़ाने के सरकारी प्रयासों का विरोध किया। बारदोली का प्रसिद्ध सत्याग्रह इसी समय हुआ। वर्ष 1928 में सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसानों ने टैक्स न देने का आंदोलन चलाया और अंत में अपनी मांगें मनवाने में सफल रहे। अखिल-भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर संघों का भी तेज़ी से विकास हुआ। वर्ष 1928 मे अनेक हड़तालें हुई। एक लंबी हड़ताल खड़गपुर की रेलवे वर्कशाप में दो माह तक चली। दक्षिण भारतीय रेल मजदूरों ने भी हड़ताल की। जमशेदपुर में टाटा के लोहा-इस्पात कारखाने में भी एक हड़ताल हुई। इस हड़ताल के समाधान में सुभाषचंद्र बोस की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस काल की सबसे प्रमुख हड़ताल बंबई की कपड़ा मिलों में हुई, जहां लगभग डेढ़ लाख मजदूर पांच महीनों से अधिक समय तक हड़ताल पर रहे। यह हड़ताल कम्युनिस्टों के नेतृत्व में हुई। वर्ष 1928 में हुई हड़तालों में पांच लाख से अधिक मजदूरों ने भाग लिया।

इस नई लहर का एक और संकेत क्रांतिकारियों के आंदोलन की गतिविधियों में देखने को मिला। अब यह आंदोलन भी समाजवाद की ओर झुक रहा था। प्रथम असहयोग आंदोलन की असफलता के कारण रुका हुआ क्रांतिकारी आंदोलन फिर से उठ खड़ा हुआ था। एक अखिल-भारतीय सम्मेलन के बाद अक्तूबर 1924 में सशस्त्र क्रांति के लिये संगठन के उद्देश्य से हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ की स्थापना हुई। सरकार ने इस पर एक कड़ा प्रहार किया। क्रांतिकारी युवकों को बड़ी संख्या में गिरफ्तार करके उन पर काकोरी षड्यंत्र केस (1925) नामक मुकदमा चलाया गया। सत्रह लोगों को लंबी-लंबी जेल की सजाएं हुईं, चार को आजीवन कारावास का दंड मिला, तथा रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाकुल्ला समेत चार लोगों को फांसी दे दी गई। क्रांतिकारी जल्द ही समाजवादी विचारों के प्रभाव में आ गए, और 1928 में चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में उन्होंने अपने संगठन का नाम बदलकर हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ (हिसप्रसं) कर दिया।

वे अब धीरे-धीरे व्यक्तिगत वीरता के कामों और हिंसात्मक गतिविधियों से भी दूर हटने लगे। लेकिन 30 अक्तूबर, 1928 को साइमन कमीशन विरोधी एक

अशफाकुल्ला
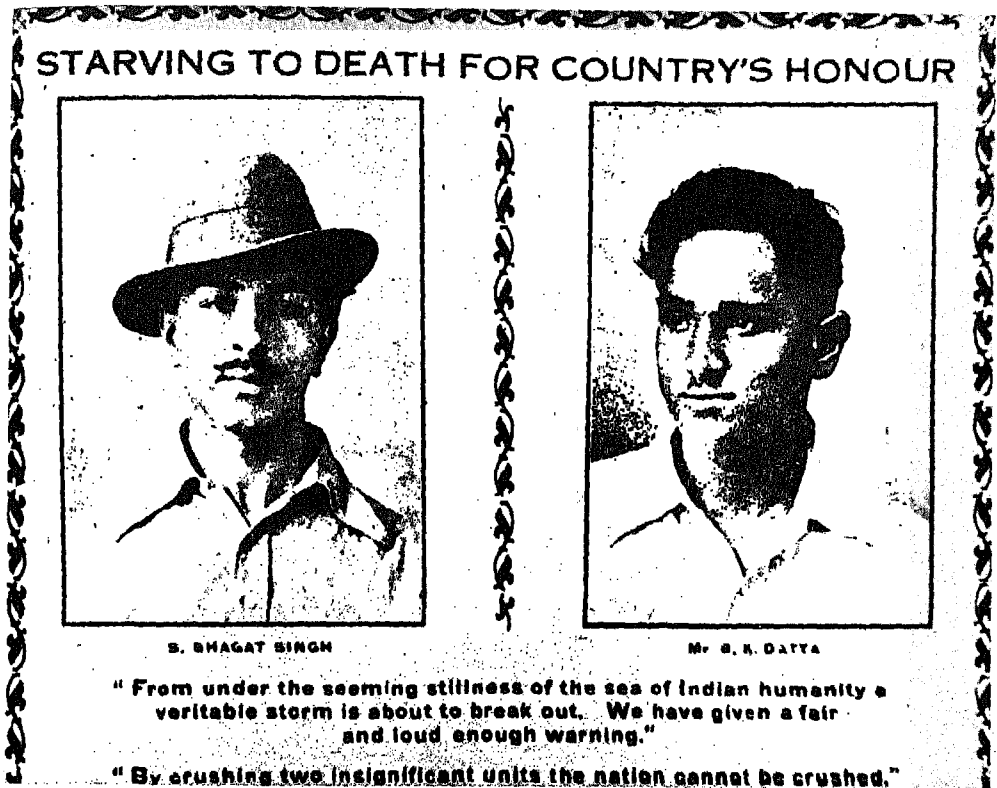
भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त आदि की भूख हड़ताल के दौरान निकाले गए पोस्टर का एक हिस्सा

प्रदर्शन पर पुलिस के बर्बर लाठी चार्ज के कारण एक आकस्मिक परिवर्तन आया। इसमें लाठियों की चोट खाकर पंजाब के महान नेता लाला लाजपतराय शहीद हो गए। युवक इससे क्रुद्ध हो उठे और 17 दिसंबर, 1928 को भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और राजगुरु ने लाठीचार्ज का नेतृत्व करने वाले ब्रिटिश पुलिस अधिकारी सांडर्स को गोलियों से भून दिया।

हिसप्रसं के नेताओं ने यह भी निर्णय किया कि अपने बदले हुए राजनीतिक उद्देश्यों तथा जन-क्रांति की आवश्यकता के बारे में जनता को बतलाएं। परिणामस्वरूप 8 अप्रैल, 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केंद्रीय धारा-सभा में एक बम फेंका। बम से किसी को नुकसान नहीं पहुंचा; उसे जान-बुझकर ऐसा बनाया गया था कि किसी को चोट न आए। इस काम का उद्देश्य किसी की हत्या करना नहीं था, बल्कि आतंकवादियों के एक पर्चे के अनुसार "बहरों को सुनाना" था। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त चाहते तो बम फेंकने के बाद आसानी से भाग निकलते, मगर उन्होंने जान-बुझकर अपने को गिरफ्तार कराया क्योंकि वे क्रांतिकारी प्रचार के लिए अदालत को एक मंच के रूप में उपयोग करना चाहते थे।

बंगाल में भी क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की गतिविधियां एक बार फिर उभरीं। अप्रैल 1930 में चटगांव के सरकारी शस्त्रागार पर क्रांतिकारियों ने योजनाबद्ध ढंग

से एक बड़ा छापा मारा। इसका नेतृत्व मास्टर सूर्यसेन कर रहे थे। अलोकप्रिय सरकारी अधिकारियों पर कई हमले किए गए। बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन की एक उल्लेखनीय विशेषता उसमें युवतियों की भागीदारी थी। चटगांव के क्रांतिकारी क्रांतिकारी आंदोलन के विकास के सूचक थे। उनका काम व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक था और उद्देश्य औपनिवेशिक शासन के अंगों पर प्रहार करना था।

सरकार ने क्रांतिकारियों पर एक तीखा प्रहार किया। उनमें से अनेकों गिरफ्तार कर लिए गए और उन पर अनेकों प्रसिद्ध मुकदमे चलाए गए। भगतसिंह तथा कुछ और लोगों पर सांडर्स की हत्या का मुकदमा भी चला। इन युवक क्रांतिकारियों ने अदालतों में दिए गए अपने बयानों से तथा अपने निर्भीक और अवज्ञापूर्ण व्यवहार से जनता का दिल जीत लिया। उनके बचाव के लिए कांग्रेसी नेता आगे आए जो वैसे अहिंसा के समर्थक थे। जेलों की अमानवीय परिस्थितियों के विरोध में उनकी भूख हड़तालें खास तौर पर प्रेरणाप्रद थीं। राजनीतिक बंदियों के रूप में उन्होंने जेलों में अपने साथ सम्मानित तथा सुसंस्कृत व्यवहार किए जाने की मांग की। ऐसी ही एक भूख हड़ताल में 63 दिनों की एतिहासिक भूख हड़ताल के बाद एक दुबले-पतले युवक क्रांतिकारी जतीनदास शहीद हुए। जनता के देशव्यापी विरोध के बावजूद भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च, 1931 को फांसी दे दी गई। फांसी से कुछ दिन पहले जेल सुपरिंटेंडेंट को लिखे गए एक पत्र में इन तीन क्रांतिकारियों ने कहा था : ''बहुत जल्द ही अंतिम संघर्ष की दुदुंभि बजेगी। इसका परिणाम निर्णायक होगा। हमने इस संघर्ष में भाग लिया है और हमें इस पर गर्व है।''
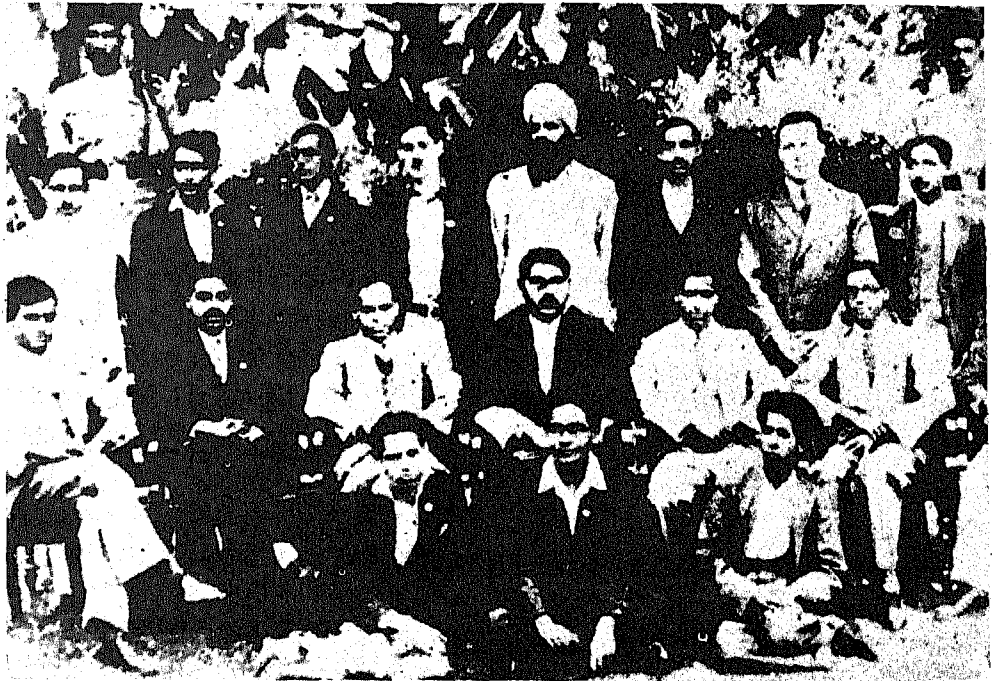
मेरठ षड्यंत्र के अभियुक्त

अपने दो अंतिम पत्रों में 23 वर्षीय भगतसिंह ने समाजवाद में अपनी आस्था भी व्यक्त की। वे लिखते हैं : "किसानों को केवल विदेशी शासन ही नहीं बल्कि जमींदारों और पूंजीपतियों को जुए से भी स्वयं को मुक्त कराना होगा।" 3 मार्च, 1931 को भेजे गए अपने अंतिम संदेश में उन्होंने घोषणा की कि भारत में संघर्ष तब तक जारी रहेगा जब तक कि "मुटठी भर शोषक अपने स्वार्थों के लिए साधारण जनता की मेहनत का शोषण करते रहेंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि ये शोषक शुद्ध रूप से ब्रिटिश पूंजीपति हैं, ब्रिटिश और भारतीय मिलकर शोषण करते हैं, या ये शुद्ध रूप से भारतीय हैं।" भगतसिंह ने समाजवाद की एक वैज्ञानिक परिभाषा की कि इसका अर्थ पूंजीवाद तथा वर्गीय शासन का अंत करना है।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि 1930 के बहुत पहले ही उन्होंने तथा उनके साथियों ने आतंकवाद का त्याग कर दिया था। 2 फरवरी, 1931 को लिखे गए अपने राजनीतिक वसीयतनामे में उन्होंने घोषणा की : "देखने में मैंने एक आतंकवादी की तरह कार्य किया है। लेकिन मैं आतंकवादी नहीं हूं ... मैं अपनी पूरी शक्ति से यह घोषणा करना चाहूंगा कि मैं आतंकवादी नहीं हूं और शायद अपने क्रांतिकारी जीवन के आरंभिक दिनों को छोड़कर मैं कभी आतंकवादी नहीं था। और मुझे पूरा विश्वास है कि इन विधियों से कुछ भी हासिल नहीं कर सकते।"

भगतसिंह पूरी तरह और चेतन रूप से धर्मनिरपेक्ष भी थे। वे अकसर अपने साथियों से कहते थे कि सांप्रदायिकता उतना ही बड़ा शत्रु है जितना कि उपनिवेशवाद, और इसका सख्ती से मुकाबला करना होगा। वर्ष 1926 में उन्होंने पंजाब में नौजवान भारत सभा की स्थापना में भाग लिया था और इसके प्रथम सचिव बने थे। भगतसिंह ने सभा के जो नियम तैयार किए थे उनमें दो नियम इस प्रकार थे : "सांप्रदायिक विचार फैलाने वाले सांप्रदायिक संगठनों या अन्य पार्टियों से कोई संबंध न रखना", और "लोगों को यह समझाना कि धर्म व्यक्तिगत आस्था का विषय है तथा इस प्रकार उनमें सामान्य सहिष्णुता की भावना जगाना, तथा इसी विचार के अनुसार कार्य करना।"

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का आंदोलन बहुत जल्द समाप्त हो गया, हालांकि इक्की-दुक्की घटनाएं अनेक वर्षों तक जारी रहीं। चंद्रशेखर आजाद 27 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद के एक पार्क में पुलिस से मुकाबला करते हुए मारे गए। बाद में इस पार्क का नाम आजाद पार्क रखा गया। सूर्यसेन फरवरी 1933 में गिरफ्तार कर लिए गए और कुछ समय बाद उन्हें फांसी दे दी गई। सैकड़ों दूसरे क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें लंबी-लंबी सजाएं दी गईं। इनमें से अनेकों को अंडमान के सेलुलर जेल में भेज दिया गया।

इस तरह तीसरे दशक के अंत तक एक नई राजनीतिक परिस्थिति उभरने लगी थी। वायसराय लार्ड इर्विन ने बाद में इन वर्षों के बारे में लिखा, कोई ऐसी नई शक्ति अब कार्यरत थी जिसके महत्त्व को अभी तक उन लोगों ने भी पूरी तरह नहीं समझा है जिनका भारत संबंधी ज्ञान बीस-बीस या तीस-तीस साल पुराना है।" सरकार इस नई प्रवृति को कुचलने पर आमादा थी। जैसा कि हमने देखा, क्रांतिकारियों को निर्ममता के साथ कुचल दिया गया। उभरते मजदूर और कम्युनिस्ट आंदोलनों के साथ भी इसी तरह का बर्ताव किया गया। मार्च 1929 में 31 प्रमुख मजदूर और कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया; इनमें तीन अंग्रेज़ भी थे। फिर इन पर चार वर्षों तक मुकदमा चलाया गया, जिसे मेरठ षड्यंत्र का मुकदमा कहा जाता है। यह 4 वर्षों तक चला और मुकदमे की समाप्ति पर इनको लंबी-लंबी जेल-सजाएं दी गईं।

साइमन कमीशन का बहिष्कार : आंदोलन के इस नए चरण को बल तब मिला, जब नवंबर 1927 में ब्रिटिश सराकर ने इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन किया, जिसे आमतौर पर साइमन कमीशन कहा जाता

कांग्रेस अधिवेशन
1885-1947
भारत की वर्तमान बाह्य सीमा
लाहौर
1893
1900
1909
1929
अमृतसर
1919
मेरठ
1946
दिल्ली
1918
1923
1932
नेपाल
कानपुर
1925
लखनऊ
1899
1916
1936
बांकीपुर
1912
गौहाटी
1926
कराची
1913
1931
इलाहाबाद
1882
1888
1910
बनारस
1905
गया
1922
अहमदाबाद
1902
1921
हरीपुरा
1838
त्रिपुरी
1939
नागपुर
1897
1920
रामगढ़
1940
कलकत्ता
1886
1890
1896
1901
1906
1911
1917
1920
1928
1933
सूरत
1907
फ़ैज़पुर
1936
अमरावती
1891
बम्बई
1885
1889
1904
1915
1918
1934
1942
पूना
1895
बेलगाम
1924
काकेनाडा
1923
मद्रास
1887
1894
1898
1903
1908
1914
1927
लक्षद्वीप (भारत)
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह
(भारत)
निर्देश
कांग्रेस अधिवेशन स्थल

है। साइमन इसके अध्यक्ष थे। इसका उद्देश्य आगे सांविधानिक सुधार के प्रश्न पर विचार करना था। इस कमीशन के सभी सदस्य अंग्रेज़ थे। सभी वर्गों के भारतीयों ने इस घोषणा का विरोध किया। इस बात पर उन्हें सबसे अधिक क्रोध था कि कमीशन में एक भी भारतीय को नहीं रखा गया था और इसके पीछे यह धारणा काम कर रही थी कि स्वशासन के लिए भारतीयों की योग्यता-अयोग्यता का फैसला विदेशी करेंगे। दूसरे शब्दों में, सरकार के इस काम को आत्म-निर्णय के सिद्धांत का उल्लंघन समझा गया तथा ऐसा माना गया कि भारतीयों के आत्मसम्मान को जान-बूझ कर चोट पहुंचाई गई है। वर्ष 1927 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन की अध्यक्षता डा. अंसारी कर रहे थे, उसमें राष्ट्रीय कांग्रेस ने "हर कदम पर और हर रूप में" इस कमीशन के बहिष्कार का निर्णय किया। मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा ने भी कांग्रेस के फैसले का समर्थन किया। वास्तव में, अस्थायी तौर पर ही सही, साइमन कमीशन ने देश के सभी वर्गों और दलों को एक बार फिर एकताबद्ध कर दिया। राष्ट्रवादियों के साथ एकजुटता जतलाने के लिए मुस्लिम लीग ने मिले-जूले चुनाव मंडलों के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया, इस शर्त के साथ कि मुसलमानों के लिए कुछ सीटें आरक्षित रखी जाएं।

सभी महत्त्वपूर्ण भारतीय नेताओं और दलों ने परस्पर एकजुट होकर तथा सांविधानिक सुधारों की एक वैकल्पिक योजना बनाकर साइमन कमीशन की चुनौती का जवाब देने का प्रयास किया। प्रमुख राजनीतिक कार्यकताओं के दर्जनों सम्मेलन और साझी बैठकें

मद्रास में साइमन कमीशन के विरोध में प्रदर्शन

आयोजित की गईं। इसका परिणाम नेहरु रिपोर्ट के रूप में सामने आया जिसके प्रमुख निर्माता मोती लाल नेहरु थे। इसे अगस्त 1928 मे अंतिम रूप दिया गया। दुर्भाग्य से कलकत्ता में दिसंबर 1928 में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन रिपोर्ट को स्वीकार न कर सका। मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा और सिख लीग के कुछ सांप्रदायिक रुझान वाले नेताओं ने इसे लेकर आपत्तियां कीं। इस तरह सांप्रदायिक दलों ने राष्ट्रीय एकता का दरवाजा बंद कर दिया। इसके बाद निरंतर सांप्रदायिकता का विकास हुआ।

यह भी ध्यान रहे कि राष्ट्रवादियों की राजनीति और सांप्रदायवादियों की राजनीति में एक बुनियादी खाई मौजूद थी। राष्ट्रवाद देश के लिए राजनीतिक अधिकार तथा स्वाधीनता पाने के लिए विदेशी सरकार के खिलाफ एक राजनीतिक संघर्ष चला रहे थे। हिंदू या मुस्लिम सांप्रदायवादियों के साथ यह बात नहीं थी। उनकी मांगें राष्ट्रवादियों को ही संबोधित थीं; दूसरी ओर वे समर्थन और सहायता के लिए आमतौर पर विदेशी सरकार का ही मुंह ताकते थे। ऐसा अकसर देखा गया कि वे कांग्रेस से लड़ते थे किंतु अंग्रेजी सरकार से सहयोग करते रहते थे।

सर्वदलीय सम्मेलन की कार्यवाही से कहीं बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण साइमन कमीशन के विरोध में जनता का उभार था। कमीशन के भारत पहुंचने पर एक शक्तिशाली राष्ट्रव्यापी विरोध आंदोलन उठ खड़ा हुआ और राष्ट्रवादी उत्साह तथा एकता नई ऊंचाईयों तक पहुंची।

3 फरवरी को कमीशन के बंबई पहुंचने पर एक अखिल भारतीय हड़ताल की गई। कमीशन जहां-जहां भी गया, वहीं हड़तालों और काले झंडे दिखाकर तथा "साइमन, वापस जाओ" के नारे के साथ उसका स्वागत किया गया। इस अवसर पर जनता के विरोध को कुचलने के लिए सरकार ने निर्मम दमन तथा पुलिस-कार्यवाहियों का सहारा लिया।

साइमन कमीशन विरोधी आंदोलन तात्कालिक रूप में एक व्यापक राजनीतिक संघर्ष को जन्म न दे सका। कारण कि राष्ट्रीय आंदोलन के अघोषित मगर सर्वमान्य नेता, अर्थात् गांधीजी को विश्वास न था कि संघर्ष का समय आ गया है। पर जनता के उत्साह को अधिक समय तक बांधकर नहीं रखा जा सका। अब एक बार फिर देश संघर्ष के लिए कमर कस चुका था।

पूर्ण स्वराज : जनता की इस नई भावना को जल्द ही राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना लिया। गांधीजी सक्रिय राजनीति में वापस लौट आए और दिसंबर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता सम्मेलन में शामिल हुए। कांग्रेस का पहला काम जुझारू वामपंथ से मेल-मिलाप करना था। वर्ष 1929 के ऐतिहासिक लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरु को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। इस घटना का एक रोमानी पहलू भी था। मोतीलाल नेहरु 1928 में कांग्रेस के अध्यक्ष थे और राष्ट्रीय आंदोलन के आधिकारिक प्रमुख के रूप में उनका स्थान अब उनके पुत्र ने ले लिया था। इस तरह आधुनिक इतिहास में एक विशिष्ट परिवार की विजय हुई।

कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में इस नई, जुझारू भावना को आवाज मिली। इस अधिवेशन में पारित एक प्रस्ताव ने पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस का उद्देश्य घोषित किया। 31 दिसंबर, 1929 को स्वाधीनता का नया-नया स्वीकृत तिरंगा झंडा लहराया गया। 26 जनवरी, 1930 को पहला स्वाधीनता दिवस घोषित किया गया। उसके बाद यह दिवस हर साल मनाया जाने लगा, जब लोग यह शपथ लेते थे कि ब्रिटिश शासन की "अधीनता अब और आगे स्वीकार करना मानवता और ईश्वर के प्रति अपराध" होगा। इस अधिवेशन ने एक नागरिक अवज्ञा आंदोलन भी छेड़ने की घोषणा की। लेकिन इसने संघर्ष का कोई कार्यक्रम नहीं तैयार किया। यह काम महात्मा गांधी पर छोड़ दिया गया और पूरे कांग्रेस संगठन को उनकी आज्ञा के अधीन कर दिया गया। गांधीजी

The Pledge of Independence

AS TAKEN BY THE PEOPLE OF INDIA ON PURNA SWARAJ DAY, JANUARY 26, 1930

We believe that it is the inalienable right of the Indian people, as of any other people, to have freedom and to enjoy the fruits of their toil and have the necessities of life, so that they may have full opportunities of growth. We believe also that if any government deprives a people of these rights and oppresses them, the people have a further right to alter it or to abolish it. The British Government in India has not only deprived the Indian people of their freedom but has based itself on the exploitation of the masses, and has ruined India economically, politically, culturally and spiritually. We believe therefore that India must sever the British connection and attain Purna Swaraj or complete independence.

India has been ruined economically. The revenue derived from our people is out of all proportion to our income. Our average income is seven pice per day, and of the heavy taxes we pay 20% are raised from the land revenue derived from the peasantry and 3% from the salt tax, which falls most heavily on the poor.

Village industries, such as hand spinning, have been destroyed, leaving the peasantry idle for at least four months in the year, and dulling their intellect for want of handicrafts, and nothing has been substituted, as in other countries, for the crafts thus destroyed.

Customs and currency have been so manipulated as to heap further burdens on the peasantry. British manufactured goods constitute the bulk of our imports. Customs duties betray clear partiality for British manufactures, and revenue from them is used not to lessen the burden on the masses but for sustaining a highly extravagant administration. Still more arbitrary has been the manipulation of the exchange ratio which has resulted in millions being drained away from the country.

Politically, India's status has never been so reduced as under the British regime. No reforms have given real political power to the people. The tallest of us have to bend before foreign authority. The rights of free expression of opinion and free association have been denied to us and many of our countrymen are compelled to live in exile abroad and cannot return to their homes. All administrative talent is killed and the masses have to be satisfied with petty village offices and clerkships.

Culturally, the system of education has torn us from our moorings and our training has made us hug the very chains that bind us.

Spiritually, compulsory disarmament has made us unmanly and the presence of an alien army of occupation, employed with deadly effect to crush in us the spirit of resistance, has made us think that we cannot look after ourselves or put up a defence against foreign aggression, or even defend our homes and families from the attacks of thieves, robbers and miscreants.

We hold it to be a crime against man and God to submit any longer to a rule that has caused this fourfold disaster to our country. We recognise, however, that the most effective way of gaining our freedom is not through violence. We will therefore prepare ourselves by withdrawing, so far as we can, all voluntary association from the British Government, and will prepare for civil disobedience, including non-payment of taxes. We are convinced that if we can but withdraw our voluntary help and stop payment of taxes without doing violence, even under provocation, the end of this inhuman rule is assured. We therefore hereby solemnly resolve to carry out the Congress instructions issued from time to time for the purpose of establishing Purna Swaraj.

26 जनवरी, 1930 में समूचे देश में जनता द्वारा निकाले गए जुलूसों के अवसर पर 'स्वतंत्रता की शपथ' ली गई।

के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन एक बार फिर सरकार के मुकाबले खड़ा हुआ। देश अब एक बार फिर आशा, उल्लास और मुक्त होने की दृढ़ भावना से भर उठा।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन

दूसरा नागरिक अवज्ञा आंदोलन 12 मार्च, 1930 को गांधीजी के प्रसिद्ध दांडी मार्च के साथ आरंभ हुआ। इस दिन 78 चुने हुए अनुयायियों को साथ लेकर गांधीजी साबरमती आश्रम से चले, और लगभग 375 किलोमीटर दूर, गुजरात के समुद्र-तट पर स्थित दांडी गांव पहुंचे। उनकी यात्रा, उनके भाषणों तथा जनता पर उनके प्रभाव की रिपोर्टें प्रतिदिन समाचार-पत्रों में छपती रहीं। रास्ते में पड़ने वाले गांवों के सैकड़ों अधिकारियों ने अपने पदों से त्याग-पत्र दे दिए। गांधीजी 6 अप्रैल को दांडी पहुंचे, समुद्र-तट से मुट्ठी भर नमक उठाया, और इस प्रकार नमक-कानून को तोड़ा। यह इस बात का प्रतीक था कि भारतीय जनता अब ब्रिटिश कानूनों और ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जीने के लिए तैयार नहीं है। गांधीजी ने घोषणा की :

> भारत में ब्रिटिश शासन ने इस देश को नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विनाश के कगार तक पहुंचा दिया है। मैं इस शासन को एक अभिशाप मानता हूं। मैं इस शासन-प्रणाली को नष्ट करने पर आमादा हूं ... अब राजद्रोह मेरा धर्म बन चुका है। हमारा संघर्ष एक अहिंसक युद्ध है। हम किसी की हत्या नहीं करेंगे, मगर इस शासन रूपी अभिशाप को नष्ट होते देखना हमारा धर्म है।

आंदोलन अब तेजी से फैल चला। पूरे देश में नमक-कानून तोड़े गए। फिर उसके बाद महाराष्ट्र, कर्नाटक और मध्य भारत में जंगल-कानून तोड़े गए, और पूर्वी भारत में ग्रामीण जनता ने चौकीदारी कर अदा करने से इनकार कर दिया। देश में हर जगह जनता हड़तालों, प्रदर्शनों और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में भाग लेने लगी और कर अदा करने से इनकार करने लगी। लाखों भारतीयों ने सत्याग्रह किया। देश के अनेक भागों में किसानों ने जमीन की मालगुजारी और लगान देने से इनकार कर दिया। उनकी जमीनें जब्त कर ली गईं। इस आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता स्त्रियों की भागीदारी थी। हज़ारों स्त्रियां घरों के अंदर से बाहर निकलीं और सत्याग्रह में भाग लिया। विदेशी वस्त्र या शराब बेचने वाली दुकानों पर धरना देने में उनकी सक्रिय भूमिका रही। जुलूसों में वे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलीं।

आंदोलन बढ़कर भारत के एकदम उत्तर-पश्चिमी छोर तक भी पहुंचा और बहादुर और शेरदिल पठानों में जोश-सा भर गया। "सीमांत गांधी" के नाम से जाने जाने वाले खान अब्दुल गुफ्फार खान के नेतृत्व में पठानों ने खुदाई खिदमतगार गफ्फार (ईश्वर के सेवक) नामक संगठन बना लिया, जो जनता के बीच "लाल कुर्ती वाले" कहलाते थे। ये लोग अहिंसा और स्वाधीनता संघर्ष को समर्पित थे। इस समय पेशावर में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। गढ़वाली सिपाहियों के दो प्लाटूनों ने अहिंसक प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से मना कर दिया इसके नेता चंद्र सिंह गढ़वाली थे। इसके बदले में सिपाहियों का कोर्ट मार्शल किया गया और लंबी-लंबी जेल सजाएं दी गईं। इस घटना से स्पष्ट हो गया कि

खान अब्दुल गफ्फार खान

राष्ट्रवाद की भावना भारतीय सेना तक में फैलने लगीं थी जो ब्रिटिश शासन का प्रमुख आधार थी।

इसी तरह आंदोलन की गूंज देश के एकदम पूर्वी कोनों में सुनाई पड़ी। इसमें मणिपुरी जनता की बहादुरी से भरपूर भागीदारी रही। नागालैंड ने रानी गिडालू जैसी वीरांगना को जन्म दिया। इस वीरबाला ने मात्र 13 वर्ष की आयु में कांग्रेस और गांधीजी के आह्वान पर विदेशी शासन के खिलाफ विद्रोह का झंडा उठा लिया। वर्ष 1932 में यह युवा रानी पकड़ी गई और उसे आजीवन कारावास की सजा मिली। रानी के जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा असम की विभिन्न जेलों की अंधेरी कोठरियों में गुजर गया और उसे मुक्ति 1947 में स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा मिली। उसके बारे में जवाहरलाल नेहरु ने 1937 में लिखा था : "एक दिन आएगा जब भारत उसे याद करेगा और उसका सम्मान करेगा।"

सरकार ने इस राष्ट्रीय संघर्ष के साथ पहले जैसा ही व्यवहार किया। निर्मम दमन, निहत्थे स्त्री-पुरुषों पर लाठी और गोली की बौछार, आदि के द्वारा इसे कुचलने के प्रयास किए गए। गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेताओं समेत 90,000 से अधिक सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए। कांग्रेस को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। समाचारों पर कड़ा सेंसर लगाकर राष्ट्रवादी प्रेस का गला घोंट दिया गया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार पुलिस की गोलीबारी में 110 से अधिक लोग मारे गए और 300 से अधिक घायल हुए। गैर-सरकारी आंकड़ों के अनुसार मृतकों की संख्या इससे कहीं बहुत अधिक थी। फिर लाठी चार्ज में हज़ारों लोगों के सर फूटे और हड्डियां टूटीं। खासकर दक्षिण भारत में भयानक किस्म का दमन देखने को मिला। पुलिस अकसर लोगों को खादी या गांधी टोपी पहने देखकर ही पीट देती थी।

इस बीच 1930 में ब्रिटिश सराकर ने लंदन में भारतीय नेताओं और सरकारी प्रवक्ताओं का पहला गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया। इसका उद्देश्य साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करना था। लेकिन कांग्रेस ने सम्मेलन का बहिष्कार किया और उसकी कार्यवाहियां बेकार गईं। भारत के बारे में कांग्रेस के बिना सम्मेलन यूं ही था जैसे राम के बिना कोई रामलीला।

अब सरकार ने कांग्रेस से किसी सहमति पर पहुंचने के लिए बातचीत शुरू की ताकि कांग्रेस इस सम्मेलन में भाग ले। अंत में लार्ड इर्विन और गांधीजी के बीच मार्च 1931 में एक समझौता हुआ। सरकार अहिंसक रहने वाले राजनीतिक बंदियों को रिहा करने पर तैयार हो गई। उपयोग के लिए नमक बनाने का अधिकार तथा विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों पर धरना देने का अधिकार भी मान लिए गए। तब कांग्रेस ने नागरिक अवज्ञा आंदोलन रोक दिया और दूसरे गोलमेज

बंबई में सत्याग्रहियों पर लाठी चार्ज

सम्मेलन में भाग लेने पर तैयार हो गई। अनेक कांग्रेसी नेता और खासकर युवक वामपंथी गांधी-इर्विन समझौते के विरोधी थे, क्योंकि सरकार ने एक भी प्रमुख राष्ट्रवादी मांग नहीं मानी थी। सरकार ने यह मांग तक नहीं मानी थी कि भगतसिंह तथा उनके दो साथियों की फांसी की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया जाए। लेकिन गांधीजी को विश्वास था कि लार्ड इर्विन और ब्रिटिश भारतीय माँगों पर बातचीत के बारे में गंभीर थे। सत्याग्रह की उनकी धारणा में यह भी शामिल था कि प्रतिपक्षी को हृदय-परिवर्तन का अवसर दिया जाए। उनकी रणनीति रस समझ पर आधारित थी कि कोई भी जन-आंदोलन निश्चित ही बहुत संक्षिप्त होगा और बहुत दिनों तक जारी न रह सकेगा क्योंकि जनता की बलिदान की क्षमता अनंत नहीं होती। परिणामस्वरूप कानून विरोधी जनसंघर्ष के बाद एक निष्क्रिय चरण का आरंभ हुआ जिसमें आंदोलन को कानून की सीमाओं में रहकर ही चलाया जाना था। इसके अलावा गांधीजी ने बराबरी के आधार पर बातचीत की थी और इस प्रकार कांग्रेस की प्रतिष्ठा को सरकार की प्रतिष्ठा के बराबर ला दिया था। इसलिए वे कांग्रेस के कराची अधिवेशन में इस समझौते का अनुमोदन कराने में सफल रहे।

गांधीजी सितंबर 1931 में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने इंग्लैंड गए। लेकिन उनकी जोरदार वकालत के बावजूद सरकार ने डोमिनियन स्टेटस तत्काल देकर उनके आधार पर स्वतंत्रता की बुनियादी राष्ट्रवादी मांग को मानने से इंकार कर दिया।

सिविलनाफरमानी आंदोलन के दौरान कलकत्ता की गलियों में गश्त लगाती पुलिस, नवंबर 1930। यह चित्र 'इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज' में छपा था।

इस बीच देश के अनेक भागों में किसानों में असंतोष की लहर फैल चुकी थी। विश्वव्यापी मंदी के कारण खेतिहर पैदावारों के दाम गिर गए थे और लगान और मालगुजारी का बोझ उनके लिए असह्य हो चला था। संयुक्त प्रांत में लगान में कमी और बंटाईदारों की बेदखली के खिलाफ कांग्रेस ने आंदोलन चलाया। दिसंबर 1930 में कांग्रेस ने "न लगान, न टैक्स" का अभियान चलाया। उत्तर में सरकार ने 26 दिसंबर को जवाहरलाल नेहरु को गिरफ्तार कर लिया। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में सरकार की मालगुजारी संबंधी नीति के खिलाफ खुदाई खिदमतगार किसान आंदोलन चला रहे थे। 24 दिसंबर को उनके नेता खान अब्दुल गफ्फार खान भी धर लिए गए। किसान आंदोलन बिहार, आंध्र, मध्य प्रांत, बंगाल और पंजाब में भी फैल रहे थे। भारत वापस आने पर गांधीजी के सामने नागरिक अवज्ञा आंदोलन को दोबारा आरंभ करने के सिवा कोई रास्ता नहीं बचा।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के दौरे के समय गांधीजी के साथ ब्रिटेन के मजदूर वर्ग की महिलाएँ

अब सरकार के प्रमुख नए वायसराय लार्ड वेलिंगडन थे, जिनका मत था कि कांग्रेस के साथ समझौता करना बहुत बड़ी गलती थी। उनकी सरकार कांग्रेस को कुचलने के लिए आमादा और तैयार थी। वास्तव में भारतीय नौकरशाही नरम तो कभी पड़ी ही नहीं थी। गांधी-इर्विन समझौते पर हस्ताक्षर के फौरन बाद आंध्र के पूर्वी गोदावरी जिले में एक भीड़ पर गोली चली थी और चार लोग मारे गए थे — सिर्फ इसलिए कि उन्होंने गांधीजी का एक चित्र लगाया था। 4 जनवरी, 1932 को गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेता फिर धर लिए गए और कांग्रेस गैर-कानूनी घोषित कर दी गई। सामान्य कानून निलंबित कर दिए गए और प्रशासन विशेष अध्यादेशों के सहारे चलने लगा। पुलिस ने आतंक का नंगा खेल खेला और स्वाधीनता-सेनानियों पर अनगिनत अत्याचार किए गए। एक लाख से ऊपर सत्याग्रही गिरफ्तार किए गए और हजारों की जमीनों, मकानों और दूसरी जायदादों को जब्त किया गया। राष्ट्रवादी साहित्य प्रतिबंधित कर दिया गया। राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों पर दोबारा सेंसरशिप लागू कर दी गई।

अंत में सरकारी दमन सफल रहा क्योंकि इसे सांप्रदायिक और दूसरे प्रश्नों पर भारतीय नेताओं के बीच मतभेद होने से सहायता मिली। नागरिक अवज्ञा आंदोलन धीरे-धीरे बिखर गया। कांग्रेस ने आधिकारिक रूप में मई 1933 मे इसे निलंबित कर दिया और मई 1934 में इसे वापस ले लिया। गांधीजी एक बार फिर सक्रिय राजनीति से अलग हो गए। राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच एक बार फिर निराशा फैल गई। बहुत पहले, 1933 में ही सुभाषचंद्र बोस और विट्ठलभाई पटेल ने घोषणा कर दी थी कि "एक राजनीतिक नेता के रूप में महात्माजी असफल रहे हैं।" वायसराय बेवेलिंग्डन ने भी कहा कि "कांग्रेस 1930 की तुलना में निश्चित ही कम अच्छी स्थिति में है और जनता पर उसका प्रभाव घटा है।" मगर वास्तव में ऐसा न था। यह सही है कि स्वाधीनता लाने में आंदोलन असफल रहा था, लेकिन जनता का और राजनीतिकरण करने और स्वाधीनता संघर्ष के सामाजिक आधारों को और मजबूत बनाने में वह सफल रहा था। जैसा कि एक ब्रिटिश पत्रकार एच.एन. ब्रेल्सफोर्ड ने लिखा है, हाल के संघर्ष के फलस्वरूप भारतीयों ने "अपने मन को मुक्त कर लिया है और अपने दिलों में स्वाधीनता प्राप्त कर ली है।" नागरिक अवज्ञा आंदोलन के वास्तविक परिणाम और वास्तविक प्रभाव का अंदाजा इससे लगाया

जा सकता है कि राजनीतिक बंदी जब 1934 में रिहा हुए तो जनता ने उनका वीरों के रूप में स्वागत किया।

राष्ट्रवादी राजनीति, 1935-39

1935 का भारत सरकार कानून

नवंबर 1932 में जब कांग्रेस संघर्ष के मंझधार में थी तब लंदन में एक बार फिर कांग्रेस के बिना तीसरे गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें हुए विचार-विमर्श का परिणाम अंततः 1935 के भारत सरकार कानून के रूप में सामने आया। इस कानून में एक नए अखिल भारतीय संघ की स्थापना तथा प्रांतों में प्रांतीय स्वायत्तता के आधार पर एक नई शासन प्रणाली की व्यवस्था थी। यह संघ (फेडरेशन) ब्रिटिश भारत के प्रांतों तथा रजवाड़ों पर आधारित था। केंद्र में दो सदनों वाली एक संघीय विधायिका की व्यवस्था थी जिसमें रजवाड़ों को भिन्न-भिन्न प्रतिनिधित्व दिया गया था। मगर रजवाड़ों के प्रतिनिधियों का चुनाव जनता द्वारा नहीं किया जाता था बल्कि उन्हें वहां के शासक मनोनीत करते थे। ब्रिटिश भारत की केवल 14 प्रतिशत जनता को मताधिकार प्राप्त था। इस विधायिका में राष्ट्रवादी तत्वों को काबू में रखने के लिए राजा-महाराजाओं का उपयोग किया गया था, मगर फिर भी इसे कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी गई थी। रक्षा तथा विदेश विभाग इसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर थे। जबकि दूसरे विषयों पर गवर्नर-जनरल का विशेष नियंत्रण था। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार करती और वे उसी के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांतों को अधिक स्थानीय अधिकार दिए गए थे। प्रांतीय विधानसभाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों का प्रांतीय प्रशासन के हर विभाग पर नियंत्रण था। उन्हें कानूनी गतिविधियों पर विशेषाधिकार तथा अपने कानून बनाने के अधिकार थे। इसके अलावा नागरिक प्रशासन और पुलिस पर उनका पूरा नियंत्रण था। यह कानून राष्ट्रवादियों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सका, क्योंकि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति अभी भी ब्रिटिश सरकार के हाथों में केंद्रित थी। विदेशी शासन पहले की तरह ही जारी था, हां, कुछेक लोकप्रिय और चुने हुए नेता भारत के ब्रिटिश प्रशासन के ढांचे में और जुड़े। कांग्रेस ने "पूरी तरह निराशाजनक" कहकर इस कानून की निंदा की।

इस कानून के संघीय पक्ष को कभी लागू नहीं किया गया, पर प्रांतीय पक्ष जल्द ही लागू कर दिया गया। इस 1935 के नए कानून का कड़ा विरोध करने के बावजूद कांग्रेस ने इसके अंतर्गत होने वाले चुनावों में भाग लेने का निर्णय किया, और इस घोषित लक्ष्य के साथ कि वह इस कानून की अलोकप्रियता सिद्ध करेगी। कांग्रेस के तूफानी चुनाव-प्रचार को जनता का व्यापक समर्थन मिला हालांकि गांधीजी ने एक भी चुनाव-सभा को संबोधित नहीं किया। फरवरी 1937 में हुए इन चुनावों में यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो गई कि जनता का एक बड़ा भाग कांग्रेस के साथ है। कांग्रेस ने अधिकांश प्रांतों में भारी जीत हासिल की। ग्यारह में से सात प्रांतों में जुलाई 1937 में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। बाद में कांग्रेस ने दो प्रांतों में साझी सरकारें भी बनाईं। केवल बंगाल और पंजाब प्रांत में ही गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडल बन सके। पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी ने और बंगाल में कृषक प्रजा पार्टी और मुस्लिम लीग ने मिलकर सरकार बनाई।

कांग्रेस मंत्रिमंडल

स्पष्ट है कि कांग्रेस मंत्रिमंडल भारत में ब्रिटिश प्रशासन के बुनियादी साम्राज्यवादी चरित्र को बदलने और एक नया युग आरंभ करने में असफल रहे। फिर भी 1935 के कानून के अंतर्गत उन्हें जो सीमित अधिकार प्राप्त थे उनके सहारे उन्होंने जनता की दशा सुधारने के सचमुच प्रयास किए। कांग्रेसी मत्रियों ने अपना वेतन खुद घटाकर 500 रुपये प्रति माह कर दिया। उनमें से

अधिकांश रेलों में दूसरे या तीसरे दर्जे में चलते। ईमानदारी और जनसेवा के नए मानदंड उन्होंने स्थापित किए। अनेक क्षेत्रों में उन्होंने सकारात्मक निर्णय लिए। उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया, प्रैस और अतिवादी संगठनों पर लगे प्रतिबंध हटाए, मजदूर संघों और किसान सभाओं को उन्होंने काम करने और बढ़ने की छूट दी, पुलिस के अधिकार कम किए, और क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों समेत दूसरे राजनीतिक कैदियों को बड़ी संख्या में रिहा कर दिया। बंटाईदारों के अधिकारों और बंटाईदारी की सुरक्षा के लिए उन्होंने अनेक कृषि-कानून बनाए। मजदूर संघों ने पहले से अधिक मुक्त महसूस किया और मजदूरों की मजदूरी बढ़वाने में सफल रहे। कांग्रेस सरकारों ने चुने हुए क्षेत्रों में नशाबंदी लागू की, हरिजन-कल्याण के काम किए, तथा प्राथमिक, उच्च और तकनीकी शिक्षा तथा जन-स्वास्थ्य पर पहले से अधिक ध्यान दिया। खादी और दूसरे ग्रामीण उद्योगों को समर्थन दिया गया। आधुनिक उद्योगों को भी प्रोत्साहन मिला। सांप्रदायिक दंगों से सख्ती से निपटना कांग्रेस मंत्रिमंडल की एक प्रमुख उपलब्धि थी। सबसे बड़ा लाभ तो मानसिक लाभ था। लोगों को लगा कि वे विजय और स्वशासन की हवा में सांस ले रहे हैं। जो लोग अभी हाल तक जेलों में बंद थे, अब वे मंत्री के रूप में शासन कर रहे थे। क्या यह एक बड़ी उपलब्धि नहीं थी?

1935-39 के काल में कुछ और महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएं भी घटीं जिन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन और कांग्रेस को एक तरह से नया मोड़ दिया।

समाजवादी विचारों का प्रसार

इस सदी के चौथे दशक में कांग्रेस के अंदर और बाहर समाजवादी विचारों का तेज़ी से प्रसार हुआ। वर्ष 1929 में अमरीका में एक बहुत बड़ी आर्थिक मंदी आई जो धीरे-धीरे पूरी दुनिया में छा गई। दूसरे पूंजीवादी देशों में उत्पादन और विदेशी व्यापार में बहुत बड़ी गिरावट आई। इससे जनता की आर्थिक स्थिति खराब हो गई और बड़े पैमाने पर बेरोजगारी फैली। एक समय ऐसा हो गया था जब, ब्रिटेन में 30 लाख, जर्मनी में 60 लाख और अमरीका में 120 लाख लोग बेराजगार थे। दूसरी ओर सोवियत संघ की आर्थिक स्थिति इसके ठीक विपरीत थी। वहां गिरावट तो नहीं ही आई बल्कि 1929 और 1936 के बीच पहली दो पंचवर्षीय योजनाएं सफलतापूर्वक लागू की गईं जिससे सोवियत औद्योगिक उत्पादन चार गुना से भी अधिक हो गया। इस तरह विश्वव्यापी मंदी के कारण पूंजीवादी प्रणाली बदनाम हो गई और लोगों का ध्यान मार्क्सवाद, समाजवाद और आर्थिक योजना के विचार की ओर गया। परिणामस्वरूप अधिकाधिक लोग, खासकर युवक, मजदूर और किसान समाजवादी विचारों की ओर खिंचने लगे।

राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभिक दिनों से ही उसका झुकाव निर्धन जनता की ओर था। वर्ष 1917 की रूसी क्रांति के प्रभाव से, राजनीतिक मंच पर गांधीजी के उदय से, तथा दूसरे और तीसरे दशकों में शक्तिशाली वामपंथी गुटों के बनने से यह प्रवृति और मजबूत हुई। राष्ट्रीय आंदोलन के अंदर और पूरे देश के पैमाने पर एक समाजवादी भारत की तस्वीर को लोकप्रिय बनाने में जवाहरलाल नेहरु ने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कांग्रेस के अंदर वामपंथी प्रवृति के मजबूत होने का प्रमाण यह था कि 1929, 1936, और 1937 में जवाहरलाल नेहरु तथा 1938 और 1939 में सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए विजयी हुए। नेहरु का तर्क था कि राजनीतिक स्वाधीनता का अर्थ जनता की आर्थिक मुक्ति, खासकर मेहनती किसानों की सामंती शोषण से मुक्ति होनी चाहिए।

वर्ष 1936 में लखनऊ अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरु ने कांग्रेस से आग्रह किया कि वह समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाए तथा खुद को किसान और मजदूर वर्गों के और भी पास लाए। उनका विश्वास था कि मुस्लिम जनता को उनके प्रतिक्रियावादी

सांप्रदायिक नेताओं से दूर हटाने का यही सबसे अच्छा उपाय था। उन्होंने कहा :

> मेरा विश्वास है कि विश्व की समस्याओं और भारत की समस्याओं का एकमात्र समाधान समाजवाद है, और जब मैं इस शब्द का उपयोग करता हूं तो इसे अस्पष्ट मानवतावादी नहीं बल्कि वैज्ञानिक, आर्थिक अर्थ में करता हूं।... इसका मतलब है हमारे राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में व्यापक तथा क्रांतिकारी परिवर्तन, कृषि और उद्योग के निहित स्वार्थो का उन्मूलन, तथा भारत के सामंती और निरंकुश रजवाड़ों की प्रणाली की समाप्ति। इसका अर्थ है कि एक संकुचित अर्थ को छोड़कर निजी संपत्ति का उन्मूलन तथा वर्तमान मुनाफा प्रणाली की जगह सहकारी सेवा के उच्चतर आदर्श की स्थापना। अंततः इसका अर्थ है हमारी सहज वृतियों, आदतों और इच्छाओं में परिवर्तन। संक्षेप में, इसका अर्थ है वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था से मूलगामी अर्थ में भिन्न एक नई सभ्यता।

देश में मूलगामी शक्तियों के प्रसार का प्रमाण जल्द ही कांग्रेस के कार्यक्रम तथा नीतियों में भी देखा गया। इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रस्थान-बिंदू मौलिक अधिकारों और आर्थिक नीति पर वह प्रस्ताव था जिसे कांग्रेस ने कराची अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरु के आग्रह पर पारित किया। प्रस्ताव में घोषणा की गई कि "जनता के शोषण को समाप्त करने के लिए राजनीतिक स्वाधीनता में लाखों-लाख भूखे लोगों की वास्तविक आर्थिक स्वाधीनता भी सम्मिलित होनी चाहिए। प्रस्ताव में जनता को मूल नागरिक अधिकारों, जाति-पंथ-लिंग के भेद के बिना कानून के आगे सबकी समानता, सार्वभौमिक बालिग मताधिकार के आधार पर चुनाव, तथा मुक्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की जमानत दी गई थी। लगान व मालगुजारी में काफी कमी, लाभहीन जोतों के लिए लगान माफी, खेतिहरों के कर्जों में तथा सूदखोरों के नियंत्रण से राहत, जीवन-यापन-योग्य मजदूरी समेत मजदूरों के लिए बेहतर दशाओं, महिला मजदूरों के लिए काम, के सीमित घंटों और सुरक्षा, मजदूरों तथा किसानों के लिए संगठित होने और यूनियन बनाने के अधिकार, तथा प्रमुख उद्योगों, खदानों और यातायात के साधनों पर राज्य का स्वामित्व या नियंत्रण जैसे वादे भी इस प्रस्ताव में किए गए थे।

कांग्रेस के अंदर मूलगामी प्रवृति का एक और प्रमुख रूप कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन के प्रस्तावों व 1936 के चुनाव घोषणा-पत्र में देखने को मिला। इसमें कृषि-प्रणाली का मूलगामी रूपांतरण करने, लगान और मालगुजारी में काफी कमी करने, ग्रामीण ऋण कम करने तथा आसान शर्तों पर ऋण देने के वादे किए गए थे। इसके साथ ही सामंती वसूलियों को समाप्त करने, बंटाईदारों को बंटाईदारी की सुरक्षा देने, खेत मजदूरों को जीवन-यापन-योग्य मजदूरी दिलाने, तथा मजदूर संघ और किसान सभाएं बनाने तथा हड़ताल करने के अधिकार देने के भी वादे किए गए थे। वर्ष 1945 में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक प्रस्ताव पारित करके जमींदारी उन्मूलन का भी अनुमोदन किया था।

वर्ष 1938 में कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस थे। इस समय कांग्रेस ने आर्थिक योजना का विचार अपनाया और जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना समिति बनाई। नेहरु, दूसरे वामपंथियों तथा गांधी ने भी चंद लोगों के हाथों में धन का केंद्रीकरण रोकने के लिए बड़े उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखने की बात की। वास्तव में, चौथे दशक की एक प्रमुख घटना यह थी कि गांधीजी ने भी मूलगामी आर्थिक नीतियों को अधिकाधिक स्वीकार किया। वर्ष 1933 में नेहरु से सहमत होकर उन्होंने कहा कि "निहित स्वार्थो में एक बड़े परिवर्तन के बिना जनता की स्थिति को कभी नहीं सुधारा जा सकता।" उन्होंने "जमीन जोतने वाले की" का सिद्धांत भी मान लिया और 1942 में घोषणा की कि "जमीन उनकी है जो उस पर मेहनत करते हैं, और किसी की नहीं।"

कांग्रेस के बाहर समाजवादी प्रवृति का एक परिणाम यह भी था कि 1935 के बाद पूरनचंद्र जोशी के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी का प्रसार हुआ, और 1934 में आचार्य नरेंद्र देव तथा जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना हुई। वर्ष 1938 में गांधीजी के विरोध के बावजूद सुभाषचंद्र बोस दोबारा कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। लेकिन कांग्रेस वर्किंग कमेटी के अंदर गांधीजी और उनके समर्थकों के विरोध के कारण बोस अप्रैल 1939 में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने को मजबूर हो गए। फिर उन्होंने और उनके अनेक वामपंथी समर्थकों ने फॉरवर्ड ब्लॉक की स्थापना की। वर्ष 1939 तक आते-आते कांग्रेस के अंदर मौजूद वामपंथ सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर एक-तिहाई वोट जुटा सकने में समर्थ हो चुका था। इसके अलावा चौथे और पांचवे दशक में समाजवाद भारत के अधिकांश राजनीतिक चेतना-प्राप्त युवकों के विश्वास का रूप ले चुका था। चौथे दशक में आल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन तथा अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की भी स्थापना हुई।

किसान और मजदूर आंदोलन

चौथे दशक में भारत के किसानों और मजदूरों में राष्ट्रव्यापी जागरण देखने में आया। 1920-22 तथा 1930-34 के दो राष्ट्रवादी आंदोलनों ने किसानों और मजदूरों का बड़े पैमाने पर राजनीतिकरण किया था। वर्ष 1929 के बाद भारत तथा शेष विश्व पर जिस आर्थिक मंदी की मार पड़ी उसने भारतीय किसान-मजदूरों की दशा भी बिगाड़ दी थी। वर्ष 1932 के अंत तक खेतिहर पैदावार की कीमतें 50 प्रतिशत से अधिक गिर चुकी थीं। अब पूरे देश में किसान भूमि सुधारों,
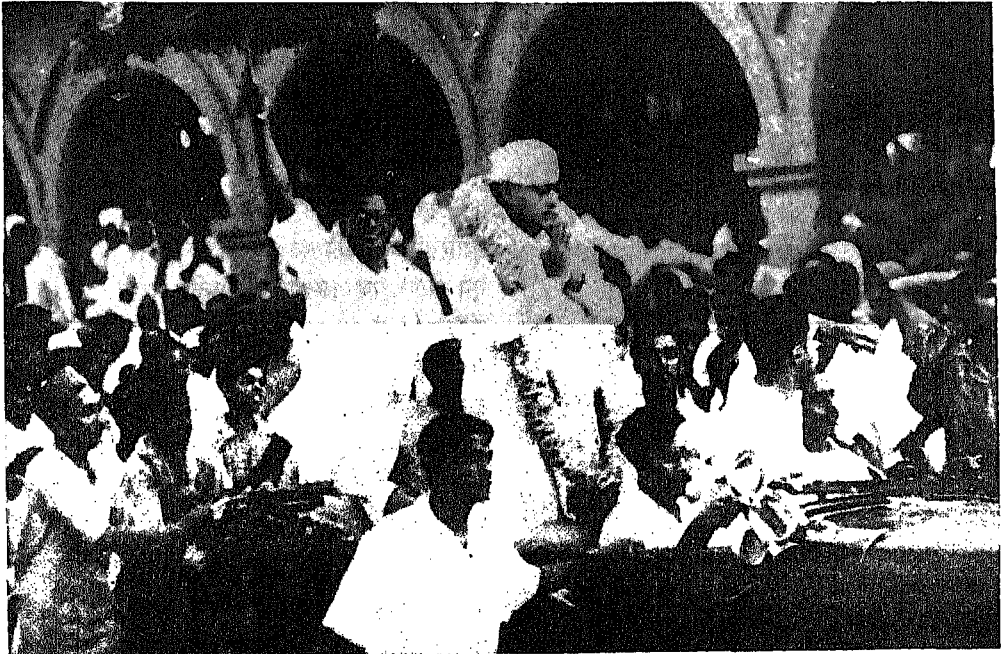
फॉरवर्ड ब्लॉक बनाने के बाद जनवरी 1940 में सुभाषचंद्र बोस

मालगुजारी और लगान में कमी तथा कर्ज से राहत की मांग करने लगे थे। कारखानों और बागानों के मजदूर अब काम की बेहतर परिस्थितियों तथा ट्रेड यूनियन अधिकार दिए जाने की बढ़-चढ़ कर मांग कर रहे थे।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन तथा वामपंथी पार्टियों और गुटों ने राजनीतिक कार्यकर्ताओं की एक ऐसी नई पीढ़ी पैदा की जो किसानों और मजदूरों के संगठन के लिए समर्पित थी। परिणामस्वरूप शहरों में ट्रेड यूनियनों का तथा पूरे देश में, खासकर संयुक्त प्रांत, बिहार, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल और पंजाब में किसान सभाओं का तेज़ी से प्रसार हुआ। वर्ष 1936 में स्वामी सहजानंद सरस्वती की अध्यक्षता में पहला अखिल भारतीय किसान संगठन अखिल भारतीय किसान सभा के नाम से बना।

कांग्रेस और विश्व की घटनाएं

वर्ष 1935-39 के काल की तीसरी प्रमुख बात यह थी कि कांग्रेस विश्व की घटनाओं में बढ़-चढ़कर दिलचस्पी लेने लगी थी। वर्ष 1885 में अपनी स्थापना के समय से ही कांग्रेस ने कहा था कि अफ्रीका और एशिया में ब्रिटेन के हितों की रक्षा करने के लिए भारतीय सेना और भारत के संसाधनों का प्रयोग न किया जाए।

चेकोस्लोवाकिया में 1938 में इंदिरा नेहरु के साथ जवाहरलाल नेहरु। पश्चिमी शक्तियों ने म्यूनिख में उस देश के साथ विश्वासघात किया था, जवाहरलाल नेहरु इस घटना के पहले चेकोस्लोवाकिया गए थे।

धीरे-धीरे इसने साम्राज्यवादी प्रसार के विरोध पर आधारित एक विदेश नीति विकसित कर ली थी। फरवरी 1927 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से जवाहरलाल नेहरु ने ब्रुसेल्स में आयोजित उत्पीड़ित जातीयताओं के सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन का आयोजन आर्थिक या राजनीतिक साम्राज्यवाद से पीड़ित एशियाई, अफ्रीकी और लातीनी अमरीकी देशों के निर्वासित राजनीतिक कार्यकर्ताओं और क्रांतिकारियों ने किया था। इस सम्मेलन का उद्देश्य इन सबके साझे साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में तालमेल बिठाना और उन्हें योजनाबद्ध रूप देना था। यूरोप के अनेक वामपंथी बुद्धिजीवियों और राजनीतिक नेताओं ने भी सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन को संबोधित करते हुए नेहरु ने कहा :

> हम समझते हैं कि विभिन्न पराधीन, अर्धपराधीन और उत्पीड़ित जनगण आज जो संघर्ष चला रहे हैं उसमें बहुत कुछ साझा है। उनके दुश्मन भी प्रायः एक ही होते हैं, हालांकि वे कभी-कभी विभिन्न रूपों में सामने आते हैं, और उनके उत्पीड़न के लिए प्रयोग किए जाने वाले साधन भी अकसर मिलते-जुलते होते हैं।

नेहरु इसी सम्मेलन में स्थापित ''लीग अगेंस्ट इंपीरियलिज्म'' की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के भी सदस्य चुने गए। वर्ष 1927 में राष्ट्रीय कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में सरकार को चेतावनी दी गई कि ब्रिटेन अपने साम्राज्यवादी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अगर कोई युद्ध छेड़ेगी तो भारत की जनता उसका समर्थन नहीं करेगी।

चौथे दशक में कांग्रेस ने दुनिया के किसी भी भाग में जारी साम्राज्यवाद के खिलाफ एक कड़ा रुख अपनाया और एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रीय आंदोलनों को समर्थन दिया। इसने उस समय इटली, जर्मनी और जापान में उभरते हुए फासीवाद की निंदा की जो साम्राज्यवाद और नस्लवाद का सबसे भयानक रूप था,

और इथियोपिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया तथा चीन पर फासीवादी ताकतों के हमले के खिलाफ संघर्ष में वहां की जनता का पूरा-पूरा समर्थन किया। वर्ष 1937 में जब जापान ने चीन पर हमला किया तो कांग्रेस ने एक प्रस्ताव के द्वारा भारतीय जनता से आग्रह किया कि वे "चीन की जनता के प्रति अपनी सहानुभूति जताने के लिए जापानी वस्तुओं के प्रयोग से बचें।" वर्ष 1938 में कांग्रेस ने डा. एम. अटल के नेतृत्व में डाक्टरों का एक दल भी चीनी सेनाओं के साथ काम करने के लिए भेजा।

राष्ट्रीय कांग्रेस को पूरा-पूरा विश्वास था कि भारत का भविष्य उस संघर्ष से घनिष्ठतापूर्वक जुड़ा हुआ है जो एक तरफ फासीवाद तथा दूसरी तरफ स्वाधीनता, समाजवाद और जनतंत्र की शक्तियों के बीच छिड़ने वाला है। विश्व की घटनाओं के प्रति कांग्रेस में उभरते हुए दृष्टिकोण तथा दुनिया में भारत की स्थिति की चेतना को जवाहरलाल नेहरु ने 1936 के लखनऊ अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में सामने रखा था :

> हमारा संघर्ष वास्तव में स्वाधीनता के एक और बड़े संघर्ष का भाग था, और जो शक्तियां हमें प्रेरित कर रही थीं वे पूरी दुनिया में लाखों दूसरे लोगों को भी प्रेरित कर रही थीं तथा कार्यक्षेत्र में ला रही थीं। संकट की स्थिति में पूंजीवाद ने फासीवाद का रूप लिया।
>
> पराधीन औपनिवेशिक देशों में साम्राज्यवाद जो कुछ बहुत पहले से रहा है, स्वयं को जन्म देने वाले कुछ देशों में ही पूंजीवाद ने भी वैसा ही रूप धारण कर लिया। फासीवाद और साम्राज्यवाद इस तरह पतनशील पूंजीवाद के दो रूप बनकर सामने आए। ... पश्चिम में समाजवाद ने तथा पूर्वी तथा अन्य पराधीन देशों में उदीयमान राष्ट्रवाद ने फासीवाद और साम्राज्यवाद के इस गठजोड़ का विरोध किया।

कांग्रेस साम्राज्यवादी शक्तियों के किसी भी आपसी युद्ध में भारत सरकार की किसी भी रूप में भागीदारी का विरोध करेगी, इस बात पर जोर देते हुए नेहरु ने "विश्व की प्रगतिशील शक्तियों के प्रति, स्वाधीनता के लिए तथा राजनीतिक और सामाजिक बंधन तोड़ने के लिए लड़ने वालों के प्रति" अपने पूरे सहयोग का वचन दिया क्योंकि "साम्राज्यवाद और फासीवाद प्रतिक्रिया के विराध में उनके संघर्ष से हमें यह लगता है कि हमारा संघर्ष एक सांझा संघर्ष है।"

रजवाड़ों की जनता का संघर्ष

इस काल का चौथा प्रमुख घटनाक्रम यह था कि राष्ट्रीय आंदोलन रजवाड़ों तक भी फैल गया। इन रजवाड़ों में से अधिकांश में आर्थिक से राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियां नरक जैसी थीं। किसान दमन के शिकार थे, मालगुजारी और कर बहुत अधिक तथा असह्य थे, शिक्षा का कोई खास प्रसार न था, स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक सेवाएं एकदम पिछड़ेपन की हालत में थीं, और प्रेस की स्वतंत्रता तथा दूसरे नागरिक अधिकारों का शायद ही कोई मान हो। रजवाड़ों की आय का बहुत बड़ा भाग राजा और उसके परिवार के भोग-विलास पर खर्च होता था। अनेक रजवाड़ों में भूदास-प्रथा, गुलामी और बेगार का बोलबाला था। पहले के पूरे इतिहास में आंतरिक विद्रोह या बाहरी आक्रमण की चुनौतियां इन भ्रष्ट और पतित राजा-महाराजाओं की मनमानी पर कुछ हद तक नियंत्रण रखती थीं। परंतु ब्रिटिश शासन ने राजाओं को इन दोनों खतरों से सुरक्षित बना दिया और अब वे खुलकर अपने शासन का दुरुपयोग करने लगे।

इसके अलावा राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधा डालने तथा उदीयमान राष्ट्रीय आंदोलन का मुकाबला करने के लिए ब्रिटिश अधिकारी भी राजाओं का इस्तेमाल करने लगे। राजा महाराजा भी अपनी बारी में, किसी जनविद्रोह के आगे अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सत्ता

पर निर्भर थे और उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति दुश्मनी का रवैया अपनाया। 1921 में चेंबर ऑफ प्रिंसेज की स्थापना की गई ताकि महाराजे मिल-बैठ सकें और ब्रिटिश मार्गदर्शन में अपने साझे हित के विषयों पर विचार कर सकें। 1935 के भारत सरकार कानून में भी प्रस्तावित संघीय ढांचे की योजना इस प्रकार रखी गई थी कि राष्ट्रवादी शक्तियों पर नियंत्रण बना रहे। इसमें व्यवस्था थी कि ऊपरी सदन में कुल सीटों के 2/5 पर तथा निचले सदन में 1/3 पर रजवाड़ों का प्रतिनिधित्व रहेगा।

अनेक रजवाड़ों की जनता अब जनतांत्रिक अधिकारों और लोकप्रिय सरकारों की मांग को लेकर आंदोलन करने लगी। विभिन्न रजवाड़ों में राजनीतिक गतिविधियों के तालमेल के लिए दिसम्बर 1927 में ही ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस की स्थापना हो चुकी थी। दूसरे असहयोग आंदोलन ने रजवाड़ों की जनता पर काफी गहरा प्रभाव डाला और उन्हें राजनीतिक गतिविधियों के लिए प्रेरित किया। अनेक रजवाड़ों, खासकर राजकोट, जयपुर, कश्मीर, हैदराबाद और ट्रावनकोर में जन संघर्ष चलाए गए। राजाओं ने इन संघर्षों का सामना निर्मम दमन के द्वारा किया। इनमें से कुछ ने सांप्रदायिकता का सहारा भी लिया। हैदराबाद के निजाम ने जन-आंदोलन को मुस्लिम-विरोधी और कश्मीर के महाराजा ने उसे हिंदू-विरोधी घोषित किया, जबकि ट्रावनकोर के राजा का दावा था कि जन-आंदोलन के पीछे ईसाइयों का हाथ है।

राष्ट्रीय कांग्रेस ने रजवाड़ों की जनता के संघर्ष का समर्थन किया और राजाओं से आग्रह किया कि वे जनतांत्रिक प्रतिनिधि सरकार स्थापित करें और जनता को मूलभूत नागरिक अधिकार दें। वर्ष 1938 में जब कांग्रेस ने अपने स्वाधीनता के लक्ष्य को परिभाषित किया तो इसमें रजवाड़ों की स्वाधीनता को भी शामिल किया। अगले साल त्रिपुरी अधिवेशन में रजवाड़ों की जनता के आंदोलनों में और भी सक्रिय रूप से भाग लेने का उसने फैसला किया। ब्रिटिश भारत तथा रजवाड़ों के राजनीतिक संघर्षों के साझे राष्ट्रीय लक्ष्यों को सामने रखने के लिए जवाहरलाल नेहरु को 1939 में ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस का अध्यक्ष चुना गया। रजवाड़ों की जनता के आंदोलन ने उस जनता में राष्ट्रीय चेतना पैदा की। इससे पूरे भारत में एकता की नई चेतना भी फैली।

सांप्रदायिकता का विकास

पांचवां महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम सांप्रदायिकता का विकास था। सीमित मताधिकार तथा अलग-अलग चुनाव मंडलों के आधार पर विधानसभाओं के लिए जो चुनाव हुए उससे एक बार फिर अलगाववादी भावनाएं पैदा हो गईं। इसके अलावा कांग्रेस अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षित अनेक सीटें जीतने में असफल रही। मुसलमानों के लिए कुल 482 सीटें आरक्षित थीं मगर कांग्रेस को इनमें केवल 26 मिलीं और उसमें भी 15 केवल पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांत में मिलीं, हालांकि इनमें ज्यादा सीटें मुस्लिम लीग को भी नही मिलीं। हिंदू महासभा भी बुरी तरह हारी। इसके अलावा जमींदारों और सूदखोरों की पार्टियां भी चुनाव में धूल चाटती नजर आईं। कांग्रेस ने एक मूलगामी कृषि कार्यक्रम अपना लिया था और किसान आंदोलन फैल रहे थे—इन दो बातों को देखकर जमींदार और सूदखोर अब सांप्रदायिक पार्टियों को अपना समर्थन देने लगे। उन्होंने समझ लिया कि आम जनता की व्यापक राजनीतिक भागीदारी के युग में उनके हितों की खुलकर वकालत कर सकना अब संभव नहीं होगा। अब सांप्रदायिक पार्टियां मजबूत होने लगीं। जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग कांग्रेस की घोर विरोधी हो गई। अब उसने यह प्रचार शुरू कर दिया कि मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बहुसंख्यक हिंदुओं में समा जाने का खतरा है। उसने इस अवैज्ञानिक और अनैतिहासिक सिद्धांत का प्रचार किया कि हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग राष्ट्र हैं और उनका एक साथ रह सकना
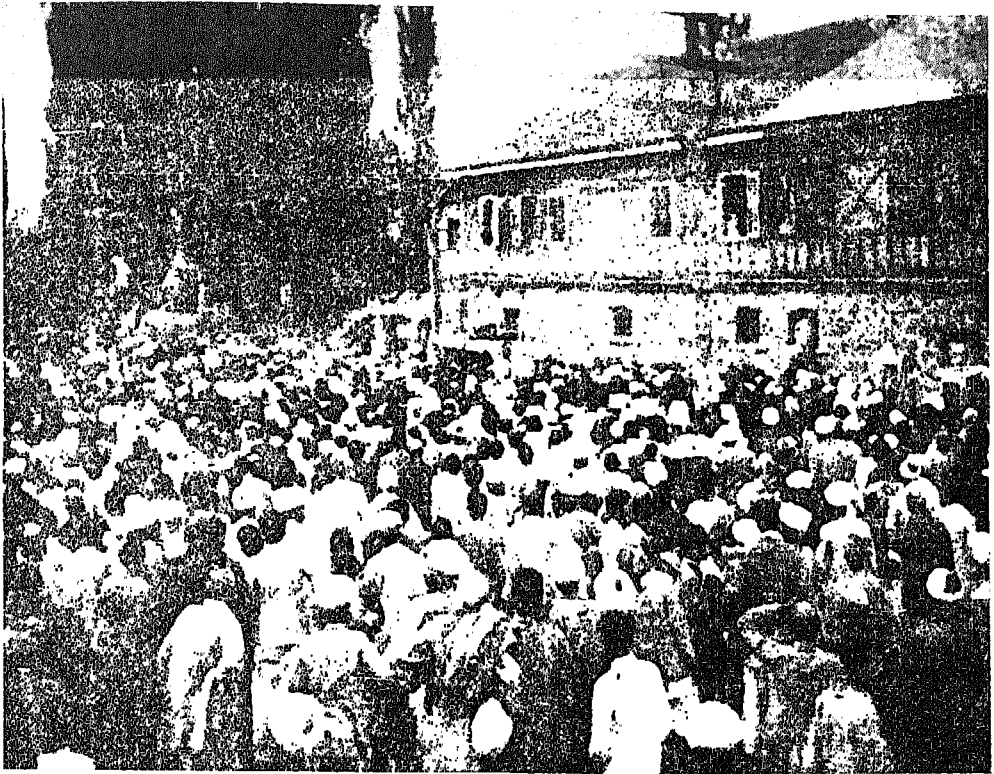
वर्ष 1938 में अपनी गिरफ्तारी के बाद जम्मू कश्मीर में आंदोलन के नेता शेख अब्दुल्ला लोगों को संबोधित करते हुए

असंभव है। वर्ष 1940 में मुस्लिम लीग ने एक प्रस्ताव पारित करके मांग की कि स्वधीनता के बाद देश के दो भाग कर दिए जाएं और पाकिस्तान नाम का एक अलग राज्य बनाया जाए।

हिंदुओं के बीच हिंदू महासभा जैसे सांप्रदायिक संगठनों के अस्तित्व के कारण मुस्लिम लीग के प्रचार को और बल मिला। हिंदू एक अलग राष्ट्र है और भारत हिंदुओं का देश है, यह कह कर हिंदू संप्रदायवादियों ने मुस्लिम संप्रदायवादियों की ही बात दोहराई। इस तरह उन्होंने भी दो राष्ट्रों के सिद्धांत को मान लिया। उन्होंने इस बात का जमकर विराध किया कि अल्पसंख्यकों के लिए पर्याप्त सुरक्षा-व्यवस्था की जाय ताकि उन्हें बहुमत के प्रभुत्व का भय न रहे। एक तरह से हिंदू संप्रदायवाद का औचित्य और भी कम था। हर देश में धार्मिक, भाषायी या जातीय अल्पसंख्यकों को कभी न कभी ऐसा लगता रहा है कि उनकी संख्या कम होने के कारण उनके सामाजिक और सांस्कृतिक हितों को हानि पहुंच सकती है। लेकिन बहुसंख्यक संप्रदाय ने जब भी अपने वचन और कर्म से यह सिद्ध किया हैं कि ये भय निराधार हैं तो अल्पसंख्सकों का भय समाप्त हो गया। परंतु जब बहुसंख्यक जनता का कोई भाग सांप्रदायिक और संकीर्ण हो जाता है और अल्पसंख्यकों के खिलाफ बोलने या कुछ करने लगता है तो अल्पसंख्यक अपने को असुरक्षित महसूस करने लगते

फरवरी 1939 में लुधियाना में 'ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस' के अवसर पर जवाहरलाल नेहरु को एक जुलूस में ले जाया जा रहा है।

हैं। तब अल्पसंख्यकों का सांप्रदायिक और संकीर्ण नेतृत्व भी मजबूत होता है। उदाहरण के लिए चौथे दशक में मुस्लिम लीग वहीं मजबूत थी, जहां मुस्लिम अल्पसंख्सक थे। इसके विपरीत पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पंजाब, सिंध और बंगाल में जहां मुसलमान बहुसंख्यक थे और इसलिए अपने को कुछ सुरक्षित महसूस करते थे, वहां मुस्लिम लीग कमजोर थी। दिलचस्प बात यह है कि हिंदू और मुस्लिम संप्रदायवादियों ने कांग्रेस के खिलाफ एक दूसरे से हाथ मिलाने में काई संकोच नहीं किया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पंजाब, सिंध और बंगाल में हिंदू संप्रदायवादियों ने कांग्रेस के विरोध में मुस्लिम लीग तथा दूसरे सांप्रदायिक संगठनों का मंत्रिमंडल बनवाने में सहायता की। सरकार-समर्थक रवैया अपनाना भी तमाम सांप्रदायिक संगठनों की एक साझी विशेषता थी। यहां हम कह दें कि हिंदू और मुस्लिम राष्ट्रवाद की बात करने वाले किसी भी सांप्रदायिक संगठन या दल ने विदेशी शासन विरोधी संघर्ष में कभी कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। दूसरे धर्मों की जनता तथा राष्ट्रवादी नेताओं को ही वे अपना वास्तविक शत्रु समझते थे।

सांप्रदायिक संगठन और दल जनता की सामाजिक और आर्थिक मांगें उठाने से भी कतराते रहे जबकि राष्ट्रवादी आंदोलन; जैसा कि हमने देखा है, बढ़-चढ़कर इन मांगों को उठाता रहा। इस संबंध में वे ऊंचे वर्गों के निहित स्वार्थों का ही प्रतिनिधित्व करने लगे। बहुत पहले 1933 में ही इस बात को जवाहरलाल नेहरु ने समझ लिया था :

> आज सांप्रदायिकता का आधार राजनीतिक प्रतिक्रिया है और इसलिए हम देखते हैं कि साप्रदायिक नेता बिना किसी अपवाद के राजनीतिक और आर्थिक मामलों में प्रतिक्रियावादी बन बैठते हैं। ऊंचे वर्गों के लोगों के संगठन यह दिखाकर कि वे धार्मिक अल्पसंख्यकों या बहुसंख्यकों की सामुदायिक मांगों के पक्षधर हैं, अपने स्वयं के वर्गीय हितों को छिपाने के प्रयास करते हैं। हिंदुओं, मुसलमानों तथा दूसरों की ओर से रखी नई विभिन्न सामुदायिक मांगों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर पता चलेगा कि इनका जनता से कुछ भी लेना-देना नहीं है।

राष्ट्रीय आंदोलन ने सांप्रदायिक ताकतों का हमेशा दृढ़ता से विरोध किया और धर्मनिरपेक्षता से उसकी प्रतिबद्धता हमेशा गहरी और संपूर्ण रही। फिर भी वह सांप्रदायिक चुनौती का सामना करने में पूरी तरह सफल न हो सका। अंत में सांप्रदायिकता देश का विभाजन कराने में सफल रही। इस असफलता की व्याख्या कैसे की जाए? इसका एक उत्तर जो प्रायः दिया जाता है, वह यह है कि राष्ट्रवादी नेताओं ने सांप्रदायिक नेताओं से बातचीत करने और उन्हें साथ लेने के पर्याप्त प्रयास नहीं किए।

हमारा विचार इसके ठीक विपरीत है। आरंभ से ही राष्ट्रवादी नेताओं ने सांप्रदायिक नेताओं से बातचीत पर बहुत अधिक भरोसा किया। लेकिन सांप्रदायवाद से समझौता कर सकना या उसे संतुष्ट कर सकना संभव न था। इसके अलावा, एक तरह की सांप्रदायिकता को संतुष्ट करने का प्रयास किया जाता तो प्रतिक्रिया के रूप में दूसरे तरह की सांप्रदायिकता हमेशा ही फलने-फूलने लगती। 1937 और 1939 के बीच कांग्रेस

के नेताओं ने बार-बार जिन्ना से मुलाकात करके उसे मनाने का प्रयास किया। लेकिन जिन्ना ने कभी कोई ठोस मांग सामने नहीं रखी। इसके बजाए उन्होंने यह असंभव मांग रखी कि कांग्रेस माने कि वह हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करती है, केवल तभी वह कांग्रेस से बात करेंगे। कांग्रेस के लिए यह मांग स्वीकार करना संभव न था, क्योंकि ऐसा करके ऐसा करके वह अपने बुनियादी धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्रवादी चरित्र को ही छोड़ देती। वास्तविकता यह है कि संप्रदायवाद को संतुष्ट करने के जितने भी प्रयास किए गए, उतनी ही अधिक उसमें उग्रता आती गई।

वास्तव में सांप्रदायिकता को संतुष्ट करने की जरूरत नहीं थी बल्कि उसके खिलाफ एक निर्मम राजनीतिक और विचारधारात्मक संघर्ष चलाने की जरूरत थी। आवश्यकता सांप्रदायिकता के खिलाफ एक व्यापक मुहिम चलाने की थी जैसी मुहिम 1880 के बाद के दशक में औपनिवेशिक विचारधारा के खिलाफ चलाई गई थी। लेकिन कभी-कभार को छोड़कर राष्ट्रवादियों ने ऐसा नहीं किया। फिर भी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की सफलताओं को कम करके नहीं आंका जाना चाहिए। वर्ष 1946-47 में विभाजन के आगे और पीछे हुए दंगों तथा सांप्रदायिक शक्तियों के पुनरुत्थान के बावजूद, स्वतंत्रता के बाद भारत एक धर्मनिरपेक्ष संविधान बनाने में तथा मूल रूप से एक धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था और समाज खड़ा कर सकने में सफल रहा। हिंदू सांप्रदायिकता समाज में और राष्ट्रवादियों की कतारों तक में भी गहरे पैठी, फिर भी हिंदुओं के बीच इसकी शक्ति मामूली ही बनी रही। वर्ष 1946-47 के दौरान धार्मिक कट्टरता तथा सांप्रदायिकता की लहर में अनेक मुसलमान बह गए, मगर कुछ दूसरे मुसलमान सांप्रदायिकता के सामने चट्टान की तरह खड़े रहे। अबुल कलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खान, जोशीले भाषण देने वाले समाजवादी नेता युसुफ मेहरअली, निर्भीक पत्रकार एस.ए. बरेलवी, इतिहासकार मुहम्मद हबीब और कुंवर मुहम्मद अशरफ,

1940 में लाहौर में मुहम्मद अली जिन्ना (बीच में बैठे हुए) दूसरे मुस्लिम लीग नेताओं के साथ

उर्दू शायरी के तूफानी पितरैल जैसे जोश मलीहाबादी, फैज अहमद फैज, सरदार जाफरी, साहिर लुधियानवी और कैफी आजमी, और मौलाना मदनी—ये सब ऐसे नाम हैं जो इस संबंध में हमारे सामने मिसाल बनकर उभरते हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन

दूसरा विश्वयुद्ध सितंबर 1939 में आरंभ हुआ जब जर्मन प्रसारवाद की हिटलर की नीति के अनुसार नाजी जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। इसके पहले मार्च 1938 में वह आस्ट्रिया और मार्च 1939 में चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर चुका था। ब्रिटेन और फ्रांस ने हिटलर को खुश रखने के लिए सब कुछ किया था, मगर अब वे पोलैंड की सहायता करने को बाध्य हो गए। भारत की सरकार राष्ट्रीय कांग्रेस या केंद्रीय धारा सभा के चुने हुए सदस्यों से परामर्श किए बिना फौरन युद्ध में शामिल हो गई।

राष्ट्रीय कांग्रेस को फासीवादी (फांसिस्ट) आक्रमण के शिकार देशों से पूरी सहानुभूति थी। वह फासीवाद विरोधी संघर्ष में लोकतांत्रिक शक्तियों की सहायता करने को तैयार थी। मगर कांग्रेस के नेताओं का सवाल यह था कि एक गुलाम राष्ट्र द्वारा दूसरों के मुक्ति-संघर्ष में साथ देना किस प्रकार संभव था? इसलिए उन्होंने मांग की कि भारत को स्वाधीन घोषित किया जाए या कम से कम भारतीयों को समुचित अधिकार दिए जाएं ताकि वे युद्ध में सक्रिय भाग ले सकें। ब्रिटिश सरकार ने इस मांग को मानने से इनकार कर दिया तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों और राजा-महाराजाओं को कांग्रेस के खिलाफ खड़ा करने का प्रयास किया। इसलिए कांग्रेस ने अपने मंत्रिमंडलों को आदेश दिया कि वे त्यागपत्र दे दें। अक्तूबर 1940 में गांधीजी ने कुछ चुने हुए व्यक्तियों को साथ लेकर सीमित पैमाने पर सत्याग्रह चलाने का निर्णय किया। सत्याग्रह को सीमित इसलिए रखा गया कि देश में व्यापक उथल-पुथल न हो और ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों में बाधा न पड़े। वायसराय के नाम एक पत्र में गांधीजी ने इस आंदोलन के उद्देश्यों की व्याख्या इस प्रकार की :

> कांग्रेस नाजीवाद की विजय की उतनी ही विरोधी है जितना कि कोई अंग्रेज़ हो सकता है। लेकिन उसकी आपत्ति को युद्ध में उसकी भागीदारी की सीमा तक नहीं खींचा जा सकता और चूंकि आपने तथा भारत-सचिव महोदय ने घोषणा की हैं कि पूरा भारत स्वेच्छा से युद्ध प्रयास में सहायता कर रहा है, इसलिए यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि भारत की जनता का विशाल बहुमत इसमें कोई दिलचस्पी नहीं रखता। वह नाजीवाद तथा भारत पर शासन कर रही दोहरी निरंकुशता में कोई अंतर नहीं करता।

सत्याग्रह करने वाले पहले व्यक्ति विनोबा भावे थे। 15 मई, 1941 तक 25,000 से अधिक सत्याग्रही गिरफ्तार किए जा चुके थे।

वर्ष 1941 में विश्व की राजनीति में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए। पश्चिमी यूरोप तथा अधिकांश पूर्वी यूरोप में पोलैंड, बेल्जियम, हालैंड, नार्वे और फ्रांस पर अधिकार कर चुकने के बाद नाजी जर्मनी ने 22 जून, 1941 को सोवियत संघ पर हमला बोल दिया। 7 दिसंबर को जापान ने पर्ल हार्बर में एक अमरीकी समुद्री बेड़े पर आकस्मिक हमला किया तथा जर्मनी और इटली की ओर से युद्ध में शामिल हो गया। उसने तेज़ी से फिलीपीन, हिंदचीन, इंडोनेशिया, मलाया और बर्मा पर अधिकार कर लिया। मार्च 1942 में रंगून पर उसका अधिकार हो गया। इससे युद्ध भारत की सीमाओं तक आ पहुंचा। हाल में रिहा हुए कांग्रेसी नेताओं ने जापानी आक्रमण की निंदा की और कहा कि अगर ब्रिटेन फौरन प्रभावी शक्ति भारतीयों को सौंप दे और युद्ध के बाद पूर्ण स्वाधीनता का वचन दे तो वे भारत की रक्षा तथा राष्ट्रों के हितों के लिए सहयोग करने को तैयार हैं।

अब ब्रिटिश सरकार को युद्ध प्रयासों में भारतीयों

के सक्रिय सहायोग की बुरी तरह आवश्यकता थी। ऐसा सहयोग पाने के लिए उसने एक कैबिनेट मंत्री सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में मार्च 1942 में एक मिशन भारत भेजा। क्रिप्स पहले लेबर पार्टी के उग्र सदस्य और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के पक्के समर्थक थे। हालांकि क्रिप्स ने घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश नीति का उद्देश्य यहां "जितनी जल्दी संभव हो स्वशासन की स्थापना करना" था, फिर भी उनके तथा कांग्रेसी नेताओं की लंबी बातचीत टूट गई। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की यह मांग मानने से इनकार कर दिया कि वास्तविक शक्ति तत्काल भारतीयों को सौंपी जाए। दूसरी तरफ भारतीय नेता इस बात से संतुष्ट नहीं हुए कि उनसे भविष्य के लिए केवल वादे किए जाएं और फिलहाल वायसराय के हाथों में निरंकुश शक्तियां बनी रहें। वे युद्ध प्रयासों में सहयोग के लिए तैयार थे, खासकर इसलिए कि जापानी आक्रमणकारियों से भारत के लिए ही खतरा पैदा हो गया था। लेकिन उन्हें लगता था कि वे यह काम तभी कर सकेंगे जब देश में एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाए।

क्रिप्स मिशन की असफलता से भारत की जनता रुष्ट हो गई। उसे फासीवाद-विरोधी शक्तियों से अभी भी पूरी सहानुभूति थी, मगर उसे लगता था कि देश की राजनीतिक स्थिति अब बर्दाश्त से बाहर हो चुकी है। युद्ध के दौरान वस्तुओं की कमी और बढ़ती कीमतों ने उसके असंतोष को और भी गहरा दिया था। अप्रैल-अगस्त 1942 के काल में तनाव लगातार बढ़ता गया। जैसे-जैसे जापानी फौजें भारत की ओर बढ़ती गईं तथा जापानी विजय का भय जनता और नेताओं को त्रस्त करने लगा और गांधीजी उतने ही अधिक जुझारू होते गए। कांग्रेस ने अब फैसला किया कि अंग्रेजों से भारतीय स्वाधीनता की मांग मनवाने के लिए सक्रिय उपाय किए जाएं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग 8 अगस्त, 1942 को बंबई में हुई जिसमें प्रसिद्ध "भारत छोड़ो" प्रस्ताव स्वीकार किया गया तथा इस उद्देश्य को पाने के लिए गांधीजी के नेतृत्व में एक अहिंसक जन-संघर्ष चलाने का फैसला किया गया। प्रस्ताव में घोषणा की गई कि :

> भारत के लाभ तथा संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों की सफलता, दोनों के लिए भारत में ब्रिटिश शासन की तत्काल समाप्ति आवश्यक हो गई है ... आधुनिक साम्राज्यवाद का प्रमुख शिकार होने के नाते भारत अब समस्या के केंद्र में आ चुका है क्योंकि भारत की स्वाधीनता से ही ब्रिटेन तथा संयुक्त राष्ट्र को परखा जाएगा और एशिया तथा अफ्रीका के जनगण में आशा और उत्साह का संचार होगा। इस तरह इस देश में ब्रिटिश शासन की समप्ति एक जीवंत और तात्कालिक प्रश्न है जिस पर युद्ध का भविष्य तथा स्वाधीनता और जनतंत्र की सफलता निर्भर है। एक स्वाधीन भारत स्वाधीनता के संघर्ष में तथा नाजीवाद, फासीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने तमाम विशाल संसाधनों को झोंककर यह सफलता सुनिश्चित करेगा।"

8 अगस्त की रात में कांग्रेसी प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा :

> इसलिए मैं अगर हो सके तो तत्काल, इसी रात, प्रभात से पहले स्वाधीनता चाहता हूं ...आज दुनिया में झूठ और मक्कारी का बोलबाला है ... आप मेरी बात पर भरोसा कर सकते हैं कि मैं मंत्रिमंडल या ऐसी दूसरी वस्तुओं के लिए वायसराय से सौदा करने वाला नहीं हूं। मैं पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी चीज से संतुष्ट होने वाला नहीं हूं ... अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूं : आप इसे अपने दिलों में संजोकर रख लें और हर एक सांस में इसका जाप करें वह मंत्र यह है 'करो या मरो!' हम या तो भारत को स्वतंत्र कराएंगे या इस प्रयास में मारे जाएंगे, मगर हम अपनी पराधीनता को रहना देखने के लिए जीवित नहीं रहेंगे।...

DELHI EDITION

The Hindustan Times Weekly

LARGEST CIRCULATION IN NORTHERN NORTH-WESTERN & CENTRAL INDIA

NEW DELHI: MONDAY, AUGUST 10 1942

UPANISHADS

FIRINGS : LATHI CHARGES : MASS ARRESTS

'BLITZ' REPRESSION STARTS

FIVE KILLED AND 149 ARRESTED IN BOMBAY

POLICE OPEN FIRE A DOZEN TIMES

MRS. KASTURBA GANDHI AND PYARELAL TAKEN INTO CUSTODY

DISTURBANCES LEAD TO FIRING IN POONA AND AHMEDABAD ALSO

CLOSELY FOLLOWING ON THE ARREST OF MAHATMA GANDHI AND OTHER LEADERS YESTERDAY MORNING, DEMONSTRATIONS WERE HELD IN BOMBAY WHICH LED TO FIRING, LATHI CHARGES USE OF TEAR GAS FOR DISPERSING CROWDS AND ARRESTS EN MASSE.

AMERY AT IT AGAIN

"India Saved From Disaster"!

PROTEST TO BE VOICED

BRITISH PRESS

FIRING IN POONA

CONGRESS DECLARED UNLAWFUL

PROVINCIAL GOVT.S GET BUSY

PROPERTY SEIZED: OFFICES LOCKED

ARRESTS OF LEADERS, WORKERS AND EX-MINISTERS

DR. RAJENDRA PRASAD, VINOBA BHAVE & TANDON IN CUSTODY

DR. RAJENDRA PRASAD

DELHI LEADERS ARRESTED

Peaceful Procession And Meeting

Communists Join Demonstration

BIHAR

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास होने के दूसरे दिन 9 अगस्त, 1942 के समाचार-पत्रों में प्रकाशित दमन संबंधी खबरें

लेकिन कांग्रेस आंदोलन चला सके, इसके पहले ही सरकार ने कड़ा प्रहार किया। 9 अगस्त को बहुत तड़के ही गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेता गिरफ्तार करके अनजानी जगहों पर ले जाए गए और कांग्रेस को फिर एक बार गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया।

इन गिरफ्तारियों की खबर ने पूरे देश को सकते में डाल दिया और हर जगह विरोध में एक स्वतःस्फूर्त आंदोलन उठ खड़ा हुआ जिसमें जनता का अभी तक दबा हुआ गुस्सा झलक रहा था। नेताविहीन और संगठन विहीन जनता ने जिस ढंग से भी ठीक समझा, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। पूरे देश में कारखानों में, स्कूलों और कालेजों में हड़तालें और कामबंदी हुई, और प्रदर्शन हुए जिन पर लाठीचार्ज और फायरिंग भी हुए। बार-बार की गोलीबारी और दमन से क्रुद्ध होकर जनता ने अनेक जगहों पर हिंसक कार्यवाहियां भी कीं! उसने पुलिस थानों, डाकखानों, रेलवे स्टेशनों आदि ब्रिटिश शासन के तमाम प्रतीकों पर हमले किए। उन्होंने टेलीफोन के तार उखाड़ दिए, तार के खंभे गिरा दिए, रेल लाइनें उखाड़ दीं और सरकारी इमारतों में आग लगा दी। इस संबंध में मद्रास और बंगाल सबसे अधिक प्रभावित हुए। अनेक जगहों पर अनेक शहरों, कस्बों और गांवों में विद्रोहियों का अस्थायी कब्जा भी हुआ। संयुक्त

प्रदर्शनकारियों पर बंबई में 9 अगस्त, 1942 को आँसू गैस छोड़ती हुई पुलिस

प्रांत, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र, तमिलनाडु और महाराष्ट्र के अनेक भागों में ब्रिटिश शासन लुप्त हो गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया जिले, बंगाल के मिदनापुर जिले में तामलुक, और बंबई के सतारा जिले जैसे कुछ क्षेत्रों में क्रांतिकारियों ने 'समानांतर सरकार' भी बना ली। आमतौर पर छात्र, मजदूर और किसान ही इस 'विद्रोह' के आधार थे जबकि उच्च वर्गों के लोग तथा नौकरशाह सरकार के वफादार रहे।

सरकार ने अपनी ओर से 1942 के आंदोलन को कुचलने के लिए सब कुछ किया। उसके दमन की कोई सीमा नहीं रही। प्रेस का पूरी तरह गला घोंट दिया गया। प्रदर्शन कर रही भीड़ों पर मशीनगनों से गोलियां तथा हवा में बम भी बरसाए गए। कैदियों को यातनाएं दी गईं। पुलिस और खुफिया पुलिस का राज चारों ओर था। अनेक नगरों और कस्बों को सेना ने अपने नियंत्रण में ले लिया। पुलिस और सेना की गोलीबारी में 10,000 से अधिक लोग मारे गए। विद्रोही गांवों को जुर्माना के रूप में भारी-भारी रकमें देनी पड़ीं और गांव वालों पर सामूहिक रूप से कोड़े बरसाए गए। 1857 के विद्रोह के बाद भारत में इतना निर्मम दमन कभी देखने को नहीं मिला था।

सराकर अंततः आंदोलन को कुचलने में सफल रही। 1942 का यह विद्रोह वास्तव में बहुत संक्षिप्त रहा। इसका महत्त्व इस बात में था कि इसने दिखाया कि देश में राष्ट्रवादी भावनाएं किस गहराई तक अपनी जड़ें जमा चुकी थीं और जनता संघर्ष और बलिदान की कितनी बड़ी क्षमता प्राप्त कर चुकी थी। यह स्पष्ट था कि जनता की इच्छा के विरुद्ध भारत पर शासन कर सकना अब अंग्रेजों को संभव नहीं लगा।

1942 के विद्रोह के दमन के बाद, 1945 में युद्ध
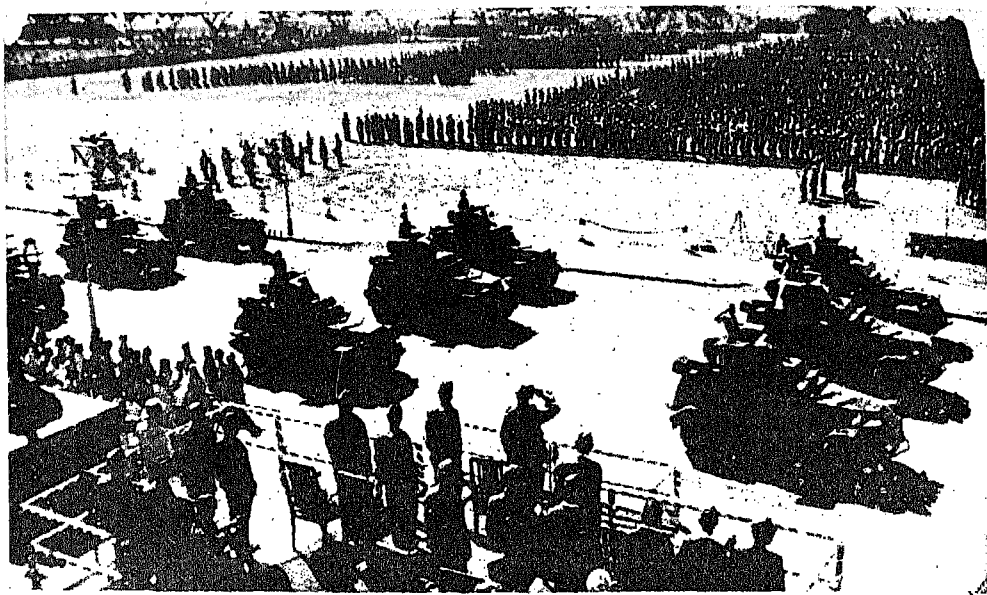
आज़ाद हिंद फ़ौज की सशस्त्र टुकड़ी की सलामी लेते हुए सुभाषचंद्र बोस

की समाप्ति तक देश में राजनीतिक गतिविधियां तलगभग ठप्प रहीं। राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वमान्य नेता जेलों में बंद थे और कोई नया नेता उनकी जगह नहीं ले सका था और न ही देश को नेतृत्व दे सका था। वर्ष 1943 में बंगाल में आधुनिक इतिहास का सबसे बड़ा अकाल फूट पड़ा। कुछ ही महीनों में तीस लाख से अधिक लोग भूख से मर गए। इससे जनता एक भयानक गुस्से से भर उठी क्योंकि सरकार अगर चाहती तो इतने लोगों को अकाल में मरने से बचा सकती थी। फिर भी इस गुस्से को पर्याप्त राजनीतिक अभिव्यक्ति न मिल सकी।

लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन को देश के बाहर एक नई अभिव्यक्ति मिली। सुभाषचंद्र बोस मार्च 1941 में देश से बाहर निकल गए थे और सहायता के लिए सोवियत संघ जाना चाहते थे। लेकिन जून 1941 में सोवियत संघ भी जब मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में उतरा तो वे जर्मनी चले गए। वहां से वे फरवरी 1943 में जापान के लिए चल पड़े ताकि जापानी सहायता से वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ सशस्त्र संघर्ष चला सकें। भारत की स्वाधीनता के लिए सैनिक अभियान चलाने के उद्देश्य से उन्होंने सिंगापुर में आजाद हिंद फौज की स्थापना की। इसमें उनको सहायता एक पुराने क्रांतिकारी रासबिहारी बोस ने की। सुभाषचंद्र बोस के वहां पहुंचने से पहले एक सेना बनाने के लिए कुछ काम जनरल मोहनसिंह कर चुके थे जो ब्रिटिश भारत की सेना में कप्तान थे। दक्षिण-पूर्व एशिया में रहने वाले भारतीय तथा मलाया, सिंगापुर और बर्मा में जापानी सेनाओं द्वारा बंदी बनाए गए भारतीय सैनिक और अधिकारी बड़ी संख्या में आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए। सुभाषचंद्र बोस ने, जिन्हें अब आजाद हिंद फौज के सिपाही "नेताजी" कहते थे, अपने अनुयायियों को "जय हिंद" का मूलमंत्र दिया। बर्मा से भारत पर आक्रमण करने में आजाद हिंद फौज ने जापानी सेना का साथ दिया। अपनी मातृभूमि को स्वाधीन कराने के विचार से प्रेरित होकर आजाद हिंद फौज के सैनिक आधिकारी

यह आशा करने लगे थे कि वे स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का प्रमुख सुभाषचंद्र बोस को बनाकर उनके साथ भारत में उसके मुक्तिदाताओं के रूप में प्रवेश करेंगे।

वर्ष 1944-45 में युद्ध में जापान की पराजय के बाद आजाद हिंद फौज की भी हार हुई, और सुभाष चंद्र बोस टोकियो जाते हुए रास्ते में एक वायुयान दुर्घटना में मारे गए। उस समय भारत के अधिकांश राष्ट्रवादी नेताओं ने उनकी इस रणनीति की आलोचना की कि फासीवादी ताकतों के साथ सहयोग करके स्वाधीनता ज़ीती जाए, फिर भी आजाद हिंद फौज की स्थापना करके उन्होंने देशभक्ति का एक प्रेरणाप्रद उदाहरण भारतीय जनता और भारतीय सेना के सामने रखा। पूरे देश ने उन्हें "नेताजी" का सम्मानित नाम दिया।

युद्धोत्तर काल का संघर्ष

अप्रैल 1945 में यूरोप में युद्ध समाप्त हुआ। इसी के साथ भारत के स्वाधीनता संघर्ष ने एक नए चरण में प्रवेश किया। 1942 के विद्रोह तथा आजाद हिंद फौज की मिसाल ने भारतीय जनता की बहादुरी और दृढ़ता को स्पष्ट कर दिया था। जेलों से राष्ट्रीय नेता जब रिहा हुए तो जनता स्वाधीनता के लिए एक और, और संभवतः अंतिम संघर्ष की आशा करने लगी।

यह नया संघर्ष आजाद हिंद फौज के सैनिकों और अधिकारियों पर चलाए गए मुकदमे के विरोध में एक व्यापक आंदोलन के रूप में उभरा। सरकार ने आजाद हिंद फौज के जनरल शाहनवाज, जनरल गुरदयाल सिंह ढिल्लों और जनरल प्रेम सहगल पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चलाने का फैसला किया। ये लोग पहले ब्रिटिश भारतीय सेना के अधिकारी थे। उन पर ब्रिटिश सिंहासन के प्रति निष्ठा की शपथ भंग करने और इस प्रकार 'गद्दार' होने का आरोप लगाया गया। दूसरी ओर जनता ने उनका स्वागत राष्ट्रीय नायकों के रूप में किया। पूरे देश में उनकी रिहाई की मांग को लेकर विशाल जन-प्रदर्शन हुए। पूरा देश उत्तेजना से और इस आशा से भरा था कि अब की बार का संघर्ष विजयी होगा। इसलिए वह इन नायकों को सजा दिए जाने की छूट नहीं दे सकती थी। ब्रिटिश सरकार भी इस समय भारतीय जनमत को अनेदशा करने की स्थिति में नहीं थी। हालांकि कोर्ट मार्शल में आजाद हिंद फौज के इन बंदियों को दोषी पाया गया, मगर सरकार ने उन्हें छोड़ देने में ही भलाई समझी। ब्रिटिश सरकार के इस बदले रवैए के अनेक कारण थे।

प्रथम, युद्ध के कारण विश्व में शक्तियों का संतुलन बदल गया था। युद्ध के बाद अब ब्रिटेन की जगह अमरीका और सोवियत संघ बड़ी शक्तियों के रूप में उभरे। ये दोनों भारत की स्वतंत्रता की मांग के समर्थक थे।

द्वितीय, ब्रिटेन युद्ध में जीतने वाले पक्ष में था अवश्य, मगर अब उसकी आर्थिक और सैनिक शक्ति बिखर चुकी थी। ब्रिटेन को अब अपने को संभालने में ही वर्षों लग जाते। इसके अलावा, ब्रिटेन में सरकार भी बदल चुकी थी। कंजर्वेटिव पार्टी की जगह अब लेबर पार्टी की सरकार थी और उसके अनेक सदस्य कांग्रेस की मांगों के समर्थक थे। ब्रिटिश सैनिक युद्ध में थक-हार चुके थे। लगभग छः वर्षों तक लड़ने और खून बहाने के बाद अब वे और कई साल घर से दूर भारत में रहकर वहां की जनता के स्वाधीनता संघर्ष को कुचलने के लिए तैयार नहीं थे।

तृतीय, ब्रिटिश भारतीय सरकार को राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए यहां के नागरिक प्रशासन के भारतीय सदस्यों और सशस्त्र सेनाओं पर भरोसा नहीं रह गया था। आजाद हिंद फौज की घटना ने दिखा दिया था कि देशभक्ति की भावना भारतीय सेना में भी फैल चुकी थी जो भारत में ब्रिटिश शासन का प्रमुख आधार थी। आग में तेल छिड़कने का काम फरवरी 1946 में बंबई में भारतीय नौसेना के जहाजियों के विद्रोह ने किया। ये जहाजी सेना और नौसेना से सात घंटों तक लड़ते रहे और उन्होंने समर्पण तभी किया जब राष्ट्रीय
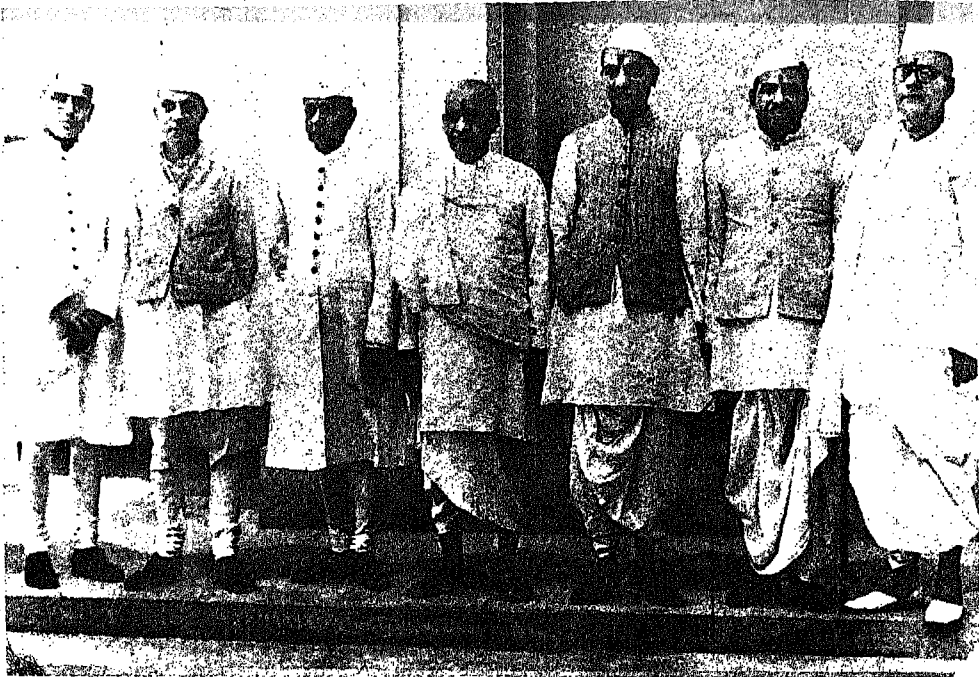
अंतरिम सरकार के सदस्य (दाएं से बाएं) शरतचंद्र बोस, जगजीवन राम, राजेन्द्र प्रसाद, वल्लभ भाई पटेल, आसफ अली, जवाहरलाल नेहरु, सैयुयद अली जहीर

नेताओं ने उनसे ऐसा करने के लिए कहा। दूसरी कई जगहों पर भी जहाजियों ने उनकी सहानुभूति में हड़ताल की। इसके अलावा भारतीय वायु सेना में भी व्यापक हड़तालें हुईं। ब्रिटिश शासन के दो और प्रमुख आधारों अर्थात् पुलिस और नौकरशाही में भी राष्ट्रवादी झुकाव के चिह्न दिखाई देने लगे थे। अब राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के लिए उनका भरोसे के साथ उपयोग नहीं किया जा सकता था। उदाहरण के लिए, बिहार और दिल्ली के पुलिस बलों ने हड़तालें कीं।

चौथी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि भारतीय जनता अब आत्मविश्वास से भरपूर और टकराने के लिए तैयार नजर आ रही थी। वह अब विदेशी शासन के अपमान को और झेलने को तैयार न थी। अब आजादी मिलने तक आराम उसके लिए हराम था। नौसेना का विद्रोह तथा आजाद हिंद फौज के कैदियों की रिहाई के लिए हड़ताल हो चुकी थी। इसके अलावा 1945-46 में अनेकों आंदोलन, हड़तालें, कामबंदियां और प्रदर्शन पूरे देश में और हैदराबाद, ट्रावनकोर और कश्मीर जैसे अनेक रजवाड़ों तक में भी हुए। उदाहरण के लिए नवंबर 1945 में आजाद हिंद फौज के कैदियों की रिहाई की मांग को लेकर कलकत्ता में लाखों लोगों ने प्रदर्शन किया। तीन दिन तक नगर में सरकार नाम की कोई चीज रही ही नहीं थी। फिर 12 फरवरी, 1946 को भी आजाद हिंद फौज के एक और बंदी, अब्दुर्रशीद की रिहाई की मांग को लेकर नगर में एक और जन-प्रदर्शन हुआ। 22 फरवरी को बंबई में एक पूर्ण

हड़ताल हुई तथा कारखानों और दफ्तरों में काम ठप्प रहा। यह सब विद्रोही जहाजियों के समर्थन में था। इस जन-उभार को दबाने के लिए सेना बुलानी पड़ी। 48 घंटों के अंदर सड़कों पर 250 से अधिक लोग गोली के शिकार हुए।

पूरे देश में बड़े पैमाने पर मजदूर-असंतोष भी फैल रहा था। शायद ही कोई उद्योग रहा हो जिसमें हड़ताल न हुई हो। जुलाई 1946 में डाक-तार मजदूरों ने देशव्यापी हड़ताल की। अगस्त 1946 में दक्षिण भारत में रेल मजदूरों की हड़ताल हुई। वर्ष 1945 के बाद, जैसे-जैसे स्वाधीनता का समय पास आया, किसान आंदोलनों में एक नया उबाल आया। युद्ध के बाद किसानों का सबसे जुझारू संघर्ष बंगाल के बंटाईदारों का तेभागा संघर्ष था जिसमें घोषणा की गई कि वे अब जमींदारों को फसल का आधा नहीं, बल्कि एक-तिहाई भाग ही देंगे। जमीन के लिए तथा ऊंचे लगानों के खिलाफ हैदराबाद, मलाबार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र में भी संघर्ष हुए। कामबंदी, हड़तालों और प्रदर्शनों का आयोजन करने में स्कूलों और कालेजों के छात्रों ने प्रमुख भूमिका निभाई। हैदराबाद, ट्रावनकोर, कश्मीर और पटियाला आदि रजवाड़ों में भी जन-उभार और संघर्ष फैल उठे। वर्ष 1946 के आरंभ में प्रांतीय विधानसभाओं के चुनाव एक और प्रमुख राजनीतिक घटनाक्रम सिद्ध हुए। सामान्य सीटों में से अधिकांश सीटें कांग्रेस ने जीतीं जबकि मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटों में से अधिकांश मुस्लिम लीग को मिलीं।

इसलिए ब्रिटिश सराकर ने मार्च 1946 में एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा कि भारतीय नेताओं से भारतीयों को सत्ता सौंपने की शर्तों के बारे में बातचीत की जाए। कैबिनेट मिशन ने दो स्तरों वाली एक संघीय योजना का प्रस्ताव किया जिससे आशा की गई कि बड़ी मात्रा में क्षेत्रीय स्वायत्तता देकर भी राष्ट्रीय एकता को बनाए रखा जा सकेगा। इस योजना में प्रांतों और रजवाड़ों का एक संघ होता और संघीय केंद्र का केवल प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों और संचार विषयों पर नियंत्रण होता। साथ ही प्रांत अपने-अपने क्षेत्रीय संगठन भी बना सकते थे और उसे आपसी समझौतों के द्वारा अपनी कुछ शक्तियां सौंप सकते थे। लेकिन दोनों एक ऐसी अंतरिम सरकार की योजना पर सहमत न हो सके जो एक स्वतंत्र और संघीय भारत के लिए एक संविधान बनाने के उद्देश्य से एक संविधान सभा का गठन करती। कैबिनेट मिशन की जिस योजना पर दोनों पहले सहमत हो चुके थे उसके बारे में भी दोनों ने अलग-अलग व्याख्याएं सामने रखीं। अंततः सितंबर 1946 में कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में एक अंतरिम मंत्रिमंडल का गठन किया। कुछ हिचक के बाद अक्तूबर में मुस्लिम लीग भी इस मंत्रिमंडल में शामिल हो गई मगर उसने संविधान सभा का बहिष्कार करने का फैसला किया। 20 फरवरी, 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने घोषणा की कि ब्रिटेन जून 1948 तक भारत का शासन छोड़ देगा।

लेकिन मिलने वाली स्वाधीनता की खुशियों पर अगस्त 1946 के बाद भड़कने वाले व्यापक सांप्रदायिक दंगों ने पानी फेर दिया। हिंदू और मुस्लिम संप्रदायवादियों ने इन जघन्य हत्याओं का दोषी एक दूसरे को ठहराया और क्रूरता में एक दूसरे का मुकाबला करते रहे। न्यूनतम मानव-मूल्यों का इस तरह उल्लंघन होते और सत्य-अहिंसा को ताक पर रखा जाते देखकर महात्मा गांधी दुख से भर उठे। उन्होंने दंगे रोकने के लिए पूर्वी बंगाल और बिहार की पदयात्रा की। सांप्रदायिकता की आग को बुझाने में दूसरे अनेक हिंदू-मुसलमानों ने भी प्राणों से हाथ धोए। लेकिन इसके बीज सांप्रदायिक तत्वों ने, विदेशी सराकर की सहायता से बहुत गहरे बोए थे। गांधीजी और दूसरे राष्ट्रवादी नेता सांप्रदायिक पूर्वाग्रहों और भावनाओं से जूझते रहे मगर बेकार।

अंत में मार्च 1947 में वायसराय बनकर भारत आए लार्ड लुई माउंटबेटन ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं से लंबी-लंबी बातचीतों के बाद समझौते का

एक रास्ता निकाला कि देश स्वाधीन तो होगा मगर एक नहीं रहेगा। भारत का विभाजन होगा और भारत के साथ पाकिस्तान नामक एक नया राज्य भी स्थापित होगा। बडे पैमाने पर खून-खराबा और सांप्रदायिक दंगों का अंदेशा सामने था, इसलिए राष्ट्रवादी नेताओं ने मजबूर होकर भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया। लेकिन उन्होंने दो राष्ट्रों का सिद्धांत नहीं माना। उन्होंने यह नहीं माना कि देश का एक-तिहाई भाग दे दिया जाए जिसकी मांग भारत की जनसंख्या में मुसलमानों के भाग के आधार पर मुस्लिम लीग कर रही थी। वे केवल वही क्षेत्र देने पर राजी हुए जहां मुस्लिम लीग का व्यापक प्रभाव था। इस तरह पंजाब, बंगाल और असम का भी विभाजन आवश्यक हो गया। मुस्लिम लीग को एक ''घुन-लगा'' पाकिस्तान ही मिला। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत तथा असम के सिलहट जिले में लीग का प्रभाव संदिग्ध था, इसलिए वहां जनमत-संग्रह कराने का निश्चय हुआ। दूसरे शब्दों में, देश का विभाजन तो हुआ, मगर हिंदू धर्म और इस्लाम के आधार पर नहीं।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने विभाजन को स्वीकार तो किया मगर इसलिए नहीं कि यहां दो (हिंदू और मुस्लिम) राष्ट्र रहते थे, बल्कि इसलिए कि पिछले लगभग 70 वर्षों के दौरान हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिकता का विकास इस प्रकार हुआ था कि विभाजन न होता तो वहशियाना और बर्बर सांप्रदायिक दंगों में लाखों लोगों का संहार होता। अगर ये दंगे देश के किसी एक भाग तक सीमित होते तो कांग्रेस के नेता उन्हें दबाने और विभाजन के खिलाफ कड़ा रुख अपनाने के प्रयास करते। लेकिन दुर्भाग्य से यह आपसी मार-काट हर जगह हो रही थी और इसमें हिंदू-मुसलमान, दोनों की सक्रिय भागीदारी थी। सबसे बड़ी बात यह है कि देश पर अभी भी विदेशियों का शासन था जिन्होंने दंगों को रोकने के लिए उंगली तक नहीं उठाई। उल्टे, अपनी फूट डालने वाली नीतियों से विदेशी सरकार ने इन दंगों को प्रोत्साहन ही दिया, शायद इस आशा में कि वह दोनों नवस्वतंत्र राष्ट्रों को आपस में लड़ा सकेगी।* यहां तक कि अंत में जिन्ना को भी मजबूर होकर अपने दो राष्ट्रों के सिद्धांत में फेर बदल करना पड़ा जो कि सांप्रदायिकता की जड़ था। भारत में रहने का फैसला करने वाले मुसलमानों ने जब उनसे पूछा कि वे क्या करें, तो जिन्ना ने कहा कि उन्हें भारत का वफादार नागरिक बनना चाहिए। 11 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की संविधान सभा के आगे उन्होंने कहा था : ''आपका धर्म या जाति या पंथ कोई भी हो सकता है, इसका राज्य के कारोबार से कुछ भी लेना-देना नहीं है।'' वास्तव में अपनी सांप्रदायिक राजनीति के लिए जिस जिन्न को उन्होंने बोतल से बाहर निकाल दिया था, अब वे उसको फिर से बोतल में बंद करने की बेकार कोशिश कर रहे थे।

भारत और पाकिस्तान के स्वाधीन होने की घोषणा 3 जून, 1947 को की गई। रजवाड़ों को यह छूट दी गई कि इनमें से किसी भी राज्य में वे शामिल हो जाएं। रजवाड़ों की जनता के व्यापक आंदोलनों के दबाव में और गृहमंत्री सरदार पटेल की सफल कूटनीति के कारण अधिकांश रजवाड़ों ने भारत में शामिल होने का फैसला किया। जूनागढ़ के नवाब, हैदराबाद के निजाम, तथा जम्मू-कश्मीर के महाराजा कुछ समय तक अगर-मगर करते रहे। काठियावाड़ के समुद्र तट पर स्थित छोटे से रजवाड़े जूनागढ़ की जनता ने भारत में शामिल होने की घोषणा की मगर वहां के नवाब ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया। अंततः भारतीय सेना

---

* सांप्रदायिकता के बारे में 1946 में जवाहरलाल नेहरु ने अपनी पुस्तक 'भारत : एक खोज' में लिखा था : ''निश्चित ही यह हमारा दोष है और हमें अपनी कमजोरियों का दंड भुगतना होगा। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों ने भारत में तोड़-फोड़ पैदा करने के लिए सोच-समझकर जो कुछ किया उसके लिए मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सकता। दूसरे सभी घाव भर जाएंगे, मगर यह एक घाव कहीं बहुत लंबे समय तक रिसता रहेगा।''

ने राज्य पर कब्जा कर लिया और वहां एक जनमत-संग्रह कराया गया जिसका परिणाम भारत में शामिल होने के पक्ष में निकला। हैदराबाद के निजाम ने स्वतंत्र राज्य घोषित करने की कोशिश की, मगर वहां तेलंगाना क्षेत्र में हुए एक आंतरिक विद्रोह तथा वहां भारतीय सेनाओं के पहुंचने के बाद उसे भी 1948 में भारत में शामिल होना पड़ा। कश्मीर के महाराजा ने भी भारत या पाकिस्तान में शामिल होने में देर की, मगर वहां की जनता, जिसका नेतृत्व नेशनल कांफ्रेंस कर रही थी, भारत में शामिल होना चाहती थी। मगर कश्मीर पर पाकिस्तान के पठानों तथा अनियमित फौजी दस्तों के हमले के बाद उसे भी अक्तूबर 1947 में भारत में शामिल होना पड़ा।

संविधान सभा के समक्ष 14 अगस्त, 1947 को 'नियति से मिलन' नामक प्रसिद्ध भाषण देते हुए जवाहरलाल नेहरु

15 अगस्त, 1947 को भारत ने उल्लास के साथ अपना पहला स्वाधीनता-दिवस मनाया। देशभक्तों की कई पीढ़ियों के बलिदानों तथा अनगिनत शहीदों के खून का फल आखिर हमें मिला। उनका सपना अब सच्चाई बन चुका था। 14 अगस्त की रात में संविधान सभा के आगे दिए गए अपने एक स्मरणीय वक्तव्य में जवाहरलाल नेहरु ने जनता की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहा :

> वर्षों पहले हमने भविष्य के साथ वादा किया था और अब समय आ गया है कि पूरी तरह न सही तो भी बहुत काफी सीमा तक हम अपने वचन का पालन करें रात को बारह का घंटा जब बजेगा और जब पूरा विश्व सो रहा होगा, तब भारत जीवन और स्वाधीनता की ओर अग्रसर होगा। इतिहास में कभी-कभी ही वह क्षण आता है, मगर आता अवश्य है जब हम पुराने से निकलकर नए को अपनाते हैं, जब एक युग का अंत होता है और जब किसी राष्ट्र की लंबे समय से दबी हुई आत्मा मुखर हो उठती है। उचित यही है कि हम इस पुनीत क्षण में भारत और उनकी जनता की सेवा के प्रति और उससे भी व्यापकतर मानवता के हित में समर्पित होने का संकल्प करें। ... आज हमारे दुर्भाग्य का काल समाप्त हो रहा है और भारत ने पुनः अपने-आपको पा लिया है। आज हम जिस उपलब्धि की खुशी मना रहे हैं वह निरंतर प्रयत्न चाहती है ताकि हम वे संकल्प पूरे कर सके जो हम प्रायः करते आए हैं।

परंतु यह उल्लास जिसे असीम और अबाध होना चाहिए था, दुख और उदासी से भरा हुआ था। भारत की एकता का सपना चकनाचूर हो चुका था और भाई-भाई से बिछड़ चुका था। इससे भी बुरी बात यह थी कि स्वतंत्रता के इस क्षण में भी अवर्णनीय बर्बरता के साथ

सांप्रदायिकता का दानव भारत और पाकिस्तान, दोनों में लाखों लोगों की बलि ले रहा था। अपने पूर्वजों की धरती से नाता तोड़कर लाखों-लाख शरणार्थी इन दो नए राज्यों में पहुंच रहे थे।* राष्ट्र की विजय के इस क्षण में घटित इस त्रासदी के प्रतीक वही गांधीजी थे, जिन्होंने भारतीय जनता को अहिंसा, सत्य, प्रेम, साहस, शूरवीरता का संदेश दिया था, जो भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टतम तत्वों के प्रतीक थे। वे देश के हिंसा-ग्रस्त क्षेत्रों के चक्कर लगा रहे थे और स्वतंत्रता की खुशियों की गूंज अभी थमी भी न थी कि 30 जनवरी, 1948 को एक हत्यारे, घृणा से चूर एक हिंदू-कट्टरपंथी ने उस चिराग को बुझा दिया जो 70 वर्षों से हमारे इस देश में उजाला फैलाता आ रहा था। इस तरह गांधीजी "एकता के जिस उद्देश्य के प्रति हमेशा समर्पित रहें उसी के लिए शहीद हो गए।"**

एक अर्थ में स्वाधीनता की प्राप्ति के रूप में देश ने अभी सिर्फ पहला कदम उठाया था, अर्थात् विदेशी शासन को उखाड़ फेंककर उसने राष्ट्रीय पुनर्जन्म की प्रमुख बाधा को दूर किया था। सदियों के पिछड़ापन, पूर्वाग्रह, असमानता और अज्ञान अभी भी देश पर हावी थे और पुनर्रचना का लंबा काम अभी शुरू ही हुआ था। जैसा कि 1941 में अपने निधन से तीन माह पहले रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था :

> "भाग्य का चक्र किसी न किसी दिन अंग्रेज़ जाति को बाध्य करेगा कि वह अपने भारतीय साम्राज्य से हाथ धो ले। लेकिन वे अपने पीछे किस तरह का भारत, कितनी बुरी बदहाली छोड़ जाएंगे? जब उनके सदियों पुराने प्रशासन का सोता अंततः सूखेगा तब कितना कूड़ा-करकट और कीचड़ वे अपने पीछे छोड़ जाएंगे।"

लेकिन स्वाधीनता के संघर्ष ने केवल औपनिवेशिक शासन को ही नहीं उखाड़ फेंका था, आजाद हिंदुस्तान की एक तस्वीर भी सामने रखी थी। यह तस्वीर एक लोकतांत्रिक नागरिक स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्ष भारत की थी। यह तस्वीर एक स्वाधीन आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक समानता और राजनीतिक रूप से जागरूक और सक्रिय जनता पर आधारित भारत की थी। यह तस्वीर थी एक ऐसे भारत की जो अपने पड़ोसियों और

पायोनियर नामक अखबार में गांधीजी की हत्या के बाद प्रकाशित 'दि मार्टर' (शहीद)

---

* इस काल के बारे में नेहरु ने बाद में लिखा : "भय और घृणा ने हमारे मन को जकड़ लिया था और सभ्यता के सारे बंधन टूट चुके थे। एक दरिंदगी के बाद दूसरी दरिंदगी देखने में आई, और मानव शरीरधारी प्राणियों की निर्मम पशुता को देखकर हृदय एकाएक शून्य से भर उठा। चिराग एक-एक करके बुझते नजर आए हां, सभी नहीं, क्योंकि दो-एक अभी भी उमड़ते तूफान में टिमटिमा रहे थे। हम मरने वालों और मर रहे लोगों के प्रति और मौत से भी अधिक भयानक पीड़ा उठा रहे लोगों के प्रति, दुखी थे। इससे भी अधिक दुखी थे हम भारत, अपनी साझी माता के प्रति, जिसकी मुक्ति के लिए हम इतने वर्षों से प्रयास करते आ रहे थे।"

** इससे पहले 1947 में अपने जन्मदिन पर एक पत्रकार के प्रश्नों का उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा था कि वे अब और जीना नहीं चाहते और वे "ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि वह मुझे आंसुओं की इस घाटी से उठा ले, और मुझे उस हत्याकांड का असहाय दर्शक न बना रहने दे जो बर्बर बन चुका मनुष्य कर रहा है, भले ही वह अपने-आपको मुसलमान या हिंदू या कुछ और ही क्यों न कहता हो।"

शेष विश्व के साथ शांतिपूर्वक रहता हो और जिसका आधार एक स्वतंत्र विदेश नीति हो।

इस तस्वीर को मूर्त रूप देने का पहला प्रयास जवाहरलाल नेहरु और भीमराव अंबेडकर के मार्गदर्शन में संविधान सभा ने स्वतंत्र भारत का नया संविधान बनाकर किया। 26 जनवरी, 1950 को लागू होने वाले इस संविधान ने कुछ बुनियादी सिद्धांत और मूल्य सामने रखे। इसके अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक गणराज्य होगा जिसमें बालिग मताधिकार (सभी बालिग स्त्री-पुरुषों के लिए मत देने का अधिकार) पर आधारित एक संसदीय प्रणाली होगी। यह एक संघीय व्यवस्था होगी जिसमें संघ सरकार और संघ बनाने वाले राज्यों के अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से अलग-अलग होंगे। संविधान ने सभी भारतीय नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार दिए, जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक सभा करने और संगठन बनाने की स्वतंत्रता, संपत्ति जुटाने और उसका उपयोग करने की स्वतंत्रता आदि। संविधान ने सभी नागरिकों को कानून के सामने बराबरी तथा सरकारी रोजगार के अवसर की समानता की जमानत दी। यह निश्चित हुआ कि राज्य धर्म, जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ कोई भेदभाव नहीं करेगा। 'अस्पृश्यता' का उन्मूलन कर दिया गया तथा किसी भी रूप में इसके व्यवहार पर प्रतिबंध लगा दिया गया। सभी भारतीयों को स्वतंत्रतापूर्वक किसी भी धर्म को मानने, उसके अनुसार कार्य करने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार दिया गया। साथ ही पूरी तरह राज्य के खर्च पर चलने वाले किसी भी शैक्षिक संस्थान में किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा देने पर रोक लगा दी गई। संविधान में कुछ "राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत" भी निश्चित किए गए जिन्हें किसी अदालत द्वारा तो लागू नहीं कराया जा सकता मगर जो कानून बनाने में राज्य का मार्गदर्शन करेंगे। इसमे ये सिद्धांत शामिल हैं – राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक

डॉ. बी.आर. अंबेडकर

न्याय पर आधारित एक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना को प्रोत्साहन; धन और उत्पादन के साधनों का कुछ हाथों में केंद्रीकरण रोकना; स्त्री-पुरुष, दोनों के लिए समान काम का समान वेतन; ग्राम पंचायतों की स्थापना; काम और शिक्षा का अधिकार; बेरोजगारी, बुढ़ापे और बीमारी में सार्वजनिक सहायता; पूरे देश में एक समान पारिवारिक कानून; तथा जनता के कमजोर वर्गों, खासकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों, के शैक्षिक और आर्थिक हितों को प्रोत्साहन।

अपनी क्षमताओं पर भरोसा करके तथा मन में सफलता की आकांक्षा लेकर अब भारतीय जनता अपने देश का कायाकल्प करने तथा एक न्यायप्रिय, श्रेष्ठ समाज और एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और समतावादी भारत का निर्माण करने के काम में जुट गई।

अभ्यास

1. वर्ष 1927-29 के दौरान की घटनाओं का विवेचन कीजिए जो भारत में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष की नई अवस्था के द्योतक हैं।
2. असहयोग आंदोलन वापस लेने के बाद के क्रांतिकारी आंदोलन की दिशा का पता लगाइए। वर्ष 1920 के दशक के उत्तरार्ध के बाद क्रांतिकारियों की सोच में जो परिवर्तन हुआ उसका विश्लेषण कीजिए।
3. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन 1929 के महत्त्व का विवेचन कीजिए।
4. नागरिक अवज्ञा आंदोलन के आरंभ से लेकर 1934 में इसके वापस लेने तक के बीच इसकी प्रगति का वर्णन कीजिए। अब तक के सबसे बड़े जन-संघर्ष के रूप में इसके महत्त्व का आकलन कीजिए।
5. ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज सम्मेलन का आयोजन क्यों किया? इन सम्मेलनों के प्रति कांग्रेस का रवैया क्या था और इनका क्या नतीजा निकला?
6. वर्ष 1935 के भारत सरकार अधिनियम की क्या मुख्य विशेषताएं थीं। इसके किन प्रावधानों को नहीं लागू किया गया और क्यों?
7. विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
8. समाजवादी विचारों और किसानों तथा मजदूरों के आंदोलनों के विकास का वर्णन कीजिए। राष्ट्रीय आंदोलन पर उनके प्रभाव का विवेचन कीजिए।
9. दूसरे देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों, 1930 के दशक में यूरोप में घटी घटनाओं, तथा एशिया और यूरोप के देशों पर होने वाले आक्रमणों के बारे में कांग्रेस के रुख का वर्णन कीजिए।
10. ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय राज्यों की स्थिति और उसके स्वरूप का विवेचन कीजिए। भारतीय राज्यों में जनता के आंदोलन के मुख्य उद्देश्य क्या थे? राष्ट्रवादी आंदोलन का यह अविभाज्य अंग क्यों बन गया?
11. वर्ष 1930 और 1940 के दशक में सांप्रदायिकता के विकास का विवेचन कीजिए। राष्ट्रवादी आंदोलन द्वारा इसको रोकने के लिए किए गए प्रयासों का आकलन कीजिए।
12. द्वितीय विश्व युद्ध के प्रति कांग्रेस के रवैए का वर्णन कीजिए। क्रिप्स मिशन की असफलता और उसके नतीजों का विवेचन कीजिए।
13. भारत छोड़ो आंदोलन की प्रगति का विवरण दीजिए। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास के संदर्भ में इसके महत्त्व का विवेचन कीजिए।
14. आजाद हिंद फौज की रचना और गतिविधियों का वर्णन कीजिए।
15. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व राजनीति में तथा भारत के प्रति ब्रिटिश रुख में हुए बदलावों का विवेचन कीजिए।
16. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत में होने वाले विशाल जन-आंदोलन का वर्णन कीजिए।

17. कैबिनेट मिशन से क्या आशय है? भारतीय नेताओं के साथ इसकी बातचीत के क्या नतीजे निकले?
18. भारत विभाजन की मांग के प्रति कांग्रेस और गांधी जी के रवैए का विवेचन कीजिए। अंततोगत्वा विभाजन की बात क्यों मान ली गई?
19. भारतीय रजवाड़ों को भारतीय संघ में मिलाए जाने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
20. भारतीय संविधान में राष्ट्रवादी आंदोलन के आदर्शों को किस प्रकार समाविष्ट किया गया है, व्याख्या कीजिए।
21. सामूहिक परियोजना के रूप में 1927 से 1947 के दौरान राष्ट्रवादी आंदोलन से संबंधित सामग्री एकत्र कीजिए। इस सामग्री में निम्नांकित बातें शामिल की जा सकती हैं : महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों के पाठ उदाहरणस्वरूप लाहौर कांग्रेस का प्रस्ताव, स्वतंत्रता के लिए लिया गया शपथ, भारत छोड़ो संबंधी संकल्प, राष्ट्रवादी नेताओं के लेखन, भाषण तथा वक्तव्यों आदि के चुने हुए अंश, चुनी हुई घटनाओं के विषय में समाचार-पत्रों की रपटें (लाहौर षड्यंत्र का मामला, दांडी यात्रा, नागरिक अवज्ञा के दौरान लगाए गए प्रतिबंध और नेताओं का कैद किया जाना, आदि) और तथा चित्र तथा अन्य दृश्य सामग्री।
22. पता लगाइए कि 15 अगस्त 1947 के बाद हिंदुस्तान के कौन से हिस्से विदेशी शासन के अधीन रह गए थे। उनको कब और किस प्रकार विदेशी शासन से मुक्त कराकर स्वतंत्र भारत का अंग बनाया गया?

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

Student-Student Relationship as a factor in Teacher-Pupil Relationship

Here we will examine this question:

Do the teachers like students who are liked by their classfellows?

We have calculated the coefficients of correlation between the total scores received by students on five-point Liking Scales and Sociometric Tests from the classfellows and teachers. The results of these coefficients are tabulated below. They will help us answer the question mentioned above.

TABLES SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE SCORES RECEIVED BY STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALES AND SOCIOMETRIC TESTS FROM THEIR CLASSFELLOWS AND TEACHERS

Size of Sample N = 42

Degrees of Freedom (N-2) = 40

SCORES ON FIVE-POINT LIKING SCALES

School	r	ρ	Interpretation
Boys'	.55	.38	Very significant
Girls'	.74	.68	Very significant

SCORES ON SOCIOMETRIC TESTS

School	With weightage ±3 ±2 ±1		Interpretation	With weightage ±1		Interpretation
	r	ρ		r	ρ	
Boys'	.29	.23	Significant	.30	.31	Significant
Girls'	.64	.66	Very significant	.71	.74	very significant

These significant values of coefficients of correlation show that students liked by their classfellows are also liked by their teachers both in the boys' and the girls' schools. But this tendency is much stronger in the girls' school than in the boys' school.

SUMMARY OF FINDINGS OF PILOT STUDY

Essentially, the pilot study gives confidence regarding the place of Sociometry in the classroom situation in understanding interpersonal relations, particularly those between the teachers and the pupils. Besides this, it has also helped us in getting clear ideas about the following:

1. Precautions to be observed in the administration of Sociometric Tests and five-point Liking Scales.

2. Weightages to be given to the choices on Sociometric Test.

3. How to make use of five-point Liking Scale as a supplementary tool for data collection with the Sociometric Test.

4. The following findings of this pilot study will serve as reference points in the analysis of Teacher-Pupil Relationship in the subsequent chapters:

A. Teacher-Pupil Relationship

(1) Teachers in the boys' school have given more expression to their choices than teachers in the girls' school - hundred per cent choices of rejection and acceptance but teachers in the girls'

school have given 81.49% of rejection and 94.45% of acceptance choices.

(ii) In the boys' as well as the girls' school, spreadover of rejection choices is greater than spreadover of acceptance choices.

(iii) In the boys' school, spreadover of acceptance choices is greater than the spreadover of these choices in girls' school.

(iv) In the girls' school, spreadover of rejection choices is greater than the spreadover of these choices in the boys' school.

B. Pupil-Teacher Relationship

(i) Students in both the schools have shown some reservation in the expression of their choices for teachers. However, boys have shown more reservation than girls.

(ii) Girls have shown greater spreadover of both rejection and acceptance choices than boys. This shows more teachers are accepted or rejected by girls than boys.

(iii) Both boys and girls have shown greater spread-over of acceptance choices than rejection choices. This shows that the number of teachers for whom they have liking inclination is more than the number for whom they have disliking inclination.

C. Five-Point Liking Scales

(i) Men teachers have given less ratings on higher scale values than those given by women teachers.

(ii) Women teachers have given more ratings in lower scale values than men teachers have.

(iii) Boys have given more ratings in higher scale values than their counterpart students in girls' school.

(iv) Girls have given more ratings to teachers in lower scale values than boys.

D. Teacher-Teacher Relationship

(i) Men teachers have expressed hundred per cent choices whereas women teachers have expressed 83.33% and 94.44% of their acceptance and rejection choices respectively.

(ii) Teachers have more percentage as well as average spreadover of acceptance choices for their colleagues in the boys' school, while in the girls' school teachers have more percentage as well as average spreadover of rejection choices.

5. Teachers liked by their colleages are also liked by their students. This tendency is found greater in the boys' school than in the girls' school.

6. In the girls' school, there is a strong tendency

that the students liked by their classfellows are also liked by their teachers. But, this tendency is not found to be so strong in the boys' school.

7. From the analysis of this pilot study, a line of action for the analysis and interpretation of the data collected is visualized.

REFERENCES

1. Bjenstedt A. (1956): Interpretation of Sociometric Choice Status. Hund Sweedon, Gleerup.

2. Bonney, M.E.(1953): Differences in School Behaviour between Sociometrly High and Sociometrly Low Children. Jr. Ed. Resch.; 46: 481-495. 1953.

3. Borgatta, E.E.(1951): A Diagnostic Note on the Construction of Sociograms and Action Diagrams. Group Psychotherapy, 3, 300-8, 12: 13, 21.

4. Bronfenbrenner U.(1945): The Measurement of Sociometric Status, Structure and Development. Sociometry, Monograph No. 6, Beacon House, New York.

5. Byrid, Eugene (1951): A Study of Validity and Constancy of Choice in a Sociometric Test. Sociometry, 1951, 14: 175-81.

6. Evans, K.M.(1962): Sociometry and Education. Routledge and Kegan Paul, London.

7. Fishbein, M.(1965): Prediction of Interpersonal Preferences and Group Member Satisfaction from Estimated Attitudes. J. Pers. Soc. Psychol., 1965, 1: 663-67.

8. Good, V. Carter (1959): Dictionary of Education. McGraw Hill Book Company, Inc. New York.

9. Gronlund, Normane (1955): The Relative Stability of Classroom Social Status with Weighed and Un-weighed Sociometric Status Scores. J. Edu. Psych, 1955; 46: 345-354.

10. Gronlund, Nor mane(1959): Sociometry in the Classroom. Harper & Bros., New York.

11. Gronlund, Normane and Barner F.P.(1956): The Reliability of Social Acceptability Scores Using Various Sociometric-Choice Limits. Elementary School Journal, 1956. 57: 153-57.

12. Hare, Paul A.(1962): Handbook of Small Group Research. The Free Press of Glencoe.

13. Haythorn, W.(1953): The Influence of Individual Members on the Characteristics of Small Group. J. Ab. Soc. Psychl. 1953; 48: 276-284.

14. Izad, C.L. (1960): Personality Similarity, Positive Effect and Inter-personal Attractions. J. Ab. Soc. Psychl,1960; 61: 484-85.

15. Jahoda, Marie, Morton Deutsch and Sturt (1956): Research Methods in Social Relations, Part One. The Dryden Press, New York.

16. Jennings, Helentt (1943): Leadership and Isolation. Longman, New York.

17. Jennings, Hall Helan (1951): Sociometry in Group Relations. American Council on Education, Washington.

18. Lindzey, Garden, and Elliot Pronson (1968): The Handbook of Social Psychology. Addison-Weley, Publishing Company, London.

19. Loeb, Nora (1941): The Educational and Psychological Significance of Social Acceptability and Its Appraisal in an Elementary School Setting. Unpublished Ph.D. Thesis, University of London.

20. Lott, Bernice, E; A.J. Lott (1960): The Formation of positive Attitude toward Group Members. J. Ab. Soc. Psych., 1960; 61: 297-300.

21. Moreno, J.L. (1934): Who Shall Survive. Washington, D.C. Nervous and Mental Disease Publishing Company.

22. Moreno, J.L.(1960): The Sociometry Reader. The Free Press of Glencoe, Illinois.

23. Mouton, Jane S. Blake, R.R. & Fruchter, B. (1955): The Reliability of Sociometric Measures. Sociometry, 1955, 18: 7-48.

24. Northway, M.L.(1940): A Method for Depicting Social Relationships by Sociometric Testing. Sociometry 1940; 3: 144-50, 22.

25. Northway, M.L. (1946): Personality and Sociometric Status. A Review of Toronto Studies, Sociometry 1946, 9: 233-41, 32.

26. Northway, M.L. (1960): Sociometric Testing. Lindsey Weld, University of Toronto Press.

27. Northway, M.L.(1968): The Stability of Young Children's Social Relations. Edu. Resech. 1968, V. II-2: 54-77.

28. Pepinsky, P.N.(1949): The Meaning of 'Validity' and 'Reliability' to Sociometric Tests. Edu. & Psych. Measm. 1949, 9: 39-49.

29. Remmers, H.H. (1964): Rating Methods in Research on Teaching. 329-78. Handbook of Research on Teaching, edited, N.L. Gage, Rand McNolly & Company, Chicago.

30. Sills, David L.(1968): International Encychlopaedia of Social Sciences, Vol 15. The MacMillan Company. The Free Press.

31. Taba, Hilda (1953): Studies in Inter-group Relations. Leadership Training in Inter-group Education. Washington, American Council on Education.

32. Taba, Hilda (1955): Studies in Inter-group Relations with Perspective on Human Relations. American Council on Education, Washington.

33. Withall, J.(1956): An Objective Measure of a Teacher's Classroom Interaction. J. Ed. Resch., 1956; 47: 203-12.

------

clear the purposes of conducting this study:

> " Many exploratory studies have the purpose of formulating a problem for more precise investigation or of developing hypothesis. An exploratory study may, however, have other functions: increasing the investigator's familiarity with the phenonenon he wishes to investigate in a subsequeht more highly structured study, or with the settings in which he plans to carry out such a study; clarifying concepts; establishing priorities for further research; gathering information about practical possibilities for carrying out research in real-life settings, providing a census of problems regarded as urgent by people working in a given field of social relations."

We can consider an Exploratory Study as an entity by itself. It is also appropriate to recognise it as an initial step in a continuous research process. From the conclusion drawn and the findings arrived at by the analysis of this study, its significance and relevance will be duly established.

In Chapter II, we have made mention of studies relating mainly to the characteristics of teachers. It was pointed out that we do not find studies where a simultaneous study is made of the characteristics of teachers and pupils as perceived by them in each other. Moreover, in our context, we do not find a substantial study made in India on the characteristics of even teachers only. And whatsoever has been said or talked about on this topic, are the thoughts of educationists or psychologists. Neither teachers nor have been asked about their views on this pertiment question. Here, in this chapter, we make an attempt where the teachers

and pupils express themselves as to what makes them like and dislike each other.

To have a sufficient insight into this question, the Survey Method was adopted. Best (1963, pp 107) has written the following lines on this method:

> " The survey method gathers data from a relatively large number of cases at a particular time. It is not concerned with characteristics of individuals as individuals. It is concerned with the generalized statistics that result when data are abstracted from a number of individual cases. It is essentially cross-sectional".

We can refer to our Chapter II where this method has been used by Hart (1934) and Witty Paul (1950).

Travers (1964, pp 281) quotes Ryans' (1960) study to illustrate the recent trend in the conduct of surveys of teacher behaviour. This sets the modest goal of using the survey as a search for measurable characteristics of the behaviour of teachers in the classroom.

The study has involved observation of teachers' behaviours and responses of pupils. Reports of specially effective and ineffective behaviour on the part of the teachers, were collected and analysed. From all these observations and analysis, a list of critical requirements was developed. (A Critical Requirement was defined (Ryans, pp 79) as any observable teacher behaviour which might make the difference between success and failure in teaching). It sought to note only those behaviours which seem to differentiate between extreme teacher groups.

The critical requirements for teachers as developed by Ryans, were found to be classifiable under three main headings:

1. Personal Qualities
   - (a) Optimism
   - (b) Fairness
   - (c) Self control
2. Professional Qualities
   - (a) Knowledge of subject matter and techniques of teaching.
   - (b) Ability to get students' response.
   - (c) Business-like approach.
3. Social Qualities
   - (a) Sympathetic and understanding
   - (b) Democratic
   - (c) Friendly and commending
   - (d) Ability to judge rejection of others.

The present investigator has made use of this survey method in its simple form. One questionnaire each for teachers and students was prepared. Each questionnaire contained two questions as illustrated below:

Questionnaire No. 1 (Appendix I), for teachers: The teachers were asked the following two questions:

1. What makes you like a student?
2. What makes you dislike a student?

Questionnaire No. 2 (Appendix II) for students: The students were asked the similar two questions.

1. What makes you like a teacher?

2. What makes you dislike a teacher?

These questionnaires were administered on students and teachers of higher secondary classes of boys' and girls' schools selected at random. In all, from six boys' schools, 232 responses were received. Similarly, from 7 girls' schools responses from 196 students were collected. Teachers of these schools and teachers studying for the B. Ed. Correspondence Courses at the Central Institute of Education, Delhi were requested to give responses on the questionnaire meant for teachers. These teachers included 72 men and 63 women teachers. It is worth recording that students wrote their responses in the absence of school teachers, with humour mingled with sobriety and pleasure. In fact, they enjoyed writing about it. Some of the students did ask about the secrecy of their responses which was very promptly assured to them. There was only one girl student who could not be convinced and persuaded to write her response. In all, it was observed that both the teachers and pupils felt pleasure to give expression to their feelings on the subject which earlier they were never asked to express. These responses have been well scrutinized and some of them are reproduced in the following pages.

They not only highlight the characteristics of teachers and pupils but also give us an interesting and illuminating commentary on teacher-pupil relationship.

We have divided the responses of teachers and pupils in two sections. Section I comprises the responses of teachers and Section II reports the responses of students.

SECTION I

We had collected the responses of 72 men and 63 women teachers teaching higher secondary classes in different schools. The responses were sorted out and were selected for reproduction. Some of the responses contained nothing worth mentioning while others contained similar expressions. After a thorough readings of all the responses, the following are reproduced here in the original except with few changes in the language and expression while maintaining the spirit of the ideas:

We divide this section into the following four parts:

Part A What makes teachers like students in boys' schools?

Part B What makes teachers dislike students in boys' schools?

Part C What makes teachers like students in girls' schools?

Part D What makes teachers dislike students in girls' schools.

PART A WHAT MAKES THE TEACHERS LIKE STUDENTS IN BOYS' SCHOOLS?

1. I like students who possess the following qualities: The students be well behaved and obedient. They should wear simple and clean dress and be punctual. They must complete their home task and put up their exercise books for necessary corrections regularly. I especially like students who take interest both in games and studies. They must not be truant.

2. The characteristics of a good student can be summarized as follows: A student should be studious, well behaved, well disciplined, courteous, physically fit, mentally alert, intellectually sound, sociable, full of initiative and drive and always be cheerful with loving nature and the like.

3. The regularity in the classroom and obedience to all his teachers and the principal, are the most desirable characteristics of a student. He should be hard working and sincere to his studies and work assigned to him. He should be clean and tidy in dress. He should be well behaved and respectful towards his elders.

4. It hardly matters if a student is not very intelligent, but he should necessarily be a consistent worker and a progressive student. His attitude should be cheerful towards his work. In his personal habits he should come up to a decent standard. He should be respectful towards his teacher. A student should never give an impression of hollow submission for the teacher.

5. If a student respects the teachers and makes good responses to what he is asked in theclass, he is liked by the teachers. The teacher feels his life all the more enjoyable and worth living when he finds his students well behaved both in and outside the school.

6. I like most the student who is sincere, punctual, honest, responsive in the class, who possesses a loving attitude towards his studies and takes initiative in extra curricular activities. A student should also be helpful to the teacher in his school duties.

7. The student should be well-mannered and obedient. He should be regular and punctual. He should be interested in studies and wear tidy and simple clothes. Necessarily, a student is expected to be respectful to his elders, parents and above all to the teachers. He should not cheat in the examination and always speak the truth.

8. I like that student most who is obedient, hard-working, sincere, punctual to the school, regular in his home task and who wears a neat and clean dress. A student should also maintain his exercise books very well.

9. The first and foremost quality of a good student is that he should be obedient to the teacher. Secondly, he should be well behaved and polite. Thirdly, he should be respectful to elders. Above all he should be able to sense what is good for him and what is bad for him.

10. A student should be obedient and faithful to his teacher. He should be a hard working and regular student. He should possess a good character and always be honest. He should lead a disciplined life. The student should very frankly tell his difficulties to his teach-ers.

11. An intelligent, active and a good natured student is considered to be best one. He should also be obedient and respectful to his teachers and be cooperative with his classmates.

12. The student should be sincere and honest both in his daily life and work(studies). He should respect and obey his elders. He should be cooperative by nature. He should have patienee. His regularity in work as well as in the school is essential. He should not hesitate putting questions or asking his difficulties from his teachers.

13. The student should be faithful and obedient to his teacher. He must be hard working. He should possess good character. He should be sociable and cherish high ideas. He should take part in extra curricular activities, like games and dramatic societies etc. The student should also enjoy a good health.

14. The student should both be active and laboraious. The student who is devoted to his parents and teachers , is frank and fearless, is capable of taking initiative, has got imagination, possesses a critical bent of mind with a scientific attitude, is gifted with some art in his hand and is not governed by his group values which ultimately lead to wrong things, is liked by the teacher.

15. The student who is regular in his work is liked by me. A student who is punctual is always praised by me. An industrious student is always in my good books. Intelligence is also a factor which makes me like a student the most. I like a student who is obedient. The habit of cleanliness in a student is a factor of attraction for me. A student who is well behaved and always gives due respect to his elders and loves his youngers, is praised by me.

16. I love children who have good hand-writing. I like students who learn to adjust themselves among their class fellows. I like students who do not wear costly dresses and costly wrist watches. I like boys who attend to the teacher while he is delivering lecture and ask intelligent questions and do not hesitate in expressing their frank opinion in matters which are debatable.

17. I like a student who is punctual, sincere and regular. An obedient and well-behaved child is also liked be me. The poor students who have a craving for studies are very much liked by me and I try to help them.

18. My liking for a student lies in the fact that he should be bold enough to ask me to repeat the topic a number of times till that topic is clear to him. The student should be curious to learn.

19. I like a student the most who is well-behaved, truthful, industrious, honest and obedient to teachers and sincere towards his studies and duties. A student with sweet temper is mostly liked by me and enjoys my confidence.

20. My liking for a student does not depend upon his intelligence and diligence but upon his curiosity to learn and tendency of cross questioning the subject being taught in the class.

21. Those students are liked who work hard and never shirk work. However, it is a matter of sorrow that some students unintentionally behave in such a manner that leaves a bad impression about that for all time to come. Generally, witty students are liked.

22. The students who are respectful, polite and are interested in studies, are liked most. A student should be laborious and have full faith in his teachers. These characteristics of a student carve a permanent place in the teacher's heart and help the student to overcome his shortcomings and make progress. Only respectful and devoted students can become the teacher's favourites.

23. Punctuality and regularity of a student raises him high in the esteem of a teacher. He should be polite, courteous and sweet-tongued. The student should not shirk work. He should not pill up his work. Postponment is a stumbling block in the career of a student. His main aim is to study and nothing else. Boldness and truthfulness in a student pay him in the long run.

24. The honesty and good behaviour of a student attracts him towards a teacher. I very much like a well behaved and a polite student. Side by side, I like students who are mentally weak.

25. A student should possess the following qualities: He should be attentive in the class. He should come in clean clothes. Cleanliness in work as well as in dress is appreciated. A student should be regular and obedient. A good student should never deceive the teacher. A student should not be truant, should be responsive in the class and be an active participant in cultural activ ities.

26. A good student is he who is regular, punctual, obedient, disciplined, well-mannered, unselfish, honest , truthful and who is helpful to others. A student should also be patriotic, neat and clean, hardworking and a man of good character.

27. A student should be obedient, punctual and hardworking. He should be attentive towards his studies. He should be a good player. A student should not be a thief. A student should be faithful to his parents, respect his teachers, like his school and love his class fellows. A student should be a good citizen in the making.

28. The good qualities of a student make me like a student the most. He must be obedient, disciplined, well behaved, punctual and well-mannered. He should be respectful to his teachers, elders and parents. He should be well behaved both in and outside the school. He should possess pleasing manners, should be free and frank and should take part in all extra-curricular activities.

29. I like a student who is industrious and is careful towards his studies. He should observe discipline. A student should be respectful to elders and teachers. His behaviour should be polite and civil. Above all, a student should be obedient. I like a student who is a good player and bright in studies too. He should do all work in a sportsman's spirit. He should always look smart. In short, I like a student who is careful about his health, conduct, studies and character.

30. There are certain qualities in a student which make a teacher like him. These qualities are: obedience, regularity in home task, respectful attitude towards the teacher and simplicity in dress and manners.

31. The student who does his work honestly, persistently and critically; who is self-disciplined and participates in co-curricular activities; who is neat and clean and cares for his health; who is well behaved and well adjusted, and in whom the respect for law of the nation and dignity and glory of the nation predominates - is liked by me.

32. Frankly speaking it is the all round personality of a student that makes me like him the most. I like a student the most who is well behaved, intelligent, wide awake, obedient and of accomodating nature and cheerful disposition.

33. Students who are disciplined in the class and ask good questions concerning daily life and experience, are liked by me. A student who is well behaved, completes his home assignments regularly, a student desirous of knowing new things, who thinks the problems in a scientific way and does not believe false statements, is also liked by me.

34. I like that student the most who is regular and punctual in his studies and good at games. Besides this, who is attentive to whatever he is doing and leaves it only when it is completed, is dear to me.

35. I like the student who is regular and comes to school in simple and proper dress and sits in the class attentively. He should be well behaved and obedient. He should take part in the various activities of the school. He should be sociable and helpful to his companions.

PART B. WHAT MAKES THE TEACHERS DISLIKE STUDENTS IN BOYS' SCHOOLS?

Now we produce the expressions of 35 teachers which represent what makes teachers dislike students. However, these responses are not necessarily of the same teachers whose versions have been produced in Part A. Necessarily, the basis of selection of the responses remains the same as followed in Part A.

1. The student is disliked most if he is indisciplined rude in behaviour, lazy, not hard-working, physically unfit, always of complaining nature, shy, fatigued, reserved, not responsive, unsocial and the like.

2. The student who disobeys the teacher, argues unnecessarily with him and is irregular in his class, all these factors weigh heavily with the teacher the most.

3. He wastes the talents and is proud and is complacent of his small achievements. He is content to go along with the 'crowd' and wants to attract others' attention through false show.

4. The teacher gets bored when the student makes irrelevant and wrong responses. Again, students' misbehaviour not only affects adversely the professional skill of a teacher but also makes his life a boring one.

5. Indisciplined and disobedient students make teacher's teaching difficult and unpleasant. Ill-mannered students and those using foul means in the examination are disliked. The students who keep laughing and talking when the teacher is teaching - are really dislikable. A student of low mentality and cheap thinking is a curse for a teacher. Physically present in the class but mentally absent students are to be disliked positively. The student who shirks work and is impertinent, is disliked.

6. Though I have not disliked any student throughout my career, yet a student who is irregular, disturbs his class-fellows while the lesson is going on, plays truant, shows disrespect to the rules and regulations of the school and a student who tries to create indiscipline for nothing, will certainly be disliked by me.

7. The very bad quality of a student that makes me dislike him is his rudeness, whatever the case may be, he should be polite to the teacher. A student, who creates indiscipline in the class and is not regular in his studies, is disliked.

8. A dull and a passive student is never liked by the teacher. If he is disobedient and not good-mannered, then he is neither liked by his teacher nor by his classmates.

9. The student who is not at all regular in his work and studies, comes to the school simply because his parents have sent him to the school, is always busy in quarreling with others, does not have any patience and a student who disobeys his teachers and elders, does not respect his parents, teachers or society and is not sincere and honest in daily life activities - is not liked.

10. If a student is disobedient, unfaithful, does not take part in extra-curricular activities and a student who does not take interest in studies, is indisciplined and who smokes - is not liked by me.

11. A student who is indisciplined, irregular and unpunctual, is disliked by me. I dislike a student who does not work regularly and who remains dirty. I hate a student who is naughty and always quarrels with his class fellows. I dislike a student who is disobedient and is not faithful to teachers. A student is disliked by me if he is mischievous and does not give respect to elders. I hate that student the most who remains absent, runs away from the school and does not possess a good character.

12. I dislike a student who is shabbily dressed, one who uses unfair means in the examinations, one who is after short cuts to knowledge and thinks that the aim of education is simply to pass an examination, one who works by fits and starts, one who tampers with the record of scores entered in his progress report by the class teacher, one who plays truant and one who studies at the cost of his physical health.

13. The students who shirk work are not at all liked by me. Irregular, insincere and mischievous students are hot liked. It does not mean that I hate them and neglect them but I try to mend their ways. I have tried and brought many students on the right path during the past ten years.

14. I have a great disliking for those who when asked in the class about the clarity of the subject being taught would say, "yes that is clear". But when asked to explain would fail to respond.

15. Disobedient and irregular students are actually disliked. The weak students are generally not liked but they can carve a soft corner in teachers' heart by making improvement in their studies.

16. A boy who is dirty, tells lies and does not attend the class, is disliked by me. If a student does not admit his fault, is disliked by me. I also dislike truant boys.

17. I dislike a student most, who though, intelligent but is not attentive in the class and has developed a complex to depend solely upon the books.

18. I dislike a student most when he is negligent, truant, misbehaved and shirks work. He is disliked when he makes lame excuse for not preparing his lessons.

19. Laziness makes students inattentive. This does not allow even the intelligent students to work.

20. Late coming is never to be condoned. Home task is to be completed. The teacher wants work, nothing else, but work. Sometimes students' behaviour brings slur to the fair name of the teachers.

21. The rough behaviour and cunningness of a student makes me dislike a student. I also dislike a student who never cares for the good suggestions of the teacher.

22. Irregularity, rude behaviour, obstinacy, unfaithfulness, lack of interest in studies, sports and in other activities and possession of some bad habits such as abusing, smoking, truancy, disobedience, dullness and bluffing the teachers on the part of a student, makes a teacher dislike him.

23. A student who is selfish, dishonest and does not come to school in time, remains dirty and who is disobedient and unhelpful, is not liked by any one. Bad conduct on the part of a student makes him disliked by teachers.

24. I dislike a student the most, if he is disobedient, indisciplined and is misbehaved. A student who only crams and secures good marks, is not liked by me. I do not like the students who only respect the teacher in the school and do not care for him outside. A student is not liked if he is immoral, unsocial and uncivilized.

25. An insolent student is disliked most by me. If the student is a hurdle in the class, I dislike him. Some students neglect their studies, either they do not work or work half-heartedly and carelessly, students who answer harshly, insolently and talk absurd in the class - are disliked by me. Some students appear dull, lazy and do not care for cleanliness. A student who is shrewd and cunning like a grown-up person, is disliked by me.

26. If a student disregards the teacher, does not work properly in the class and outside it, wears fashionable dress which does not become of good students and if he does not sit properly in the class - teacher will not like him.

27. Irregularity, dishonesty and disobedience on the part of a student, make me dislike him the most.

28. Student's rude and discourteous behaviour, his habits of playing truant, telling lies and his carelessness in the matters of dress and studies, makes me dislike him.

29. The student who is shy, does not care for the work assigned to him, who is dishonest, who does not like to participate in the co-curricular activities and a student who remains dirty and does not value discipline and dignity of labour is not liked by me.

30. A student who is indisciplined, ill-mannered and does not feel his responsibilities and duties towards himself, his parents, and teachers and a student who does not remain attentive in the class, tells always a lie and never completes his home task -is disliked by me.

31. I get annoyed with the student who does not pay any heed to what goes on in the class. One who is not particular to the school discipline, loses my favour. I feel pity for a student who is brilliant but lean and thin in his physical structure.

32. I dislike a student who is not regular in the class or comes late and wears dirty clothes. The student who is lazy and does not do his work attentively, is also disliked by me. I dislike a student who does not take any part in the various activities of the school and always looks sickly and sad.

33. I totally dislike the student who is not regular in his studies. Those who play truant are disliked by me most. A student who is not obedient to teachers, shirks work, remains lazy and does not work regularly, is not liked by me. I dislike students who tell lies and simply try to kill the time in the class. A student must be regular, obedient, disciplined and polite. The students who do not possess these qualities are not liked by me.

34. The students who run away from the classes, are not regular in doing their home task, show bad behaviour towards the teacher, do not know how to talk and how to answer a question and the students who do not come in time and generally come to the school in dirty clothes, are disliked by me.

35. The most disliked student is the one who is disrespectful and mischievous, having no respect for the teacher at all. Students who roam about in a bad company and are of doubtful character and irritation nature are not liked by me. I however, try to win over these students with love and firmness.

PART C WHAT MAKES THE TEACHERS LIKE STUDENTS IN GIRLS' SCHOOLS?

We have reported about men teachers. Now in the following pages we report what women teachers say on the same questions. The selection of responses for reproducing here have been made in the same manner as was done in the case of men teachers:

1. If a student is good-mannered, obedient, inquisitive, punctual, takes part in extra-curricular activities and if she is helpful and considerate to her classmates, she is liked by me the most.

2. A student who is intelligent, hardworking and obedient, is liked by the teacher. A student should be punctual and regular in his studies. A student is considered to be a good student who gets all his doubts cleared in the class. She should not sit idle in the class, gossip and disturb the teacher. A student is also expected to be polite.

3. I like students who are hardworking, take full interest in studies, complete assignments well in time and are obedient, punctual and disciplined. I also like students who wear simple and tidy clothes. The students should also be respectful to teachers and be prepared to do any work assigned to them.

4. I like students who are very active, sincere, studious, always smiling, attentive honest towards their studies and who pay respect to their elders, have a real urge for knowledge, mix up with the classmates, love the weakest, help the poorest in studies and are neat and clean and come to the school regularly.

5. A student who is good in studies is always liked by a teacher. But the student who is quiet, well-behaved, smart and active is also liked by a teacher. An always smiling student, having pleasing nature and cooperative with her class-fellows and teachers, a student taking part in all the activities, paying due regard and affection to her classmates and teachers, doing her work regularly, responsive in the class and a student who is well-disciplined and takes interest in the classroom and school atmosphere is always liked by a teacher.

6. First of all, the student should be careful towards her studies. She should have indenendent thoughts. Obedience and respect towards the elders is desirable but it should come from the inner heart of the student. A good student should be well-mannered. Care for health on the part of a student is always necessary. For a good student love for the motherland is very essential because a student of today is a citizen of tomorrow. She should love everything which belongs to her own native land. She should be hard-working, honest and a faithful student.

7. I like that student who is himself disciplined and inspires others to be disciplined. She should be both an ideal student and a good citizen. She should perform her duties well. She should not be naughty. She should be sweet-tongued. She should respect elders and love youngers. In addition to studies, a student should also be interested in other activities. She should be sociable. She should help the needy and bring laurels to her school.

8. I like a simple student. The student who obeys the rules of school, works hard, respects the teacher, comes to the school regularly and is punctual in her work and gentle in behaviour - is liked by me.

9. A teacher likes the student the most who is regular, takes interest in her studies and takes initiative in asking the question again if it is not understood by her. A student should always help the weak students. It matters little that a student is not intelligent but she should be hard working and regular in her studies.

10. A good student should posses the following qualities: She should be well disciplined and should never deceive her teacher. If she commits a mistake, she should frankly confess it. She should be sincere to her studies with whatever intelligence she possesses. Besides this, should take keen interest in games and sports. Her turn out should be good one.

11. I like students who come to the school in time, who are attentive to school work and home task. If the students behave well with teachers and fellow students, take interest in games, wear neat and clean uniforms and observe discipline in the school - they are liked by teachers.

12. Both an intelligent and a hard working student only can get appreciations from her teachers. Along with these two qualities, she should also be smart, obedient and active.

She should take active part in extra-curricular activities. If a student comes to the school shabbily dressed, she can never look smart. A student should also be cooperative by nature so that all her class fellows like her company.

13. I like a student who is sincere in work, intelligent, hardworking, serious towards studies, obedient, disciplined, well behaved, punctual and is neatly dressed. She is always expected to have good fellow feelings. She should be respectful to her teachers. If she is also a good player, this will add feathers to her cap. She should also be jolly tempered.

14. The most loving feature of a good student according to me is her obedient nature. Besides this, she should be studious and modest. She must have a creative brain and not a dull one. She must be active in the class. She should ask questions in the class and be able to generalize each and every thing. Above all, she should be neat and clean and respect every body.

15. Student who is punctual, obedient, prompt in work, does her home task regularly, respects the teachers and a student who is punctual and gives quick responses in the class, is liked by me. She should also be active and thoughtful.

16. The student should be both intelligent and diligent. She should be regular and punctual, always ready to take initiative in all activities of the school, should be disciplined and obedient. Besides this, the child should be smart, active and thoughtful.

17. The students are liked, when they work regularly, are attentive in the class and do their home task punctually. I like students who are active and take interest in the studies. They should not commit foolish mistakes. When the students give attention to the hard problems and try to find their solutions, they are liked by me.

18. A teacher likes some special things in a student. The student is expected to come to school in time. She should be disciplined. She should prepare her lessons regularly. She should be clean both in her dress and work. She should be polite in order to learn something from her teachers.

19. I like a student who is studious, intelligent, smart and a little deplomat. A rude student is never liked by me though she may be very intelligent. A smart and active,

gentle and well discipline student is my favourite one. A student regular in her home task and possessing a good look, wins my special favour. I stress on discipline. Girls are usually found talkative, but I like quiet girls.

20. Student's life is meant to study. In my opinion, study is yoga and the student must be hardworking. I like most the student who studies seriously and works studiously and regularly. It is not necessary that the student should belong to a rich family, a student coming from a poor family can also be liked by the teacher.

21. A student is liked the most if she or he is smartly dressed, is intelligent, hardworking, and is regular and well-mannered. She should be active and always keen to take part in the discussions taking place in the class.

22. A student who shows a willing interest to learn, makes an immediate good impact on me. The qualities of obedience, sense of responsibility and discipline in a student are appreciated very much by me. Simplicity, sobriety and neatness in habits found in a student enhance my liking for her where she combines these characteristics with her intelligence and willingness to learn in the classroom diligently.

23. A student is liked most who is intelligent, who takes up everything willingly, who is obedient and respectful to elders, possesses neat and clean habits, who is regular and punctual in fashions and looks smart and brilliant.

24. A student is liked most if she prepares her lessons well, if she is intelligent, regular, smart and takes interest in studies and participates in group discussions. It does not matter much if she is naughty so long as she is sincere in her work and is found meritorious.

25. A student is liked by the teacher if she is smartly dressed, well-mannered, regular in the class, intelligent, punctual and if she is active in the class and takes part in discussions.

26. A student is liked by the teacher if she is well-mannered, smartly dressed, sincere, cooperative, intelligent, witty, punctual and regular in her work. It may not matter if she is naughty when she is intelligent and sincere to her work.

27. A student is liked most if she is intelligent, regular in the class, well mannered, smartly dressed, active and alert and takes part in class discussions.

28. A student is liked most if she is regular and punctual, brings her home task in time, is attentive in her class, gives responses to the teacher's questions, is active, well behaved, sociable and if she takes part in speeches, dramas or other extra-curricular activities besides her being interested in her games and in studies.

29. A student who is intelligent, good at studies and is well-behaved both in and outside the class - is liked by every teacher. She should also take keen interest in extra-curricular activities. If she is honest and cooperative and is helpful to the needy and the poor, she is sure to win the heart of her teacher. The qualities of a good student also include her sense of discipline, straight forwardness and also clear understanding of the subject and taking of initiative in solving her problems.

30. I possess a deep liking for the student who is well prepared for the lessons before hand and takes pains, andconsults extra books for her studies. A student who is diligent, is an all rounder, cooperative with class-fellows and student who helps others in their studies - is liked very much by me.

31. I like all the students but I like the student most who is disciplined, intelligent, diligent, honest, sincere, well-mannered and who is sympathetic towards all, cooperative with the students and teachers and possesses the quality of taking initiatives.

32. A student who is disciplined, well-behaved, hard working and honest, is liked the most. I possess a strong liking for that student who is well-prepared for a lesson before hand and enters the class well-equipped with books, exercise-books and other things.

33. A student's behaviour, politeness, good manners, respectful attitude, love of discipline, concentration, self-control, diligence, sobriety, initiative and his impressive personality makes a teacher like her.

34. The quality which makes a student "likable" is the discipline, discipline not forced from without but inculcated in the student. The student who behaves properly

in the class and does his work regularly, is liked by all.

35. The student who is honest and well-behaved is always liked by the teacher. I always like a student who comes to me and explains her difficulties. I love her and help her in removing her difficulties.

PART D <u>WHAT MAKES THE TEACHERS DISLIKE STUDENTS IN GIRLS' SCHOOLS?</u>

1. If a student is inactive and dull in the class, if she tries to disturb the class when a teacher is teaching, if she is incapable of answering the questions and a student who inspite of having been warned many a time, remains unpunctual and is habitually irregular to the school and the student who poses as if she knows everything - she is disliked

2. A student may be hardworking but if she is not attentive in the class, is very rude, is never regular in her work, wears shabby clothes and is not punctual to the school will certainly be disliked. A student who criticises the teachers and always finds faults with them, is not liked. A student sitting at the back and gossiping and doing nothing in the class is hated the most by the teacher because she does not want to learn anything from the teacher.

3. I do not like students who are very dull, lack expression and are unattentive and mischievous. The students who are always after winning favours of teachers, who do not do their work honestly, regularly and carefully, who do not want to help the weak students, who come late and always misbehave in the class, who disregard the class-discipline and do not pay any respect to their elders or teachers, the students who always look shabby and dirty, feel drowzy, call bad names, speak ill of their classmates and the students who neither study themselves nor let others study, are not liked by their teachers.

4. A student, who is very talkative and does not show any interest in learning, who quarrels with her class-mates and roams about here and there in the school and is always after the teachers to win their favour, is not liked by them. I dislike very much those students who always talk of films and read novels written by Gulshan Nanda and the like. A girl who is always eating and always making a noise and is changing her seat and makes different poses, disturbs

the whole class and the teacher, is certainly not liked. A girl showing false superiority over other students is also not liked by her teachers and classmates. But inspite of all this, I never allow my personal prejudices come in the way.

5. I dislike a student the most who does not take interest in her studies and does not respect her teachers and elders. A student who runs away from her school and goes to a movie, not only deceives her teachers and parents but also plays with her own life. She can never be a good citizen of her country. Many students are in the habit of talking in the class when the teacher is teaching. This type of students, I dislike the most. The bad habits inculcated in youth remain confined throughout life and lead one to ruin and disaster.

6. I do not like students who are indisciplined and rude and who shirk work. These students not only harm themselves, but also bring a bad name to their parents, spoil the atmosphere of the school and other students. They have their own way in everything. They join bad company and spoil others. They do not do their work in time. They quarrel, steal and do all sorts of evil things.

7. A student who sits in the class as a statue and whose mind remains somewhere else, who does not take interest and is not regular in her studies, a student who takes no initiative in asking in any question in the class, who lacks manners and does not know how to behave with the teacher and classmates and the student who does not work hard - is not liked by her teachers.

8. A student who lacks discipline, does not take interest in games and sports, violates the rules of the school and deceives her teachers, is disliked by them. Looseness in conduct on the part of a student and her bad habits leave a bad impression on the teacher. Again, a student who is habitual absconder and tries to get through the tests by using unfair means, accounts for very sad experiences for the teachers.

9. To come late to the school, to quarrel with junior students, to neglect classwork and hometask, to ask permission to go out again and again, to remain dirty, to bring fees late, to be indifferent towards school activities, to avoid putting on the school uniform, to make a noise in the class, to come to the class without books, note-books, pen etc., to remain regularly absent, to copy others - these things in a student make the teacher dislike her.

10. A dull student who does not take interest in the class and is otherwise interested in reading rubbish story books and a student who keeps herself aloof from her class-mates, never learns her lesson, never learns in the class and who always comes unprepared for class work, and often comes without note-book, never obeys the orders, is a type of student whom no teacher would ever like.

11. The most disliked feature in a student is her obstinate nature. She should not be jealous. She should be obedient. Stupid and obstinate students are always scolded and work-shirkers are disliked. Students are expected to observe discipline.

12. Students who are dull, lazy and rude in behaviour are generally disliked by the teachers. Students who are irregular and indisciplined are not liked by the teachers.

13. When the student is not regular in the class, is not attentive and does not take interest in the lesson when the teacher teaches, does not pay attention to the hard problems, does not do the home task, comes forward daily with one excuse or the other and tries to copy the questions from other students' copy books, she is not liked by her teachers.

14. I dislike naughty students the most who don't take any interest in studies and do mischievous things, who are liars, rude, stupid, who turn a deaf ear to the advice, irregular in studies and remain absent from the school. Negligent and lazy students, I hate the most. I dislike those who are cheat, who are dirty, who are work-shirkers, who do not do their home assignments regularly and students who are arrogant, disobedient and are selfish.

15. Students' violation of school rules is the most annoying factor for a teacher. Their coming late to the school is likewise irritating. To talk irrelevant, to neglect hometask, to be inattentive in the class-these things in a student are very much disliked by a teacher. Uncleanliness of students is also not liked by me.

16. I dislike disobedient and slack students. A student may be very intelligent but if she does not work hard, can never be successful. At the same time a student, who does not obey the orders fully, can lead herself easily on a wrong path.

17. Rude, shabby and dull students are disliked by me. I like the girls who behave properly. Irregular irresponsible and dirty students are disliked by me.

18. A student who shirks work and labour, is not liked by me. Again, a rude and unmannered student is not liked by me.

19. The student who is not well behaved, well disciplined and not studious, is an object of my dislike.

20. A negligent, untidy, lazy and careless student is disliked by me. If she is not well-mannered and is not alert, lacks the above qualities of a good student and moreover if a student is naughty, she is the most irritating student in the class.

21. The student who does not do her work regularly, is both dull and ill-mannered, she is disliked by her teachers.

22. The student who is not well-behaved and well-mannered; the student who is not enthusiastic; the student who is extremely dull and is not affected by continuous scolding; the student who uses unfair means in classroom and in the Examination Hall; the student who never takes interest in extra-curricular activities, is disliked by me. The student who always prefers to break disciplinary rules, creates mischiefs in the class is a student who is disliked most.

23. A student is disliked most when she does not take interest in what is taught in the class, does not do her work regularly and does not bring her textbooks and note-books in the class. If she is dishonest, ill-mannered, does not take part in extra-curricular activities and games and talks unnecessarily in the classroom - is not liked by me.

24. The student who is not well-mannered and is dishonest in the class and otherwise also is generally disobedient, is mostly disliked. If inspite of repeated scolding and reminding her about her work and indisciplinary habits, she remains obstinate not to improve in her habits, such a student is disliked. A student disinterested in studies and mischievous is mostly disliked.

25. I dislike a student who is only a book-worm and is not well aware of the day-to-day activities going on in the school. I feel like helping her to feel interested in every activity.

26. The student who is dishonest and does not respect her teachers and parents, is mostly disliked. But inspite of all this, the teacher should improve this type of students. In principle, a teacher should not dislike a student. It is the duty of the teacher to make student realise her defects and ultimately to make her a disciplined student.

27. I dislike a student who does not know how to keep a respectable distance between a teacher and a student, who is disrespectful and does not own her faults.

28. The students who don't attend to their studies and disturb the class in general, are mostly disliked. I hate a student who disturbs the class when I am fully engrossed in the lesson. In short, disturbing students are disliked the most.

29. I dislike that student most who is rude and disobedient, who does not bother to pay any attention to what the teacher says in the class, who is careless towards studies and generally neglects her home assignments etc. The student who tells lies and often copies the work of fellow students and is selfish - is disliked by me. Again although one student is intelligent but if she merely boasts of her intelligence and does not work regularly - she is disliked by me.

30. I do not like a student who does not make a willing effort to come up to my expectations. When a student is clumsy in her habits of dress and makes no efforts to imorove herself inspite of my goadings - she is not liked by me.

31. The most objectionable thing about a student is her rude behaviour towards her elders. One who does not possess a respectful attitude towards her classmates or seniors and is very much outspoken, one who comes to the school only for the sake of attendance and takes no interest in the studies, is negligent in her assignments, is not good in habits, the student who takes unusual interest in fashions and films or politics, one who is a ring leader in all the undesirable activities - is not liked by me.

32. A student is most disliked when she is not obedient, is not neat and clean, does not respect elders, does not do the home task regularly and is rude in behaviour both towards teachers and class-fellows and takes only one - sided interest either in studies or in games.

33. I hate those students who do not remain attentive towards studies in the class.

34. Student who tells a lie, cheats the teacher in the class, comes always late, is disobedient and is rude towards her teacher and indulges in unhealthy talks - is not liked by me.

35. Her not doing the home task in time, habit of tearing of pages recklessly, throwing of ink etc. and not maintaining her note-books etc., never asking any question, dull appearance, dirty clothes, dirty hands etc., not having all the things needed such as note-books, pens and books etc., her complete lack of interest in life, such as never participating in extra-curricular activities - the presence of these factors in a student make me dislike her.

The above quoted selected specimens of the responses of teachers reveal their mind for students. Even a casual perusal of these responses makes it clear to a reader as to what makes the teacher like or dislike students in the higher secondary classes.

To draw a clear, exact, specific picture from these versions and to put the things in a nut-shell, we tabulate these characteristics in the following four tables exhibiting the contents of these four respective parts of the above illustrated section.

TABLE A SHOWING WHAT MAKES THE TEACHERS LIKE THE STUDENTS IN BOYS' SCHOOLS?

Total Number of teachers = 72

Sl No	Characteristic	Teachers expressing the characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	Regular	72	100.00
2	Good habits	49	68.05
3	Well-behaved	46	63.88
4	Obedient	42	58.33
5	Respectful	37	51.39
6	Active	24	33.33
7	Hardworking	23	31.94
8	Neatly dressed	18	25.00
9	Disciplined	16	22.22
10	Honest	13	18.00
11	Asks difficulties	11	15.28
12	Sincere	10	13.89
13	Takes part in activities	9	12.25
14	Intelligent	8	11.11

TABLE B SHOWING WHAT MAKES THE TEACHERS DISLIKE THE STUDENTS IN BOYS' SCHOOLS?

Sl	Characteristics	Teachers expressing characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	Misbehaved	45	62.50
2	Careless in studies	35	48.61
3	Irregular	31	43.05
4	Dull	21	29.16
5	Disobedient	19	25.28
6	Indisciplined	19	25.28
7	Truant	16	22.22
8	Bad dressed	11	15.28
9	Disrespectful	9	12.50
10	Dishonest	7	9.72
11	Miscellaneous	27	37.50

TABLE C <u>TABLE SHOWING WHAT MAKES THE TEACHERS LIKE THE STUDENTS IN GIRLS' SCHOOLS?</u>

Total Number of teachers = 63

Sl No	Characteristics	Teachers expressing the characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	Regular	36	57.14
2	Good manners	35	55.55
3	Intelligent	23	44.44
4	Active	28	44.44
5	Obedient	27	42.85
6	Hardworking	24	38.09
7	Interested in studies	24	38.09
8	Neat and clean(smart)	23	36.51
9	Cooperation with sts.	23.	36.51
10	Disciplined	20	31.65
11	Initiative	17	28.98
12	Takes part in activities	14	22.22
13	Respectful	13	20.63
14	Honest	10	15.87
15	Interested in games	9	14.28
16	Smiling	9	14.28
17	Sincere	8	12.69

TABLE D <u>WHAT MAKES THE TEACHERS DISLIKE THE STUDENTS IN GIRLS' SCHOOLS?</u>

Sl No	Characteristics	Teachers expressing the characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	Misbehaved	60	95.24
2	Not interested in studies	45	71.43
3	Bad habits	43	68.24
4	Inactive	29	46.03
5	Indisciplined	24	38.09
6	Irregular	21	33.33
7	Shabby clothes	20	31.74
8	Disobedient	15	23.81
9	Shirks work	13	20.63
10	Not respectful	6	9.52
11	Dishonest	3	4.76

Interpretation

1. Men and women teachers have depicted no cognisable differences in their emphasis on various characteristics which make them like or dislike their respective boys' and girls' (students) in their classes. The characteristics of regularity and good habits have found the very first and second positions respectively in both the tables A and C. Similarly, table B and table D show that the characteristics of misbehaviour and carelessness in studies on the part of students cause equal concern to men and women teachers. However, we find men teachers have laid more emphasis on 'obedience' and 'respectfulness' in their students whereas women teachers show more significance towards 'intelligence' and 'activeness' of the students in their studies. We can infer that women teachers are more attentive to the academic side of the students than their counterpart men teachers. But for these exceptions the order of emphasis on various characteristics on tables A & C on one side and on tables B & D on the other side remains practically the same. We safely conclude that teachers both in the boys' and the girls' schools hold similar opinions as to what makes them like and dislike their students.

2. Teachers have taken a global view of the personality of a student. Teachers' attention is not found to be one-sided but they are found to be attentive towards both sides i.e, non-academic as well as academic development

of the students. Tables A and C show 'Regularity' and 'Behaviour' to top the list of characteristics which make teachers like the students. That means, teachers expect the students to come daily to the school and be very nice and decent in their behaviour with teachers and students.

3. In Tables B & D, 'Misbehaviour' and 'Carelessness in studies' rank as No. 1 and No. 2, Characteristics which make the teachers dislike students. In continuation of the analysis of preceding paragraph, it is quite in the fitness of things that teachers cannot like a student merely by his regularity or behaviour in the school but the student is necessarily required to take full interest in his studies. We can say, that a student cannot dodge a teacher and be liked by him merely by his daily visits to the school, obedience or respectfulness but it is also a must for him to take full pains in his studies if at all he wants to be liked by his teachers.

In conclusion we can confidently say that regularity, behaviour and interest of a student in studies are the essential ingredients which make teachers like him. It is quite apparent that participation in co-curricular activities has not found much weight in the minds of the teachers for liking and disliking their students. However, women teachers put nearly double (22.22%) the emphasis on these activities than is shown by men teachers (12.22%).

Probably it is due to the fact that in the long run teachers' efficiency is measured by the percentage of results he shows and worth of the student is gauged by the marks he secures in the examination. When the teachers have specifically made mention of good behaviour on the part of the students as an important element because of which they like the students, we will have to find ways to give co-curricular activities a dignified place in our whole system of education which help, determine, mould and develop the behaviour of students.

SECTION II

Section I has recorded the responses of teachers. In this section responses of students received on the questionnaire (App. 2) are reproduced. As mentioned earlier, the researcher had collected responses from 232 boys and 196 girls. The researcher made a thorough study of all the responses. As expected, a number of responses contained the same ideas. Taking all these points into consideration, an English translation of them was made keeping the ideas of students intact. We produce in the following pages, 70 responses each from boys' and girls' schools.

Similar to Section I, this Section II too is

divided into the following four parts:

Part W What makes the students like teachers in boys' school?

Part X What makes the students dislike teachers in boys' schools?

Part Y What makes the students like teachers in girls' school?

Part Z What makes the students dislike teachers in girls' schools?

PART W WHAT MAKES THE STUDENTS LIKE TEACHERS IN BOYS' SCHOOLS?

1. I like the teacher who does not threaten the students in any way. He should teach in such a way that students do not feel any need of help-books. He should teach according to the level of understanding of students and try to inculcate in students the habit of doing work without any fear of punishment. He should solve all the problems of the students.

2. We like a teacher who teaches every lesson very seriously. He should not be rude in his treatment with us. He should make each and every lesson crystal clear. He should give an extra-textual knowledge. If there is any lesson about foreign country, he should tell us about that country so that we may learn and adapt good things of that country. He should guard us from bad habits. He should show us the path of honesty and Brahamcharya.

3. Our teachers teach us well, tell us good things, correct our mistakes and solve our difficulties. They do not scold us. Good teachers not only teach subject-matter but tell us things concerning other fields too.

4. A teacher has extensive knowledge. His way of teaching is very good. He talks with us very frankly. His treatment with us is very good. I like all those teachers who treat us like friends.

5. Many teachers teach us. Time to time they guide our path. They teach us seriously. We also like those teachers who teach us discipline. Although we are tenth class students, but still we need the guidance of teachers for the present as well as for the future.

6. We feel privileged to enjoy the help of teachers to make our future bright and happy. They inspire us to become good citizens and patriots. Devoted and learned teachers imparted education to Sri Krishna, Arjuna, Bhim, Gandhi and Nehru who brought laurels to the name of our country. Our teachers are dedicated to the cause of building our future which makes us like them the most.

7. Teacher should consider all the students alike. He should make best use of his time. In addition to studies, he should tell us about games and matters of general knowledge in extra times. Teachers should show us historical places. They should not remain angry with students after punishing them.

8. The future of a student depends on the teacher. He can raise the student up. I like the teacher who has the following qualities: teaches with interest, treats all students alike, reaches school well in time, his first aim should be to teach the students in school, should not tell lies before the students, should be industrious and polite, should entertain us while teaching, should tell us to respect our parents and live with cooperation. He should also be a patriot. He should explain the things thoroughly.

9. Teachers can inspire the students for an ideal and for this they should necessarily be ideals in themselves. Only a man of character can develop the character of his students. Teachers should be dutiful to their work to make the students appreciate the sense of duty. Teachers can inspire students not by words but by deeds. The teacher should do his work with industry and devotion.

10. A good teacher is one who teaches from his experience and does not make the students merely book-worms. He should treat them alike and teach accordingly to their interest.

11. Like all human-beings, a teacher too possesses good and bad points in him. He may have bad habits, but inspite of all this, he should teach well in the class and come in time. He should be careful towards discipline and should not give way to bad habits in the school. He should not waste time in gossips in the class and should be strict at the time of studies.

12. A teacher is a guide to the students. An ideal teacher should possess several qualities. If a teacher is an ideal one, his students will be the same. A teacher should be intelligent and should not use wrong methods while teaching a lesson. He should be very familiar with his students. He should talk to them as a friend. He should have a sweet temper and a good personality. He should be sincere towards his duty. He should not miss any period of the class. He should not boast just as some teachers say, 'I can teach better, none can teach just like me', it leaves a bad impression on students. They think that teacher simply boasts and does nothing else. He should teach his students in a clear method.

13. We like a teacher if he comes to the school in time and possesses good character. He should not indulge in party politics. He should have a good method of teaching so that the students understand whatever is taught.

14. We like a teacher who tells us; in addition to studies, other things of knowledge which we do not know. Sometimes, he should also make the students laugh. He should teach well and teach seriously. He should care for the students whether they come to school or not.

15. That teacher is liked, who does not waste our time in idle talks. He should teach us in such a way that we are able to understand it. He should treat all students alike and not be prejudiced against any one. He should inform us about politics, ethics and manners of living.

16. I like a teacher who is good and expert in imparting knowledge. He should teach us morals and human values. He should not indulge in idle talks while teaching. He should make best use of time.

17. We like a teacher if he has good character, teaches well, speaks nicely, and is not angry with any one. He should talk politely and should not beat any body much. A teacher can be a good teacher only when he, besides teaching, talks of general knowledge and tells us matters of political importance.

18. A student can like a teacher if he teaches well. He cannot correct the students by beating. If he speaks well and teaches well, students themselves bow before him. I consider such a teacher as an ideal one.

19. I like that teacher who speaks politely with all students and teaches well. He should be an expert and a competent person to impart knowledge. That teacher is liked who is able to command respect from students. He should tell things about games, ethics and morals.

20. We like that teacher who loves us. He solves our problems. Suppose, if our father does not get his pay in time and we are unable to deposit our school fee, the teacher deposits it from his own pocket and collects from us later on. He teaches us very seriously and checks the home task regularly. We are happy with him as if he is our parent. He resorts to punishment very rarely and when we confess our fault, he lets us go. Only those teachers who do not accept private tuition work, can teach very well in the class. The teachers who treat students like their own sons are liked by me.

21. There are some teachers who teach us well, work well in time and bear no prejudice against any student. A teacher should create a congenial atmosphere for studies in the class and treat the students just like his sons. He should never think of inflicting severe punishment on students.

22. A teacher is the builder of the nation. He is expected to possess certain qualities. A teacher can well prevail upon students by his decent method of teaching and it matters little if his knowledge is not up-to-date. He can create interest in studies. He should be above any prejudice. He should not boast before students but impart knowledge to them and help them in the development of their personalities.

23. There are some teachers of very high character in our school. They do every work nicely and well in time. They are careful towards discipline. Our principal is also a man of character. He tries to mend children with love and

affection. It is only a last resort with him to send for parents when all his efforts fail to set the students right. Such like habits should be imbibed by all teachers.

24. I like that teacher who takes interest in teaching and is regular and punctual in the class. He makes us work. He should not be very strict and should not give punishment all the time. He should have the ability to make students at studies, who are found weak in the class, good.

25. I like that teacher who teaches us well. If we are unable to understand, he should try to make us understand. He should be interested in teaching. He should assign less home task and some small things to be done at home. He may punish us but very rarely. He should teach us and play with us as per schedule. He should tell us of good morals to enlighten our lives.

26. I like the teacher who possesses the following qualities: He comes to the school in time and is never angry. He should show sympathy for the students and never beat the students mercilessly. He should go on making the things clear till all students have understood. He should keep the students happy in the class. He should assign an appropriate amount of home task.

27. The teacher who teaches well, considers us as his sons and does his task very well inspite of our mistakes here and there. The teacher who loves us and does not ask us to engage private tuition, is liked by us.

28. I like that teacher who finishes his courses in time and treats students in such a way which makes students respect him. He should clear the doubts of all students.

29. I like teachers who impart good education in a very decent manner. He should treat all students alike whether they belong to rich or poor families.

30. I like that teacher who comes to school in time and teaches his subject very nicely. He does not beat the students lest they should not like to attend his classes. Teachers should pay due regard to the students according to their age levels. The students should have liberty to ask second time if they do not understand something in the first instance. The things should be made clear to students when asked rather than giving rebuff to them.

31. Teacher makes the life of a student. He is even above parents who bring up the child. The teacher brings a new light in the life of a student. There are teachers in our school who consider students as their sons and behave with them just like their friends. The teacher who entertains too while teaching is recognized to be a good teacher.

32. Only a good teacher is well held by the students. The teacher who has good temperament and teaches in such a way that all students understand him, is taken to be an ideal teacher by them. The teachers who adapt an easy method of teaching, treat the students well, and are kind-hearted are liked by all.

33. A teacher should be a man of lofty thoughts. The students should respect teachers and teachers in turn should be men of good qualities so as to command instant respect from them. A teacher should be a man of good character. He should not talk of matters which does not behove his professional standing. He should love students and talk to them politely to make them happy.

34. The teacher who does not scold but makes the things more clear when the students fail to understand, is liked. The teachers who do not exploit students are liked by us.

35. He should always be in the best of spirits and not award punishment without sufficient reason. He should have full knowledge of his subject. He should know how to teach. He should listen to students' difficulties attentively and remove them.

36. I like those teachers who are sympathetic towards the students. Teachers should create such an environment in which students forget everything else and like to study only. We like a teacher when there exists a feeling of oneness between him and us and he cares for our emotional problems in addition to studies. Some of us revolt against our parents because they do not give us the love that they should. This deficiency can be met if the teachers compensate us for this. When any student makes mischief, he should look into this problem keeping its background in view and try to convince the student of its adverse results.

37. The first thing in a teacher which makes him great is that he treats all students alike, whether rich or poor, high or low.

38. I like a teacher for his habits, character, way of talking and teaching. I like a teacher who teaches us sincerely and makes teaching interesting. He is not partial towards any student. He does not beat us without sufficient reason. The teacher should be jovial because he only can be approached by us. The teacher should also be master of his subject.

39. A student likes that teacher who is always cheerful and has a great sense of humour. This is the foremost requisite of a good teacher. Secondly, he should make the topic interesting by giving examples etc. and try to attract the attention of the students to his teaching. He does not resort to rod to mend the erring children, but deals with them tactfully. A teacher should also be frank with his students.

40. I like my Maths. teacher very much because his method of teaching is simple and interesting. Whatever he teaches us; we understand it. He is very noble and kind. He loves the students. He treats all the students alike. He never makes discrimination among students. He is always punctual to the school. He puts on simple clothes. He always helps the weak students.

41. I like a teacher because he does not give punishment to the boys. He talks very gently with a student and treats a student like a younger brother. His method of teaching is good. He helps us in all matters.

42. A teacher should never be angry and pressurise any student for his personal work. He should teach well and should never miss the period. He should make the students work and should never neglect his duty. He should be well qualified and know how to teach. The teachers who mix with the students and inculcate good ideas are liked by us.

43. The most important thing in a teacher is his sweet temper. With his good treatment, most of the students will like him. Secondly, a teacher must be well informed in his subject. Only then he can teach the students and is liked by all of them.

44. Some teachers teach us well and they have a great power of explanation. They explain in such a way that we are able to understand every thing. These teachers take interest in teaching the students.

45. When the teacher explains a particular topic in a simple and fine way, he is liked by us. The teacher should assign us less home task so that we can learn whatever he teaches us in the class. If we are assigned a lot of work, we are not able to read our lessons or solve sums at home. I prefer those teachers who assign less work and give us time to develop ourselves.

46. I like a teacher who has good pronunciation, solves problems of the students, gives examples from everyday life to explain her point, treats us politely and is never rude with us.

47. There are some special characteristics of a good teacher. He checks our home task daily, takes the period regularly, teaches very candidly and also removes our difficulties in his vacant periods. He holds tests in his subject bi-weekly and sends our note-books to the Principal for his perusal.

48. In my opinion, I like a teacher who is regular and punctual to take his periods, makes his teaching interesting by cutting jokes and giving examples, does full justice to the lesson and treats all students alike.

49. Teachers are liked because of the very fact that they teach us and they are our builders. It is a common saying, 'Teachers can make or mar the career of a student'.

50. I like the teachers because they are our Gurus. They make the life of a student. They change the course of the life of a student and make him a great man. Good treatment, simplicity and jovial temper earns them willing obedience.

51. In my opinion, I like teachers because they teach us good manners. They mould our character. They work hard and also make us good students.

52. A teacher is liked if he understands the interests of students and helps in their fulfilment. For example, if a student is good at studies, he should be inspired for the same. If a student is interested in model making, he should be helped with money as well be guided properly. He should check students from going on a wrong path. There is no student who fails to respond to the loving and affectionate behaviour of teachers. If the teacher treats the students like brothers and corrects their wrong habits happily, he is liked.

53. I like those teachers who take much interest in teaching in the class. The teacher must be a master of his subject. He should make the subject interesting by his techniques so that students should understand it easily. He must be able to control the students in the class.

54. I like a teacher who teaches us in a good manner, checks the home task daily and guides us to face the difficulties which we may have in our daily lives. I also like a teacher who supplies us additional knowledge regarding current affairs. That teacher, I think is good who himself practises what he preaches to the students. Suppose, he asks us to come in neat and clean uniform, he must also turn up clean and tidy. If he advises us not to smoke, he should not himself fall a prey to that evil habit.

55. We like a teacher who teaches well and attends the periods regularly. Some teachers are favourably inclined towards few students and are indifferent towards others. If a student, good at studies, does not bring his home task, he is set free; but when a weak student does not produce his home task, he is beaten. I like a teacher who treats all students alike.

56. I like a teacher who comes in the class daily and teaches us regularly. He takes ample interest in his work. I also like a teacher who explains us without any hesitation, expresses his ideas clearly without taking help of note-books, tells us things correctly with confidence and does not ignore the questions of students.

57. I like a teacher who is always kind-hearted to students, helps them and adapts the principle of equality for all students whether they belong to rich or poor families. Another thing is that he helps all the weak as well as brilliant students. Besides teaching, a teacher should help and have a deep affection for all the students.

58. If mother is the first teacher, teacher is next to her. Some teachers teach in such a way that the students do not like to leave the classroom. They repeatedly explain and clear a point which is not understood by students. Some teachers make the things so clear that even students of average intelligence understand them.

59. I like that teacher who is punctual to his work, has a clear voice and his method of teaching is simple and suited to the standard of the class. He should not

punish students for studies, bedause they may be slow-learners. However, a teacher may resort to punishment when students make mischief. Teachers should answer students' questions again and again.

60. All teachers have different methods of teaching. Some indulge in light talk while teaching. I like teachers who mean business and acquaint the students with the things happening around the world. I "love" teachers who attend their classes well in time.

61. A teacher must be kind to the students. He should check the home task daily. He should not punish the students for petty things. In serious matters, he should take action against the erring students. He should be very frank with the students. He should treat the students as his own children. A teacher must always be ready to remove the difficulties of students. A teacher should be so effective in person that he needs no rod in his hand to control the class.

62. I like a teacher who comes to the class as soon as the period starts and immediately begins his work so that there is no room left for students to make a noise. He should also entertain the students in his period by his witty repartees. I like a teacher who does not allow copying in the examination and if any body copies, he is punished.

63. I like a teacher if he is good natured, teaches in such a way as interests the students and if he mixes with the students.

64. There are many characteristics in persons which make any teacher liked by us. Firstly, his method of teaching should be good. Secondly, he should be impartial. Thirdly, he should be always ready to remove the difficulties of students. Fourthly, he should encourage students to pursue good paths. Above all, he should enjoy his job while teaching the students.

65. I like a teacher who attends the class regularly, talks frankly with students and gives liberty to students to express themselves. A teacher whom I would like should teach clearly and confine himself to the prescribed courses only. He should not lose his temper all the time. He should pay individual attention to students and make his teaching clear.

66. I like a teacher who teaches well, treats well, explains well gives additional information about the subject and does not refuse to answer our questions.

67. I like a teacher who mixes with the students, while teaching entertains the students when they are tired of learning, does not use the rod to correct the erring students, and applies psychological methods to meet the situations. He should understand the limitations and problems of students. He should make his teaching intersting.

68. I like teachers because they guide us in childhood. While parents bring up the children, teachers prepare them for future citizenship. Company moulds the man, so students will be come what their teachers are.

69. Teachers are liked because they consider students as their sons and make their lives purposeful. Although there exist no blood relations between students and teachers, yet teachers take full pains in teaching the students. The way of teaching makes a teacher good or bad.

70. The teachers who teach in any easy and intersting way and try to make the students understand the subject, are good teachers. Teachers are considered nation-builders as the education imparted by them makes the students great men and prepare them for the service of the nation.

PART X <u>WHAT MAKES THE STUDENTS DISLIKE TEACHERS IN BOYS' SCHOOLS?</u>

We have read in the words of the students what makes them like teachers in boys' schools. Now in the following expressions we will find what makes them dislike teachers. It is not necessary that the previous expressions and the following ones may be of the same students. It could not be done because some students answered well the Question No. 1 i.e. "What makes you like a teacher" while the others answered

Question No. 2 i.e. "What makes you dislike a teacher".

Here again out of 232 expressions only 70 are reported.

1. A teacher is disliked by students when he threatens them with puhishment. They get afraid of him and don't ask him any question. The development of their power of thinking is thwarted. Teachers should not threaten the students without sufficient reason.

2. The teachers who are irregular in attendance, teach less and simply hear songs from students are disliked. Some students make a noise in the very presence of a teacher but the latter does not check them. This sort of liberty spoils the children.

3. We do not like teachers who assign too much home task. And when it is not done, they beat us with rods and turn us out of the class.

4. Some teachers beat us severly even for pretty offences. They do not advise us but resort to punishment for our mistakes. Some teachers have certain apparatuses in their charge but when requested for by students, the teachers grudge issuing the same to them. If students express resentment, the teachers start looking down upon the students. Students retaliate and bitterness increases to the point of quarrel. Some teachers fail the students if they do not take private tuition from them.

5. We do not like many teachers who lack sweet nature. They always find an excuse to beat the students. Teachers do not teach children as children. They look down upon them. I do not like such teachers though they may be having many qualities.

6. We do not like such teachers as do not know the method of teaching. Some teachers merely come to the class, teach and go. Sometimes teachers do not come to the class. They even start beating the students for minor faults. Some are so hot-headed that they beat the students on petty pretexts.

7. Some teachers do not treat the students well. They do not listen to students and start beating. Some do not come to teach in their periods. If they come to the class, they do not teach according to the wishes of the students.

8. Some teachers beat us without any reason. They

do not teach us in their periods and gossip with other teachers. If at all, they teach, they do it for five to ten minutes only and leave the class. They do not check the home task and when they are requested, they say, "It is our job and we will do it". If at all they see the note-books, they put tick-marks here and there and sign them without checking the questions.

9. Our teachers have many qualities but they have bad points too. Some teachers beat the students too much. Some teachers come to the school but do not teach and simply relax in the classroom.

10. Our teachers will improve their defects themselves because they will think that their bad doings will have bad impression on the students. Some teachers beat too much. Beating never improves the students. Some teachers are in the habit of smoking in the class itself. To beat for wrong things may be justified but some teachers beat even for right things.

11. We are taught by a number of teachers. Some of them pay no attention towards discipline, studies or sports. That is why we do not like them.

12. The majority of teachers are engaged in making our as well as our country's future. The question of disliking them does not arise. I wish to sacrifice everything for them. I want to become a teacher so that I can do my bit to make the future of my country bright.

13. All teachers are learned. They treat us well. They utilize their time well. They take their periods regularly. They teach well. They pay attention to all the subjects. So, we like them all.

14. I do not like a teacher who is one-sided. He wishes us either to study or to play. I like a teacher who makes us play as well as study.

15. I do not like a teacher who has no character, tells lies, but advises students to develop character, and speak the truth. It is something incongruous for a bad teacher to expect students to be good.

16. I do not like teachers who do not treat the students politely; who attend classes once or twice a month; wo do not take interest in teaching; who do not take the

students to playground in the period of games and do not supply sports material. I like those teachers who take interest in studies, games, dramatics etc.

17. Now-a-days, teachers do not know how to teach. They are not punctual in their duty. They have no experience of teaching. Most of the teachers are not aware of their period. They do not present ideals before the students. They abuse the students. They have no good temper and are always angry. They are not highly educated teachers. They are careless and have no good personality.

18. I do not like the teachers who do not come to school in time, hate poor students, doze while sitting in the chair in the class, come five minutes after the bell has gone and leave the classroom five minutes earlier, want to kill time, for whom teaching is just a means of earning livelihood, who beat the students severly for punishment spoils the students, who use tricks in teaching, boast and smoke before the students and tell stories of movies.

19. These days, it is observed teachers do not perform their duties with full devotion. They simply make it a source of income. This is the root cause of dissatisfaction among students. Some teachers find their way into the schools either on the recommendations or by bribing. They lack ability. Their behaviour towards students is not amiable and friendly. They work with authority. They do not take interest in their work.

20. Teachers should teach by example and not by precept. They advise the students not to smoke but they themselves smoke before the students.

21. Some teachers violate the discipline of the school. They tell the students not to smoke but themselves smoke in the school. They use foul language, come late and talk irrelevant at the time of teaching in the class. They put on gaudy clothes and students imitate them. They take tea in school time. Students make a noise and the teachers do not bother. When the principal is away, teachers engage themselves in gossip.

22. One of our teachers punishes the students. He does not bother whether one passes or fails. He punishes a boy who fails in his subject. He should not dislike weak students and always like a good student. He is not regular in his teaching. He talks with other teachers in the canteen or in the library and misses the class or comes to the class when half the period is over. He abuses the students.

23. Some teachers are proud of their knowledge and exhibit superiority. They don't want even to talk with the students. The effect of this is that students don't give respect to such teachers. I also dislike this type of teachers. A teacher is both a friend and guide to the student. It is also bad that some teachers make fun of a certain student in the staff-room or before their colleagues. The student reacts to it and he does not respect such teachers.

24. There are many reasons for disliking a teacher. The number of students disliking their teachers, is appalling. These days many teachers leave bad impression on the students. Some teachers are empty-headed and try to rule-over the students by sheer authority. This creates hatred for teachers.

25. Some teachers apply such methods of teaching that we do not understand at all. They look at us with hateful eyes and beat us even over trifles. The teachers who doze outside the class and at once go to sleep when they come to the class - are not liked by us.

26. The first duty of the teacher is to ask the students about the actual work they are to do, but they do not pay attention to this aspect and simply while away the time of the class in idle talk. When the period is over, they will assign 40-50 questions from the book and warn us that we shall be punished if we fail to do the questions. How can we solve questions which have not been done in the class and when we fail to solve the questions, we keep away from the class simply to save our skin.

27. The first duty of the teacher is to see that the work is done in the class. But there are many teachers who simply smoke, "Biri or Cigrette" and kill the time. When the period is nearly over, they ask those students who have not done their home task to stand up. They cane them and go away. Some teachers do only book reading , do not make the lesson clear and ask the students to solve all the questions by themselves.

28. I dislike a teacher who is not good at teaching. He takes money from students, passes them and does not teach properly. I do not understand his teaching. He is not kind to the children.

29. There are some teachers who neither impart

good education nor show a good path to the students. Instead of all this, they exploit the students. They do not turn up in the class and remain outside the class talking with students. Some teachers come to the school late. They do not teach the students properly, violate the discipline of the school and adopt wrong paths. Such teachers can never be liked by me.

30. We do not like teachers who are irritated or who start beating when we ask them to explain anything contained in the lesson being taught. There are occasions when we are produced before the principal merely because of our pointing them out their mistakes or they would turn us out of the class. We do not like teachers who look down upon the students.

31. We do not like teachers whose treatment with us is not good. They come to the class with written notes or teach us from books open in their hands. This does not add to the knowledge of students. What can a teacher teach about moral education when he himself smokes or drinks or does not give chance to students to ask questions in the class. This will frustrate the students and they will lose interest in their subject.

32. When a student happens to commit a mistake, the teacher starts beating the student without caring for his own mistakes. He teaches less and loads the students with heavy home task. Such things lessen the esteem of the teacher in the students' eyes.

33. There are teachers who are unable to cover their syllabus in the class. Teachers should try to mend naughty students and make them interested in studies. They should not impose fine on those who laugh in the class. They should not create such a situation where the student is compelled to leave the school.

34. We dislike teachers who kill time in gossip. The teachers who dictate pages after pages are not liked. The result of dictation is stereotyped answers in the examination. It is better if they clear the points well in the class so as to increase the general knowledge of students. Teachers should not resort to the rod for petty things.

35. I do not like teachers who are afraid of physically strong students and try to dominate over the

weak ones. I do not like a teacher who does not teach well and comes to the class late.

36. I do not like a teacher who beats us for no fault of ours. Some teachers waste our time. They teach us in such a way that we understand nothing. A teacher who does not cooperate and love his pupils, is not liked.

37. I dislike teachers of the following types;

(1) One who does not care for the success or failure of his students and simply thinks that the doing of his job is sufficient in itself.

(2) One who hates studies.

(3) One who does not look into the circumstances of the student, teases him to such an extent that the latter is compelled to leave the school and spoil his life.

(4) One who gives no chances to students to ask questions.

(5) One who does not care for the welfare of students.

38. In my opinion there is no bad teacher. But still some teachers lack things, because of which students do not consider them to be good teachers. They do not treat all students alike. They develop bad feelings for students which are reflected in their behaviour.

39. I do not like a teacher who does not supply us with sports material and makes us sit idle in our period of games.

40. There are some reasons why we do not like Shri XYZ. Though his method of teaching is very good, yet he is very strict. He puts so much emphasis on handwriting that we have to do the same work again and again. We realise that the handwriting should be good but if cannot be improved overnight.

41. I do not like our teacher of English because he does not teach us well. He remains on leave for many days. He beats too much. His behaviour is not good at all.

42. I regard those teachers as very bad who preach but do not practise. We hate a teacher who does not understand the difficulties of the students, beats them and fines them.

43. I dislike the teachers who do not teach well. Our teacher of English gives us heavy home task. He teaches full one lesson a day whether the students understand or not. He punishes too much. He does not take interest in teaching. His aim is to cover the syllabus. He considers education useless. He does not teach us through Hindi but only through English.

44. It is bad on the part of teachers to punish. It spoils the character of the students. They start playing truant. Teachers should punish the least. A teacher who does not teach well should be reported against. If a teacher punishes the students, the latter accuse him of having a bad character.

45. I have seen many teachers who cannot teach well and do not explain when the student asks him to do so. They do not attend to the students. They beat if the students don't do their work. They do not teach in the class and ask for tuition. If a student has tuition with some other teacher, he is asked questions to tease him. We do not like such teachers. They feel jealous of and beat the students over trifles.

46. We do not like the teacher who accepts private tuitions. He explains less and beats more. He does not do his work and the students suffer. If the student expresses his views, he is snubbed.

47. If we do not do our work, we deserve punishment but the teachers punish us as if we were thieves. Therefore we dislike the teacher. They may teach while sitting on the chair but they should not beat us like this.

48. We do not like teachers who while away their time in the class. This compels the students to take private tuition on the temptation of success in the examination. A teacher should teach as diligently in the class as he does in the case of private tuition. If you ask the poor parents how they manage to pay to the teachers, they would say that they would eat less. It is a cry of their soul.

49. I do not like the teachers who do not cover the syllabus but beat the students to unconsciousness. They also fine the students. Students can pay fine either by stealing or by troubling their parents. Sometimes students develop a feeling of animosity. Therefore they should not be fined.

50. Students dislike the teachers who sit idle in the class or beat the studants without reason. Students hate them and wish that they should not come to their class.

51. Some teachers beat without reason. They teach fast and in a strange way. They regard themselves great teachers. If a student asks anything, he is beaten. They come to the school for one day and have four days' leave. They beat too much with the result that students fear attending the school.

52. If a teacher tells us more about worldly things, he wastes our time. He should tell such things in some vacant or in P.T. period.

53. Some teachers do not teach well or take interest in their work. They punish the students severly if they do not respond. If the teacher does not teach well and if the students cannot afford private tuition, they become weak in studies and fail in the examination. Some teachers hate the students and do not let them get through. They do not cover the syllabus and ask for private tuition. They have no interest in teaching and beat the students.

54. Some teachers insult and beat the students. Therefore, the students always talk ill of them. Teachers ill-treat the students to pressurise them to take private tuition. If a student does not do so, he is failed.

55. We do not like the teachers who accept private tuition, poor students cannot afford to pay. They are threatened that they would be failed. They beat the students too much. They should teach affectionately. Teachers boast of their greatness before the students.

56. We dislike the teachers who accept private tuitions. They want to rob the studants of their money. If they find the students rich, they call the parents or guardians and suggest for private tuition. To my knowledge

our school is the worst in this respect. We may be paupers, yet we must pay tuition fees.

57. We do not like teachers who themselves smoke or drink while forbid us to do so. During their periods, they ask the monitor to control the class and themselves go out. As a result, the students don't make progress. They develop dirty habits. They do not make use of the black-board. Some teachers talk in English in season and out of season simply to show themselves off.

58. A teacher is disliked if he advises students to come in time but himself comes late. A teacher who is half mad and teaches foolishness to the students, who entraps students for private tuition, who does not teach in the school and runs his own academy at home, who harps on his own wrong way and does not listen to the students, is not liked.

59. I do not like at all a teacher who does not behave politely with all the students and who discrimimates between the high and the low.

60. Some teachers talk tauntingly and practise discrimination. Some teachers do not teach well in the class and make groups for private tuition. The students who cannot afford to pay, suffer.

61. Students do not like a teacher:

(1) If a teacher does not bother to come to the class even when he is in the school and comes late to the class.

(2) If he is not good-natured. He runs down the students after explaining a question once or twice.

(3) If he assigns too much of home task.

62. I do not like at all the teachers who do cover merely a lesson or do an exercise in a period and do not bother about the difficulties of the students. They cover the syllabus of two weeks in two periods and then beat the students or call their parents to get their private tuitions. They are also in the habit of relaxing in the classroom. Sometimes, students start missing the periods for fear of punishment.

63. Sometimes a teacher is annoyed and treats the students severly. This creates hatred for the teachers.

64. The teacher should not be lazy. He should not miss the class periods. Some teachers idle away their time in the staff-room. I do not like a teacher who considers all others inferior to him. Any teacher who asks for private tuition is not liked.

65. We do not like a teacher who does private tuitions and is not impartial in the class. Some teachers are not capable of teaching and if we ask them any question, they put us off with the word that they would do it the next day. Some teachers cannot maintain discipline in the class. Students make a noise and what they teach is not followed. Some teachers come to the class irregularly.

66. I dislike a teacher who punishes students over trifles, is partial, irregular and who has dirty habits. A teacher who comes to the class unprepared, does not put question to test comprehension, is not liked. We also dislike a teacher who smokes in the classroom.

67. I do not like teachers who come to the class and sit idle. There are some teachers who come to the class unprepared. They cannot make their teaching interesting. There are some teachers who come late.

68. I do not like a teacher who is not regular, goes on leave during our examinatiom days, does not teach well in the class and advises the weak students to have some tutor in his subject. Indirectly, that teacher asks the student to make him his tutor. I also don't like teachers who try to take revenge on any particular student by giving him punishment or asking him to get out of the class, whereas he does not say amything to other students. I do not think that teacher is a good one who punishes the students very much. There are some cases in which the student are taken to hospital as a result of having been awarded severe punishment. It also does not behove of a teacher to urge students to come to school in time, not to smoke or remain absent while he himself is not free from these defects.

69. The teacher should never be jealous of students. He should treat all students alike. Non-possession of these characteristics on the part of a teacher will account for his disqualification.

70. The first thing which makes us dislike a teacher is that he remains reserved. Secondly, does not

talk with the students frankly. Lastly, he is so busy with his own affairs that he unloads his lesson on the class without even giving any introduction.

PART Y WHAT MAKES THE STUDENTS LIKE TEACHERS IN GIRLS' SCHOOLS ?

The researcher could contact only 196 girls whereas 232 boys were contacted. Following the same lines of selection of responses (as for the boys) only 70 are reproduced below:

1. The teachers should not be partial towards students. They should teach all students with equal interest. A teacher who speaks well is liked by us. A teacher who guides the students, helps and explains everything clearly, is also liked by students. The teachers who are jolly are good.

2. I like a teacher who is the master of her subject, makes her lesson interesting, does not put questions to only selected students and does not show favourtism.

3. Personal qualities and her method of teaching makes us like a teacher. Some teachers are very fond of teaching; they do not show partiality and consider all students alike. The teachers who teach clearly are liked by students. I like a teacher who is disciplined and good to students.

4. I like a teacher not because of her beauty but for her method of teaching. A teacher who teaches her students carefully and considers all students alike, is liked by me. The teacher who does not discriminate between an intelligent and a weak girl, is liked by me. I like much teachers as are prepared to explain a thing time and again till they make us understand it thoroughly.

5. A teacher's treatment for her students should be good. A teacher should teach us clearly. If any student

does not understand a thing, the teacher should explain the same again. A teacher should always be in a cheerful mood. She should consider her students like her sisters.

6. The teacher who teaches us well and treats us like her younger sisters, shows no partiality towards any student, punishes the students only when it is necessary, does not punish for trifles, cares for the whole class and does not neglect dull students, respects the principal and is regular in teaching, is liked by us.

7. I like my teachers because they teach us very useful things. They teach us good habits and impart us knowledge. They come to the class regularly without missing any period and take interest in teaching work. In case a student does not follow, the teachers explain that point again and again till every student in the class has comprehended. They give home task as well as class work regularly. They are not harsh and take interest in their work.

8. I like a teacher who is dutiful and does her work honestly. The teachers who try their best to bring home the lesson, are liked by me. Some teachers know their duty; they know the purpose of their coming to the school and so they want to make the students good. A teacher who explains thoroughly whatever she teaches, asks the students their difficulties and explains them the same, is liked.

9. I like the teacher who is lenient to the students. She must ask the students if they have problems to be solved and then she must help them in solving the same. She must punish a student only when she deserves punishment and should not have any kind of partiality. The teachers who mix up with the students, are the best.

10. I like my teacher very much. She teaches us Maths. Her way of teaching is very fine. All the students work regularly in her period. She does not punish any one. She has a good nature. She spends most of the time in teachingus. She wants to improve us, so she teaches us efficiently. We learn very easily. All the students can solve the sums of Trigonometry.

11. I like a teacher who has a good character. A teacher who has good habits, is liked by every student. I like a teacher whom the students can ask a question frankly. I like that teacher also who does not award punishment for giving wrong answers. If a student gives a wrong answer, the teacher should correct her by pointing

out her mistakes. A teacher, who possesses the above qualities, is liked by me.

12. In my opinion all teachers are good. They take up a new topic only when the previous one has been assimilated. We can ask again and again and they never become irritated. They have no partiality towards any student. Our teachers devote their free periods for the betterment of students who have some difficulty to get solved or who have remained absent on any day.

13. Our teachers teach us well and with care. They explain to us again if we do not understand any question in the first instance. They do not scold any girl. They check the home-task regularly. They behave well with their colleagues. They are regular and punctual.

14. Our teacher ....teaches us well. She has good feelings for us. She comes to the class as soon as the bell goes and is never late even for a minute. She does not scold us without any sufficient reason. She talks to us nicely. She holds good opinion for her students.

15. In general, I like all teachers; and some of them are liked most because they teach us better. Whatever they teach, is grasped by all students. They give us dictation after teaching. They do not mind explaining a point again when asked by students. They do not waste our time and are regular in all matters.

16. I have a high opinion of all my teachers. They teach us well and are full of affection. They teach us regularly and ask us questions on the lesson covered by them the previous day. They assign home task and check it regularly. They love us, and I like them.

17. We like all our teachers. We like our principal the most. She teaches us and tells us not to tell lies, not to steal, not to put off one day's work till the coming day. She asks us to cultivate the uncultivated or waste land. She also advises us to keep our classroom clean.

18. Our teachers teach us well and take care of students. They teach well and take interest in their job. They take us to the playgrounds. They come to the class as soon as the bell goes and do not waste time at all. No period is wasted. They do everything to make the students good at studies.

19. A teacher should be intelligent, good at heart and well educated. In our school, the teachers teach well and take good care of the students. They tell new things to the students. Our teachers have high ideas and they want to make students' lives sublime. They themselves lead simple lives. Their ideas impress each one of us. They never allow any body to make a noise in the class and teach very well. They make us play different games. They are always good tempered and are jolly. They treat all the students equally. They never waste any period.

20. The teachers of our school are very good. They teach us regularly and carefully. They possess qualities of good citizenship. They love us and entertain us too.

21. We like our teachers because they speak sweetly to us and teach us well. They do not scold us nor do they tell lies before us. They treat all of us alike. Their teaching is easily comprehended.

22. We like a teacher who takes care of us, takes her periods punctually and tests the knowledge imparted by her the previous day. She asks us to come forward with our difficulties. Her temperament should be good. She should not punish the students who do not do their home task. She should tell us good things and talk to us about great men.

23. We like a teacher, who teaches effectively, loves her students, treats all students alike, tells good things and checks the home task regularly.

24. I like all my teachers because they love us and check our work and teach us well. I respect my English teacher because her method of teaching is good. She gives us home task and checks it regularly. She takes good care of us.

25. Our English teacher takes interest in us and we like her because she loves and treats us well. She checks home task in time. While teaching, explains every word, she teaches. She treats us all alike. She comes punctually to the class. May she prosper!

26. We like our teacher of English because she gives equal treatment to all her students. She does not miss taking her classes. She gives home task regularly. Even when it be raining, she comes to the class and teaches us. She is judicious in awarding punishment. First she

reads out a passage and then she tells its meanings. Then she explains the lesson.

27. We like our teacher because she creates interest and teaches so well that the students do not forget the matter taught. She gives us home task and checks it regularly. She treats all the students alike and gives legitimate freedom and cooperation to the students.

28. I like my teacher because she teaches us well and takes interest in her work. Her method of teaching is so good that we understand the lesson very well. She talks to us sweetly. She instructs us in discipline. She explains to us again what we do not understand. I am regular in the work she assigns and do not give her any opportunity to punish me.

29. We like our teacher because she teaches well. Her method of teaching is so good that we learn everything. Her rebukes if ever, are for our good. She checks us from going on the wrong path and guides us to tread the right path. We act upon her advice.

30. We like our teachers because they do not make discrimination among students but teach and give motherly and sisterly affection. Sometimes they punish us, but that also is beneficial for our future. They work hard so that all the students get through. If a student fails, it is not the fault of the teacher. They give us extra time without caring for their health only to make our future bright.

31. We like our teacher for her qualities. She teaches in such a way that we understand easily. Her nature is very good. She tells us new things everyday. She gives us first preference in everything. She comes to the school daily, keeps fit, remains happy and has good relations with other teachers.

32. All the teachers are good, but I like one of them the most. She teaches very well. She explains the lesson well. She loves us. She repeatedly explains what we do not understand easily. She comes to the class in time. She treats all of us alike. She does not beat any student. She is a simple lifer and advises us to emulate her. She never absents herself from the school. I like everything in her.

33. Our teacher loves us and teaches us well. If we do not come prepared with our lesson or do some undesirable thing, she punishes and scolds us. This gives us an opportunity to improve our defects. If we fail to understand a thing in the first instance, she explains it again.

34. Our teacher always shows the way to progress. She advises us to love one another. She teaches us to respect the elders and to speak the truth. She checks us from doing wrong things and inspires us to become good girls.

35. We like our teacher because she imparts us knowledge. She teaches us discipline and tells us many good things. She loves us. She explains again what we do not understand. She treats us all alike irrespective of whether a girl comes of a rich or a poor family.

36. We like our teacher because she teaches us and tells us many good things. She tells us how to study and speak. She gives equal treatment to all. She has no ill-will for anybody. Therefore, we like our teacher.

37. We like a teacher because she is regular in coming to the school. She teaches with love. She tells all our mistakes so as to improve us.

38. I like my teachers because they teach well and their method of teaching is such that we understand easily what they teach. They love us very much. When the examinations draw near, they work very hard with us. They give extra time to the weak students and they come to school regularly.

39. I like my teacher because she has been teaching us for quite a number of years. She follows all those ideals which she preaches. She enlightens us with her knowledge. It becomes our duty to obey her.

40. I like my teacher because she has taught us many good things during the past few years. She practises all the ideals she preaches. Our future is in the hands of our parents. Our teacher teaches us high ideals by which we can form our character. We like our teachers because they have good character. They take us from darkness to light. We are impressed by their sayings. We think it our duty to obey them.

41. We like our teacher because she teaches well and her method of teaching is good. If we do not understand a question, she explains the same again. She speaks lovingly with all the girls and treats them alike.

42. We like our teacher because she teaches well. Her method of teaching is good. She teaches with love and does not scold us. If we fail to understand, she explains again. She treats us all alike and helps the poor.

43. We like our teacher because she teaches us well. She loves us. She has a good physique. She leads a simple life. She explains a second time a thing we do not understand in the first instance. She treats all the girls alike. She makes no discrimination between the rich and the poor students.

44. We like all the teachers because they teach well and possess good character.

45. I like my teacher because she is simple. She teaches us well and we fully understand it. She never comes to school late. She speaks lovingly. She scolds and beats us only when it is necessary.

46. I like my teachers because they teach us well. They explain things a second time if we fail to understand the first time. They love us. They wear clean clothes and have simplicity in their living.

47. We like our teacher because she treats us well. She speaks pleasantly to all students. She teaches us well and explains once again if we do not understand a thing fully. She treats us like her children and remains always ready to help the poor girls.

48. I like my teacher because she is very good by nature. She loves us, teaches well and lives a simple life. She treats all the students alike. She looks at us with loving eyes and fills us with love.

49. I like my teacher because her method of teaching is very good. She loves us. She works hard with us. The thing that I like the most in her is that she makes interesting even a boring lesson. She makes no discrimination between one student and the other.

50. We like many teachers because they teach us well, make us understand and above all teach with love. They take pains in our studies lest any student should fail. Now and then they entertain us too. They never beat any student, love each one, do not discriminate among students and teach us good manners. They never leave the class while teaching.

51. We like teachers who teach us well, take interest in teaching, come to the class in time and consider all students alike.

52. There are many teachers in our school but I like my teacher of English the most. It is because she teaches very well, gives us two tests a week, treats all students equally well and repeats the lesson when we do not understand it first time. I also like my teacher of Domestic Science. She comes to the class daily. We do not forget, what she teaches and she revises the lesson to clear all doubts whenever students ask her.

53. We like our teachers because they always speak the truth, sermonise us as to how we can achieve success in life. She comes to the class in time, teaches well and teaches not simply from books but tells us many other things of importance to us.

54. I like my teacher very much because she always tells us good things. We are inspired to hear from her "Work hard and get through securing very good marks". Teachers tell us that there should be no feelings of high or low or of untouchability in us. They preach us to love every one and to live like friends. We learn from them how to respect our elders.

55. We like our teachers because they teach us virtues. They educate us in many things. Our teacher of Domestic Science tells us how to sit, walk, speak, respect and be hospitable to our guests. They enrich our lives by imparting us a lot of knowledge. They impress upon us the importance of mutual love and affection. They also explain to us things of general knowledge. I am obliged to teachers for telling me so many valuable things.

56. Our teacher's method of teaching, her attending the class in time, her recaptulating the lesson taught the previous day and then starting the new one with a very good introduction makes us like her. She treats all students alike and is prejudiced against none. She makes the things easy if the students fail to understand. But the pity is that some teachers do not follow these principles and simply find faults with students.

57. A teacher should teach well. She should clear and make us understand what she teaches. She should not scold but love the children. She should tell us matters of general knowledge and entertain us occasionally. She should be simple. Her voice should be very clear. She should not discriminate between students and not hesitate repeating what is asked by students.

58. We like our teacher because her method of teaching is very good. She is very punctual in her work and takes us to task when we do not show our home task. But she never scolds us without sufficient reason. She works hard with us, completes her course in time and makes us work hard. This makes us like her.

59. I like my teacher because she educates me and tells me so many things of importance apart from the prescribed syllabus. She lays emphasis on discipline and on respect for elders. She coaches us how to prepare meals and do embroidery. She treats us like her daughters and sisters and loves us immensely. That is why we like her.

60. We like our teacher of Hindi because every act of hers is quite applauding to us. She comes to the class in time and never gets astray in humour. She takes two tests a week to examine the understanding of students. She is ready to repeat even ten times when we fail to grasp her teaching. She is happy to clear the students' doubts. Above all, she never punishes but when she makes us stand, she too remains standing in agony.

61. We like our teacher because she tells us good manners. She teaches well and recapitulates the lesson regularly. She tells us the significance of reverence for elders and love for youngers. We like to act upon her preachings.

62. We like our teacher because she teaches us effectively. She teaches each word with love and that is why we understand it thoroughly. She seldom scolds us. She forbids us to do wrong things and tells us the right path. She tells us many things of practical value in our life. She does not discriminate students in her treatment. She points out our faults politely and never gets angry with us.

63. We like our teacher because she teaches well and takes interest in her job. She makes things clear to

students with love and affection. She advises us not to have malice for any one, and to shun boasting. She tells us to come to school in the school-uniform and respect our elders. I wish this teacher to be in my class for the whole day. She holds weekly tests to ensure our understanding of the lessons.

64. I like my teacher because she teaches us in a very easy way. This makes us understand everything. When we fail to understand, she clears the point very politely and never gets angry. She assigns us appropriate amount of home task which we can complete without any difficulty. Her voice is so sweet and appealing that when she teaches, we think as if she is entertaining us. She never bears grudge against any student and loves all of us.

65. She teaches us well and with love. She asks us to learn at home the lesson taught by her in the class. She assigns us home task regularly. She gives extra time to weak students. She comes to the school as soon as the bell goes and leaves the class only when the period is over. She revises the lesson many times. She removes our difficulties.

66. We like one teacher when she is humurous and jolly. An irritant teacher is neither able to teach us nor can we be taught by her. A teacher should avoid beating because such teachers create hatred for themselves in the eyes of students. We can learn nothing from a teacher whom we hate. We can respect the teacher only if she makes no discrimination among the rich and the poor students.

67. We like our teacher because she educates us well. She tells us to love our youngers, respect our elders and serve the poor. She emphasises use of sweet language and cleanliness. She asks us to work regularly. She teaches very nicely and expects us to take pains in our studies.

68. We like our teachers. The purpose of going to school is to get education. Our teachers give us knowledge and teach us virtues. They keep our educational system at a high level. They remove our defects and inspire us to do good deeds. Our teachers are very able and well educated. They never allure us to do dirty things and their aim is to make us good citizens. They do not make caste distinctions. There are many teachers in our school but we like our teachers of Maths. and Hindi the most.

69. Particular characteristics and virtues of teachers are the things which urge us like them. They teach

us well and with love. They forgive us for our mistakes. They explain a point once again if we do not understand. Ours is a Hindi medium school. Our teachers-make the teaching of English easy by using Hindi.

70. I like my teachers because they teach us good things. They do not discriminate among students who are good or bad at studies. Their method of teaching is good and they teach us with love. They explain to us our mistakes and do not scold us. They do not waste our time in idle talks. They do many good turns to us. They teach us discipline. They are always ready to remove our difficulties and give us extra time when our examinations are at hand. They help us in every way.

PART Z WHAT MAKES THE STUDENTS DISLIKE TEACHERS IN GIRLS' SCHOOLS?

This part Z is the last part of this section. Here are reproduced expressions of 70 out of 196 girls. Again we have excluded the expressions which were similar to each other and were found given only in Sl. Nos. which have been taken into consideration in the Tables arrived at the end of this section.

1. I dislike a teacher who is not regular in her work and at the end of the year, teaches very hurriedly because a student is not able to understand the things which are taught in such a manner. Some teachers care for the bright students only and do not care for the weak ones.

2. I do not want to disrespect any teacher. But only one thing I would say, some teachers like those girls who are either beautiful or intelligent. I do not like this thing in teachers. Some teachers have irritable nature, when we ask something, they get angry and give us punishment. This is bad on their part. Teachers should not be so jolly, that girls don't observe discipline before them. Teachers who do not care for the students, are not liked by them.

3. A teacher should not be very strict. A teacher should not laugh or talk all the time. She should not give punishment to the students for small mistakes. She should not be proud of her knowledge.

4. I do not like the teacher who does not teach well. In practical periods, teacher does hot attend practicals and orders the students to do their work and tells the students that she would come after five minutes but comes after 60 minutes when both the periods are to be over. She does not assign home task in order to save the labour of correcting the exercise-books. She treats the students rudely. She does not labour with the students.

5. We dislike a teacher who does not take interest in teaching. Teachers merely come to the class to do their duty and ask the students to go on doing their work. They do not teach regularly or care for the students. They only speak loudly in the class and give punishment to the students.

6. I dislike teachers who are lazy and read magazines and stories in the class. They enjoy themselves and ask the students to read by themselves. Some teachers merely read out a chapter and explain nothing. They do not care whether the students have followed or not. They merely finish the course. I dislike such teachers. They cannot do any good to the students.

7. I dislike the teachers who do not care for the weak students and go on putting questions to only intelligent students. They are after the weak students and give them punishment for not knowing the subject. I also dislike such teachers as are partial towards some students and give them more marks than to others. A teacher who gives punishment for trifles is not liked by me.

8. I dislike teachers who get angry very quickly and give punishment to girls. Secondly, all the teachers like their favourite students too much and take much pains in case of intelligent students and neglect the weak ones. They never say anything to intelligent students whether they do their home task or not. They become very partial towards their favourite students and award more marks to them in the examinations. They scold the weak students too much.

9. We do not like a teacher who has the habit of scolding and beating. Her favouring a particular stu-

dent and paying her more attention is disliked by us. We also dislike a teacher for her wrong method of teaching. A teacher is disliked by us who is ill-tempered and uses foul language.

10. I dislike my teacher very much. She does not teach us skillfully. She does not have a good nature. If any one does something wrong, she laughs at her and makes fun of the student. Nobody can understand her language.

11. I dislike a teacher who always abuses and gives punishment, who comes to the class and teaches us without explaining our difficulties. Our teacher never asks questions. She does not possess good nature.

12. In my school there is no teacher whom I dislike but I think I will not like teachers who will show partiality and will become angry over trifles or who teach only for money. Some teachers sometimes refuse to tell the students anything after finishing a topic in the class.

13. Sometimes due to the bad treatment of teachers, we dislike them. With some students, they talk very frankly who are good at studies, while they don't talk with weak students. I generally see that there is a teacher who before checking the note-books looks at the names of the students.

14. There is a teacher who is not sufficiently capable and does not come to the school in time. She does not possess the qualities possessed by others and does not speak lovingly.

15. Some teachers are not liked by us. We cannot follow what they speak. They do not explain for a second time even when requested to do so. If, however, they repeat, we do not understand because of their peculiar method of teaching. They do not work in the class at all. They do not point out our mistakes in our home task. Our mistakes increase and there arises the possibility of our failure. So, we do not like such teachers.

16. We do not like teachers who speak at very low pitch, which we cannot follow. What they teach, is beyond our comprehension. They solve the sums once and are not prepared to repeat even when requested to do so. They neither work in the class nor do they point out our mistakes.

17. There is a teacher who thinks very highly of herself and does not think any one capable of doing any task. We do not like the teacher who does not give equal opportunity to all students to express themselves or does not treat us all alike. We do not like a teacher who is not regular and punctual both in coming to school and to our class.

18. We do not like a teacher if she does not come to the class in time, does not assign us home task or assign too much of it, does not check the note-books, always scolds and punishes us.

19. We do not like a teacher who does not teach lovingly, does not forgive us for our mistakes or who punishes us daily.

20. Some teachers do not teach carefully and when they come to the class scold us throughout the period. They punish more than they teach us.

21. We like a teacher less who does not treat us all alike, whose teaching we do not understand, whose eyes are always red with rage, who always scolds and never checks our home task.

22. We dislike a teacher who does not teach well which is the real test of her ability. She misses her classes deliberately and never answers our questions.

23. We dislike teachers who care little for society and indulge in fashion which is not considered good. Previously our society wanted that women should not get education. If at all they should, the education should teach them simplicity. Fashion is increasing and there are no preventive measures. Teachers while away their time in eating and gossiping. They do not teach as much as they should. As a result, they cover their syllabus towards the end of the session. Students do not follow it and fail.

24. We do not like the teachers who punish without reason and don't finish the school work in time. They do not teach us as much as they scold. If they teach well, dtudents will take interest in studies. At least they should not miss their periods which they do. On such occasions students roam about. The students who arrange tuition, go ahead, while others lag behind. So the teachers should come to the class and teach regularly.

25. We dislike the teachers because they take too much leave and miss their periods. We make a noise. When the examination draws near they finish the textbook rapidly. As a result the students cannot understand. Students copy and get through but they do not know anything and later on do not get jobs. Teachers assign home task but do not check it.

26. The teachers are not liked who punish a student without reason and insult her before her friends. They taunt her before everybody. These days teachers do not teach as much as they should. As a result some students who manage tuition go ahead, others are left behind. If the student complains against anything, she is scolded and asked to report to her class teacher. If teachers are friends among themselves, students will behave likewise. When the principal goes out, teachers sit together and gossip, but if they find the students doing that, they scold and punish them. We do not like teachers who do not come in time, do not teach well, hold classes when the examination is near and beat those who do not attend these classes.

27. I do not like the teachers who discriminate among the students. They love the intelligent students more. Some teachers say objectionable things while teaching. However, there are no such teachers in our school.

28. I do not like the teachers who are very strict, at very sight we forget whatever little we know. Teachers ask the students to bring certain things from their homes which the students cannot. So they are put to trouble. Some teachers cannot teach well. They assign heavy home task. Students do it with the help of their elder brothers or sisters without understanding anything.

29. We do not like teachers who beat, discriminate, do not ask students to keep discipline and do not teach in the class.

30. We cannot say that we do not like our teachers because they teach us with effort. Some teachers do not teach well, discriminate among the students, do not consider the students like their own children, neglect the weak students and the intelligent.

31. We do not like a teacher who scolds us, does not love anybody, does not each well so as to make us understand. We feel difficulty in the examination. The teacher does not possess good temperament.

32. Some teachers come to the class irregularly, explain only once, scold if asked again, beat too much in the class, take too many leaves sometimes and do not make us understand the lesson.

33. We do not like some teachers for they beat us and it is not good to beat grown-up girls. Otherwise, we like our teachers. There is no reason why we should dislike them.

34. We do not like the teachers who scold and beat us and we do not like to be scolded and beaten.

35. We do not like the teachers who do not have good habits, do not teach well, mispronounce, do not love, always scold, pass sputum while teaching, beat the students and do not know the method of teaching.

36. We do not like the teachers who pay attention only to a selected few. They attend to only front benchers.

37. I do not like some of our teachers because I do not understand what they teach. They simply read out with a little difference what is written in the book. They rarely come in time. They beat students over trifles.

38. I do not like my teachers because they discriminate between the rich and the poor.

39. I dislike my teachers not because they do not give us knowledge but because they remain busy in their fashion and lack ideals and discriminate between the rich and the poor.

40. I do not like my teachers because they do not teach well, they cannot make us understand, scold the students and have irritable temperament.

41. I do not like a teacher who teaches well only a few girls, awards them good marks, loves only the beautiful girls, avails too many leaves, is always mindful of her clothes and shoes and does not teach well.

42. I do not like a teacher whose lessons I do not understand and if I ask a second time, she scolds. She does not talk affectionately. She is annoyed very much if anybody falls ill in the school.

43. I do not like a teacher who if ever prejudiced against a student is never prepared to alter her opinion, fails her, beats on small things and produces her before the principal. She is quarrelsome. Therefore, we do not like her.

44. I do not like a teacher who does not have a sweet temperament. She scolds all the students always. She does not teach well. She comes to the class, sits and asks us to do our own work. She always abuses students.

45. Some teachers never talk lovingly and always use the rod. They should treat us with love. They give a reading from the book without any explanation. We do not understand that at all. They discriminate between the students. They set papers out of the syllabus. Therefore we do not like them.

46. We do not like many teachers because of their rude behaviour with us. They start scolding the children right from the moment they enter the school which upsets their own mood as well as the mood of students for the whole day. That is why they take no interest in their subjects in particular and in studies in general.

47. We dislike teachers who don't teach well. They make the distinction of high and low students. They beat the students very much. They impart merely bookish knowledge. They are also in the habit of leaving the classroom while teaching.

48. When a teacher does not teach well, does not explain a second time when requested, then we dislike her. We don't appreciate her coming late. She does not treat us alike and treats the rich students exceptionally. Some teachers only love the clever girls.

49. We do like our teacher of English, but do not appreciate some of her salient features. She scolds us even in our vacant periods and takes us to task when we forget bringing our note-book in the school. She teases the failed students and rebukes us when we are not prepared for the lesson. She punishes even if we talk something urgent in the class.

50. In general, I like all the teachers but exceptions are there. For example, our teacher of games is not liked by me. She does not make us play so often. She does not make use of sports material supplied by the government. Some teachers do not teach well. They combine two classes for their own convenience. They insult

us in the combined class when we fail to answer their questions. They give too many tests. We don't like sitting in their classes and consequently fail in their subject.

51. There are many teachers who treat the students very well but there are others who look down upon the students. We develop hatred for the teacher whose method of teaching is not good. We do not understand what she teaches. I do not like my teacher of Economics, as she starts scolding the students as soon as she enters the class. She upsets our mood and makes us averse to studies. By teaching, she means, simply reading out from the book which we ourselves can do at home. She loves none and hates all and this makes me dislike her.

52. We don't like many teachers because they don't behave well with us. They keep on scolding us all the time. They are never punctual in their work. They do not explain a second time when asked by students. They look down upon the girls. When a student happens to secure less marks because of one reason or the other, they tease her and behave very badly. They start beating over petty mistakes. They do not remove our doubts but scold us instead.

53. We do not like teachers when they scold us. This reflects their ill treatment to us. Teachers adopt latest fashions in dressing themselves and students imitate them. But this is not expected of the students when they are required to live simple lives during the period of their schooling. Some teachers beat us, turn us out of the class and leave the classroom as soon as the bell goes. They don't remove our difficulties and advise us to get our difficulties removed at homes. Daily tests are also not liked by us.

54. We don't like the teachers who are harsh to us even when we do our work satisfactorily. They do not treat all students alike. Sometimes they get after some students, beat them and do not make things clear to them with love and affection. Students do not appreciate this.

55. It has become a habit with teachers to be late. If any student does not show her home task, they beat her and turn her out of the class without specifying any reason. Some teachers do not attend the classes. Some teachers load us with heavy home task and leave no time to prepare our lessons. Some teachers are in the habit of whiling away the whole period by cutting jokes with some students only. This spoils the character of students.

Some teachers merely come to the class, teach nothing and think their duty is over.

56. I do not like teachers who do not teach carefully. Their teaching is not comprehensible. When we ask something, they start scolding. They load us with heavy home task for which we have to burn the midnight oil. They are revengeful to me and turn me out of the class so often.

57. We dislike teachers who are of irritable nature and who are in the habit of punishing too much. Aged teachers should not be kept in the school as they get irritated easily because of their old age. These teachers do not teach us well and forbid us to wear gold ornaments. It is seen whenever, two teachers meet, they start talking very loudly. But they cannot tolerate students talking and take them to task for that. Should we like or dislike teachers who do not allow us to talk even in our vacant periods? These teachers will order us to bring water or wash their fruit while they are sitting and gossiping.

58. A teacher who scolds, whose temperament is always bad, makes fun of the students who fail to answer her questions and beats the students, is not liked by us. She punishes even for not keeping our note-books clean. She likes one girl very much, thinks other to be dirty and backward student although the latter may be better than the former. She scolds the latter for one reason while does not interrogate the others for the same reason.

59. I don't like such teachers who keep on sitting on chairs and order us to be busy doing our work. Teachers who do not teach a class carefully, may teach a few students lovingly and ask us to get our difficulties removed from other students, are not liked by us. Some teachers speak so low that it is inaudible to us.

60. We don't like teachers who do not teach and do not attend classes. However, when they come, they ask us to work and themselves they go out to gossip with their colleagues for the whole period. These teachers assign us no home task. This sad practice is repeated day after day. When the principal is away, it becomes a golden day for the teachers. They do not come to the class and when we ask them to come we get only a rebuff, "Go, I am coming". These teachers do not teach and simply dominate over students. Students fear asking them anything. We like teachers who encourage us in our studies.

61. Some teachers have vices. They do not know how to teach properly. They cannot communicate their ideas to the students. They lack power of expression. Many teachers cannot control the students. Some do not have chaste language. They use incorrect language which the students cannot follow.

62. We do not like the teachers who beat the students and cannot control them. Instead of encouraging, they discourage the students. They do not pay attention to teaching. They keep the students standing out even in rain. They do not know the method of teaching.

63. I dislike a teacher who does not treat all students as equal, punishes them without any fault, preaches but does not practise. A teacher who assigns the students such a work as she herself does not like to do, is not liked by students. If she does not point out the mistakes with love and does not forgive the students and hates them, she is not liked by us.

64. I do not dislike my teachers because they do not have anything bad in them and they understand our feelings. If we do not understand anything, they make efforts not once but many times to make us understand. For all these qualities, I like my teachers.

65. A teacher who scolds, beats and punishes the students is not liked. Sometimes a teacher beats innocent students. Be it sun or shower, the teacher keeps the students out. If a student does not come with home task, she is scolded.

66. I do not like a teacher who does not treat all the students alike; she comes to school but not to the class, she teaches so fast that we cannot understand and she gets irritated if we ask her to explain a second time, she never smiles in the class and this spoils our mood.

67. We do not like a teacher who teaches fast which we cannot follow and if her voice is not clear. She beats too much on trifles. So we cannot answer questions properly and cannot ask her to explain what we do not understand. We remain weak in her subject. We do not like to study that subject.

68. I do not like some teachers because they do not teach well and do not love the students, do not come to the class in time or check the home task regularly.

69. There are certain things which make us like or dislike a teacher. I am one of those students who dislikes a teacher because they discriminate among the students. Some teachers love more and give more marks than other students to the children of other teachers' relatives. Some teachers get irritated with some students and fail them and taunt them. Sometimes some teachers are annoyed and they inflict their annoyance on us. Sometimes some teachers are more inclined to children because of their personal charm. Sometimes they get irritated when their mistakes are pointed out. We desire that all the teachers should treat all students alike and we should be consulted in the selection of teachers.

70. I do not like the teachers who teach fast and leave the class before time and we are left to gossip in the spare time. When we ask questions, they scold us saying that we ask silly questions. Some teachers assign home task and do not check it, and students become careless. They take all the work in one day which we cannot do and so fail in the examination. If a student is absent on any day and goes to her the following day and asks any question she taunts by saying, "Where were you yesterday"? She scolds if we ask anything a second time. So we do not ask anything and we do not understand the lessons. Some teachers cram their lessons and cannot explain well. We do not like such teachers and remain weak in their subjects.

The selected specimens of responses of students reproduced here give us an insight into the feelings of students for their teachers. On the basis of responses receive from all students, the various characteristics of teachers which make the students like or dislike them are tabulated in the following Tables:

TABLE W SHOWING WHAT MAKES THE STUDENTS LIKE TEACHERS IN BOYS' SCHOOLS?

Total No. of students = 232

Sl No	Characteristics	Students expressing the characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	Method of teaching	178	76.72
2	Behaviour	109	46.97
3	No wastage of time	71	21.98
4	Telling of good things	47	20.25
5	Impartiality	35	15.09
6	Does not punish	33	14.22
7	Humorous	29	12.50
8	Miscellaneous	83	35.77

TABLE X SHOWING WHAT MAKES THE STUDENTS DISLIKE TEACHERS IN BOYS' SCHOOLS?

Sl No	Characteristics	Students expressing the characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	Punishment	109	46.97
2	No good method of teaching	96	41.38
3	Wastage of time	88	37.93
4	Misbehaviour	65	27.59
5	Impartiality	25	10.77
6	Tuitions	24	10.34
7	No general knowledge	19	9.01
8	Miscellaneous	35	15.08

TABLE Y SHOWING WHAT MAKES THE STUDENTS LIKE TEACHERS IN GIRLS' SCHOOLS?

Total No. of students = 196

Sl No	Characteristics	Students expressing the characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	Method of teaching	154	78.57
2	Behaviour	91	46.42
3	Impartiality	54	27.55
4	No wastage of time	47	23.98
5	Telling of good things	32	16.67
6	Simplicity & Personality	24	12.24
7	Gives home task	19	9.69
8	Humours	17	8.67
9	Miscellaneous	87	44.39

TABLE Z SHOWING WHAT MAKES THE STUDENTS DISLIKE TEACHERS IN GIRLS' SCHOOLS?

Sl No	Characteristics	Students expressing the characteristics	
		Frequency	% Frequency
1	No good method of teaching	127	64.79
2	Punishment	61	31.12
3	Wastage of time	53	27.05
4	Impartiality	49	25.00
5	Mischievous	48	24.49
6	Does not check home task	16	8.16
7	Fashions	12	6.12
8	Miscellaneous	43	21.94

Interpretation.

1. Both boys and girls have ranked "Method of Teaching" and "Behaviour of Teachers" as Characteristics No. 1 and No. 2 respectively which make them like the teachers. It is clear that students like teachers who teach them well and also treat them well. Students wish teachers to teach them in such a way that they are able to understand what they teach and they should be welcomed to ask something a second time if that is not understood by them in the first instance. Regarding the behaviour of teachers, students expect teachers to be polite, consider them like brothers and sisters and give to students a feeling of security and sense of love and affection. Students don't expect teachers to be efficient in skill-in-teaching only, but expect that they should also possess qualities of head and heart.

2. In order of ranks, boys have ranked "No wastage of time" as No. 3 and "Telling of good things" as No. 4. Evidently, students do not appreciate teachers who waste time by indulging in idle talks, coming late to the class, leaving the class while teaching or not at all attending the class. The teacher who is regular and punctual to take his periods enhances his esteem in the eyes of the students. Again, it is very encouraging that students wish teachers to tell them good things. Essentially, this shows that students want guide-lines. from their teachers. It is here that

students' desire for hero-worship for a teacher is reflected. Students want to be told by teachers about what they should do and what they should not do.

3. Girls have laid more emphasis on impartiality than boys. In the case of girls, 27.55% of them have ranked this characteristic as No. 3 and 15.09% of boys have ranked it as No. 5. It only depicts a difference of emphasis by boys and girls otherwise both boys and girls want to be treated all alike by teachers.

However, but for this deviation, the girls have nearly shown complete similarity to boys as regards the characteristics of teachers which make them like or dislike teachers. Like boys too, girls have equally stressed upon the characteristic of "No wastage of time" and "Telling of good things" by their teachers.

4. Tables X & Z infer the same things. Girls (64.79%) have ranked "No good method of teaching" as No. 1 which makes them dislike teachers. "Punishment" comes next to it. But this order of ranks on these two characteristics is reversed in the case of boys. It may be due to the very fact that "Punishment" is more frequently resorted to in the boys' schools than in the girls' schools.

In all other respects, Tables X and Z substantiate the inferences from Tables W and Y.

In conclusion we can say that teachers' method of teaching and their behaviour towards students, play a

decisive role in their being liked by students. Much abused and used "Punishment" in schools have been mentioned by the students as a factor which makes them dislike their teachers.

In the words of Mouly (1968, pp 234) "Punishment in the classroom is likely to result in resentment and antagonism which destroy moral and teacher-pupil relationship to the point where the teacher no longer has the child's confidence, which he needs in order to promote his growth".

Overall view of the findings of this Exploratory Study.

1. Even a study of a sample of the responses of teachers and pupils gives us a profile of teacher-pupil relationship in the context of what makes both of them like/dislike each other.

2. The main advantage of the Exploratory Study has been that it provided us an objective and a scientific approach for the construction of four valuable tools to probe into the problem for measuring likes or dislikes between students and teachers in the classroom.

A. Two Rating Scales

(i) A Rating Scale for teachers to rate the students on their characteristics (Appendix 14)

(ii) A Rating Scale for students to rate the teachers on their characteristics (Appendix 13)

B. <u>Two Check-lists</u>

(i) A Check-list for teachers was prepared on the lines of "Guess-who" technique to get the students enlisted by teachers in certain desirable categories of behaviour (Appendix 15).

(ii) A Check-list for students was prepared on the lines of "Guess-who" technique to get the teachers enlisted by students in certain categories of behaviour as found in the responses of students. (Appendix 16).

The details about the construction of these four tools have been given in Section III of this Chapter.

3. It gave clarity to some of the hypotheses enlisted in Chapter No. 1 with which the researcher proposed to embark upon the problem.

4. Apart from these contributions, this "Exploratory Study " gave a firm and sound initiation to the investigation of this problem. It not only provided objective paper-pencil tools to conduct this study but also supplied to the researcher enough confidence and ample enthusiasm - the very essential elements for the successful completion of this study.

SECTION III

CONSTRUCTION OF RATING SCALES

Rating

In the words of McCormick and Francis (1958 pp 79).

" Rating is a direct attempt to assign an ordered class position whose name implies the value of a certain quality to each individual without going through the process of ranking".

Barr and others (1953, pp 74) have taken it as:

" a term applied to expression of opinion or judgment regarding some situation, object or character".

Monroe (1950, pp 127) comments:

" Ratings attempt to summarise the rater's experience with the subject".

Good (1959, pp 439) has defined Ratings as:

" an estimate, made according to some systematized procedure of the degree to which an individual person or thing possesses any given character; may be expressed qualitatively or quantitatively".

Rating Scale

According to Best (1963, pp 164), Rating Scale, involves qualitative description of a limited number of aspects of a thing, or of traits of a person.

Freeman (1965, pp 16) says:

" Rating scale is a means of obtaining the judgment of a number of respondents with reference to a limited number of traits of a given individual".

In Encyclopaedia of Educational Research by Ebel L. Robert and others (1969, pp 1147), we find it described as:

> " A Rating Scale is an instrument for the qualification of observations through the assignment of numerical values to ratings of the separate components of the phenomenon and the summation of the these ratings into a complete score".

Dictionary of Education by Good (1959, pp 439) defines Rating Scale as "a device used in evaluating products, attitudes or other characteristics of instructors or learners". Verily, this very definition of Rating Scale befits quite appropriately in its use in this study. In our study, students rate different characteristics of teachers and teachers rate different characteristics of students. Specifically, for our study, we can define Rating Scale, as a device in which the students rate the characteristics of teachers as perceived by them in teachers and teachers rate the characteristics of students as perceived by them in students.

Freeman (1965, pp 535) has pointed out that:

> " By means of an organized scale it is possible to obtain ratings on specified traits that are considered essential or significant in the particular setting where the scale is being used".

Guilford (1954, pp 297) has enlisted the following advantages of this method over other methods which allure us to make the best use of this technique

in our study:

1. Ratings require much less time than either pair comparisons or ranking methods.

2. The procedure is far more interesting to the observers, especially, if graphic methods are employed.

3. Rating Scale methods have a much wider range of application.

4. They can be used with psychologically naive raters who have had a minimum of training.

5. They can be used with large number of stimuli. Even the method of ranking becomes difficult and irksome when there are more than 30 to 40 stumuli.

6. Some investigators in experimental aesthetics main tain that the best judgments are made when stumuli are presented singly, that comparative judgments destroy the aesthetic attitude.

Limitations of Rating Scales

However, there are limitations inherent in Rating Scales. Different writers have pointed out these limitations which caution us in the application of this method in our investigations. Best (1963, pp 165) narrates these limitations as follows:

> " In addition to the difficulty of clearly defining the trait or characteristic to be evaluated, the halo effect causes raters to carry qualitative judgment from one aspect to the other. Thus there is a tendency to rate a person who has a personality high or other traits like intelligence or professional interest. This halo effect is likely to appear when the rater is asked to rate many factors, on a number of which he has no evidence for judgment. This suggests the advisability of keeping to a minimum number of characteristics to be rated".

It is worth-while quoting H.H. Remmers (1964, pp 330), in reply to these limitations:

> " While the originators and users of rating scales are usually unaware of the parental role of psychophysics vis-a-vis rating devices, modern psychophysical theory has provided a much better rational basis for psychological measurement, including ratings and rating scales, than was the case not more than three decades ago".

Graphic Type of Rating Scale

Rating Scales have been categorized in various ways. Guilford (1954, pp 263) gives five broad categories: numerical, graphic, standard, cumulated points and forced choice, but he also makes the point that, "any such classification must necessarily be a very loose one based on shifting principles".

The Graphic type of rating scale is probably the most popular and the most widely used. Probably all the advantages of using Rating Scale methods were especially related to this type of scales. Guilford (1954 pp 268) has made the following evaluation of Graphic Scales:

> " The virtues of Graphic Rating Scales are many, their faults are relatively few. Among the advantages frequently cited in their favour are the facts that they are simple and easily administered, they are interesting and require little added motivation; they are quickly filled out; and they do not require the rater to bother with numbers. These features, the rater finds attractive. From the point of view of the investigator, the graphic scale provides opportunity for as fine discrimination as that of which the rater is capable and the fineness of scoring can be as great as desired. As for disadvantages, there are

none that do not applyx to most other types of scales, except for somewhat greater labour of scoring in connection with some formats".

Construction of Rating Scales

Guilford (1954, pp 267) and Remmers (1963, pp 234) have given some points which serve as guidelines in the construction of scales.

The following two Rating Scales were constructed in the present study:

A. Teachers' Rating Scale (Appendix 13)

B. Students' Rating Scale (Appendix 14)

A. Teachers' Rating Scale

In this scale students rate the teachers on some desirable characteristics of teachers which were decided in this study on the basis of a survey and details of which are given in Section II . This Rating Scale includes the following ten characteristics:

1. Method of teaching
2. Loving behaviour
3. Impartiality
4. Understanding of subject-matter
5. Good personality
6. Particular in taking the class
7. Use of time in the class
8. Punishment
9. Leniency
10. Telling of good things.

In this scale, students rate all teachers on each characteristic at a time. The specimen of the scale is attached in appendix No. 13.

B. Students' Rating Scale

In this scale, teachers rate the students on their characteristics. In this scale too, ten characteristics, as found earlier in Section I of this Chapter, were included:

1. Industriousness
2. Obedience
3. Good behaviour
4. Respectful
5. Interest in studies
6. Discipline
7. Regularity
8. Cleanliness
9. Good habits
10. Activeness

In this scale teachers rated all students on each characteristic at a time. A copy of the scale is given in appendix No. 14.

Reliability of Ratings

Methods of studying reliability of rating scales most commonly used include the following: repeating judgments after a time interval, correlation between ratings of two or more judges, the relationship between judges' ranks and self-ratings.

Guilford (1954 pp 395) states:

"There are some who prefer to estimate reliability of ratings by use of re-rating data, and certainly this is a meaningful type of reliability. Except for the trouble of replication, it is an easy procedure to employ. There are serious dangers of correlation of what should be error, however due to the memory of rater".

We have applied this method in two sections of the 10th class - one class was selected from a boys' school and the other, from a girls' school. It was ascertained that the teachers were teaching these classes right from the beginning of the session to the day of administration of the rating scale - thereby giving them ample opportunity to observe each other.

Stability of Students' Ratings on the Characteristics of teachers.

In the boys' school, students rated teachers on 22nd September, 1969 and 3rd October, 1969. In the girls' school, students rated teachers on 17th September, 1969 and 25th September, 1969. Thus there was an interval of 10 days between two administrations of the Rating Scales. Both the teachers and the students were never told that they would be asked to re-rate each other. At the time of the first administration of the scale, the students were told as to how to rate the teachers with an explicit example on the black-board. However, they were asked to get their doubts or difficulties clarified before they note down their ratings. Teachers required only a bit of clarification. The students did seek some clarification. However, it was seen that they did feel somewhat hesitant to rate their teachers. They were assured of the secrecy of their ratings and the importance of their free and frank responses was impressed upon them. At the time of the second administration, it was noted

that when the students were told to re-rate their teachers, they were happy. Due to this experience it would be quite fair to assume a higher reliability and greater stability in the final ratings of teachers and students on these Rating Scales than we find in their administration to these groups here.

Boys' School

In this school, a tenth class of 32 students was selected. This class consisted of a stable group with the five teachers teaching them since the beginning of the session. In this case each one of the 32 students was to rate each one of his teachers on ten characteristics. That means one student was to rate one teacher 10 times giving us 10 ratings for each teacher. So, as he was rating 5 teachers, his total number of ratings came to 50. We had 32 students, so overall amount of ratings came to (50 x 32) 1600. We calculate the stability of ratings as under:

TABLE SHOWING NUMBER OF RATINGS IN DIFFERENT SCALE VALUES OFTHE RATING SCALE

Administration	Scale Values		
	Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)
First	1275 (79.69%)	196 (12.25%)	129 (8.06%)
Second	1196 (74.75%)	262 (16.38%)	142 (8.87%)

This table represents the pattern of ratings of students on the characteristics of teachers. On the lower scale values of the rating scale, the percentage of ratings remain nearly hundred per cent stable. However, there is a fall of 4% ratings in higher scale values and rise of 4% ratings in middle scale value. We can safely say, that ratings of higher scale values have fallen in the middle scale value. Middle scale value, represents the mid-way, an easy way to rate the ratees. It is not a clear cut verdict on the part of the rater for the ratee. It represents the fluctuating state of mind of the rater. Perhaps, if we go to administer the ratings scale for the third time he may switch over to the old pattern.

TABLE SHOWING PATTERN OF CHANGES IN THE RATINGS

Scale Value	Number of Ratings		Percentage changes
	First time	Changed	
Higher	1275	187	14.67
Middle	196	106	54.08
Lower	129	68	52.71
Total	1600	361	

It is quite obvious that out of the 361 ratings which had undergone a change on the second administration of the rating scale, 106 ratings i.e. 54.08% of the total ratings suffered a change from middle scale value of the

Rating Scale. We say, there is 54.08% unstability in the ratings of the middle scale value, that is, 45.92% stability of the ratings in this middle scale value of this rating scale. We examine below the stability of ratings of higher and lower scale values with respect to changes taking place from one scale value to the other.

TABLE SHOWING CHANGES IN RATINGS FROM HIGHER TO LOWER AND LOWER TO HIGHER SCALE VALUES

Sl No	Scale value from which changes take place	Scale Value to which changes fall.			Total
		Higher	Middle	Lower	
1	Higher(5&4)	-	119 (9.33%)	68 (5.33%)	187 (14.66%)
2	Lower(2&1)	25 (19.38%)	43 (43.33%)	-	68 (52.71%)

We find only 5.33% of ratings change from higher scale values to lower scale values. This gives us 94.67% stability for the ratings of higher scale value. Similarly, the table gives us 80.62% stability for the ratings of lower scale values.

However, we can calculate the overall stability of ratings as under:

Total No. of Ratings - 1600
No. of Ratings changed - 361
Percentage of Ratings changed - 22.56
Stability of Ratings - 77.44%

We can say, we find a substantial stability of the ratings of students in the boys' school on the characteristics of their teachers.

The Girls' School

We can easily study the stability of ratings of students on the characteristics of teachers in the girls' school with the help of the following tables on the same lines as above.

In this school, we had a tenth class of 30 students who rated their five teachers on their 10 characteristics on two administrations of the same Rating Scale with an interval of 8 days. Each rater was to rate each ratee on his 10 characteristics - so for one ratee the total number of ratings was (5 x 10) = 50, and for 30 ratees we get (30 x 50) = 1500 ratings each time.

TABLE SHOWING NUMBER OF RATINGS IN DIFFERENT SCALE VALUES OF THE RATING SCALE

Administration	Scale Values		
	Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)
First	862 (57.46%)	317 (21.13%)	321 (21.33%)
Second	932 (62.13%)	262 (17.46%)	306 (20.40%)

Similar to the boys' school, we find here too, the percentage of ratings in the lower scale values of rating scale, quite stable. Again, there is a difference of 4%

of the total number of ratings falling in higher scale values. However, in boys' case there was a decrease of 4% of rating in higher scale value but in girls' school, we find an increase of 4% of ratings in these values on the second administration of the rating scale. Again, we note 4% increase in the number of ratings falling in middle scale value on the second administration of the scale in the boys' school, but in the girls' school we notice a fall of 4% ratings in this middle value. We may attribute these disparities to sex differences in the two schools.

TABLE SHOWING PATTERN OF CHANGES IN THE RATINGS

Scale Value	Number of Ratings		Percentage Changes
	First time	Changed	
Higher(5&4)	862	150	17.40
Middle(3)	317	163	51.42
Lower(2&1)	321	147	45.79
Total	1500	460	

Again, we find 51.42% of the ratings in middle scale value as unstable. So, the changes would be unstable which fall in this value at the time of the second administration of the Rating Scale. We consider below the changes taking place in higher and lower scale values.

TABLE SHOWING CHANGES IN RATINGS FROM HIGHER TO LOWER AND LOWER TO HIGHER SCALE VALUES

Scale values from which changes take place	Scale Values to which changes fall			Total
	Higher	(Middle)	(Lower)	
1 Higher(5&4)	-	67 (7.77%)	83 (9.65%)	150
2 Lower(2&1)	91 (28.35%)	56 (17.44%)	-	147

This gives us:

Stability for the ratings in higher scale values. 100-9.65= 90.35%

Stability for the ratings in lower scale values. 100-28.35=71.65%

However, we can calculate the overall stability of ratings as under:

Total number of Ratings - 1500

Number of Ratings changed - 460

Percentage of Ratings changed - 30.63

Stability of Ratings - 69.37%

So, we find the following comparative table for the stability of ratings of students on the characteristics of teachers in boys' and girls' schools.

Scale Value	Percentage Stability	
	Boys' school	Girls' school
Higher	94.66	90.35
Middle	45.92	48.58
Lower	80.62	76.65
Overall	77.44	69.37

We find quite a substantial stability in the ratings of students on the characteristics of their teachers both in the boys' and the girls' schools i.e. 77.44% and 67.37% respectively. However, the difference in the stability of ratings may again be attributed to the sex differences of the raters and the ratees.

Coefficient of Reliability of Ratings of Students on the Characteristics of Teachers

We had two sets of ratings of students on the characteristics of teachers. By Difference Formula, we have calculated the coefficient of correlations between the two sets of ratings.

Difference Formula

$$r = \frac{N\ (EX^2 + EY^2 - E(X-Y)^2 - 2(EX) \times (EY)}{2\sqrt{((NEX^2-(EX)^2)\ (NEY^2 - (EY)^2)}}$$

Garrett (1965 pp 146)

N	- Number of subjects
EX	- Sum of scores of first set
EY	- Sum of scores of second set
$E(X-Y)^2$	- Sum of squares of (X-Y)
EX^2	- Sum of squares of scores of first set
EY^2	- Sum of squares of scores of second set

We have calculated the reliability of ratings of students on the characteristics of teachers on the following two lines:

(i) Reliability of ratings of all students on the characteristics of individual teachers

(ii) Reliability of ratings of each individual student on the characteristics of all teachers.

(i) Reliability of ratings of all students on the characteristics of individual teachers

TABLES SHOWING COEFFIENTS OF CORRELATION BETWEEN THE TWO SETS OF RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS

Boys' School

N (Number of students) - 32

Degrees of freedom (N-2) - 30

Significant value at .05 level - .349

Significant value at .01 level - .449

Tr. No.	Coefficient of Correlation (r)	Significance
1	.702	Very significant
2	.258	Not significant
3	.757	Very significant
4	.786	Very significant
5	.445	Significant at .05 level

Girls' School

N (Number of students) - 30

Degrees of freedom(N-2) - 28

Significant value at .05 level - .361

Significant value at .01 level - .463

Tr. No.	Coefficient of Correlation (r)	Significance
1	.140	Not significant
2	.540	Very significant
3	.705	Very significant
4	.406	Significant at .05 level.
5	.542	Very significant

Here, we had added up the scores of ratings of all students on the characteristics of each individual teacher. It is like the scores secured on a test given to 32 and 30 testees on two different occasions in the boys' and the girls' schools respectively.

It is quite obvious that coefficients of correlation between the ratings of all students on each teacher are quite substantially significant. However, in the girls' school for Tr. No. 1 and in boys' school for Tr. No. 2, these values are not significant. This shows that in both the schools, students have not given consistent ratings for one out of five teachers. We can say, students

give consistent ratings for 80% teachers.

(ii) Reliability of ratings of individual students on the characteristics of all teachers

In the previous description, we have discussed and found the reliability of ratings of students on the characteristics of all individual teachers. Here, we take up students, one by one, and then find out the reliability of each student's ratings on the characteristics of all teachers. The difference between these two approaches is quite significant as well as quite clear. In the first case, the coefficient of reliability refers to "Reliability of students' ratings on the characteristics of individual teachers". In this second case, the coefficients of reliability refer to "Reliability of each individual student's ratings on the characteristics of all teachers taken at a time". In the first case we have found 10 (No. of teachers) coefficients of correlations. In this second case we have calculated (30 + 32) = 62 coefficients of correlation to infer reliability of ratings

TABLES SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE TWO SETS OF RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF ALL TEACHERS

Boys' School

N (Number of teachers) - 5
Degrees of freedom (N-2) - 3
Significant value at .05 level - .878
Significant value at .01 level - .959

St. No.	Coefficient of Correlation (r)	Significance
1	0	Not significant
2	.463	Not significant
3	0	Not significant
4	.969	Very significant
5	.546	Not significant
6	.985	Very significant
7	.954	Very significant
8	.733	Not significant
9	.958	Very significant
10	.926	significant
11	.621	Not significant
12	.950	Very significant
13	.792	Not significant
14	.237	Not significant
15	.980	Very significant
16	.396	Not significant
17	.987	Very significant
18	.962	Very significant
19	.955	Very significant
20	.959	Very significant
21	1	Very significant
22	.979	Very significant
23	.911	significant
24	.920	significant
25	.994	Very significant
26	.925	significant
27	.910	significant
28	.675	Not significant
29	.991	Very significant
30	.985	Very significant
31	.732	Not significant
32	.558	Not significant

We count significant values of correlations for 20 i.e. 62.50% students. For 12 students i.e. 37.50% we do not find significant values for coefficient of correlations. However, this does not deter us from relying upon the ratings of students.

Girls' School

St. No.	Coefficient of Correlations (r)	Significance
1	.626	Not significant
2	.862	Not significant
3	.944	significant
4	.708	Not significant
5	.801	Not significant
6	.893	significant
7	.575	Not significant
8	.910	significant
9	.932	significant
10	.999	Very significant
11	.733	Not significant
12	.978	Very significant
13	.960	Very significant
14	.964	Very significant
15	.939	significant
16	.823	Not significant
17	.680	Not significant
18	1	Very significant
19	.739	Not significant
20	.995	Very significant
21	.008	Not significant
22	.796	Not significant
23	.988	Very significant
24	.993	Very significant
25	.984	Very significant
26	.795	Not significant
27	.671	Not significant
28	.761	Not significant
29	.916	significant
30	.268	Not significant

Here we find significant values of coefficient of correlation for 15 i.e. 50% students. This does not seem to be quite encouraging one but still we can say, we have found statistical sound footing for relying upon the ratings of students on the characteristics of teachers.

Stability of ratings of teachers on the characteristics of students

Teachers teaching the above students were also requested to rate the students on their characteristics. In the higher secondary classes, there are five subjects, so there were five teachers who rated their students on 10 characteristics. We go into the details of stability of ratings of teachers on the same line as we have discussed earlier the stability of ratings of students.

Boys' School

In this school, we had 32 students. Five teachers rated each student on 10 characteristics. So, for one teacher we had (32 x 10) = 320 ratings and for five teachers we received (320x 5) = 1600 ratings in all.

All the teachers were contacted individually. They were requested to rate the students quite adequately which may help us to ascertain the nature of students we are getting in higher secondary schools. The teachers were also requested to look into the details of Rating Scale in the presence of the investigator. This was done to make any clarifications sought by the teachers. The nature of the characteristics was very common and it hardly invited any queries from teachers. This was possible because the characteristics included in the scale, were given by more than 125 teachers in the open

survey, discussed in Sections I&II. However, when the teachers were requested to re-rate the teachers, they were quite surprised. There was no other alternative except to tell the truth to them that re- rating on their part was meant to find out the consistency in their ratings. "You wanted to examine us". "Better you had told this very fact at the time of first administration". - such remarks were made by teachers though lightly. The teachers became cautious in rating the students. We can also say that, this cautiousness might have effected the calculation of the reliability of ratings.

TABLE SHOWING NUMBER OF RATINGS IN DIFFERENT SCALE VALUES OF THE RATING SCALE.

Administration	Scale Values		
	Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)
First	1076 (67.25%)	378 (23.65%)	146 (9.12%)
Second	1167 (72.94%)	389 (24.31%)	44 (2.75%)

We find that the percentage value of ratings falling in the middle value remains nearly hundred per cent stable. However, there is a rise of 5% ratings in higher scale values and fall of 7% ratings in lower scale values. This disparity needs further investigation.

TABLE SHOWING PATTERN OF CHANGES IN THE RATINGS

Scale Value	Number of Ratings		Percentage changes
	First time	Changed	
Higher	1076	124	11.52
Middle	378	193	51.06
Lower	146	97	66.44

We find a sharp change in the ratings of lower scale values i.e. 66.44% changes occur in these ratings of lower scale values. However, there is only 11.52% change in the ratings of higher scale value. This leads us to examine the nature of these changes.

TABLE SHOWING CHANGES IN RATINGS FROM HIGHER TO LOWER AND LOWER TO HIGHER SCALE VALUES

Scale values from which changes take place	Scale values to which changes fall			Total
	Higher	Middle	Lower	
1 Higher	-	124 (1.52%)	-	124 (1.52%)
2 Lower	18 (12.33%)	79 (54.11%)	-	97 (66.44%)

We see that out of 66.44% changes in the ratings of lower scale value, 54.11% changes fall in the middle scale value. Quite clearly, there is an abnormal change in the ratings of lower scale value. Similarly,

the middle scale value absorbs abnormal amount of these changes. This is a paradox and whereas it speaks of fluctuating state of mind of the teachers, it also shows that a majority of ratings in middle scale value have a tendency to fall into lower scale values. If we cancel out these apparent changes we calculate the real stability of ratings of lower scale value as (100-12.33 =)87.67%. Similarly, when there is no change of rating from higher to lower scale values, we say the stability of ratings in higher scale value is be hundred per cent.

However, overall stability of ratings of teachers can be calculated as under:

Total Number of ratings	- 1600
Total changes	- 414
Percentage changes	- 25.95
Stability of Ratings	- 74.15%

We can well rely upon the ratings of teachers.

Girls' School

In girls' school, we had 30 students. So, when one teacher rates one student on ten characteristics, she gives us 300 ratings. There were five teachers, so we had 1500 ratings each time from all teachers.

TABLE SHOWING NUMBER OF RATINGS IN DIFFERENT SCALE VALUES OF THE RATING SCALE

Administration	Scale Value		
	Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)
First	696 (46.39%)	639 (42.60%)	165 (11%)
Second	963 (64.20%)	461 (30.73%)	76 (5.07%)

Wide disparities in the percentage of ratings falling in different scale values on the two administrations show quite a good amount of unstability in the ratings of teachers on the characteristics of students in the girls' school. We examine this stability of ratings in detail as was done in the case of boys' school.

TABLE SHOWING PATTERN OF CHANGES IN THE RATINGS

Scale Value	Number of Ratings		Percentage changes
	First time	changes	
Higher	696	227	32.62
Middle	639	399	62.44
Lower	165	155	93.94

As discussed earlier, we examine below the changes of ratings from higher to lower and lower to higher scale values.

TABLE SHOWING CHANGES IN RATINGS FROM HIGHER TO LOWER AND LOWER TO HIGHER SCALE VALUES

Scale values from which changes take place	Scale values to which changes fall			Total
	(Higher)	(Middle)	(Lower)	
1 Higher	-	195 (28.02%)	32 (4.59%)	227 (32.61%)
2 Lower	80 (48.49%)	75 (45.48%)	-	155 (93.95%)

When we cancel out changes falling in middle

scale value, we have the following results:

Stability for ratings in the higher scale value - 95.41%

Stability for ratings in the lower scale value - 51.51%

We find a stability of ratings of teachers on the characteristics of students in the girls' school. The same results are shown in the calculation of overall stability of ratings:

Total number of Ratings	- 1500
Changes	- 781
Percentage of Rating changed	- 52.06
Stability of Ratings	- 47.94%

COMPARATIVE TABLE SHOWING PERCENTAGE STABILITY OF RATINGS OF PUPILS AND TEACHERS ON EACH OTHERS' CHARACTERISTICS IN BOYS' AND GIRLS' HIGHER SECONDARY SCHOOLS

School	Stability in the Ratings of	
	Teachers	Pupils
Boys'	74.15%	77.44%
Girls'	47.94%	69.37%
Total	61.45%	73.55%

We can well make the following inference from the above (comparative) table:

1. Stability in the ratings of students is greater than the stability in the ratings of teachers.

2. Stability in the ratings of students in boys' school is greater than the stability of ratings in girls' school on the characteristics of their respective teachers.

3. Stability in the ratings of teachers on the characteristics of students in the boys' school is greater than that of stability of ratings in the girls' school.

4. Stability of ratings of teachers in girls' school is not sufficient.

5. Stability of ratings of both teachers and pupils in the boys' school on each others' characteristics is more than the stability of ratings of both the teachers and the pupils in the girls' school.

6. When we combine the ratings of teachers and pupils, both in the boys' and the girls' schools, we get significant stability of ratings both for teachers and pupils. However, stability in the ratings of pupils is found to be greater (73.55%) than the stability in the ratings of teachers (61.45%) only.

Reliability of Ratings of teachers on the characteristics of students.

We had two sets of ratings of teachers on the characteristics of students. Following the lines of determination of coefficient of correlation of students' ratings on the characteristics of teachers, we found out the reliability of ratings of teachers on the characteristics of students as described below in the following two ways:

1. Reliability of Ratings of all teachers on the characteristics of individual students.

2. Reliability of Ratings of each individual teacher on the characteristics of all students.

1. Reliability of Ratings of all teachers on the characteristics of individual students

Here we have added up the scores of ratings of all teachers on the characteristics of each individual student. By applying Difference Formula, we found out the coefficients of correlation between the two sets of scores. The detailed findings are discussed below:

TABLES SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE TWO SETS OF RATINGS ON THE CHARACTERISTICS OF INDIVIDUAL STUDENTS

N (Number of teachers) - 5

Degrees of freedom(N-2) - 3

Significant at .05 - .878

Significant at .01 - .959

Boys' School

St. No.	Coefficient of Correlation (r)	Significance
1	.601	Not significant
2	.974	Very significant
3	.974	Very significant
4	.679	Not significant
5	.764	Not significant
6	.919	significant
7	.693	Very significant
8	.675	Not significant
9	.056	Not significant
10	.591	Not significant

contd...

St. No.	Coefficients of Correlation	Significance
11	.942	Significant
12	.971	Very significant
13	.870	Significant
14	.887	Significant
15	.981	Very significant
16	.843	Not significant
17	.522	Not significant
18	.277	Not significant
19	.756	Not significant
20	.031	Not significant
21	-.323	Not significant
22	.867	Not significant
23	.884	Not significant
24	.836	Not significant
25	.588	Not significant
26	.800	Not significant
27	.334	Not significant
28	.749	Not significant
29	.877	Significant
30	.922	Very significant
31	.834	Not significant
32	.977	Very significant

We get significant values of "r" for only 12 (i.e. 37.56%) students. This means we do not get significant correlation between the two sets of ratings of teachers on the characteristics of students. This again goes to substantiate the interpretation made in the stability of ratings of teachers. But, we do get positive correlations for 29 out of 32 students.

Girls' School

St. No.	Coefficient of Correlation (r)	Significance
1	.962	Very significant
2	.949	significant
3	.179	Not significant
4	.612	Not significant
5	.528	Not significant
6	.536	Not significant
7	.801	Not significant
8	- .228	Not significant
9	.761	Not significant
10	.525	Not significant
11	- .712	Not significant
12	.370	Not significant
13	- .060	Not significant
14	- .002	Not significant
15	.648	Not significant
16	.434	Not significant
17	.792	Not significant
18	.968	Very significant
19	.746	Not significant
20	.059	Not significant
21	- .315	Not significant
22	- .208	Not significant
23	- .870	Not significant
24	- .057	Not significant
25	- .791	Not significant
26	- .224	Not significant
27	- .753	Not significant
28	- .06	Not significant
29	-.224	Not significant
30	.742	Not significant

We get significant values of "r" only for 3 i.e. 10% students. We get positive correlation only for 16 i.e. 33.33% students . This again goes to substantiate the low stability (47.94%) of ratings of teachers in girls' schools.

2. Reliability of Ratings of each individual teacher on the characteristics of all students.

Here we find the reliability of ratings of each individual teacher for all students. The method applied remains the same as applied in the determination of reliability of ratings of each individual student on the characteristics of all teachers.

TABLES SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATIONS BETWEEN TWO SETS OF RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS

N (Number of students) - 32

Degrees of freedom (N-2) - 30

Significant value at .05 level - .349

Significant value at .01 level - .449

Boys' School

Tr. No.	Coefficient of Correlation (r)	Significance
1	.954	Very significant
2	.687	Very significant
3	.896	Very significant
4	.912	Very significant
5	.699	Very significant

N (Number of students) - 30

Degrees of freedom (N-2) - 28

Significant value at .05 level - .361

Significant value at .01 level - .463

Girls' School

Tr. No.	Coefficient of Correlation (r)	Significance
1	.206	Not significant
2	.290	Not significant
3	.531	significant
4	.221	Not significant
5	.425	significant at .05 not at .01.

We find substantial coefficients of correlation of all teachers in boys' school but in girls' school, we find "r" significant only for 2 teachers. This is in accordance with the discussed stability of ratings of teachers in both the schools.

Validity of Rating Scales

In both the Rating Scales, we had included the characteristics, which were obtained by the open survey discussed in Sections I & II. The survey covered 428 students (196 girls and 232 boys) and 135 teachers (72 women teachers and 63 men teachers) of 13 schools. Only

those characteristics were included which were mentioned with high frequencies. This was an important step to ensure the validity of Rating Scales.

Again, one ratee was rated by more than 2 raters. In the case of students, each student was rated by 5 teachers, while in the case of teachers each teacher was rated by 32 students in boys' school and 30 students in girls' school. This itself ensures the validity of ratings. Freeman (1965, pp 521) has pointed out, "Usually, of course, ratings of a particular person are obtained from more than one judge, for validity of ratings is thereby increased, in as much as subjectivity of judgment is decreased through the balancing of errors and bias".

Freeman (1962 pp 536) elaborates the point saying:

> " The usual criteria and standards of validity are not applicable to rating scales. There is a matter of(Construct)Content validity. The question to be asked regarding the validity of a rating scale are these: Does it meet the specification of a sound scale? Are the traits being rated by the scale significant in the setting or occupation for which the individual is being considered? If these two questions are answered satisfactorily, then the ultimate usefulness (that is predictive validity) of the scale will depend upon the soundness (reliability) of judges' ratings".

Barr and Davis (1953 pp 109) remark this way:

> " Rating methods are never any better than the raters. We may refine our rating methods and administer them properly, but unless the rater takes the job of rating seriously and conscientiously, the results are of questionable value".

Following these lines, we can well establish the validity of Rating Scales - the characteristics included were necessarily found to be of paramount importance by the ratees themselves. The raters were simultaneously ratees and they assumed both the roles. This also brought out the seriousness of the raters. Again, raters and ratees were well conversant with each other observing one another in these situations daily.

CONCLUSIONS

Sistermay, Amotra (1951 pp 481) points out:

> " Rating is just one of the many means that may be effective in assisting the teacher in improving pupil-teacher relationships and thus have a direct bearing on effective teaching. Everyone knows that such ratings cannot always be taken at face value, neither should other criteria be disregarded. The student is not infallible in his adjustment as to what is best for him. Yet, every teacher needs to know himself as others see him. This is a difficult task. Ratings by students is one source of knowledge".

No doubt the Rating Scales have their limitations. This has been discussed in our analysis of stability of ratings. We can use these Rating Scales as valuable tools to study the inter-personal relations between the pupils and the teachers. But we cannot use this tool as a foolproof method because of its limitations. We are required to supplement this tool with some other source of information which will verify and supplement

the information received by these Rating Scales. In our study, we have used the following two tools:

(1) <u>Students' check-list for teachers</u> (Appendix 16)

In this check-list we have included 100 statements expressing some characteristic of a teacher. Against each statement, the names of 5 teachers teaching the testee class were written. Students were requested to read each statement carefully, and mark (✓) under the names of the teachers those to whom that particular statement applies. They were allowed to leave the statement if it did not apply to any teacher or if the statement be tick marked under the names of all teachers as the statement holding good on all teachers. A copy of this check-list in its original form in Hindi and translated form into English has been attached in appendix 16. It is worthwhile pointing out that out of these 100 statements, 50 statements give positive feelings and 50 statements give negative feelings. These statements were again sorted out from the statements and expressions of 428 students on "What makes you like a teacher"? and "What makes you dislike a teacher"? We have included the statements in this check-list depicting characteristics of teachers which could be taken up in Rating Scale (appendix 13). The investigator took all precautions to administer this check-list at the very end of his data collection.

(2) Teachers' check-list for students (Appendix 15)

A supplementary tool to Rating Scale on the characteristics of students, was a check-list administered on the teachers. This included 50 statements. Against each statement some space was left out to provide a space to the teacher to give names of students to whom that statement applied. Again, these statements were sorted out from the statements and expressions of 135 teachers, on "What makes you like a student"? and "What makes you dislike a student"? (Questionnaire appendix 1). A copy of this check-list is attached in the appendix 15. These statements particularly related to the characteristics of students which could not be incorporated in the Rating Scale of characteristics (appendix 14) where the teachers were to rate the students.

REFERENCES

1. Barr, S. Arvil Robert, A Davis & Palmer O Johnson (1953): Educational Research and Appraisal. J.B. Lippincott Company, New York.

2. Best, W. John (1963): Research in Education. Prentice-Hall, India Pvt. New Delhi.

3. Ebel, L. Robert & Others (1969): Encyclopaedia of Educational Research. The MacMillan Company.

4. Freeman, Frank S. (1965): Theory and Practice of Psychological Testing. Third Edition; Oxford & IBH Publishing Company.

5. Good, C.V.(Ed) (1959): Dictionary of Education (2nd Ed.) McGraw-Hill, New York.

6. Garrett, Henry E.(1965): Statistics in Psychology and Education. Vakils, Feffer and Simons Pvt. Ltd. Bombay.

7. Guilford, J.P.(1954): Psychometric Methods.(2nd Ed.) New York, McGraw Hill Book Company, Inc.

8. Hart, W. Frank (1934): Teachers and Teaching. McMillan Company.

9 McCornick, C. Thomas & Roy G. Francis (1958): Methods of Research in Behavioral Sciences. Harper & Brothers, New York.

10. Monroe, Walter S. (1950): Encyclopaedia of Educational Research. The McMillan Co. New York.

11. Mouly, J. George (1968): Psychology for Effective Teaching. Holt, Rinehart & Winston.

12. Northrop, F.S.C. (1947): The Logic of Sciences and Humanities. McMillan Company.

13. Paul, Witty (1950): Some Characteristics of the Effective Teacher. Edu. Ad. Sup. Vol. 36, April 1950, pp 193-208.

14. Price, Mary R. (1964): Teaching is a Career. London, Museum Press Ltd.

15. Remmers H.H. (1964): Rating Methods in Research on Teaching. Handbook of Research on Teaching (330-378) American Educational Research Association.

16. Ryans, D.G.(1960): Characteristics of Teacher. American Council of Education, Washington, D.C.

17. Selltiz, Claire, Marie Johoda, Morton Deutsch Stuart W. Cork (1967): Research Method in Social Relations. Methuen & Co. Ltd.

18. Sistermay, Amotra (1951): The School Administrator's Problem. Edu. Ad. Sup. 37, 478-484. 1951.

19. Travers, Robert M. (1964): An Introduction to Educational Research. The McMillan Company, New York.

CHAPTER VI

TEACHER-PUPIL AND PUPIL-TEACHER RELATIONSHIPS

This study of Teacher-Pupil Relationships seeks to find out what teachers think and feel about their students. To find it out, teachers have made their choices for students on Sociometric Test (Appendix 9) and have rated the students for their personal likings on five-point Liking Scale (Appendix 3).

Similarly, the study of Pupil-Teacher Relationships seeks to find out what students think and feel about their teachers. Here, students have made their choices for teachers on Sociometric Test (Appendix 10) and have rated the teachers for their personal likings on five-point Liking Scale (Appendix 5).

Hypothesis

There is a lack of personal Teacher-Pupil Relationship both in boys' and girls higher secondary classes.

Plan of Analysis

The sample of this study involves two boys' and two girls' schools. The analysis of relationships in these four schools has been divided into the following two sections.

Section I

This section is further divided into following four parts, each part comprising of analysis for each one of the four schools as stated below:

Part A - Boys' school B-1 Part B - Boys' school B-2

Part G - Girls' school G-1 Part C - Girls' school G-2

Section II

A comparative study of these relationships in two boys' (B-1 + B-2) schools together and in two girls' (G-1 + G-2) schools together will be made in this section. Attempt will also be made for all the schools combined together.

Section I

Part A Analysis of Teacher-Pupil and Pupil-Teacher Relationships in boys' school B-1.

Sample: The sample from this school constitutes a section of the tenth class of 48 students and 5 teachers teaching different subjects to these students.

We divide this Part A in the following two sub-parts:

Part A-1 - Analysis of Teacher-Pupil Relationship.

Part A-2 - Analysis of Pupil-Teacher Relationship.

Part A-1: Analysis of Teacher-Pupil Relationship in school B-1.

The Sociometric Matrix depicts the choices of likings

and dislikings of teachers for their students. The test constituted three activities i.e.(I) appointment of monitors (II) visiting students' homes and (III) taking students on educational tour. Each activity gave an opportunity to the teacher to express three names of students whom he would like/dislike to associate within that activity. In all, each teacher could express 9 names for his liked and disliked students. The sociometric question for each activity was worded in its conditional tone,"other things being equal" "all other things are possible", so as to give a fully general nature to the activity to enlist personal likings and dislikings of teachers for their students. The reason for all this procedure was to get information from each teacher as to what number and what particular students in the class, he likes and dislikes. We make four sociometric categories from the choices received by students on Sociometric Test in the following manners:

1. Acceptee

Here those students are included who get at least one choice of acceptance and do not get any rejection from any one of the five teachers.

2. Rejectee
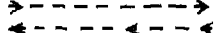
Here those students are included who get at least one choice of rejection from any one of the five teachers but do not get any acceptance choice.

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B-1

3. Isolate

Students getting no choice-neither acceptance nor rejection-from any one of the teachers on Sociometric Test, are included in this category.

4. Neglectee

Students who get both choices of acceptance and rejection from any two different teachers or from the same teacher, are included in the category.

In the Sociogram (shown opposite) of Teacher-Pupil Relationship of School B-1, the serial number from 1 to 48 represent the serial number of students and the serial number I to V in small circles represent the serial number of teachers. The straight lines with arrow heads show liking choices of teachers and dotted lines with arrow heads, disliking choices of teachers for students. From this Sociogram, we derive the following Sociometric Table:

TABLE 1.00 SHOWING TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN BOYS' SCHOOL B-1.

Tr. No.	Acceptance choices given to Sl.No. of Sts.	Total Sts.	Rejection choices, given to Sl.NO. of Sts.	Total No. of Sts.
1	23,25,28,31,32,42 46,48	Eight	-	-
2	1,9,22,25,28,30	Six	7,43,46,47,48	Five
3	15,22,23,28,30,32, 33	Seven	3,7,40,46	Four
4	10,11,12,23,27,28, 48	Seven	3,18,33,38,46, 47	Six
5	2,23,28,29,31,42, 48	Seven	6,7,27,33,35, 36,46	Seven

Sts. stands for students. Sl.No. stands for serial number.

Interpretation

1. One teacher could give 9 names of students with whom whe likes to associate in three activities. We find that but for one teacher all teachers have spreadover their 9 choices to the maximum of 7 names. This shows that teachers had to repeat the same name/s so as to give their hundred per cent choices. From this we infer, teachers have their clear-cut likings for 7 students out of 48 i.e. 14.58% in the class. Obviously, number of choices allowed (9) did not come in the way of teachers in expressing their likings for students because they could not give 9 names. This shows that there are limited number of students whom the teachers like. This itself establishes our hypothesis for this school that there is a lack of teacher-pupil relationship in its higher secondary classes.

2. But for one teacher Sl.No. 1, all the rest of four teachers have given their choices of rejection. Four teachers give 36 rejection choices, each giving 9 choices. This shows that the names of students who were not mentioned in acceptance category, do not only have indifferent feelings from their teachers but some of the students are also disliked by teachers. Non-acceptance of students by teachers shows a lack of teacher-pupil relationship but exact disliking of teachers for students presents a more dismal picture. Four teachers, giving their rejection choices, name as many as seven students in this category.

From table 1.00, we find the number of students who are placed in different sociometric categories as discussed above.

TABLE 1.1 SHOWING NUMBER OF STUDENTS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES

Category	Serial Number of Students.	Number	Percentage
Acceptee	1,9,10,11,12,15,22, 23,25,28,29,30,31 32,42.	15	31.25
Rejectee	6,7,18,35,36,38,40 43,47.	9	18.75
Isolate	2,4,5,8,13,14,16, 17,19,20,21,24,26, 34,37,39,41,44,45	19	39.58
Neglectee	3,27,33,46,48	5	10.42

Interpretations

1. There are only 15 (31.25%) students who enjoy only likings from one or more teachers. Even if we add to these students, the neglectees who enjoy both liking and disliking choices from their teachers, the maximum number of students comes to 20 (41.67%) only. It means less than 50% or only 42% students in the class enjoy liking inclination from their teachers. This gives us 58% of students who do not enjoy liking from any one of the five teachers. The following table shows as to how many teachers like

a student:

TABLE 1.2 SHOWING STUDENTS LIKED BY TEACHERS

Serial Number of liked student.	Liked by Teacher Number.	Liked by Number of Teachers.	
1	2	1	
9	2	1	
10	4	1	
11	4	1	
12	4	1	
15	3	1	
22	2 & 3	2	
23	1, 3, 4 & 5	4	
25	1 & 2	2	
28	1, 2, 3 & 4, 5	5	
29	5	1	
30	3	1	
31	5	1	
32	1 & 3	2	
42	1 & 5	2	Total 26

It shows that on an average, one liked student is liked by 1.73 teachers only. We find only one student who is liked by all teachers. In all, out of these 15 students, each of the 9 students, is liked by only one teacher (different for different students). This shows different teachers like different students. This may be due to differences in opinions of teachers for students or due to different angles with which a teacher likes a student. This question will be examined in our subsequent chapters.

2. There are 9 students (18.75%) who are victims of the expressed dislikings of teachers. If we add to this number, the 5 neglectee students, the students who receive both acceptance and rejection choices, we find 14 students,

(29.17%) who are disliked by teachers. This goes to establish something more than our hypothesis. The following table shows the number of teachers who on an average dislike a student.

TABLE 1.3 SHOWING STUDENTS DISLIKED BY TEACHERS

Serial Number of Disliked Student.	Disliked by Tr. Sl. No.	Disliked by Number of Trs.	
6	5	1	
7	2, 3 & 5	3	
18	4	1	
35	5	1	
36	5	1	
38	4	1	
40	3	1	
43	2	1	
47	2 & 4	2	Total 12

It is pleasing to note that there is no student who is disliked by all teachers. However, one student, serial number 7, is disliked by 3 (out of 5) teachers. On an average one disliked student is disliked by only 1.33 teachers. It is a relieving finding amidst otherwise gloomy picture, that on an average when a student is liked by teachers, he is liked by 1.73 (say 2) teachers, but when a particular student is disliked, he is disliked by 1.33 (say 1) teachers.

2. There are 19 students who find no place on Sociometric Test. We have 9 students who find disliking choices from their teachers. So, as such 28 students (58.33%) enjoy no likings from any one of their teachers. This shows nothing less than the lack of personal teacher-

pupil relationship.

Analysis of Ratings of Teachers for their personal Likings of students on five-point Liking Scale

TABLE 1.4 SHOWING NUMBER OF RATINGS MADE BY TEACHERS FOR THEIR PERSONAL LIKINGS OF STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALE

Tr. No.	Liking Scale Values			Total
	Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)	
1	18(37.50)	21(43.75)	9(18.75)	48(100.00)
2	35(72.90)	10(20.83)	3(6.25)	48(100.00)
3	6(12.50)	38(79.17)	4(8.33)	48(100.00)
4	10(20.83)	30(62.50)	8(16.67)	48(100.00)
5	30(62.50)	11(22.92)	7(14.58)	48(100.00)
Total	99(41.25)	110(45.83)	31(12.92)	240(100.00)

Interpretations

1. Teacher No. 1 who had given no disliking choice has given lower ratings (of 2&1) on Liking Scale which stand for "Like less than others" and "Like the least". This means this teacher too cannot be excluded from the mainstream of teachers who cherish dislikings for a number of students in the class. Surprisingly, he is the teacher who places maximum number of students (9(18.75%) in the lower scale values showing his disliking for them.

2. Teacher No. 2 and teacher No. 5, have placed 72.90% and 62.50% students in higher scale values of the Liking Scale which shows the number of students liked by

them. But a dismal picture is presented by teacher No. 3 who has placed only 6 students (12.50%) in these higher scale values. Almost similar picture is presented by Teacher No. 1 and Teacher No. 4 who exhibit 37.50% and 20.83% students liked by them respectively.

3. As a whole we find 110 ratings (45.83%) in middle scale value of the Liking Scale which shows indifferent feelings of raters for the ratees. This way, it is inferred from the above table that less than 50% ratings (41.25%) fall in the higher scale values which shows nearly 60% students do not enjoy any feelings of acceptance from their teachers. This again goes to establish our hypothesis.

Sociometric Categories on the Basis of Ratings by Teachers for their Personal Likings of Students

The choices on Sociometric Test gave us an insight into the number of students liked by individual teachers. Here, we will have an insight into the number of students who are placed in different sociometric categories taking into consideration the ratings of all teachers on five-point Liking Scale.

We apply the following criteria to decide whether a student as a whole is accepted, rejected, isolated or neglected in the eyes of teachers.

1. Acceptee

   Here we include students who get atleast three ratings of higher scale values (5&4).

2. Rejectee

   Here we include students who get at least three ratings in lower scale values i.e. (2&1).

3. Isolate

Here we include students whom at least 3 out of 5 teachers give ratings of middle scale value (3) of the Liking Scale.

4. Neglectee

Here we include students who get all the three types of ratings i.e. higher value, middle as well as of lower scale value.

The following Matrix of five-point Liking Scale of Teacher-Pupil Relationship decides as to how many and what students fall in each of the sociometric categories discussed above.

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN SCHOOL-B-1.

Ratees Sts. Sl No.	Raters-Teacher's Serial Numbers					Sociometric category
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	
1	3	5	3	4	4	Acceptee
2	4	5	3	3	4	Acceptee
3	2	5	2	2	4	Rejectee
4	3	5	3	3	3	Isolate
5	4	5	3	3	4	Acceptance
6	3	5	3	3	4	Isolate
7	3	4	2	2	2	Rejectee
8	4	5	3	3	3	Isolate
9	5	5	5	4	5	Acceptee
10	3	4	3	4	4	Acceptee
11	3	3	3	4	4	Isolate
12	5	3	3	4	4	Acceptee
13	2	4	3	3	4	Neglectee
14	3	5	3	3	4	Isolate
15	3	5	3	3	4	Isolate
16	3	4	3	3	2	Isolate
17	3	4	3	3	3	Isolate
18	3	5	3	3	4	Isolate
19	2	3	3	3	3	Isolate
20	3	4	3	3	3	Isolate
21	2	3	3	4	2	Neglectee
22	3	4	3	3	3	Isolate
23	3	5	3	4	2	Neglectee
24	5	4	3	3	3	Isolate
25	5	5	3	3	5	Acceptee
26	2	3	3	3	4	Neglectee
27	4	3	5	4	4	Acceptee

contd...

Ratees Sts.Sl. No.	Raters-Teacher's Serial Numbers (1)	(2)	(3)	(4)	(5)	Sociometric category
28	4	5	5	5	5	Acceptee
29	3	4	3	3	5	Isolate
30	3	4	5	3	4	Acceptee
31	5	5	5	4	4	Acceptee
32	5	4	5	3	4	Acceptee
33	2	3	3	1	1	Rejectee
34	5	4	3	3	4	Acceptee
35	2	2	3	2	4	Rejectee
36	3	3	3	3	3	Isolate
37	3	3	3	3	3	Isolate
38	3	2	3	2	3	Isolate
39	2	3	3	2	4	Neglectee
40	4	4	1	2	4	Acceptee
41	4	5	3	3	3	Isolate
42	5	5	3	3	5	Acceptee
43	4	4	3	3	5	Acceptee
44	4	4	3	3	5	Acceptee
45	4	4	3	3	5	Acceptee
46	2	1	1	2	1	Rejectee
47	3	4	3	3	2	Isolate
48	3	4	3	3	4	Isolate

TABLE 1.5 SHOWING SERIAL NUMBEROF STUDENTS WHO ARE FOUND IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE

Sociometric Category	Serial Number of Students.	Number of Students	Percentage
Acceptee	1,2,5,9,10,12,25 27,28,30,31,32,34 40,42,43,44,45	18	37.50
Rejectee	3,7,33,35,46	5	10.41
Isolate	4,6,8,11,14,15,16, 17,18,19,20,22,24, 29,36,37,41,38,47, 48	20	41.68
Neglectee	13,21,23,26,39	5	10.41
Total		48	100.00

TABLE 1.6 SHOWING NUMBER OF STUDENTS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Sociometric Category	Sociometric Test	Five-Point Scale
1 Acceptee	15(31.25)	18(37.50)
2 Rejectee	9(18.75)	5(10.41)
3 Isolate	19(39.58)	20(41.68)
4 Neglectee	5(10.42)	5(10.41)
Total	48(100.00)	48(100.00)

Interpretation

1. We have defined a student as an acceptee (by teachers) when he gets at least three ratings of higher scale value i.e. he is liked by at least three out of five teachers teaching him. We find that there are only 18(37.50%) students who fall in this category. Thus, we find less than 40% students enjoy acceptance from teachers.

2. We had found 9 students (18.75%) falling in rejection category on Sociometric Test but it is found that as a whole only 5 students (10.41%) are falling in this category on five-point Liking Scale. It is, again, a relieving finding that while more students are disliked by individual teachers, less number of students are disliked by teachers taking into account the feelings of all of them.

3. We find 20(41.68%) students falling in isolate category. From this we can interpret that in addition to 10.41% disliked students, there are 41.68% students who are if not exactly disliked but are also not liked by teachers.

It can be said from the above analysis that a large number of students are found to have been not accepted by the teachers, either when considered individually or when the feelings of all teachers are taken together. There are only 15(31.25%) students who are accepted by one or two teachers and at the maximum there are 18(37.50%) students who are accepted by the combined feelings of all teachers. With the cognizance ofthe fact, that only a small number of students are liked, we can easily say that there is a lack of personal teacher-pupil relationship in this school.

From Table Nos. 1.1 and 1.5, we find the following students falling in the same sociometric category both on Sociometric Test and five-point Liking Scale.

TABLE 1.7 SHOWING TEACHERS PLACING STUDENTS IN THE SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Category	Serial Number of Students	Total Students
1 Acceptee	1,9,10,12,25,28,30,31,32, 42.	10
2 Rejectee	7, 35	2
3 Isolate	4,8,14,16,17,19,20,24,37, 41	10

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
23	✓		✓	✗	✗	✗		✓							
24		✓	✓	✗	✗	✗							✓		
25	✓		✓	✗		✗					✗			✓	
26		✓	✓	✗	✗							✗	✓		
27	✓					✓		✓		✗	✗				✗
28	✓		✓	✗	✗			✓				✗		✗	
29	✓	✓		✗	✗							✗			✓
		✓	✓	✗	✗	✗							✓		
31	✓	✓	✓	✗	✗	✗									
32	✓	✓	✓	✗	✗	✗									
			✓	✗	✗			✓				✗	✓		
34	✓		✓	✗	✗	✗								✓	
	✓		✓	✗	✗	✗								✓	
	✓			✗	✗	✗								✓	✓
37		✓	✓	✗	✗	✗							✓		
38		✓	✓	✗	✗	✗							✓		
39		✓		✗				✗				✗	✓		✓
40		✓				✗		✗		✗			✓		✓
		✓	✓	✗	✗	✗									
			✓	✗	✗	✗		✓					✓		
	✓	✓	✓	✗	✗	✗									
44	✓		✓	✗				✗				✗		✓	
45	✓		✓	✗	✗	✗		✓							
46		✓		✗	✗							✗	✓		✓
47			✓		✗		✗		✗				✓	✓	
				✗	✗				✗				✓	✓	✓

SCHOOL No. B-I.

SOCIOMETRIC MATRIX OF PUPIL–TEACHER RELATIONSHIP

TEACHER No. →	1				2				3				4							
ACTIVITIES No. / PUPIL No. ↓	1/4	2/5	3/6		1/4	2/5	3/6		1/4	2/5	3/6		1/4	2/	3/		/4	/	/6	
1	✓		✓		✗	✗	✗							✓						
2	✓		✓		✗	✗					✗							✓		
3	✓		✓		✗		✗							✗				✓		
4	✓		✓		✗	✗	✗											✓		
5	✓		✓			✗					✗		✗					✓		
6	✓	✓	✓										✗					✗		
7	✓		✓		✗	✗									✗			✓		
8	✓	✓	✓														✗	✗	✗	
9	✓	✓			✗	✗	✗			✓									✓	
10			✓		✗	✗									✗		✓			
11	✓	✓			✗	✗					✗								✓	
12		✓	✓			✗	✗		✗								✓			
13		✓			✗	✗	✗				✓						✓			
14	89		✗		✗					✗				✓	✓		✓			
15	✓		✓				✗			✗							✗	✓		
16	✓		✓		✗		✗			✗								✓		
		✓	✓		✗		✗			✗							✓			
18		✓	✓			✗					✗		✗				✓			
19	✗					✗					✗				✓		✓	✓		
20	✓		✓		✗		✗							✗				✓		
21	✓					✗	✗				✓		✗					✓		
22	✓		✓			✗							✗		✗			✓		

We find 10 students, placed in the acceptee category by one or more teachers on Sociometric Test, are also found as acceptees as a whole on the basis of ratings of teachers for their likings for them on five-point Liking Scale. Similarly, 10 students are in isolate sociometric category and 2 students in rejectee category on both the tools. Thus, we can say that for 22(45.83%) students, there is a perfect agreement among teachers regarding their likings for them.

Part A-2 Analysis of Pupil-Teacher Relationship in School B-1.

The Sociometric matrix depicts the choices of liking and disliking of students for their teachers on Sociometric Test. The test constituted three activities i.e. (I) Choice for class-teacher (II) Choice for House-master and (III) choice for discussing personal problems. For each activity, the studant was to name one teacher out of the five teachers teaching him and he was allowed to repeat the same name for more than one activity. They were also at liberty not to give any name for any activity if they so liked. Each student could express 3 names of teachers whom he liked to associate with and whom he did not like to associate within that activity. Again, to enlist the true likings and dislikings of students for particular teachers, the language of each question was made conditional as, "If all things were possible and you could have your class-teacher any one you liked", "If you were given a free choice" etc. Here, again, the reason for this was to fetch

an information from each student as to what number and what particular teacher in the class, he likes and dislikes.

From the Sociometric matrix we have the following table:

TABLE 1.8 SHOWING CHOICES RECEIVED BY TEACHERS ON SOCIOMETRIC TEST FROM STUDENTS

Teacher No.	Acceptance	Rejection
1	48(58.74)	3(2.04)
2	1(00.70)	97(67.37)
3	9(6.30)	16(11.11)
4	4(2.80)	21(14.56)
5	45(31.46)	7(4.87)
Total	143(100.00)	144(100.00)

Interpretation

1. All the teachers receive both acceptance as well as rejection choices. It means each teacher is liked as well as disliked by some students. However, from the Sociometric Matrix, it is clear that while a teacher gets acceptance choices from some students, he gets rejection choices from some other students. We can infer from this that the same teacher can be liked by some students and disliked by some other students.

2. Here we find, Teacher Serial No.1, is liked the

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—1
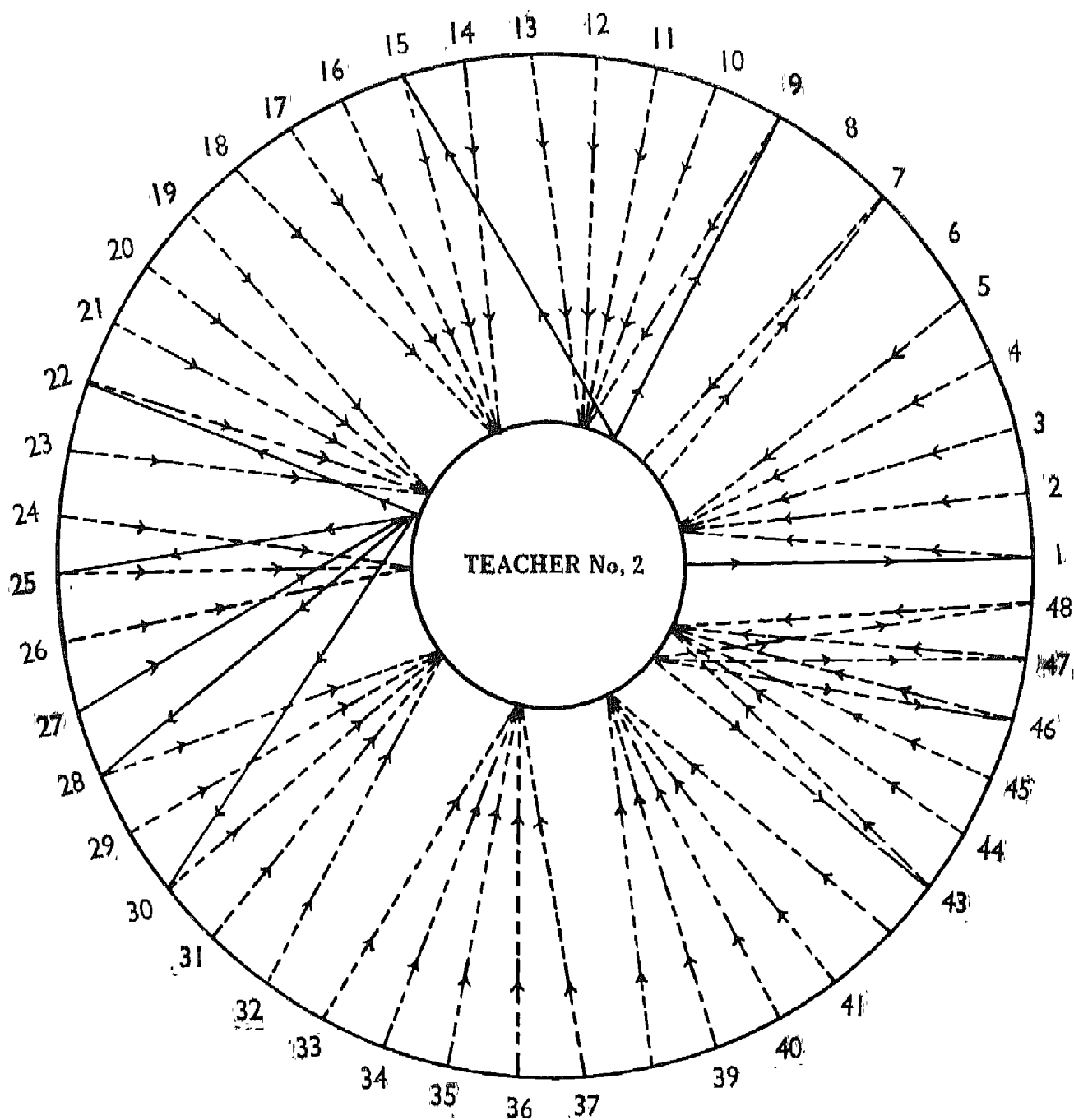
SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—1

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—1
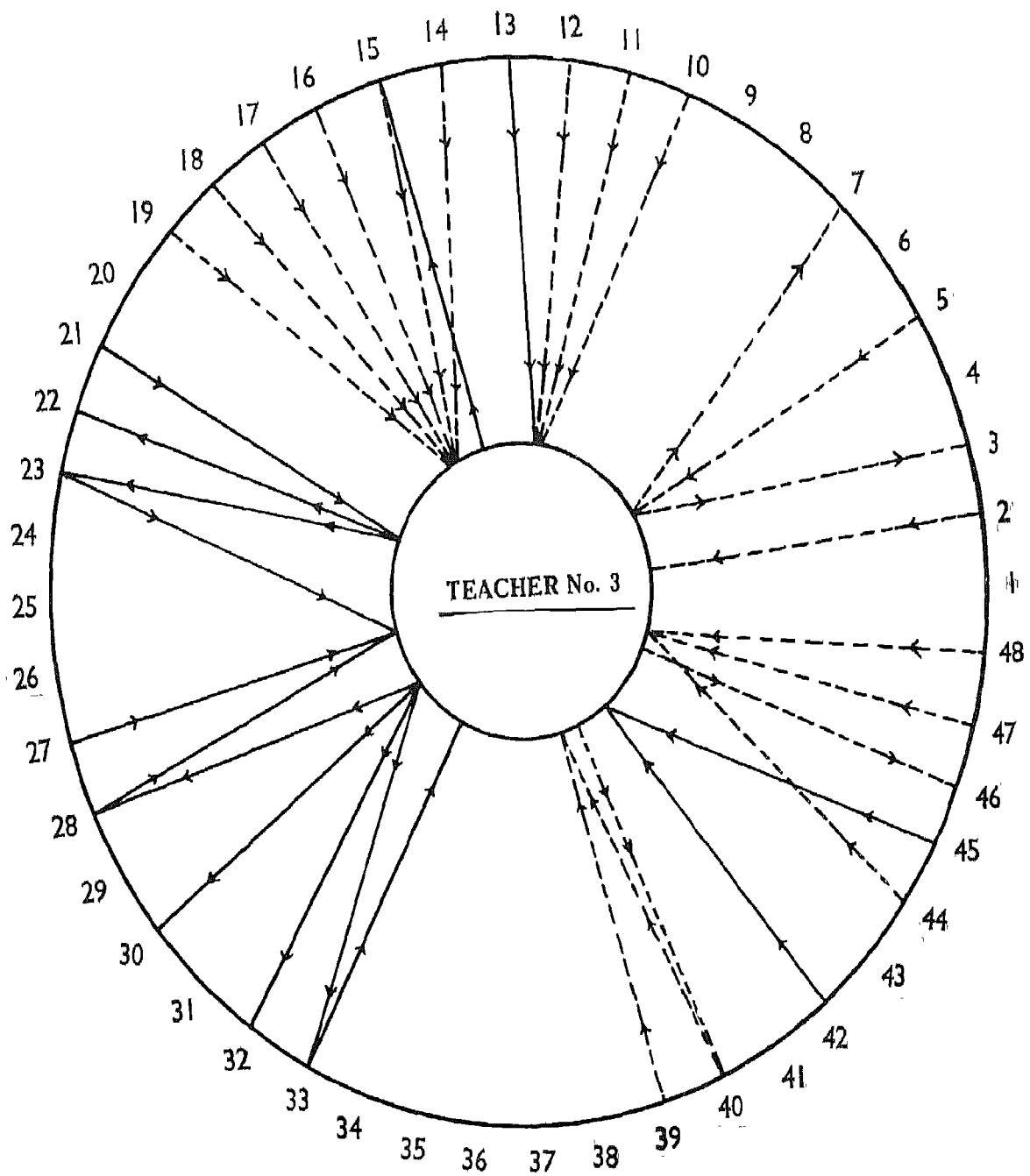
ACCEPTANCES

REJECTIONS

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—1
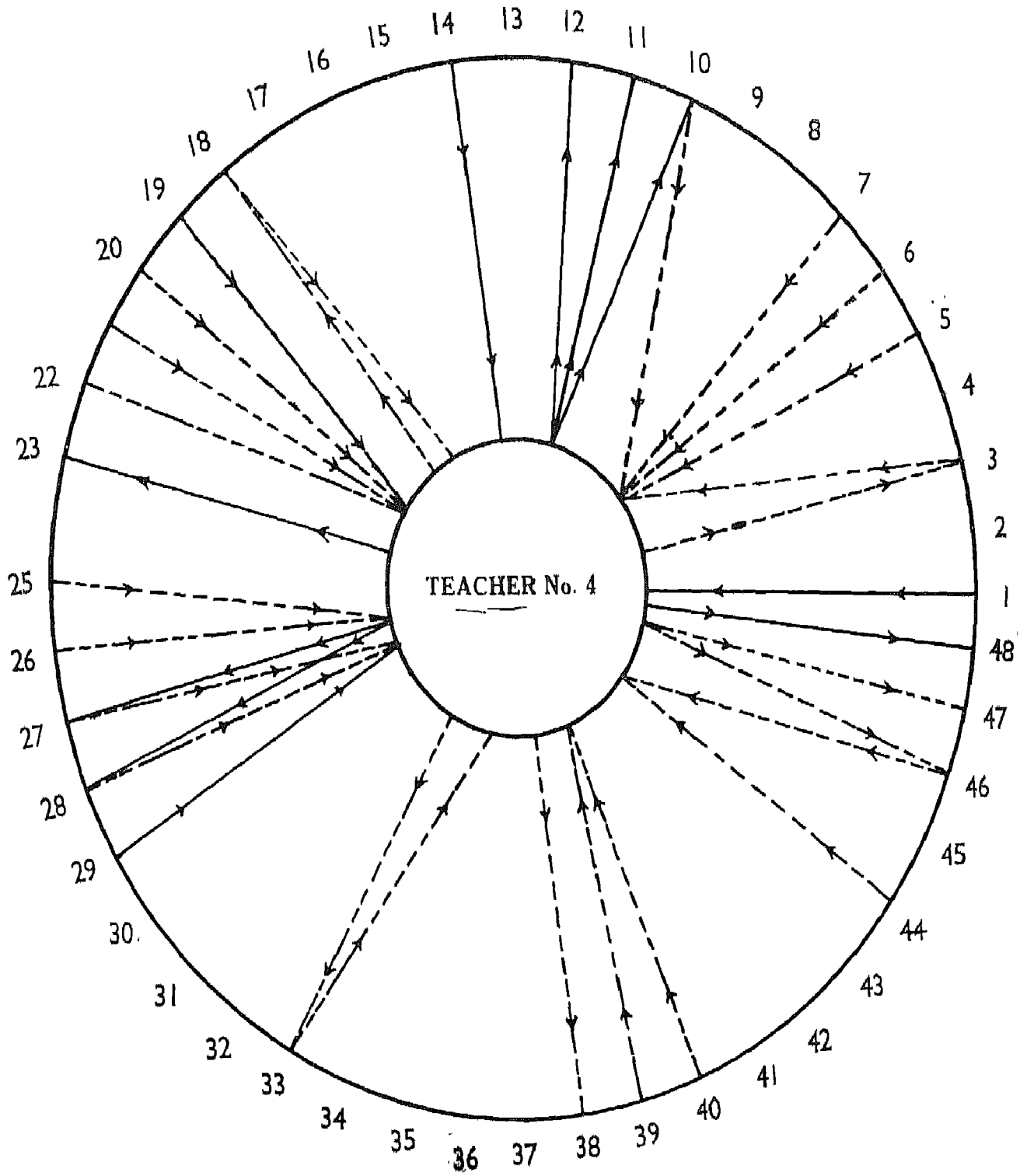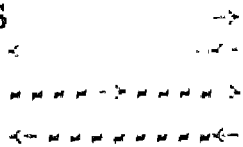
SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B--1
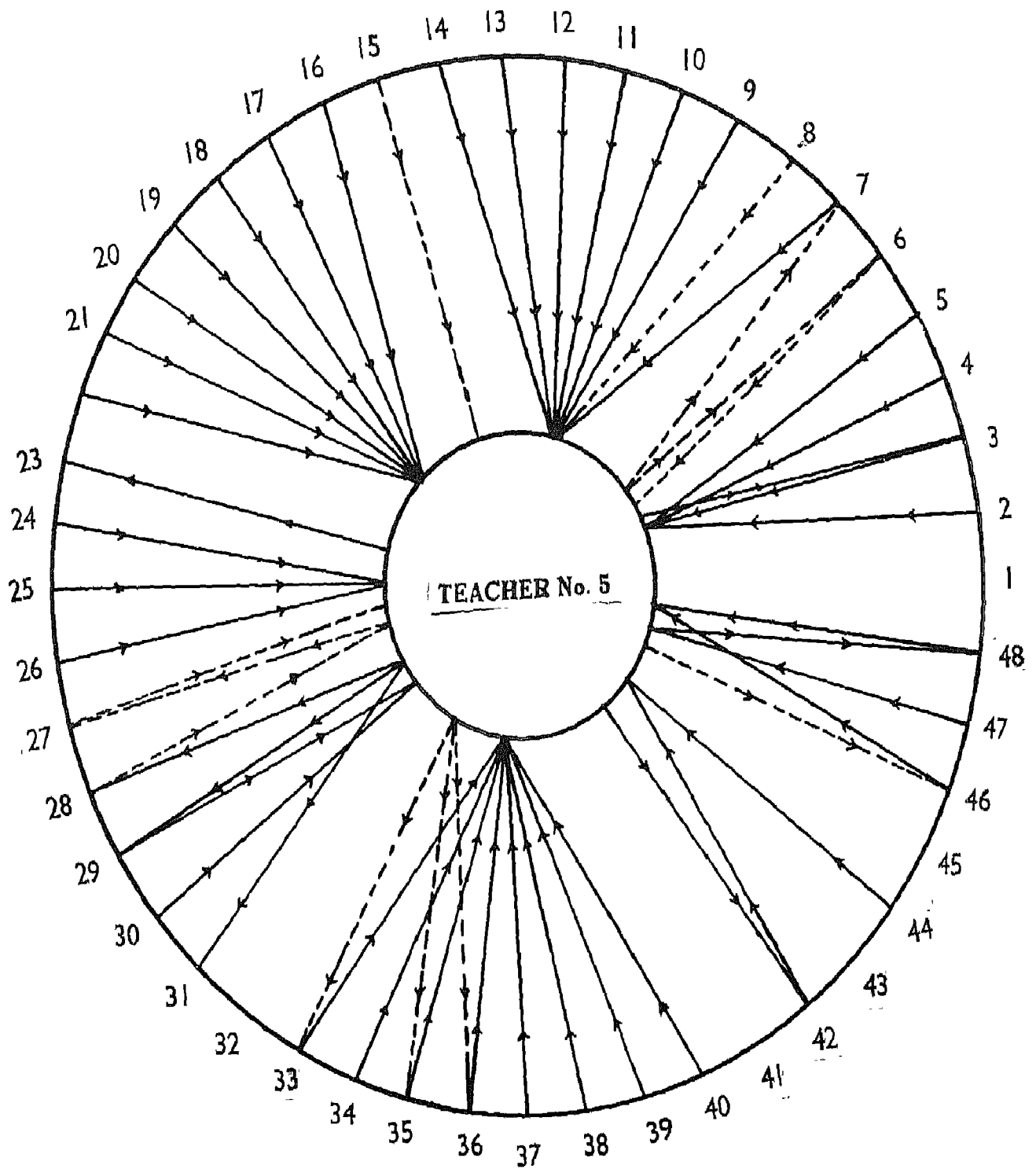
ACCEPTANCES

REJECTIONS

most by 48 choices of acceptance. He receives only 3 rejection choices. The second liked teacher is Teacher No. 5, who receives 45 choices of acceptance and only 7 choices of rejection.

3. Teacher No. 2 is the most disliked teacher. He receives only one acceptance choice and 97 rejection choices. Teachers No. 3 and 4, too receive more choices of rejection than they receive choices of acceptance. We can say, they are more disliked than liked by students.

4. In conclusion, we say 2 out of 5 teachers are liked by students and 3 of them are disliked by them. This indicates that students like less and dislike more number of teachers.

Sociograms:

From the two sociometric matrices of Teacher-Pupil and Pupil-Teacher Relationships, we draw 5 sociograms, one sociogram with respect to each individual teacher. The serial number 1 - 48, around the external and larger circle stand for the serial number of students. The internal and small circle is appended with serial number of teacher who makes for and receives choices from students. The dotted lines denote rejection choices and straight lines denote acceptance choices.

In Part A-1, we have discussed Teacher-Pupil Relationship. We will now study Pupil-Teacher Relationship.

TABLE 1.9 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS ON DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST IN SCHOOL B-1

Tr. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand total
1	1-13, 15-18 20-47	45 (93.74%)	14,19	2 (4.17%)	48	1 (2.08%)	48 (100%)
2	27	1 (2.08%)	1-5,7,9-26 28-48	45 (93.75%)	6,8	2 (4.17%)	48 (100%)
3	10,13,21,23 27,28,33,42 45	9 (18.75%)	2,5,11,12 14-19,39, 40,44,47, 48	15 (31.25%)	1,3,4, 6-9,20,22, 24-26, 29-32, 34-38,41 43,46	24 (50%)	48 (100%)
4	1,14,19	3 (6.25%)	3,5-7,10 18,20-22, 25-29,33, 39,40,44 46	19 (39.58%)	2,4,8,9, 11-13,15-17, 23,24, 30-32,34-38,41-43, 45,47,48	26 (54.17%)	48 (100%)
5	2-5,7,9-14 16-22 24-26 29,30,33-40 42,44,46-48	36 (75.00%)	6,8,15,27 28	5 (10.41%)	1,23,31, 32,37,41, 43	7 (14.50%)	48 (100%)

Interpretation

1. Teacher No. 1 is liked by 45 out of 48 i.e. 93.74% students. He is disliked by only 2 students i.e. 4.17% students. Similarly, teacher No. 5 is liked by 36 (75.00%) students and disliked by 5 (10.41%) students. We can easily say that these two teachers are liked by students.

2. Teacher No. 2 is disliked by 45 (93.75%) students and is liked by only one student. Obviously, he is overwhelmingly disliked by students.

3. Teacher No. 3 and 4 are liked by 9 (18.75%) and 3 (6.25%) students and disliked by 15 (31.25%) and 19(39.58%) students respectively. We say, they are liked by very few students and are disliked by more students; or most of the students have indifferent feelings towards them.

4. For two teachers we find an indifferent inclination of students and one, they reject altogether. They show their acceptance only for two teachers. This goes to establish lack of Pupil-Teacher Relationship in this class.

From the five sociograms considered separately, we have the following information:

TABLE 2.00 SHOWING RECIPROCAL OPPOSITE AND NON-RESPONSIVE CHOICES RECEIVED BY TEACHERS FROM STUDENTS

Teacher No.	Choices made by Teachers		Mutual Accept	Mutual Reject	Reject for Accept	Accept for Reject	Non-Responsive
	Accept	Reject					
1	8	-	7	-	-	-	1
2	6	5	-	5	5	-	-
3	7	4	3	1	1	-	6
4	7	6	-	4	3	-	6
5	7	7	4	2	1	5	2

Interpretation

1. For 35 choices of acceptance made by teachers only 14(40%) choices are responded with acceptance by students. Again only 3 teachers enjoy mutual acceptance choices.

2. In contrast to acceptance choices, we find for 22 rejection choices made by teachers, they receive 14(59.09%) rejection choices from students. Moreover, four (out of five) teachers get rejection choices.

3. Eleven acceptance choices are responded with rejection choices while only 5 rejection choices are responded with acceptance choices from students.

All these three points not only establish that there is a lack of teacher-pupil relationship in this class. More students are disliked than liked by teachers; more teachers are disliked than liked by students; more mutual rejection choices are found than mutual acceptance choices and less acceptance choices are made for rejection choices and more rejection choices are found for teachers in response to their acceptance choices for students - all these points give us a gloomy picture of relationship between teachers and pupils.

Supplementary information on five-point Liking Scale regarding Pupil-Teacher Relationship.

Here we say that a teacher is accepted by a student if he gets higher ratings (5 & 4), he is rejected if he gets lower ratings (i.e. 2 & 1) and is isolated by a student if he places him in the middle scale value(i.e. 3).

The following Matrix shows the ratings of students for their personal likings of teachers:

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP IN SCHOOL B-1.

Rater St.No.	Ratees	Teachers'	Serial	Numbers	
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	5	1	3	3	4
2	5	1	4	1	4
3	5	4	5	2	4
4	5	1	3	4	5
5	5	1	3	2	4
6	5	2	3	3	4
7	5	2	3	3	4
8	5	3	4	3	4
9	5	5	5	5	5
10	5	2	3	3	4
11	5	2	4	3	4
12	5	4	3	3	4
13	5	2	3	2	5
14	4	2	3	3	5
15	5	3	3	4	5
16	5	3	3	3	4
17	5	4	5	5	5
18	5	4	5	4	5
19	4	3	5	4	5
20	5	2	3	2	5
21	5	3	4	4	5
22	5	1	5	4	5
23	5	3	3	3	4
24	5	1	5	4	5
25	5	4	4	1	5
26	4	1	3	2	5
27	4	3	5	1	3
28	5	2	4	2	4
29	5	1	3	2	5
30	5	1	5	3	5
31	5	1	4	2	5
32	5	1	5	1	5
33	4	5	1	2	3
34	5	1	4	1	1
35	5	3	4	2	4
36	5	4	5	4	4
37	5	1	5	5	5
38	5	2	4	3	5
39	5	1	3	2	4
40	5	2	5	3	5
41	5	3	4	3	4
42	5	1	2	1	5
43	5	1	5	3	5
44	5	3	5	2	5
45	5	2	4	1	5
46	5	1	5	5	5
47	5	4	4	4	5
48	5	4	4	4	5

From this matrix we get the following table on the same lines as Table 1.9.

TABLE 2.1 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS ON DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL B-1

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	1-48	48 (100%)	-	-	-	-	48 (100%)
2	3,9,12,17,18 25,33,36,47, 48	10 (20.83%)	1,2,4-7,10 11,13,14, 20,22,24, 26,28,29-32,34,37-40,42,43, 45,46	28 (58.33%)	8,15,16,19 21,23,27, 35,41,44	10 (20.83%)	48 (100%)
3	2,3,8,9,11, 17-19,21, 22,24,25,27 28,30-32, 34-38,40,41 43-48	30 (62.49%)	33,42	2 (4.17%)	1,4-7,10, 12-16,20, 23,26,29, 39	16 (33.33%)	48 (100%)
4	4,9,15,17-19,21,22,24 36,37,46-48	14 (29.17%)	2,3,5,13, 20,25-29, 31-35,39, 42,44,45	19 (39.59%)	1,6-8,10-12,14,16, 23,30,38, 40,41,43	15 (31.24%)	48 (100%)
5	1-26,28-32, 35-48	45 (93.75%)	34	1 (2.08%)	27,33	2 (4.17%)	48 (100%)

Interpretation

1. Evidently teachers serial numbers 1 and 5 are accepted by students and teacher number 2 is rejected by 28 students and accepted by only 10 students.

2. Teacher number 4 is liked by 14 students and disliked by 19 students. We can say, this teacher too is not accepted by students.

The interpretations substantiate the interpretation made for Table 1.9.

3. Teacher No. 3 was found to have received indifferent feelings on Sociometric Test, but here on Liking Scale, he is found accepted. Here too, we can make similar interpretation making some margin for halo effect on ratings.

4. If we rank the teachers both ways as to the number of higher ratings and lower ratings received by them, we find the same ranking as we may do on Table 1.8, showing the number of choices of acceptance and rejection received by each teacher. We arrive at the following table with the help of Tables 1.8 and 2.1.

TABLE 2.2 SHOWING RANKINGS OF TEACHERS ON THE BASIS OF CHOICES AND RATINGS RECEIVED BY THEM FROM THEIR STUDENTS

Tr. No.	Accept Choices	Higher Ratings	Rank	Reject Choices	Lower Ratings	Rank
1	44	48	1	2	-	5
2	1	10	5	45	28	1
3	9	30	3	15	2	3
4	3	14	4	19	19	2
5	36	45	2	5	1	4

We find teachers who receive more of acceptance choices, also receive more number of higher ratings. Similarly, teachers getting more lower ratings receive more rejection choices. The order of likings and dislikings of students for teachers remain exactly the same both on the Sociometric Test and the five-point Liking Scale. This goes to re-establish once again the place of Liking Scale as a supplementary tool in the study of interpersonal relationships.

From Table 1.9 and Table 2.1 we have the following table:

TABLE 2.3 SHOWING TEACHERS GETTING SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	1-13,15-18 30-47	45 (93.75%)	-	-	-	-	45 (93.75%)
2	-	-	1,2,4,7,10, 11,13,14,20 22,24,26,28 29-32,34, 37-40,42,43 45,46	26 (54.17%)	8	1 (2.08%)	27 (56.25%)
3	21,27,28 45	4 (8.33%)	-	-	1,4,6,20 26,29	6 (12.50%)	10 (20.84%)
4	1,19	2 (4.17%)	3,5,20,25-29,33,39, 44	11 (22.92%)	8,12,16, 23,30,38, 41,43	8 (16.67%)	21 (43.75%)
5	2-5,7,9-14 16-22,24-26 29,30,35-40 42,44,46-48	34 (70.83%)	-	-	-	-	34 (70.83%)

Interpretation

This table makes the things more clear. Teachers No. 1,2 and 5 get clear verdict from students as far as as likings and dislikings are concerned. Teacher No. 1 is liked by 93.75% students whereas teacher No. 5 is liked by 70.83% students. Similarly, teacher No. 2 is disliked by 54.17% students. Teacher No. 3 gets clear verdict from only 10 students substantiating the previous interpretation that students are found indifferent towards him. Similarly, teacher No. 4 is disliked by 22.92% students and liked by only 4.17% students - so we again can say that he is not liked by his students.

Part B: Analysis of Teacher-Pupil and Pupil-Teacher Relationships in boys' school B-2.

Sample The sample from this school constitutes a section of the tenth class of 28 students and 5 teachers teaching different subjects to these students.

We divide this Part B in the following two sub-parts:

Part B-1 Analysis of Teacher-Pupil Relationship.

Part B-2 Analysis of Pupil-Teacher Relationship.

STUDENT NO.		1			2			3			4			5			6			7						9			10			11		
ACTIVITIES NO. / TEACHER S NO.		1/4		3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4		3/6	1/4	2/5	3/6	1/4		3/6	1/4	2/5	3/6
I	1																																	
	2	✓		✓		✓				✗																✗								
	3																								✓			✗						
II	1	✓																								✗								
	2																													✓	✓			
	3			✓																														
III	1									✓					✗																	✓		
	2																										✗							
	3				✓							✓											✗								✗			
				✓													✓	✓								✗	✗				✗			
	2																										✗							
	3														✗	✗			✓										✗			✓		
	1						✓										✓																	
	2								✗																	✗								
	3																											✗	✗					

SOCIOGRAM
TEACHER - PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B - 2

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 22 23 24 26 27

Tr. 1 Tr. 2 Tr. 3 Tr. 4 Tr. 5
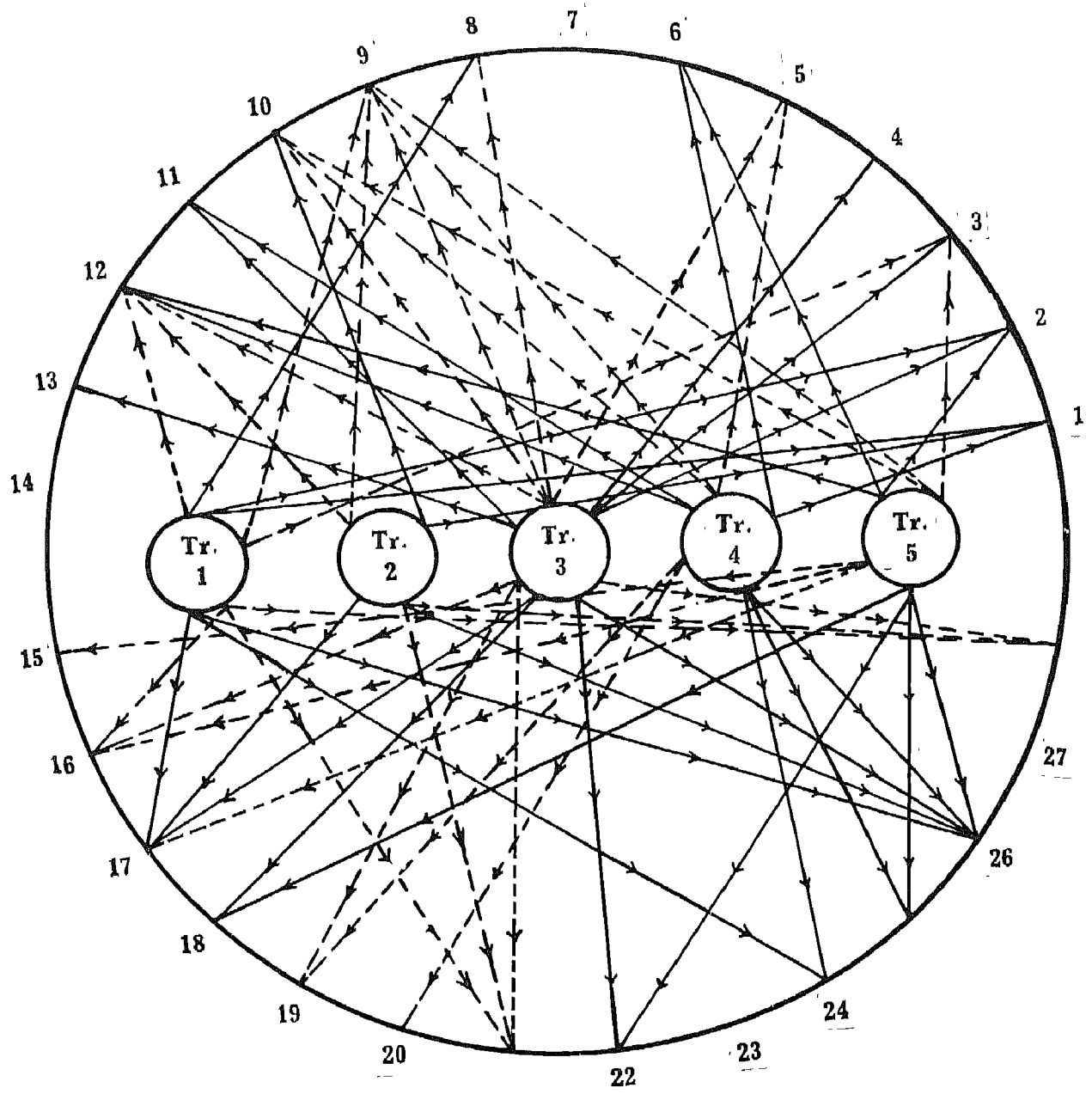
Part B-1. Analysis of Teacher-Pupil Relationship in School B-2.

From the sociogram of Teacher-Pupil Relationship arrived at from sociometric matrix, we derive the following sociometric table:

TABLE 2.4 SHOWING TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN BOYS' SCHOOL B-2.

Tr. No.	Acceptance choices given to Sl. No. of students.	Total No. of Students.	Rejection choices given to SlNo. of students.	Total No. of students
1	1,2,9,17,24,26	Six	3,9,12,16,21,28	Six
2	1,10,17,26,28	Five	9,12,21	Three
3	2,3,4,11,13,17, 18,22,26	Nine	5,8,9,10,12,16, 19,21,28	Nine
4	1,6,11,12,24,25, 26	Seven	5,9,10,19,20	Five
5	2,6,12,18,22,25, 26	Seven	3,9,10,15,16,17	Six

Interpretations

1. Except for one teacher (serial number 3), none else has given maximum of 9 names of students whom they would like to associate within the sociometric activities. For 45 choices made, we get 34 names. It means that on an average only 6.80 students are liked by each teacher in this class of 28 students. This clearly signifies the lack of likings of teachers for students.

2. All teachers have given names of students whom they would dislike to associate within sociometric activities. We have in all 29 names, i.e. on an average

5.80 students are disliked by each teacher in the class. This not only shows lack of teacher-pupil relationship but something which is antithesis of teacher-pupil relationship in this class.

From the above Table 2.4, we have the following table showing the number of students who are placed in only acceptance, rejection, isolate or negative category on Sociometric Test by teachers.

TABLE 2.5 SHOWING NUMBER OF STUDENTS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST IN SCHOOL B-2.

Category	Serial Number of Students	Number	Percentage
1. Acceptee	1,2,4,6,11,13,18,22,24,25, 26	11	39.28
2 Rejectee	5,9,15,16,19,20,21	7	25.00
3 Isolate	7,14,23,27	4	14.29
4 Neglectee	3,8,10,12,17,28	6	21.43

TABLE 2.6 SHOWING STUDENTS LIKED BY TEACHERS

Serial Number of liked students.	Liked by teacher serial number	Liked by number of teachers
1	1,2 & 4	3
2	1,3 & 5	3
4	3	1
6	4 & 5	2
11	3 & 4	2
13	3	1
18	3 & 5	2
22	3 & 5	2
24	1 & 4	2
25	4 & 5	2
26	1,2,3,4 & 5	5
		Total 25

he is liked by 2.27 teachers on an average but a disliked student is disliked by 2.43 teachers.

3. There are 4 students who find no choice. When we add to this number, the number of students who are disliked, we arrive at 11 students who enjoy no likings from teachers. Leaving aside 6 neglectee students which can be counted both ways, we can say 11 students enjoy likings and 11 students are deprived of these essential feelings. On the basis of likings and dislikings we can say that there is decidely a lack of teacher-pupil relationship.

Analysis of Ratings of Teachers for their personal likings of students on five-point Liking Scale in School B-2.

TABLE 2.8 SHOWING NUMBER OF RATINGS MADE BY TEACHERS FOR THEIR PERSONAL LIKINGS OF STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALE

Tr. Sl. No.	Liking Scale Values			Total
	Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)	
1	11(39.28)	11(39.28)	6(21.43)	28(100%)
2	10(35.71)	14(50.00)	4(14.29)	28(100%)
3	9(32.14)	14(50.00)	5(17.86)	28(100%)
4	5(17.86)	20(71.42)	3(10.72)	28(100%)
5	2(7.14)	20(71.42)	6(21.43)	28(100%)
	37(26.43)	79(56.33)	24(17.17)	

Interpretations

1. None of the teachers have placed more than 11 students in the higher scale values which show likings of teachers for their students. Surprisingly, none of the teachers have shown likings even for 14(50%) students in

the class. Moreover, teachers number 5 and 4 have touched the lowest ebb of number of students liked by teachers. These teachers have liked only 2(7.14%) and 5(17.86%) students respectively.

2. Only 37(26.43%) ratings are found in higher scale value. On an average 7 students i.e. 1/4 of the students are liked by teachers in the class.

3. We find 17.17% ratings falling in the lower liking scale values i.e. 2 or 1. This shows in all 24 students and thereby 5 students on an average are disliked by each individual teacher.

4. More than 50 ratings (56.33%) are placed in middle scale value which show indifferent feelings of teachers for students.

5. From these interpretations, we can say, there is a lack of likings of teachers for students and establishes our hypothesis even for this school that there is a lack of teacher-pupil relationship in this class too.

Sociometric categories on the basis of ratings of teachers for their personal likings of students.

We analyse further the ratings and find out the number of students who find their places in different sociometric categories as was done in the case of school B-1. In brief, we categorise students in the following manner:

1. Acceptee - 3 Higher ratings
2. Rejectee - 3 Lower ratings
3. Isolate - 3 middle ratings
4. Neglectee - ratings of higher, middle and lower values.

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN SCHOOL B-2.

Ratees St. Sl No.	Raters - Teachers' Serial Numbers (1)	(2)	(3)	(4)	(5)	Sociometric Category
1	5	4	4	4	3	Acceptee
2	4	3	3	3	3	Isolate
3	3	3	4	3	3	Isolate
4	3	3	3	2	3	Isolate
5	3	3	3	3	3	Isolate
6	4	4	4	4	5	Acceptee
7	4	4	3	3	3	Isolate
8	4	4	3	3	3	Isolate
9	2	2	2	2	1	Rejectee
10	2	3	2	3	2	Rejectee
11	3	4	5	4	3	Acceptee
12	2	3	3	3	2	Isolate
13	3	3	3	3	3	Isolate
14	3	4	3	3	2	Isolate
15	3	3	3	3	3	Isolate
16	1	4	2	3	3	Neglectee
17	4	3	4	4	2	Acceptee
18	3	4	4	3	3	Isolate
19	3	2	3	3	3	Isolate
20	3	3	3	3	3	Isolate
21	2	2	2	3	3	Rejectee
22	3	3	3	3	3	Isolate
23	4	4	3	3	3	Isolate
24	4	3	3	4	3	Isolate
25	4	3	4	3	3	Isolate
26	5	4	4	3	4	Acceptee
27	4	3	4	3	3	Isolate
28	1	1	2	2	2	Rejectee

From this matrix we have the following table:

TABLE 2.9 SHOWING SERIAL NUMBER OF STUDENTS WHO ARE FOUND IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE

Sociometric Category	Serial Number of Students.	Number of Students	Percentage
1. Acceptee	1,6,11,26	4	14.28
2. Rejectee	9,10,21, 28	4	14.28
3. Isolate	2-5,6,7,12,13, 15,18-20, 22-25, 27	17	60.72
4. Neglectee	14, 17, 18	3	10.72
Total		28	100.00

TABLE 3 SHOWING NUMBER OF STUDENTS IN DIFFERENT CATEGORIES ON SOCIO-METRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Sl. No.	Sociometric Category	Sociometric Test	Five-point Liking Scale
1	Acceptee	11(39.28%)	4(14.28)
2	Rejectee	7(25.00)	4(14.28)
3	Isolate	4(14.29)	17(60.72)
4	Neglectee	6(21.43)	3(10.72)
	Total	28(100.00)	28(100.00)

Interpretations

1. Only 4(12.28%) students are accepted as a whole taking into consideration the feelings of all teachers together. Strange it is that 4(14.28%) students are also rejected. Again 17(60.72%) students are also isolated i.e. towards these students, teachers are found to possess indifferent feelings. We can well imagine the poor state of Teacher-Pupil Relationship in this class. Students are not liked, are not accepted and thus the very fundamental bases of any interpersonal relationships are non-existent.

2. On the Sociometric Test, we have taken a student in acceptee sociometric category even when a student gets even a single acceptance choice from any one of the five teachers. Obviously, even with this much liberal criteria, we could enlist only 11(39.28%) students. This number is further reduced to only 4 (14.228%) when we make categorization on the basis of ratings of all teachers. This

means students are found to have been neither accepted by individual teachers nor have they been accepted by the combined feelings of all teachers.

3. However, we have 7 students in the rejectee category on Sociometric Test, but only 4 students are adjudged as rejected on five-point Liking Scale.

4. There are 17(60.72%) students who have been found to be placed in isolate sociometric category. This means towards 60% students, teachers cherish simply indifferent feeling.

These points further substantiate that there is a lack of teacher-pupil relationship.

From Tables 2.5 and 2.9 we find the following students' falling in the same sociometric category both on Sociometric Test and five-point Liking Scale.

TABLE 3.1 SHOWING TEACHERS PLACING STUDENTS IN THE SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST & FIVE-POINT LIKING SCALE

Sl. No.	Sociometric Category	Serial Number of Students.	Total Students
1	Acceptee	1, 6, 11, 26	4
2	Rejectee	9, 21	2
3	Isolate	7, 23, 27	3
4	Neglectee	17	1
	Total		10

We find only 4 students are accepted by individual as

14		✗				✓	✓			✓					✗		✗			
15			✓						✗	✓			✓	·	✗			✗		
16	✗	✗	✗						✓		✓			✓						
17	✗		✓			✓			✓						✗			✗		
18	✗	✗			✓					✓					✓				✗	
19	✗		✗			✓	✓		✓									✗		
20	✓					✓	✓		✗						✗			✗		
21	✗	✗	✗			✓			✓											
22		✗	✗		✓					✓					✓		✗			
23	✗		✗						✓	✓					✓			✗		
24	✓						✓			✓				✗			✗		✗	
25			✗							✓	✓		✓				✗	✗		
26	✗		✗		✓					✓				✗					✗	
27	✓					✗				✓	✓				✗		✗			
28	✗	✗	✗				✓		✓	✓										

SCHOOL No. B-II

SOCIOMETRIC MATRIX OF PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP

TEACHER S. NO.	1				2				3										
ACTIVITIES NO. / PUPIL S. NO.	$\frac{1}{4}$	$\frac{2}{5}$	$\frac{3}{6}$							$\frac{2}{5}$			$\frac{1}{4}$	$\frac{2}{5}$			$\frac{1}{4}$	$\frac{2}{5}$	
1	✗		✗							✓	✓		✓					✗	
2		✗	✗						✓		✓			✓			✗		
3	✗		✗						✓		✓			✓				✗	
4	✓					✗				✓	✓		✗						✗
5		✗	✗				✓		✓				✗					✓	
6	✓	✗					✓		✗		✗							✓	
7	✓	✗					✓							✓			✗		✗
8	✓						✓			✓					✗		✗	✗	
9	✗		✗			✓	✓		✓									✗	
10	✗	✗	✗						✓	✓	✓								
11			✗						✓		✓			✓			✗	✗	
12	✗									✓	✓		✓		✗			✗	
13	✗				✓		✓			✓					✗			✗	

well as all teachers. But there are 5 students who are not accepted by any teacher. We will make use of this table in the analysis in our subsequent chapters. Here it would suffice to say that for 10(35.71%) students, there is a perfect agreement among teachers regarding liking and disliking them.

Part B-2 Analysis of Pupil-Teacher Relationship in School B-2.

From the sociometric matrix of Pupil-Teacher Relationship in school B-2, we have the followint table:

TABLE 3.2 SHOWING CHOICES RECEIVED BY TEACHERS ON SOCIOMETRIC TEST FROM STUDENTS

Teacher Number	Number of Choices Received	
	Acceptance	Rejection
1	9(10.71)	40(47.62)
2	21(25.00)	2(2.38)
3	39(46.43)	4(4.77)
4	12(14.29)	12(14.28)
5	3(3.57)	26(30.95)
Total	84(100.00)	84(100.00)

Interpretations

1. All teachers get both acceptance as well as rejection choices—it means all are liked as well as disliked by students.

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—2
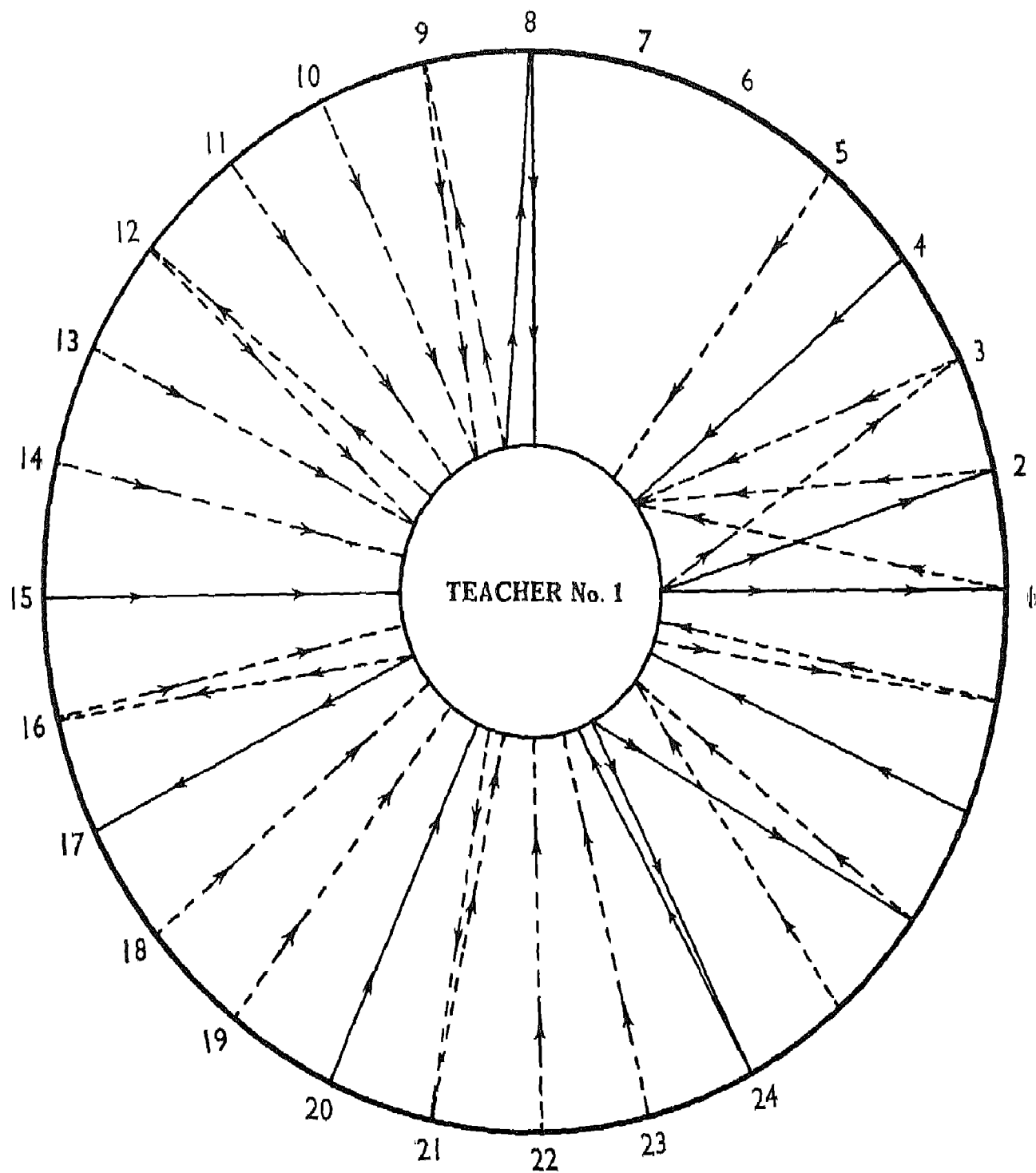
ACCEPTANCES

REJECTIONS

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—2

ACCEPTANCES

REJECTIONS

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—2
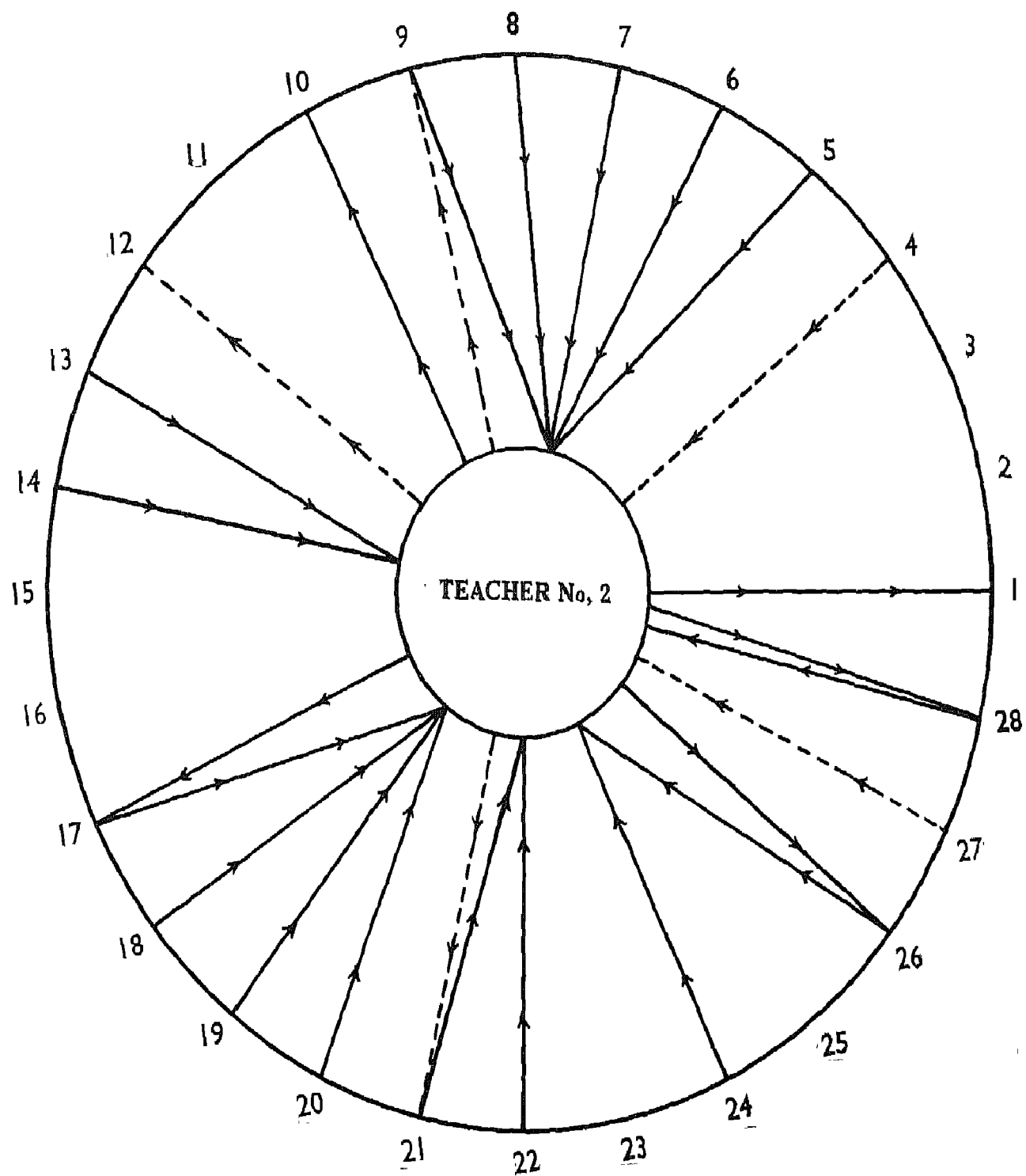
ACCEPTANCES

REJECTIONS

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—2
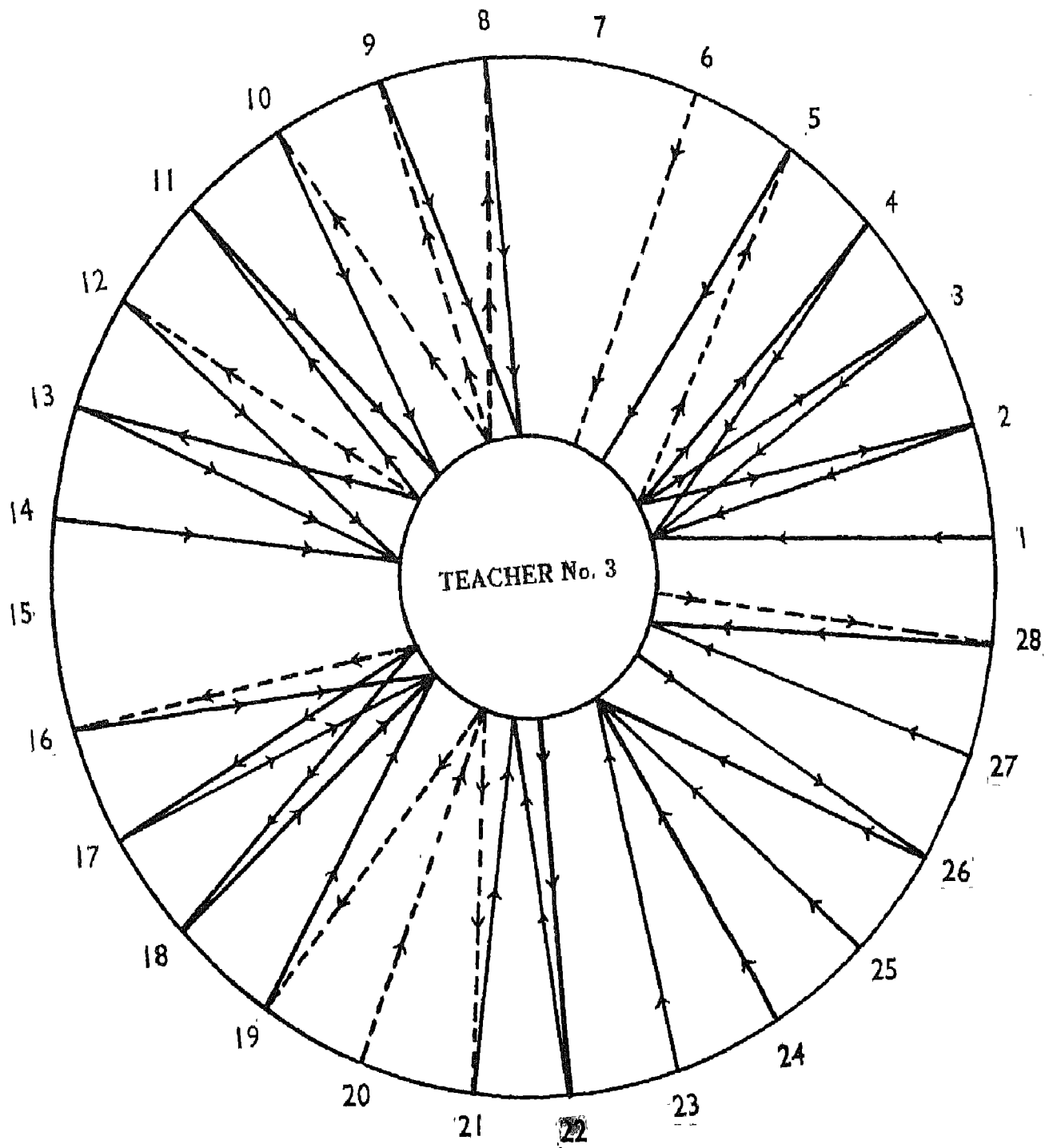
ACCEPTANCES

REJECTIONS
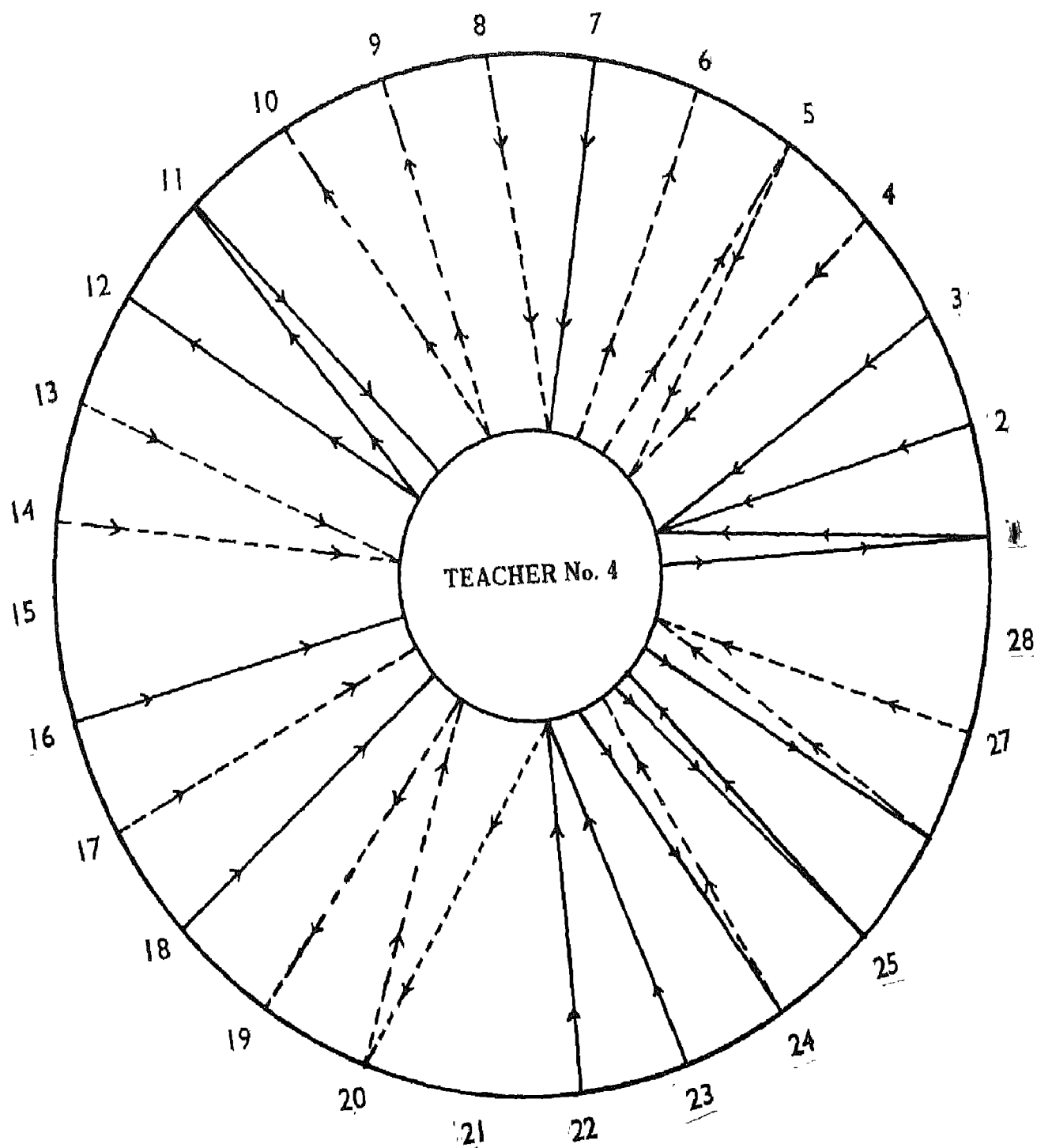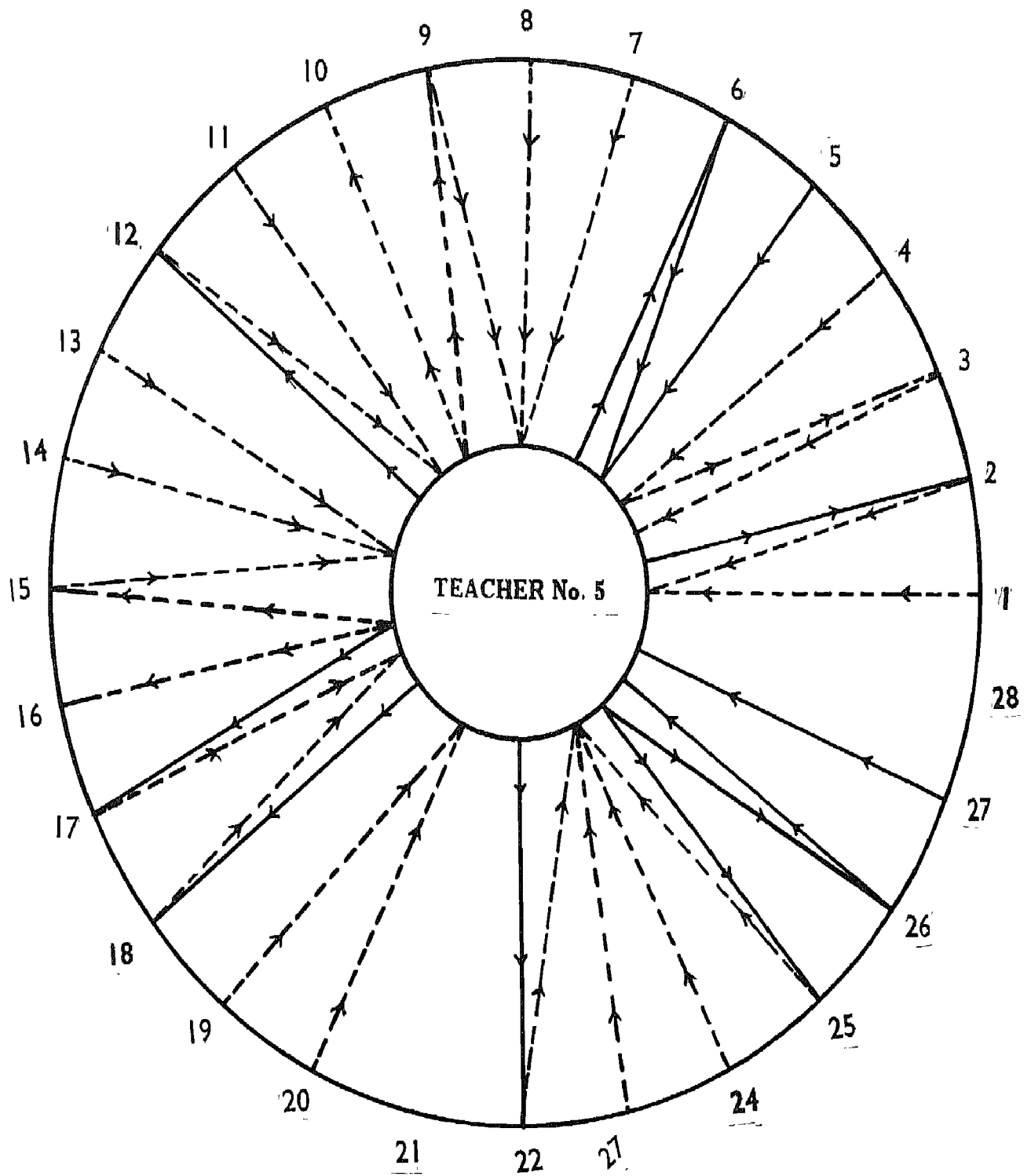
SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL B—2
TEACHER No. 5
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
27
24
25
26
27
28
ACCEPTANCES
REJECTIONS

2. Teacher No. 1 gets 40(47.62%) rejection choices and only 9 (10.71%) acceptance choices. We can interpret from this that this teacher is disliked by students.

3. Similarly teacher number 5, can well be said as having been found disliked by students who get only 3(3.57%) acceptance but 26(30.95%) rejection choices.

4. Teacher number 4, can hardly be said to be accepted by students. He receives equal number-12(14.29%) choices both in acceptance as well as rejection categories.

5. Teachers number 2 and 3, can well be said to be accepted by students. They get 21(25.00) and 39(46.43%) acceptance choices and 2(2.38%) and 4(4.77%) rejection choices respectively.

The above analysis indicates that out of 5 teachers only 2 teachers are accepted. Again 2 teachers are rejected and towards 1 teacher, students are found to have indifferent feelings.

SOCIOGRAMS

From the sociometric matrices of Teacher-Pupil and Pupil-Teacher Relationships, we have drawn 5 Sociograms - - one for each individual teacher showing the choices received from and given by him to students.

In part B-1, we have discussed Teacher-Pupil Relationship. Here we study Pupil-Teacher Relationship. We have the following table from the five Sociograms.

TABLE 3.3 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS ON DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST IN SCHOOL B-2.

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	4,8,15,20 24,27	6 (21.43%)	1-3,5,9-14,16,18, 19,21-23, 25,26,28	19 (67.86%)	6,7,17	3 (10.71%)	28 (100%)
2	5-9,13,14 17-22,24, 26,28	16 (57.14%)	4,27	2 (7.14%)	1-3,10-12 15,16,23 25	10 (35.72%)	28 (100%)
3	1-5,8-14 16-19 21-28	24 (85.72%)	6,20	2 (7.14%)	7, 15	2 (7.14%)	28 (100%)
4	1-3,7,11, 16,18,22, 23,25	10 (35.72%)	4,5,8,13, 14,17,20, 24,26,27	10 (35.72%)	6,9,10, 12,15,19 21,28	8 (28.56%)	28 (100%)
5	5,6,26	3 (10.71%)	1-4,7-9, 11-15, 17-20, 22-25,27	21 (75.00%)	10,16,21,28	4 (14.29%)	28 (100%)

Interpretation

The interpretations from this table go to substantiate the interpretations made for Table 3.2 on the basis of number of choices received by individual teachers.

1. Teacher numbers 2 and 3 are liked by 57.14% and 85.72% teachers and each is disliked by 7.14% students only. We can infer from this that only these two teachers are accepted by students.

2. Teacher numbers 1 and 5 are disliked by 19(67.86%) and 21(75.00%) students respectively. They are liked by only 6(21.43%) and 3(10.71%) students. We can say, these two teachers are essentially disliked by students.

3. Teacher number 4 is given both acceptance and rejection choices by 10(35.72%) students. He is isolated by 8(28.56%) students. We can say that students have indifferent feelings for him.

In conclusion we say, Teacher numbers 1 and 5 are rejected, 2 and 3 are accepted and teacher number 4 is isolated by students. In brief, only 40% teachers are accepted.

From the five sociograms, we have the following additional information.

TABLE 3.4 SHOWING RECIPROCAL OPPOSITE AND NON-RESPONSIVE CHOICES RECEIVED BY TEACHERS FROM STUDENTS.

Tr. No.	Choices made by teachers		Mutual Accept	Mutual Reject	Reject for Accept	Accept for Reject	Non-Responsive
	Accept	Reject					
1	6	6	2	5	3	1	1
2	5	3	3	-	-	2	3
3	9	9	9	-	-	9	-
4	7	5	3	2	2	-	5
5	7	6	2	3	6	-	2

Interpretation

1. Teacher number 3 presents an ideal position. He establishes all the 9 mutual acceptance choices. And the students whom he had given rejection choices, give him acceptance choices. This means he is not only liked by the students whom he himself likes but he is also liked by students whom he does not like.

2. Teacher number 1, gets five mutual rejection choices and only 2 mutual acceptance choices. He gets 3 rejection choices for his acceptance choices. All this goes to restate that he is a teacher rejected by his students.

3. Teacher number 2, gets 3 mutual acceptance choices and 2 students give him accpptance choices even though he had given them rejection choices. He gets neither mutual rejection choices nor any rejection choices against his acceptance choices. All this is an evidence of the acceptance of this teacher by his students.

4. Teacher number 5, gets only 2 mutual acceptance choices, but gets 3 mutual rejection choices and 6 rejection choices for his acceptance choices. This is again a good proof that this teacher is not liked by his students.

5. Teacher number 4, gets 3 mutual acceptance choices only. But he gets 2 mutual rejection choices and 2 students give him rejection choices in response to his two acceptance choices. From this we can infer that the teacher is not accepted very much.

Supplementary information on five-point Liking Scale regarding Pupil-Teacher Relationship in School B-2.

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP IN SCHOOL B-2.

Rater St. No.	Ratees - Teachers' Serial Numbers				
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	1	5	5	4	3
2	2	5	5	4	2
3	1	4	4	4	2
4	2	3	4	5	3
5	4	5	4	4	3
6	5	5	4	4	5
7	3	4	4	5	3
8	5	5	4	4	3
9	3	4	5	1	2
10	1	2	2	2	1
11	1	3	5	4	2
12	3	4	5	5	3
13	4	5	5	5	4
14	3	5	5	4	3
15	3	4	5	4	5
16	1	5	5	5	1
17	3	4	5	5	2
18	2	4	4	4	3
19	5	3	3	3	1
20	5	5	5	5	5
21	1	3	4	3	1
22	2	4	5	4	3
23	2	5	5	5	4
24	3	5	5	5	4
25	3	5	5	4	1
26	1	4	5	5	4
27	1	1	5	4	1
28	2	5	5	4	4

As categorized earlier for school B-1, we take the student as accepting a particular teacher if he rates him at higher scale value (5 & 4). Similarly, a teacher is taken to be rejected by the student if he rates him in the lower scale value (2 & 1) and a student is taken to be indifferent towards the teacher if he rates him at the middle scale value i.e. 3.

We arrive at the following table from the above matrix.

TABLE 3.5 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL B-2.

Tr. Sl. No.	Acceptance by	NUmber of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	5,6,8,13,19 20	6 (21.43%)	1-4,10,11, 16,18,21-23,26-28	14 (50.00%)	7,9,12,14, 15,17,24, 25	8 (28.57%)	28 (100%)
2	1-3,5-9,12-18,20,22-26 28	22 (78.57%)	10, 27	2 (7.14%)	4,11,19, 21	4 (1 4.29%)	28 (100%)
3	1-9,11-18, 20-28	26 (92.86%)	10	1 (3.57%)	19	1 (3.57%)	28 (100%)
4	1-8,11-18, 20,22-28	24 (85.71%)	9, 10	2 (7.14%)	19, 21	2 (7.14%)	28 (100%)
5	6,13,15,20 23,24,26, 28	8 (28.57%)	2,3,9-11, 16,17,19, 21,25,27	11 (39.29%)	1,4,5,7, 8,12,14, 18,22	9 (32.14%)	28 (100%)

TABLE 3.6 SHOWING TEACHERS GETTING SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL B-2

Tr.Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	8,20	2 (7.14%)	1,2,3,10,11, 16,18,21-23, 26,28	12 (42.86%)	7, 17	2 (7.14%)	14 (50%)
2	5-9,13,14,17 18,20,22,24, 26,28	14 (50%)	27	1 (3.57%)	11	1 (3.57%)	16 (57.14%)
3	1-5,8,11-14 16-18,21-28	21 (75%)	-	-	-	-	21 (75%)
4	1-3,7,16,18, 22,23,25 ,11	10 (35.72%)	-	-	19,21	2 (7.14%)	12 (42.86%)
5	6, 26	2 (7.14%)	2,3,9-11, 16,17,19, 25, 27	10 (35.72%)	-	-	12 (42.86%)

Interpretation

1. In Table 3.5 we find, teachers number 1 and 5 are rejected by 14(50%) and 11(39.29%) students. They are accepted by only 6(21.43%) and 8(28.57%) students. The number of students disliking them is more than the number of students accepting them. We can say these teachers are not accepted by students.

2. From Sociometric Test, we had found only teachers number 2 and 3 as accepted by students but here we find teacher number 4 too as accepted by students. This necessitates that we study further the students placing teachers in different sociometric categories both on Sociometric Test and five-point Liking Scale.

From Tables 3.3 and 3.5 we arrive at Table 3.6.

1. We find clear-cut liking of teacher No. 3 by 75% students.

2. Similarly, teachers number 1 and 5 are found to be disliked by 12 and 10 students respectively. Each one is liked by only 2 students. This again substantiates that they are disliked by students.

3. This table supplements the previous information that teacher No. 2 is liked by 50% students. But teacher number 4 is liked by less than 14(50%) students i.e. only by 10(35.56%) students. So, the previous interpretation holds good that students cherish indifferent feelings for teacher number 4.

STUDENT NO.		1			2			3			4			5			[illegible]			7			8			9		
ACTIVITIES NO. TEACHER S. NO.		1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6
I	1		✓	✗							✓																	
	2				✓																							
	3								✓				✓	✗														
II	1			✗										✗														
	2						✗																					
	3																				✓	✓						
	1	✗	✗	✗					✓																			
	2																				✓							
	3					✗	✗																					
IV	1	✗		✗											✗													
	2		✗											✗		✗												
	3																											
V	1	✗	✗	✗																								
	2																											
	3				✗							✓			✗	✗							✓					[illegible]

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G-1

Tr. 5 Tr. 4 Tr. 1 Tr. 2 Tr. 3

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 24 25

PART-C - ANALYSIS OF TEACHER-PUPIL AND PUPIL-TEACHER RELATIONSHIPS IN GIRS' SCHOOL G-1.

Sample The sample from this school constitutes a section of the tenth class of 25 students and 5 teachers teaching different subjects to these students.

We divide this Part-C in the following two sub-parts:

Part C-1 Analysis of Teacher-Pupil Relationship

Part C-2 Analysis of Pupil-Teacher Relationship

Part C-1 Analysis of Teacher-Pupil Relationship in Girls' School G-1.

From the Sociogram of Teacher-Pupil Relationship arrived at from Sociometric matrix, we derive the following sociometric table:

TABLE 3.7 SHOWING TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN GIRLS' SCHOOL G-1.

Tr. No.	Acceptance choices given to Sl. No. of students.	Total No. of students	Rejection choices given to SL. No. of students.	Total No. of students
1	2,3,4,11,18,19	Six	5,14,17,23,24	Five
2	7,11,12,16,18,20	Six	1,2,5,13,15,17, 23,24,25	Nine
3	3,7,11,12,15,16, 18	Seven	1,2, 10,23	Four
4	11,18, 20	Three	1,5,10,21	Four
5	4,8,9,11,18	Five	1,2,5, 21	Four

Interpretation

1. None of the five teachers has given 9 names of students whom they would have liked to associate with in sociometric activities. It is only one teacher - Teacher number 3, who has given maximum 7 names of students. Total names of liked students by 5 teachers comes to 27 only. It means on an average 5.4 students are liked (accepted) by teachers in the class of 25 students.

2. All the teachers have given names of students whom they would not like to associate with in sociometric activities. Surprisingly, we find teacher No. 2 has given 9 names whom she dislikes. None of the teachers has given 9 names whom she likes. We find 26 names given by 5 teachers in rejection category. On an average, it is found that 5.2 students are disliked by each teacher.

3. A limited number of students are liked by each teacher and an equal number of students are also disliked by each teacher. All this establishes our hypothesis that there is a definite lack of teacher-pupil relationship in this school too.

From Table 3.7, we have the table showing students who are placed in only acceptee, rejectee, isolate or neglectee category on Sociometric Test from their teachers.

TABLE 3.3 SHOWING NUMBER OF STUDENTS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST IN SCHOOL G-1.

Sl. No.	Category	Serial Number of students.	Number	Percentage
1	Acceptee	3,4,11,18,19,7, 12,16,20,8,9	11	44.00
2	Rejectee	5,14,17,23,24,1, 13,25,10,21	10	40.00
3	Isolate	6, 22	2	8.00
4	Neglectee	2,15	2	8.00

Interpretations

1. We find only 11(44%) students who are given acceptance choice by one or more teachers. We say only 44% students are privileged to enjoy acceptance from their teachers while the remaining 56% students are deprived of these feelings from their teachers. We examine below with the help of sociogram as to what number of teachers like an acceptee student on sociometric test.

TABLE 3.9 SHOWING STUDENTS LIKED BY TEACHERS

Serial Number of Liked Students	Liked by Teacher Sl. No.	Liked by Number of Trs.
3	1, 3	2
4	1, 5	2
7	3	1
8	5	1
9	5	1
11	1,2,3,4 & 5	5
12	2,3	2
16	2,3	2
18	1,2,3,4 & 5	5
19	1	1
20	2 4	2

Total 24

We find on an average 2.18 teachers like a liked student. But there are only 11 students who are liked by this average number of teachers.

2. We have 10 (40%) students who get only rejection choices from their teachers. We can say that out of 56% students who are not accepted, there are 40% students who are directly rejected by teachers. We look into the number of teachers who dislike a disliked student.

TABLE 4.0 SHOWING STUDENTS DISLIKED BY TEACHERS

Serial Number of Disliked Student	Disliked by Tr. Sl. No.	Disliked by Number of Trs.
1	2,3,4 & 5	4
5	1,2,4 & 5	4
10	3 & 4	2
13	2	1
14	1	1
17	1 & 2	2
21	4 & 5	2
23	1,2 & 3	3
24	1 & 2	2
25	2	1 Total 22

We find on an average a student is disliked by 2.2 teachers. So, on an average the number of teachers disliking a student is more than the number liking them.

3. Only 44% students are accepted by one or more teachers. And 56% students enjoy no likings from any teacher. On an average the number of teachers disliking a student is more than the number liking him. All these points fairly determine the teacher-pupil relationship in

Analysis of ratings of teachers for their personal likings of students on five-point Liking Scale in School G-1.

TABLE 4.1 SHOWING NUMBER OF RATINGS MADE BY TEACHERS FOR THEIR PERSONAL LIKINGS OF STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALE

Tr. Sl. No.	Liking Scale Values			Total
	Higher (5 & 4)	Middle (3)	Lower (2& 1)	
1	11(44.00)	8(32.00)	6(24.00)	25(100.00)
2	7(28.00)	11(44.00)	7(28.00)	25(100.00)
3	7(28.00)	10(40.00)	8(32.00)	25(100.00)
4	11(44.00)	11(44.00)	3(12.00)	25(100.00)
5	12(48.00)	6(24.00)	7(28.00)	25(100.00)
Total	48(38.50%)	46(36.80)	31(24.80)	125(100.00)

Interpretation

1. None of the five teachers has rated 50% students on higher scale values which show teachers' likings of students. There are teachers number 1,4 and 5 who like 44%, 44% and 48% students respectively. But teachers number 2 and 3 have both liked only 7(28%) students. This shows the lack of likings of teachers for their students.

2. We find in all 48 students placed in higher scale values showing thereby on an average only 9.6 students receive acceptance from their teachers. But there are 77 students in all and on an average 15.40 students who receive no acceptance feelings from their teachers.

3. There are 46 students, on an average 9.20 students, who are placed in the middle scale value by each teacher.

4. Teacher number 3 has made ratings of higher scale

values for 7(28%) students only but have made ratings of lower scale values for 8(32%) students. This indicates about this teacher likes less number of students and dislikes more number of students.

Sociometric categories on the basis of ratings of teachers for their personal likings of students

As we have categorized earlier, we take the student as accepted if she receives 3 ratings of higher scale values; she is taken to be rejected if she receives 3 ratings of lower scale value; and she is placed in isolate category if she receives 3 ratings of middle scale value and finally if a student gets ratings of all scale values, she is categorized as neglected.

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF TEACHER-PUPIL RELATIONSHIPS IN SCHOOL G-1

Ratees St. Sl. No.	Ratees - Teachers' Serial Numbers					Sociometric category
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	
1	1	2	1	1	1	Rejectee
2	2	3	2	3	2	Rejectee
3	4	4	3	3	3	Isolate
4	5	4	3	4	4	Isolate
5	2	3	1	2	2	Rejectee
6	2	3	2	3	3	Isolate
7	4	5	4	5	5	Acceptee
8	4	3	4	3	5	Acceptee
9	4	3	4	4	5	Acceptee
10	3	3	3	4	4	Isolate
11	5	5	4	5	5	Acceptee
12	3	3	2	3	2	Isolate
13	3	2	2	3	3	Isolate
14	2	2	2	4	3	Rejectee
15	3	3	3	3	4	Isolate
16	4	4	3	4	3	Acceptee
17	2	3	3	4	4	Neglectee
18	5	4	4	5	5	Acceptee
19	3	3	3	1	2	Isolate
20	3	4	4	5	4	Acceptee
21	3	2	3	3	1	Isolate
22	4	2	3	3	1	Neglectee
23	4	1	2	3	3	Neglectee
24	3	1	3	3	5	Isolate
25	4	3	4	5	4	Acceptee

TABLE 4.2 SHOWING SERIAL NUMBER OF STUDENTS WHO ARE FOUND IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL G-1

Sl. No.	Sociometric Category	Serial Number of Students.	Number of Students	Percentage
1	Acceptee	4,7,8,9,11,16, 18,20,25	9	36.00
2	Rejectee	1,2,5, 14	4	16.00
3	Isolate	3,6,10,12,13,15, 19,21,24	9	36.00
4	Neglectee	17, 22, 23	3	12.00

TABLE 4.3 SHOWING NUMBER OF STUDENTS IN DIFFERENT CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Sl. No.	Sociometric Category	Sociometric Test	Five-point Liking Scale
1	Acceptee	11(44.00)	9(36.00)
2	Rejectee	10(40.00)	4(16.00)
3	Isolate	2(8.00)	9(36.00)
4	Neglectee	2(8.00)	3(12.00)

Interpretations

1. We had found 11(44%) students accepted by individual teachers. But taking the feelings of all teachers to-

gether we find only 9(36%) students accepted by teachers. In this way, we find 16(64%) students are not accepted by teachers. We can safely conclude that there is a lack of teacher-pupil relationship in this class.

2. On Sociometric Test, we find 10(40%) students as rejected by one teacher or the other. But, we have only 4% students as rejected by the teachers taking their feelings together. But here we have 9 (36%) students who are isolated on Liking Scale. This simply shows that students, who are found rejected on Sociometric Test, are found to have been isolated on Liking Scale. In both the instruments, these students enjoy no acceptance from teachers.

From Table 3.8 and Table 4.2, we find the following students have been found in the same sociometric categories both on the Sociometric Test and the five-point Liking Scale.

TABLE 4.4 SHOWING TEACHERS PLACING STUDENTS IN THE SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Sl. No.	Sociometric Category	Serial Number of Students.	Total Students
1	Acceptee	4,7,8,9,11,16,18 20	8
2	Rejectee	1,5, 14	3
3	Isolate	6	1
4	Neglectee	-	-

SCHOOL No. G-1

SOCIOMATRIC MATRIX OF PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP

TEACHER S. NO.		1				2												5		
PUPIL S. NO.		$\frac{2}{5}$	$\frac{3}{6}$			$\frac{2}{5}$			$\frac{1}{4}$	$\frac{2}{5}$	$\frac{3}{6}$		$\frac{1}{4}$	$\frac{2}{5}$			$\frac{1}{4}$	$\frac{2}{5}$	$\frac{3}{6}$	
1	✗	✓				✗					✗		✓						✓	
			✓			✓			✗		✗		✓	✗						
3			✓			✗	✗		✗				✓					✓		
4	✓					✗			✗		✗			✓					✓	
5	✓		✓							✓			✗	✗					✗	
6		✓				✗			✓		✓		✗						✗	
7		✓			✓				✗					✗	✓				✗	
8			✓		✗					✗			✓					✓	✗	
9		✓					✓				✗		✓				✗	✗		
10	✗	✗									✗		✓		✓			✓		
11		✗					✗		✓				✗						✓	
12		✓	✓			✓							✓				✗	✗	✗	

For 12(48%) students, we find perfect information as to who are accepted or rejected or isolated. We will make use of this information in the analysis in our subsequent chapters.

Part C-2 Analysis of Pupil-Teacher Relationship in girls' school G-1.

From the sociometric matrix of Pupil-Teacher Relationship for girls' school G-1, we have the following table:

TABLE 4.5 SHOWING CHOICES RECEIVED BY TEACHERS ON SOCIOMETRIC TEST FROM STUDENTS

Teacher No.	Number of choices received	
	Acceptance	Rejection
1	27(36.00)	7(9.33)
2	5(6.67)	19(25.33)
3	6(8.00)	21(28.00)
4	22(29.33)	9(12.00)
5	15(20.00)	19(25.33)
Total	75(100.00)	75(99.99%)

Interpretation

1. All teachers get both acceptance as well as rejection choices. This means that all teachers are accepted as well as rejected by students.

2. Teacher number 1 gets 27(36%) acceptance choices and only 7(9.33%) rejection choices. So, on the whole we can

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—1
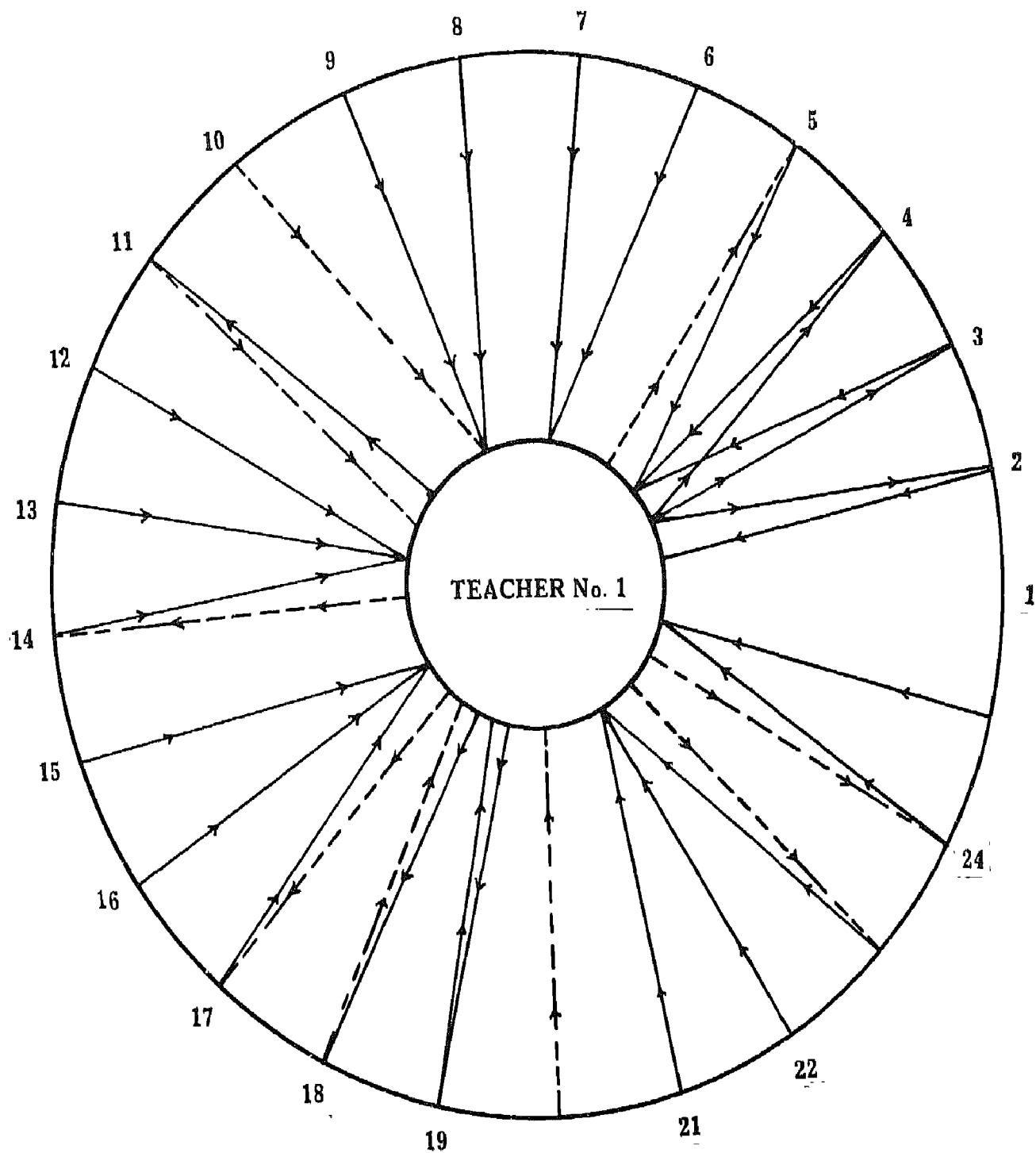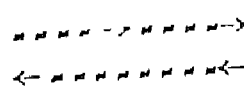
ACCEPTANCES

REJECTIONS

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—1

TEACHER No, 2

8 7 6 5 4 3 2 1 25 24 23 22 21 19 18 17 16 15 14 13 12 11 10 9
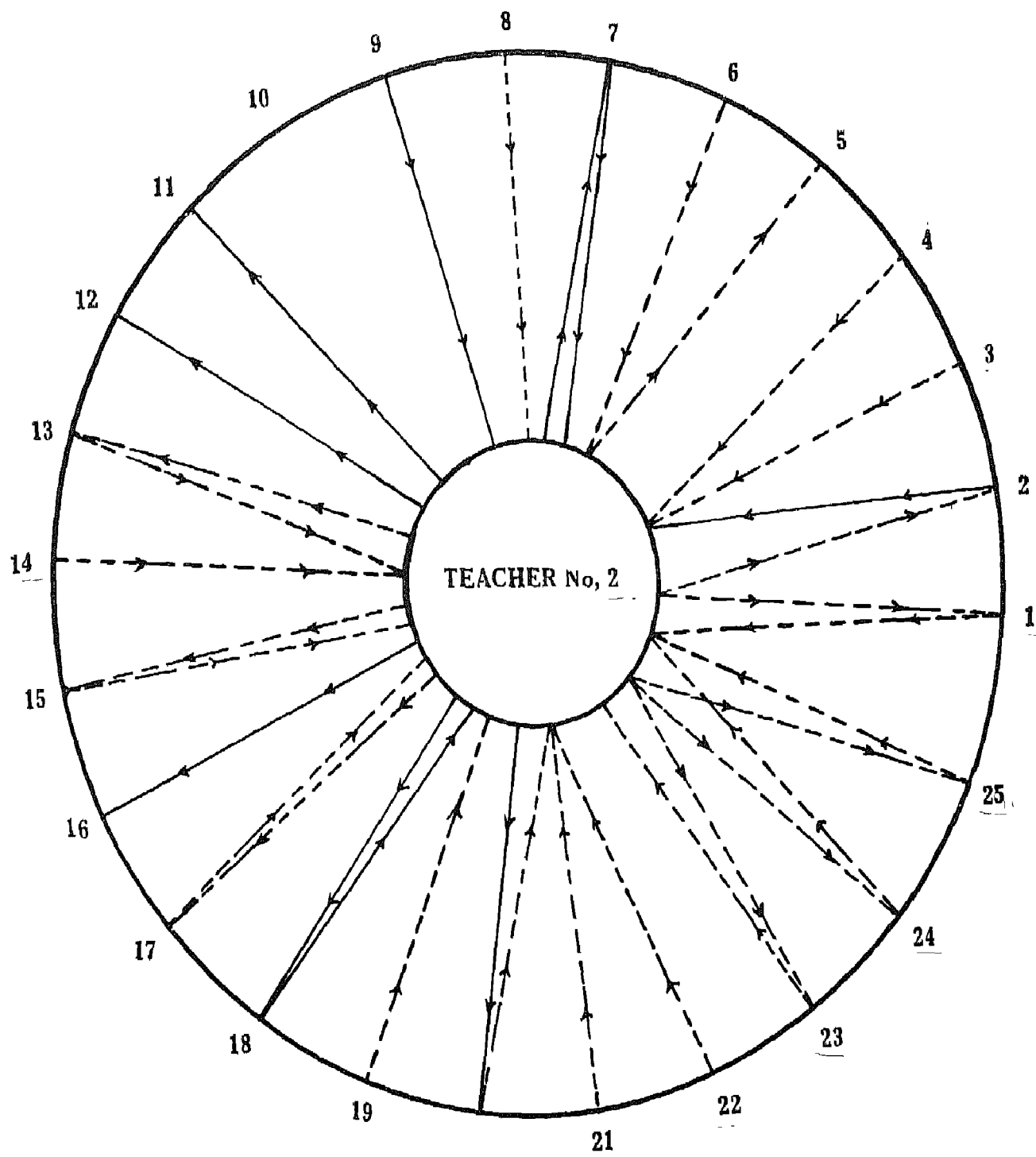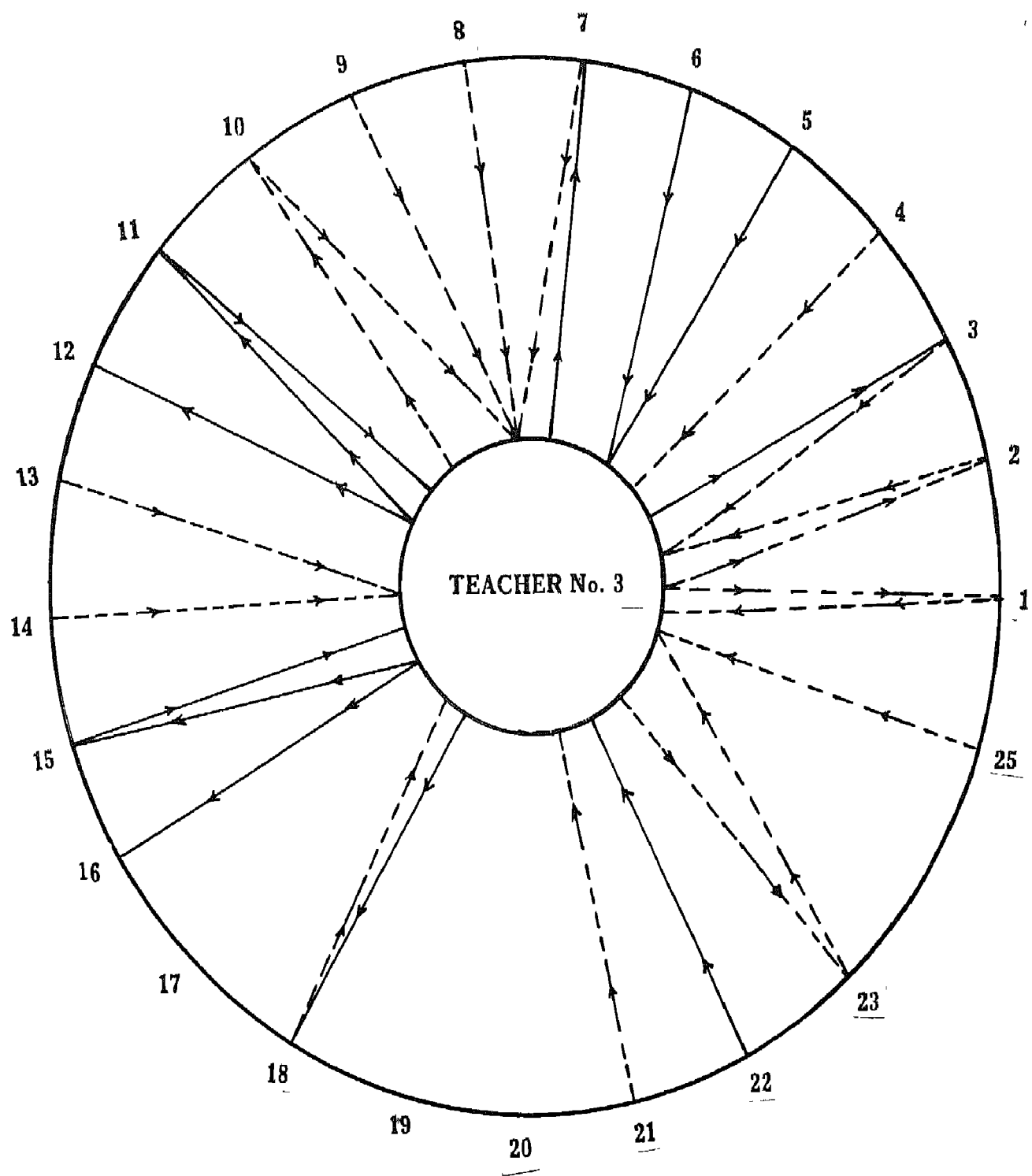
SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—1

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—I
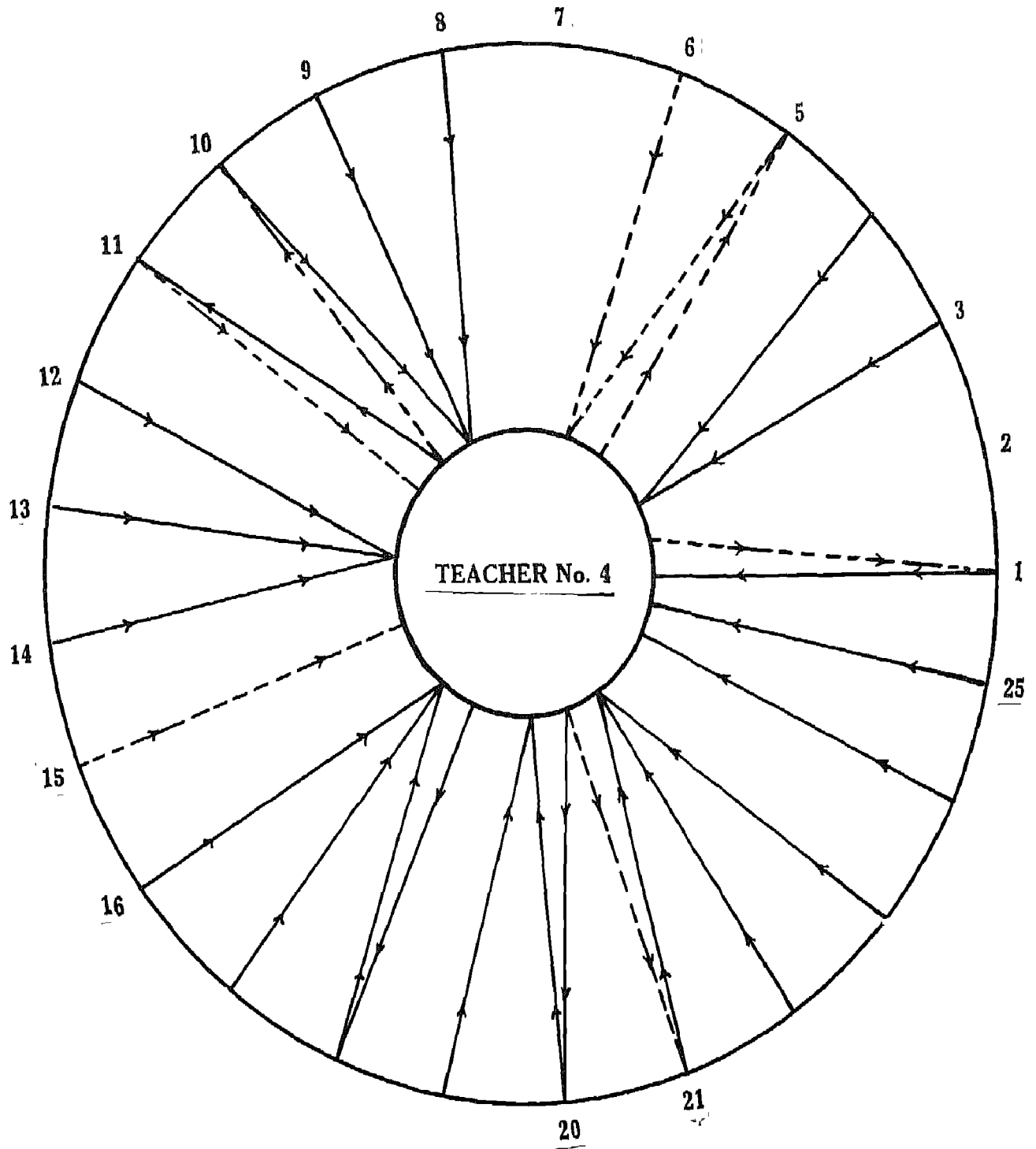
SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—1
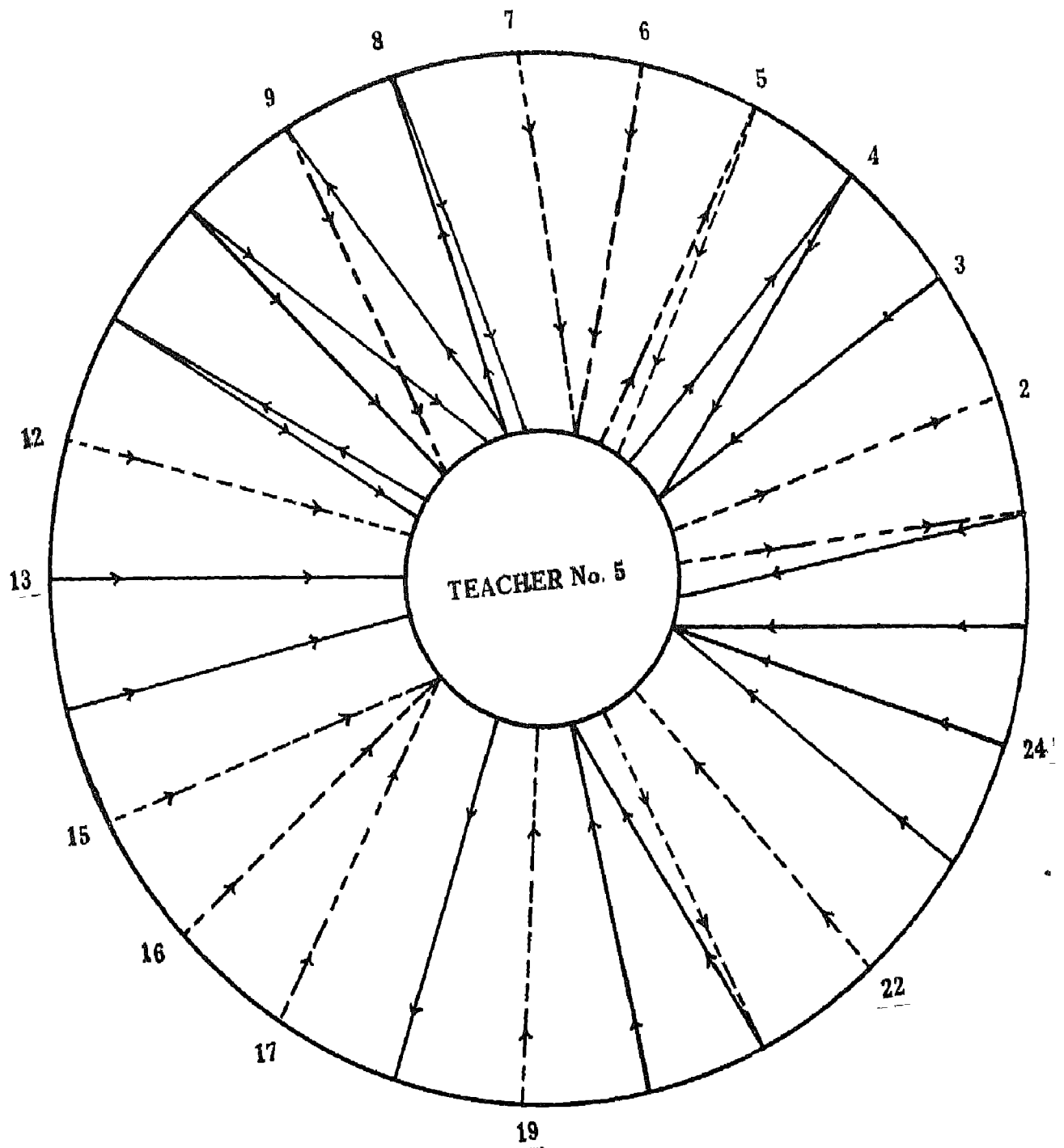
ACCEPTANCES

REJECTIONS

say that this teacher is accepted by students.

3. Teacher numbers 2 and 3 receive only 5(6.67%) and 6(8.00%) acceptance choices. They get 19(25.33%) and 21(28.00%) rejection choices from students respectively. We can well say, that these teachers are not being accepted by students.

4. Teacher number 4 gets 22(29.33%) acceptance and 9(12.00%) rejection choices respectively. We can say, this teacher is accepted by students.

5. Teacher number 5 gets 15(20%) acceptance and 19(25.33%) rejection choices respectively. Obviously, this teacher gets less number of acceptance choices and more number of rejection choices. We can hardly say that this teacher is being accepted by students.

In conclusion we can say only two teachers i.e. serial Nos. 1 and 4, are accepted by students.

Sociograms

From the sociometric matrices of Teacher-Pupil and Pupil-Teacher Relationships, we have five sociograms eahh-one for each individual teacher showing the choices received from and given to students by him.

In Part C-1, we have discussed Teacher-Pupil Relationship; here we will study Pupil-Teacher Relationship. We have the following table from the five sociograms.

TABLE 4.6 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS ON DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST IN GIRLS' SCHOOL G-1.

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	2-9,12-17,19 21-25	20 (80%)	10,11,18,20	4 (1 6%)	1	1 (4%)	25 (100%)
2	2,7,9,18	4 (16%)	1,3,4,6,8, 13-15,17, 19-25	17 (68%)	5,10,11,12 16	4 (16%)	25 (100%)
3	5,6,11,15, 22	5 (20%)	1-4,7-10,13 14,18,21,23 25	14 (56%)	12,16,17,19 20,24	6 (24%)	25 (100%)
4	1,3,4,8-10 12,13,14, 16-23,25	18 (72%)	5,6,11,15, 24	5 (20%)	2,7	2 (8%)	25 (100%)
5	1,3,4,10,11, 13,14,20,21, 23,24,25	12 (48%)	5,6,7,9,12, 15,16,17, 19,22	10 (40%)	2,8, 18	3 (12%)	25 (100%)

Interpretation

1. Teacher number 1 and teacher number 4 are accepted by 80% and 72% students respectively. They are disliked by 16% and 20% students respectively. We can infer from this that these two teachers are accepted by students.

2. Teacher number 2 and teacher number 3 are accepted only by 16% and 20% students respectively. They are disliked by 17(68%) and 14(56%) students respectively. We can interpret that these two teachers are rejected by students.

3. Teacher number 5 is accepted by 12(48%) students. He is disliked by 10(48%) students. Again this teacher is isolated by 3(12%) students. As a whole we can say that this teacher is not accepted by students.

4. Two teachers i.e. teacher number 1 and 4 are accepted. Two teachers 2 and 3 are rejected by students. Students can be said to possess indifferent feelings for teacher number 5. In brief 40% teachers are accepted and 60% teachers are not accepted. From this we can say, there is a lack of pupil-teacher relationship in this class too.

From the five sociograms, we have the following information.

TABLE 4.7 SHOWING RECIPROCAL, OPPOSITE AND NON-RESPONSIVE CHOICES RECEIVED BY TEACHERS FROM STUDENTS IN SCHOOL G-1.

Tr. No.	Choices made by teachers		Mutual Accept	Mutual Reject	Reject for Accept	Accept for Reject	Non-Responsive
	Accept	Reject					
1	6	5	4	-	2	5	-
2	6	9	2	7	1	1	4
3	7	4	2	4	3	-	2
4	3	4	2	2	1	3	-
5	5	4	2	-	1	2	4

Interpretation

1. For 27 acceptance choices made by teachers they get 12(44.44%) acceptance choices i.e. less than 50% choices are found to establish mutual acceptance among teachers and pupils.

2. For 26 rejection choices made by teachers, they get 12(44.15%) rejection choices. Obviously there are more percentage of rejection choices than acceptance choices. We can infer from this that bonds of rejection among teachers and pupils are more than these are found

for acceptances. This again indicates lack of teacher-pupil relationship.

3. Teacher number 1 who was found as accepted by students, gets 4 out of 6 mutual acceptance choices. Moreover all his 5 rejection choices are responded with acceptance choices by students. This substantiates her acceptance by students.

4. Again teacher number 4, gets 2 out of 3 mutual acceptance choices. Again for his 4 rejection choices, there are 3 acceptance choices from students. This again confirms his acceptance by teachers.

5. Similarly, teachers number 2 and 3 who were found as rejected, get 7 for 9 and 4 for 4 rejection choices. But they get only 2 each mutual acceptance choices. This again goes to confirm that they are rejected by teachers.

6. Teacher number 5 gets 2 mutual acceptance as well as 2 rejection choices. Moreover 4 of her choices remain non-responsive from students. From this we can infer that students possess indifferent feelings for this teacher.

<u>Supplementary information on five-point Liking Scale regarding Pupil-Teacher Relationship in School G-1.</u>

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP

Ratees St. Sl. No.	Ratees - Teachers' Serial Numbers				
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	5	4	3	1	2
2	5	3	2	1	4
3	5	3	4	1	2
4	5	3	1	3	4
5	5	4	4	1	2
6	4	5	5	3	4
7	5	5	5	4	5
8	3	5	3	5	4
9	5	5	4	4	5
10	2	4	3	5	5
11	5	5	5	5	5
12	3	4	4	2	3
13	4	5	4	5	5
14	3	3	2	4	5
15	5	3	2	2	4
16	5	3	5	3	3
17	5	5	5	3	4
18	1	3	2	5	4
19	5	5	5	5	5
20	4	4	4	5	5
21	5	4	3	2	1
22	5	4	4	2	2
23	4	3	8	4	5
24	5	2	5	1	5
25	5	3	4	5	4

We define acceptance by the scale-values 4 &5; rejection by the scale values 1 & 2 and indifference by the scale values 3. Then, from the above matrix, we arrive at the following tables.

TABLE 4.8 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS ON DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL G-1.

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	1-7,9,11,13, 15-17,19-25	20 (80%)	10,18	2 (8%)	8,12, 14	3 (12%)	25 (100%)
2	1,17,19-22, 5-13	15 (60%)	24	1 (4%)	2-4,14-16, 18,23,25	9 (36%)	25 (100%)
3	3,5,6,7,9, 11-13,16,17, 19,20,22,24, 25	15 (60%)	2,4,14,15, 18	5 (20%)	1,8,10,21, 23	5 (20%)	25 (100%)
4	7-11,13,14, 18-20,23,25	12 (48%)	1-3,5,12, 15,21,22, 24	9 (36%)	4,6,16,17	4 (16%)	25 (100%)
5	2,4,6-11, 13-15,17-20,23-25	18 (72%)	1,3,5,21, 22	5 (20%)	12,16	2 (8%)	25 (100%)

TABLE 4.9 SHOWING TEACHERS GETTING SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL G-1.

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	2-7,8,11,13, 15-17,19, 21-25	18 (72%)	10,18	2 (8%)	-	-	20 (80%)
2	7,9	2 (8%)	24	1 (4%)	16	1 (4%)	4 (16%)
3	5,6,11,22	4 (16%)	2,4,14, 18	4 (16%)	-	-	8 (32%)
4	8,9,10,13, 14,18-20 23,25	10 (40%)	5,15,24	3 (12%)	-	-	13 (52%)
5	4,10,11,13, 14,20,23-25	9 (36%)	5,22	2 (4%)	-	-	11 (44%)

Interpretation

1. From Table 4.8 it is quite obvious that 64% ratings fall in the higher scale value. It shows how strongly the halo effect influences the ratings of students. From Sociometric choices we had concluded that teachers number 1 and 4 are accepted and teachers number 2,3 are rejected. But here, it seems as if all teachers are accepted on the basis of sociometric categorization made by us.

We look into table numbers 4.6 and 4.8 simultaneously and arrive at Table 4.9 which may be interpreted as:

2. We find teacher No. 1 is accepted by students (72%).

3. Teacher Nos. 2 and 3 which are found rejected by students on Sociometric Test, are not found accepted or rejected by them on this table. So, we retain our previous information that they are rejected by students.

4. Teacher No. 4 is accepted by 10 i.e. 40% students. She has also been found accepted on Sociometric Test.
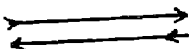
We find 44% students perfectly agreeing for teacher No. 5. We retain our finding that she is hardly accepted by students.
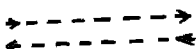
SOCIOMETRII

STUDENT NO.		1			2			3			4			5			6			7			8			9			10		
ACTIVITIES NO. / TEACHER S. NO.		1/4	2/5		1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6
I	1																✗							✓	✓						
	2																		✗	✗											
	3		✗								✓							✓										✓			
II	1		✓																												
	2					✗																									
	3																									✓			✗		
III	1					✓	✓																						✗		
	2																	✓													
	3																										✗				
IV	1																							✓							
	2																												✓		
	3					✓		✓									✗														
V	1																✗	✓			✗	✗			✓						
	2																						✓					✓			
	3				✗									✗																	

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G-2
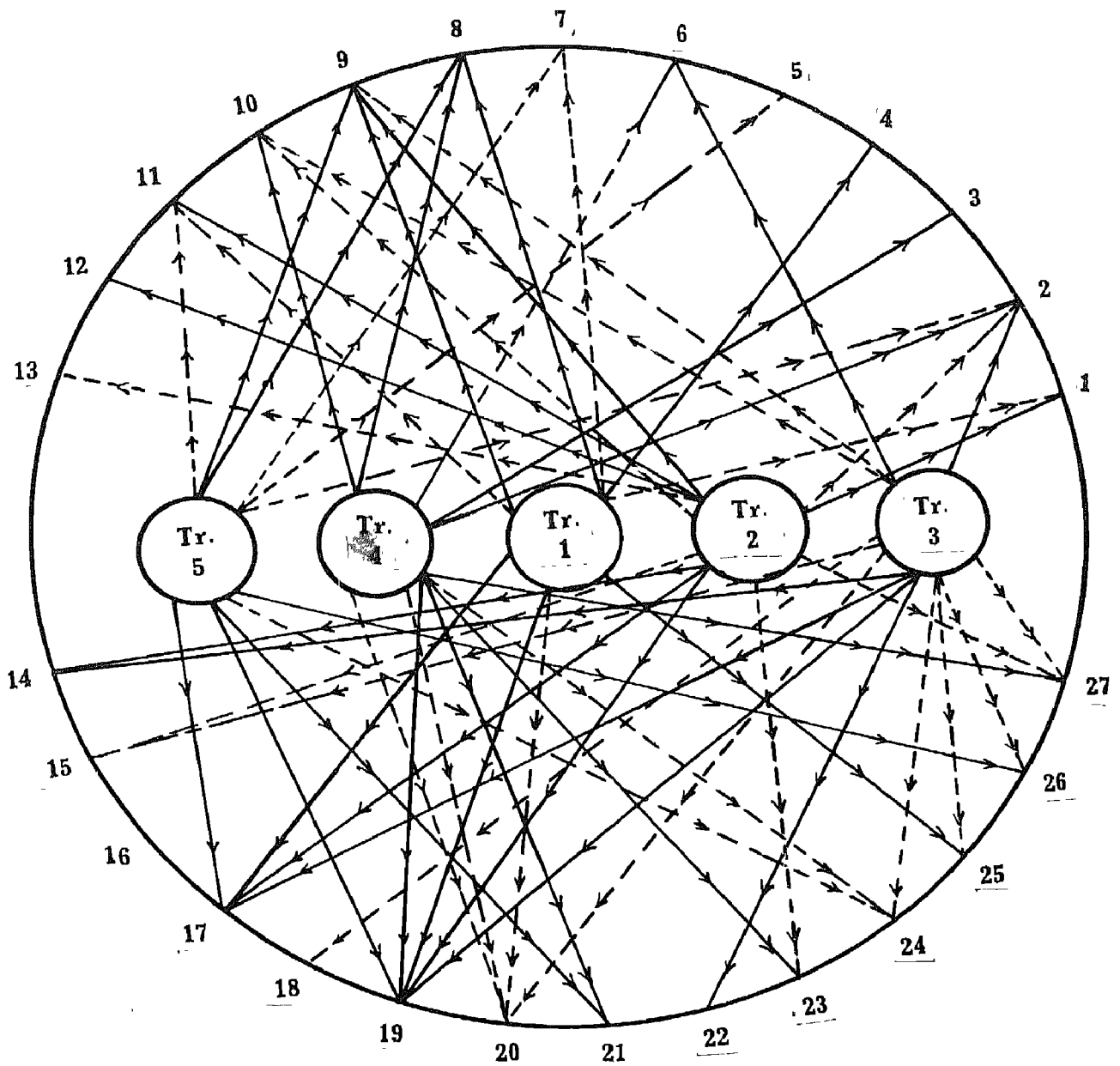
PART D ANALYSIS OF TEACHER-PUPIL AND PUPIL-TEACHER RELATIONSHIPS IN GIRLS' SCHOOL G-2.

Sample The sample from this school constitutes a section of the tenth class of 27 students and 5 teachers teaching different subjects to these students.

We divide this Part-D in the following two parts:

Part D-1 - Analysis of Teacher-Pupil Relationship.

Part D-2 - Analysis of Pupil-Teacher Relationship.

Part D-1 Analysis of Teacher-Pupil Relationship in girls' school G-2.

From the sociogram of Teacher-Pupil Relationship arrived at from Sociometric Matrix, we derive the following sociometric table:

TABLE 5.00 SHOWING TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN GIRLS SCHOOL G-2.

Tr. No.	Acceptance choices given to serial number of students.	Total students	Rejection choices given to serial number of students	Total students
1	4,8,9,17,19,25	Six	1,7,11,20	Four
2	1,9,11,12,14,17,19	Seven	2,10,13,15,23,27	Six
3	2,6,14,17,19,22	Six	9,10,15,18,20, 24-27	Nine
4	2,3,10,9,19,21,23 27	Eight	6,20,24	Three
5	8,9,17,19,21,26	Six	2,5, 7, 11,24	Five

Interpretation

1. From the class of 27 students none of the five teachers could name 9 students with whom they would like to associate in sociometric activities. They had to repeat a name to give their hundred per cent choices. This decidely goes to indicate that 9 choices allowed to teachers to express the names of students whom they liked, gave them full opportunity to express their likings. When they have failed to give 9 names, it can be inferred that their liking is limited to a small number of students i.e. even to less than 9 students.

2. Surprisingly, we find teacher number 3 has given 9 names of students whom she would not like to associate with in sociometric activities. However, on an average for 33 choices of acceptance, each teacher is found to like 6.6 students and on an average for 27 choices of rejection, each teacher is found to dislike 5.4 students. As compared to liked students, we have less number of disliked students although, the number of disliked students is not non-significant.

3. A limited number of students being liked and a significant number of students being disliked by teachers, fairly sustains our hypothesis that there is a lack of teacher-pupil relationship in this class too.

From table 5.00, we find out the students who get only acceptance, rejection, isolate or neglectee category on

TABLE 5.2 SHOWING STUDENTS LIKED BY TEACHERS

Serial number of liked student	Liked by teacher serial number	Liked by number of teachers
3	4	1
4	1	1
8	1, 4 & 5	3
12	2	1
14	2 & 3	2
17	1,2, 3 & 5	4
19	1,2,3,4 & 5	5
21	4 & 5	2
22	3	1 Total 19

There is only one student (serial number 19) who is liked by all teachers. On an average we find 2.11 teachers like a student. But again such fortunate students are 9(33.33%) only.

2. If there were 9(33.33%) students in acceptance category, we have 7(25.93%) students in rejection category. We cannot consider this number to be any way less as compared to number of students found in acceptance category. Here too, we find as to by how many teachers, on an average, a student is disliked.

TABLE 5.3 SHOWING STUDENTS DISLIKED BY TEACHERS

Serial number of disliked student	Disliked by teacher serial number	Disliked by number of teachers.
5	5	1
7	1 & 5	2
13	2	1
15	2 & 3	2
18	3	1
20	1,4 & 3	3
24	3,4 & 5	3
		Total 13

On an average we find a disliked student is disliked by 1.86 teachers. So, it is good that a disliked student is disliked by only 1.86 teachers whereas a liked student is liked by, on an average , 2.11 teachers.

Analysis of ratings of teachers for their personal likings of students on five-point Liking Scale in School G-2.

TABLE 5.4 SHOWING NUMBER OF RATINGS MADE BY TEACHERS FOR THEIR PERSONAL LIKINGS OF STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALE

Tr. Sl. No.	Liking Scale Values			Total
	Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)	
1	5(18.52)	19(70.37)	3(11.11)	27(100.00)
2	9(33.33)	18(66.67)	-	27(100.00)
3	9(33.33)	18(66.67)	-	27(100.00)
4	5(18.52)	19(70.37)	3(11.11)	27(100.00)
5	11(40.74)	15(55.56)	1(3.70)	27(100.00)
Total	39(28.89)	89(65.92)	7(5.19)	135(100.00)

Interpretations

1. We find teachers (numbers 1 and 4) place only 5(18.52%) students each in higher scale values. That means these two teachers have shown indifferent feelings towards 22(81.48%) students. We can well say that these two teachers possess indifferent feelings for majority of students.

2. Similarly, teachers number 2 and 3 have placed

9(33.33%) students each on higher scale values. That means 1/3 of students are liked by these two teachers but they have shown indifferent feelings towards 2/3 i.e. 18(66.67%) students.

3. However, we can say, teacher number 5 has placed hardly any more than 40% students in higher scale values.

4. We find in all 39(28.89%) students placed in higher scale values. On an average we find only 7.8 students in higher scale values. This shows 96(71.11%) i.e. on an average, 19.2 students get only indifferent feelings from each teacher.

All this clearly shows that there is a very small number of students who are indicated as liked by teachers and towards more than 2/3 students, teachers cherish indifferent feelings. Again, here all the five teachers are involved. All this clearly shows that there is a definite lack of teacher-pupil relationship in this class too.

Sociometric Categories on the basis of ratings of teachers for their personal likings of students.

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN SCHOOL G-2.

Ratees St. Sl. No.	Raters - Teachers' serial number					Sociometric category
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	
1	3	4	4	3	5	Acceptee
2	3	3	4	3	3	Isolate
3	3	3	3	3	3	Isolate
4	3	3	4	4	2	Neglectee

contd....

Ratees St. Sl. No.	Ratees - Teachers' serial number					Sociometric category
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	
5	2	3	4	3	3	Isolate
6	2	3	4	3	4	Neglectee
7	3	3	3	2	3	Isolate
8	5	4	3	4	5	Acceptee
9	3	4	3	3	5	Isolate
10	3	3	3	3	4	Isolate
11	3	4	3	3	3	Isolate
12	3	4	3	3	3	Isolate
13	3	3	3	3	3	Isolate
14	3	4	4	3	3	Isolate
15	3	3	3	3	4	Isolate
16	4	3	4	3	4	Acceptee
17	4	4	4	3	3	Acceptee
18	3	3	3	3	3	Isolate
19	4	4	4	4	5	Acceptee
20	2	3	3	2	3	Isolate
21	3	4	3	3	3	Isolate
22	3	3	3	3	3	Isolate
23	3	3	3	4	4	Isolate
24	3	3	3	2	3	Isolate
25	4	3	3	3	5	Isolate
26	3	3	3	3	3	Isolate
27	3	3	3	5	5	Isolate

From this matrix we have the following table:

TABLE 5.5 SHOWING SERIAL NUMBER OF STUDENTS WHO ARE FOUND IN DIFFERENT SCOIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL G-2.

Sl. No.	Sociometric	Serial number of students.	No. of students	Percentage
1	Acceptee	1,8,16,17,19	5	18.52
2	Rejectee	-	-	-
3	Isolate	2,3,5,7,9-15,18 20-27	20	74.08
4	Neglectee	4, 6	2	7.40

TABLE 5.6 SHOWING NUMBER OF STUDENTS IN DIFFERENT CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Sl. No.	Sociometric Category	Sociometric Test	Five-point Liking Scale
1	Acceptee	9(33.33)	5(18.52)
2	Rejectee	7(25.93)	-
3	Isolate	1(3.74)	20(74.08)
4	Neglectee	10(37.00)	2(7.40)

Interpretation

1. Individual teachers had accepted 9(33.33%) students but when we take feelings of all teachers together, we get only 5(18.52%) students as accepted by teachers. We can say less than 20(18.52%) enjoy acceptance feelings from teachers whereas more than 80% i.e. 22(81.48%) students are deprived of them. This is essentially a good evidence for a distance between teachers and pupils.

2. However, it is pleasing to note that none of the students is found as rejected by all teachers. However, it cannot be denied that there are 7(25.93%) students who receive only rejection choices on Sociometric Test from their teachers.

From table 5.1 and table 5.5 we find the number of students who are placed in the same sociometric categories both on Sociometric Test and five-point Liking Scale.

SCHOOL No. G-2

SOCIOMETRIC MATRIX OF PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP

TEACHER S NO.	1				2				3				4						
ACTIVITIES NO. / PUPIL S. NO.	1/4	2/5	3/6		1/4	2/5			1/4	2/5	3/6		1/4	2/5	3/6		1/4	2/5	
1	✓					✓	✓						✗		✗			✗	
2	✗								✓	✓	✓							✗	✗
3	✓									✓	✓						✗	✗	✗
4	✓					✗				✓			✗		✗				✓
5		✓					✗		✓		✓			✗			✗		
6	✓						✓			✓			✗		✗			✗	
7	✓	✓									✓				✗		✗	✗	
8	✓	✓	✓		✗						✗							✗	
9	✓					✗				✓			✗		✗				✓
10	✓				✗	✓				✗					✗				✓
									✓		✓			✓			✗	✗	✓
	✓				✗	✗	✗			✓									✓
	✓			19 20		✗				✓			✗		✗				✓
14		✓							✓		✓		✗		✗			✗	

TABLE 5.7 SHOWING TEACHERS PLACING STUDENTS IN THE SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

Sl. No.	Sociometric Category	Serial number of students.	Total students
1	Acceptee	8,17, 19	3
2	Rejectee	-	-
3	Isolate	-	-
4	Neglectee	6	1

This gives us only three students who are accepted by teachers individually as well as collectively.

Part D-2 Analysis of Pupil-Teacher Relationship In School G-2.

From the sociometric matrix of Pupil-Teacher Relationship of school G-2, we have the following table:

TABLE 5.8 SHOWING CHOICES RECEIVED BY TEACHERS ON SOCIOMETRIC TEST FROM STUDENTS

Teacher No.	Number of choices received	
	Acceptance	Rejection
1	31(38.27)	3(3.70)
2	6(7. 41)	28(34.57)
3	29(35.80)	3(3.70)
4	4(4.94)	23(28.39)
5	11(13.58)	24(29.63)
Total	81(100.00)	81(100.00)

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—2
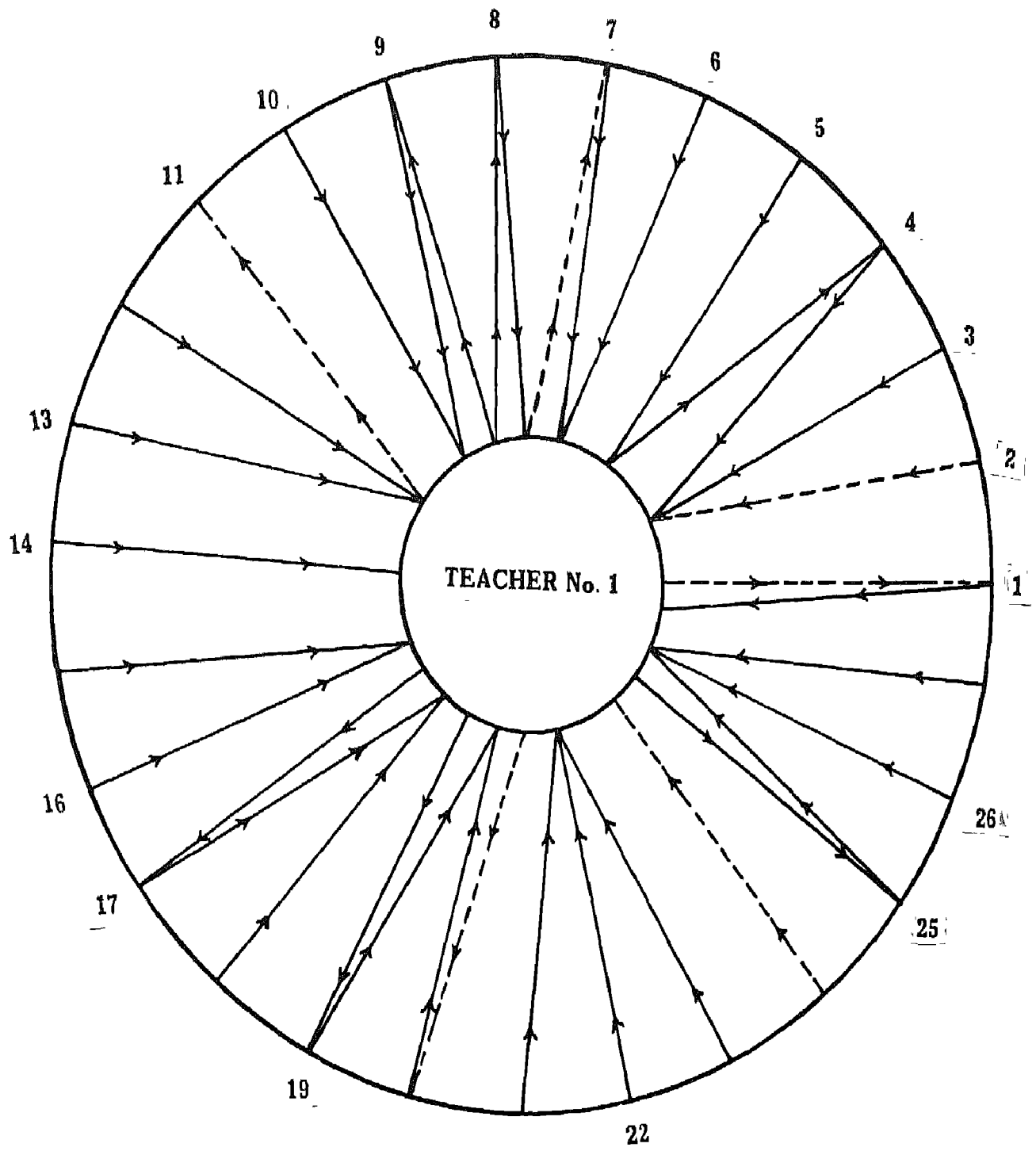
ACCEPTANCES
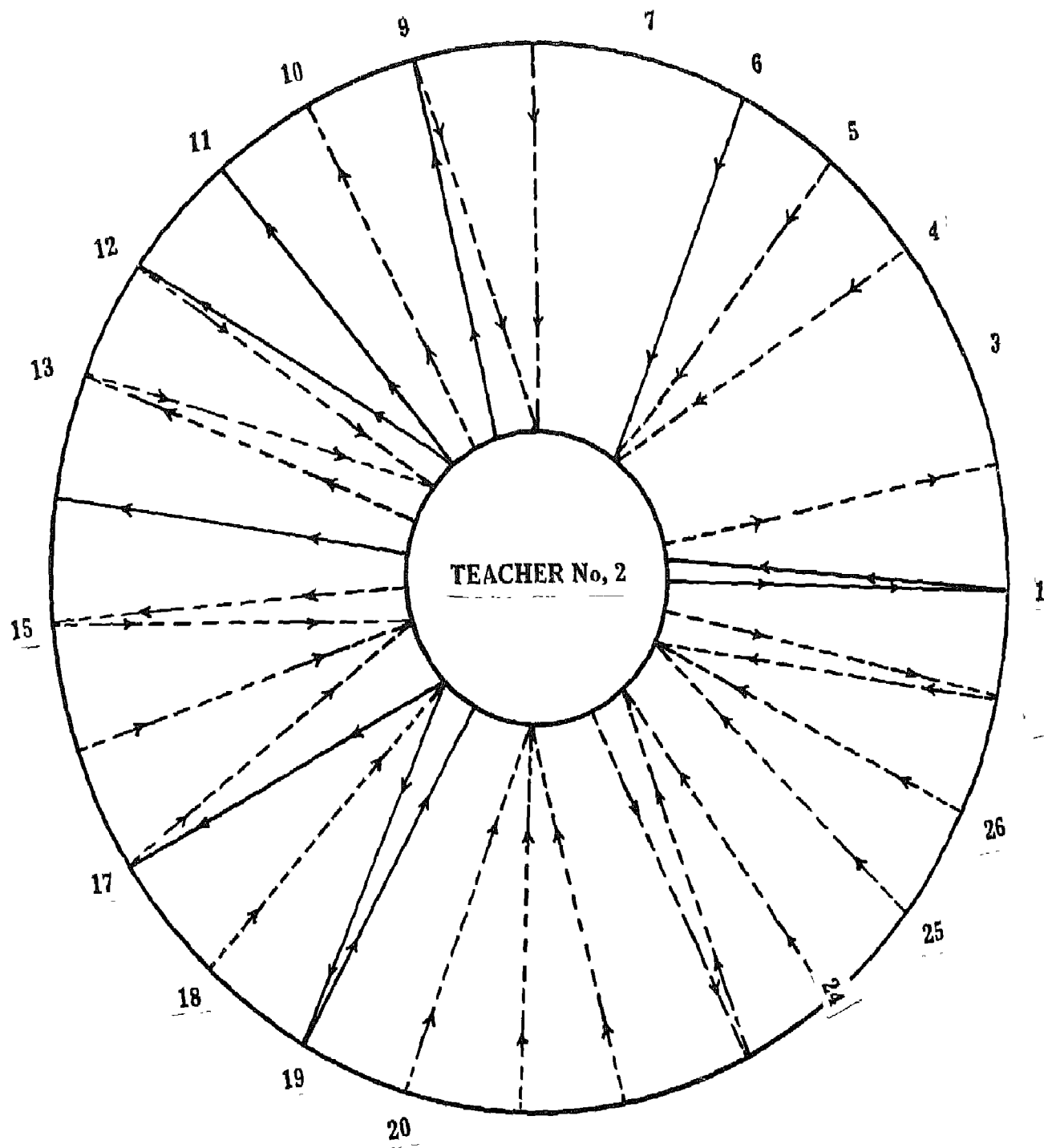
REJECTIONS

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—2

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G-2
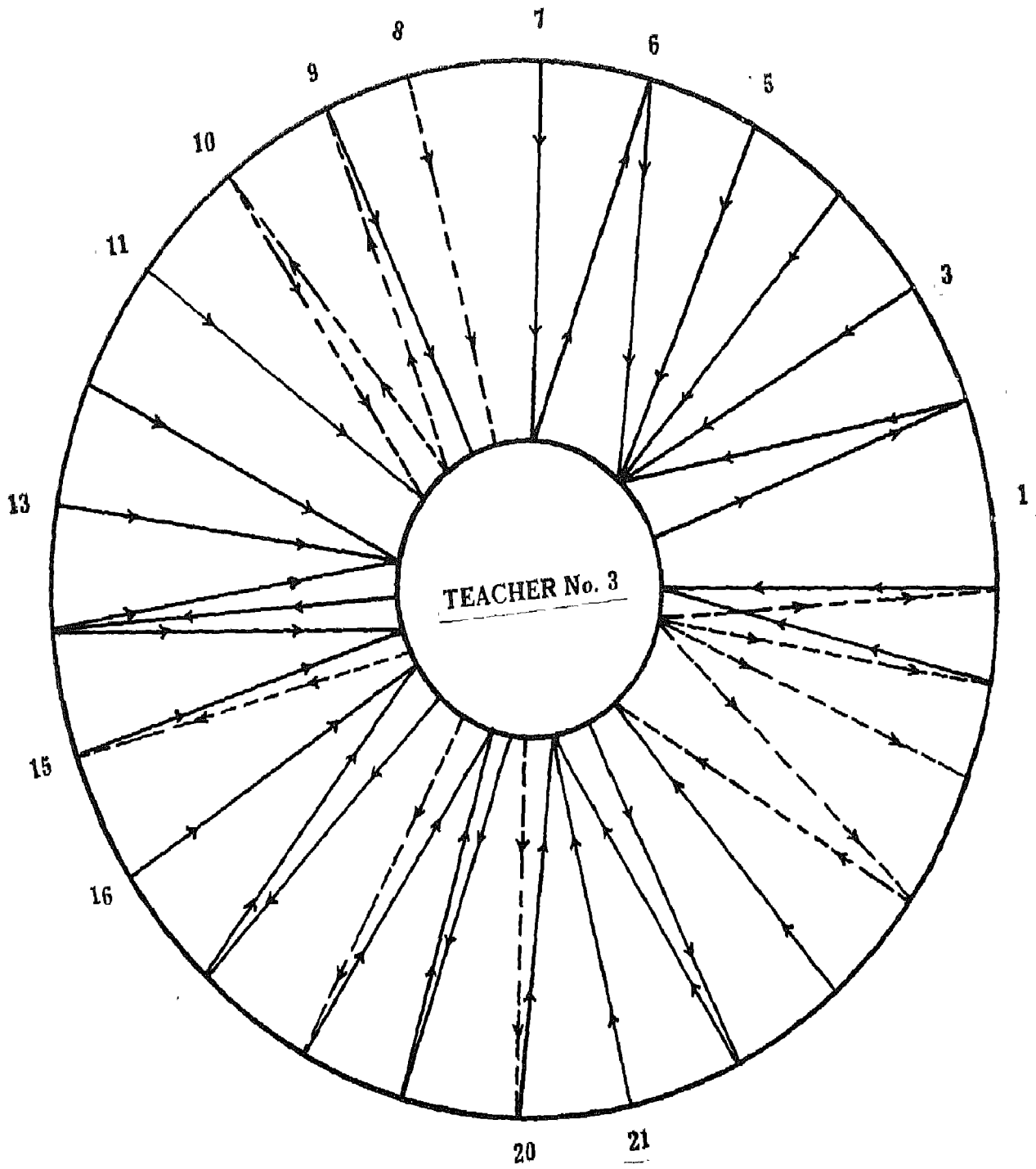
ACCEPTANCES

REJECTIONS

SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—2
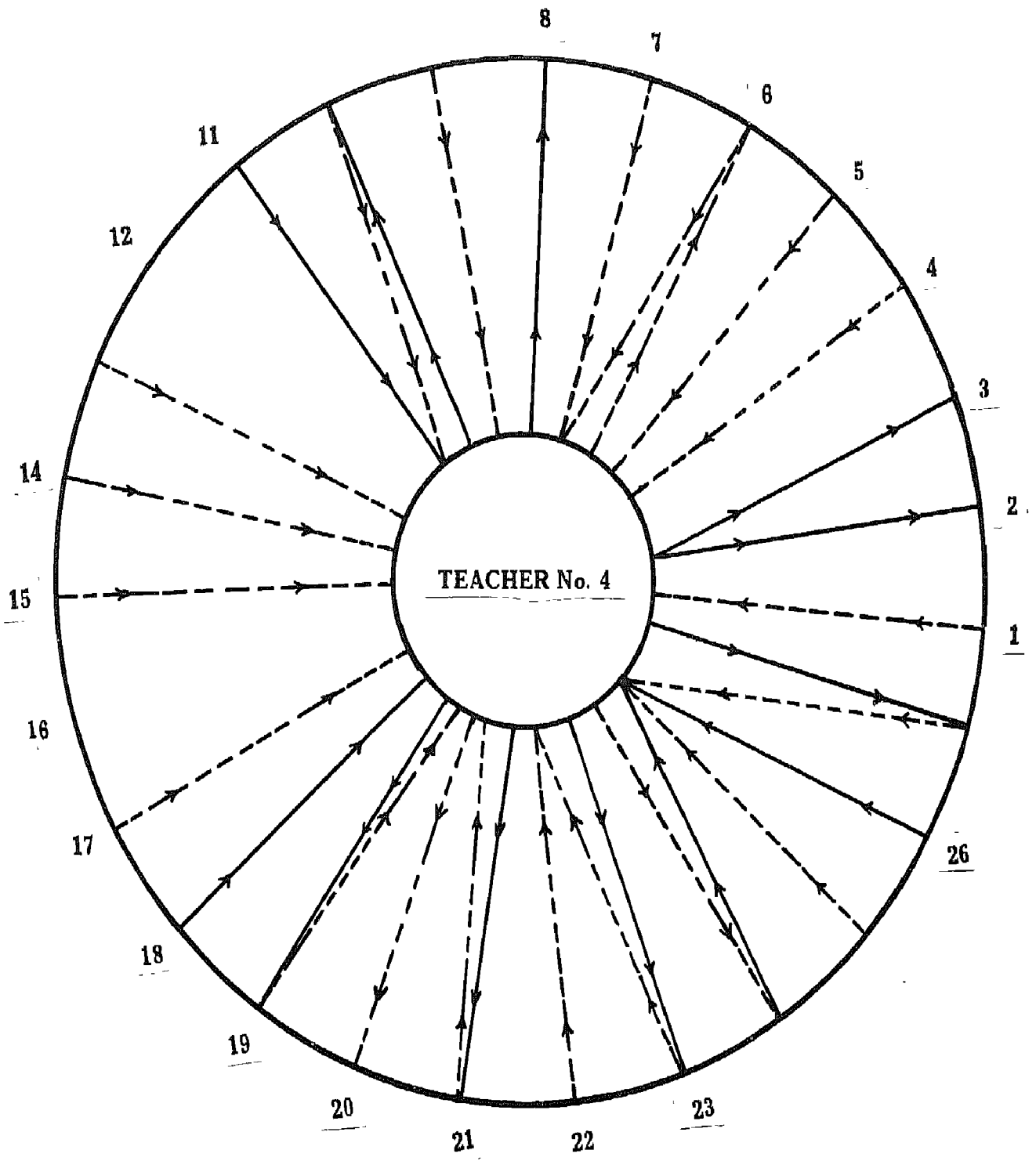
SOCIOGRAM
TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP
SCHOOL G—2
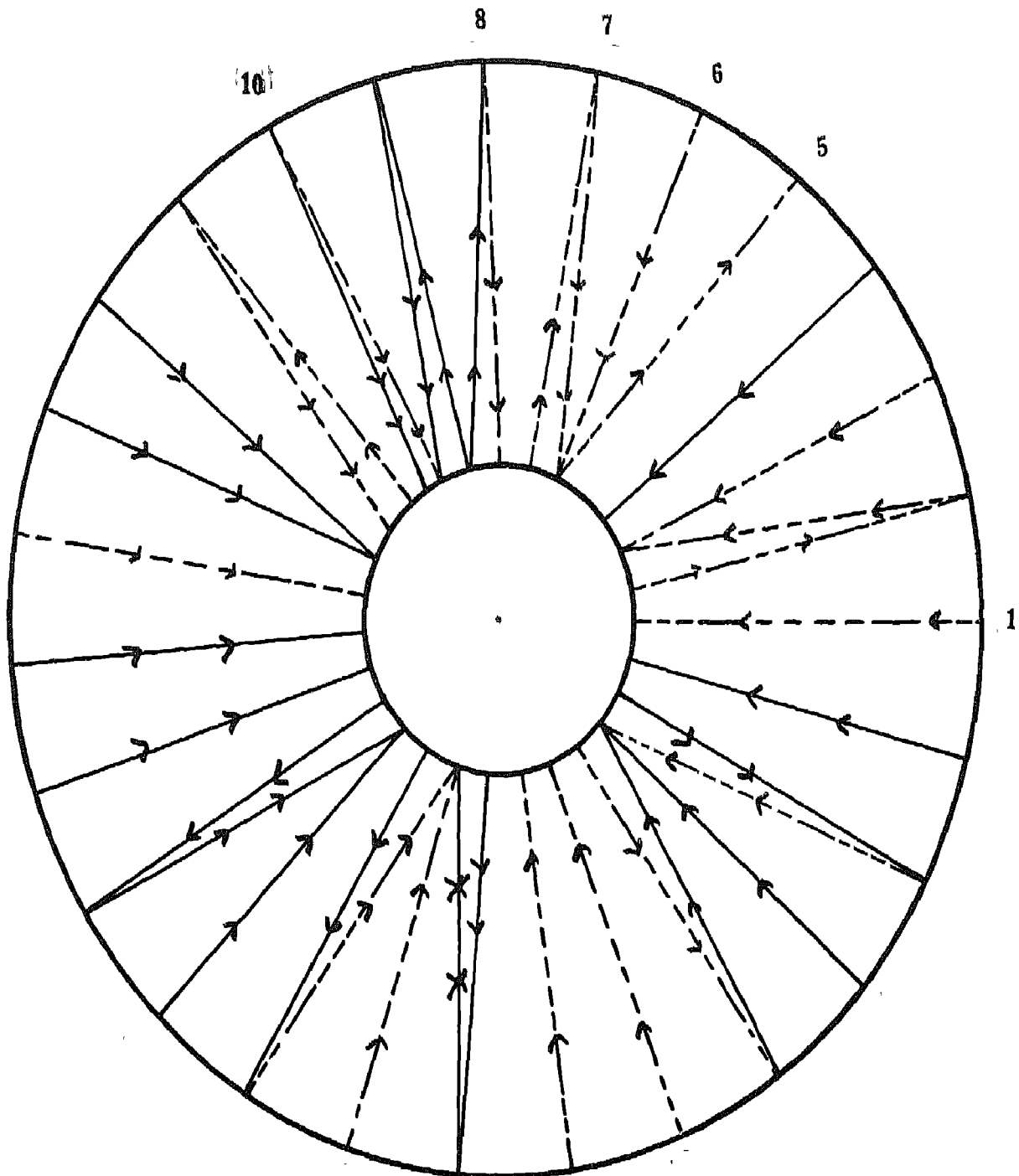
ACCEPTANCES

REJECTIONS

Interpretation

1. Teacher number 1 and Teacher number 3, get 31(38.27%) and 29(35.90%) acceptance choices respectively. They get 3(3.70%) rejection choices. We can fairly say that these teachers are accepted by students.

2. Teacher number 2 and Teacher number 4, get 28(34.57%) and 23(28.39%) rejection choices respectively. On the other hand they get only 6(7.14%) and 4(4.94%) acceptance choices respectively. We can infer from this that these two teachers are rejected by students.

3. Teacher number 5 gets 11(13.58%) acceptance choices but gets rejection choices as much as 24(29.63%). We say she gets far more rejection choices than she gets acceptance choices. We can hardly interpret from this that this teacher is accepted by students.

So, we find only 2 teachers(40%) are accepted whereas 3 teachers (60%) are not accepted by students. This itself is a good evidence for a lack of pupil-teacher relationship in this school.

Sociograms.

From the sociometric matrices of Teacher-Pupil and Pupil-Teacher Relationships of School G-2, we have drawn 5 sociograms-each one for each individual teacher showing the choices received from and given by him to students.

In Part D-1, we have discussed Teacher-Pupil Relationship, here we study Pupil-Teacher Relationship. We have the following table from the five sociograms.

TABLE 5.9 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST IN SCHOOL G-2.

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	1,3-10,12-23, 25-27	24 (88.89%)	2, 24	2 (7.41%)	11	1 (3.70%)	27 (100%)
2	1,6,19,24	4 (14.82%)	4,5,8,9,12,13,15-18,20-23,25-27	17 (62.96%)	2,3,7,11,14,10	6 (22.22%)	27 (100%)
3	2-7,9,11-23, 26,27	22 (81.48%)	8,10,24	3 (11.11%)	1, 25	2 (7.41%)	27 (100%)
4	11,18,24,26	4 (14.82%)	1,4-10,13-15,17,19,21-23,25,27	18 (66.66%)	2,3,12,16,20	5 (18.52%)	27 (100%)
5	4,9,10,12,13,16,17,21,24,25,27	11 (40.74%)	1-3,5-8,11,14,15,18-20,22,23,26	16 (59.26%)	-	-	27 (100%)

Interpretation:

1. Teachers number 1 and 3, are accepted by 24(88.89%) and 22(81.48%) students respectively. They are given rejection choices by only 2(7.41%) and 3(11.11%) students respectively. We can fairly say that these two teachers are accepted by a majority of students.

2. Teachers number 2 and 4, are accepted by only 4(14.82%) students each. They are given rejection choices by 17(62.96%) and 18(66.66%) students respectively. This clearly shows that these two teachers are rejected by students.

3. Teacher number 5 is accepted by only 11(40.74%) students and is rejected by 16(59.28%) students. We can hardly say that she is accepted by students.

These interpretations substantiate the interpretation made for table 5.8.

From the five sociograms we have the following additional information.

TABLE 6.00 SHOWING RECIPROCAL OPPOSITE AND NON-RESPONSIVE CHOICES RECEIVED BY TEACHERS FROM STUDENTS.

Tr. No.	Choices made by teachers		Mutual accept	Mutual reject	Reject for accept	Accept for reject	Non-responsive
	Accept	Reject					
1	6	4	6	-	-	3	1
2	7	6	2	4	2	-	5
3	6	9	6	2	-	6	1
4	8	3	-	1	8	1	1
5	6	5	3	4	3	1	-

Interpretation:

1. Teachers number 1 and 3, who have been found as accepted by students, get hundred per cent mutual acceptance choices. Teacher No. 1 gets 3 acceptance choices for her 4 rejection choices. Again, teacher number 3 gets 6 acceptance choices for her 9 rejection choices. This substantiates their acceptance by students.

2. Teacher number 4 who has been found as rejected finds no mutual acceptance choices but instead gets 8 rejection choices for her acceptance choices. Similarly teacher 2 found as rejected, gets only 2 mutual acceptance choices, whereas she gets 4 mutual rejection choices and 2 rejection choices for her acceptance choices. All this confirms the rejection of these teachers at the hands of their students.

3. Similarly, teacher number 5 confirms her position as not accepted by students when she gets only 3 mutual acceptance choices but gets 4 mutual rejection choices and 3 choices of rejection for her acceptance choices and gets simply one acceptance choice for her rejection choice.

The analysis substantiates that accepted teachers get more mutual acceptance choices, less mutual rejection choices, and more choices of acceptance for their choices of rejection.

Supplementary information on five-point Liking Scale regarding Pupil-Teacher Relationship in School G-2.

MATRIX OF FIVE-POINT LIKING SCALE OF PUPIL-TEACHER RELATIONSHIP IN SCHOOL G-2.

Rater St. Sl. No.	Ratees - Teacher's serial number				
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	5	4	4	5	2
2	3	3	5	4	4
3	5	4	4	3	4
4	5	4	5	3	3
5	5	5	5	5	4
6	4	3	5	3	2
7	4	5	5	5	5
8	4	3	2	4	4
9	4	3	5	5	4
10	5	5	4	4	4
11	2	4	4	5	1
12	3	3	5	4	4
13	5	4	4	4	5
14	4	4	5	4	4
15	5	3	4	3	3
16	4	3	4	4	5
17	4	3	3	3	4
18	5	2	5	5	4
19	4	2	5	5	4
20	3	3	5	4	4
21	5	4	4	5	5
22	5	3	4	5	4
23	4	2	5	3	4
24	4	2	3	4	3
25	3	2	3	5	5
26	4	2	4	4	3
27	5	4	5	5	5

From this matrix we find out the students who accept, reject or isolate teachers on the Liking Scale. We say that a teacher is accepted if she gets higher ratings (values of 5 & 4), is rejected by the students if she gets ratings in the lower scale values (2 & 1) and is an isolate if she is rated in the middle scale value i.e. (3).

TABLE 6.1 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING INDIVIDUAL TEACHERS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL G-2.

Tr. Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand Total
1	1,3-10,13-19,21-24,26,27	22 (81.48%)	11	1 (3.70%)	2,12,20,25	4 (14.82%)	27 (100%)
2	1,3-5,7,10,11,13,14,21,27	11 (40.74%)	18,19,23-26	6 (22.22%)	2,6,8,9,12 15-17,20,22	10 (37.04%)	27 (100%)
3	1-7,9-16,18-23,26,27	23 (85.19%)	8	1 (3.70%)	17,24,25	3 (11.11%)	27 (100%)
4	1,2,5,7-14,16,18-22,24-27	21 (77.78%)	-	-	3,4,6,15,17,23	6 (22.22%)	27 (100%)
5	2,3,5,7-10,12-14,16-23,25,27	20 (74.07%)	1,6,11	3 (11.11%)	4,15,24,26	4 (14.82%)	27 (100%)

TABLE 6.2 SHOWING TEACHERS GETTING SAME SOCIOMETRIC CATEGORIES BOTH ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE IN SCHOOL G-2.

Tr.Sl. No.	Acceptance by	Number of students	Rejection by	Number of students	Isolation by	Number of students	Grand total
1	1,3-10,13-19 21-23,26,27	21 (77.78%)	-	-	-	-	21 (77.78%)
2	1	1 (3.70%)	18,23, 25	3 (11.11%)	2	1 (3.70%)	5 (18.51%)
3	2-7,9,11-16, 18-23,26,27	21 (77.78%)	8	1 (3.70%)	25	1 (3.70%)	23 (85.18%)
4	11,18,24,26	4 (14.81%)	-	-	3	1 (3.70%)	8 (18.51%)
5	9,10,12,13, 16,17,21,25, 27	9 (33.33%)	1,6,11	3 (11.11%)	-	-	12 (44.44%)

Interpretation

1. As we had found in the case of table 4.8 for School G-1, here too we find a dominance of halo effect prevailing upon the ratings of students for their personal likings of teachers. For this school, in the analysis of the sociometric choices received by each teacher we had come to the conclusion that only teacher numbers 1 and 3 are accepted by students. But the ratings of higher scale values show as if all teachers are accepted. Any how, we look into the students who make similar sociometric categories both on Sociometric Test and five-point Liking Scale from table 6.2

2. Teachers number 1 and 3 are placed in acceptee category by 21(77.78%) students both on Sociometric Test and five-point Liking Scale. This goes to re-confirm their acceptance by students.

3. Teachers number 2 and 4 are accepted by only 1(3.70%) and 4(14.81%) students respectively. This again establishes that these two teachers are not accepted by students.

4. Teacher number 5, is accepted by only 9(33.33%) students. Again, it is difficult to say that she is accepted by students.

SECTION II

In Section I. of this chapter, we have discussed Teacher-Pupil and Pupil-Teacher Relationships in each one of the four schools included in this study. As pointed out at the very outset of the chapter, Section II, will be devoted to a combined study of these relationships in two boys' (B-1 & B-2) schools together and in two girls' (G-1 & G-2) schools together. This section is further divided into following two parts:

Part X - Teacher-Pupil Relationships

Part Y - Pupil-Teacher Relationships

Part X TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN ALL SCHOOLS.

TABLE 6.3 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY TEACHERS ON SOCIOMETRIC TEST

Sl. No.	School	Total students	Sociometric Categories			
			Accept	Rejectee	Isolate	Neglectee
1	Boys' B-1	48	15(31.25)	9(18.75)	19(39.59)	5(10.42)
2	Boys' B-2	28	11(39.28)	7(25.00)	4(14.29)	6(21.43)
3	Girls' G-1	25	11(44.00)	10(40.00)	2(8.00)	2(8.00)
4	Girls' G-2	27	9(33.33)	7(25.93)	1(3.74)	10(37.00)
	Total	128	46(35.93)	33(25.77)	26(20.31)	23(17.96)

This comprehensive table emerges from four tables numbers 1.1, 2.5, 3.8 and 5.1 for schools B-1,B-2,G-1 and

Interpretation

1. In all the four schools 46 out of 128, i.e. 35.93% students have been given accéptance choices. It indicates the lack of acceptance feelings of teachers towards students.

2. In a class of 48 students in boys' school B-1, we find 31.25% students as accepted and 39.59% students as isolated by teachers. But in a class of 28 students in boys' school B-2, we find 39.28% accepted and only 14.29% students as isolated. Taking all other variables of teacher-pupil relationship as constant, it is clearly inferred from this that in a class of more students, less percentage of them are accepted than they are accepted in a class of less number of students. We can say the same about the number of isolated students. This suggests a smaller size of class to enable the teachers to establish personal rapport with students. This is further substantiated in the case of Girls' school G-1, where the maximum of 44% students are found acceted by teachers.

3. We get some contradictory findings if we consider individual schools for a comparative study of Teacher-Pupil Relationship in boys' and girls' schools. To avoid this confusion, we have the following table after combining the results of boys' and the results of of girls' schools.

TABLE 6.4 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY TEACHERS IN BOYS' AND GIRLS' SCHOOLS

Sl. No.	School	Total students	Sociometric Categories			
			Acceptee	Rejectee	Isolate	Neglectee
1	Boys'	76	26(34.22)	16(21.05)	23(30.26)	11(14.47)
2	Girls'	52	20(38.46)	17(32.69)	3(5.77)	12(23.08)

As a whole we find more percentage of students are accepted and rejected in girls' school than in boys' school. 30.26% students in boys' schools have been found in isolate category, but there are only 5.77% students in this category in girls' schools. This means again that there is more personal rapport between teachers and pupils in girls' schools than it is found in boys' school. But the pity is more (32.69%) students are found in rejection category in girls' school than in boys' (21.05%) schools.

4. Neglectee-students who get both acceptance and rejection choices-number 23.08% and 14.47% in girls' and boys' schools respectively. This shows that teachers in girls' schools show more disparity in likings and dislikings for students than shown by teachers in boys' schools.

5. Each teacher was allowed to give 9 choices of acceptance as well as 9 choices of rejection. It means 10 men and 10 women teachers were supposed to make 90 choices in each case. The following table shows the choices made by teachers.

TABLE 6.5 SHOWING NUMBER OF CHOICES MADE BY TEACHERS ON SOCIOMETRIC TEST

Choices Made	Boys' Schools			Girls' Schools		
	Total	%age	Ave.	Total	%age	Ave.
Acceptance	90	100.00	9.00	90	10.00	9.00
Rejection	75	83.33	7.50	81	90.00	8.10

The number of rejection choices given by teachers is more in boys' than in girls' schools. Women teachers have given 90% of rejection choices with the average 8.10 choices for each teacher. Whereas these figures calculated for boys' school are 83.33% and 7.50 respectively. This means women teachers cherish rejection inclination towards more number of students than men teachers in boys' schools.

Comparative Study of Teacher-Pupil Relationship on the basis of ratings of teachers for their personal likings of students on five-point Liking Scale.

TABLE 6.6 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON LIKING SCALE BY TEACHERS

Sl. No.	School	Sociometric Categories			
		Acceptee	Rejectee	Isolate	Neglectee
1	Boys' B-1	18(37.50)	5(10.41)	20(41.68)	5(10.41)
2	Boys' B-2	4(14.28)	4(14.28)	17(60.72)	3(10.72)
3	Girls' G-1	9(36.00)	4(16.00)	9(36.00)	3(12.00)
4	Girls' G-2	5(18.52)	-	20(74.08)	2(7.40)
5	B-1 & B-2	22(28.95)	9(11.84)	37(48.68)	8(10.53)
6	G-1 & G-2	14(26.92)	4(7. 69)	29(55.77)	5(9.62)
	Total	36(28.13)	13(10.15)	66(51.56)	13(10.16)

This comprehensive table is the outcome of tables number 1.5, 2.9,4.2 and 5.5 for schools B-1, B-2, G-1 and G-2 respectively. This categorization is based on ratings as stated earlier and indicated below:

For 3 higher ratings (5 & 4) - Acceptee
For 3 lower ratings (2 & 1) - Rejectee
For 3 middle ratings (3) - Isolate
For middle, higher & lower ratings - Neglectee

In brief in contrast to similar categories made on the basis of choices received by each student from individual teachers, these categories represent the number of students found in different categories on the basis of the ratings from all teachers together. To have a comparative study in boys' and girls' schools, we have the following table from the above table.

TABLE 6.7 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON LIKING SCALE

Sl. No.	School	Total students	Sociometric Categores			
			Acceptee	Rejectee	Isolate	Neglectee
1	Boys'	76	22(28.95)	9(11.84)	37(48.68)	8(10.53)
2	Gilrs'	52	14(26.92)	4(7.69)	29(55.72)	5(9 .62)
	Total	128	36(28.13)	13(10.15)	66(51.56)	13(10.16)

The interpretation for this table is just the reverse of interpretation made for table 6.4.

1. More students i.e. 28.95% and 11.84% students are accepted and rejected respectively in boys' schools than in

girls' schools (26.92% and 7.69% respectively). This means that when we consider individual teachers, we find more number of students are accepted in girls' school but when we consider the feelings of all teachers together we find more students are accepted in boys' schools than in girls' schools.

2. Similarly, less percentage (48.68%) are isolates in the eyes of teachers in boys' schools than they (55.72%) are isolates in the eyes of teachers in girls' schools.

3. More neglectees (10.53%) are found in boys' schools than in girls' schools where there are 5.92% neglectee students.

4. We find in all only 36(28.13%) students placed in acceptee category, whereas the same teachers have placed 66(51.56%) students in isolate category. This again reaffirms the lack of teacher-pupil relationship in the higher secondary classes.

In this way the information on five-point liking scale complements the information on Sociometric Test.

Part V - Pupil-Teacher Relationship in all schools.

Teachers liked and disliked by students.

From tables number 1.9,3.3, 4.6 and 5.9, we find that in each of the four schools, only two out of the five teachers are accepted by students. Necessarily, it does show that both in boys' and girls' schools more teachers are rejected and less are accepted.

In school B-1, we have 48 students. They place each one of the five teachers in any one of the three sociometric categories. It means they make 48 x 5 = 240 choices in different categories. Similarly, in schools B-2, G-1 and G-2 we have (28 x 5) 140, (25 x 5) 125 and (27 x 5) 135 choices respectively made in different categories by students for teachers.

TABLE 6.8 SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACING TEACHERS IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES ON SOCIOMETRIC TEST

Sl. No.	School	Sociometric Categories		
		Acceptee	Rejectee	Isolate
1	Boys' B-1	94(39.17)	86(35.83)	60(25.00)
2	Boys' B-2	59(42.14)	54(38.57)	27(19.29)
3	Girls' G-1	59(47.20)	50(40.00)	16(12.80)
4	Girls' G-2	65(48.15)	56(41.48)	14(10.37)
	Total	277(43.28)	246(38.44)	117(18.28)

Interpretation

1. We find the maximum percentage of acceptance choices account for school G-2. But this is again less than 50% i.e. only 48.15%. It connotes that teachers have received less acceptance choices and more of combined rejection and isolate choices both in boys' and girls' schools.

2. In girls' schools, more of acceptance as well as rejection choices are given than these choices are given in boys' schools by students for teachers. It means more girls like/dislike teachers than boys. This is again in consonance with the interpretation from table 6.4 that more students

are accepted and rejected in girls' schools than in boys' schools by teachers.

3. When we combine all schools we find only 43.28% choices falling in acceptance category. This again substantiates the interpretations.

Five-point Liking Scale

Ratings received by teachers from students.
and
Ratings received by students from teachers.

N.B.

1. The first row for each school shows the ratings received by teachers.

2. The second row for each school shows the ratings received by students.

3. Figures in parenthesis are the percentage values of the given number of ratings.

Sl. No.	School	Liking Scale Values: Higher (5&4)	Middle (3)	Lower (2&1)	Total
1	Boys'B-1	147(61.25)	43(17.92)	50(20.83)	240
		99(41.25)	110(45.84)	31(12.91)	100%
2	Boys'B-2	86(61.43)	24(17.14)	30(21.43)	140
		37(26.43)	79(56.43)	24(17.14)	100%
3	Girls'G-1	80(64.00)	23(18.40)	22(17.60)	125
		48(38.40)	46(36.80)	31(24.80)	100%
4	Girls'G-2	97(71.85)	27(20.00)	11(8.15)	135
		39(28.89)	89(65.92)	7(5.19)	100%
	Boys'	233(61.31)	67(17.63)	80(21.06)	380
		136(35.79)	189(49.74)	55(14.47)	100%
	Girls'	177(68.08)	50(19.23)	33(12.69)	260
		87(33.46)	135(51.92)	38(14.62)	100%
	Total	410(64.06)	117(18.28)	113(17.66)	640
		223(34.84)	324(50.63)	93(14.53)	100%

Interpretation

1. In this study of interpersonal relationships, ratings on five-point Liking Scales, received by teachers are evidently the ratings given by students to teachers and vice-versa.

2. In all the schools, ratings received by teachers in higher scale values are more than 60% of the total number of ratings. It means students have shown nearly 2/3 of the ratings in higher scale values for their teachers. But students do not get more than 41% ratings from their teachers in these scale values. Interestingly, it is found that students have placed maximum 71.85% of ratings in higher scale values for their teachers in school G-3. But approximately, barring the school B-2, it is in this school where the teachers have received the lowest number of ratings (28.89%). Obviously, the ratings in these higher scale values stand for likings of raters for the ratees. In this way, surprisingly, it can be interpreted that the number of students who like the teachers, is more than the number of students who are liked by their teachers.

Students depict their appreciable amount of liking for their teachers but with a poor response from them. This re-emphasises the fact, that interpersonal relationship among teachers and pupils solely depend upon the teachers who by virtue of their seniority and status - authority in all respects i.e. age, education, status etc. are placed at the helm of affairs.

2. In all, teachers have placed 51.92% ratings in middle scale values of the rating scale, whereas this figure comes down to only 19.23 for students. It can be inferred from this that many teachers are indifferent towards students but students have both their likings and dislikings for teachers.

3. In both the boys' schools (B-1 and B-2) and separately combined together, students place more percentage of ratings i.e. 21.06% in lower scale values than these are placed by teachers i.e. 14.47% only. But this is reversed when we consider girls' schools. Teachers place more ratings i.e. 14.62% and students place 12.69% ratings in these scale values.

4. More (21.06%) boys than girls (12.69%) dislike their teachers.

5. In all the schools combined together, we find 64.06% ratings of higher scale values given to teachers by students while they receive only 34.84% ratings in these higher scale values from them. This does indicate that students have more acceptance or liking inclination towards teachers than do they enjoy from them.

SUMMARY OF THE FINDINGS

We make a brief summary of the findings of this chapter in the following two parts:

Part X - Teacher-Pupil Relationships.

Part Y - Pupil-Teacher Relationships.

Part X - Teacher-Pupil Relationships

(i) In all the four schools it is found that only a small numbers (35.93%) of students get acceptance from their teachers.

(ii) In all the schools, there are quite a large number of students (25.77%) who are rejected by teachers.

(iii) There are also 20.31% students (isolate) towards whom teachers have shown indifferent feelings.

All these points support the retention of our hypothesis that there is a lack of Teacher-Pupil Relationship in higher secondary classes.

However, we find women teachers have accepted 38.46% students and rejected 32.69% whereas this percentage of acceptance and rejection for men teachers is found to be 34.22% and 21.05% respectively. We can infer more students are accepted and rejected by women teachers than men teachers.

Part Y - Pupil-Teacher Relationships

(i) In all the schools, we find that only 2 out of 5 teachers are accepted by students.

(ii) In schools B-2 and G-1, we have found 2 teachers in each one of them are rejected, whereas in school B-1 and G-2, the number of rejected teachers is 1 and 3 respectively.

(iii) Thus, out of 20 teachers 8 are accepted and 8 are rejected. Four teachers are found to have been accepted by some students and rejected by others.

These findings are in consonance with the results of the Pilot Study discussed in Chapter IV. All these points suggest that only a small number of teachers are accepted by students. However, girls have rejected more (5) teachers

while boys have rejected only 3 teachers.

We conclude, that in both boys' and girls' higher secondary classes, there is a lack of Teacher-Pupil Relationship and thus this fact supports our hypothesis.

CHAPTER VII

CHARACTERISTICS OF TEACHERS AND PUPILS

In the preceding chapter, we have analysed which students are liked or disliked by their teachers. Similarly, it was also found which teachers are liked or disliked by the students. In this chapter, we will study the relationship between the likings and dislikings of teachers and pupils for each other and their ratings on the characteristics of each other.

Hypothesis

The characteristics of teachers as liked by their students and the characteristics of students as liked by their teachers in boys' and girls' higher secondary classes differ from each other.

An attempt will also be made to study the following issues:

(i) Relationship between the likings of teachers for students and their ratings on the characteristics of students.

(ii) Relationship between the likings of students for teachers and their ratings on the characteristics of teachers.

In chapter V titled "An Exploratory Study of Characteristics of Teachers and Pupils", we have found that there does not exist any substantial difference between the characteristics of teachers and pupils liked by

them in each other except for differences in emphasis or certain characteristics. On this very finding, we had constructed two Rating Scales of Characteristics (Appendices 13 & 14) and found out the reliability of ratings of teachers and students on them.

Both these Rating Scales were administered simultaneously both on teachers and pupils. They were duly explained with examples about ratings. To the students, the characteristics for which they were to rate their teachers, were made very clear. Teachers hardly sought any clarification. They responded comfortably as they were contacted during the half yearly examinations, when they were comparatively more relaxed.

We divide this chapter into the following three sections:

Section I - Factor analysis of Ratings on characteristics.

Section II - Students' likings and dislikings for teachers' and the characteristics of teachers as perceived by them.

Section III- Teachers' likings and dislikings for students and the characteristics of students as perceived by them.

Section I

Factor Analysis of Ratings on Characteristics

Before the investigator went into the analysis of

ratings of teachers and pupils on each others' characteristics, these ratings were subjected to factor analysis for the following convincing arguments put forward by Cronbach (1960 pp 262).

1. It provides precise methods for handling large number of variables and for reducing them to a much smaller number of scores with little loss of information. Thus factor analysis is a highly important statistical method.

2. Secondly, factor analysis has cut through a large amount of non-essential interpretation which result from assuming that every test with a different name measures a different ability.

3. Thirdly, factor analysis helps to describe what a test measures.

The factor analysis of the ratings was done on the lines suggested by Fruchter (1967 pp 72-83). Following Comb's principle, four factors in the case of School B-2 and three factors in the case of School B-1, were computed. Guilford (1954, pp 532) also suggested that the number of tests should be at least three times the number of factors to be extracted from the correlation matrix. However, as is evident, maximum of communalities are found in first factor 1 in both the cases and for the sake of purposeful analysis three factors were retained in each case.

Again we find quite clear picture of bi-polar factor in the second factor loadings. This depicts a clear picture of the characteristics included in the Rating Scale, so there is no need to rotate these factor loadings so as to

arrive at a simple structure, because as it is, it is a simple structure depicted by unrotated factor loadings.

Interpretation of Factors

Cattell (1957, pp 36) states that:

> " Factor is essentially a pattern of influences among variables. Typically, such a loading pattern shows that some variables are strongly affected by the factor, positively or negatively and others are not".

For interpretation, Cattell (1957, pp 37) remarks:

> " Interpretation depends here, as it does elsewhere in science, on noting the things that are highly associated (positively or negatively) with the factor and contrasting with them the things that are not associated".

We divide this Section I, into the following two parts:

Part A - Factor analysis of ratings of students on the characteristics of teachers.

Part B - Factor analysis of ratings of teachers on the characteristics of students.

Part A - Factor analysis of ratings of students on the characteristics of teachers.

We have included 10 characteristics of teachers in the Rating Scale (Appendix 13) in which the students rated their teachers. Each characteristic was rated on a five-point scale. We have summed up the scores received by all teachers on each characteristic with hypothetical weights of 5,4,3,2 & 1 given to the five categories of the

ratings in the descending order. The sample of the study includes 4 schools. Students of these schools have rated 5 of their teachers teaching them various subjects. We had calculated coefficients of correlation (Pearson "r" by product-moment method) following Difference Formula workable on the calculating machine. For each one of the four schools, we had calculated 45 coefficients of correlation between the total scores on 10 characteristics of teachers. For four schools a total of 180 coefficients of correlation were calculated. In the following pages, the matrices of these correlation have been given.

Part A-1 - Factor analysis of ratings of students on the characteristics of teachers in School B-1.

MATRIX OF COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN SCHOOL B-1.

Characteristics.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.956									
3	.875	.961								
4	.986	.900	.827							
5	.834	.955	.934	.738						
6	.978	.901	.845	.992	.647					
7	.968	.980	.964	.945	.891	.972				
8	.889	.980	.995	.848	.934	.786	.973			
9	.923	.983	. 946	.881	.954	.867	.975	.984		
10	.938	.837	.991	.845	.967	.852	.970	.991	.992	

From this matrix, we arrive at the following matrix:

CENTROID FACTOR MATRIX OF THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN BOYS' SCHOOL B-1.

Characteristics	Factor Loadings 1	2	3	No. of Reflection	Factor Variance 1	2	3	Communalities
1	.970	-.221	-.054	1	.940	.049	.003	.992
2	.981	-.057	.288	2	.962	.003	.083	1.048
3	.970	.178	-.033	1	.940	.032	.001	.973
4	.931	-.326	-.053	1	.867	.106	.003	.976
5	.917	.338	.155	x	.841	.114	.024	.979
6	.917	-.413	-.213	1	.841	.171	.045	1.057
7	1.000	-.078	-.027	1	1.000	.006	.001	1.007
8	.975	.212	.037	x	.950	.045	.001	.996
9	.985	.113	.036	x	.970	.013	.006	.989
10	.974	.248	-.300	1	.949	.062	.009	1.020
					9.260	.601	.176	10.037
					92.25%	5.98%	1.75%	

Interpretation of Factors.

On factor 1, we find high loadings for each one of the 10 characteristics of teachers rated by students. This depicts a general impression of students about their teachers. This shows that halo-effect has prevailed upon the ratings of students.

On factor 2, we find negative as well as positive loadings. This illustrates the bi-polar nature of characteristics included in the rating scale. The following table makes the point clear:

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl.NO.	Characteristics	Loadings	Sl.No.	Characteristics	Loadings
3	Impartiality	.178	1	Method of teaching	-.221
5	Good personality	.338	2	Loving behaviour	-.057
8	Punishment	.212	4	Understanding	-.326
9	Lenient	.113	6	Taking of period	-.413
10	Telling good things.	.248	7	Use of time in the class	-.078

From this table, we can say that these two sets of characteristics have been very rationally differentiated by the students. The characteristics bearing positive loadings on this factor may well be said relating to the general behaviour of the teacher as assessed by the students. On the other hand characteristics bearing negative loadings on this factor may well be said to pertain to day-to-day teaching of teachers in the class.

Almost the same picture is depicted by the factor No. 3. Here again we find a bi-polar structure of factor loadings. The following table makes the picture clear:

Negative Loadings			Positive Loadings		
Sl No	Characteristics	Loadings	Sl No	Characteristics	Loadings
1	Method of teaching	-.054	2	Loving behaviour	.288
3	Impartiality	-.033	5	Good personality	.155
4	Understanding	-.053	8	Punishment	.037
6	Taking of periods	-.213	9	Leniency	.076
7	Use of time in the class	-.027			
10	Telling of good things.	-.300			

Very small loadings speak of a meagre or ignorable importance. However, the loading of -.213 and -.300 on the characteristics of S.No. 6 and 10, infers a substantial commonness in these two characteristics. Similarly, positive loading of .288 and .155 on the characteristics of S.No. 2 and 5 speak of some commonness in these two characteristics. With these inferences, we can have a moderate change in the bi-polar structure of the characteristics as revealed in

factor No. 2. We can exchange characteristics No. 10 with characteristic No. 2 in the bi-polar structure of factor No. 2. This indicates that we have genuinely combined characteristic No. 10 with characteristic No. 5 as inferred from factor No. 3. The final picture of bi-polar structure of characteristics comes as follows:

Category 1		Category 2	
Sl. No.	Characteristics	Sl. No.	Characteristics
1	Good personality	1	Method of teaching
2	Impartiality	2	Understanding of the student:
3	Loving behaviour	3	Taking of periods
4	Punishment	4	Use of time in the class
5	Leniency	5	Telling of good things

Part A-2 <u>Factor analysis of ratings of students on the characteristics of teachers in school B-2.</u>

MATRIX OF COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN SCHOOL B-2.

Characteristics.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.971									
3	.927	.949								
4	.970	.981	.974							
5	.883	.963	.960	.909						
6	.907	.788	.684	.799	.633					
7	.912	.849	.727	.804	.762	.659				
8	.910	.976	.979	.974	.951	.669	.750			
9	.962	.978	.980	.991	.952	.767	.821	.977		
10	.975	.951	.956	.983	.866	.838	.800	.922	.957	

From this matrix, we arrive at the following matrix:

CENTROID FACTOR MATRIX OF THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN BOYS' SCHOOL B-2.

Characteristics	Factor Loadings 1	2	2	No. of Reflection	Factor Variance 1	2	3	Communalities
1	.993	-.245	-.037	1	.986	.060	.001	1.047
2	.993	.060	.084	x	.986	.004	.007	.997
3	.964	.245	-.149	1	.929	.060	.022	1.011
4	.991	.058	-.129	1	.982	.003	.016	1.001
5	.935	.280	.146	x	.874	.078	.021	.973
6	.809	-.338	-.193	1	.654	.114	.037	.805
7	.846	-.179	.251	1	.716	.032	.063	.811
8	.961	.276	-.049	1	.924	.076	.002	1.002
9	.990	.106	-.024	1	.980	.011	.001	.992
10	.976	-.072	-.150	1	.953	.005	.023	.981
					8.984 93.39%	.443 4.61%	.193 2.01%	9.620

Interpretation of Factors

It is quite evident here as in Matrix No. B-1 that on factor No. 1, halo-effect predominates on the ratings of students. Similarly, factor No. 2 as on previous matrix depicts a clear picture of bi-polar patterns of loadings on the characteristics.

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl No	Characteristics	Loadings	Sl No	Characteristics	Loadings
2	Loving behaviour	.060	1	Method of teaching	-.245
3	Impartiality	.245	6	Taking of periods	-.338
4	How much student understands	.058	7	Use of time in the class	-.179
5	Good personality	.280	10	Telling of good things	-.072
8	Punishment	.276			
9	Lenient	.106			

This represents almost the same picture of two categories arrived at in Matrix B-1 in their final forms. In this matrix on factor No. 3 there is nothing special which can be interpreted. It shows that students have taken an overall picture of the teachers as depicted by factor No. 2 whereas characteristics No. 2 and 4 bear a small positive loadings simply enabling them to fall in the category of 3,5,8,9. But the distinction lies in the fact that characteristic No. 4 has been linked with the behaviour of teachers whereas in the School B-1, it has been linked with method of teaching. Both these can be well understood. Characteristic No. 4 illustrates "How much do you understand what the teacher teaches you in the class?" We can say students in school No. 1, understand according to the loving or non-loving behaviour of teachers towards them and in school No. 2, students understand according to the method of teaching of the teacher as to what extent they find it interesting or dull. The same difficulty arises here as faced by Cattell (1946) in his distinction of source traits and surface traits. Surface traits are the by-products of interactions of source traits. At the most we can say that both the characteristics of method of teaching and behaviour of teachers towards students contributes well towards the understanding by students what they teach in the class. However, for the sake of similarity in further analysis of the characteristics we maintain our two categories

as arrived at the analysis of first Matrix B-1.

Category 1		Category 2	
Sl. No.	Characteristics	Sl. No.	Characteristics
1	Good personality	1	Method of teaching
2	Impartiality	2	Understanding of the students.
3	Loving behaviour	3	Taking of periods
4	Punishment	4	Use of time in the class
5	Leniency	5	Telling of good things

Part A-3 Factor analysis of ratings of students on the characteristics of teachers in school G-1.

MATRIX OF COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN SCHOOL G-1.

Characteristics.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.566									
3	-.175	-.183								
4	.875	.692	-.159							
5	.485	.814	.213	.339						
6	-.871	-.310	-.287	-.581	-.482					
7	-.689	.087	.478	-.593	.248	.536				
8	-.373	.083	-.044	.085	-.355	.524	.342			
9	-.439	.375	.328	-.146	.249	.443	.844	.709		
10	.171	.847	-.223	.614	.476	.134	.326	.580	.706	

From this Matrix, we arrive at the following matrix:

CENTROID FACTOR MATRIX FOR THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN GIRLS' SCHOOL G-1.

Characteristics	Factor Loadings			No. of Reflections	Factor Variance			Communalites
	1	2	3		1	2	3	
1	.424	.887	.125	x	.180	.787	.016	.983
2	.869	.274	.238	x	.755	.075	.057	.887
3	.196	-.215	.630	2	.038	.046	.397	.481
4	.619	.593	.461	x	.383	.351	.213	.947
5	.737	.309	-.380	1	.543	.095	.144	.782
6	-.345	-.747	.369	1	.119	.558	.136	.813
7	.264	-.827	-.381	1	.070	.683	.145	.898
8	.237	-.634	.542	1	.056	.401	.293	.750
9	.552	-.823	.052	1	.350	.677	.003	1.030
10	.824	-.223	.535	1	.679	.050	.286	1.015
					3.173	3.723	1.690	8.586
					36.96%	43.35%	19.68%	

Just like in Factor Matrix B-1 and B-2 we do not find variance clustered in the first factor only. We found 92.25% and 93.39% factor variance in the factor matrix B-1 and B-2 respectively. But here we find it spreadover to all the three factors as 36.96%, 43.35% and 19.68% of factor variance. We can say, this pattern of loadings does not present a simple structure. Here the need to rotate these loadings is felt.

" Thurstone wishes to rotate until there are no negative loadings and enough zero loadings to make the position uniquely defined" Thomson (1956 pp 153) continues to comment, "For this last purpose, he finds, empirically, that it is

necessary to require:

(a) At least one zero loading in each row.

(b) At least as many zero loadings in each column as there are columns.

"At least one zero loading in each row" means that no test may contain all the common factors.

So, rotation was done following Thurstone's method " Two-by-two rotation" (pp 154). Following is the resultant factor matrix after the rotation of the factor loadings.

FACTOR MATRIX AFTER ROTATION FOR THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN GIRLS' SCHOOL G-1.

Characteristics	Factor Loadings			Factor Variance			Communalties
	1	2	3	1	2	3	
1	.402	-.700	-.578	.161	.490	.334	.985
2	.534	.024	.134	.285	.001	.018	.304
3	-.097	.267	- .450	.009	.071	.202	.282
4	.130	-.359	-.223	.017	.129	.049	.195
5	.705	-.052	.615	.497	.003	.378	.878
6	-.240	.594	-.365	.057	.352	.133	.542
7	.637	.868	.580	.406	.753	.336	1.495
8	.125	.674	-.277	.015	.454	.077	.546
9	.706	.971	.343	.498	.943	.117	1.558
10	.504	.478	-.072	.254	.228	.005	.487
				2.199	3.424	1.649	7.273
				30.24%	47.09%	22.67%	

INTERMEDIATORY VALUES OF FACTORS I_1

1. .112 2. .732 3. .225 4. .392 5. .596

6. -.083 7. .519 8. .430 9. .828 10. .852

Interpretation of Factors

Characteristic Nos. 5 & 9 with factor loadings of .705 and 706 show a high degree of commonness in these two characteristics namely personality and leniency. However, characteristic Nos. 2,7, 10 with factor loadings of .534 and .637, .504 cannot be overlooked to depict a substantial commonness in these two characteristics namely good behaviour and use of time in the class. However, in factor 2, the commonness in the characteristic Nos. 7 & 9 is further substantiated.

On factor No. 3, we find a clear-cut bi-polar picture of the characteristics on the basis of positive and negative loadings. The following table makes the picture clear:

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl. No.	Characteristics	Loading	Sl. No.	Characteristics	Loading
2	Loving behaviour	.134	1	Method of teaching	-.578
5	Good personality	.615	3	Impartiality	-.450
7	Use of time in the class	.580	4	How much student understands	-.223
9	Lenient	.343	6	Taking of periods	-.365
			8	Punishment	-.277

Characteristic No. 10 bears a factor loading of -072, not a quantity for meaningful interpretation. However, on the basis of factor No. 1 we can justifiably include it in the list of characteristics No . 2,5,7 & 9. Hence in the final form we have the following two categories:

Category 1		Category 2	
Sl.No.	Characteristics	Sl. No.	Characteristics
1	Loving behaviour	1.	Method of teaching
2	Good personality	2	Understanding of the students
3	Use of time in the class	3	Impartiality
4	Leniency	4	Taking of periods
5	Telling of good things	5	Punishment

Part A-4 - Factor analysis of ratings of students on the characteristics of teachers in school G-2.

MATRIX OF COEFFICIENT OF CORRELATION BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN SCHOOL G-2.

Characteristics.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.824									
3	.332	.626								
4	.966	.594	.251							
5	.858	.776	.580	.865						
6	.735	.091	.417	.557	.171					
7	.619	.207	-.014	.638	.195	.974				
8	.786	.964	.793	.614	.842	.025	.187			
9	.629	.907	.716	.377	.646	-.040	.110	.955		
10	.967	.960	.485	.889	.915	.236	.343	.880	.724	

From this Matrix, we arrive at the following

Matrix:

CENTROID FACTOR MATRIX FOR THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS IN GIRLS' SCHOOL G-2.

Characteristics.	Factor Loadings			No. of Reflection	Factor Variance			Communalities
	1	2	3		1	2	3	
1	.977	-.272	-.246	1	.954	.074	.060	1.088
2	.879	.423	-.087	1	.772	.179	.008	.959
3	.633	.382	.510	x	.400	.146	.260	.806
4	.854	-.311	-.365	1	.729	.097	.133	.959
5	.860	.210	-.320	1	.739	.044	.102	.885
6	.527	-.785	.432	2	.278	.616	.186	1.080
7	.538	-.756	.214	1	.289	.571	.046	.906
8	.892	.509	.081	x	.796	.259	.006	1.061
9	.761	.532	.179	x	.579	.283	.032	.894
10	.937	.168	-.358	1	.878	.028	.128	1.034
					6.414	2.297	.961	9.672
					66.32%	23.74%	9.93%	

Interpretation of Factors

Factor 1 with 66.32% factor variance with all high loadings shows the prevalence of halo-effect on the ratings of students for their teachers.

Factor 2, gives a clear-cut bi-polar picture of the characteristics on the basis of positive and negative values of loadings on them. The following table makes the things clear:

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl. No.	Characteristics	Loadings	Sl. No.	Characteristics	Loadings
2	Loving Behaviour	.423	1	Method of teaching	-.272
3	Impartiality	.382	4	How much sts. understand	-.311
5	Good personality	.210	6	Taking of periods	-.785
8	Punishment	.509	7	Use of time	-.756
9	Lenient	.532			
10	Telling of good things.	.168			

Factor 3 depicts nearly the same picture but shows characteristic No. 10 falling in line with characteristic No.1 and 4. However, it again finds sufficient commonness with characteristic No. 5, too. It seems quite logical "telling of good things" in the class (Characteristic No. 10) does speak of the personality of teacher (Characteristic No. 5). But as we have taken up this characteristic with method of teaching etc. in the interpretation of Factor Matrix B-1 and B-2, we can include it in this very category. We come to conclude the following two categories:

Category 1		Category 2	
Sl.No.	Characteristics	Sl.No.	Characteristics
1	Good personality	1	Method of teaching
2	Impartiality	2	Understanding of the students
3	Loving behaviour	3	Taking of periods
4	Punishment	4	Use of time in the class
5	Leniency	5	Telling of good things

These two categories are quite in agreement with those found from the Factor Matrix B-1 and B-2.

<u>Conclusion</u>

We may conclude that the results of the analysis of of factor matrices B-1, B-2 and G-2 are similar. But the categories found in Factor Matrix G-1 bear only 3 characteristics common to the characteristics found in the rest of the three matrices. However, if we go deeply into the nature of characteristics, we may say: The categories given by three matrices are more convincing than the two categories

arrived at in Factor Matrix G-1. However this does not indicate that the perception of girls' is different from the perception of boys for the characteristics of teachers.

We arrive at the conclusion that students assess the teachers both ways on the basis of their characteristics:

(i) Characteristics relating to classroom teaching work such as method of teaching, taking of periods, use of time in the classes and how much the students are able to understand being taught by the teacher.

(ii) Characteristics relating to their behaviour with students such as impartiality, leniency, general treatment and an impression of their personality.

Part B - <u>Factor analysis of ratings of teachers on the characteristics of students.</u>

The students who have rated their teachers as explained above, were also rated by their teachers on the Rating Scale comprising 10 characteristics. Here too we have summed up the total score on each characteristic received by students from their teachers on the basis of hypothetical weights of 5,4,3,2 and 1 to the ratings of teachers. In this case too, 45 coefficients of correlation were found (by Difference Formula) between the scores of all characteristics. In all, for four schools a total of 180 (r's) coefficientsof correlation were calculated. Following is the list of characteristics included in the Rating Scale.

1. Industrious 2. Obedient 3. Good behaviour 4. Respectful 5. Interested in studies 6. Disciplined 7. Regular 8. Neat and clean 9. Good habits 10. Active.

Part B-1 Factor analysis of ratings of teachers on the characteristics of students in school B-1.

MATRIX OF COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN SCHOOL B-1.

Characteristics.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.704									
3	.768	.866								
4	.811	.894	.929							
5	.897	.869	.835	.832						
6	.707	.918	.904	.579	.845					
7	.867	.843	.816	.846	.733	.950				
8	.380	.706	.647	.686	.850	.697	.595			
9	.890	.843	.902	.903	.863	.859	.888	.795		
10	.719	.560	.532	.550	.808	.528	.730	.689	.594	

From this matrix, we arrive at the following matrix.

CENTROID FACTOR MATRIX FOR THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN BOYS SCHOOL B-1.

Characteristics	Factor Loadings			No. of Reflection	Factor Variance			Communalties
	1	2	3		1	2	3	
1	.864	.179	-.334	1	.716	.032	.112	.860
2	.918	.132	.215	x	.843	.017	.046	.906
3	.919	.246	.209	x	.845	.060	.044	.949
4	.897	.181	.131	x	.804	.033	.017	.854
5	.953	-.247	.078	2	.908	.061	.006	.975
6	.897	.161	.130	x	.804	.026	.017	.847
7	.929	.232	-.241	1	.863	.054	.058	.975
8	.779	-.424	.385	2	.607	.180	.148	.935
9	.954	.139	.092	x	.910	.019	.008	.937
10	.737	-.369	-.346	1	.543	.136	.120	.799
					7.843	.618	.576	9.037
					86.78%	6.84%	6.37%	

Interpretation of Factor

The high values of loadings on all characteristics on factor 1, does not stand for anything else but a general view of students taken by teachers while rating on the Rating Scale. This indicates that the halo-effect has worked well on the ratings giving us a factor variance of 86.78% in the first factor.

From third factor, we have the following bi-polar structure:

Category 1			Category 2		
Sl.No.	Characteristics	Loadings	Sl.No.	Characteristics	Loadings
2	Obedient	.132	1	Industriousness	-.334
3	Good behaviour	.246	7	Regular	-.241
4	Respectful	.181	10	Active	-.346
6	Disciplined	.161	5	Interested in studies	.078
8	Neat and clean	.385	9	Good habits	.092

Part B-2 - Factor analysis of ratings of teachers on the characteristics of students in school B-2.

MATRIX OF COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN SCHOOL B-2.

Characteristics	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.789									
3	.796	.943								
4	.755	.879	.905							
5	.856	.797	.788	.789						
6	.792	.917	.901	.905	.846					
7	.788	.805	.855	.103	.882	.826				
8	.209	.462	.356	.261	.001	.193	.184			
9	.743	.835	.888	.934	.849	.915	.865	.237		
10	.415	.318	.155	.326	.174	[illegible]	.316	.680	.399	

From the above Matrix, we arrive at the following Matrix.

CENTROID FACTOR MATRIX FOR THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN BOYS' SCHOOL B-2.

Characteristics	Factor Loadings 1	2	3	No. of Reflection	Factor Variance 1	2	3	Communalities
1	.872	.105	.170	x	.760	.011	.029	.800
2	.957	.071	-.214	1	.916	.005	.046	.967
3	.938	.273	-.247	1	.880	.074	.061	1.015
4	.846	.217	-.538	1	.716	.047	.289	1.052
5	.855	.436	.254	x	.731	.190	.064	.985
6	.934	.265	-.070	1	.872	.070	.005	.947
7	.808	.255	.593	x	.653	.065	.351	1.069
8	.406	-.647	-.215	1	.165	.418	.046	.629
9	.946	.161	.067	2	.895	.026	.004	.925
10	.467	-.631	-.166	3	.218	.398	.027	.643
					6.806	1.304	.992	9.032
					75.36%	14.43%	10.21%	

Interpretation of Factors.

Here we find as usual on factor 1, halo-effect seems quite evident as all the characteristics bear quite high values of loadings.

Factor 3, depicts the bi-polar picture of these loadings on the characteristics.

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl.No.	Characteristics	Loadings	Sl.No.	Characteristics	Loadings
1	How does the student work.	.170	2	Obedient	-.214
5	Interested in studies	.254	3	Good behaviour	-.247
7	Regular	.593	4	Respectful	-.538
			8	Neat and clean	-.215
			10	Active	-.166

Characteristic Nos 6 bears -.070 and 9 bears .067 values of loadings. So they have not been included on either side at this stage.

When we look into the size of the loadings of various characteristics on factor 2, the above formed categories remain intact and characteristics No. 6 bearing .265 and No. 9 bearing .161 values of loadings is placed in positive loading side of the characteristics. In the final form, we come to conclude that there are following two categories:

Category I		Category 2	
Sl.NO.	Characteristics	Sl.No.	Characteristics
1.	Obedient	1	Industriousness
2.	Good behaviour	2	Interested in studies
3.	Respectful	3	Regular
4.	Neat and clean	4	Disciplined
5.	Active	5	Good habits

Part B-3 - Factor analysis of ratings of teachers on thecharacteristics of students in school G-1.

MATRIX OF COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN SCHOOL G-1.

Characteristics	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.836									
3	.856	.813								
4	.805	.801	.949							
5	.805	.647	.805	.863						
6	.729	.750	.907	.900	.764					
7	.930	.810	.855	.826	.934	.757				
8	.765	.485	.788	.802	.680	.786	.630			
9	.841	.815	.925	.927	.883	.937	.897	.807		
10	.758	.616	.829	.798	.760	.755	.763	.889	.898	

From the above Matrix, we arrive at the following

Matrix:

CENTROID FACTOR MATRIX FOR THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN GIRLS' SCHOOL G-1.

Characteristics.	Factor Loadings 1	2	3	No. of Reflection	Factor Variance 1	2	3	Communalities.
1	.911	.266	.122	x	.830	.071	.015	.916
2	.818	.239	-.313	1	.670	.057	.098	.825
3	.963	-.046	-.107	1	.927	.002	.011	.940
4	.952	-.088	-.146	1	.906	.007	.021	.934
5	.896	.130	.132	x	.803	.017	.017	.837
6	.908	-.210	-.242	1	.824	.044	.058	.926
7	.920	.364	.120	x	.846	.132	.014	.992
8	.830	-.376	.287	2	.689	.141	.082	.912
9	.979	-.064	-.049	1	.958	.004	.002	.964
10	.879	-.231	.247	2	.772	.053	.060	.885
					8.225	.528	.378	9.131
					90.08%	5.79%	4.13%	

Interpretation of Factors

The first factor clearly depicts the halo-effect, having worked very well on the ratings of teachers for the characteristics of their students.

If we jump directly to factor No. 3, we have a clear picture of the bi-polar nature of characteristics perceived by teachers.

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl.No.	Characteristics	Loadings	Sl.No.	Characteristics	Loadings
1	How does the student work?	.122	2	Obedient	-.313
5	Interested in studies	.132	3	Good behaviour	-.107
7	Regular	.120	4	Respectful	-.146
8	Neat and clean	.287	6	Disciplined	-.242
10	Active	.247	9	Good habits	-.049

Factor 2, does not depict any thing else but only substantiates the placement of characteristic No. 9 with characteristics No. 2,3 having -.064 loading on this factor. However the loadings of .266 and .239 on characteristic Nos. 1 and 2 respectively do speak of commonness in them. However, these two categories are found to be quite all right which could be inferred from the factor analysis of Factor Matrix G-1.

Part B-4 - Factor analysis of ratings of teachers on the characteristics of students in school G-2.

MATRIX OF COEFFICIENT OF CORRELATIONS BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN SCHOOL G-2.

Character-istics	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1										
2	.731									
3	.100	.632								
4	.703	.578	.793							
5	.821	.512	.758	.637						
6	.908	.574	.774	.751	.766					
7	.720	.752	.680	.674	.580	.486				
8	.154	-.047	.206	.298	.253	.185	.088			
9	.884	.443	.725	.634	.579	.708	.442	.175		
10	.691	.369	.916	.416	.694	.523	.604	.457	.564	

From the above Matrix, we arrive at the following matrix:

CENTROID FACTOR MATRIX FOR THE RATINGS OF TEACHERS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS IN GIRLS 'SCHOOL IN SCHOOLG-2.

Character-istics	Factor Loadings 1	2	3	No. of Reflec-tion	Factor Variance 1	2	3	Communal-ties.
1	.873	.626	-.627	1	.762	.393	.393	1.548
2	.699	.320	.355	x	.488	.126	.126	.740
3	.841	-.447	.405	2	.707	.200	.164	1.071
4	.828	.136	.189	x	.686	.018	.036	.740
5	.847	-.135	-.136	1	.717	.018	.018	.753
6	.868	.108	-.125	1	.753	.017	.016	.786
7	.762	.122	.337	x	.580	.015	.114	.709
8	.294	-.359	-.217	1	.086	.129	.047	.262
9	.797	.085	-.163	1	.635	.007	.027	.669
10	.770	-.483	-.223	1	.593	.233	.050	.876
					6.007	1.156	.991	8.154
					73.67%	14.18%	12.19%	

Interpretation of Factors

First factor clearly speaks of halo-effect on the ratings of teachers for the characteristics of students.

Second factor gives us the bi-polar picture of the characteristics as given below on the basis of positive and negative loadings of the characteristics.

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl.No.	Characteristics	Loadings	Sl.No.	Characteristics	Loadings
1	How does the student work?	.626	3	Good behaviour	-.447
2	Obedient	.320	5	Interested in studies	-.135
4	Respectful	.136	8	Neat & clean	-.359
7	Regular	.122	10	Active	-.483
6	Disciplined	.108			

Third factor also gives the bi-polar structure of the characteristics on the basis of positive and negative loadings.

Positive Loadings			Negative Loadings		
Sl.No.	Characteristics	Loadings	Sl.No.	Characteristics	Loadings
2	Obedient	.355	1	Industriousness	-.627
3	Good behaviour	.405	5	Interested in studies	-.136
4	Respectful	.189	6	Disciplined	-.125
7	Regular	.337	8	Neat & clean	-.217
			9	Good habits	-.163
			10	Active	-.223

In the first pattern, characteristic Nos. 6 and 7 have found the loadings of .108 and .122 which shows pattern characteristic No. 6 bears the least value of negative group. This characteristic might have found sufficient commonness in this category but on the basis of second factor we can take it to the other side and arrive at the following categories.

Category 1		Category 2	
Sl.No.	Characteristics	Sl.No.	Characteristics
1	Obedient	1	Industriousness
2	Good behaviour	2	Interested in studies
3	Respectful	3	Neat and clean
4	Regular	4	Good habits
5	Disciplined	5	Active

CONCLUSIONS

1. Factor analysis does not indicate any difference in the perception of characteristics of students by men and women teachers.

2. Teachers have perceived the characteristics of students from the two angles as follows:

(i) Characteristics relating to their studies such as their interest in studies, how do they work at studies, and are found regular.

(ii) Characteristics relating to behaviour such as how far they are respectful, obedient and disciplined or possess good habits.

In the next section of this chapter, we will examine what categories of characteristics are more related to the likings of teachers and students for each other.

SECTION II

STUDENTS' LIKINGS AND DISLIKINGS FOR TEACHERS AND THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS AS PERCEIVED BY STUDENTS.

In the following analysis an attempt is made to answer the following two questions:

Q. No. 1 - Is there any relationship between the likings and dislikings of students for teachers and teachers' characteristics as perceived by students?

Q. No. 2 - What category of characteristics (categories arrived at in factor analysis from the ratings of students), is more related to the likings and dislikings of students for teachers?

The two questions will be answered on the basis of ratings of students and their responses on the check-lists (App. 14), and (App. 16) respectively.

This section is divided into two parts:

Part C - Analysis of the ratings of students on Rating Scale (Appendix 13).

Part D - Analysis of responses of students on check-list (Appendix 16).

Part C - Analysis of ratings of students on the characteristics of teachers.

TABLES SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(ρ) BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS FOR TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE AND THEIR RATINGS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS.

School B-1.

Tr. Sl. No.	Score on Liking Scale	Rank	Score on Characteristics.	Rank
1	235	1	2291	1
2	111	5	1146	5
3	187	3	1894	3
4	136	4	1577	4
5	215	2	2116	2

rho (ρ) = 1

School B-2.

Tr. Sl. No.	Score on Liking Scale	Rank	Score on Characteristics.	Rank
1	72	5	645	5
2	116	2	1196	2
3	127	1	1276	1
4	115	3	1118	3
5	78	4	759	4

rho (ρ) = 1

School G-1.

Tr. Sl. No.	Score on Liking Scale	Rank	Score on Characteristics.	Rank
1	108	1	1045	1
2	96	3	957	3
3	91	4	927	5
4	81	5	952	4
5	97	2	959	2

rho (ρ) = .90

contd...

School G-2.

Tr. Sl. No.	Score on Liking Scale	Rank	Score on Characteristics	Rank
1	112	3	1093	3
2	89	5	943	5
3	116	1	1221	1
4	113	2	1180	2
5	103	4	1019	4

rho (ρ) = 1

We find that there is a perfect relationship between the likings of students for teachers and teachers' characteristics as perceived by students.

Similarly, we have calculated for each teacher the coefficient of correlations between the score he received on five-point Liking Scale and the total score on the Rating Scale of Characteristics.

TABLE SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATION(r) BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS FOR TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE AND RATING SCALE OF CHARACTERISTICS

School	Raters No.	Calculated values of "r" for Tr. Sl. Nos.					Significance
		1	2	3	4	5	
B-1	48	.726	.569	.404	.994	.745	Very significant.
B-2	28	.577	.420*	.085**	.393*	.754	-do-
G-1	25	.696	.805	.831	.902	.891	-do-
G-2	27	.593	.439*	.685	.483*	.758	-do-

* Significant only at .05 level

** Not significant

But for one teacher No. 3, in School B-2, we find all significant values of "r". From this we can infer that there is a significant relationship between the likings of students for teachers and the characteristics of teachers as perceived by them. This goes to establish the validity of students' expression as illustrated in Chapter V, "What makes you like a teacher?" and "What makes you dislike a teacher?" Students like teachers whose method of teaching is found good by students, whom the students consider to be impartial and who are found loving, punctual to take the class, tell good things to the students etc. In our previous analysis we had found that out of 20 teachers from all the four schools, only 8 teachers, 2 in each of the four schools are liked by students. We can say, students have found 40% teachers as liked by them. Similarly, from this we can infer in 60% teachers, students do not perceive characteristics as liked by them.

From Chapter VI, we consult table Nos. 1.9, 3.3, 4.6 and 5.9 for schools, B-1, B-2, G-1 and G-2 respectively. These tables show the students who place individual teachers in different sociometric categories on Sociometric Test. We have found the significance of difference between the mean scores of students for the ratings on the characteristics of teachers whom they place in acceptee and rejectee categories. From this we will find whether there is a significant difference between the ratings of students (who

accept & reject) on the characteristics of teachers.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS ON THE CHARACTERISTICS OF TEACHERS WHO ACCEPT AND REJECT THEM.

School B-1.

Tr. Sl. No.	Students who	No.	Mean	SD	Interpretation
3	Accept Reject	9 15	41.55 38.06	4.05 4.97	D=3.49, σ_D=1.86 CR=1.87, Insignificant
4	Accept Reject	3 19	26.67 29.42	4.78 6.47	D=2.75, σ_D=3.14 CR=.87, Insignificant
5	Accept Reject	36 5	45.55 34.00	4.63 2.52	D=11.55, σ_D=2.52 CR= 4.58, Very significant

In this school, teacher No. 1 is accepted by 45 students and is rejected by 2 students. Similarly, teacher No. 2 is accepted by only 1 student and is rejected by 45 students. So, we have not made calculations for these teachers.

We find in the case of teacher No. 5, the difference between the ratings of students who accept and reject this teacher, is very significant. But the same interpretation does not follow in the cases of teacher No. 3 and 4.

School B-2.

Tr. Sl. No.	Students who	No	Mean	SD	Interpretations
1	Accept Reject	6 19	30.33 19.57	8.39 5.15	D=10.76, σ_D = 3.63 CR= 2.96, Very significant
4	Accept Reject	10 10	40.50 38.80	3.14 2.89	D=1.70, σ_D=1.35 CR= 1.25, Not significant
5	Accept Reject	3 21	33.33 26.80	.46 7.82	D=6.53, σ_D=1.90 CR= 3.43 Very significant

In this school teacher Nos. 2 and 3 are rejected by 2 students each and are accepted by 16 and 24 students respectively, so for these teachers calculations have not been made.

In this school, we find for two teachers, a significant difference between the ratings of students who accept and reject teachers No. 1 and 5. There is ample evidence to believe that students accept and reject teachers as they perceive certain characteristics in them.

School G-1.

Tr. Sl. No.	Students who	No	Mean	SD	Interpretations
1	Accept Reject	20 4	43.25 35.00	4.99 7.17	D=8.25, σ_D= 3.75 CR= 2.20, Significant
2	Accept Reject	4 16	39.50 37.68	8.61 6.49	D=1.82, σ_D = 4.60 CR= .39, Not significant
3	Accept Reject	5 14	39.80 33.35	7.19 9.60	D=6.45, σ_D=4.11 CR=1.57, Not significant
4	Accept Reject	18 5	40.38 31.20	7.74 6.82	D=9.18 σ_D=3.55 CR=3.58, very significant
5	Accept Reject	12 10	39.66 37.10	9.73 7.60	D=2.56, σ_D=3.69 CR= .69, Not significant

Statistically we find significant difference between the ratings of students who accept and reject teachers only for 2 cases. For the rest of 3 teachers we do not find significant difference. This does not mean that there is no difference between the ratings of students on the characteristics of teachers who accept and reject them. We can say, there is a difference but statistically not significant. We can well infer from two cases that there is a difference between the ratings of students on the characteristics of teachers who accept and reject them.

<u>School G-2.</u>

Tr. Sl. No.	Students who	No	Mean	SD	Interpretations
2	Accept Reject	4 17	40.50 32.64	3.86 6.70	D=7.86, σ_D=2.52 CR=3.11, very significant.
3	Accept Reject	22 3	46.63 35.00	3.18 9.27	D=11.63, σ_D =5.39 CR=2.15 Significant
4	Accept Reject	4 18	47.00 43.44	1.22 3.83	D=3.56, σ_D= .673 CR= 5.28 very significant
5	Accept Reject	11 16	41.00 35.50	7.42 6.35	D=5.50, σ_D=2.74 CR= 2.00 Significant

In the case of this school we have not made calculations for teacher No. 1 who is rejected by only 2 students. For the rest of all 4 teachers we find a significant difference between the ratings of students on the characteristics of teachers who accept and reject them. This again establishes that students accept and reject teachers as they perceive characteristics

liked by them in teachers. One thing is more clear here, the same teacher is being liked (accepted) and disliked (rejected) by different students. This means teacher remaining the same, the students perceive characteristics differently. This gives us an important implication that it is not sufficient merely on the part of teachers to possess certain characteristics, but it is their responsibility to act in such a way that those characteristics come into play in their day-to-day working with students and perceived as such by the students. This will help them being liked by students and establish sound and healthy personal relations with students.

Q. No. 2 - Likings and dislikings of students for teachers and characteristics of teachers in two categories as arrived at in factor analysis from the ratings of students.

Ratings of students on the characteristics of teachers were given hypothetical values of 5,4, 3, 2 & 1 in the descending order of degree of characteristics as perceived by students in teachers. As explained earlier, two categories of characteristics were arrived at by factor-analysis. For ready reference, we illustrate these categories below:

Category 1 - Characteristics relating to teaching.

1. Method of teaching
2. How much does a student understand what is taught by the teachers?
3. How serious the teachers are in taking their class periods?
4. How do the teachers use time in the class?
5. How much 'good things' do the teachers tell?

Category 2 Characteristics relating to behaviour

1. Loving behaviour
2. Impartiality
3. Good personality
4. Punishment by the teacher
5. Leniency shown by teachers.

We have found the coefficients of correlation (r) between the total scores on the characteristics of teachers from the ratings of students and scores of each teacher on the five-point Liking Scale as rated by students.

TABLES SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATION(r) BETWEEN THE RATINGS OF STUDENTS FOR TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE AND RATING SCALE OF CHARACTERISTICS

1. Characteristics relating to teaching.

School	Raters No	Calculated values of "r" for Tr. Sl. Nos. 1	2	3	4	5	Significance
B-1	48	.684	.500	.371	.475	.444	Very significant
B-2	28	. 461*	.305*	.075**	.386*	.715	-do-
G-1	25	.564	.770	.793	.588	.873	-do-
G-2	27	.533	.373*	.635	.446*	.518	-do-

2. Characteristics relating to behaviour

School	Raters No	Calculated values of"r" for Tr. Sl. No. 1	2	3	4	5	Significance
B-1	48	.678	.551	.361*	.430	.229**	Very significant
B-2	28	.586	.547	.061**	.370**	.657	Very significant
G-1	25	.718	.772	.906	.857	.824	Very significant
G-2	27	.566	.723	.675	.445	.395*	Very significant

* * Not significant

* Significant only at .05 level

Most of the calculated values of "r" are significant. From this we infer students like teachers both who teach well and treat them well. In brief we say, teachers are liked by students, when their method of teaching is found good, they take the periods punctually, use the time in the class in the interest of students, whatever they teach is understood by students and they are found affectionate in their behaviour with students, they are impartial toward students, their personality is perceived well by students, and they do not resort to punishment very often.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN MEAN SCORES OF CHARACTERISTICS OF TEACHERS RELATING TO TEACHING AND BEHAVIOUR AS PERCEIVED BY STUDENTS IN TEACHERS

School	Category of Characteristics.	No	Mean	SD	Interpretation
B-1	Behaviour Teaching	48 48	91.37 95.20	10.30 8.75	D=3.83, σ_D=1.95 CR=1.96 Significant
B-2	Behaviour Teaching	28 28	89.00 90.14	8.71 11.09	D=1.14, σ_D=2.66 CR=.428 Insignificant
G-1	Behaviour Teaching	25 25	94.70 99.10	13.00 1.27	D=4.40, σ_D= 2.72 CR= 1.61 Insignificant
G-2	Behaviour Teaching	27 27	95.80 103.01	8.45 9.31	D= 7.21, σ_D=2.42 CR=2.97 Very significant

From each of two boys' and girls' schools, we find a significant difference between the mean scores on the characteristics of teachers as relating to their day-to-day teaching and behaviour with students as perceived by students in them.

In all the four cases as shown above, we find that the mean score for the characteristics of teachers relating to their teaching is more than the mean score for the characteristics of teachers relating to their behaviour with students. We may conclude that students value teachers' teaching more than their behaviour. To probe into the question still further, we have calculated the scores on the characteristics of teachers who are accepted and rejected by students on the basis of their choices given for teachers on Sociometric Test. Significance of difference between the mean scores on the two categories of characteristics for each teacher was calculated on the basis of ratings of students who accept or reject the teachers. It was found that in each case the difference between the mean scores of characteristics of two categories was not significant. We do not show calculated results here as they serve no purpose. We can simply infer, the students accept teachers or reject teachers when they find them possessing or not possessing the characteristics of both categories. This further substantiates our previous interpretations made on the basis of calculated values of coefficients of correlation between scores on the five-point Liking Scale and Rating Scale of characteristics of teachers.

Part D - Analysis of responses of students on the check-list (Appendix 16)

As discussed earlier in Chapter V, we had prepared a check-list consisting of 100 statements. These statements

were taken from the expressions of students under the heading "What makes you like a teacher?" and "What makes you dislike a teacher?". Half of the statements (50) depicted positive feelings and half (50) statements depicted negative feelings. As shown in the Appendix 16, the check-list enlisted the names of teachers on each and every page. The students were to mark (✓) under the names of teachers to whom the statement was thoughtto be applicable by them. Instructions were read and method of checking the statements was also made clear on the black-board. The check-list was printed on a fine paper so as to invite all attention and seriousness of students. The students took 20 to 30 minutes in responding to it.

Method of Analysis

1. Frequency tables were prepared to know the number of students attributing each statement to each individual teacher.

2. From the above tables, it was found out what statements are attributed to accepted and rejected teachers by students.

On the above lines, we discuss the results arrived at from this check-list.

In the check-list we had 50 statements called positive statements, depicting good characteristics of teachers and 50 statements called negative statements, depicting bad characteristics of teachers. Each statement could be attributed to each teacher by each one of the students in both the types of statements. This leads us to conclude:

Sl. No.	School	Number of students	Maximum possible frequencies for each type of statements for each teacher
1	B-1	48	48 x 50 = 2400
2	B-2	28	28 x 50 = 1400
3	G-1	25	25 x 50 = 1250
4	G-1	27	27 x 50 = 1350

TABLES SHOWING PERCENTAGE OF STUDENTS ACCEPTING INDIVIDUAL TEACHERS AND PERCENTAGE OF FREQUENCIES OF POSITIVE STATEMENTS ATTRIBUTED TO THEM BY STUDENTS

School B-1

Tr. No.	Accepted by students		Rank	Frequencies of statements		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	45	93.74	1	2173	37.43	1
2	1	2.08	5	454	7.82	4
3	9	18.75	3	1139	19.60	3
4	3	6.25	4	383	6.60	5
5	36	75.00	2	1656	28.53	2

ρ (rho) = .90

School B-2

Tr. No.	Accepted by students		Rank	Frequencies of statements		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	6	21.43	4	202	5.74	5
2	16	57.14	2	1151	32.72	1
3	24	85.72	1	1094	31.10	2
4	10	35.72	3	827	23.51	3
5	3	10.71	5	243	6.91	4

ρ (rho) = .80

School G-1.

Tr. No.	Accepted by students		Rank	Frequencies of statements.		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	20	80.00	1	804	28.01	1
2	4	16.00	5	593	20.66	2
3	5	20.00	4	498	17.35	4
4	18	72.00	2	525	18.29	3
5	12	48.00	3	450	15.68	5

ρ (rho) = .30

School G-2.

Tr. No.	Accepted by students		Rank	Frequencies of statements		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	24	88.89	1	768	22.72	2
2	4	14.82	4.5	426	12.60	5
3	22	81.48	2	877	25.95	1
4	4	14.82	4.5	67 7	20.03	3
5	11	40.74	3	632	18.70	4

ρ (rho) = .38

We find that in both the boys' schools, there is a significant relationship between the percentage of students accepting individual teachers and the percentage of frequencies of positive statements attributed to them. But the same picture is not found in the case of any of the two girls' schools. However, a positive relationship is there.

TABLES SHOWING PERCENTAGE OF STUDENTS REJECTING INDIVIDUAL TEACHERS AND PERCENTAGE OF FREQUENCIES OF NEGATIVE STATEMENTS ATTRIBUTED TO THEM BY STUDENTS

School B-1.

Tr. No.	Rejected by students		Rank	Frequencies of statements.		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	2	4.17	5	98	2.94	5
2	45	93.75	1	1618	48.51	1
3	15	31.25	3	258	7.73	3
4	19	39.58	2	1163	34.86	2
5	5	10.41	4	199	5.96	4

ρ (rho) = 1

School B-2

Tr. No.	Rejected by students		Rank	Frequencies of statements.		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	19	67.86	2	997	48.44	1
2	2	7.14	4.5	126	6.12	4
3	2	7.14	4.5	68	3.30	5
4	10	35.72	3	148	7.19	3
5	21	75.00	1	719	34.94	2

ρ (rho) = .88

School G-1

Tr. No.	Rejected by students		Rank	Frequencies of statements.		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	4	16.00	5	170	12.84	4
2	17	68.00	1	161	12.16	5
3	14	56.00	2	242	18.28	3
4	5	20.00	4	398	30.06	1
5	10	40.00	3	353	26.66	2

ρ (rho) = -.40

School G-2.

Tr. No.	Rejected by students		Rank	Frequencies of statements.		Rank
	Number	Percentage		Number	Percentage	
1	2	7.41	5	325	20.87	3
2	17	62.96	2	544	34.94	1
3	3	11.11	4	168	10.79	4
4	18	66.66	1	110	7.06	5
5	16	59.26	3	410	26.33	2

ϱ (rho) = -.10

Again, we find a significant relationship between the percentage of students rejecting individual teachers and percentage frequencies of negative statements attributed to individual teachers. But this is not found so in the case of girls' schools. In the following analysis as to what statements are attributed to liked and disliked teachers, we will keep these things in view.

TABLE SHOWING POSITIVE STATEMENTS ON THE CHECK-LIST ATTRIBUTED TO ACCEPTED TEACHERS IN EACH SCHOOL

Sl. No.	School	Statements attributed to Accepted teachers
1	B-1	1,2,5,6,15,19,21,24,25,29,30,33,35,36,43,45, 49,56,57,64,65,71,74,75,76,77,83,84,87,90,91, 93 = T= 32
2	B-2	1,6,10,11,15,21,24,29,35,36,40,41,43,45,49, 56,57,65,71,74,75,76,77,78,83,84,87,90,91, 93,95,96,98 = T=32
3	G-1	2,4,6,8,11,19,21,33,34,36,42,43,45,49,75,83, 93,98,100 = T=19.
4	G-2	2,4,5,8,10,17,19,21,23,24,25,29,30,31,33,36, 41,43,45,49,56,65,74,77,83,87,91,95,98,100, =T=30

This categorization was made on the basis of frequency of each statement attributed to all teachers. From the frequency tables, on the basis of comparatively higher frequencies each statement had secured by only the liked teachers, the statements were earmarked as having been exclusively attributed to liked teachers only.

From the above table, we draw the following table with the simultaneous study of two boys' schools together and two girls' schools together. The statements which have been found common in each of the two sets of schools, had been mentioned as attributed to liked teachers in boys' and girls' schools.

TABLE SHOWING POSITIVE STATEMENTS ON THE CHECK-LIST ATTRIBUTED TO ACCEPTED TEACHERS IN BOYS' AND GIRLS' SCHOOLS

Sl. No.	School	Statements attributed to Accepted teachers
1	Boys'	1,6,15,21,24,29,35,36,43,45,49,56,57,65,71,74, 75,76,77,83,84,87,90,91,93 Total = 25
2	Girls'	2,4,5,8,10,19,21,24,31,33,34,36,41,43,45,49,56, 65,75,77,83,87,93,98,100 Total = 25

From this table we find the following statements as common statements which both boys and girls have attributed to the teachers accepted (liked) by them.

Positive statements attributed to liked teachers both by boys and girls.

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
1	21	His way of talking is very good.
2	24	He is considerate of our interest and works accordingly.
3	36	He is quite pleasant by nature.
4	43	He takes interest in students.
5	45	He points out our mistakes sympathetically and does not scold us.
6	49	He encourages us for asking questions while teaching in the class.
7	56	He while teaching, entertains us too.
8	65	He has high ideas.
9	75	He tells us matters of general knowledge too.
10	77	We can ask him any question without any fear.
11	83	He helps the poor students financially.
12	87	He loves us like his own kith and kin.
13	93	He is always ready to listen to our problems.

Obviously, there are only 3 statements i.e. Nos. 49, 56 and 77 which can be said to have been related to day-to-day teaching of teachers. We can say as far as day-to-day treatment of teachers towards students is concerned, there is perfect agreement between boys and girls. Both boys and girls expect loving, affectionate, liberal and generous treatment from their teachers.

Below we list the positive statements which have been attributed to liked teachers in addition to the above 13 statements.

Boys Students

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
1	1	He treats us just like own sons/daughters or brothers/sisters.
2	6	He removes our difficulties of the lessons taught by him.
3	15	He himself acts in the manner in which he wants us to.
4	29	He has great sympathy for us in his heart.
5	35	He does not like private tuition.
6	57	He checks the home-task regularly.
7	71	We can learn a lot from his life.
8	74	He is an ideal teacher.
9	76	He does not miss any of his class periods.
10	84	He is very good at heart for students.
11	90	We like his method of teaching.
12	91	His personality is quite effective for us.

Girls' Students

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
1	2	He always think of our welfare.
2	4	He performs his duties very well.
3	5	He readily confesses his mistakes in front of the students.
4	8	He comes prepared with the lesson to be taught.
5	10	He encourages us from time to time.
6	19	He devotes some extra time to weak students.
7	31	He does not punish without any fault.
8	33	He mixes well with students.
9	34	In the class, if we do not understand anything, and ask questions, he readily answers them.

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
10	41	He is always concerned with our welfare.
11	98	He always praises our good work.
12	100	He stops us from following wrong paths.

If we have an insight into these statements, we find boys have attributed to liked teachers statement No . 6,35,57, 74, 76 and 90 which are related to day-to-day teaching of teachers. But all additional statements in the case of girls are related to the day-to-day behaviour of teachers. We can infer in the case of girl students that they are more concerned about the behaviour of teachers than their teaching. We further probe into this question while discussing below the negative statements of the check-list.

TABLE SHOWING NEGATIVE STATEMENTS ON THE CHECK-LIST ATTRIBUTED TO REJECTED TEACHERS IN EACH SCHOOL.

Sl. No.	School	Statements attributed to Rejected teachers.
1	B-1	7,9,12,13,16,18,20,27,28,32,37,38,39,42,46,47, 48,50,51,52,54,55,59,60,61,62,67,69,72,73,80, 81,82,86,88,89,92,94,97,99.
2	B-2	3,7,9,12,13,14,16,20,27,32,38,37,39,42,46,47,50, 51,52,54,58,59,60,61,63,69,70,72,73,79,81,82,85, 86,89,92,94,97,99,
3	G-1	3,44,46,51,59,69,81
4	G-2	3,7,9,16,18,27,32,37,38,39,51,52,54,61,66,67,72, 80,82,85,99

From this table, we have the following table showing the statements attributed to rejected (disliked) teachers in boys' and girls' schools on the basis of their occurence in each of the two boys' and girls' schools.

TABLE SHOWING NEGATIVE STATEMENTS ON THE CHECK-LIST ATTRIBUTED TO REJECTED TEACHERS IN BOYS' AND GIRLS' SCHOOLS.

Sl. No.	School	Statement numbers attributed to Rejected teachers.
1	Boys'	7,9,12,13,16,20,27,32,37,38,39,42,46,47,50,51, 52,54,59,60,61,69,72,73,81,82,86,89,92,94,97,99.
2	Girls'	3,9,16,32,37,38,39,44,46,51,52,54,59,61,62,72,80, 82,

From this table we find the following statements as common statements which both boys and girls have attributed to teachers rejected (disliked) by them.

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
1	9	He teaches us a little bit and then tells us to learn the remaining part ourselves.
2	16	He complaints against us to the Principal often over very trivial matters.
3	32	He considers us good for nothing.
4	37	He gets angry over petty things.
5	38	He fails in finding out the culprits and punishes the innocent.
6	39	He sends for the parents to the school over trifles.

contd..

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
7	46	He does not listen to what we have to say and gets things done in the way he likes.
8	51	He goes out of the class quite frequently during the period for teaching us.
9	52	He does not even like to talk to us.
10	54	He is often very angry.
11	59	He quite often does not take his class periods.
12	61	He does not have any love for children.
13	72	He scolds us unnecessarily.
14	82	He gives us punishment without any fault of ours.

These illustrated statements which have been attributed to only disliked teachers need no further clarification. Similarly, the statements which have been attributed to liked teachers also need hardly any comments. They are quite appropriate statements which have been found to be attributed to liked and disliked teachers. This further makes the things clear that teachers as found liked and disliked by students on the basis of choices received by them (teachers) on Sociometric Test are correct and sound. It further justifies the use of Sociometric Test and analysis made in Chapter VI on Teacher-Pupil & Pupil-Teacher Relationship.

Yes, we had found in the case of boys a perfect relationship between the percentage of students liking and disliking individual teachers and the percentage frequencies

of positive and negative statements received by them respectively. But there was some disparity in the case of girls' schools. Girls have attributed some positive statements to disliked teachers too. And girls have attributed some negative statements to liked teachers too. We discuss below this disparity.

TABLE SHOWING NEGATIVE STATEMENTS ATTRIBUTED BY BOYS TO ONLY REJECTEE TEACHERS BUT BY GIRLS TO ACCEPTEE TEACHERS

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
1	12	He leaves the class and engages himself in gossip.
2	13	He is not able to complete the courses well in time.
3	47	He gives us trouble unnecessarily.
4	86	He disheartens us by saying "You cannot learn anything".
5	94	He reads newspapers and magazines in the class.

These five statements are clearly related to day-to-day teaching and behaviour of teachers. Boys have attributed these statements to rejectee teachers whereas these statements have been found to be attributed to acceptee teachers by girls. We can infer from this that girls students perceive both good and bad points in all teachers.

TABLE SHOWING POSITIVE STATEMENT ATTRIBUTED BY BOYS TO ONLY ACCEPTEE TEACHERS BUT BY GIRLS TO REJECTEE TEACHERS

Statement No. on check-list 71: We can learn a lot from his life.

We can say, girls do not approve of too idealistic a teacher.

TABLE SHOWING POSITIVE STATEMENTS ATTRIBUTED BY BOYS TO ONLY ACCEPTED TEACHERS BUT BY GIRLS TO BOTH ACCEPTED AND REJECTED TEACHERS

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
1	6	He removes our difficulties of the lessons taught by him.
2	15	He himself acts in the manner in which he wants us to.
3	29	He has great sympathy for us in his heart.
4	35	He does not like private tuitions.
5	74	He is an ideal teacher.
6	90	We like his method of teaching.

We may conclude that the girls have found both good and bad points in liked as well as disliked teachers. But boys have found only good points in liked teachers and bad points only in disliked teachers.

TABLE SHOWING NEGATIVE STATEMENTS ATTRIBUTED BY BOYS TO ONLY REJECTED TEACHERS BUT BY GIRLS TO BOTH ACCEPTED AND REJECTED TEACHERS

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
1	27	He does not consider any body else an equal.
2	42	He asks us to engage him as a private tutor.
3	50	When we ask him some question, he tells us to consult some intelligent student.

Sl. No.	Statement No. on the check-list	Statements
4	69	He does not check the home-task himself but gets it checked by the students.
5	81	He cherishes revenge in his heart.
6	89	He simply wants to finish the course, whether we understand it or not.
7	97	He often sits in the class and asks us to do some work.
8	99	We are always frightened in his periods because of his strict behaviour.

It is evident that boys have attributed positive statements only to liked teachers and negative statements to disliked teachers. Whereas girls have attributed some of the positive statements to disliked teachers and negative statements to liked teachers too. This means girls are more critical in their perception of teachers than boys. They do find some good as well as bad points in all teachers. But still they have their own liked and disliked teachers as is quite evident in the analysis of Pupil-Teacher Relationship in Chapter VI.

Section III

Teachers' Likings and dislikings for students and the characteristics of students as perceived by teachers.

In the following analysis an attempt is made to answer the following two questions:

Q No. 1 Is there any relationship between the likings/dislikings of teachers for students and students' characteristics as perceived by teachers?

Q No. 2 Which category of characteristics (categories arrived at by the factor analysis, from the ratings of teachers) is more related to the likings and dislikings of teachers for students?

These two questions will be answered on the basis of ratings of teachers and their responses on check-list.

This section is divided into two parts:

Part E Analysis of the ratings of teachers on Rating Scale (App. 14).

Part F Analysis of responses of teachers on check-list (App. 15).

Q No. 1 Relationship between the likings of teachers for students and their characteristics as rated by teachers.

TABLE SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATION (r) BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS FOR STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALE AND THEIR RATINGS ON THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS.

Sl. No.	School	Number of students (N)	Degrees of Freedom (N-2)	Calculated (r)	Significance
1	B-1	48	46	.912	Very significance
2	B-2	28	26	.900	-do-
3	G-1	25	23	.949	-do-
4	G-2	27	25	.853	-do-

We find a very significant correlation between the likings of teachers for students and their characteristics as perceived by teachers. This is further substantiated by considering the ratings of teachers on the characteristics of students who are found as acceptee/rejectee on Sociometric Test and five-point Liking Scale.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN MEAN SCORES OF THE CHARACTERISTICS OF ACCEPTEE AND REJECTEEE STUDENTS ON SOCIOMETRIC TEST AND FIVE-POINT LIKING SCALE

1. Sociometric Test

School	Category	No	Mean	SD	Significance
B-1	Acceptee Rejectee	15 9	211.00 173.78	5.04 11.66	D=37.22 σ_D=4.79 CR=7.77 very significant
B -2	Acceptee Rejectee	11 7	201.45 169.57	14.18 23.96	D=31.88, σ_D=10.02 CR=3.18 very significant
G-1	Acceptee Rejectee	11 10	203.27 167.00	26.74 20.85	D=36.27, σ_D=10.42 CR= 3.48, very significant
G-2	Acceptee Rejectee	9 7	188.77 173.28	13.65 9.63	D=15.49, σ_D=5.82 CR= 2.66 very significant

2. Five-point Liking Scale

School	Category	No	Mean	SD	Significance
B-1	Acceptee Rjectee	18 5	209.72 149.80	13.34 23.30	D=59.92, σ_D=10.86 CR= 5.51 Very significant
B-2	Acceptee Rejectee	4 4	212.75 145.25	15.27 7.86	D=67.50, σ_D=8.58 CR=7.87 Very significant
G-1	Acceptee Rejectee	9 4	214.00 154.25	17.17 15.20	D=59.75, σ_D=9.51 CR= 6.28 Very significant
G-2	No rejected student				

Interpretations

We find a significant difference between the mean scores of acceptee and rejectee students as perceived by teachers. In all the schools, irrespective of sex differences, the mean scores of characteristics of acceptee students are significantly higher than those of rejectee students. From this we can infer that the likings and dislikings of teachers for their students are highly correlated with the characteristics of students as perceived by teachers themselves. Specifically, we can say, an industrious student, a student who is found interested in studies, the student who is respectful, disciplined, remains neat and clean, is active and has good habits is liked by teachers. On the other hand, a student who lacks these characteristics is disliked by teachers. This gives a statistical footing as well as establishes the validity of expressions of teachers recorded in Chapter V as to what makes the teachers like and dislike the students.

We have discussed acceptee and rejectee students as found on Sociometric Test and five-point Liking Scale taking into account the combined feelings of all the teachers for their students and the combined scores of all teachers on the characteristics of students on the Rating Scale. Following the same procedure, we examine below the difference between the scores of acceptee and rejectee students of each individual teacher and his score on the characteristics of these students.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN MEAN SCORES OF THE CHARACTERISTICS OF ACCEPTEE AND REJECTEE STUDENTS OF EACH INDIVIDUAL TEACHER ON SOCIOMETRIC TEST

School B-1.

Tr. No.	Category	No	Mean	SD	Significance
2	Acceptee Rejectee	6 5	45.83 34.80	3.08 8.68	D=11.03, σ_D=4.15 CR= 2.66, Very significant
3	Acceptee Rejectee	7 4	43.71 35.50	3.04 2.00	D= 8.21, σ_D=1.52 CR = 5.40 Very significant
4	Acceptee Rejectee	7 6	39.14 27.00	5.06 3.74	D=12.14, σ_D=2.44 CR= 4.97, Very significant
5	Acceptee Rejectee	7 7	42.00 27.71	7.23 9.35	D= 14.29, σ_D=4.46 CR= 3.20, Very significant

Teacher No. 1 did not have any rejectee student on the Sociometric Test. We find for four teachers a significant difference between the mean scores of the characteristics of acceptee and rejectee students.

School B-2.

Tr. No.	Category	No	Mean	SD	Significance
1	Acceptee Rejectee	6 6	44.50 25.00	3.04 5.80	D=9.50, σ_D=2.68 CR= 7.27, Very significant
2	Acceptee Rejectee	6 3	33.80 31.33	5.70 1.25	D= 2.47, σ_D=2.65 CR= .932 In-significant

contd..

Tr. No.	Category	No.	Mean	SD	Significance
3	Acceptee Rejectee	9 9	42.67 34.55	2.75 4.23	D=8.12, σ_D = 4.23 CR = 1.91 In-significant
4	Acceptee Rejectee	7 6	43.14 35.60	2.10 4.75	D=7.54, σ_D 2.27 CR= 3.32 Very significant
5	Acceptee Rejectee	7 6	38.71 24.00	6.39 6.66	D=14.71, σ_D= 3.65 CR=4.03 Very significant

We find that for Tr. No. 2 and Tr. No. 3 there is no significant difference between mean scores of the ratings on the characteristics of acceptee and rejectee students. We can infer from this that these two teachers do not perceive appreciable difference in the characteristics of students but still they like some students and dislike the others. For the remaining three teachers it is correct to say that rejectee students lack characteristics liked by teachers in students whereas the acceptee students possess the characteristics liked by teachers.

School G-1

Tr. No.	Category	No	Mean	SD	Significance
1	Acceptee Rejectee	6 5	38.50 28.80	10.17 1.72	D=9.70, σ_D 4.22 CR=2.29 Insignificant
2	Acceptee Rejectee	6 9	45.67 32.56	3.25 3.71	D= 13.11, σ_D=1.80 CR= 7.28 Very significant
3	Acceptee Rejectee	7 4	38.00 31.00	4.82 4.24	D= 7.00, σ_D= 2.79 CR = 2.51 In significant

contd..

Tr. No.	Category	No	Mean	SD	Significance
4	Acceptee Rejectee	3 4	49.33 31.75	0.94 5.06	D=7.58, σ_D=2.59 CR= 6.78 Very significant
5	Acceptee Rejectee	5 4	46.80 22.50	10.84 4.03	D=24.30, σ_D=5.25 CR=4.62, Very significant

We find the value of critical ratio (CR) significant at .05 level for all teachers. But for teacher numbers 1 and 3, we find that the values fall below 2.58 and remain insignificant at .01 level. We can say, here too, as interpreted for school B-2, that out of five teachers only 3 teachers perceive the differences in the characteristics of students whom they like and dislike.

<u>School G-2.</u>

Tr. No.	Category	No	Mean	SD	Significance
1	Acceptee Rejectee	6 4	41.83 33.25	2.54 1.64	D=8.58, σ_D= 1.32 CR= 6.50 Very significant
2	Acceptee Rejectee	7 6	40.28 34.33	3.30 2.75	D=5.95, σ_D=1.68 CR= 3.54, Very significant
3	Acceptee Rejectee	6 9	38.17 33.22	3.38 1.23	D=4.95, σ_D=1.44 CR= 3.43, Very significant
4	Acceptee Rejectee	8 3	39.25 32.67	1.98 .94	D=6.58, σ_D=.89 CR=7.39, Very significant
5	Acceptee Rejectee	6 5	41.50 31.40	7.32 4.03	D=10.10, σ_D=3.49 CR=2.89, Very significant

In this school, we find a significant difference between the mean scores of characteristics of acceptee and rejectee students of all teachers.

Conclusions

1. There is a significant correlation between the likings of teachers for students and the students' characteristics as perceived by teachers.

2. The students liked by teachers are perceived by teachers as possessing the characteristics liked by them in students.

3. The students disliked by teachers are perceived by teachers as lacking characteristics liked by them in students.

4. There are 7 out of 9 men and 8 out of 10 women teachers who depict a significant difference between the mean scores on the characteristics of acceptee and rejectee students.

Q No. 2 Likings and dislikings of teachers for students and characteristics of students in two categories arrived at in factor analysis from the ratings of teachers

From the ratings of teachers on the characteristics of students, we had arrived at two categories of characteristics in factor analysis. For a ready reference, below are given these categories and their constituent characteristics.

Category 1 Characteristics relating to studies

1. Industriousness
2. Interested in studies
3. Regularity
4. Neat and clean
5. Active

Category 2 Characteristics relating to behaviour

1. Obedient
2. Respectful
3. Disciplined
4. Good behaviour
5. Good habits

We have fully discussed these categories in the preceding Section I of this Chapter. Here we examine the correlation between the likings and dislikings of teachers for students and the characteristics of these two categories as perceived by teachers in students.

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(r) BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE AND THEIR RATINGS ON THE TWO CATEGORIES OF CHARACTERISTICS OF STUDENTS

School	Number of Students (N)	Degrees of Freedom (N-2)	"r" for characteristics relating to		Significance
			Studies	Behaviour	
B-1	48	46	.80	.88	Very significant
B-2	28	26	.89	.82	-do-
G-1	25	23	.92	.93	-do-
G-2	27	25	.82	.54	-do-

We find both the categories of characteristics are significantly correlated with the likings of teachers for students. From this we can infer, students are liked when they are both good at studies and are well behaved.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN MEAN SCORES OF THE CHARACTERISTICS OF STUDENTS RELATING TO STUDIES AND BEHAVIOUR AS PERCEIVED BY TEACHERS IN STUDENTS

School	Category of characteristics.	No	Mean	SD	Significance
B-1	Studies Behaviour	48 48	89.18 98.60	14.45 11.50	D=9.42, σ_D=2.66 CR= 3.54 Very significant
B-2	Studies Behaviour	28 28	91.82 95.39	15.00 10.70	D= 3.57, σ_D=3.48 CR= 1.02 Insignificant
G-1	Studies Behaviour	25 25	85.00 98.60	3.16 2.49	D=13.60, σ_D=.80 CR=17 Very significant
G-2	Studies Behaviour	27 27	91.30 91.30	7.65 6.05	D = 0 CR= 0 Insignificant

It is found that for schools B-1 and G-1, there is a significant difference between the mean scores on the characteristics of two categories. From this we can infer that teachers have made obvious distinction in two categories of characteristics of students. We have also found significant correlation between the likings of teachers for students and the scores on the characteristics of two categories. We say teachers in these two schools have made distinction in these two categories and their likings for students are highly correlated with both the categories of characteristics. But,

for schools G-2 and B-2, we do not find any significance of difference between the mean scores on the two categories of characteristics. We will keep this thing in view while interpreting the following tables.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN MEAN SCORES OF THE CHARACTERISTICS RELATING TO STUDIES AND BEHAVIOUR OF ACCEPTEE STUDENTS

Acceptee Students on Sociometric Test

School	Characteristices relating to	No	Mean	SD	Significance
B-1	Studies Behaviour	15 15	102.73 108.26	9.48 7.07	D=5.53, σ_D=3.05 CR= 1.81 In-significant
B-2	Studies Behaviour	11 11	100.73 100.73	6.64 6.64	D= 0 CR= 0 In-significant
G-1	Studies Behaviour	11 11	96.27 107.00	15.06 10.30	D=10.73, σ_D=5.50 CR= 2.49 In-significant
G-2	Studies Behaviour	9 9	93.33 95.44	6.21 6.46	D=2.11, σ_D=2.99 CR= .705 In-significant

We find in each case non-significant difference between the scores of two categories of acceptee students. We can say, teachers perceive characteristics of both categories in the students whom they like in the class. This is further substantiated by the following table.

TABLE SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATION(r) BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE AND THEIR RATINGS ON THE TWO CATEGORIES OF ACCEPTEE STUDENTS

School	Number of students (N)	Degrees of Freedom (N-2)	"r" for characteristics relating to		Significance
			Studies	Behaviour	
B-1	15	13	.797	.886	Very significant
B-2	11	9	.708	.724	Significant
G-1	11	9	.876	.917	Very significant
G-2	9	7	.930	.907	Very significant

Both the categories of characteristics are found to be highly correlated to the acceptee students of the teachers. The interpretation is further supplemented by the following table:

Acceptee students on five-point Liking Scale

School	Characteristics relating to	No	Mean	SD	Significance
B-1	Studies Behaviour	18 18	101.88 107.83	9.43 6.71	D=5.45, σ_D=2.73 CR=2.17 Insignificant
B-2	Studies Behaviour	4 4	105.50 107.25	8.52 8.42	D=1.75, σ_D=5.59 CR= .31 Insignificant
G-1	Studies Behaviour	9 9	102.55 111.44	10.09 7.51	D=8.89, σ_D=4.19 CR=2.12 Insignificant
G-2	Studies Behaviour	5 5	100.60 98.40	3.49 6.80	D=2.20, σ_D=3.41 CR= .64 Insignificant

Conclusion

Students liked by teachers both in the boys' and the girls' schools

are found to have been perceived to have characteristics of both categories, that is, those students are liked by teachers who are both industrious, interested, regular, neat and clean, active and are obedient, respectful, disciplined, well-behaved and have good habits.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE OF DIFFERENCE BETWEEN MEAN SCORES OF THE CHARACTERISTICS RELATING TO STUDIES AND BEHAVIOUR OF REJECTEE STUDENTS

School	Characteristics relating to	No.	Mean	SD	Significance
B-1	Studies Behaviour	9 9	80.22 93.55	7.85 7.45	D=13.33, σ_D=3.0 CR=3.70, Very significant
B-2	Studies Behaviour	7 7	82.71 86.85	14.33 9.83	D=4.11, σ_D=6.57 CR=.630, Not significant
G-1	Studies Behaviour	10 10	75.90 91.10	10.74 10.97	D=15.20, σ_D=4.86 CR=3.12, Very significant
G-2	Studies Behaviour	7 7	86.86 86.42	6.13 4.08	D=.44, σ_D=2.78 CR=.158, Not significant

We find for schools B-1 and G-2, significant difference between the mean scores of characteristics of two categories. To find out to what category the rejectee students are more correlated, we have computed the coefficients of correlation between the total scores on five-point Liking Scale and scores on two categories of characteristics.

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(r) BETWEEN THE TOTAL SCORES ON FIVE-POINT LIKING SCALE AND THEIR SCORES ON TWO CATEGORIES OF CHARACTERISTICS OF REJECTEE STUDENTS AS FOUND ON SOCIOMETRIC TEST

School	Number of students (N)	Degrees of Freedom (N-2)	"r" for characteristic relating to		Significance
			Studies	Behaviour	
B-1	9	7	.785	.798	Significant
B-2	7	5	.810	.898	-do-
G-1	10	8	.900	.887	-do-
G-2	7	5	.349	.687	Insignificant
Boys'	16	14	.660	.821	Significant
Girls'	17	15	.817	.793	Significant

We find in the combined analysis, the coefficient of correlation is higher for characteristics relating to behaviour for boys' school and it is higher for characteristics relating to studies for girls' school. From this we can infer, men teachers reject (dislike) a student more because of lack of characteristics relating to behaviour and women teachers dislike a student more when they find him lacking in characteristics relating to studies. We look into this analysis with the help of supplementary tool - a check-list as has been discussed earlier.

Part F <u>Analysis of responses on check-list</u>

A fifty-point check-list (Appendix 15) was administered on teachers to get a supplementary as well as an additional information from teachers regarding students liked and disliked by teachers. The procedure adopted in its construction has already been discussed at the end of Chapter V.

This check-list was administered on all teachers individually. It was the month of December when half-yearly examinations were going on. The teachers had more leisure and relaxed time in the school as they were expected to perform only supervisory duty for two or three hours. Some teachers did say that they got a good assignment from the investigator in their free days. It was noticed that teachers took at least half an hour to give their responses to this check-list. One teacher in the boys' school took 70 minutes to complete it. The investigator had a sigh of relief when he got this check-list completed from all teachers. From this check-list we have the following information:

Teachers' check-list for students:

TABLE SHOWING STATEMENTS OF THE CHECK-LIST APPLICABLE TO ACCEPTEE AND REJECTEE STUDENTS OF THE TEACHERS AS FOUND ON SOCIOMETRIC TEST IN EACH SCHOOL

Sl. No.	Statements applicable to	School Numbers			
		B-1	B-2	G-1	G-2
1	Acceptee	2,6,9,10,13,14,15,21,25,32,44,47,49,50	2,9,13,14,15 25,30,32,34,43,44,47,49,50	2,8,9,13,14,25,32,34,39,40,43,44,47,48,49,50	2,5,9,13,14,32,34,40,43,44,47,50
2	Rejectee	1,3,4,7,8,16 17,18,19,22,26,27,31,33,35,37,39,42	1,7,8,10,12,16,17,19,21,22,26,28,29,31,33,35,36,38,39,41,42,46,48	3,4,10,11,15,16,17,18,20,22,24,28,31,33,36,37,38,41	1,4,6,11,12,15,17,18,25,26,28,31,45
3	Both to Acceptee & Rejectee	11,12,23,28,29,36,38,40,46	3,4,5,11,18,20,23,24,27,37,40,45.	6,7,12,19,21,23,26,27,29,35,42,45,46	16,19,36,37,38,39,49.
4	None	5,20,24,30,34,40,41,43	6	1,5, 30	3,7,8,10,20,21,22,23,24,27,29,30,33,35,41,42,46,48

From the above table, we arrive at the following table:

TABLE SHOWING STATEMENTS OF THE CHECK-LIST APPLICABLE TO ACCEPTEE AND REJECTEE STUDENTS OF THE TEACHERS IN COMBINED BOYS' AND GIRLS' SCHOOLS

Sl. No.	Statements applicable to	Boys' school	Girls' school
1	Acceptees	2,6,9,13,14,15,25 30,32,34,43,44,47, 49,50	2,5,8,9,13,14,32,34 39,40,43,44,47,48, 50
2	Rejectees	1,3,4,7,8,16,17,19, 22,26,27,28,29,31, 33,35,36,38,39,41, 42,45,46,48	1,3,4,6,10,11,12,15 16,17,18,20,22,24,26, 28,31,33,36,37,38,41, 45
3	Both Acceptees and Rejectees	5,10,11,12,18,20, 21,23,24,37, 40	7,19,21,23,25,27,29, 35,42,46
4	None	nil	30

From this table we have the following analysis:

I. Statements attributed to Acceptee students both by men and women teachers.

Sl. No.	Statement No.	Statement attributed to students who
1	2	are helpful to their classfellows in studies,
2	9	take active part in co-curricular activities,
3	13	are intelligent as well as industrious,

contd..

Sl No.	Statement No.	Statement attributed to students who
4	14	are not very intelligent but industrious,
5	32	are exceptionally well-mannered,
6	34	are always with the teachers trying to win their favour,
7	43	bring personal problems to teachers,
8	44	are cheerful,
9	47	take initiative in doing good things,
10	49	are quite reliable,
11	50	are humble.

Obviously Statement Nos. 2,13,14, relate to the field of studies whereas the rest of the statements depict the behaviour of students. It substantiated our earlier interpretation that students liked by teachers are both good at studies and are well-behaved. Here our acceptee students are liked students by their teachers. Statement No. 34, should not give any unhealthy connotation as if it stands for simple flattery from students but it should mean students liked by teachers pay regards to their teachers.

II. Statements attributed to Rejectee students both by men and women teachers.

Sl. No.	Statement No	Statement attributed to students who
12	1	run away from the school,
13	3	are quarrelsome with classmates,
14	4	do not give good response to questions,
15	16	are slow learners or dull,

contd..

Sl. No.	Statement No.	Statement attributed to students who
16	17	are found quite irresponsible,
17	22	pay no heed to suggestions,
18	26	do not submit their home-task,
19	28	remain mostly absent,
20	31	are in the habit of making lame excuses,
21	33	are conspiciously ill-mannered,
22	36	do not get their difficulties solved,
23	38	do not like bringing their books to the class,
24	41	indulge in anti-social habits,
25	45	are gloomy.

Rejectee students are disliked students by their teachers. Here again, we find both types of statements i.e. relating to studies e.g. Statement Nos. 4,16,22, 26,36, 38 and rest of statements relate to the behaviour of students. From both the above tables, we get the information about the type of students liked and disliked by teachers. Not only this, but also this establishes the validity and reliability of information regarding likes and dislikes of teachers for students as found on Sociometric Test.

III. Statements attributed to both acceptee and rejectee students both by men and women teachers.

Sl. No.	Statement No.	Statements attributed to students who
26	21	are inattentive in the class,
27	23	are talkative.

We can say an inattentive and talkative student is disliked when he or she is not good at studies and not well-behaved. But the same inattentive and talkative student may be liked if he is otherwise good at studies and is found well-behaved.

IV. Statements attributed by men teachers to acceptee but by women teachers to rejectee students.

Sl. No.	Statement No	Statements attributed to students who
28	6	are found crazy about fashions,
29	15	are intelligent but shirk work.

Strange it is, men teachers like students who are crazy about fashions and those who are intelligent even if they shirk work. On the other hand, women teachers dislike students who are crazy about fashions and shirk work although they are perceived to be intelligent.

V. Statements attributed by women teachers to acceptee but by men teachers to rejectee students.

Sl. No.	Statement No.	Statements attributed to students who
30	8	criticize the teachers unnecessarily,
31	39	are ring leaders,
32	48	argue with the teachers unnecessarily.

All these three statements relate to the behaviour of students. That means the students to whom these are

attributed are liked by women teachers but disliked by men teachers. This again goes to substantiate our previous finding that men teachers are much concerned about the characteristics of students relating to their behaviour whereas women teachers are concerned about the characteristics of students relating to their studies.

VI. Statements attributed by women teachers to acceptee but by men teachers to both acceptee and rejectee students.

Sl. No.	Statement No	Statements attributed to students who
33	5	tamper with the entries in the Progress Report,
34	40	simply cram the lessons.

From Statement No. 40, we can infer that women teachers like students to cram the lesson or they like the student who is found to be good at studies by one way or the other. Similarly, from Statement No. 5, we can say there is a strong desire in women teachers to see to students' good performance in studies. However, this interpretation does not hold good for men teachers as the students to whom these statements are attributed are both liked and disliked by teachers.

VII. Statements attributed by men teachers to both acceptee and rejectee students but by women teachers to only rejectee students.

Sl. No.	Statement No	Statements attributed to students who
35	10	copy home task,
36	11	avoid taking part in co-curricular activities,
37	12	are in the habit of showing themselves off,

contd..

Sl. No.	Statement No	Statements attributed to students who
38	18	careless in studies,
39	20	create disturbance in the class,
40	24	ask irrelevant question,
41	37	do not keep their note-books neat and clean.

It shows that women teachers like students who take part in co-curricular activities as well as are careful in studies. Most of the rejectee students of the women teachers are attributed with the statements depicting their apathy towards studies. But the same can not be said for men teachers as they have attributed statements relating to studies both to acceptee as well as rejectee students.

VIII. Statements attributed by women teachers to both acceptee and rejectee students but by men teachers to only rejectee students.

Sl. No.	Statement No.	Statements attributed to students who
42	7	are in the habit of using unfair means,
43	9	take an active part in co-curricular activities,
44	27	are mischievous,
45	29	neither study nor let others study,
46	35	read cheap or undesirable literature,
47	42	do not confess their faults,
48	46	tell lies.

Exactly, the opposite interpretation goes for VIII as has been made for VII. It again substantiates our

previous interpretation that men teachers are more concerned with the characteristics of students relating to their behaviour than to their studies. Again, Statement No. 25 is attributed by women teachers to both acceptee and rejectee students whereas men teachers attribute it to only acceptee students - that is they do not telerate at all any irrelevant questions in the class from students.

We conclude with the retention of our hypothesis that teachers in boys' and girls' schools differ in their perception of characteristics of students whom they accept and reject in the class. Both of them accept students who are good at studies as well as are well-behaved.

But men teachers reject students who are not well-behaved i.e. not respectful, not obedient etc. whereas women teachers reject students who are not good at studies i.e. do not take interest, are not regular and do not take pains.

<u>Summary of the findings of this Chapter.</u>

(i) Students have perceived the characteristics of teachers in the following two categories:

(a) Characteristics relating to classroom teaching work such as method of teaching, taking of periods, use of time in the class, and how much the students are able to understand what is being taught by the teacher.

(b) Characteristics relating to their behaviour such as, affectionate treatment, impartiality and leniency and their telling of good things to students in the class.

(ii) Teachers have perceived the characteristics of students in the following two categories:

(a) Characteristics relating to their studies such as their interest in studies, how they work at studies (industrious) and how regular they are.

(b) Characteristics relating to their behaviour such as how far they are respectful, obedient, and well-behaved.

(iii) Students, both boys and girls, accept and reject teachers as they perceive characteristics liked by them in teachers.

(iv) Students accept teachers or reject teachers when they find them possessing or not possessing the characteristics of both categories.

(v) Girls are more critical in their perception of characteristics in teachers than boys. Girls see both good and bad in all liked and disliked teachers by them. But boys see good points in liked teachers and bad points in disliked teachers only.

(vi) Girls are concerned more about the behaviour of teachers than their teaching.

(vii) The students liked by both men and women teachers possess the characteristics liked by them in students.

(viii) The students disliked by teachers are perceived by teachers as lacking characteristics liked by them in students.

(ix) Students liked by teachers both in boys' and girls' schools are found to have been perceived to have characteristics of both categories.

(x) Men teachers reject (dislike) a student more because of lack of characteristics relating to behaviour and women teachers dislike a student more when they find him lacking in characteristics relating to studies.

CONCLUSIONS

Women teachers and girls students lay more emphasis on the behaviour of each other while men teachers lay more emphasis on the studies of students and boys are more particular about the 'teaching' of teachers.

This conclusion leads us to retain our hypothesis that the characteristics of teachers as liked by their students and the characteristics of students, as liked by their teachers in boys' and girls' higher secondary classes differ from each other.

REFERENCES

1. Cattell, Raymond B (1957): Personality and Motivation Structure and Measurement; Yorkars-on-Hudson; New York.

2. Cronbach, L.J. (1960): Essentials of Psychological Testing; Second Edition: Harper & Brothers, New York.

3. Fruchter, Benjamin, (1967): Introduction to Factor Anlaysis; Affiliated East-West Press Pvt. Ltd., New Delhi.

4. Guilford, J.P.(1954): Psychometric Methods (2nd. Ed.) McGraw-Hill Book Company, Inc. New York.

5. Thomson, Sir Godfrey (1956): The Factorial Analysis of Human Ability; University of London Press Ltd.

CHAPTER VIII

JOB SATISFACTION

Introduction

In cognizance of the fundamental role of teacher-pupil relationship in any fruitful pursuit of education in schools, we have discussed the characteristics of these two elements, mainly responsible for the day to day deliberations of the school programme. However, the teacher, a senior partner in these relations, placed in a more privileged position, is the master of the situation. Much has been said and written about the desirable and essential qualities of an ideal teacher. But the practical aspect of the situation seems to have been over-looked. Let the teacher be the custodian of all these fine traits of a person. It is still quite possible that he fails to render his services quite effectively. All the qualities of an individual are of no avail, if the teacher is unable to find any satisfaction in his teaching profession which calls for his enthusiasm, will and vigour to bring in his daily work. It may be said that job-satisfaction itself contributes towards the possession of desirable characteristics by teachers. The question that arises here is of primary importance, that is, how far an individual teacher feels satisfied in school teaching profession?

A job is merely an assignment, a temporary phase

or a task upon which an individual casually embarks. A vocation is a permanent phase of one's life in which one engages onself. The profession entails decencies of human life, the dedication, obligation and faithfulness in its accomplishment. Necessarily, teaching has been well recognized as a profession and teachers are professional workers in it.

Necessarily, satisfaction connotes happiness of the mind. It stands for quite a healthy and sound state of mind. It depicts high and lofty spirits of an individual. In the words of Jones, J. Arthur (1963, pp 261) "Satisfaction is a state of mind or an emotion that normally results from the successful attempt to reach a goal or satisfy a felt need."

In this context, it is pertinent to look into the needs of an individual, the fulfilment of which is the source of satisfaction of all human beings. Roe, Anne (1956 pp 25) has illustrated Maslow's (1954) arrangement of basic needs in a hierachy of prepotency as follows:

1. The physiological needs
2. The safety needs
3. The need for belongingness and love
4. The need for importance, respect, self esteem
5. The need for information
6. The need for understanding
7. The need for beauty
8. The need for self realization

The order of potency is usual but not invariable for all persons. Roe (pp 35) has quoted Centers, R Study (1948) which stands as the testimony of Maslow's Theory

for occupational psychology. In other studies, particularly of morale and of job-satisfaction, there is much support to Maslow's view.

Roe (1956 pp. 31) remarks:

> "There is no single situation which is potentially so capable of giving some satisfaction at all levels of basic needs as is the occupation." This justifies that "there is more to a job than making a living."

It is quite befitting to quote Jones (1963 pp262):

> "The types of activity which give satisfaction vary with different individuals. Some get their satisfaction in the production of articles made out of cloth, wood, metal or plastic. Others get satisfaction from gardening, horticulture, farming or forestry; and others from working with people in such occupations as teaching, nursing, medicine, the law and social work. The hope of job-satisfaction may serve as a guide in choosing an occupation by providing a comparison of the activities that give the individual satisfaction with those involved in various occupations."

> "In some cases, it may not be necessary or possible to choose an occupation that satisfies. The important objective, however, is to find satisfaction, somewhere in one's life - in the job, the home, civic life, the church or recreation. The ideal life is one in which each element supplements and enhances the value of total in the attainment of satisfactory life goal."

Ginzberg etc. (1956) have discussed accidental, impulsive and developmental theories of occupational choice. We do not go into the controversy of these theories because as such here we are interested in studying satisfaction enjoyed by teachers who have already made their choice.

Wynn, Richard (1960 pp 3-5) remarks:

> " Except for choosing your husband or wife, your most important decision in life is the choice of your occupation - your life happiness will be closely related to your job happiness. Next to your family, your job is probably the greatest determinent of your enjoyment of life."

Super has surveyed the work on job satisfaction in the Chapter 1 entitled "Theory of Vocational Development" in Hopson & Others (1968) book entitled "The Theory and Practice of Vocational Guidance." Super has quoted Scot (1931) and Strong (1931). These writers are reported to have stressed the role of intelligence and interest in adjustment to the occupation or to the job in their theories of job satisfaction. Hoppock's work (1935) and Super's work (1939) in job satisfaction have emphasized the importance of status given to the worker by his job, status both in the sense of group membership or belongingness and of prestige.

Super in this book ofHopson & others (1968 pp 20) has remarked:

> "While researchers interested in the role of one kind of factor or another have tended to emphasize the signal importance of that type of factor, there is nothing inherently contradictory or mutually exclusive in these findings. They can all be included in a comprehensive theory of job satisfaction or work adjustment. This is the theory that satisfaction in one's work and on one's job depends on the extent to which the work, the job, and the way of life that goes with them, enables one to play the kind of role that one wants to play. It is again, the theory that vocational development is the development of a self-concept, that the process of vocational adjustment is the process of implementing a self concept, and that the degree of satisfaction attained is proportionate to the degree to which the self-concept has been implemented."

Necessarily, this theory of job-satisfaction, asserts that work is a way of life. The theory, known as self-concept

theory maintains that maximum personal adjustment and adequate vocational adjustment are most likely to result when both the nature of work itself and the way of life that goes with it are congenial to the aptitudes, interests and values ofthe person in question. Fournet P and others (1966) have given a comprehensive article in this very book (Hopson 1968) entitled "Job Satisfaction: Issues and Problems." The writers have developed the article on the following heads:

(i) Methodological approaches

(ii) Factor associated with job satisfaction

(iii) Consequences of job satisfaction

(iv) Theoretical issues and problems

Here we are interested in selecting our own method of examining job-satisfaction of teachers at work. The article discusses numerous data-collection techniques employed in job-satisfaction studies i.e. questionnaires, interviews, rank order studies, sentence completion test and critical incident inquiries. The writers do not commit themselves to a particular techmique.

Smith (1963) has been quoted as:

> "Smith, proposes that job satisfaction is a function of the perceived characteristics of a job in relation to an individual's form of reference. A particular job condition, on the basis of this theoretical position, can be a satisfier, dissatisfier, or irrelevant depending on conditions in comparable jobs, conditions of other people of the same qualifications and past experience of the individual, as well as on numerous situational variables of the present job. Thus job satisfaction is not an absolute phenomenon but is relative to the alternatives available to the individual."

After having made this survey, it was decided to adopt "Attitude" approach for the determination of job-satisfaction of teachers.

Attitude touches upon cognition, affection, conation - the entire structure and content of mental life. "Dictionary of Education" Carter, V. Good (1959) defines attitude as " a state of mental and emotional readiness to react to situations, persons, or things in a manner in harmony with a habitual pattern of response previously conditioned to or associated with these stimuli." According to Thurstone (1929), attitude denotes the sum total of a man's inclinations and feelings, prejudice or bias, pre-conceived notions, ideas, fears, threats and convictions about any specific topic. At another place Thurstone (1946) defines an attitude as the degree of positive or negative affect associated with some psychological object.

Edward Allen (1957 pp 165) has made following specific suggestions for the statements to be included in the attitude scale.

1. Avoid statements that refer to the past rather than to the present.

2. Avoid statements that are factual or capable of being interpreted as factual.

3. Avoid statements that can be interpreted in more than one way (ambigious).

4. Avoid statements that are irrelevant to the psychological object under consideration.

5. Avoid statements that are likely to be endorsed by all or by none.

6. Select statements that are believed to cover the entire range of the affective scale of interest.

7. Keep the language of the statements simple, clear and direct.

8. Keep the statements short, rarely exceeding twenty words.

9. Each statement should contain only one complete thought.

10. Avoid statements containing universals, such as all, always, none and never, which introduce ambiguity.

11. Use simple sentence rather than compound or complex sentences.

12. Use with care and consideration words such as only, just, merely etc.

13. Avoid the use of words not comprehensible to the subjects for the administration of final scale.

14. Avoid the use of double negatives.

Keeping this in view, we have constructed the job-satisfaction scale (Appendix 17) following Likert's techniques in the construction of attitude scale.

<u>Construction of Satisfaction Scale</u>

The following steps were involved in the construction of the scale:

<u>Step I</u> A questionnaire (Appendix 17A) was mailed to nearly 100 persons who were once teachers working in

schools, but had given up school teaching. Two main questions were asked in this questionnaire:

(a) In order of priority, give reasons for your dissatisfaction with your job, which led you to leave teaching in the schools? (It is assumed that their cause of dissatisfaction led them to leave their teaching profession).

(b) In view of the implementation of improved grades as recommended by Kothari Commission, how do you feel about teaching in the schools again?

Albeit, self-addressed envelopes were sent along with the questionnaire, only 32 people responded.

Some of the statements given by the persons in reply to the question (a) are reproduced below:

(Designation in parentheses stands for one's present job).

1. Low pay, otherwise, I quite like teaching in school. Essentially, there is no difference in school or college teaching.

- (Lecturer in a college)

2. I was interested in theory of education rather than subject-matter. I feel happy working with adults rather than children. School teacher life is rather dull and dominated.

- (A Lecturer in a trg. college)

3. No appropriate reward for the work. Success of the teacher is not wholly in his hands but on the mercy of the quality of the students.

Poor social status of the teacher inspite of his position being maker of the future. No future chances, once a teacher always a teacher.

- (An Advocate)

4. Low pay, over work, no prestige, Dictatorial attitude of the headmaster who will listen to no argument.

- (A Lecturer)

5. Low social status, attitude of educational authorities, immature students, long working hours, heavy teaching load, clerical work.

- (A Lecturer in a trg. college)

6. No dissatisfaction, left for better prospects.

- (A Research Assistant)

7. Low salary, no status, no respect,no promotion steps.

- (A Director of Physical Education)

8. I was never dissatisfied as long as I stayed in school cadre. In order to improve my qualifications and promote professional growth, I continued my further studies and as a consequence of my efforts, I was promoted to my present position.

- (A Senior Lecturer)

9. Talents and Intelligence being dwarfed. School teaching - very boring.

- (A Lecturer in a trg. college)

10. Since, I was interested in politics, so I left the profession. There is no other reason.

- (An Ex-M.P.)

11. Why I come to a college? The only reason is better salary.

- (A Reader in Education)

12. No respect in society at all, no social status, emoluments are meagre, less chances of promotion. It is a stagnant profession. Teachers cannot enjoy earned leave, in other words, one cannot enjoy holidays at one's discretion.

- (An Inspector of Rationing)

13. I left the school as teaching in a college was more remunerative and honourable.

    - (A Lecturer)

14. Low income, low social status, no facilities for studies.

    - (A Lecturer)

15. Lack of understanding, unfair and partial treatment of and undue interference by the Managing Committee, sometimes in the day to day affairs of the school.

    - (An Interpreter)

16. No future prospects, no respect in the eyes of the public, our out-put always depends upon the stuff i.e. upon the students.

    - (A Lecturer)

17. High thinking and simple living under compulsion.

    - (A Sales representative)

18. Teaching in schools sucks intelligence as well as initiative.

    - (A lecturer in a trg. college)

Some of them have replied to the question No. (b).

One respondent writes:

> " But for the love of teaching, I would like to join the hierarchy of the respected teachers again, otherwise Kothari Commission's recommendations regarding improved grades offer little charm to me to revert to that profession."
>
> - (An Interpreter)

None of the respondents has replied this question in affirmative. Most of the respondents have written "Question does not arise" or left the space blank. It may be that they did not know about Kothari Commission recommendations.

Step II However, the statements on Q. No. 1, have served the following two purposes:

1. It gave the statements from the people who really felt dissatisfaction of school teaching profession.

2. It brought to light the specific area of dissatisfaction as:

   (a) low income
   (b) low status
   (c) bleak future prospects
   (d) no good service conditions
   (e) comparison with other professions

In all, 122 statements were noted. Some of the statements were included as such from the foregoing responses. Statements were also written from experience and from some studies made to probe into the attitude of teachers towards their profession. Statements specifically mentioned profession of school teaching and not merely teaching profession.

A check-list (Appendix 17B) of 122 statements was administered on 8 teachers working in 6 higher secondary schools of Delhi. They were requested to give their opinion whether the agreement to the statement on the part of a teacher connote his satisfaction or dissatisfaction in his job as a school teacher. They were asked to give their opinion in five alternatives i.e. if the agreement to the statement by the teacher expresses his strong satisfaction then they were to encircle (SS), if simply satisfaction then (S) and if it stood for normal state of mind, they were to encircle (N). Similarly they were to encircle (D), if in their opinion the agreement to the statement by a teacher expresses his dissatisfaction and they were to encircle (SD)

if the agreement to the statement speaks of strong dissatisfaction of a teacher in his job. However, these eight teachers were clearly told that the check-list does not mean to test their own satisfaction or dissatisfaction in their job. These eight teachers served as experts. This could be done with the administration of the check-list on psychologists, teacher-educators and the like people but when the scale under construction was meant for teachers, it was quite advisable to select some of them as experts. Teacher-educators were also consulted. Eleven statements were given by these teacher-educators which included in the previous list of 122 statements. Finally, those 80 statements out of 133 were selected for which most of the experts stated that the agreements of teachers to these statements spoke of their (teachers') satisfaction or disssatisfaction in their school teaching profession. Agreement to these fifty per cent i.e. 40 statements spoke of dissatisfaction of a teacher. We can say, these are the statements for which the experts agreed for, depicting satisfaction or dissatisfaction of teachers.

<u>Step III</u> These 80 statements were grouped together at random in a check-list (Appendix 17C) with 5 alternative choices for the subject i.e. SA - Strongly agree, S - Agree, U - Uncertain or Undecided, D - Disagree and SD - Strongly disagree. This check-list was administered individually on 122 teachers of different higher secondary schools including

both men and women. Out of these 112 check-lists, 100 were finally selected rejecting 12 found incomplete. Scoring on these statements was made as follows: For statements showing satisfaction scoring was made in order of 4, 3, 2, 1 and 0 for SA, A, U, D and SD respectively. The order of these hypothetical values was changed while scoring statements showing dissatisfaction. To make it clear the following table is given.

	SA	A	U	D	SD
Statements showing satisfaction	4	3	2	1	0
Statements showing dissatisfaction	0	1	2	3	4

On the basis of normal probability curve, 27 check-lists which scored maximum score and 27 check-lists which scored the minimum were sorted out.

Step IV To find out the discriminating power of each statement, the "t" value of each statement was calculated with the help of the following formula:

$$t = \frac{M_1 - M_2}{\sqrt{\frac{\Sigma x_1^2 + \Sigma x_2^2}{N(N-1)}}}$$

(Guilford, 1956 pp 220)

Table of "t" values for all statements is given in Appendix No. 17D.

Step V 15 statements showing satisfaction with the highest "t" values ranging from 16.5 to 2.35 and 15 statements showing dissatisfaction with the highest "t" values ranging from 10.44 to 4.50 were selected for the final scale. These 30 statements were grouped together by random sampling and the final scale with 5 pt. choices i.e. Strongly agree, Agree, Uncertain or Undecided, Disagree or Strongly disagree was constructed.

Step VI The Chi-square test of independence in Contingency table:

At the end of 30 statements (Appendix 17E) teachers were requested to tick mark one of the five given categories as applicable to them:

How do you feel at your job in schools?

Strongly Satisfied	Satisfied	Uncertain or Undecided	Dissatisfied	Strongly Dis-satisfied

The scale was administered on 129 teachers attending the Summer School doing their B.Ed. Course through Correspondence in the Central Institute of Education, Delhi. These 129 teachers represented nearly all parts of Delhi. On the basis of total score receiged by each teacher and the choice given by each teacher on one of the five categories, the following contingency table was arrived at:

TABLE SHOWING SATISFACTION AND THE TOTAL SCORE RECEIVED BY EACH TEACHER

Score	Strongly Satisfied	Satisfied	Uncertain or undecided	Dissatisfied	Strongly dissatisfied	Total
90-129	(2.635) 5	(22.32) 25	(1.178) 0	(4.03) 0	(.713) 1	31
60-89	(6.885) 6	(58.52) 63	(3.078) 5	(10.53) 6	(1.863) 1	81
30-59	(1.360) 0	(11.52) 5	(.608) 0	(2.08) 11	(.368) 0	16
0-29	(.085) 0	(. 72) 0	(.038) 0	(. 13) 0	(.023) 1	1
Total	11	93	5	17	3	129

The Chi-square test is applied to test the hypothesis:

" Scores on the Scale and satisfaction of the teacher in his job are unrelated or independent."

Step I "Independence value" for each cell was calculated which are represented in figures in parentheses with in the different cells.

Step II We found the difference between the observed and expected values for each cell, squared each difference and divided it by independence value.

We arrive at $\psi^2 = 98.24$, the value which does not lie in the table.

df = (5- 1) (5 - 1) = 16

This refutes the hypothesis and establishes that

satisfaction of the teacher in his job is dependent upon the score received by him on the scale.

We can say with confidence that the scale depicts satisfaction of the teacher on the basis of the score received by him.

Administration of the Scale

The satisfaction scale was administered on all 20 teachers of the final sample of this study. Teachers were requested to spare some time for this scale and give their responses quite honestly.

Observations and comments

It was observed from 5-6 teachers, that they took 15 to 20 minutes in giving their responses. Some teachers remarked as "Statements are quite interesting." Teachers were also seen laughing while giving their responses. However, it was asked, "Will you show this to our principal?" when they were reading statement No. 18 reading as "Principals of the schools do not act as friends and guides but become masters of the teachers." The investigator assured the teachers about the secrecy of their responses. It was encouraging to see that teachers enjoyed while responding to the statements. One lady teacher comments, "Teaching is a respectable job for ladies only". In response to statement No. 16 reading as "One should not advise one's sons and daughters to become teachers". One teacher had marked in the column of "Strongly agree" but as soon as

she thought of the statement and understood that "teachers" stand for school teachers, she at once changed her response to "Strongly disagree". Clearly it illustrates how the statement fetches out the inner feelings of the subjects. Some of the teachers had to be told that their responses should come from the real and practical situations as experienced and perceived by them rather than taking ideal conditions in view. "How can we determine the future course of a nation when nothing is within our limits", one teacher made these remarks while reading statement No. 5 saying "Teachers can determine the future course of a nation." One teacher reacts on the statement No. 28, "Teachers like a dull life"; as "Over-loaded with work. Burdened with clerical work; More clerical work than teaching work; I come prepared with so many things to do in the school, but here I forget, because of all rush of work; Teaching profession is a dull one because of correction work (Language teacher)." One teacher reading statement No. 6, "Teachers, if they want respect in the society because of their being teachers, will have to forgo some financial gains and work with a missionary spirit." said " भूखे पेट भजन होवे न गोपाला " "Empty stomach does not remember God".

These remarks, made on the basis of notings made by the investigator at the time of administration of satisfaction scale, give ample proof that the scale was able to peep into the minds of the teachers which speaks of their satisfaction in their jobs.

Hypothesis : Men teachers are less satisfied with their profession than women teachers and this factor effects accordingly their relationship with pupils.

Qualitative analysis and interpretation

TABLES SHOWING TOTAL SCORE RECEIVED BY EACH TEACHER ON SATISFACTION SCALE

Boys' Schools Maximum possible score is - 120

Teacher No	School B-1	School B-2
1	84	84
2	119	100
3	33	93
4	55	43
5	79	63

Girls' Schools

Teacher No	School G-1	School G-2
1	72	113
2	90	81
3	63	69
4	53	90
5	73	87

How accurately does the mean score in each sample school represent the mean of its parameter? For the answer

to this question we have calculated the standard error of mean in each of the 4 cases and their results are tabulated below:

School Number	Mean Score	S.D (σ')	Standard Error of Mean (SE mean) M	Mean Score differs from its parameter by the total score at .05 level
B-1	82.8	23.95	10.69	± 29.71
B-2	76.6	23.27	10.39	± 28.38
G-1	70.2	13.70	6.11	± 16.98
G-2	88.0	16.12	7.18	± 19.96

Standard error of mean measures the extent to which this mean is affected by:

(a) Error of measurement

(b) Sampling errors - difference occasioned by fluctuation from sample to sample.

As is clear from the table our mean scores in boys' schools are calculated as 82.8 and 76.6. Similarly, the mean scores in girls' schools are calculated as 70.2 and 88.0. These mean scores of teachers both in boys' schools and girls' schools fluctuate sufficiently. So we cannot credit the high values of SE simply to errors of measurement of satisfaction by our Satisfaction Scale. The high values of (σ') Standard Deviations also illustrate that the scores of individuals within each group diverge subs-

tantially from each other. The small size of the sample in each case (5 in all) may also be responsible for increasing the size of Standard error of mean. We come to the conclusion from the above table that the mean scores of satisfaction on this Satisfaction Scale calculated from the scores of 5 teachers in each case, do not represent the reliable mean scores of satisfaction of teachers working in either boys' or girls' schools.

We arrive at the similar two conclusions when we calculate the Standard Errors of Mean of Scores of all teachers (10 in each case) working in boys' and girls' schools. This is enunciated with the help of the following table:

Schools	Mean Score	SD (σ)	Standard Errors of Mean σ_M	Mean Scores differ from its parameter by the total score at .05 level
Boys'	79.7	22.33	7.66	± 17.33
Girls'	79.1	16.94	5.36	± 11.81

Here we find the values of SE of Mean have fallen thereby increasing the reliability of each Mean. However, the divergence of Mean Scores from their parameters in the ranges of ± 17.33 and ± 11.81 does not allow us to put in substantial confidence to believe or rely upon these Mean Scores for their parameters.

Null Hypothesis - Difference between the means of scores of satisfaction of teachers working in boys' school and girls' school is zero.

School	No. of teachers	Mean Score	SD (σ)
Boys'	10	79.7	22.33
Girls'	10	79.1	16.94

Boys' school σ_{M1} = 7.66

Girls' school σ_{M2} = 5.38

CR = .064

The value of .064 falls absolutely short of 1.96 and 2.58, the level of significance at .01 and .05. So, as such null hypothesis is retained and we say, as far as satisfaction in job is concerned teachers, working in boys' schools (men) and teachers working in girls' schools (women) do not constitute their separate entities. As far as satisfaction in job is concerned, we find no difference among women teachers and men teachers. This rejects our hypothesis that women teachers feel more satisfied in school teaching profession than men teachers.

Analysis of Job-Satisfaction of teachers and their relationship with students.

In this analysis, we will study:

(i) relationship of teachers' job satisfaction and their likings for students.

(ii) relationship of teachers' job satisfaction and students' likings for teachers.

(i) Relationship of teachers' job satisfaction and their likings for students.

TABLES SHOWING THE COEFFICIENT OF CORRELATION (rho) BETWEEN THE SCORES OF TEACHERS ON SATISFACTION SCALE AND NUMBER OF STUDENTS ACCEPTED AND REJECTED BY THEM ON FIVE-POINT LIKING SCALE

School B-1

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for making	
	Score	Rank	Accepted	Rejected	Acceptance	Rejection
1	84	2	18	9	3	1
2	119	1	35	3	1	5
3	77	4	6	4	5	4
4	55	5	10	8	4	2
5	79	3	30	7	2	3

(rho) for acceptance = .80

(rho) for rejection =-.30

School B-2

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for making	
	Score	Rank	Accepted	Rejected	Acceptance	Rejection
1	84	3	11	6	1	1.5
2	100	1	10	4	2	4
3	93	2	9	5	3	3
4	43	5	5	3	4	5
5	63	4	2	6	5	1.5

(rho) for acceptance = .60

(rho) for rejection = .08

School G-1

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for making	
	Score	Rank	Accepted	Rejected	Acceptance	Rejection
1	72	3	11	6	2.5	4
2	90	1	7	7	4.5	2.5
3	63	4	7	8	4.5	1
4	53	5	11	3	2.5	5
5	73	2	12	7	1	2.5

(rho) for acceptance = .65
(rho) for rejection = .95

School G-2

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for making	
	Score	Rank	Accepted	Rejected	Acceptance	Rejection
1	113	1	5	3	2.5	1.5
2	81	4	9	0	4.5	4.5
3	69	5	9	0	4.5	4.5
4	90	2	5	3	2.5	1.5
5	87	3	11	1	1	3

(rho) for acceptance = .65
(rho) for rejection = .95

Interpretations

1. We find a positive correlation for each one of the schools between scores of teachers on Satisfaction Scale and number of students accepted and rejected by them. This means number of students liked by teachers is positively

related to the satisfaction of the teachers feel in their teaching profession. This interpretation holds good more for men teachers in boys' schools than for women teachers in girls' schools.

2. However, we find a positive correlation between women teachers' score on Satisfaction Scale and number of students rejected by them. The same does not hold good for men teachers. This shows satisfaction of women teachers is significantly related with number of students accepted and rejected by them. Again, there is more (higher value of rho) relationship between the number of students rejected by them and the satisfaction determined on Satisfaction Scale. It shows that more a women teacher feels satisfied in her teaching profession, the more the number of students she rejects. It needs further investigation.

3. In the case of boys' schools, we find for schools B-1 and B-2 rho for rejections for students by teachers as -.30 and .08 respectively. This shows there is a negative relationship between the satisfaction felt by men teachers in their school teaching profession and the number of students rejected by them. This means the more a teacher feels satisfied in his profession, the more the number of students he accepts (likes) in the class.

The same interpretation is substantiated when we determine the coefficient of correlation between the scores of teachers on Satisfaction Scale and total scores given by them for their personal likings of all students on

five-point Liking Scale. The calculated values of these correlations are tabulated below:

TABLE SHOWING COEFFICIENT OF CORRELATION (rho) BETWEEN THE SCORES OF TEACHERS ON SATISFACTION SCALE AND SCORES GIVEN BY THEM TO ALL STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALE

Sl. No.	School Number	Calculated values of ϱ (rho)
1	B-1	+.90
2	B-2	+.50
3	G-1	-.30
4	G-2	-.52

We can again infer from this that men teachers' satisfaction in their profession is significantly related with their likings of students whereas it is negatively related with the likings of women teachers for their likings of students.

(ii) Relationship of teachers' job satisfaction and students' likings for teachers.

TABLE SHOWING THE COEFFICIENT OF CORRELATION (rho) BETWEEN THE SCORES OF TEACHERS ON SATISFACTION SCALE AND NUMBER OF STUDENTS ACCEPTING AND REJECTING THEM ON SOCIOMETRIC TEST

School B-1.

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for Receiving	
	Score	Rank	Accepting	Rejecting	Acceptance	Rejection
1	84	2	45	2	1	5
2	119	1	1	45	5	1
3	77	4	9	15	3	3
4	55	5	3	19	4	2
5	79	3	36	5	2	4

ϱ (rho) for acceptance = 0

ϱ (rho) for rejection = 0

School B-2.

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for Receiving	
	Score	Rank	Accepting	Rejecting	Acceptance	Rejection
1	84	3	6	19	4	2
2	100	1	16	2	2	4.5
3	93	2	24	2	1	4.5
4	43	5	10	10	3	3
5	63	4	3	21	5	1

ϱ (rho) for acceptance = .60
ϱ (rho) for rejection = -.62

School G-1.

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for Receiving	
	Score	Rank	Accepting	Rejecting	Acceptance	Rejection
1	72	3	20	4	1	5
2	90	1	4	17	4	1
3	63	4	5	14	5	2
4	53	5	18	5	2	4
5	73	2	12	10	3	3

ϱ (rho) for acceptance choices = -.20
ϱ (rho) for rejection choices = +.50

School G-2.

Tr. No.	Satisfaction		No. of Students		Rank for Receiving	
	Score	Rank	Accepting	Rejecting	Acceptance	Rejection
1	113	1	24	2	1	5
2	81	4	4	17	4.5	2
3	69	5	22	3	2	4
4	90	2	4	18	4.5	1
5	87	3	11	16	3	3

ϱ (rho) for acceptance = .22
ϱ (rho) for rejection = -.10

Interpretation

We do not find a significant correlation between the scores of teachers on Satisfaction Scale and number of students accepting and rejecting them on Sociometric Test. Surprisingly, the value of ρ (rho) goes even negative for school G-1. However, in the case of school B-2, we find a positive relationship between acceptance of teachers by students and their scores on Satisfaction Scale. It does indicate teachers' acceptance by number of students is related with their (teachers') feelings of satisfaction in their profession. This is further substantiated by ρ (rho) for rejection choices i.e. -.62 for this very school. It indicates teachers' rejection by students is negatively related to their feelings of satisfaction i.e. satisfied teachers are not rejected by their students. We still probe into this question further.

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION (rho) BETWEEN SCORES OF TEACHERS ON SATISFACTION SCALE AND SCORES RECEIVED BY THEM ON FIVE-POINT LIKING SCALE FROM STUDENTS.

Sl. No.	School Number	Calculated values of ρ (rho)
1	B-1	0
2	B-2	+ .50
3	G-1	+ .60
4	G-2	- .10

From each one of the two boys' and girls' schools, it is indicated that students' likings for teacher are positively related with the job-satisfaction of teachers in their school

teaching profession.

CONCLUSION

It is indicated that students' likings for teachers and teachers' likings for students are positively related with job-satisfaction of teachers in their profession of school teaching.

REFERENCES

1. Adaval, S.B. (1955): What the teachers dislike in their profession. Shiksha, Jan. 1955, 82-88.

2. Agarwal, Kailash Chand(1964): A Comparative Study of Thurstone's and Likert's Method of Measuring Attitude; M.Ed. (1963-64) Dissertation, unpublished, University of Delhi.

3. Agarwal, S.S.L. (1966): Attitude of Training College Teachers of Agra University towards their Profession; M.Ed. (1965-66) Dissertation, unpublished, University of Delhi.

4. Carter, V Good (1959): Dictionary of Education. McGraw-Hill Book Co. Inc. New York.

5. Centers, R (1948): Motivational Aspects of Occupational Stratification. Jr. of Soc. Psychol., 28, 187-217.

6. Chamberlain, Leo M., Lesbe W. Kindred John M. Mickelson (1966): The Teacher and School Organisation. Prentice Hall, Chapt. 19, 445-464.

7. Crow L.D. & Crow A. (1951): Mental Hygiene. McGraw-Hill Book Co. Inc. New York, pp 38.

8. Darley, G. John & Thedo Hagesah (1955): Vocational Interest Measurement. University of Minnesota Press.

9. Directorate (1966): National Foundations for Teachers' Welfare. Published by Directorate of Education, Delhi 1.

10. Edward, Allen L (1957) Techniques of Attitude Scale Construction, Appleton-Century, New York.

11. Evans, K.M. (1952): A Study of Attitude Towards Teaching as a Career. Brit. J. of Edu. 22, 63-69.

12. Ginzberb, Eli, Sol W. Ginsburg, M.D. Sidney Axelrad, John L. Herma (1956): Occupational Level. Columbia University.

13. Gopal, D.Rao (1965): A Study of Some Factors Related to Scholastic Achievement. Unpublished Ph.D. Thesis; University of Delhi.

14. Gould. R. George, Gerald Alan Yoakam (1954): The Teacher and His Work. Ronald Press Company, pp 3-22.

15. Guilford, J.P. (1956): Fundamental Statistics in Psychology and Education. McGraw-Hill Book Company Inc. London.

16. Hopson Barrie & John Hayer (1968): The Theory and Practices of Vocational Guidance. Pergamon Press.

17. Jones, J. Arthur (1963): Principles of Guidance. McGraw-Hill Book Company, pp 261-62.

18. Maslow (1954): Motivation and Personality. Harper, New York.

19. Panandikar (1957): The Teacher in India Today. Ministry of Education, Govt. of India, Pub. No. 273.

20. Peters, J. Herman, Collins, W. & Burnett Gail F. Farewell (1963): Introduction to Teaching. The McMillan Company pp. 68-74, 174-175.

21. Philip, C.T. (1956): Choosing a Career. Oxford University Press, 1956, pp. 68.

22. Phenix, H. Phillip (1958): Philosophy of Education. Henry Holt & Company, New York, Chap. 9, "Education as a Profession" pp. 154-176.

23. Prashar, Om Dutt (1963): The Attitude of Teachers of Secondary Schools in Delhi Towards Teaching as a Profession. M.Ed. (1962-63). Dissertation, unpublished, University of Delhi.

24. Raina, T.N. (1954): Construction of an Attitude Scale to Measure the Attitude of Teachers Towards Teaching as a Career. M.Ed. (1953-54); Dissertation, unpublished, University of Delhi.

25. Robbert, Hoppock (1935): Job Satisfactions. Harper & Brothers, 1935.

26. Robbert, Hoppock, & H.A. Robinson (1951): Job Satisfaction. Researchers of 1949. Occupations, 1, 29, 572-78.

27. Roe, Anne, (1956): The Psychology of Occupation. John Willey & Sons. Inc. New York, 281-285, 23-42.

28. Sahai, B.B(1951): Sources of Dissatisfaction among Higher Secondary Teachers of Delhi. M.Ed. (1950-51); Dissertation unpublished, University of Delhi.

29. Saroj, Sahai (1967): An Investigation into the Causes of Dissatisfaction among Teachers. M.Ed. (1966-67), Dissertation, unpublished, University of Delhi

30. Scot, W.D. Clothiers, R.C. & Mathewson S.B. (1931): Personal Management. New York, McGraw-Hill.

31. Smith, P.C. (1963): Strategy for Development of a General Theory of Job Satisfaction. Unpublished Manuscript, Ithaca, Cornell University.

32. Strong, E.K. (1931): Changes of Interest with Job. Stanford University Press, 1931.

33. Super, D.E (1939): Occupational Level and Job Satisfaction. J. Appl. Psychol. 23, 547-564.

34. Thurstone L.L. (1929): The Measurement of Attitude; Chicago, University of Chicago Press, pp 6-7.

35. Thurstone L.L. (1946): "Comment" American Journal of Sociology, 52, 39-50; 1946.

36. Virk, Mohinder (1955): Attitude of B.T. Students of Punjab towards Teaching as a Career. M.Ed. 1955. Govt. College, Jullundur. Panjab University.

37. Wynn, Richard (1960): Careers in Education. McGraw-Hill Book Co.

CHAPTER IX

TEACHER-TEACHER RELATIONSHIP

> "Whether or not a particular teacher is happy, succeeds in his classroom, and makes significant contributions to the overall school program, depends in no small measure upon his ability to fit smoothly into the ongoing structure of personal relations in which he finds himself."
>
> Yauch, A Willur (1966 pp 993)

Introduction

Teacher-Teacher Relationship is a matter of paramount importance to develop and sustain a healthy emotional and congenial atmosphere, so very essential for the smooth and effective functioning of the school. Teacher-Teacher Relationship determines the mental health of each teacher and speaks of the tone of the school. Again, these relations may fairly serve as a model for student-student and student-teacher relationships in the school.

James Monroe Hughes (1957 pp 19-20), while discussing encouraging factors for improving human relations in educational organization, pin-points a common goal, "a goal unique to the educational group and shared by all members of the group. This is the common aim of providing the best possible education for the children, youth and adults who come under their influence". Here it is quite

befitting to quote James Monroe as:

> "This common goal of all educators is a potent, integrating factor, a unifying feature of the staff of every educational organization, and one which therefore, lends much encouragement to the educator who is interested in improving personal relations. Actually, it is a goal which in itself should be construed to encompass the advancement of wholesome relations in every association within the school, teacher-pupil, teacher-teacher, teacher-administrator, administrator-public, or any other combination. How could an educational personnel be effective in getting others to improve in the skills necessary for the improvement of their relationships if the personnel itself exemplifies poor group relations?"

About poor relationships among teachers Chamberlain and others (1966 pp 398) have remarked:

> "Poor relationships among staff members can be traced to a variety of causes. Lack of administrative leadership is one of the causes. Instead of directing the thought and energy of teachers to problems of teaching and learning, the administrator permits their attention to focus on petty differences and personal irritations. Another cause is the failure of the school system to establish a definite philosophy and set of objectives to which teachers are asked to adhere. In the absence of these foundations, one teacher may hold to a point of view that is just the opposite of that held by another with the result that friction develops between them. Unethical conduct is occasionally a cause for dissension among the members of the staff. It may take the form of gossip, abuse and destructive criticism in public. The victims of this type of disparagement naturally become resentful and frequently engage in counter measures. Disturbances arise now and then among teachers when some of them shirk responsibilities and manage to secure a lighter load in terms of teaching assignments, extra-curricular activities, hall and lunch room duties or committee assignments."

About good relationships, we quote Thirty Third Year Book (1955 pp 216) of American Association of School Administrators:

> "Staff relationships are good when all members are working cooperatively and effectively toward goals that have meaning for the individual members of the staff and which promise to result in significant experiences for boys and girls. The development of such relationships is the foremost duty of the superintendent."

It is worth quoting this author again (pp 219) "Good staff relationships become means to an end."

The researcher painfully records that he finds no Research Study on these Relationships which may be referred to here.

Measurement of Teacher-Teacher Relationship

In our study of Pupil-Teacher Relationship, Teacher-Teacher Relationship is one of the factors, we are studying here. So, we do not propose to study Teacher-Teacher Relationship in detail. This study is confined to only those teachers who are teaching different subjects to the students which constitute the sample of this study. As stated earlier, we have two classes each for boys and girls. Here, we study teacher-teacher relationship in respect of the five teachers teaching in each of the four classes. In all, we study 4 groups, each group of 5 teachers, for the purpose of this study of Pupil-Teacher Relationship.

We have discussed pupil-teacher relationship in our Chapter VI. The study of teacher-teacher relationship seeks to study what the teachers think and feel about their colleagues. To find it out, teachers were requested to give choices among their colleagues, with whom they would like and dislike

to associate themselves in sociometric activities enlisted in Sociometric Test (Appendix 11). They were also requested to rate their colleagues for their personal likings for them on five-point Liking Scale (Appendix 4).

Analysis

We divide further analysis in this Chapter into three parts:

Part A - Study of Teacher-Teacher Relationships

Part B - Study of Teacher-Teacher Relationship as a factor in Pupil-Teacher Relationship.

Part C - Particulars about teachers regarding their age, home conditions, designation etc. and their being liked by their students and colleagues.

Part A - Study of Teacher-Teacher Relationships

In our Sociometric Test of Teacher-Teacher Relationship, we had included three activities. For each activity the teachers were requested to give one name of the teacher with whom they would like to do that activity. Similarly, each teacher was asked to give one name of the teacher with whom he would not like to do that activity. That means each of the five teachers in each school was expected to give three acceptance as well as three rejection choices. That means we should have the maximum of 15 acceptance as well as 15 rejection choices. But, it was found from the test, that instead of giving one particular name for one activity, some of the teachers had written "All" or "None". So, this way,

Sociometric Matrix Of Teacher-Teacher Relationship

School, B-1

Teacher No →	1			2			3			4			5		
Activity No →	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6
Teacher No ↓															
1				✓	✓	✓	✓	✓		✓	✓		✓✓	✓✓	✓
2	✓		✓				✓	✓	✓					✓	
3	✓	✓	✓	✓								✓		✓	
4	✓	✓✓			✓✓	✓	✓	✓✓						✓✓	✓
5		✓	✓	✓	✓	✓	✓								

Sociometric Matrix Of Teacher-Teacher Relationship

School, B-2

Teacher No →	1			2			3			4			5		
Activity No →	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6
Teacher No ↓															
1					✓				✓	✓		✓	✓	✓	
2	✓		✓												
									✓	✓	✓	✓		✓	✓✓
3				✓	✓	✓							✓	✓	✓
4	✓	✓													✓
				✓				✓	✓						
5			✓	✓	✓		✓	✓	✓						

Sociometric Matrix Of Teacher-Teacher Relationship

School, 6-1

Teacher No→	1			2			3			4			5		
Activity No→ / Teacher No↓	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6
1				✓✓	✓		✓	✓	✓	✓	✓✓		✓	✓	✓
2	✓	✓	✓✓				✓✓		✓	✓		✓	✓		✓
3	✓	✓		✓							✓	✓			✓
4	✓	✓✓	✓	✓	✓✓	✓	✓	✓✓	✓				✓	✓✓	✓
5	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓						

Sociometric Matrix Of Teacher-Teacher Relationship

School, G-2

Teacher No→	1			2			3			4			5		
Activity No→	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6	1/4	2/5	3/6.
Teacher No↓															
1							✓	✓	✓				✓	✓	✓
2	✓						✓	✓	✓		✓				✓
3			✓	✓	✓	✓				✓	✓				
4		✓	✓	✓				✓							
5	✓	✓	✓							✓	✓	✓			

the choice was counted for all teachers. That is why, we have more than the maximum of 15 choices both in acceptances and rejections.

TABLE SHOWING NUMBER OF CHOICES RECEIVED BY TEACHERS FROM THEIR COLLEAGUES ON SOCIOMETRIC TEST

Number of Teachers receiving choices in each school = 5.

Sl. No.	School	Number of choices Received	
		Acceptance	Rejection
1	B-1	22 (4.40)	20 (4.00)
2	B-2	14 (2.80)	19 (3.80)
3	G-1	21 (4.20)	34 (6.80)
4	G-2	15 (3.00)	15 (3.00)
5	Boys' B-1 & B-2	36 (3.60)	39 (3.90)
6	Girls' G-1 & G-2	36 (3.60)	49 (4.90)

Figures in parenthesis indicate average No. of choices received by teachers.

Interpretations

1. In boys' (B-1 and B-2) schools, we find on an average teachers receive 3.60 as acceptance and 3.90 as rejection choices from their colleagues. We can infer from this that in our group of 10 teachers, teachers have more rejection inclination than acceptance inclination towards their colleagues. However, we find in school B-1, the

Sociogram Teacher-Teacher Relationship
School 3-1
Acceptances
Rejections
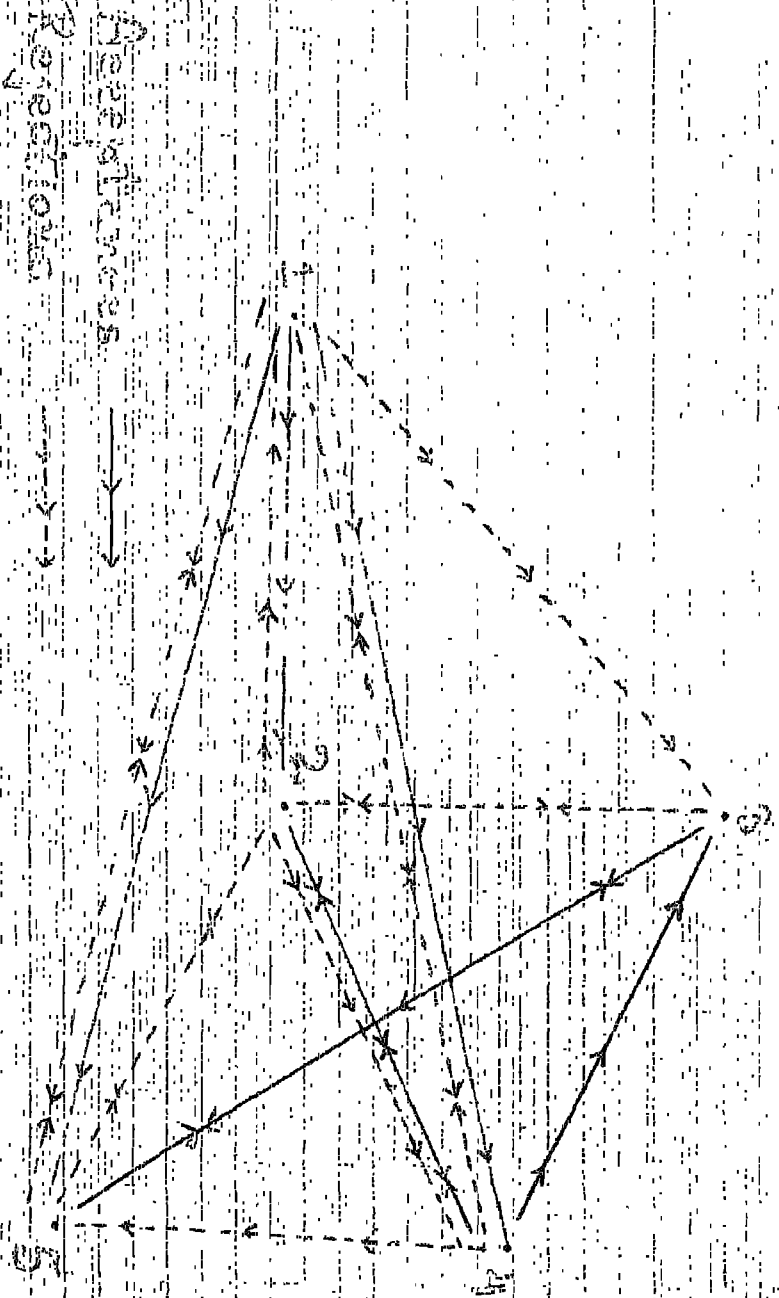
Sociogram Teacher - Teacher Relationship
School B-2
1
2
3
4
5
Acceptances
Rejections

Sociogram Teacher – Teacher Relations
School
3
4
1
2
Acceptances
Rejections
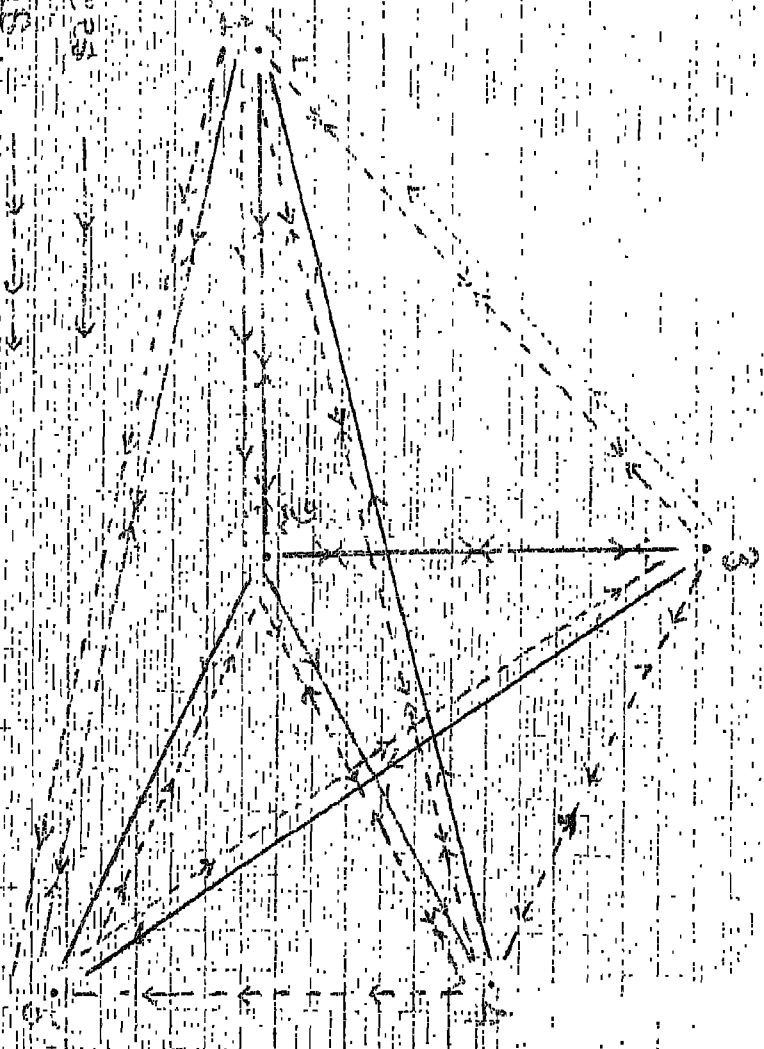
Soeiogram Teacher Teacher Relationship
School G - 2
Acceptances
Rejections
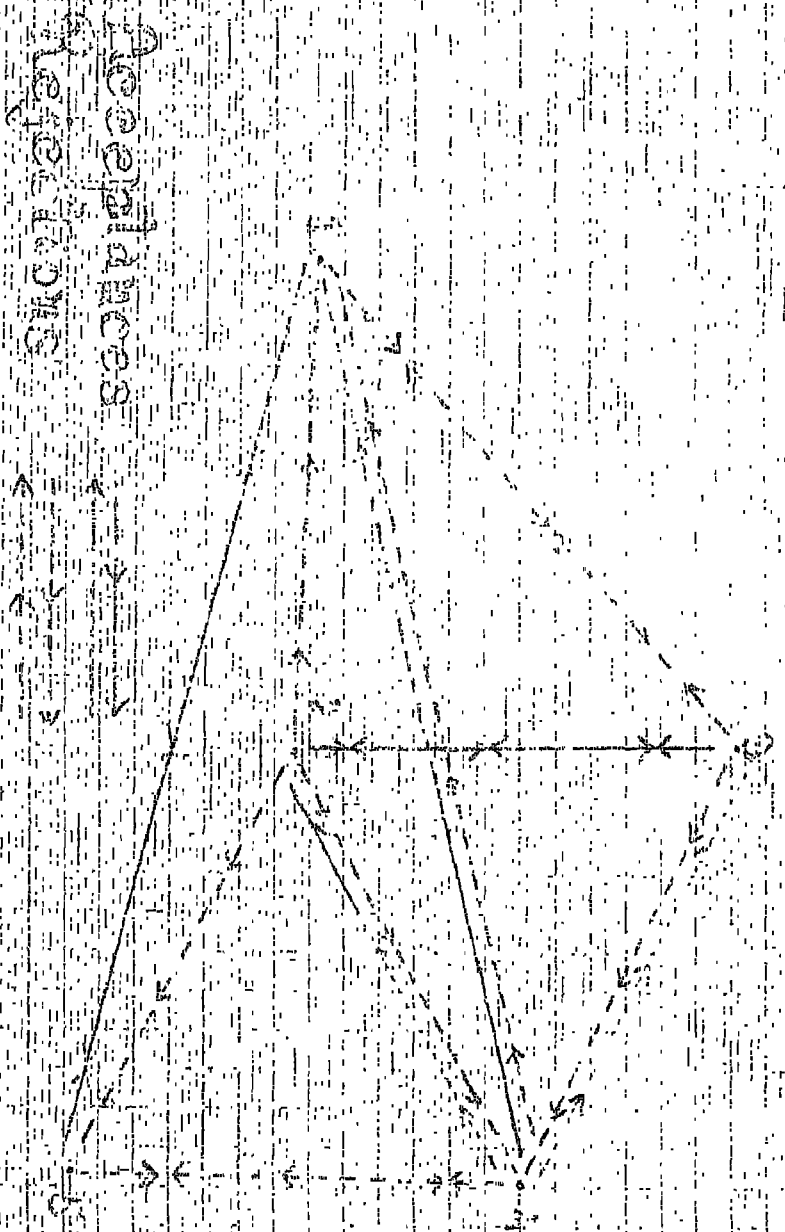
average acceptance choices to be more (4.40) than average rejection choices (4.00) received by teachers.

2. In school G-1, teachers make on an average 6.80 rejection choices but they make only 4.20 acceptance choices. Overall they make, on an average, 4.90 and 3.60 as their rejection and acceptance choices respectively. This indicates more clearly that teachers in girls' schools have more rejection inclination than acceptance inclination towards their colleagues.

3. In both boys' and girls' schools, teachers have more rejection than acceptance inclination towards their colleagues. But this tendency is found more strong in girls' schools than in boys' schools.

Study of Sociograms

With the help of Sociometric Matrices, we have drawn four Sociograms for Teacher-Teacher Relationship. From these Sociograms we draw the following table:

TABLE SHOWING PATTERNS OF TEACHER-TEACHER RELATIONSHIPS IN FOUR SCHOOL AS DEPICTED BY SOCIOGRAMS.

Sl. No.	School	Mutual choices		One way choices		Opp. choices	One way Both
		Accepts	Rejects	Accepts	Rejects		
1	B-1	4	2	1	3	2	1
2	B-2	2	4	3	3	1	x
3	G-1	3	4	3	3	2	x
4	G-2	2	2	x	2	2	1
5	Boys' B-1 & B-2	6	6	4	6	3	1
6	Girls' G-1 & G-2	5	6	3	5	4	1

Interpretation

1. In boys' schools we have 6 : 6 mutual acceptance and rejection choices. In school B-1, we have 4 mutual acceptance choices and 2 mutual rejection choices, but the order changes for school B-2.

But, in girls' schools we have 5 : 6 mutual acceptance and rejection choices. However, in school G-2, the ratio remains the same for mutual acceptance and rejection choices. This also indicates more bonds of mutual rejections than of acceptance in girls' schools.

2. We have 4 : 6 ratio as far as one-sided acceptances or rejections are concerned in boys' schools. But this ratio is found to be 3 : 5 in girls' school. From this, we can infer, that in each school we have more one-sided rejections received by teachers than they are in receipt of acceptance choices. In both the schools, rejection inclination is indicated to be more than that of acceptance inclination prevalent in the Teacher-Teacher Relationships both in the boys' and the girls' schools. However from the comparative study of ratios in between acceptance and rejection choices, we can say this tendency is more strong in girls' schools than in boys' schools.

3. We find there are three teachers who exchange opposite choices in boys' schools but there are four teachers who enter into this exchange in girls' schools. This further substantiates our preceding interpretation.

We conclude:

1. There is found more rejection inclination than acceptance inclination in Teacher-Teacher Relationship both in boys' and girls' schools included in our sample.

2. The above tendency is stronger in girls' schools than in boys' schools.

Part B - <u>Teacher-Teacher Relationship as a factor in Teacher-Pupil Relationship.</u>

In this context we will examine the following two questions:

(1) Do the students like teachers who are liked by their colleagues?

(2) Do the students dislike teachers who are disliked by their colleagues?

To study the above two questions, the following tests and scales were used:

(i) Five-point Liking Scale for teachers to rate their colleagues for their personal liking for them. (Appendix 4)

(ii) Five-point Liking Scale for students to rate their teachers for their personal likings for them. (Appendix 5)

(iii) Sociometric Test for Teacher-Teacher Relationship. (Appendix 11)

(iv) Sociometric Test for Pupil-Teacher Relationship (Appendix 10)

1. <u>Five-point Liking Scales</u>

To find out the relationship between the likings of

teachers for their colleagues and students' likings for them (teachers), coefficients of correlation (r) between the scores of ratings of teachers received by them from their colleagues and students on five-point Liking Scale, were calculated and the results are tabulated below:

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(r) BETWEEN THE TOTAL SCORES RECEIVED BY TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE FROM THE COLLEAGUES AND STUDENTS

Size of sample N = 5
Degrees of Freedom (N-2) = 3

Sl No.	School	Calculated value of "r"	Significance
1	B-1	.844	Not significant
2	B-2	.169	Not significant
3	G-1	.973	Very significant
4	G-2	-.352	Not significant
5	Boys' B-1 &* B-2	.131	Not significant
6	Girls' G-1 &* G-2	.140	Not significant

* Size of sample N = 10 Degrees of Freedom (N-2) = 8

In the case of boys' schools, we find the values of "r" not significant. But for one girls' school G-1, "r" is found to be very significant and for the other school G-2, the value of "r" is not significant and negative. This means in boys' schools, we do not find any significant relationship between the teachers as liked by their colleagues and the teachers as liked by their students. However,

we find a very significant relationship between the likings of teachers for their colleagues and likings of students for teachers in girls' school G-1. But in other school G-2, the negative value of "r" shows as if teachers liked by their colleagues are not liked by their students. When we combine both boys' schools one one side and both girls' schools on the other side, we find values of "r" as .131 and .140 (both not significant) for boys' and girls' schools respectively. We dan say, we find no significant relationship between the teachers liked by their colleagues and teachers liked by their students.

2. Sociometric Test

Q No. 1 - Do the students like teachers who are liked by their colleagues?

Here, we have found out the coefficients of correlation (r) between the number of acceptance choices received by each teacher from his students (Sociometric Test, Appendix 10) and from his colleagues (Sociometric Test, Appendix 11).

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(r) BETWEEN THE NUMBER OF ACCEPTANCE CHOICES RECEIVED BY TEACHERS FROM THEIR COLLEAGUES AND STUDENTS ON SOCIOMETRIC TESTS

Sl. No.	School	Calculated values of "r"	Significance
1	B-1	-.105	Not significant
2	B-2	.462	Not significant
3	G-1	.673	Not significant
4	G-2	.606	Not significant
5	Boys' B-1 & B-2	.142	Not significant
6	Girls' G-1 & G-2	.548	Not significant

Interpretation

1. We find in all the cases, the values of "r" are not significant. This shows there is not a notable relationship between the likings of students for teachers and teachers' likings for their colleagues. We can say, it is not necessary that the teachers liked by their colleagues are also liked by their students. Similarly, we can say, teachers liked by their students are not necessarily liked by their colleagues too.

2. For school B-1, we find the value of "r" as negative. This shows as if teachers liked by their colleagues are disliked by their students. In the case of school B-2, we find the value of "r" as .462, an insignificant value. We can say, in boys' schools, teachers liked by their colleagues are not necessarily liked by their students.

3. In the cases of both the girls' schools, values

of "r" are calculated as .673 and .606, which are statistically not significant. But these values do indicate a positive tendency on the part of students that they like teachers who are also liked by their colleagues.

4. Interpretations made above are further substantiated by the calculated values of "r" for combined boys' and girls' schools. The value of "r" for girls' schools is far higher (.548) than it is for boys' school (.142). We can say, teachers liked by their colleagues in girls' schools have a tendency to be liked by their students, which tendency is quite insignificant in boys' schools.

5. In conclusion, we can say, both in boys' and girls' schools, statistically we cannot infer that there is a strong tendency that teachers liked by their colleagues are also liked by their students. But on the basis of the values of "r" for boys' schools(.142)and for girls' schools (.548), we can say this tendency works better in girls' schools than in boys' schools.

Q No. 2 - Do the students dislike teachers who are disliked by their colleagues?

Here, we have found out the coefficients of correlation (r) between the number of rejection choices received by teachers from their colleagues and students.

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(r) BETWEEN THE NUMBER OF REJECTION CHOICES RECEIVED BY TEACHERS FROM THE COLLEAGUES AND STUDENTS ON SOCIOMETRIC TESTS

Sl No.	School	Calculated values of "r"	Significance
1	B-1	.385	Not significant
2	B-2	.501	Not significant
3	G-1	.626	Not significant
4	G-2	-.174	Not significant
5	Boys' B-1 & B-2	.403	Not significant
6	Girls' G-1 & G-2	.131	Not significant

Interpretation

1. In all the cases, as cited above in the table, we find all the values of "r" as not significant. So, statistically, we can infer that there is no relationship between the dislikings of teachers for their colleagues and students' dislikings for the same teachers.

2. In the case of both Boys' schools, we have calculated the values of "r" as .385 and .501. Both values are positive. We can infer from this, that though, not significant, yet there is a tendency in boys' schools, that teachers disliked by their colleagues are also disliked by their students.

3. In the case of girls' schools, for one school G-2, we find the value of "r" as negative. From this we can infer that in girls' schools, teachers disliked by their

colleagues may not be disliked by their students.

4. When we combine two boys' schools and two girls' schools, we calculate the values of "r" as .403 and .131 respectively. We can say, however not significant, but there is a tendency in boys' schools that teachers disliked by their colleagues are also disliked by their students, while in girls' schools this tendency seems to be absent.

3. Study of Teacher-Teacher Relationship as a factor in Teacher-Pupil Relationship with the help of Sociograms.

From Chapter VI and table Nos. 1.9, 3.3, 4.6 and 5.9 for schools B-1, B-2, G-1 and G-2 respectively we have the following table:

TABLE SHOWING TEACHERS ACCEPTED AND REJECTED BY STUDENTS

Sl No	School	Serial Number of Teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	B-1	45(93.74) 2(4.17	1(2.08) 45(93.75)	9(18.75) 15(31.25)	3(6.25) 19(39.58)	36(75.00) 5(10.41)
2	B-2	6(21.43) 19(67.86)	16(57.14) 2(7 .14)	24(85.72) 2(7.14)	10(35.72) 10(35.72)	3(10.71) 21(75.00)
3	G-1	20(80.00) 4(16.00)	4(16.00) 16(64.00)	5(20.00) 14(56.00)	18(72.00) 5(20.00)	12(48.00) 10(40.00)
4	G-2	24(88.89) 2(7.41)	4(14.82) 17(62.96)	22(81.48) 3(11.11)	4(14.82) 18(66.66)	11(40.74 16(59.26)

Note:

(i) First row indicates the number of students accepting the teachers and second row indicates the number of students rejecting the teacher on Sociometric Test.

(ii) Figures in parenthesis indicate the percentage of students accepting and rejecting the teacher.

With the help of this table, we discuss below the teachers accepted and rejected by their colleagues as depicted by Sociograms of Teacher-Teacher Relationship in respect of each one of our four sample schools.

School B-1.

1. Teacher No. 3 is accepted by all the teachers and is rejected by only one teacher. We can easily say, this teacher is accepted by his colleagues.

But this teacher is accepted by 9(18.75%) and is rejected by 15(31.25%) students. We can hardly say, that this teacher, accepted by his colleagues, is accepted by his students too.

2. Teacher No. 4 is accepted by 2 teachers and is rejected by none of his colleagues.

But this teacher is accepted by only 3(6.25%) and is rejected by 19(39.58%) students.

We can hardly say that in this group teachers accepted by their colleagues are also accepted by their students.

3. Similarly, teacher No. 1 and 5 are accepted by 45(93.74%) and 36(75.00%) students respectively. They are rejected by only 2(4.17%) and 5(10.41%) students.

But, both of these two teachers are rejected by 3 of the four colleagues making acceptance and rejection choices for them. However, they mutually accept each other. We say,

teachers liked by their students are not found to be liked by their colleagues in this school B-1.

4. Teacher No. 2 is disliked by 3 teachers and is liked by only one teacher. Again, this teacher is disliked by 45(93.75%) and is liked by only one student (2.08%). We can infer from this that the teacher disliked by his colleagues is also disliked by his students in this group.

5. In conclusion, we say, in this boys' school, teachers liked by their colleagues are not necessarily liked by their students but teacher disliked by his colleagues is surely not liked by his students.

School B-2.

1. Teacher No. 1 is disliked by 3 of his 4 colleagues. We can say, he is disliked by his colleagues. Again, he is disliked by 19(67.86%) and is liked by only 6(21.43%) students.

2. Similarly, teacher No. 5 is disliked by his 3 colleagues and is liked by only one. He is disliked by 21(75.00%) and is liked by only 3 (10.71%) students.

We can say, teachers disliked by their colleagues are also disliked by their students in this School B-2.

3. Teacher No. 3 is liked by 24(85.72%) students and is disliked by only 2(7.14%) students. We can say, this teacher is accepted by students.

But this teacher enjoys one mutual rejection bond and one acceptance bond with his colleagues. He also enjoys one

acceptance as well as one rejection choices from the other two colleagues. We can say, this teacher,accepted by his students, is hardly accepted by his colleagues.

4. Teacher No. 2 is accepted by 16(57.14%) and is rejected by only 2(7.14%) students. We can say this teacher is accepted by students.

This teacher is accepted by two teachers. But, he too, enjoys two mutual rejection bonds with his colleagues. We can hardly say this teacher is accepted by his colleagues.

So the teacher liked by his students, is hardly accepted by his colleagues here.

5. Teacher No. 4 enjoys two mutual rejection as well as two acceptance bonds with his colleagues. He also receives one acceptance and one rejection choices. We say, he is hardly accepted or rejected by his colleagues.

Similarly, this teacher is accepted as well as rejected by 10(35.72%) students.

From the analysis of schools B-1 and B-2, we say that in our sample of two boys' schools, the teachers rejected by their colleagues are also rejected by their students. But teachers accepted by their colleagues are hardly accepted by their students and vice-versa.

School G-1.

1. Teacher Nos 2 and 3 are rejected by 3 of their colleagues and are accepted by only one colleague each.

We find these teachers are accepted by 4(16%) and 5(20%) students only. Again these are rejected by 16(64%) and 14(56%) students. This illustrates teachers rejected by their colleagues are also rejected by their students in this school.

2. Teacher number 4 is disliked by 3 of her colleagues. But she is liked by 18(72%) and disliked by 5(20%) students. This goes against the interpretation made for teacher numbers 2 and 3 above.

3. Teacher No 1 is liked by all the four teachers. She is also accepted by 20(80%) and is rejected by only 4(16%) students. This indicates teacher accepted by her colleagues, is also accepted by her students in this school.

4. Teacher No. 5 is both accepted and rejected by 2 of her four colleagues each. Again, she is accepted by 12(48%) and is rejected by 10(40%) students.

We say, in girls' school G-1, teachers rejected by their colleagues are not necessarily rejected by her students. But one teacher accepted by her colleagues is also accepted by her students.

<u>School G-2.</u>

1. Teacher No. 4 is rejected by 3 of her 4 colleagues. We say, she is rejected by her colleagues.

She is also rejected by 18(66.66%) and is accepted by only 4(14.82%) students.

2. Similarly, teacher No. 5 is rejected by two

teachers and is accepted by one teacher. Again, this teacher is accepted by only 11(40.74%) students and is rejected by 16(58.26%) students.

We can say here that teachers accepted by their colleagues are also rejected by their students.

3. But, teacher No. 1 who is rejected by 3 teachers and accepted by only one of her colleagues, is accepted by 24(88.89%) students and only is rejected by 2(7.41%) students. This goes against the interpretation already made.

We say, it is not necessary that rejected teachers by their colleagues are also rejected by their students.

4. Teacher No. 3 is accepted by 22(81.48%) students and is rejected by only 3(11.11%) students. She is also found to be accepted by 2 teachers and is rejected by none. We say, an accepted teacher by her colleagues is also found accepted by her students.

5. But, teacher No. 2, who is found accepted by two of her colleagues and rejected by none, is rejected by 17 (62.96%) students and is accepted by only 4 (14.82%) students. This goes against the interpretation already made.

In conclusion from both the schools G-1 and G-2, we can say that the teachers rejected by their colleagues are not necessarily rejected by their students but teachers accepted by their colleagues are indicated to be accepted by their students too.

Conclusions

1. In both the boys' and girls' schools, teachers have more rejection than acceptance inclination towards their colleagues. But this tendency is found more strong in the girls' schools than in the boys' schools.

2. There is no significant relationship between the teachers' likings for colleagues and students' likings for these teachers.

3. Teachers accepted by their colleagues in boys' schools, are found hardly accepted by students but there is an indication that teachers accepted by their colleagues are also accepted by their students in girls' schools.

4. Similarly, there is a more significant tendency in boys' schools, that teachers disliked by their colleagues are also disliked by their students.

5. Teachers who are found equally accepted and rejected by their colleagues, are also found equally accepted and rejected by their students.

6. From the conclusions arrived at from the study of only these four groups, it is difficult to generalise about the issue under investigation till we study a good number of such and larger groups which may be studied on the lines adopted here.

Part C - Particulars about teachers and their being liked and disliked by their students and colleagues.

Interview Schedule for Teachers.

Teachers were interviewed by the researcher with the help of an interview schedule (Appendix 19). This elicited information about teachers regarding their age, experience, family background and home conditions. The information is tabulated under the head "Particulars about Teachers". Regarding categorization of family background and home conditions, following criteria have been adopted:

Sl.No.	Criteria	Category
1	Parents educated to at least graduation level and have their own house etc.	A
2	Parents educated to graduation level but do not possess their own house etc. and vice-versa.	B
3	High School education and self supporting family.	C
4	Below High School education and needs economic support.	D

We discuss below the data given in the table under its various heads.

1. Age : Students'likings and dislikings for teachers

To know whether there is a significant difference between the ages of teachers who are liked and disliked by students, we have calculated the standard error of difference between the mean ages of teachers liked and disliked by students the results of which are tabulated below:

PARTICULARS ABOUT TEACHERS

School	Sl.No of Tr	Age of Tr. in years	Qualifications	Designation	Teaching experience in years	Family background	Married or Not	Whether liked by	
								Students	Teachers
B-1	1	38	MA,BT	PGT	12	C	No	Yes	No
	2	42	MA,BT	TGT	5	D	Yes	No	No
	3	54	MA	TGT	35	D	Yes	No	Yes
	4	35	MA,BT	TGT	12	A	Yes	No	Yes
	5	28	MA,B.Ed	PGT	4	A	No	Yes	No
B-2	1	31	BA,B.Ed	TGT	8	D	Yes	No	No
	2	38	MA,B.Ed	PGT	13	C	Yes	Yes	L/D
	3	32	MA,B.Ed	PGT	8	C	Yes	Yes	L/D
	4	35	MA,B.Ed	TGT	16	C	Yes	L/D	L/D
	5	34	MA,B.Ed	PGT	16	C	Yes	No	No
G-1	1	38	BA,BT	TGT	15	A	Yes	Yes	Yes
	2	41	MA	PGT	20	C	No	No	No
	3	41	BA,BT	TGT	13	A	Yes	No	No
	4	26	MA,B.Ed	PGT	4	A	No	Yes	No
	5	28	B.Sc.B.Ed	TGT	7	C	No	L/D	L/D
G-2	1	34	MA	PGT	16	B	Yes	Yes	No
	2	35	MA,BT	PGT	13	A	No	No	Yes
	3	34	MA,BT	TGT	2	A	Yes	Yes	Yes
	4	24	MA	TGT	2	C	No	No	No
	5	30	B.Sc.B.Ed	TGT	8	C	Yes	L/D	No

N.B.1. There are teachers who are both liked and disliked. We have indicated them by L/D whereas L stands for liked and D for disliked.

2. PGT - stands for Post-graduate Teachers and TGT - for Trained Graduate Teachers.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE BETWEEN THE AGES OF TEACHERS LIKED AND DISLIKED BY STUDENTS

1. Boys' school - Teachers liked/disliked by boys

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	5	34.20	3.70	D= 4.30, σ_D= 3.54
Disliked	6	38.50	7.67	CR = 1.21, Not significant

2. Girls' school Teachers liked/disliked by girls

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	6	31.66	4.07	D=1.5, σ_D=3.10
Disliked	6	33.16	6.41	CR = .048, Not significant

We do not find any significant difference between the mean ages of liked and disliked teachers by students. We cannot say if age has any relevance in likings and dis-likings of students for their teachers. But in both boys' and girls' schools, we have higher mean age for disliked teachers than for liked teachers. We can say young age is a contributory factor for teachers to be liked by their stu-dents.

Teachers likings and dislikings for their colleagues.

We find the standard error of difference between the ages of teachers liked and disliked by their colleagues so as to determine the impact of age level of teachers for

their being liked and disliked by their colleagues.

TABLES SHOWING SIGNIFICANCE BETWEEN THE AGES OF TEACHERS LIKED AND DISLIKED BY THEIR COLLEAGUES.

1. Boys' school Teachers liked/disliked by their colleagues.

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	5	38.80	7.83	D=4.05, σ_D=3.80
Disliked	8	34.75	4.20	CR= 1.06, Not significant

2. Girls' schools Teachers liked/disliked by their colleagues.

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	4	33.75	3.63	D=1.75, σ_D=3.02
Disliked	7	32.00	6.39	CR=.057, Not significant

We do not find any significance between the mean ages of teachers liked and disliked by their colleagues. That means age is no factor for teachers to be liked and disliked by their colleagues. But, old age, is a contributory factor for teachers being liked by their colleagues as we find higher mean age for teachers being liked than that of teachers being disliked by their colleagues.

This is further substantiated by the following table:

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(r) BETWEEN THE AGES OF TEACHERS AND LIKINGS OF STUDENTS' AND COLLEAGUES FOR THEM ON FIVE-POINT LIKING SCALES

School	Calculated values of "r" for		Significance
	Students	Colleagues	
B-1	-.178	-.344	Not significant
B-2	+.401	-.523	Not significant
G-1	+.468	.531	Not significant
G-2	-.336	.751	Not significant

Conclusions

1. Age plays no significant role for teachers being liked or disliked by their students and colleagues.

2. Young age of teachers is favourable for being liked by students, and old age is favourable for being liked by their colleagues. Again, this holds good more for boys' schools than for girls' schools as may be inferred from the comparative sizes of critical ratios in both the schools.

2. Designation: Students' likings and dislikings for teachers.

In our sample, in both boys' and girls' schools, five Post-graduate teachers (PGT) and five trained graduate teachers (TGT) are included. Following table shows as to how many PGTs and TGTs are liked and disliked by their students.

TABLE SHOWING NUMBER OF TEACHERS LIKED AND DISLIKED BY STUDENTS

Teachers	Boys' schools		Girls' schools	
	PGT	TGT	PGT	TGT
Liked	4	1	3	3
Disliked	1	5	2	4

We find ratio of PGTs and TGTs liked by boys comes to 4:1. This very ratio remains 1:1 for girls.

Again, for boys, ratio of PGTs and TGTs disliked by boys comes to 1:5. This very ratio comes to 1:2 for girls.

We can infer in our sample more PGTs are liked by boys than the TGTs are. But girls make no difference in this regard. Similarly, boys dislike far more TGTs say 5 times to PGTs but girls dislike TGTs only 2 times to PGTs.

Teachers' likings and dislikings for their colleagues.

As discussed above, we discuss below number of PGTs and TGTs liked and disliked by their colleagues.

TABLE SHOWING NUMBER OF TEACHERS LIKED AND DISLIKED BY THEIR COLLEAGUES

Teachers	Boys' schools		Girls' schools	
	PGT	TGT	PGT	TGT
Liked	2	3	2	2
Disliked	5	3	3	4

More TGTs are liked than PGTs by men teachers. But women teachers have equally well liked PGTs and TGTs.

Similarly more PGTs are disliked by men teachers whereas more TGTs are disliked by women teachers than the PGTs are in our sample.

Conclusions

1. In girls' schools PGTs and TGTs are liked by their students and colleagues in equal ratios.

2. In boys' schools, boys have liked more PGTs than TGTs, whereas men teachers have liked more TGTs than PGTs.

3. In girls' schools more TGTS than PGTs are disliked by both students and teachers.

4. In boys' schools teachers dislike less TGTs than PGTs but boys disliked more PGTs than TGTs.

3. Teaching Experience: Students' likings and dislikings for teachers and their teaching experience.

To determine the effect of teaching experience of teachers in their being liked and disliked by their students, the standard error of difference between the years of experience of teaching of teachers liked and disliked by students have been determined and the results are tabulated below:

1. Boys' schools Teachers liked and disliked by students.

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	5	10.60	4.17	D=4.73, σ_D=4.25
Disliked	6	15.33	9.86	CR= .111, Not significant

2. Girls' Schools

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	6	10.33	4.34	D=.17, σ_D =2.92
Disliked	6	10.50	5.68	CR= .058, Not significant

Not significant difference between the years of experience of teachers liked and disliked by students, shows that in our sample, the duration of experience of teachers has played no role in the likings and dislikings for them by students.

Teachers' likings and dislikings for their colleagues and their teaching experience

To determine the effect of teaching experience of teachers on their being liked and disliked by their colleagues, the standard error of difference between the mean experience of teachers liked and disliked was calculated, the results of

which are tabulated below:

Boys' schools   Teachers liked and disliked by their colleagues.

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	5	16.80	9.45	D=6.55, σD=4.40
Disliked	10	10.25	3.91	CR= 1.48, Not significant

Girls' schools

Teachers	No.	Mean	SD	Significance
Liked	4	11.75	2.94	D= 1.75, σD=2.18
Disliked	7	10.00	5.08	CR = .802, Not significant

We find in our sample of the study, the teaching experience of teachers has paid no played in their being liked or disliked by their colleagues.

This is further substantiated by the following table:

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION(r) BETWEEN THE YEARS OF EXPERIENCE OF TEACHERS AND LIKINGS OF STUDENTS AND COLLEAGUES FOR THEM ON FIVE-POINT LIKING SCALES.

School	Calculated values of "r" for		Significance
	Students	Colleagues	
B-1	.148	.054	Not significant
B-2	-.024	.109	Not significant
G-1	.580	.658	Not significant
G-2	-.192	.831*	Not significant

* Significant at .05 level.

Family background and home conditions.

In boys' schools, there are three teachers who fall in "D" category of family background and home conditions. All are found to be disliked by students. However, there are 4 teachers of "C" category liked by students but 2 of the same category are disliked too.

Similarly, there are 2 teachers who are only disliked by students in girls' schools. We find these two teachers to fall in "C" category as far as home conditions and family background are concerned. Here, no teacher falls in "D" category.

We can say, in our study, the teachers with their poor family background and home conditions have been found to be disliked by their students. However, the reverse is not true, as teachers belonging to "A" category have also been found to be disliked as well as liked by their students.

As far as teachers' likings and dislikings for their colleagues are concerned, nothing can be concluded as all categories of teachers have both been liked and disliked by their colleagues. A full-fledged study on this topic can be conducted.

5. Married and Unmarried teachers.

In our boys' schools, out of 10 teachers, two are unmarried and eight are married. Both unmarried teachers have been found to be disliked by their colleagues but liked by their students.

In our girls' schools, out of 10 teachers, 5 are married and 5 are unmarried. Here, we find 3 unmarried teachers are disliked by their students and only one is liked by the students. One unmarried teacher is found to be both liked and disliked by her students. However, 3 married teachers are liked, 1 is disliked and 1 is liked and disliked by their students. We can, therefore, say that in our study in girls' schools, married teachers are found to be liked and unmarried teachers are disliked by their students.

However, 2 married teachers are found to be liked and 3 are found to be disliked by their colleagues. Again 3 unmarried teachers are disliked and one is liked by her colleagues. We say, nothing definite can be inferred from this.

CONCLUSIONS

It is difficult to generalize the things from the results of the four groups, but conclusions arrived at are not insignificant. Teachers' teaching experience plays no part in being liked and disliked by students, but young age is a contributory factor in being liked by students. We may say, let us retain young teachers in schools and experienced teachers with age, may be assigned other important assignments connected with school organization. Let us recruit teachers with a good family background. The finding that married women teachers are liked and unmarried are not liked, further suggests not to emphasize unmarried teachers employed in school who are not found to cherish the likings of students.

It may be, as if, only married teachers know how to treat the students. Again, that unmarried men teachers are liked, shows teachers those who can devote more attention to students are liked by their students. However, this needs a thorough study.

REFERENCES

1. Boles, Robert F (1951): Interaction Process Analysis; A Method for the Study of Small Groups. Reading, Mass: Addison-Wesley.

2. Chamberlain, Leo M, Leslie W Windred & John M. Mickelson (1966): The Teacher and School Organization. Fourth Edition, Prentice Hall.

3. Domnitz, Myer (1959): Education in Human Relations. Woburn Press.

4. Hare, A Paul (1962): Handbook of Small Group Research. New York, Free Press.

5. Heides, F (1958): The Psychology of Interpersonal Relations. New York, Wiley.

6. Hughes, A.G. and E.H. Hughes (1965): Education: Some Fundamental Problems. The English Language Book Society and Longman Green and Co. Ltd. Chapter 7.

7. Hughes, James Monroe (1957): Human Relations in Educational Organization. Harper & Brothers, New York.

8. Malhotra, Sudha (1970): Teacher in Interpersonal Setting of Education. NIE Journal, IV, 3, Jan. 1970, 40-43.

9. McGrath, J.E. Altman, I (1966): Small Group Research: A Synthesis and Critique, New York: Holt.

10. Thirty-Third Yearbook (1955): Staff Relations in School Organizations. American Association of School Administration.

11. Verma, R.P (1965): Social Structure of the Teaching Staff of Some Hr. Sec. Schools of Delhi M.Ed. Unpublished Dissertation, University of Delhi, 1964-65.

12. Yauch, A. Wilbur (1966): Keys to Understanding in-School Relations. Teacher's Encyclopaedia; Prentice Hall Inc. pp. 99-1018.

CHAPTER X

STUDENT-STUDENT RELATIONSHIP

Introduction

> "Of the person's entire human environment, that part which enters into face to face relationships is incomparably the most important to his development. Those who are direct associates not only exert the most profound influence, but they are the only links through which association with other person beyond the immediate circle can have any effect."

Phenix (1958 pp 193)

In the complex of human relationships in the classroom set up, student-student (peer group) relations occupy a strategic position. Phenix has well emphasized the significance of peer group relations and have indicated its importance towards the establishment of good teacher-pupil relationship in the class. Necessarily, students' immediate circle remains the peer group circle. In this context it is quite befitting to quote Gronlund (1959 pp 235).

> "The importance of peer acceptance to children and adolescents and the pressure of the peer group on individual pupils are frequently overlooked by teachers. These factors can be disruptive and disturbing influences in the classroom or they can contribute to more effective learning experiences. The effect they have on the learning of individual pupils is determined by the extent to which teachers attempt to understand and improve the pupils' social relations."

In this Chapter, we will have a profile of student-student relationship in each one of the schools and will probe into the question as to how the students accepted or rejected by their classfellows are held by their teachers. In its own way, this type of study has its own unique position, as, to the best of his knowledge, the researcher has not been able to come across such a study.

Analysis: Part A - Study of Student-Student Relationship.

Student-Student relationship i.e. how do the students like or dislike each other has been studied with the help of the following two tools:

(1) Five-point Liking Scale (Appendix 6).

(2) Sociometric Test (Appendix 12).

1. Five-point Liking Scale

Here the students have rated their classfellows according to their likings for each of them as like, "the most", "more than others", "like others", "less than others" and "the least". The following table shows the distribution of these ratings on this Liking Scale in each one of the four schools included in our study.

TOTAL NUMBER OF RATINGS IN EACH SCHOOL

Sl.No.	School	Raters (N - 1)	Ratees (N)	Total Ratings N(N - 1)
1	B-1	47	48	2256
2	B-2	27	28	756
3	G-1	24	25	600
4	G-2	26	27	702

TABLE SHOWING NUMBER OF RATINGS OF STUDENTS FOR THEIR LIKINGS FOR CLASSFELLOWS IN DIFFERENT SCALE VALUES OF THE LIKING SCALE

School	Liking Scale Values					Total
	(5)	(4)	(3)	(2)	(1)	
B-1	334(14.81)*	507(22.47)	823(36.48)	325(14.41)	267(11.83)	2256
B-2	128(16.93)	192(25.39)	221(29.24)	147(19.45)	68(8.99)	756
G-1	106(17.67)	146(24.33)	187(31.17)	99(16.50)	62(10.33)	600
G-2	117(16.67)	191(27.21)	234(33.33)	95(13.53)	65(9.26)	702

* Figures in parenthesis indicate percentage values.

The higher scale values (5 & 4) stand for liking of a student for the ratee student, middle scale value (3) which stands for "like others" — represents an indifferent feelings of the rater for the ratee and low scale values (2 & 1) which stand for "like less than others" and "the least" virtually depict the disliking of the rater for the ratee student. Accordingly we have the following table from the above table of distribution of ratings in different scale values.

TABLE SHOWING RATINGS OF STUDENTS ON THE LIKING SCALE FOR THEIR LIKINGS FOR CLASSFELLOWS IN HIGHER, MIDDLE & LOWER SCALE VALUES.

School	Liking Scale Values			Total
	Higher (5 &4)	Middle (3)	Lower (2&1)	
B-1	841(37.28)	823(36.48)	592(26.24)	2256
B-2	320(42.32)	221(29.24)	215(28.44)	756
G-1	252(42.00)	187(31.17)	161(26.83)	600
G-2	308(43.88)	234(33.33)	160(22.79)	702

We find that in no school, even half (50%) ratings fall in higher scale values. Again, in every except G-2, school,

more than 25%, ratings fall in lower scale values. This pattern of distribution gives a gloomy picture of student-student relationship as is analysed below:

We have said that ratings in the higher scale values represent likings, ratings in lower scale values represent dislikings and the ratings in middle scale values exhibit indifferent feelings of the raters for the ratees. We arrive at the following table from the above table showing by how many students on an average, a student is liked or disliked or cherishes indifferent feelings.

TABLE SHOWING BY HOW MANY CLASSFELLOWS ON AN AVERAGE A STUDENT IS LIKED DISLIKED OR CHERISHES INDIFFERENT FEELINGS

School	On an average, a student is			Total students
	Liked	Disliked	Indifferent	
B-1	17.52	12.33	17.12	47
B-2	11.43	7.68	7.89	27
G-1	10.08	6.44	7.48	24
G-2	11.40	5.92	8.66	26

Remmers (1964 pp 353) in his discussion of "Techniques for Analysing Sociometric Data" has quoted Proctor, C.H and Loomis, C.P (1951). According to Proctor and Loomis, we have:

Choice Status (CS) = $\frac{C}{N-1}$, Rejection Status(RS) = $\frac{R}{N-1}$

Choice Rejection Status = CS-RS

In the above table we have actually calculated on an average both a choice status and rejection status of a

student in each one of the schools. If we calculate choice-rejection status, we arrive at the following conclusion:

TABLE SHOWING ON AN AVERAGE A CHOICE-REJECTION STATUS OF A STUDENT IN THE CLASS

School	On an average status		
	Choice	Rejection	Choice-Rejection
B-1	17.52	12.33	4.19
B-2	11.43	7.68	3.75
G-1	10.08	6.44	3.62
G-2	11.40	5.92	5.48

It is, however, encouraging that for all schools, we find greater choice-status than rejection status of the student among his classfellows. We __ study further this very question of student-student relationship from Sociometric Test (Appendix 12) to arrive at some definite conclusion.

2. Sociometric Test

In the Sociometric Test of student-student relationship, each student was requested to give three names among his classfellows with whom he would like to associate in each one of the three activities included in the test. Similarly, he was also asked to give names with whom he would not like to associate. In all, each student was to give 9 acceptance and 9 rejection choices. We have arrived at four Sociometric Matrices of these relationships in each one of four schools. The following table gives a profile of the choices made by

students.

TABLE SHOWING DISTRIBUTION OF CHOICES MADE BY STUDENTS ON SOCIOMETRIC TEST

School	No. of students	Maximum choices	Choices made		No. of students getting	
			Accept	Reject	Accept	Reject
B-1	48	432	431	420	45	47
B-2	28	252	252	252	27	25
G-1	25	225	225	225	24	25
G-2	27	243	243	243	25	27

Interpretations

1. Except for school B-1, we find students have made hundred per cent choices. We can say, the test was quite effective in getting the likes and dislikes of students enlisted.

2. In boys' schools (B-1 & B-2) equal number of students (72) receive acceptance as well as rejection choices.

3. In girls' schools (G-1 and G-2) 52 students receive rejection choices and 49 students get acceptance choices.

4. In three schools, we find more students getting rejection choices than acceptance choices. This indicates students have rejection inclination towards more number of students than they show acceptance inclination. We infer poor relationships among students.

In Sociometric Matrices, we find for each student, the number of students giving him acceptance and rejection choices. For each school we have arrived at a table showing each student

placed in different sociometric categories by his class-fellows. These categories are formed with the following criteria.

1. Acceptee - Here those students are included who:

   (i) get only acceptance choices;

   (ii) are accepted by double or more than double the number of students by whom they are rejected.

2. Rejectee - Here those students are included who:

   (i) get only rejection choices;

   (ii) are rejected by double or more than double the number of students by whom they are accepted.

3. Neglectee - Students who are accepted and rejected by equal number of students or with a difference of one or two students rejecting and accepting them are included in this category.

4. Isolate - Students who are accepted or rejected by the maximum of 2 or 3 students are included in this category.

Following the above criteria, we arrive at the following table:

TABLE SHOWING NUMBER OF STUDENTS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY THEIR CLASSFELLOWS.

School	Total students	No. of students in categories			
		Acceptee	Rejectee	Isolate	Neglectee
B-1	48	16(33.33)	16(33.33)	5(10.42)	11(22.92)
B-2	28	11(39.29)	8(28.57)	1(3.57)	8(28.57)
G-1	25	8(32.00)	8(32.00)	2(8. 00)	7(28.00)
G-2	27	10(37.04)	9(33.33)	-	8(29.63)
B-1 +B-2	76	27(35.53)	24(31.58)	6(7.89)	19(25.00)
G-1 +G-2	52	18(34.62)	17(32.69)	2(3.85)	15(28.84)
Total	128	45(35.15)	41(32.03)	8(6.25)	34(26.57)

Interpretation

1. For school B-1 and G-1, we find an equal number of students placed in acceptee and rejectee categories. In school G-2, 37.04% and 33.33% students are placed in acceptee and rejectee categories - the difference being not so significant. We say, in these schools nearly equal number of students are accepted and rejected by their classfellows. We cannot conclude that this is a happy picture of student-student relationship. However, in school B-2, we find a comfortable state of affairs where 39.29% students are placed in acceptee and 28.57% students are placed in rejectee categories.

2. Again in combined schools B-1 + B-2 and G-1 + G-2, we find the same picture. In boys' schools 35.53% and in girls' schools 34.62% students are placed in acceptee category. Similarly, we find 31.58% and 32.69% students placed in rejectee category in boys' and girls' schools respectively. However, not very significant, but we find more percentage of students falling in acceptee category in boys' schools and more percentage of students falling in rejectee category in girls' schools.

3. We say, an equal number of students are liked as well as disliked by their classfellows both in boys' and girls' schools, which does not give us a good picture of student-student relationship in these classes. Again, comparatively more students are accepted in boys' classes than in girls' whereas more students are rejected in girls' classes than in boys'.

Part B - Study of Student-Student Relationship as a factor in Teacher-Pupil Relationship.

In our chapter IX, we have studied whether the teachers liked by their colleagues are liked by their students or vice-versa. On the same lines, here we study the following two questions:

Q No. 1 - Do the teachers like students who are liked by their classfellows?

Q No. 2 - Do the teachers dislike students who are disliked by their classfellows?

In our chapter VI, we have discussed the students liked and disliked by their teachers. In this chapter, in the preceding pages, we have studied the students liked and disliked by their students. We will study the above two questions in the light of these two analyses.

Q No. 1 - Do the teachers like students who are liked by their classfellows?

As stated earlier, students have rated their classfellows and teachers separately on two different five-point Liking Scales (Appendix 645). We have two sets of scores for each student, one from the ratings of students and the other from the ratings of teachers. We have found out the coefficients of correlation between these two sets for each one of the two schools, the results of which are tabulated below:

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN THE SCORES RECEIVED BY STUDENTS ON FIVE-POINT LIKING SCALES FROM THEIR CLASSFELLOWS AND TEACHERS

School	No. of (N) students	Degrees of (N-2) Freedom	Calculated values of ("r")	Significance
B-1	48	46	.801	Very significant
B-2	28	26	.775	-do-
G-1	25	23	.609	-do-
G-2	27	25	.462	Significant

We find all the values of "r" very significant except in the case of school G-2, where too, we find the value of "r" significant at .05 level of confidence. This is further substantiated by the study of the Sociometric Test. In Sociometric Test (Appendix 12) students have made 3 choices in order of preference for each one of the three activities included in the test. We have added up the score of each student for his choices received with arbitrary weightages of ±3, ±2 & ±1 assigned to choices of acceptances and rejections respectively. First preference acceptance choice was assigned the weightage of +3, second preference, +2 and third, +1. Similarly negative weightages were given to rejection choices.

Similarly, teachers have made choices for students on Sociometric Test (Appendix 9). Here too the choices were assigned weightages as discussed above.

We have two sets of Sociometric Score for each student and we have calculated the relationships between the two, the

results of which are tabulated below:

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN THE SCORES RECEIVED BY STUDENTS ON SOCIOMETRIC TESTS FROM THEIR COLLEAGUES AND TEACHERS

School	No. of students (N)	Degrees of Freedom (N-2)	Calculated values of "r"	Significance
B-1	48	46	.721	Very significant
B-2	28	26	.702	-do-
G-1	25	23	.581	-do-
G-2	27	25	.391	Significant

We come to the same conclusions as arrived at from five-point Liking Scales. We may infer from it, that students liked by their classfellows are also liked by their teachers. However, from both the tables, we find the values of "r" greater for boys' schools than for girls' schools and in the case of girls' school G-2, the value is found to be significant only at .05 level, we can say, it indicates, this tendency (students liked by classfellows are also liked by their teachers) is found to be more strong in boys' schools than in girls' schools.

From the following four tables, one for the each school, we find as to how many students accepted by students are also accepted by teachers.

TABLE SHOWING NUMBER OF STUDENTS ACCEPTED BY THEIR CLASSFELLOWS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY THEIR TEACHERS.

School	No. of Acceptees by students	Placed in by teachers			
		Acceptee	Rejectee	Isolate	Neglectee
B-1	16	10	1	4	1
B-2	11	5	1	3	2
G-1	8	6	1	1	0
G-2	10	6	0	0	4

Interpretations

1. In all the schools, we find most of the students accepted by their classfellows have also been placed in acceptee category; it means they have not been given any rejection choice by any of their teachers on Sociometric Test.

2. We find one acceptee student in each case in schools B-1, B-2 and G-2 placed in rejectee category by their teachers i.e. these students received only rejection choice from their teacher/s. However, in school G-2, we find no acceptee by her classfellows is rejected by her teachers.

These points substantiate that students accepted by their classfellows are also accepted by their teachers.

Q No. 2 - Do the teachers dislike students who are disliked by their classfellows.

This tendency that students disliked by their classfellows are also disliked by their teachers is depicted by the significant values of "r" both in the cases of scores received by students on five-point Liking Scales and Sociometric Tests

from their classfellows and teachers. We will discuss this question on the basis of number of rejected students by their classfellows placed in different sociometric categories by their teachers.

TABLE SHOWING NUMBER OF STUDENTS REJECTED BY THEIR CLASSFELLOWS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY THEIR TEACHERS.

School	No. of Rejectees by students	Placed in by teachers			
		Acceptee	Rejectee	Isolate	Neglectee
B-1	16	0	5	9	2
B-2	8	2	3	1	2
G-1	8	4	4	0	0
G-2	9	3	2	0	4

Interpretation

1. In boys' school B-1, we find only 5 out of 16 rejected students by their classfellows are also rejected by their teachers. In boys' school B-2, out of 8 rejected students by their class-fellows 2 are accepted by their teachers and 3 are rejected by them. This does indicate students rejected by their classfellows are not necessarily rejected by their teachers.

2. In girls' school G-1, out of 8 students rejected by their classfellows, 4 are rejected by their teachers and 4 are accepted by them. In girls' school G-2, out of 9 students rejected by their classfellows, 3 are accepted and 2 are rejected by their teachers. This does show that rejected students by their classfellows are accepted by their teachers.

This substantiates the low values of "r" calculated for the scores on five-point Liking Scales and Sociometric Tests.

Students liked & disliked by teachers placed in different sociometric categories by students.

In the above tables, we have studied those who are both accepted and rejected by their students and teachers. There are more students who are accepted or rejected by their teachers as shown in the following table:

TABLE SHOWING NUMBER OF ACCEPTED AND REJECTED STUDENTS BY TEACHERS AND STUDENTS.

School	Students accepted by		Students rejected by		Only by teachers	
	students	teachers	students	teachers	accepted	rejected
B-1	16	15	16	9	5	4
B-2	11	11	8	7	6	4
G-1	8	11	8	10	5	6
G-2	10	9	9	7	3	5

We discuss below the students accepted and rejected by their teachers placed in different sociometric categories by their classfellows:

TABLE SHOWING NUMBER OF STUDENTS ACCEPTED BY THEIR TEACHERS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY THEIR CLASSFELLOWS.

School	No. of Acceptees	Placed by Students		
		Rejectee	Isolate	Neglectee
B-1	5	0	2	3
B-2	6	2	0	4
G-1	5	3	0	2
G-2	3	3	0	0

Interpretation

1. In boy's school B-1, none of the accepted students by teachers has been found to be rejected. However, in boy's school B-2, out of 6 students accepted by teachers, 2 are rejected by students. But this does not ensure that students accepted by teachers are rejected by their classfellows in boys' schools.

2. In girl's school G-1, we find out of 5 students accepted by teachers, 3 are rejected by their classfellows. In the school G-2, all the three students accepted by teachers are rejected by students.

Similarly, we discuss below the number of students rejected by their teachers placed in different sociometric categories by their classfellows.

TABLE SHOWING NUMBER OF STUDENTS REJECTED BY THEIR TEACHERS PLACED IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY THEIR CLASSFELLOWS.

School	No. of Rejectees	Placed by students		
		Acceptee	Isolate	Neglectee
B-1	4	1	0	3
B-2	4	1	1	2
G-1	6	1	2	3
G-2	5	0	0	5

This table indicates that there is no tendency on the part of teachers to accept students who are rejected by their classfellows.

<u>CONCLUSIONS</u>

1. An equal number of students are found to be accepted as well as rejected in each class by their class-fellows.

2. Comparatively more percentage of students are found to be accepted by students in boys' schools than in girls' schools.

3. Comparatively more percentage of students are found to be rejected by students in girls' schools than in boys' schools.

4. From the above three points, it is clear that we find poor relationship amongst students but comparatively student-student relationships are poorer in girls' schools than in boys' schools.

5. There is a tendency that students liked by their classfellows are also liked by their teachers. But this tendency is found to be stronger in boys' schools than in girls' schools.

6. The students disliked by their classfellows are not necessarily disliked by their teachers in boys' schools.

7. The students disliked by their classfellows may be found to be liked by their teachers in girls' schools.

8. The students accepted by their teachers are not necessarily disliked by their classfellows in boys' schools.

9. The students accepted by their teachers are found to be rejected by their classfellows in girls' schools.

10. The students rejected by their teachers are not accepted by their classfellows too.

We may conclude that the students accepted or rejected by their classfellows are also accepted or rejected by their teachers and vice-versa. Here one responsibility is inferred for teachers. Let the teachers accept maximum number of students, they will also be accepted by their classfellows. Here, the teacher is found to be the custodian of human relations in his class.

In girls' schools, there is a tendency, that the students rejected by their classfellows are accepted by teachers. But this tendency remains absent in boys' schools. Teachers should find out what students are being rejected by their classfellows and set the things right deliberately so that none of the students suffers from rejection from his classfellows or from his teachers.

Again, in girls' schools, we find students accepted by teachers are rejected by their classfellows. Here the teachers should take caution. They should not be attached to only a few students in the class, lest these very students are said to be "pet" and are disliked by their classfellows.

We have a sorry state of affairs, when we find again students rejected by teachers, are not even accepted by their classfellows. This means there are students who are accepted neither by their teachers nor by their classfellows.

The analysis is self-suggestive. To create an effective and befitting learning-teaching situation in the class, teachers have the responsibility to probe into his relations with students and student-student relations in the class and take appropriate action to produce healthy socio-emotional climate.

REFERENCES

1. GronLund (1959); Norman: Sociometry in the classroom. Harper and Brothers, New York.

2. Phenix H. Philip (1958): Philosophy of Education; Henry Holt & Company, New York.

3. Proctor C.H & Loomis, C.P (1951): Analysis of Sociometric Data; In Jahoda, M. Deutsch, M and Cook, C.W (1951). Research Methods in Social Relations.

4. Remmers, H.H.(1964): Rating Methods in Research on Teaching. Handbook of American Educational Research Association.

CHAPTER XI

INTELLIGENCE

Gronlund has concluded his survey of studies relating to intelligence and sociometric status among peers in the following words:

> " Apparently the relationship between intelligence and sociometric status is similar to that between intelligence and achievement. For example, low intelligence is predictive of low achievement, but high intelligence does not assure high achievement, since so many factors (i.e. motivation, study habits etc.) other than intelligence enter into achievement. Like-wise, low intelligence may interfere with acceptance by peers but high intelligence is not a sufficient condition for high peer group acceptance. Other qualities and characteristics must also be present. This probably accounts for the relatively low correlation coefficient reported between intelligence and sociometric status where an entire group has been considered."

Gronlund (1959 pp 192)

However, we do not find studies where the relationship between intelligence of students and their being accepted or rejected by teachers is studied. This Chapter deals with this pertinent question.

Selection of Intelligence Test

In India we have a very limited choice in the selection of the Intelligence Test. Following three group tests of intelligence are popular in the Hindi speaking areas of northern India.

(a) <u>C.I.E. Verbal Test of Intelligence</u>

Standardized at the Central Institute of Education, Delhi, for the age group 12+, 13+, 14+ and for lower ages too.

(b) <u>Verbal group test of Intelligence</u>

Standardized at the Bureau of Psychology, Allahabad U.P. for age group 12+, 13+ & +14.

(c) <u>Verbal group test of Intelligence</u>

Standardized by Dr. Jalota of Banaras Hindu University for pupils of eighth to eleventh grades.

Dr. Jalota's test, which is in Hindi (Appendix 7) is claimed to be useful in Hindi speaking areas. It is reported that by now, the test has been applied to over 18,000 school going students in some 70 studies. At present, the test is being widely used by Central Bureau of Educational and Vocational Guidance and State Bureau of Educational and Vocational Guidance, Rajasthan.

This test includes elements of vocabulary, number series etc. as given below:

Sl.No.	Items relating to	No. of items
1.	Similars	10
2.	Opposites	10
3.	Number series	10
4.	Classification	10
5.	Best Answers	20
6.	Inferences	20
7.	Analogies	20

The whole test consists of 100 items to be completed in twenty minutes.

The lower limit of reliability of the test was found to be 0.938 by the author. The validity coefficient of the test was found by correlating with the common criteria of school examination marks. These values are reported to range from +0.50 to +0.70.

In administering the test, the instructions in the Manual were meticulously followed and the answer-sheets were scored with the help of the scoring key.

Norms in terms of various classes (8th to 11th) and age groups (13 - 16 years) have been set up. The Manual also gives a conversion table for determining mental age from raw scores on the test. We have calculated the IQs of all students.

IQs of Students

We tabulate below the IQs of students in different categories (Terman, 1916 pp 79).

TABLE SHOWING IQS OF STUDENTS

IQ	Category	Number of students				Total
		B-1	B-2	G-1	G-2	
140-above	Genius	5(10.42)	0(00.00)	3(12.00)	3(11.11)	11(8.59)
130-139	Very superior	14(29.16)	1(3.57)	1(4.00)	1(3.70)	17(13.28)
120-129	Superior	8(16.67)	3(10.71)	3(12.00)	0(00.00)	14(10.94)
110-119	Above average	6(12.50)	6(21.43)	4(16.00)	7(25.93)	23(17.97)
90 -109	Average	11(22.92)	8(28.57)	8(32.00)	6(22.22)	33(25.78)
80 -89	Below average	4(8 .33)	5(17.86)	3(12.00)	4(22.22)	16(12.50)
70 -89 Below	Dull	0(00.00)	5(17.86)	3(12.00)	6(14.82)	14(10.94)
		48(100.00)	28(100.00)	25(100.00)	27(100)00)	128(100.00

We find 25.78%-about one fourth of all students possessing an averge IQ. We have 8.59% students falling in genius category whereas 10.94% students all fall in Dull category. Again when there are 10.94% students falling in superior category of IQ, there are also 12.50% students who possess below average IQ. Without going into further details of this distribution, we find the relationship between IQs of students and their being liked by teachers.

IQ of students and Teacher-Pupil Relationship

Here we study the relationship between the IQ of students and teachers' likings for students. As discussed earlier in Chapter VI, teachers had rated students to express their likings for them on the five-point Liking Scale (Appendix 3) and had given their acceptance and rejection choices on Sociometric Test (Appendix 9). Briefly we analyse below the information gathered on the following tools:

(1) Five-point Liking Scale) (Appendix 3)
(2) Sociometric Test (Appendix 9)
(3) Intelligence Test (Appendix 7)

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN THE IQS OF STUDENTS AND THE SCORES RECEIVED BY THEM FROM TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE

School	No. of students	Degrees of Freedom	Calculated values of "r"	Significance
B-1	48	46	.939	Very significant
B-2	28	26	.197	Not significant
G-1	25	23	.554	Very significant
G-2	27	25	.267	Not significant

These results are further substantiated when we study the following table. In the following table we have tabulated the values of "r" between the IQs of students and total scores received by them on the choices of acceptance and rejection on Sociometric Test from teabhers.

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN THE IQS AND SCORES OF STUDENTS ON ACCEPTANCE AND REJECTION CHOICES FROM TEACHERS ON SOCIOMETRIC TEST

School	No. of students	Degrees of Freedom	Calculated values of "r"	Significance
B-1	48	46	.712	Very significant
B-2	28	26	.107	Not significant
G-1	25	23	.577	Very significant
G-2	27	25	.350	Not significant

We find in both the tables, the values of "r" are very significant for schools B-1 and G-1, whereas these values for schools B-2 and G-2 are not found to be significant. It shows in two schools there is a significant relationship between teachers' likings for students and their (students') intelligence whereas in the other two schools this relationship is not significant.

We interpret these results in the light of Means, Medians and Modes, calculated from the IQs of all students.

TABLE SHOWING VALUES OF CENTRAL TENDENCIES OF IQS OF STUDENTS

School	Mean	Median	Mode	Standard Deviation
B-1	120.20	122.80	128.00	22.03
B-2	97.89	94.50	97.72	21.50
G-1	107.40	105.30	101.10	22.75
G-2	98.15	102.00	109.70	28.85

We find that Means and Medians for schools B-1 and G-1 are higher. For them the relationship between IQs and teachers' likings for students was found to be significant. We can say there is a low positive relationship between the likings of teachers for students and the IQs of students but there is a definite significant relationship between the IQs of students and teachers' likings for them where Mean and Medians of IQs are of appreciably higher values.

We have found the standard error of difference between the Mean IQs of students who have been found accepted and rejected by their teachers and the results are tabulated below

TABLES SHOWING STANDARD ERROR OF DIFFERENCE BETWEEN THE MEAN IQS OF STUDENTS WHO ARE ACCEPTED AND REJECTED BY THEIR TEACHERS

School	Sociometric category	No.	Mean	SD	Significance
B-1	Acceptee Rejectee	15 9	119.20 121.22	22.22 20.03	D= 2.02, σ_D=8.79 CR=.229, not significant
B-2	Acceptee Rejectee	11 7	103.72 90.85	16.17 20.07	D= 12.87, σ_D=9.02 CR = 1.42, not significant

contd....

School	Sociometric category	No	Mean	SD	Significance
G-1	Acceptee	11	116.81	23.16	D= 19.21, σ_D=10.01
	Rejectee	10	97.60	22.71	CR= 1.91, not significant
G-2	Acceptee	9	106.22	31.08	D=16.22, σ_D=15.61
	Rejectee	7	90.00	30.90	CR= 1.03, not significant

This indicates that there is no difference between the IQs of students who are accepted and rejected by teachers. We can say, IQ of students plays no part in their being liked by teachers. This is further substantiated by the following table. On the basis of IQs we have made categories and found the students falling in these categories as tabulated below:

Note: Here we have added up all the students falling in different sociometric categories in each one of the four schools.

Socio-metric category	Genius 140-Ab.	Very superior 130-139	Superior 120-129	Above average 110-119	Average 90-109	Below average 89-89	Dull 70-89	Total
Acceptee	6	7	4	10	11	4	4	46
Rejectee	4	1	6	4	5	5	8	33
Isolate	3	3	3	6	9	1	1	26
Neglectee.	2	2	0	3	9	3	4	23
	15	13	13	23	34	13	17	128

Interpretation.

1. If we take above average IQ (110-119) and study the table we find 17 acceptees falling above the IQ of 120 whereas there are also 19 acceptees whose IQ ranges from 109

to downwards touching the lowest ebb of 70. We say, students of higher as well as lower IQs are equally accepted. It is inferred that higher IQ is not a guarantee for a student to be accepted by his teachers.

2. There are 11 rejectee students who possess their IQ above 119. But there are 18 students (rejectee) who fall in the lower slabs of IQs. We can infer, more rejectees are found to have comparatively low IQs.

3. There are 9 Isolates in the upper slabs of IQs whereas there are also 11 Isolates who fall in the lower slabs of IQs. We can say, Isolates can both be of higher as well as lower IQs.

4. We find four Neglectees in the upper slabs of IQs whereas there are 16 Neglectees students who are in the lower slabs of IQ.

We draw the following conclusions:

1. There is no significant relationship between the likings of teachers for students and their (students') IQs when the Mean and Median values of IQs are comparatively low. But, there is a significant relationship between these likings and IQs where Mean and Median values of IQs of students are comparatively higher.

2. There is no significant difference between the mean values of IQs of students accepted and rejected by teachers.

3. Acceptee students (by teachers) can both be of higher and lower intelligence.

4. Isolates, who receive no choice from teachers on Sociometric Test, may possess higher as well as lower IQs.

5. Most of the rejectee and neglectee students (in the eyes of teachers) possess lower IQs.

This seems quite relevant that higher IQ of a student does not by itself make the teachers accept him. They accept the students of lower IQs too. This is in accordance with the interpretation made in Chapter No. VI, where we have found a significant relationship between the characteristics of students as perceived by teachers and teachers' likings for students. Teachers do not necessarily like students who possess higher IQs but they do accept students who are found by them industrious, interested in studies, well-behaved, regular, disciplined and respectful. However, most of the rejectee students are found to possess lower IQs. Students of lower IQs need more attention and acceptance from their teachers. Similar is the case with neglectee students. It is suggested that students who have "low IQs" need special attention, love and affection from teachers. Their acceptance by the teachers may pull them up in school work.

REFERENCES

1. Bhatia, C.M.(1955): Performance tests of Intelligence under Indian Conditions. Oxford University Press, Bombay.

2. Bonney, M.E. (1943): The Relative Stability of Social, Intellectual and Academic Status in Grades II to V and Inter-Relationship Between these various forms of Growth. J. Ed. Psy. 1943. 34: 88-102.

3. Bonney, M.E.(1944): Relationship Between Social Status, Family Size, Socio-Economic Home Background and Intelligence among School Children in Grades II to V. Sociometry, 1944,7: 26-39.

4. Cronbach, L.J. (1960): Essentials of Psychological Testing. Harper & Brothers, New York.

5. Crow, Lester D & Alice Crow (1965): Adolescent Development and Adjustment McGraw-Hill Company.

6. Feldhusen and others(1967): Classroom behaviour, Intelligence and Achievement. J. Exp. Ed. 36: 82-7 Wint, 1967.

7. Freeman, Frank S (1965): Theory and Practice of Psychological Testing. Oxford & IBH, Publishing Company.

8. Gallagher, J J. (1958): Social Status of Children related to Intelligence, Propinquity and social perception. El. Sch. J. 58: 225-31, Jan. 1958.

9. Gallagher, J.J. & Crowder, T(1957): The Adjustment of Gifted Children in the Regular Classroom. Exceptional Children, 1957, 33: 306-12, 317-19.

10. Gronlund, Normane (1959): Sociometry in the Classroom. Harper & Brothers, New York.

11. Hanson, E.H. (1965): Even your best friends won't tell you your IQ. Ed. 86: 126, Oct. 65.

12. Jalota, S (1965): Intelligence Testing in India. Indian Psychological Review. 1965, Vol I No. 2, 96-112.

13. Jalota, S (1964): Manual of Directions for the Group Test of general mental ability (1/60). The Psycho-Centre, Varanasi.

14. Johnson, G.O.(1950): A Study of the Social Position of Mentally Handicapped Children in the Regular Grades. American Journal of Mental Deficiency, 1950, 55: 60-89.

15. Johnson, G.O. and Kirk, S.A. (1950): Are Mentally-handicapped children segregated in the regular grades? J. of Except. Children, 1950, 17, 65-68.

16. Laughbir, F (1954): The Peer Status of Sixth-and-Seventh-Grade Children. New York, Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1954.

17. Long, L (1962): Mimeographed Handbook of Test Information. Directorate of Education and Vocational Guidance, Delhi.

18. Stoddard, George D (1956): The Meaning of Intelligence. The MacMillan Company, New York.

19. Terman, L.M. (1916): The Measurement of Intelligence. Houghton Mifflin Company, Boston.

20. Yamamoto and others (1966): Intelligence, Creative Thinking and Sociometric Choice and fifth-grade Children. J. Expt. Edu. 34: 83-9, Sp. 1966.

CHAPTER XII

ACADEMIC ACHIEVEMENT OF STUDENTS

Introduction

In this Chapter, we plan to study the relationship between teachers' likings for students and students' academic achievement.

In our examination ridden system of education, academic achievement of students occupies an important place. Virtually, students' success and teachers' effectiveness, is seen from the examination results. A student good at studies may be visualized as a boon and the student weak at studies may be considered as a headache by the teacher. In this context, it becomes an interesting investigation into the question of likings and dislikings of teachers for their students as related to students' academic achievement. An attempt is made here to probe into this pertinent question.

Measurement

For the purpose of this study, we have taken Annual Examination results (Appendix 8) of the students as their academic achievement scores. These results include the performance of students during the whole year i.e. marks obtained by the students in three monthly tests, one half yearly examination and the final examination. The researcher did not construct an achievement test himself for the reason that if academic achievement has any relevance with respect to their

acceptance or rejection by teachers, it has to be the marks obtained by students in the routine tests of the schools. The teachers, if they are influenced by achievement, in regard to their likes or dislikes for students, it is the achievement as tested in the normal manner in the school.

Relationship between the likings of teachers for students and students' academic achievement

1. Coefficient of correlation

We have calculated the coefficient of correlation between the marks obtained by students in each subject and the liking score received by students from the respective subject teachers, the results of which are tabulated below:

TABLE SHOWING COEFFICIETN OF CORRELATION BETWEEN THE RATINGS OF TEACHERS ON FIVE-POINT LIKING SCALE FOR STUDENTS AND MARKS OBTAINED BY THEM IN THEIR SUBJECTS

School	Teachers' serial numbers in each school				
	1	2	3	4	5
B-1	.593	.498	.350*	.539	.317*
B-2	.570	.481*	.987	.553	.517
G-1	.507	.757	.449*	.688	.377*
G-2	.118*	.453*	.330**	.403*	.320**

Single starred values of "r" show the value to be significant only at .05 level and double starred values denote insignificant values whereas others are significant at .01 level of confidence.

Interpretation

1. In the case of boys' schools, all the values are significant at .05 level. There are 7 values which are significant even at .01 level. It shows there is a significant relation between teachers' likings for students and students' academic achievement.

2. In the case of girls' schools, we find for 4 out of ten teachers, there is no significant relation between their likings for students and students' academic achievement. If we take into account the values of "r" at .01 level of significance, we find for 7 out of 10 teachers, there is no significant relationship between these two. We can say there is no significant relationship between teachers' likings for students and students' academic achievement in girls' schools.

3. This is in conformity with the findings in Chapter VII, where we had found men teachers lay more emphasis on the characteristics of students relating to their studies whereas women teachers emphasise students' characteristics relating to their behaviour for their likings of students.

We have also calculated the coefficient of correlation between the likings of all teachers taken altogether and the total marks of students in the final examination the results of which are tabulated below:

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN THE STUDENTS' TOTAL MARKS AND SCORE RECEIVED BY THEM FROM THEIR TEACHERS FOR THEIR PERSONAL LIKINGS OF THEM.

School	Calculated values of "r" on	
	Five-point Liking Scale	Sociometric Test
B-1	.645	.764
B-2	.776	.545
G-1	.797	.701
G-2	.464	.307*

Here, again we find significant values of "r" for both boys' schools and "r" is found insignificant for school G-2. It substantiates the previous finding that boys' schools, there is a significant relationship between teachers' likings for students and their academic achievement which is not found for all women teachers.

2. The difference between the academic achievement of students who are found acceptees and rejectees by teachers on Sociometric Test.

We have calculated the standard error of difference between the Mean marks of students who are found to be acceptees and rejectees by teachers on Sociometric Tests.

TABLE SHOWING STANDARD ERROR OF DIFFERENCE BETWEEN THE MEAN MARKS OF STUDENTS WHO ARE FOUND TO BE ACCEPTEES AND REJECTEES BY TEACHERS

School	Sociometric category	No.	Mean	SD	Significance
B-1	Acceptee	15	217.87	39.74	D=70.76 σ_D=13.56
	Rejectee	9	147.11	26.73	CR=5.21, Very significant

contd...

School	Sociometric category	No.	Mean	SD	Significance
B-2	Acceptee	10	272.00	34.52	D=38.86 σ_D=13.89
	Rejectee	7	233.14	22.91	CR=2.79, Very significant
G-1	Acceptee	11	202.36	46.23	D=43.06 σ_D=16.76
	Rejectee	10	159.30	29.54	CR =2.57, Very significant
G-2	Acceptee	9	221.22	43.96	D=13.06, σ_D=17.34
	Rejectee	6	208.16	22.93	CR==0.75, not significant

We find for schools B-1 and B-2, critical ratio is found to be significant at .01 level. This value is significant at .05 level for school G-1, whereas it is not significant for school G-2. This means there is significant difference between academic achievement of acceptees and rejectees students of men teachers. However, the same does not hold so good in the case of women teachers.

3. Chi-square test between sociometric categories and students' academic achievement.

We apply Chi-square test of independence with the null hypothesis, that teachers' likings of students and their (students') academic achievements are independent. We have already found students placed in different sociometric categories by teachers (Chapter VI). We arrive at the following contingency tables between the sociometric categories and the maximum marks obtained by students in the final examination.

TABLES SOCIOMETRIC CATEGORIES AND ACADEMIC ACHIEVEMENT OF STUDENTS

School B-1

Sociometric Categories	Marks					Total
	70-110	110-150	151-190	191-230	231 -	
Acceptee	(1.875) 0	(3.120) 2	(4.687) 2	(4.065) 7	(1.245) 4	15
Rejectee	(1.125) 2	(1.872) 3	(2.812) 3	(2.439) 1	(.747) -	9
Isolate	(2.375) 2	(3.952) 4	(5.937) 10	(5.149) 3	(1.577) -	19
Neglectee	(.625) 2	(1.040) 1	(1.562) -	(1.355) 2	(.415) -	5

Calculated value of Chi-square, 22.986 lies between .05 and .02 level.

School B-2

Sociometric Categories	Marks			Total
	151-190	191-230	231 -	
Acceptee	(.37) 0	(3.33) 3	(6.30) 7	10
Rejectee	(2.59) 0	(2.41) 4	(4.41) 3	7
Isolate	(.148) 0	(1.32) 0	(2.52) 4	4
Neglectee	(.222) 1	(1.98) 2	(3.78) 3	6
	1	9	17	27

calculated values of Chi-square 9.788 lies in between .10 and .05 level.

School G-1

Sociometric Categories	Marks				Total
	111-150	151-190	191-230	231 -	
Acceptee	(3.08) 2	(3.96) 2	(2.64) 4	(1.32) 3	11
Rejectee	(2.80) 4	(3.60) 5	(2.40) 1	(1.20) 0	10
Isolate	(0.56) 1	(0.72) 0	(0.48) 1	(0.24) 0	2
Neglectee	(0.56) 0	(0.72) 2	(0.48) 0	(0.24) 0	2
	7	9	6	3	25

Calculated value of Chi-square 10.907 lies in between .30 and .20 level.

School G-2

Sociometric Categories	Marks			Total
	151 - 190	191 - 230	231 -	
Acceptee	(3.456) 3	(3.456) 4	(2.070) 2	9
Rejectee	(2.304) 2	(2.304) 3	(1.380) 1	6
Isolate	(0.384) 0	(.384) 1	(.230) 0	1
Neglectee	(3.846) 5	(3.846) 2	(2.307) 3	10
	10	10	6	26

Calculated value of Chi-square 4.026 lies in between .70 & .50.

From the above four contingency tables, we find that for both the boys' schools Chi-square is significant at .05 level of confidence. But these values are not found significant for either of the girls' schools. It again goes to substantiate the finding that in boys' schools there is a significant relationship between men teachers' likings for students and students' academic achievement, while this is not true for women teachers in girls' schools.

We have the following contingency table which combine all the preceding four tables:

Sociometric Categories	Marks					Total
	70-110	111-150	151-190	191-230	231 -	
Acceptee	(2.115) 0	(6.075) 4	(12.465) 7	(13.545) 18	(10.710) 16	45
Rejectee	(1.504) 2	(4.320) 7	(8.864) 10	(9.632) 9	(7.616) 4	32
Isolate	(1.222) 2	(3.510) 5	(7.202) 10	(7.826) 5	(6.188) 4	26
Neglectee	(1.081) 2	(3.105) 1	(6.371) 8	(6.923) 6	(5.474) 6	23
	6	17	35	38	30	126

Calculated value of Chi-square 20.728 lies in between .10 and .05 level.

When we combine all the students of 4 schools and their sociometric categories, we find for this contingency table value of chi-square comes to be significant at .05 level of confidence. We can say, as a whole teachers' likings for students and their (students') academic achievement are related

to each other.

CONCLUSIONS

1. There is a significant relationship between teachers' likings for students and students' academic achievement in boys' schools. The same is not true for all women teachers in girls' schools.

2. In boys' schools, there is a significant difference between the academic achievement of students who are accepted and that of the students who are rejected by teachers.

3. In girls' schools, there is no significant difference between the academic achievement of students who are accepted and that of the students who are rejected by the teachers.

4. Students' academic achievement and teachers' likings for them are dependent variables in the case of men teachers and independent in the case of women teachers.

5. As a whole, teachers' likings for students and their academic achievement are related to each other.

CHAPTER XIII

SOCIO-ECONOMIC STATUS

Introduction

Socio-economic status of an individual plays its own part in his recognition in the group life. Socially, it is thought quite relevant that in the long run, it is the socio-economic status of an individual which determines how he is held among his associates. For all practical purposes, it is customary to know the family background of our friends, colleagues and all with whom we create close social relationship.

According to Good's Dictionary of Education, we mean by socio-economic status:

> "The level indicative of both the social and the economic achievement of an individual or group".

(Good, V Carter, 1959 pp 510)

In other words, the economic standing and the social esteem of an individual pertains to his socio-economic status in his group. Decidedly, it is a relative term. We can study it with respect to the members of a particular group, a nation or it can be studied with respect to an international life.

Tools for the determination of Socio-economic status.

Although there is not much clarity and unanimity

as regards the determination of socio-economic status, the attempts made to measure the socio-economic status of an individual, have been based on three assumptions (Kuppuswamy 1962 pp 1).

(a) that there is a class structure in society,

(b) that status positions are determined mainly by a few commonly accepted symbolic characteristics, and

(c) that these characteristics can be scaled and combined using statistical procedures.

Taussing (1928) built up a scale on the basis of income. Cattell (1942) studied the relationship between social prestige and IQ, income, education and birth restrictions. Sims (1952) used 23 items like education of parents, occupation of parents and possession of certain articles. Warner and his associates (1949) used four variables — occupation, source of income, type of housing and neighbourhood. Hollinshead (1958) used three indications, viz. residential address, occupation and education.

In India, Lewis and Dhillon (1960), for their project on group dynamics study, developed a scale for rural agricultural population including housing, land ownership, income from outside, employment and family literacy. Varma (1962) developed a comprehensive scale including the composition of family, the educational level and income of the family. Kuppuswamy (1959) used three elements: education, occupation and income.

We have witnessed an inflationary spiral in

1962. Wages and prices entered a vicious circle. Moreover, in the take-off stage of our economy, it is difficult to follow a set pattern for the determination of socio-economic background of any family. So, the researcher developed his own comprehensive questionnaire for the purpose.

<u>Questionnaire for Socio-economic Status</u> (Appendix 18)

We shirk, fear, hesitate and even don't want to reveal our exact and correct income to any one. The parents have explicitly told the children that they should not reveal the exact income of the family to any one. We tell our income with respect to the purpose for which it is asked. So, to know the exact income is a difficult task. For this purpose to get the maximum exactness of the income of the family of the student, a comprehensive interview schedule was prepared. Most of the questions on the interview schedule provide a good opportunity to the researcher to cross-question the interviewee to fetch the correct information from him.

We have included three elements for the determination of the socio-economic status of the family of the student.

1. <u>Income</u> - Here we have included the income of all the earning members of the family. This total income was divided by the number of members who live on that income to arrive at per head income of the family and the following arbitrary weightages were given to it.

Per head income in Rs per month	Weightage
1 - 50	1
51 - 100	2
101 - 150	3
151 - 200	4
201 - 250	5
251 - 300	6
301 - 350	8
351 - 400	10
401 - 500	12
above 500	15

2. Education

Here we have added up the education of all the members of the family who are included for the determination of per head income of the family. For the determination of educational background, we have given the following arbitrary weightages to different stages of academic achievement.

Academic Achievement	Weightage
No Education	0
Below Vth class	1
Between VI to VIIIthe classes	2
Between IX to XIth classes	3
Matric or Hr. Sec. passed	4
F.A. Passed	5
B.A. Passed	6
M.A. Passed	7
Any other diploma or B. Ed., L.L.B or second M.A. etc.	2

3. Occupation

Here again, we have included the occupations of all the members of the family who are involved in the deter-

mination of per head income of the family. Here, we have given the following arbitrary weightages to different occupations.

Occupations	Weightage
Profession	10
Semi-profession	6
Clerical, shop-owners or farm owners.	5
Skilled workers	4
Semi-skilled workers	3
Unskilled workers	2
Unemployed	1

Here, we were interested simply to know whether there exists some relationship between the likings of teachers for students and the students' family background. So, we have not gone into the determination of the socio-economic status as such (it needs full research work) but have added up the scores of an individual's family. It gave us the comparative picture of the family background of all students within the group.

Analysis and Interpretations

Here we will consider the following two main questions:

(1) The relationship between the socio-economic background of the family of the student and his being liked by teachers.

(2) The difference between the socio-economic background of the families of the students who are rejected and accepted by their teachers.

We tabulate below the level of education, income and occupation of the families of students. In our analysis, we have taken into account all these three factors for all the members of the family of the student. But except for income, it is not practicable to show the education and occupation of all the members of the family of the student. Because of this consideration, we show the education and occupation of only head of the family whereas income is shown as per head income of the family.

Category of Education	Number of students in schools				Total
	B-1	B-2	G-1	G-2	
No Education	1	6	0	3	10
Below Matric	2	9	4	1	16
Matric/Hr.Sec	13	8	15	13	49
F.A.	4	2	0	3	9
B.A/B.Sc./ B.Com/B.E	19	3	5	5	32
M.A/M.Sc.	6	0	1	1	8
B.A., LL.B	3	0	0	1	4
	48	28	25	27	128

We find there are 44(34.37%) students whose parents have got education upto post-graduate level. There are 26(20.31%) students whose parents have education below Matric level. There are 58(45.31%) students whose parents have received their education upto Hr. Sec. or Intermediate level. This shows students as a whole come from educated families.

Income

We illustrate below the per head income of the family of the student:

Range of Income	Number of students in schools				Total
	B-1	B-2	G-1	G-2	
Above 500	3	0	0	0	3
401-500	3	1	0	0	4
351-400	0	0	0	0	0
301-350	4	0	0	0	4
251-300	9	1	1	1	12
201-250	12	1	1	1	15
151-200	5	0	4	4	13
101-150	7	5	7	11	30
51-100	3	13	10	7	33
- 50	2	7	2	3	14
Total	48	28	25	27	128

We find 77(60.15%) students whose family per head income comes to only Rs. 150/-. There are 11(8.59%) students only whose family per head income comes to Rs. 300/- and above it. There are 40(31.25%) students whose family per head income falls in between Rs. 151-300. As regards economic background, we can say, the sample constituted students coming from families of all levels.

Occupation

We give below the occupations of head of the family of students:

Occupation Category	No. of students in schools				Total
	B-1	B-2	G-1	G-2	
Professional	7	0	2	0	9
Semi-professional	36	9	7	13	65
Clerical-shopowners	4	12	15	11	42
Skilled workers	0	4	0	1	5
Semi-skilled workers	0	2	0	2	4
Un-skilled workers	0	10	1	0	2
Un-employed	1	0	0	0	1
Total	48	28	25	27	128

There are 107 (83.59%) students whose parents' profession falls in semi-profession category. They include section officers and wholesale business men.

As a whole, we can say, our sample includes students from higher and middle class families. Our sample does not include students who can be said to belong to "poor" families.

1. Relationship between the Socio-economic background of the family of the student and his being liked by teachers.

Teachers had given their ratings for their personal likings of students on five-point Liking Scale (Appendix 3). We have totalled this score of all teachers for each student. Again, we have given arbitrary weightages to the educational, economic and occupational background of the students' families. We have found the relationships between the score on Liking Scale and each of these three elements results of which are tabulated below:

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN TEACHERS' LIKINGS FOR STUDENTS AND THEIR(STUDENTS') FAMILIES' EDUCATION, INCOME AND OCCUPATION BACK-GROUND

School	Calculated values of "r"			Significance
	Education	Income	Occupation	
B-1	.155	.213	-.007	Not significant
B-2	-.145	-.203	.099	-do-
G-1	.120	-.008	-.208	-do-
G-2	-.028	-.164	-.055	-do-

We find all the values to be non-significant. From this we can infer, that educational, economic and occupational backgrounds of the families of students bear no relationship with the likings of teachers for students.

We have also added up the scores of these three elements (education, income and occupation) and found out the relationship with scores on five-point Liking Scales.

TABLE SHOWING COEFFICIENTS OF CORRELATION BETWEEN TEACHERS' LIKINGS FOR STUDENTS AND THEIR (STUDENTS) SOCIO-ECONOMIC BACKGROUND

School	Calculated values of "r"	Significance
B-1	.151	Not significant
B-2	-.137	Not significant
G-1	.034	Not significant
G-2	-.170	Not significant

We find all values to be non-significant. This shows that there is no relationship between the likings of teachers for students and students' socio-economic background. We can say, it is the student as such who is liked or disliked by teachers.Teachers have nobias for students coming from various families. According to the analysis made in Chapter VII, students are liked or disliked according to their characteristics perceived by teachers. This is further substantiated by the following analysis.

The difference between the socio-economic background of the families of the students who are rejected and accepted by their teachers.

In Chapter VI, we had found out the students who are

rejected and accepted by teachers on the basis of choices received on Sociometric Test. We have found out the standard-error of difference between the total score of socio-economic background of the families of these students.

TABLES SHOWING STANDARD ERROR OF DIFFERENCE BETWEEN THE MEAN SCORES OF SOCIO-ECONOMIC BACKGROUND OF THE FAMILIES OF THE STUDENTS WHO ARE FOUND ACCEPTED AND REJECTED BY TEACHERS

School	Sociometric Category	No.	Mean	SD	Significance
B-1	Acceptee Rejectee	15 9	42.50 34.66	11.59 9.49	D=9.84, σD=9.97 CR= .098, Not significant
B-2	Acceptee Rejectee	11 7	23.27 23.71	8.25 6.13	D=.44, σD=3.39 CR=.129, Not significant
G-1	Acceptee Rejectee	11 10	31.56 31.10	7.05 10.66	D=.46, σD=3.98 CR= .115, Not significant
G-2	Acceptee Rejectee	9 7	30.11 26.55	6.40 7.51	D= 3.56, σD=3.54 CR= .100 Not significant.

We find insignificant difference between the Mean scores of socio-economic background of the families of students who are accepted and rejected by teachers. This is again substantiated by the following tables.

We have applied Chi-square test of independence on the students falling in different sociometric categories and the scores of these socio-economic background.

CONTINGENCY TABLE SHOWING STUDENTS' PLACEMENT IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES BY TEACHERS AND THEIR(STUDENTS') SOCIO-ECONOMIC BACKGROUND

School B-1

Sociometric Category	Socio- economic background score					Total
	15-24	25-34	35-44	45-54	55-65	
Acceptee	(1.875) 1	(5.625) 4	(3.125) 3	(3.125) 5	(1.25) 2	15
Rejectee	(1.125) 1	(3.375) 4	(1.875) 3	(1.875) 1	(.75) 0	9
Isolate	(2.375) 3	(7.125) 10	(3.958) 2	(3.958) 2	(1.583) 2	19
Neglectee	(.625) 1	(1.875) 0	(1.042) 2	(1.042) 2	(.418) 0	5
Total	6	18	10	10	4	48

Chi-square = 11.523, lies between .50 & .30.

School B-2

Sociometric Category	Socio-economic background score					Total
	15-24	25-34	35-44	45-54	55-65	
Acceptee	(5.181) 6	(4.708) 4	(.787) 1	0	(.396) 0	11
Rejectee	(3.297) 4	(2.996) 3	(.497) 0	0	(.252) 0	7
Isolate	(1.884) 1	(1.712) 2	(.284) 1	0	(.144) 0	4
Neglectee	(2.826) 2	(2.568) 3	(.426) 0	0	(.196) 1	6
Total	13	12	2	0	1	28

Chi-square = 3.969 does not lie in the table.

School G-1

Sociometric Category	Socio-economic background score				Total
	15-24	25-34	35-44	45-54	
Acceptee	(3.96) 3	(3.52) 3	(2.64) 4	(.88) 1	11
Rejectee	(3.60) 3	(3.20) 4	(2.40) 2	(.80) 1	10
Isolate	(.72) 2	(.64) 0	(.48) 0	(.16) 0	2
Neglectee	(.72) 1	(.64) 1	(.48) 0	(.16) 0	2
Total	9	8	6	2	25

Chi-square = 5.940 lies between .80 & .70.

School G-2

Sociometric Category	Socio-economic background score			Total
	15-24	25-34	35-44	
Acceptee	(3.33) 3	(3.996) 4	(1.665) 2	9
Rejectee	(2.59) 3	(3.108) 3	(1.295) 1	7
Isolate	(.37) 0	(.444) 0	(1.185) 1	1
Neglectee	(3.70) 4	(4.444) 5	(1.850) 1	10
Total	10	12	5	27

Chi-square = 9.007 lies between .20 & .10

CONTINGENCY TABLE SHOWING ALL STUDENTS' PLACEMENT IN DIFFERENT SOCIOMETRIC CATEGORIES AND THEIR SCORE ON SOCIO-ECONOMIC BACKGROUND

Sociometric Category	Socio-economic background score					Total
	15-24	25-34	35-44	45-54	55-64	
Acceptee	(13.662) 13	(17.986) 15	(8.280) 10	(4.324) 6	(1.794) 2	46
Rejecteee	(9.801) 11	(12.903) 14	(5.940) 6	(3.102) 2	(1.287) 0	33
Isolate	(7.722) 6	(10.166) 12	(4.680) 4	(2.444) 2	(1.014) 2	26
Neglectee	(6.831) 8	(8.993) 9	(4.140) 3	(2.162) 2	(.897) 1	23
Total	38	50	23	12	5	128

Chi-square = 24.820 does not lie in the table.

The values in the brackets show the independent values. In all the individual tables for each one of the schools and also for data combined for all schools, we do not find the value of Chi-square to be significant. This shows both variables i.e. teachers' placement of students in different sociometric categories depicting their likings for students, and students' socio-economic backgrounds of their families, are independent.

CONCLUSION

It is a satisfactory finding that socio-economic background of the families of students have no bearing on the likings of teachers for them. That means there is no distinction in the eyes of teachers between the students coming from a good socio-economic background or a poor one.

REFERENCES

1. Cattell R (1942): The Concept of Social Status. J. Soc. Psych. 1942; 15.

2. Good, C.V (1959): Dictionary of Education (2nd Ed.), McGraw Hill, New York.

3. Hellinghead and Redlich (1958): Social Class and Mental Illness; Wiley, New York.

4. Kuppuswamy B. (1959): A Scale to Measure Socio-economic Status. Indian J. of Psych: 34; 1959.

5. Kuppuswamy, B (1962): Manual of Socio-economic Scale(Urban). Manasyan, Delhi.

6. Lewis & Dhillon (1960): Group Dynamics in a North Indian Village. Planning Commission, Govt. of India (1954) reported in J. Psych. Baroda, 1960.

7. Sims (1952): S.C.I. Rating Scale. World Book Co., New York.

8. Taussing (1928): Principles of Economics. McMillan Company, New York.

9. Warner, et al (1949): Social Class in America. Science Research Associates, Chicago.

CHAPTER XIV

MULTIVARIATE ANALYSIS

We have probed into teachers' and students' likings for each other, as related to certain factors. In brief, we have made analysis in the following directions:

(a) <u>Relationship between teachers' likings for students and students'</u>

(i) characteristics as perceived by teachers,

(ii) intelligence,

(iii) academic achievement

(iv) relationship with classfellows,

(v) socio-economic background.

(b) <u>Relationship between students' likings for teachers and teachers'</u>

(i) characteristics as perceived by students,

(ii) job-satisfaction,

(iii) age,

(iv) teaching experience

(v) relationship with colleagues.

In our analysis in the preceding chapters, we have found coefficients of correlation between the likings of teachers and students for each other and the factors as enlisted above. At that stage, we only found bi-variate relationships. It appeared to the researcher that an attempt may be made to find out multivariate relationships between the criterion (likings as a dependent variable) and the other

independent variable. It is quite befitting to report multivariate analysis in an exclusive chapter.

Guilford, J.P. (1956 pp 392) remarks:

> " The coefficient of multiple correlation indicates the strength of relationship between one variable and two or more other taken together. The multiple correlation is not merely the sum of correlations of the dependent variable and the various independent variables taken separately. Obviously, there would be instances in which these would add upto more than 1.00. One reason is that independent variables themselves are usually overlapping (intercorrelated) and so duplicate one another to some extent. In this we see one important principle of multiple correlation. The multiple R is related to the intercorrelation of independent variables as well as to their correlation with the dependent variable."

In our problem, the dependent variable is the likings of teachers and students for each other, while the independent variables are the various factors enumerated above.

We make use of a regression equation to predict the most likely measurement in one variable from the known measurements in the others. In the following pages, we will discuss the multivariate regression equations as arrived at in each school included in our sample.

Part A - <u>Regression equations for students' likings for teachers and other variables</u>.

We have made use of Wherry-Doolittle method in arriving at the regression equations. The principles of this method are illustrated (Guilford 1956, pp 411) as

follows:

" One starts with the single test that seems to offer most in prediction of the criterion. The method then aids in selection of the second test that will have most to add to prediction when combined with the first. A third can be selected which will add most by way of prediction when combined with the first two and so on. At each step a shrinkage formula is applied in order to determine whether the shrunken R is appreciably larger than the previous R. At the point where no further gain according to these standards is apparent, no more tests are added."

TABLES SHOWING INTERCORRELATIONS BETWEEN THE STUDENTS' LIKINGS FOR TEACHERS AND OTHER VARIABLES.

School B-1

Criterion	Variables				
	Characteristics (1)	Job-satisfaction (2)	Age (3)	Experience (4)	Teacher-Teacher Relationship (5)
(Likings)	.985	-.286	-.178	.148	.844
1		-.201	-.207	.314	.839
2			.195	-.307	-.357
3				.846	-.344
4					.054

Regression Equation: $\bar{Z}_c = .985\ Z_1$ (Sigma Form)

$\bar{X}_c = .113\ X_1 + K$ (Score Form)

$R = .985$

$R^2 = .9702$

Here, we find coefficient of multiple determination (R^2) as .9702. It may be interpreted that 97.02 per cent of the variance in the scores of students' likings for teachers

is predicted by the characteristics as perceived by students in teachers in this school. There remains only a small percentage of the variance, i.e. 2.98 which may be accounted for by the rest of four variables.

School B-2.

Criterion	Characteristics (1)	Job-satisfaction (2)	Age (3)	Experience (4)	Teacher-Teacher Relationship (5)
(Likings)	.994	.174	.401	-.024	.169
1		.221	.462	.005	.125
2			.019	-.693	-.523
3				.636	-.474
4					.109

Regression Equation: $\bar{Z}_c = .717Z_1 + .601Z_3 + .00Z_5$

$\bar{X}_c = .201\ X_1 + .547X_3 + .001X_5 + K$

$R = .996$
$R^2 = .9932$

We can say in this school 99.32 per cent of the variance in the scores of students' likings for teachers is predicted by the teachers' characteristics perceived by students, age and the relationship of teachers amongst themselves. However, in this school too R^2 increases in the following manner:

$R^2 = .9880$ variable I only.

$R^2 = .9922$ when variable III is added.

$R^2 = .9932$ when variable V is also added.

We can say 98.80 per cent of the variance in the scores of students' likings for teachers is again predicted by the characteristics of teachers as perceived by students.

School G-1

Criterion	Variables				
	Characteristics (1)	Job-satisfaction (2)	Age (3)	Experience (4)	Teacher-Teacher Relationship (5)
(Likings)	.775	.592	.468	.580	.973
1		.189	.104	.240	.609
2			.543	.801	.730
3				.916	.531
4					.658

Regression Equation : $\bar{Z}_c = .956 Z_5 + .029 Z_1$

$$\bar{X}_c = 6.171\ X_5 + .006 X_1 + K$$

$R = .944$
$R^2 = .9720$

In this school, predictive variables come out to be teacher-teacher relationship and their characteristics. They go to predict 97.20 per cent of the variance in the scores of likings of students for teachers.

School G-2

Criterion	Variables				
	Characteristics (1)	Job-satisfaction (2)	Age (3)	Experience (4)	Teacher-Teacher Relationship (5)
(Likings)	.933	.135	-.336	-.192	-.352
1		-.308	-.600	-.300	-.507
2			-.782	.221	.557
3				.951	.751
4					.881

Regression Equation: $\bar{Z}_c = 1.076\ Z_1 + .466 Z_2$

$\bar{X}_c = .103 X_1 + .317 X_2 + K$

$R = .9650$
$R^2 = .9325$

Here we find 93.25 per cent of the variance in scores of students' likings for teachers is predicted by the job-satisfaction by teachers and their characteristics as perceived by students.

We find each one of the school gives its own and a different picture. The following variables, thus, predict the students' likings for teachers, in the four schools, respectively.

School	Variables
B-1	Characteristics
B-2	Characteristics, Age, teacher-teacher relationship.

School	Variables
G-1	Teacher-teacher relationship, characteristics.
G-2	Characteristics, job-satisfaction

We may infer from this:

1. Each class is itself a unit and presents its own picture.
2. Four out of five variables have been accounted for students' likings for teachers.
3. No generalization is possible except that characteristics remain an essential element of students' likings for teachers.

Part B - Regression equations for teachers' likings for students and other variables.

TABLES SHOWING INTERCORRELATIONS BETWEEN THE TEACHERS' LIKINGS FOR STUDENTS AND OTHER VARIABLES.

School B-1

Criterion	Characteristics (1)	Intelligence (2)	Academic Achievement (3)	Student-Student Relationship (4)	Socio-Economic Background (5)
(Likings)	.912	.939	.645	.801	.151
1		.552	.670	.834	.624
2			.028	.223	-.137
3				.640	.848
4					.032

Regression Equation: $\bar{Z}_c = .939 Z_2$

$\bar{X}_c = .149 X_2 + K$

$R = .938$ $R^2 = .8817$

Here, 88.17 per cent of the variance in the scores of teachers' likings for students is predicted by the intelligence of students. Rest of the four variables account for only 11.83 per cent of variance in the scores of teachers' likings for students.

School B-2

Criterion	Variables				
	Characteristics (1)	Intelligence (2)	Academic Achievement (3)	Student-Student Relationship (4)	Socio-economic background (5)
(Likings)	.900	.197	.776	.775	-.137
1		.825	.844	.261	-.179
2			.212	.123	.186
3				.398	-.264
4					-.080

Regression Equation: $\bar{Z}_c = .900\ Z_1$

$X_c + .122\ X_1 + K$

$R = .900$
$R^2 = .8100$

It indicates 81.00 per cent of the variance in the scores of teachers' likings for students is predicted by the characteristics perceived by teachers in students. The rest of the four variables i.e. intelligence, academic achievement of students, student-student relationship and students' socio-economic background of the children accounts for 19.00 per cent of the variance in teachers' likings. It may be added

that some other factors (K) too may account for teachers' likings for students.

School G-1.

Criterion	Variables				
	Characteristics (1)	Intelligence (2)	Academic-Achievement (3)	Student-Student Relationship (4)	Socio-economic background (5)
(Likings)	.900	.554	.797	.609	.034
1		.582	.811	.563	.144
2			.712	.337	-.174
3				.291	-.466
4					.091

Regression Equation : $\bar{Z}_c = .816Z_1 + .150Z_4$

R . 907 [illegible] $\bar{X}_c = .110X_1 + .042X_4 + K$

From this we interpret in this school, variance in the scores of teachers' likings for students is accounted for by 82.38 per cent, for the characteristics of students and relationship between classfellows. —— Only 17.62 per cent of the variance in the scores remains for other variables to be accounted for teachers' likings for students. It may be intelligence, academic achievement or their socio-economic background.

School G-2

Criterion	Characteristics (1)	Intelligence (2)	Academic Achievement (3)	Student-Student Relationship (4)	Socio-economic background (5)
	Variables				
(Likings)	.853	.267	.464	.462	-.170
1		.198	.579	.303	.043
2			.555	.154	.400
3				.431	.252
4					.174

Regression Equation: $\bar{Z}_c = .692Z_1 + .196Z_4 - .338Z_5 + .094Z_2 + .279Z_3$

$R = .931$ $R^2 = .8685$ $\bar{X}_c + .927X_1 + .031X_4 - .100X_5 + .007X_2 + .012X_3 + K$

This shows that even though all the five variables account for teachers' likings for students, they go to predict only 86.85 per cent of the variance of scores of teachers' likings for students. The left over variance i.e. 13.15 of scores of teachers' likings for students may account for something "K" i.e. some other variables. In one way it goes to justify the inclusion of other variables to study teachers' likings for students.

We find each one of the school gives its own picture. The following variables go to predict the teachers' likings

for students:

School	Variables
B-1	Job-satisfaction
B-2	Characteristics
G-1	Characteristics and student-student relationship.
G-2	Characteristics, student-student relationship, socio-economic background, intelligence and academic achievement of students.

[illegible]

We find both for students' likings of teachers and teachers' likings of students are accounted for by different variables in each one of the four schools. It does show that each class constitutes its own fibre of teacher-pupil relationship. No generalization is possible. We need to study the problem in the context of each one of the school and within the school each one of the class to arrive at understanding and then take practical steps to establish the genuine and proper relationship between teachers and students.

REFERENCES

1. Garrett Henry, E (1966): Statistics in Psychology and Education. Vakils, Feffer and Simons Privtate Ltd. pp 426-442.
2. Guilford, J.P. (1956): Fundamental Statistics in Psychology and Education. McGraw-Hill Boom Company Inc.
3. Lindquist, E.F (1940): Statistical Analysis in Educational Research. Houghton Mifflin Company; Boston pp 253-257.

CHAPTER XV

EXTREME CASES OF ACCEPTED AND REJECTED TEACHERS AND STUDENTS

In Chapter VI, we found which teachers are accepted and rejected by their students and which students are accepted and rejected by their teachers. In the subsequent chapters we have examined these acceptances and rejections as related to job-satisfaction of teachers and other variables and intelligence and other variables of students. Here we will make a few case studies of extreme cases of accepted and rejected teachers and students. For this purpose, this chapter is divided into following two sections:

Section I - Extreme cases of accepted and rejected teachers by students.

Section II- Extreme cases of accepted and rejected students by teachers.

Section I

Extreme cases of accepted and rejected teachers by students

We have taken from each school, one most accepted as well as one most rejected teacher by the students. From four schools we have 4 accepted and 4 rejected teachers which will be studied in the following two parts of this

section:

Part A - Extreme cases of accepted teachers by students.

Part B - Extreme cases of rejected teachers by students.

Part A - Extreme cases of accepted teachers by students.

1. Teacher Sl. No. 1 from School B-1.

A bachelor of 38 years is liked by 45(93.75%) of his 48 students. A smart young man of 12 years' teaching experience, he is the most popular teacher amongst the students. His colleagues too, admit that he enjoys confidence, respect and obedience from all students. But teachers are heard grumbling against him and he is found rejected by 3 out of 4 colleagues on Sociometric Test.

He expressed full satisfaction in his job and decided to stay on in it throughout life. He comes from a middle-class family. His father is a retired Postmaster. He lives all alone in a rented house and gives substantial financial help every month to his widowed sister.

He claims to be a self-made man. He received all his education as a regular student without any break. He was placed in the third division in his B.A. and second division in his M.A. examinations.

During his free periods, he is usually found in the library amongst students studying magazines, newspapers and discussing various matters with students.

On the check-list (Appendix 16) for 23 positive statements, he received checks from all the students. These statements read like: He treats us just like his own sons/daughters or brothers/sisters. He himself acts in the manner in which he wants us to do. He has a sound knowledge of his subject. He does not like private tuition. He points out our mistakes sympathetically and does not scold us. He encourages us for asking questions while teaching in the class. He has high ideas. We can learn a lot from his life. He does not miss any of his class periods. He teaches us very earnestly, and he stops us from following wrong paths.

Very few students attribute negative statements to him. Only a few such statements attributed to him are like: He assigns too much home-task to us. He checks the home-task only when lots of it gets accumulated. He sends us away from the school for his personal work.

In the interview with the investigator, this, the most accepted teacher expressed his inner feelings like this:

> " These days misfit people have entered into teaching profession. Education is on the wrong lines - wrong planning and in mamagements there are selfish people with no missionary spirit. They are running institutions as sources of income.
>
> Teachers are loaded with too much clerical and extra curricular activities. There is no rapport between teachers and pupils. Political motives do not allow teachers to mix with students who are source of joy for them."

In the final examination 28 (58.33%) students were successful in the subject taught by this teacher.

2. Teacher 31. No. 3 from School B-2.

"With a mission to give good citizens to the society" - this was the answer of this accepted teacher in response to the investigator's enquiry about his joining the school-teaching profession.

We find this teacher is accepted by 24(85.72%) students on Sociometric Test and by 26(92.86%) students on five-point Liking Scale and he is found accepted by 21(75%) students, both on Sociometric Test and five-point Liking Scale. He gets acceptance choice from all the 9 students whom he gives acceptance choice on Sociometric Test. Again, he, too, gets 9 acceptance choices in response to his own rejection choices for students. But again this teacher is hardly accepted by his colleagues.

He is 32 years old with 8 years teaching experience and enjoys a good family life with his wife who also is a school teacher. He owns his house and possesses many necessary articles at home. He comes from a good educated family and received his education as a regular student without any break in it. He is quite free and frank with his students who find an easy access to him.

He got his feelings recorded like this:

" Teachers should not do tuition work. They should not join politics, if they join, school

> atmosphere should be kept untouched. They should develop like blood-relations with students. They should try to keep knowledge of subject up-to-date. They should not hesitate confessing their faults even before students. They should try to help students solve their problems of whatsoever their nature may be. If possible they should help students with money too. Better, if schools are single shifted and have good arrangements for sports and libraries."

On the check-list nearly all positive statements are attributed to him. Nearly all the students attribute to him the statements reading as: He always thinks of our welfare. He removes our difficulties of the lessons taught by him. He has a sound knowledge of his subject. He is punctual in coming to the class. He does not punish without any fault. He has high ideas. He does not discriminate among students while examining examination answer-sheets.

However, some students complain that he is very lazy. He goes on consulting books while teaching. He can not control the class. He does not tell us any thing different from the course. He turns us out of the class over small things.

3. <u>Teacher Sl. No. 1 from School G-1.</u>

"I joined this profession as I found it a respectable profession", replied the teacher when asked why she joined this profession.

She is accepted by 20 (80%) of her 25 students. Quite satisfied in her job, this lady teacher of 38 years of age, enjoys a good reputation amongst her colleagues. She has

15 years' teaching experience. She comes from a respectable family and leads a good happy family life with her officer-husband enjoying all facilities in her own house. She is a M.A. but feels so contended that she does not think of improving her academic qualifications by working for M.A. and other degrees.

In an interview with the investigator, she said:

> " Hard work is not valued by the authorities. I am not satisfied with the courses which have been thrown upon teachers. Books are not suitable. Students are arrogant but still are respectful."

On the check-list the following statements are specially attributed to this teacher by all the students: She treats us just like her own sons/daughters or brothers/sisters. She is punctual to come to the class. In the class, if we do not understand anything and ask questions, she readily answers them. She checks our knowledge of the lessons taught the previous day. Her way of teaching is very good. She is always ready to listen to our problems.

The following negative statements are also attributed by some students to this teacher: She turns us out of the class over small things. She disheartens us by saying "You cannot learn anything" She sometimes uses even undesirable language for us. She goes on consulting books while teaching.

4. <u>Teacher Sl. No. 1 from School G-2.</u>

This 34 year old women teacher is accepted by 24(88.89%) students. She is teaching for the last 16 years. She received her education mostly as a private student but

it was almost a continuous one. She comes from a good family background and owns her house equipped with all modern facilities of life.

In the interview she says:

> " A teacher always remains busy - especially in checking note-books. If a teacher works well, she gets a good response."

From the check-list we find nearly all the students are in agreement that: She treats us just like her own sons/daughters or brothers/sisters. She has a sound knowledge of her subject. We can ask her questions without any fear. She stops us from following wrong paths.

And the complaints found against this teacher by some students are: She goes on consulting books while teaching. She sometimes uses undesirable language for us. She does not tell us anything different from the course. She disturbs us by saying "You cannot learn anything."

Part B - Extreme Cases of rejected teachers by students.

In part A we have made mention of teachers who are accepted most by their students and now in this part we make mention of teachers who are rejected most by their students.

1. Teacher No. 2 from School B-1

We find this teacher accepted by none and rejected by 45(93.75%) out of 48 students. At the age of 42, he has

only 5 years teaching experience at his back and does not want to reveal what he was doing prior to his joining the present profession of school teaching. He refused an interview with the researcher but the investigator could bring him round after a good deal of persuasion and discussion. He has scored 119 points out of the total of 120 on job-satisfaction scale. Truly, he may be feeling quite satisfied in his present teaching profession after having left the other/s which he never likes to tell to anybody. He received his education with gaps i.e. it is found there is 5 years gap in his Matriculation to Graduation, again after 5 years he did his M.A. and again waited for 5 years for his Bachelor of Teaching.

He is ridden with financial tightness and is found spiritless. The investigator never heard students speaking very highly of him.

At the time of administration of Sociometric Test of Teacher-Teacher Relationship, he was very much annoyed. "What will you do with these names?" Ask me some relevant question." After long persuasion, he gave his choices. This made the investigator record "Really, very difficult to make the test a success."

In the interview he says:

> "The classes are very crowded. Individual attention is not possible. Looseness in behaviour is found from all boys."

From the check-list we find 48.51% of total

frequencies of negative statements are attributed to him. All negative statements are attributed to him but statements like the following are said about him by all the students. He is irritable by nature. He is not able to complete the courses in time. He complains against us to the principal very often over very trivial matters. He insults us in the class itself. In the class, he teaches less and talks of other irrelevant matters more. He sends for the parents to the school over trifles. He asks us to engage him as a private tutor. When we ask him some question, he tells us to consult some intelligent students. He cherishes revenge in his heart.

However some students say for him: He teaches us very earnestly. He is a hard-working teacher. He is punctual in coming to the class. He assigns home-task regularly. He has a sound knowledge of his subject.

2. <u>Teacher 51. No. 1 from School B-2.</u>

What made you choose this profession? "Last resort" says this teacher. He is rejected by 19(67.86%) students and is accepted by only 6(21.43%) students on Sociometric Test. This 31 year old teacher has 8 years teaching experience at his back.

The investigator recorded his interview as:

" Teacher should not do such work as would hinder his work. Let him do his tuition work, provided it does not effect adversely his school work. We do not check our note-books well in time."

He is also not found liked by his colleagues on Sociometric Test.

On the check-list we find as many as 48.44% of the total frequencies of the negative statements have been attributed to him. Some of the statements which have been said about this teacher by all students are the following: He is irritable by nature. He teaches us a little bit and then tells us to learn the remaining part ourselves. He fails in finding out the culprits and punishes the innocent. He asks us to engage him as a private tutor. He does not listen to what we have to say and gets things done in the way he likes. He often sits idle in the class. He discriminates between weak and good students. He does not check the home-task himself, but gets it checked by the students. He differentiates between the rich and the poor students. He simply wants to finish the course, whether we understand it or not. We are always frightened because of his strict behaviour.

However, some of the students have attributed these statements to him too: He does not miss any of his class periods. He is punctual in coming to the class.

3. <u>Teacher Sl. No. 2 from School G-1.</u>

This 41 year old lady teacher is unmarried and possesses 20 years' teaching experience. She is found accepted by only 4(16%) students and rejected by 16(64%). She is not found accepted by her colleagues also. She holds important portfolios in the school. Her academic record shows that she received her education with intervals.

In the interview with the investigator she says:

" These days students have less understanding and are not talented. These days students are indisciplined and for it family background of student is responsible. However, our negligence may add to it. We are also not all alert towards our duty. We do not adhere to " Work is worship". We are not creating respects in students for us. Education does not develop morals in students. There should be moral education."

On the Sociometric Test, she has been found rejected by students but on check-list she receives 20.66% of total frequencies of positive statements and only 12.16% frequencies of negative statements are attributed to her. She is said to hold good these statements: She herself acts in the manner in which she wants us to. She has a sound knowledge of her subject. We always understand, whatever she teaches. She is punctual in coming to the school. She lives a simple life.

Some of the students have attributed these statements to her: She often sits in the class and asks us to do some work. She does not listen to what we have to say and gets things done in the way she likes. She checks the home-task only when lots of it gets accumulated. She complains against us to the principal very often over very trivial matters.

4. Teacher Sl. No. 2 from School G-2.

This 35 year old lady teacher also is unmarried. She has been teaching for the last 13 years. When asked; "What made you choose this profession?", she replied, "Just by chance. I did not like it from the very start."

She is rejected by 17 (62.96%) students and is accepted by only 4(14.82%) students. Again, she is accepted by two of her colleagues and is rejected by none. She comes from a very well-to-do high class family and had received her education as a regular student.

On the check-list she receives only 12.60% and 34.94% of the total frequencies of attributions of positive and negative statements respectively.

Some of the negative statements read as: She gets angry over petty things. She checks the home-task only when lots of it gets accumulated. She goes out of the class quite frequently during the period for teaching us. She quite often does not take her class periods. She completes the course only near the examination and this leads to some hardships for us. She does not tell us anything different from the course. We are always frightened in her periods because of her strict behaviour.

However, these positive statements are also attributed to her by some students: She stops us from following wrong paths. She does not discriminate among students while examining examination answer-sheets. She does not punish without any fault. She removes our difficulties of the lesson taught by her.

She did not give any comments in her interview with the investigator.

Section II

Extreme cases of accepted and rejected students by teachers

In the following few pages, we will discuss 4 accepted and 4 rejected students, one each from the four schools. These are the students who are accepted most and rejected most by their teachers as disucssed in our Chapter VI on the basis of the analysis of Teacher-Pupil Relationship. We divide this section in the following two parts:

Part C - Extreme cases of accepted students by teachers.

Part D - Extreme cases of rejected students by teachers.

Part C - Extreme cases of accepted students by teachers.

1. Student 31 No. 28 from School B-1.

He is found to be accepted by all teachers both on the Sociometric Test and the five-point Liking Scale. He is also accepted by his 34(70.83%) classfellows and is rejected by only 3(6.25%) students. On the Rating Scale of characteristics (Appendix 14), he secures the maximum score of 243 out of 250 with rank I amongst his classfellows. That means teachers find him well-behaved, industrious and interested in studies, respectful, obedient, regular, active, neat and clean and have good habits. On the check-list (Appendix 15) teachers have placed him in the statements: Helpful to his classfellows in studies. Takes part in co-curricular activities. He is intelligent as well as indus-

trious. He asks intelligent questions in the class. He is exceptionally well mannered. He is a cheerful student. He is quite a reliable student.

His total score on the socio-economic background of his family was 33 with a rank of 29 amongst his 48 classfellows. Again his IQ is 149 with a rank of 1.5 and academic achievement is 365/500 with Ist rank in his class.

The student has commented on "what makes you dislike a teacher?" as :

> " Today, the student is not contended with his teachers. Main reason for this is, that teachers engage in private tuition work. If students do not engage them, teachers fail them and threatens them with dire consequences. Sometimes, a teacher is more attracted towards a student of a rich father which develops jealousy in the hearts of other students. Besides all this, teachers are also victims to vices like smoking, drinking and taking opium."

2. Student Sl. No. 26 from School B-2.

This most liked student by teachers in this school secures 228/250 score on the Rating Scale of Characteristics. He is found to possess all good characteristics of a student which is liked by teachers and in this regard he secures the first rank amongst his 28 classfellows. On the check-list he is said to be: helpful to his classfellows in studies, intelligent as well as industrious, takes part in co-curricular activities, asks intelligent questions in the class, exceptionally well-mannered, brings personal problems to teachers cheerful student, takes initiative in doing good things, and is quite reliable.

For socio-economic background of his parents, he secures 38 points and ranks third in this respect amongst his 28 classfellows. His IQ was found to be 92 which ranked him 16 and academic achievement of 285 marks ranked him 9th in the class. He was found accepted by his 9(33.33%) and rejected by only 5(18.52%) classfellows.

3. <u>Student 31. No. 11 from School G-1.</u>

This most liked student secures first rank for her score on Rating Scale of Characteristics with 238/250 scores from her teachers. She is found by her teachers on check-list as: helpful to her classfellows in studies, intelligent as well as industrious, asks intelligent questions in the class, exceptionally well-mannered, cheerful student, quite reliable and a humble student.

She is accepted by 8(33.33%) and rejected by 4(16.67%) classfellows. With her IQ 145, she ranks second with academic achievement of 227 marks she ranks first and with respect to her 24 classfellows with a score of 29, she ranks 15th position for her socio-economic background of her family. She says:

> "We don't like teachers who do not treat us all alike, are strict, do not exeuse us for our faults, who are busy in their own work in the class, and finish the courses of studies hurriedly near examination when we fail to follow them, do not help the weak students and teachers who are found engaged in gossips with their colleagues and miss their class periods while taking their meals." She says, "We like teachers who are polite, treat all students alike, check our note-books carefully, and point out our mistakes to us."

4. Student Sl. No. 19 from School G-2.

She is ranked 1 for her characteristics on the Rating Scale by teachers with a total score of 215/250. She is also said to be: helpful to her classfellows in studies, intelligent as well as industrious, asks intelligent questions in the class, exceptionally well-mannered, avoids taking part in co-curricular activities and takes initiative in doing good things such as social service.

She is also accepted by 13(50%) and is rejected by only 1(3.85%) classfellows. She ranks second with 318 marks in academic achievement, ranks 16 with her 99 IQ and is placed at 22nd position for her socio-economic background of her family amongst her 26 classfellows.

Part D - Extreme cases of rejected students by teachers.

We have seen which students have been liked most by teachers in each school, now we study one student from each school who is found disliked most by his teachers.

1. Student Sl. No. 7 from School B-1.

Disliked by all teachers, he ranks 43rd amongst his classfellows on the ratings of teachers for his characteristics on Rating Scale. It means he is found by teachers disinterested in studies, work-shirker, misbehaved, irregular, inactive and dirty having bad habits in him. On the check-list he finds these statements attributed to him by teachers: He is in the habit of running away from the school. He is in the habit of using unfair means in the examination. He avoids taking

part in co-curricular activities. He is careless in studies in the class. He pays no heed to teachers' suggestions.

He is also disliked by 10(21.27%) and liked by only 6(12.81%) classfellows. With his IQ 150, he ranks first, with his academic achievement score of 198 marks (out of 500) ranks 15th and with a score of 34 on socio-economic background of his parents, he ranks 26.5 in his class of 48 students.

He says:

" Method of teaching and their telling of matters of general knowledge, attract their students towards teachers. They are expected to treat us well and don't take the help of rod to bring discipline in the classroom. They should help us removing our bad habits. But there are things in teachers these days which they should better shun. All teachers expect maximum of private tuitions and they pass those students only who engage them as private tutors. Some teachers are found gossiping with each other and come to the class even fifteen minutes late. Some teachers read key books at home and get annoyed when asked any question. Some teachers are so cruel that they start beating over petty things."

2. <u>Student Sl. No. 9 from School B-2.</u>

He is ranked 28th-the last one in his class on Rating Scale. This means he is found devoid of all characteristics which make teachers like students. He gets the score of 134 out of 250 for his characteristics from his teachers. On the check-list, he is attributed with statements saying that: He does not give a good response to teachers' day-to-day questions. He is in the habit of using unfair means in the examination. He copies home-

work from others' note-books. He does not respect the rules and regulations of the school. He is inattentive in the class. He does not submit his home-task in time. He reads cheap and undesirable literature. He does not get his difficulties solved in the class. He does not keep his note-books neat and clean. He is a ring-leader. He does not bring books or note-books to the class. He is in the habit of running away from the class. He remains mostly absent from the class. He neither studies nor let others study. He is in the habit of making lame excuses in defence of his faults. He is in the habit of showing himself off. He indulges in anti-social habits such as stealing.

He ranks 20.5 for his socio-economic background, 23.5 for his IQ of 77 and finds his place at 22nd for his academic achievement in the class. He is also rejected by 10 classfellows and is accepted by only 6 of them.

He says:

> " There are teachers who teach well. But there are teachers also who don't teach well and load the student unduly with home-task. Some teachers call students'parents to schools under false pretexts and complain them about students baselessly. Their main motive of calling parents to school remains to bring round them to engage them for private tuitions of students. They reveal the question papers to students who engage them as private tutors and let them get through the examination. But these very students fail in the Board Examination. There are teachers who smoke before students and come to the class just when the bell to end the class period is due to ring."

3. <u>Student Sl. 1 from School G-1.</u>

She also ranks 25th (the last) on the Rating Scale of Characteristics. It means she is found disobedient, dis-

respectful, mis-behaved, disinterested in studies, work shirker, inactive, dirty and not possessing good habits. On the check-list she is said to be: She does not give a good response to teachers' day-to-day questions. She avoids taking part in co-curricular activities. She is dull. She is inattentive in the class. She is a talkative student. She does not submit her home-task in time. She is conspicuously ill-mannered. She does not keep her note-books neat and clean.

She is the student who is accepted by none but is rejected by 15(62.50%) classfellows. She ranks the last in IQ with 77 and in academic achievement of 122 marks in her class. However, she finds 4.5th place for the socio-economic background of her parents. She says:

> "We like teachers who teach well, talk to us well, don't beat us and are never annoyed with students. But we find teachers who are always after fashions and scold us all the time. They are not punctual in the classes. They speak very well with some students while are very rude with others. They resort to even beating which is not allowed in the schools."

4. Student Sl. No. 20 from School G-2.

Teachers have placed her at the 25th place amongst 27 classfellows with the total score of 168/250 on the Rating Scale of Characteristics. We can say teachers have seen him least hard-working, least respectful and obedient, mis-behaved, least regular, active and least neat and clean and possessing many dirty habits. On the check-list he is attributed with these statements: She is in the habit of showing herself off. She is dull. She avoids taking part in co-curricular

activities. She is in the habit of making lame excuses in defence of her faults.

On Sociometric Test, she has been accepted by 4 whereas rejected by her 8 classfellows. With her IQ 91, she ranks 17th; in academic achievement, she is placed at the 13th place and she ranks 11.5th amongst her classfellows for the socio-economic background of her parents. She says:

> "There is one teacher whom we like most because she teaches very well. She treats us nicely. If we don't follow her lesson at the first instance, she is ready to repeat it ten times. On this ground we like all teachers because all teach very well, which we are able to grasp. There is a teacher who assigns us too much of home-task but again she is found to love us very much."

CHAPTER XVI

SUMMARY AND CONCLUSIONS

INTRODUCTION

Teaching is essentially a process of communication and human relationships. It involves the interplay of personalities, the central ones being those of the teacher and the pupil.

We consider school as a miniature form of society and a magnified replica of family. The teacher, the pupils and the curriculum are considered to be the fundamental components of the school. Beautiful buildings, up-to-date textbooks, liberal laboratory facilities, abundant instructional aids and huge library provisions are, no doubt, important aspects of academic life but these are all the tools in the hands of the teacher and taught to work upon.

The loving, affectionate and personal relationship established between the teacher and the taught, stimulates the teacher to be painstaking with his students, generates an enthusiasm in the student for studies and consequently makes the school an institution which is a complete success for the society.

Studies, reviewed in Encyclopaedias of Educational Research and elsewhere related to Teacher-Pupil Relationship, have concerned themselves mainly with only the characteristics of teachers. Teacher-Pupil Relationship is a concern of two

interacting personalities at a time. Students very rightly expect some characteristics in a good teacher, and it is, therefore, natural that certain characteristics are also expected by teachers in students. Moreover, teacher-pupil relationship is essentially a multi-dimensional relationship and any probe into these relationships limited to only characteristics of these interacting personalities will not give us a complete picture of the state of affairs. Again, whatever research work has been done in the United States of America and elsewhere cannot be fully applicable for India. Our aided and government-run schools allow admission to all students irrespective of differences in their economic and social status. In the social climate of the class, teacher-teacher and student-student relationships have their relevance when we probe into teacher-pupil relationships which have not yet been studied very much as yet. In this context, teachers' age, teaching experience, designation, home conditions and his satisfaction in job on one side and students' intelligence and academic achievement on the other, are factors to be considered important. The present study has made an attempt to consider all these important factors in the context of Teacher-pupil Relationship.

PURPOSE OF THE STUDY

It is an investigation into the personal relationships between teachers and pupils. Personal relationship

connotes the feelings of acceptance and likings cherished by teachers and pupils for each other. Feelings of rejection and dislike signify the negation of personal relationship. The study has probed into the number of students accepted and rejected by their teachers teaching them and the number of teachers accepted and rejected by their students in the class. Similarly, feelings of likings and dislikings cherished by teachers and pupils for each other have been examined.

The number of students accepted and rejected by their teachers and the likings of teachers for students have been examined for their (students'):

1. Characteristics as perceived by teachers
2. Relationship with their classfellows
3. Intelligence
4. Academic achievement
5. Socio-economic background of parents

Similarly, number of teachers accepted and rejected by their students and their likings for teachers have been examined for their (teachers'):

1. Characteristics as perceived by students
2. Job-satisfaction
3. Relationship with their colleagues
4. Age, designation, teaching experience and family background

TOOLS

The Following three types of tools have been used in this study:

1. Tools constructed by the researcher:

(a) Two Questionnaires:

(i) One questionnaire for teachers to enlist their opinion about what makes them like and dislike a student.

(ii) One questionnaire for students to enlist their opinion about what makes them like and dislike a teacher.

(b) Four five-point Liking Scales

(i) For teachers to express their likings for students.

(ii) For teachers to express their likings for colleagues.

(iii) For students to express their likings for teachers.

(iv) For students to express their likings for students.

(c) Four Sociometric Tests

(i) Teacher-Pupil Relationship

(ii) Pupil-Teacher Relationship

(iii) Teacher-Teacher Relationship

(iv) Pupil-Pupil Relationship

(d) Two Rating Scales of

(i) Teachers' characteristics

(ii) Pupils' characteristics

(e) Two Check-lists

(i) Teachers' check-list for students

(ii) Students' check-list for teachers

(f) Job-Satisfaction Scale for teachers

Researcher has applied Likert's technique in its construction.

(g) Two Interview Schedules

(i) For students

(ii) For teachers

In all, the researcher had developed 17 tools for his investigations.

2. Standardized Test

Dr. Jalota's Intelligence Test for students.

3. Records

Academic Records of Students' Annual Examination.

PLAN OF INVESTIGATIONS

The study of Teacher-Pupil Relationship has been made in the light of number of students being accepted and rejected by their teachers and number of teachers being accepted and rejected by their students in the higher secondary classes. Again, in the same context and following the same approach, a study of student-student and teacher-teacher relationships have been made. This approach of studying inter-personal relationships has been very well known as Sociometry. It was found by the researcher that voluminous literature on sociometry, does not give us a clear-cut mandate about the construction and application of Sociometric Tests. As enlisted earlier, the researcher had developed four Sociometric Tests and four five-point Liking Scales, the details of which are explained below:

1. Construction of Sociometric Tests and five-point Liking Scales.

1. Sociometric Test for Teacher-Pupil Relationship

In this test three activities were included (i) appointment of monitors (ii) visiting students' homes and (iii) taking students on educational tour. Each teacher was to give three names of such students whom he would like to associate within each activity and also three names (in each activity) of students whom he would not like to associate with. Each teacher was thus to give nine names for acceptance and nine names for rejection choices.

2. Sociometric Test for Pupil-Teacher Relationship

This test included three activities; (i) choice for class-teacher (ii) choice for house-master and (iii) choice for disclosing personal problems. Each student was to give three acceptance and three rejection choices for teachers.

3. Sociometric Test for Teacher-Teacher Relationship

This test included three activities: (i) choice for a companion for doing a school task assigned by the principal, (ii) choice for confidence as regards personal problems and (iii) choice for companion for spending an evening for recreation. Each teacher was, thus, to give three names for acceptance and three names for rejection choices.

4. Sociometric Test for Student-Student Relationship

This test included three activities: (i) choice for a companion to sit with, (ii) to play with and (iii) to work with. In all each student was given an option to give nine names for acceptance choices and nine names for rejection choices.

These Tests and Scales were administered on 49 students of a tenth class and 5 teachers teaching them, twice with an interval of four days. The analysis of test-retest administration of these tests and scales gave sufficient evidence that:

(i) The number and nature of activities and the number of choices allowed for each activity in each Test was adequate and justified.

(ii) Use of negative criteria was also justified.

(iii) Significant consistency of choices made by both teachers and pupils was established.

(iv) There was a significant consistency in total ratings of teachers and pupils on five-point Liking Scales.

(v) There was a significant consistency in the individual ratings of teachers and pupils on five-point Liking Scales.

2. A Pilot Study

A pilot study was conducted on the tenth class students of two schools - one government higher secondary school for boys and the other government higher secondary school for girls. The sample for this study constituted 31 girls and 6 teachers in the first school and 42 boys and

6 teachers in the second school.

The analysis of this study helped in the following ways:

(i) Precautions to be observed in the administration of Sociometric Tests and five-point Liking Scales.

(ii) Weightages to be given to the choices, in order of preference, made on the Sociometric Tests.

(iii) Efficiency of five-point Liking Scales in serving as tools supplementing the Sociometric Tests in the determination of interpersonal relationships.

(iv) Method of analysis of interpersonal relationship from Sociometric Tests.

3. <u>An Exploratory Study for the Characteristics of teachers and pupils.</u>

The investigator found in his survey of related studies of teacher-pupil relationship, that the field of studies has remained limited to the characteristics of teachers only. It was found that no studies were conducted in which simultaneous study was made of the characteristics of teachers and pupils as perceived by them in each other. Moreover, we do not find a substantial study made in India even on the limited area of the characteristics of teachers. And whatever has been said or written on this topic, are the ideas and views of educationists and psychologists. Neither teachers nor students have been asked their views on this pertinent question. The investigator has made an effort to make the teachers and the pupils express themselves as to what makes them like and dislike each other.

The investigator has made use of survey method in

its quite simple form. A total of 232 responses were collected from six boys' schools. Similarly from 7 girls' schools, responses from 198 students were collected. Teachers of these schools and teachers studying the B.Ed. Course through Correspondence at the Central Institute of Education, Delhi were requested to give expressions to what makes them like and dislike students. These included 72 men and 63 women teachers. Findings of this study may be summarised as:

(i) Even a study of a sample of responses of teachers and pupils gives us a profile of teacher-pupil relationship in the context of what makes both of them like/dislike each other.

(ii) The main advantage of the Exploratory Study has been that it provided us with an objective and a scientific approach for the construction of four valuable tools:

(a) A Rating Scale for teachers to rate the students on their characteristics. The following characteristics, mentioned by teachers the most, were included in this Scale:

1. Industriousness
2. Being interested in studies
3. Good behaviour
4. Neatness and cleanliness
5. Regularity
6. Active or lazy
7. Respectful
8. Obedient
9. Disciplined
10. Good habits

(b) A Rating Scale for students to rate the teachers on their characteristics. In this Scale too, the following characteristics mentioned most by students were included:

1. Method of teaching
2. Loving behaviour
3. Regularity in classes
4. Impartiality
5. Good personality
6. Leniency
7. Telling of good things
8. Use of time in the class
9. Punishment
10. Understanding of students taught by teachers.

To supplement the information received on these two Rating Scales, the following two check-lists were developed. They included statements expressed by teachers and pupils.

(iii) A check-list for teachers (50 statements) to get the students enlisted by teachers in certain categories of behaviour.

(iv) A check-list for students (100 statements) to get the teachers enlisted by students in certain categories of behaviour.

The reliability of ratings of teachers and students on the characteristics of each other on Rating Scales, was determined by test-retest method (after an interval of 8 days) on a sample of 32 boys and 30 girls including six teachers teaching them. It was found that there existed a stability of 77.44% and 69.37% in the ratings of boys and girls respectively. The stability of ratings of men and women teachers on the characteristics of their students was found to be 74.15% and 47.94% respectively. It was also determined that there was a significant correlation between the two sets of ratings of the characteristics of all teachers

which ranged between +.702 and +.445. However, out of 20 teachers, there were two women teachers for whom there was not a significant coefficient of correlation between the two sets of ratings. Similarly, substantial coefficients of correlation in the range of +.898 and +.425 were found for the two sets of ratings of teachers on the characteristics of students. However, the values of "r" for three women teachers which were as low as +.221 and +.206 level were not found significant.

SAMPLE

Construction of Sociometric Tests, five-point Liking Scales, Rating Scale of characteristics, Job-satisfaction Scale for teachers and a pilot study involved 444 teachers and 377 students.

In the final stage, the sample of the study includes class tenth students of four higher secondary schools of Delhi - 2 boys' and 2 girls'. In all we had 128 students (76 boys and 52 girls) and 20 teachers (10 women and 10 men). Because of the stipulated administration of number of tools on the same subjects, the sample was limited to a manageable size.

HYPOTHESES - ANALYSIS - FINDING

Hypothesis I — There is a lack of personal Teacher-Pupil Relationships in both boys' and girls' higher secondary classes.

Analysis - Analysis has been made in its two aspects: (1) Teacher-Pupil Relationship - study of teachers'

likings and choices of acceptance and rejection for students (2) Pupil-Teacher Relationship - study of students' likings and choices of acceptance and rejection for teachers.

1. Teacher-Pupil Relationship

The number of students placed in different sociometric categories both on the Sociometric Test and the five-point Liking Scale by teadhers was found. These categories were evolved as explained below:

(a) Sociometric Test - A student was placed in ACCEPTEE category when he had got at least one choice of acceptance and no rejection choice; he was placed in REJECTEE category when he was found to receive at least one rejection choice and no acceptance choice; the student was placed in NEGLECTEE category when he had received both choices of acceptance as well as rejection; and he was placed in ISOLATE category when he had found no choice on Sociometric Test from teachers.

(b) Five-point Liking Scale - A student was placed in ACCEPTEE category when 3 out of 5 teachers had rated him in higher scale values (5 or 4), he was placed in REJECTEE category when he had received 3 ratings of lower scale values (2 or 1), in ISOLATE category, when he was awarded 3 ratings of middle scale values (3) and in NEGLECTEE category when he had received ratings of higher, middle as well as of lower scale values.

2. Pupil-Teacher Relationship

In this context sociometric categories were arrived at in the following manner:

(a) Sociometric Test - The number of students who gave a teacher at least one acceptance choice ACCEPTEE, at least one rejection choice REJECTEE and no choice to him ISOLATE, were found for each teacher. Again, analysis was made on the basis of number of choices received by each teacher.

(b) Five-point Liking Scale - The number of students rating a teacher in higher (5 & 4) ACCEPTEE, lower (2 & 1) REJECTEE and middle (3) scale values ISOLATE of the Liking Scale, were found for each teacher.

The whole analysis was made on the basis of number of students placed in above sociometric categories by teachers and number of students placing individual teachers in these categories.

Findings

1. In all the four schools, it is found that only a small number (35.93%) of students get acceptance from their teachers.

2. In all the schools, there are quite a large number of students (25.77%) who are rejected by teachers.

3. There are also 20.31% students towards whom teachers have shown indifferent feelings.

4. In all the schools, we find that only 2 out of 5 teachers are accepted by students.

5. Out of 20 teachers 8 are accepted, 8 are rejected and for four teachers some students have expressed acceptance while others have shown rejection.

We conclude, that in both the boys' and the girls' higher secondary classes, there is a lack of Teacher-Pupil Relationship and this fact supports our hypothesis.

Hypothesis II <u>The characteristics of teachers as liked by their students and the characteristics of students as liked by their teachers in boys' and girls' higher secondary classes differ from each other.</u>

<u>Analysis</u> (i) Factor analysis of the ratings of teachers and students were done. In respect of teachers two categories i.e. characteristics relating to their teaching and characteristics relating to their behaviour were arrived at. Similarly, students' characteristics were found in two categories i.e. relating to their studies and characteristics relating to their behaviour.

(ii) Coefficients of correlation were found in between: total score of teachers on five-point Liking Scale, Sociometric Test and scores received by them on the Rating Scale of characteristics. These relationships were also found between these scores and scores of two categories of characteristics.

(iii) Standard errors of difference between the scores of students accepted and rejected were calculated.

(iv) Standard errors of difference between the scores received by teachers from students accepting and rejecting them were calculated.

(v) From the check-lists it was found what statements are attributed to accepted and what rejected teachers and students.

Findings

1. Students - both boys and girls accept and reject teachers in accordance with the way they perceive characteristics liked by them in teachers.

2. Teachers accept or reject students when they find them possessing or not possessing the characteristics liked by them in students.

3. Girls are more critical in their perception of characteristics in teachers than boys. Girls see both good and bad in all liked and disliked teachers by them. But boys see only the good points in the liked teachers and only the bad points in the disliked teachers.

4. Women teachers and girl students lay more emphasis on the behaviour of each other while men teachers lay more emphasis on the studies of students and boys are more particular about the 'teaching' of 'teachers'.

The findings lead us to retain our hypothesis.

Hypothesis III <u>Men teachers are less satisfied in their profession than women teachers and this factor affects accordingly their relationship with pupils.</u>

<u>Analysis</u> 1. Difference between the means of scores of satisfaction of teachers (men and women respectively) working in boys' and girls' schools was calculated.

2. Coefficients of correlation were determined between the total scores of teachers on Satisfaction Scale and:

(i) Number of students accepted and rejected by them.

(ii) Scores given by them to all students on five-point Liking Scale.

(iii) Individual teachers accepted and rejected by number of students.

(iv) Total scores received by teachers from students on five-point Liking Scale.

<u>Findings</u>

1. We find no significant difference between men and women teachers in the amount of their job-satisfaction.

2. It is indicated that students' likings for teachers and teachers' likings for students are positively related with satisfaction of teachers in the job.

Our hypothesis is retained to the extent that teachers' relations with students are affected by their satisfaction in job but the part of hypothesis that women teachers feel more satisfied than men teachers, is rejected.

Hypothesis IV <u>Teachers liked by their colleagues are also liked by their students</u>

<u>Analysis</u> 1. Coefficients of correlation were found between:

(i) total scores received by teachers on five-point Liking Scales both from their colleagues and students.

(ii) number of acceptance and rejection choices received by teachers both from their colleagues and students on Sociometric Tests.

2. Analysis of the likes and dislikes for teachers by their colleagues and students was made with the help of eight sociograms.

<u>Findings</u>

1. There is no significant relationship between the teachers' likings for colleagues and students' likings for these teachers.

2. In boys' schools, teachers accepted by their colleagues are hardly accepted by students but there is an indication that in girls' schools teachers accepted by their colleagues are also accepted by their students.

3. There is more significant tendency in boys' schools, that teachers disliked by their colleagues are also disliked by their students.

4. Teachers who are found equally accepted and rejected by their colleagues are also found equally accepted and rejected by their students.

Our hypothesis is partially retained.

Hypothesis V <u>Students liked by their classfellows are also liked by their teachers</u>

<u>Analysis</u> 1. Coefficients of correlation were found between scores received by students on five-point Liking Scales and Sociometric Tests from their classfellows and teachers.

2. A simultaneous study was made of students placed in different sociometric categories by their teachers and classfellows.

<u>Findings</u>

1. There is a tendency that students liked by their classfellows are also liked by their teachers. But this tendency is found to be stronger in the boys' schools than in the girls'.

2. The students disliked by their classfellows are not necessarily disliked by their teachers in boys' schools.

3. The students disliked by their classfellows may be found to be liked by their teachers in girls' schools.

We may conclude that the students accepted or rejected by their classfellows are also accepted or rejected by their teachers.

Hypothesis VI <u>Teachers like more intelligent students and dislike less intelligent students.</u>

<u>Analysis</u> 1. Coefficients of correlation were

determined between the IQ's of students and scores received by them from teachers on five-point Liking Scale and Sociometric Test.

2. Standard error of difference between the Mean IQs of students accepted and rejected by teachers, was determined.

Findings

1. There is no significant relationship between the likings of teachers for students and their IQs when the Mean and Median values of IQs are comparatively low. But there is a significant relationship between these likings and IQs where Mean and Median values of IQs of students are comparatively higher.

2. There is no significant difference between the Mean values of IQs of students accepted and rejected by teachers.

3. Acceptee students (by teachers) can be in either higher or lower intelligence groups.

4. Most of the rejectee students (in the eyes of teachers) possess lower IQs.

These points go to reject our hypothesis.

Hypothesis VII <u>Students with good academic achievements are liked while with poor achievements are disliked.</u>

<u>**Analysis 1.**</u> **Coefficients of correlation were**

determined:

(i) between the score given by each teacher to individual students and marks obtained by them in subjects taught by the teachers.

(ii) between total marks obtained by students and total score received by them on five-point Liking Scale and Sociometric Test.

2. Standard error of difference between the total marks obtained by students accepted and rejected by teachers was determined.

3. Chi-square test was applied to number of students placed in different sociometric categories by teachers on Sociometric Test and number of students found at different levels of academic achievements.

Findings

1. There is a significant relationship between teachers' likings for students and students' academic achievement in boys' schools. The same is not true for all women teachers in girls' schools.

2. In boys' schools, there is a significant difference between the academic achievement of students who are accepted and that of the students who are rejected by teachers.

3. In girls' schools, there is no significant difference between the academic achievement of students who are accepted and that of the students who are rejected by the teachers.

4. Students' academic achievement and teachers' likings for them are dependent variables in case of men

teachers and independent in the case of women teachers.

5. On the whole, teachers' likings for students and their academic achievements are related to each other.

The hypothesis is held good in the case of men teachers whereas it does not hold good in the case of women teachers.

Hypothesis VIII <u>Students coming from families of good socio-economic back-grouhds are necessarily liked.</u>

<u>Analysis</u> 1. Arbitrary but normally accepted and used weightages were given to the level of Education, Income and Occupation of all the members of the family of the student to determine his socio-economic background.

2. Coefficients of correlation were determined between the total score received by students from teachers on five-point Liking Scale and their scores for Education, Income and Occupation of their families.

3. Standard error of the difference between the Mean scores of socio-economic background of the families of the students, accepted and rejected by teachers was determined.

4. Chi-square test of independence was applied between the number of students placed in different socio-metric categories by teachers and their scores on socio-economic background.

<u>Findings</u>

1. Educational, economic and occupational back-

ground of the families of students bear no relationship with the likings of teachers for students.

2. There is no significant difference between the Mean scores of socio-economic background of the families of students, accepted and rejected by their teachers.

3. The two variables i.e. teachers' placing the students in different sociometric categories and students' socio-economic backgrounds of their families, are independent.

These points go to refute our hypothesis.

Hypothesis IX <u>Teachers' age, designation, teaching experience and home conditions are related to their relationship with students.</u>

<u>Analysis</u> 1. Significance of difference between the mean ages of teachers, accepted and rejected by students was determined.

2. Significance of difference between mean years' of experience of teachers "accepted" and "rejected" by students was determined.

3. The number of (i) "post-graduate" and (ii) "trained graduate" teachers in 'accepted' and 'rejected' categories placed by students were determined.

4. The number of 'married' and 'unmarried' teachers 'accepted' and 'rejected' by their students was determined.

5. The teachers accepted and rejected by students were studied for their home conditions.

Findings

1. Age of teachers and students' likings for them are independent variables.

2. There does not exist any significant difference between the years of experience of teachers accepted and rejected by their students.

3. More post-graduate teachers than trained graduate teachers are liked by boys but girls make no difference in this regard.

4. In girls' schools, out of five unmarried teachers, three are disliked and only one is liked by students. In boys' schools we had only 2 unmarried teachers and they are found to be accepted by students.

5. Teachers with their poor family background and home conditions have been found to be disliked by students. However, teachers with good family background are not found to be necessarily liked by students.

Multivariate Relationships

Bi-variate relationships were found between the likings of teachers and pupils for each other as related to various factors included in the investigations. The researcher has also made an attempt to find out multivariate relationships between the criterion (likings as dependent variable) and the other independent variables.

It is found that both for students' likings of teachers and teachers' likings of students are accounted for

by different variables in each one of the four schools. It does show that each class constitutes its own fibre of teacher-pupil relationship. No generalization is possible. We need to study the problem in the context of each one of the school and within the school in each one of the classes to arrive at effective and practicable steps to be taken to establish good teacher-pupil relationships.

Case Studies

The researcher had made special detailed study of four teachers (one from each school) accepted most by students and four teachers rejected most by students. Similarly, four students accepted most and four, rejected most have been studied separately in an exclusive chapter with respect to different factors with which the whole study of Teacher-Pupil Relationship has been made.

CONCLUDING COMMENTS

The essential element of personal relationship between teachers and pupils have been found missing in the higher secondary classes studied intensively. Most of the teachers have not been found accepted by the students. Again, most of the students have not been found to be accepted by the teachers. Similarly, feelings of likings between teachers and pupils are found wanting. From this, we can infer the existence of only official or formal type of relations between teachers and pupils. These are the relations in which they meet only for a few hours a day, for

few days a week, and for a few months a year to transact certain business in the four walls of a classroom in the school. These are the "imposed upon" relations from which none of them can escape. It simply shows as if a school of today is a government, or business office where teachers take their seats as clerks under their principal as section officer when the students as citizens come and go under set rules and regulations. Teachers are not worried about their students as individuals and students consider teachers only as some persons engaged for them to tell them something written in the books.

If school is to render services of a miniature society where the future budding citizens are developed and brought up under the guidance, supervision and care of teachers, the absence of personal relations between teachers and pupils in the schools poses an alarming situation in the field of pedagogy.

Healthy emotional situations and atmosphere are necessary for setting up personal relationships in a school. It is in the classroom that the feelings of oneness can be developed, two hearts may meet each other and the sense of belongingness to one another is created. The affection, acceptance, sympathy, and appreciation which each person shows for the other in a positive personal relationship, are pleasing to all. They are happy to meet one another, work together and follow and understand each other, when they are together held in healthy emotional bonds. This is the secret of personal relationship so very necessary in the learning -

teaching situation.

Teachers by virtue of their status-authority are placed in a leadership position with regard to these personal relations with students. In this context, they have to shoulder the major responsibility. It is simply implied in their professional obligations. They have to take the initiative to develop a healthy climate in the schools. It is not sufficient for them to know good methods of teaching, be well-versed in subject-matter and be custodians of some desirable traits of character in their passive forms but they are duty bound to expose themselves before the classes as such custodians consistently and regularly in an active behavioural manner. They have to create in themselves a strong aspiration and awareness of being liked and accepted by their students and of liking and accepting them. They have to shun rejections and dislikings from students and for students. They have to watch very carefully, day-in and day-out, how they are being held in the tender hearts of their students.

The teachers should give up thinking that it does not matter much if they come late to the school, miss the class-periods, come unprepared, become careless in the absence of principals, talk irrelevant things in the classes and make things easy for themselves by resorting simply to punishment very frequently. They should clearly know that these are the very important angles from which they are constantly observed and seen by their keen observers - students. Students

look into the things very minutely. They may not resent openly if their note-books are not checked properly and regularly, their difficulties are not removed in the classes or they are not adequately attended to by teachers but all these things leave their impressions on them. They do not appreciate teachers' smoking, knitting, doing register work in the classes or asking them to leave the class for no fault. They condemn that teaching - which is simple repetition from books.

Teachers should be ready to give an attentive and a sympathetic hearing to the students and even encourage them to confide in them to establish a personal rapport. These are the necessary things pointed out by students which they wish the teachers possessed.

It is indicated that teachers' acceptance by students and their acceptance for students are positively related to teachers' level of job-satisfaction. Here, the society comes into the picture - the status, prestige, and consideration, it gives to the teacher. Major reasons for frustration in teachers rise from the scale of pay and prestige the society holds them in. Some deliberate efforts are deemed fit to be taken in this context. Teachers have to satisfy themselves in the prevailing situation where the society has to expedite things to give a proper status to teacher in the affairs of the society.

Teachers' age and teaching experience is not found to be much related to their being accepted by students.

However, it is indicated that comparatively younger teachers coming from good socio-economic backgrounds are accepted. It implies that age and years of experience by themselves do not make a popular teacher. A teacher's acceptance is much related to his teaching and behaviour in the class with the students.

Students' academic achievement, is significantly related to their being accepted by teachers. This seems quite natural in view of our examination-ridden system of education. Students with good academic achievement add to the pass percentage of the students taught by the teacher. Liking for good students is all right but disliking for the weak ones is to be discouraged. Who knows mere acceptance by the teacher may make a weak student better at studies. Teachers need paying a good attention towards weak students lest they should be disheartened.

Students' socio-economic background has no relevance for teachers to like or dislike the students. Students are accepted for their own selves - their behaviour. In this context, what is required is that the students cherish an earnest desire to enjoy likings and acceptance from teachers.

The higher IQ of a student does not by itself make the teachers accept him. They accept the students of lower IQ too. Hence, we can say that even intelligent students need working hard in the classes and behave very well with their teachers.

We have to look into the responsibility of students in forging good teacher-pupil relationship in the classes. It is expected by teachers that students are obedient, respectful, industrious, interested in studies, neat and clean and possess good habits. However, the inculcation of these fine traits of the personality of the student, is the overall aim of our education. But students as such will have to come forward more or less prepared for studies, and be full of respect, veneration and regard for their teachers. Adherence to simple manners, and courtesy on the part of students, goes a long way for them to win the hearts of teachers and stimulate them to do their best in their duties. It is in their own interest that they do not run away from the school, do not remain inattentive in the class, are not irregular in submitting their home-task, do not always indulge in indiscipline and find faults in their teachers. Let the students take it for granted that their teachers are good human beings, from whom they can learn to grow and develop themselves. This type of attitude on the part of the students will not only make them feel interested in studies but also prevail upon teachers to perform their duties wholeheartedly, earnestly, sincerely and seriously.

In both the boys' and girls' schools, teachers have more rejection than acceptance inclination towards their colleagues. The study of teacher-teacher relationship as a factor in teacher-pupil relationship, reveals that teachers accepted by their colleagues are also accepted by their students in girls' schools whereas in boys' schools, it is found

that teachers disliked by their colleagues are also disliked by their students. It clearly implies that it is the duty of the teachers to develop and maintain healthy and happy relationships amongst themselves. The study shows that women teachers should work harder towards improving relations with their colleagues so that their students like all of them better. It exhorts on men teachers too not to dislike any of their colleagues.

It is found that students accepted or rejected by their classfellows are also accepted or rejected by their teachers. This suggests that students should like each other so that they are liked by their teachers.

Parents at home should inculcate a sense of respect and regard in the hearts of students for teachers. The department of education should improve conditions of service. The school administrators should make ample time available during school hours when teachers and students get-together for informal meetings. The training institutions have to emphasize the importance of pupil-teacher relationship. Once teachers realise the significance of their personal relationship with students, they themselves are mature enough to set things right. This will not only result in fruitful and desirable results of schooling for the students, but students themselves will be the faithful messangers to get teachers an honourable place which is their due in the society.

It is suggested that research work in the following

fields may be conducted for further clarification and understanding of the issues raised and analysed in the present study:

1. Extensive studies on student-student, teacher-teacher, teacher-principal, principal-education officer relationships at all levels of school education.

2. The desirable amount of the work-load of teachers (with a view to giving them ample time to meet the students individually on a personal level).

3. Organisation and provision of desirable co-curricular activities so that the teachers and the pupils come into direct contact with each other.

4. Adequate and proper Pupil-parents-teacher relationships.

5. Teachers' interests, their before-and-after school time activities and their impact on teacher-pupil relationship.

6. Job-satisfaction of teachers at various levels of school education with respect to their pay-scales, age, sex, teaching experience, qualifications etc.

7. Introduction of tutorial system in schools.

*****

BIBLIOGRAPHY

BOOKS

1. Alexandra, W.M (1960): Are you a good Teacher? Holt-Rinehart and Winston, New York.

2. Anastasi, Anne & John P. Foley (1955): Differential Psychology. Third Edition; MacMillan Company, New York.

3. Anderson & Others (1946): Studies of Teacher's Classroom Personalities. Part II, P 128, Part III P 156; American Psychological Association, Standard University Press.

4. Arkin, Herbert and Raymond R. Colton(1963): Tables for Statisticians. Barner and Noble, Inc., New York.

5. Bales, Robert F (1951): Interaction Process Analysis. A Method for the study of Small groups. Reading, Mass; Addison-Wesley.

6. Barker, M.E. (1946): Personality Adjustment of Teachers Related to Efficiency in Teaching. Bureau of Publications; Teachers College, Columbia University, New York.

7. Barr, S Arvil Robert, A Davis & Palmer O Johnson (1953): Educational Research and Appraisal. J.B. Lippin CoH Company, New York, pp 74-77.

8. Baxter, Bernice (1950): Teacher-Pupil Relationship. McMillan Company.

9. Belcher, Daught E (1947): The Scale for Rating Effective Teacher Behaviour. State Teachers College, Potsdam, New York.

10. Bernard, Harold W (1961): Mental Hygiene for Classroom Teacher. Second Edition, McGraw-Hill Book Company, Inc.

11. Best, W. John (1963): Research in Education. Prentice Hall, India (Pvt) Ltd., New Delhi.

12. Bhatia, C.M (1955): Performance Tests of Intelligence under Indian Conditions. Oxford University Press, Bombay.

13. Birkinshaw M (1935): The Successful Teacher. Hogarth Press, 52, Taristok Square, London, W.C.

14. Bjenstedt A (1956): Interpretation of Sociometric Choice Status. Hund. Sweedon, Gleerun.

15. Blalock Jr. Hobert M (1960): Social Statistics. McGraw Hill Book Company.

16. Bonney, Merl E (1947): Popular & Unpopular Children: A Sociometric Study. Beacon, N.Y. Beacon House Inc.

17. Burlury, Mary W Ete (1947): An Introduction to Child Guidance. London, McMillan & Co.

18. Bush, Robert Nelson (1954): Teacher-Pupil Relationship. Prentice-Hall, Inc. New York.

19. Canter, Nathaniel (1954): The Teaching-Learning Press. The Dryden Press, New York.

20. Cattell, Raymond B (1948): A Guide to Mental Testing. University of London Press Ltd., pp 219-22.

21. Chamberlain, Leo M Leslie W. Kindred (1966); The Teacher and School Organization; Fourth Edition. Prentice-Hall Inc.

22. Clark E. Moustakas (1956): The Teacher and the Child. McGraw-Hill Book Comp. Inc.

23. Cronbach, L. J (1954): Educational Psychology. Harcourt, Brace and Co., PP 482.

24. Cronbach, L.J (1960): Essentials of Psychological Testing. Second Edition. Harper & Brothers, New York.

25. Crow, D Lester, Alice Crow Ph.D (1942): Mental Hygiene in School and Home Life. McGraw-Hill Book Company, Inc. New York and London.

26. Crow D. Lester & Alice Crow (1957): Mental Hygiene. McGraw-Hill Book Company Inc., New York.

27. Crow, Lester D & Alice Crow (1965): Adolescent Development and Adjustment. McGaw-Hill Company Second Edition.

28. Curtis, S. L (1965): Introduction to the Philosophy of Education. Universal Tutorial Press, Ltd. London pp 90-121.

29. Dalton, E. L (1962): What makes effective teacher for young adolescent? Nashville Deptt. of Education, George Peabody College for teachers.

30. Darley, G John & Thedo Hagesah (1955): Vocational Interest Measurement. University of Minnesota Press.

31. Davis, C.O (1924): The High School as Judged by Students, Proceedings, North Central Association of Colleges and Secondary Schools.

32. Davis, Herbert A (1948): Educational Psychology: Relation between Teacher & Pupil. McGraw-Hill Book Co. Inc.

33. Devight, Beecher, E (1949): The Evaluation of Teaching. Syracuse University Press.

34. Dewey John (1916): Democracy and Education. The McMillan Company, New York; pp 22-26.

35. Dewey John (1933): How We Think. D.C. Heath, New York; pp 59.

36. Domnitz, Myer (1959): Education in Human Relations. Woburn Press.

37. Drinkwater, F.H (1951): Educational Essay:What makes a good teacher? London, Burns Oates; pp 11-14.

38. Edward, Allen L (1957): Techniques of Attitude Scale Construction. Appleton-Century, New York.

39. Evans, K.M(1962): Sociometry and Education. Routledge and Kegan Paul, London.

40. Festinger Leon & Danial Katz (1954): Research Methods in the Behavioural Sciences. Staples Press, Ltd., London. pp 393-98.

41. Fleming C.M (1958): Teaching.Methuen & Co. Ltd., London.

42. Frank, W (1936): Teachers and Teaching. McMillan Company, New York.

43. Freeman, Frank S (1965): Theory and Practice of Psycholo-gical Testing: Third Edition. Oxford & IBH Publishing Company.

44. Fruchter Benjamin (1967): Introduction to Factor Analysis (An East-West Edition). Affliited East-West Press Pvt. New Delhi.

45. Gage, N.L (1963): Paradigms for Research on Teaching. Handbook of Research on Teaching. Rand McNally and Co., Chicago, pp 115.

46. Garrett, Henry, E (1965): Statistics in Psychology and Education. Vakils, Feffer and Simons Pvt. Ltd., Bombay.

47. Garrison, Karl C (1956): Psychology of Adolescence. Prentice-Hall, Inc.

48. Ginzberg, Eli, Sol W Ginsburg & Others (1956): Occupational Level, Columbia University.

49. Glascon, M.V.C Jeffreys (1961): An inquiry into the Aims of Education; Revolution in Teacher Training. Pitman, 1961.

50. Good V. Carter & Scales E. Dougles (1954): Methods of Research. Appleton-Century Crafts, Inc.

51. Good V. Carter (Ed)(1959): Dictionary of Education (2nd Ed.). McGraw-Hill, New York.

52. Gould, R. George & Gerald Alan Yoakam (1954): The Teacher and His Work. Ronald Press Company, pp 3-22.

53. Griffiths, Daniel E (1956): Human Relations in School Administration. Appleton.

54. Gronlund Normane (1959): Sociometry in the Classroom. Harper & Brothers, New York.

55. Guilford, J.P (1954): Psychometric Methods (2nd Ed.). McGraw-Hill Book Com. Inc., New York.

56. Guilford, J.P (1956): Fundamental Statistics in Psychology and Education. McGraw-Hill Book Company, Inc. London.

57. Gurrey, P (1963): Education and the Training of Teachers. Longmans.

58. Hare, Paul A (1962): Handbook of Small Group Research. The Free Press of Glencoe.

59. Hart, W Frank (1934): Teachers and Teaching. McMillan Company.

60. Heides, F (1958): The Psychology of Interpersonal Relations. Wiley, New York.

61. Hollingshead and Redlich (1958): Social Class and Mental Illness. Wiley, New York.

62. Holzinger, Karl J. and Harman Harry H.C(1945): Factor Analysis. The University of Chicago Press, Chicago, Illinois.

63. Hopson, Barrie & John Hayer (1968): The Theory and Practices of Vocational Guidance. Pergamon Press.

64. Houston, Peterson (1946): Great Teachers. Rutgers University Press.

65. Hueck, William R (1953): An Introduction to Teaching. Henry Holt and Company., New York.

66. Hugher, A.G and E.H. Hughes (1965): Education: Some Fundamental Problems. The English Language Book Socety and Longman Green & Co. Ltd. Chapt. 7.

67. Hughes, James Monroe (1957): Human Relations in Educational Organization. Harper & Brothers, New York.

68. Jahoda Marie, Morton Deutsch & Stuart W. Cook (1956): Research Methods in Social Relations. The Dryden Press, New York.

69. Jalota S (1964): Manual of Directions for the Group Test of General Mental Ability (1/60). The Psycho-Centre, Varanasi.

70. Jennings, Helen H (1950): Leadership and Isolation. 2nd. Ed. Longmans, Green, New York.

71. Jennings, Helen Hall (1951): Sociometry in the Group Relations. American Council on Education, Washington, D.C. 1951.

72. Jersild, Dr. Arthur T (1957): The Psychology of Adolescence. The McMillan Company, New York, pp 288.

73. Johnston, Edger G. Mildreed Peters & William Evraiff(1959): The Role of the Teacher in Guidance. Prentice-Hall, Inc.

74. Jones, J. Arthur (1963): Principles of Guidance. McGraw-Hill Book Company, pp 261-62.

75. Jung, C.G (1964): The Development of Personality. Routledge & Kegan Paul, London.

76. Kabir, Humayan (1954): Student Indiscipline. Ministry of Education, Govt. of India.

77. Kamath, V.V(1940): Measuring Intelligence of Indian Children. Oxford University Press Bombay.

78. Kelley, Earl C (1947): Education for What is Real. Harper & Brothers Publishers, New York & London.

79. Kuhlen, Raymond G (1952): The Psychology of Adolescent Development. Harper.

80. Kuppuswamy B (1962): Manual of Socio-Economic Scale (Urban). Manasyan, Delhi.

81. Landis Paul H (1952): Adolescent and Youth. McGraw-Hill Book Company, Inc.

82. Lane Howard & Mary Beauchamp (1955): Human Relations in Teaching. Prentice-Hall, Inc.

83. Laughlin F (1954): The Peer Status of Sixth-and Seventh-Grade Children. New York, Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University.

84. Lindgren, H.C (1956): Educational Psychology in the Classroom, New York, John Wiley and Sons., Inc.

85. Lindquist, E.F(1940): Statistical Analysis in Educational Research. Houghton Mifflin Company, The Riverside Press, Cambridge.

86. Lindzey, G & Borgatta, E.F (1954): Handbook of Social Psychology. Cambridge, Mass. Addison-Wesley, pp 405-448.

87. Lindzey, Grdner and Elliot Aronson (1968): The Handbook of Social Psychology; Second Edition, Volume Two Addison-Wesley Publishing Company, London pp450-455.

88. Long L (1962): Mimeographed Handbook of Test Information; Directorate of Education and Vocational Guidance, Delhi.

89. Maciever, R.M (1955): Society. McMillan & Co. Ltd. London.

90. Malhotra, Sudha (1969): Interpersonal Relationship; Educational Studies No. 1. United Publishers 1, Katra Road, PB 66 Allahabad.

91. Marie Jahoda, Morton Deutsch and Stuart W Cook (1956): Research Methods in Social Relations. The Dryden Press, New York.

92. Mary L. Northway (1953): A Premier of Sociometry. University of Toronto Press.

93. Maslow (1954): Motivation and Personality. Harper, New York.

94. McCormick C Thomas & Roy G. Francis (1958): Methods of Research in Behavioural Sciences. Harper & Brothers, New York.

95. McGrath, J.E Altman, I (1966): Small Group Research: A Synthesis and Critique, New York, Holt.

96. McHendon, Jonathon C (1966): Social Foundations of Education. The McMillan Company, New York.

97. Melvin, A Gorddn (1952): General Methods of Teaching. McGraw-Hill Book Co.

98. Messer, A Evnice (1967): Children Psychology and the Teacher. McGraw-Hill Book Co. Ltd., London.

99. Mithall, John & W. Whewes (1964): Social Interaction in the Classroom; Chapt. 13, in Handbook of Research on Teaching, edited by N.L. Gage; Ranet McNally & Company, Chicago 683-714.

100. Mcedoon Mary Warren (1958): Learning to Teach. Harper & Brothers, New York.

101. Monroe, W.S (1952): The Teaching-Learning Theory and Teacher Education, 1890-1950. University of Illinois Press, Urbana, pp 255-256.

102. Montagu, W.F. Ashley (1951): On Being Human. New York, Henry Schuman, pp 111.

103. Moreno, J.L. (1953): Who shall survive? (Rev. Ed). New York, Beacon House.

104. Moreno J.L. (1960): The Sociometry Reader. The Free Press of Glenocoe Illinois.

105. Morse, William C.G. Max Wingo (1962): Psychology and Teaching. Scott. Foresman and Company.

106. Mouly, J. George (1968): Psychology for Effective Teaching. Holt, Rinehart and Winston.

107. Mukherjee, Himangshu Bhushan (1962): Education for Fulness. Asia Publishing House.

108. Mullahy, Patrick (1950): A Study of Interpersonal Relations. Hermitage Press, Inc. New York.

109. Northrop, F.S.C. (1947): The Logic of Sciences and Humanities. McMillan Company.

110. Northway, M.L. (1952): A Premier of Sociometry. Toronto, University of Toronto Press.

111. Northway, M.L (1960): Sociometric Testing. Lindsay Weld. University of Toronto Press.

112. Oeser, O.A (1955): Teacher-Pupil and Task Elements of Social Psychology applied to Education. Tavistock Publication Limited.

113. Panadikar, S (1957): The Teacher in India Today. Ministry of Education, Govt. of India, Publication No. 273.

114. Paul, J. Gelinas (1965): So You Want to be a Teacher. Harper & Row Publishers, New York.

115. Peters, J Herman & Collins W. Burnett Gail F. Farewell (1963): Introduction to Teaching. The McMillan Company, pp 68-74, 174-175.

116. Phenix H. Philip (1958): Philosophy of Education. Henry Holt & Company, New York.

117. Philip, C.T. (1956): Choosing a Career. Oxford University Press, 1956, pp 68.

118. Prakasha, Veda (1956): Reliability of Ratings. Faculty of Education and Psychology. M.S. University of Baroda, Baroda.

119. Price, Mary, R (1964): Teaching is a Career. London Museum Press, Ltd.

120. Proctor, C.H. and Loomis, C.P(1951): Analysis of Sociometric Data in Jahoda, M. Deutsch, M and Cook, S.W (1951): Research Methods in Social Relations. Part II.

121. Rao, V.K.R.V. (1966): Teacher's Role in Education. Ministry of Education, Govt. of India; Publication No. 784, pp 66-68 Aug, 1966.

122. Reavis C. William and Bass H. Cooper (1959): Evaluation of Teacher Merit in City School Systems. The University Chicago Press. Jan, 1945, Nov. 1959.

123. Remmers, H.H (1964): Rating Methods in Research on Teaching. Handbook of Research on Teaching; American Educational Research edited by N.L. Gage, Rand McNolly & Co. pp 330-378.

124. Richey, Robert W (1958): Planning for Teaching. McGraw-Hill Series in Education. Second Edition.

125. Riley, W.T (1950): The Student looks at his teacher. New Brunswick, Rutgers University Press.

126. Roach Kenneth M (1948): I want To Teach. University of London Press Ltd.

127. Robbert, Hoppock (1935): Job Satisfactions. Harper & Brothers.

128. Roe, Anne, (1956): The Psychology of Occupation. John Willey & Sons Inc. New York pp 281-285, 23-42.

129. Roger, W Heyns (1958): The Psychology of Personal Adjustment. New York.

130. Ryan Carson W (1938): Mental Health Through Education. New York, The Commonwealth Fund.

131. Ryans, D.G(1960): Characteristics of Teachers - A Research Study. American Council of Education, Washington, DC.

132. Saunders, Richard M (1946): Education for Tomorrow: The Teacher. University of Toronto Press.

133. Scot, W.D. Clothers, R.C. & Matheuson S.B. (1931): Personal Management. McGraw-Hill, New York.

134. Selltiz, Claire, Marie Jahoda, Morton, Deutsch Stuart W. Cook (1967): Research Methods in Social Relations. Methuen & Co. Ltd.

135. Sims (1952): S.C.I. Rating Scale. World Book Co., New York.

136. Smith, P.C. (1963): Strategy for Development of a General Theory of Job Satisfaction. Unpublished Manuscript, Ithaca, Cornell University.

137. Sonenson, Herbert (1964): Psychology in Education. McGraw-Hill Book Company Inc. Tokyo.

138. Sorenson, Herbert (1948): Psychology in Education: The Mental Hygiene of the Teacher. McGraw Hill Book Company, Inc. pp 152-156.

139. Spearman, C LL. Wynn Jones (1950): Human Ability. London, McMillan & Co. Ltd.

140. Stanley William O and Others (1967): Social Foundations of Education. Holt, Rinehart & Winston, New York.

141. Stoddard, George D (1956): The Meaning of Intelligence. The McMillan Company, New York.

142. Strong, E.K. (1931): Changes of Interest with Job. Stanford University Press.

143. Sylwester, Robert (1966): Common Sense in Classroom Relations. Parking Publishing Company, New York.

144. Taba, Hilda (1953): Studies in Intergroup Relations: Leadership Training in Intergroup Education. Washington, American Council on Education.

145. Taba, Hilda (1955): Studies in Intergroup Relations with Perspective on Human Relations. American Council on Education, Washington.

146. Taussing (1928): Principles of Economics. London, McMillan Company.

147. Tierney, Richard H (1914): Teacher and Teaching. Longmans, Green & Co.

148. Travers, Robert M (1964): An Introduction to Educational Research. The McMillan Company.

149. Vernon, Philip E (1961): The Structure of Human Abilities. London, Methuen & Co. Ltd.

150. Vinoba (1959): Thoughts on Education. Akhil Bhartya Serva Seva Sangh. Rajghat, Kashi.

151. Vivekananda, Swami (1967): Education. Sri Ramakrishan Mission Vidyalya, Coimbatore.

152. Waller, Willard (1961): The Sociology of Teaching. Russell & Russell.

153. Warner et al (1949): Social Class in America. Science Research Associates, Chicago.

154. White, Verna (1958): Studying the Individual Pupil. Harper & Bros. Publishers, New York.

155. Willer, Willard (1961): The Sociology of Teaching. Russell & Russell.

156. Wilson A.R. John, Mildred C. Robeck and William B Michael (1969): Psychological Foundations of Learning and Teaching. McGraw Hill Book Company, 1969.

157. Woodruff D. Asahel (1951): The Psychology of Teaching. Longmans, Green & Co. Inc. New York.

158. Wynn, Richard (1960): Careers in Education. McGraw-Hill Book Co.

159. Yauch, A. Wilbur (1966): Keys to Understanding in School Relations. Teachers' Encyclopaedia. Prentice-Hall Inc. pp 99-1018.

160. Yearbook (1949): Towards Better Teaching: Association of Supervision and Curriculum Development of the National Education Association N.W.; Washington 6, DC.

JOURNALS

1. Adams, J.B (1969): What makes a good teacher great? Nat. El. Prin. 49; 38-40, Nov. 1969.

2. Adaval, S.B. (1955): What the teachers dislike in their profession; Shiksha, 82-88, Jan. 1955.

3. Aggarwal, Y.P. & V.P. Saini (1969): Pattern of Study Habits and its Relationship with Achievement and Parents' Economic and Educational Status. J. of Edu. Resc & Extension. Ramkishan Mission Vidyalaya.

4. Amatora, S.M(1951): A Study in Teacher Personality. J.Ed. Resc. 44; 709-714.

5. Amatora, Sister Marry (1951): Teacher Adjustment. The School administration Problem. J. Edu. Ad. Sup.,37; 479-485.

6. Amatora, Sister Marry (1952): Can Elementary School Children Discriminate Certain Traits in their teachers. Jr. Child Development, 23; 75-80.

7. Amatora, Sister Mary(1955): Teacher-Pupil Relationships. Number Ed. Sep., 75, 3-62.

8, Amidon, E and A Simon (1965): Teacher-Pupil Interaction. Ed. Resc. 35, 130-9, April, 1965.

9. Anand, Satya Paul (1969): Teacher-Pupil Relationship (In Hindi). Punjab Journal of Education 1 (i) 3-7, April, 1969.

10. Ascher, M (1969): Relationship between the teacher and the taught. Child Edu., 46, 93-5, November, 1969.

11. Backman, C.W, and P.F Secord,(1962). Liking, selective, interaction and misperception in congruent interpersonal relations. Sociometry, 25, 321-335.

12. Barr, A. S (1961): Wisconsin Studies of Measurement and Prediction of Teacher Effectiveness. A Summary of Investigations, J. Expt. Edu. 30(1), 11--.

13. Berry, J.R (1962): Does Professional Preparation make a Difference? J. Teacher Education, 13(4), 386-395.

14. Bhalla, Shakuntla (1954): Sociometry in a Classroom. The Education Quarterly, 16, 33-36, 1954.

15. Boardman C.W (1930): An Analysis of Pupil Ratings of High School Teachers. Edu. Admi. & Sup. 16, September, 1930.

16. Bonney, M E (1943): The Relative Stability of Social, Intellectual and Academic Status in Grades II to V and Inter-Relationship between these various forms of growth. J. Ed. Psy., 34, 88-102.

17. Bonney, M.E (1944): Relationships Between Social Status, Family, Size, Socio-economic Home Background and Intelligence Among School Children in Grades III to V. Sociometry, 7, 26-39.

18. Bonney, M.E (1953): Differences in Social Behaviour between Sociometrly High and Sociometry Low Children. J. Ed. Resch., 46, 481-495.

19. Borgatta, E.F(1951): A Diagnostic Note on the Construction of Sociograms and Action Diagrams. Group Psycho-therapy, 3, 300-8, 12, 13, 21.

20. Bowman, E.E. (1934): Pupil Rating of Student Teachers. Edu. Adamn. & Supervision, Februay, 1934.

21. Britto, F (1959): Teacher-Pupil Relationship. Jr. of Teaching, 31(3): 99-102, 1959.

22. Bronfenbrenner U (1945): The Measurement of Sociometric Status, Structure and Development, Sociometry, Monograph No. 6, Beacon House, New York.

23. Brookoner, Willur B (1940): Person-Person Interaction Between Teachers and Pupils & Teaching Effectiveness. J. Edu. Res. 34, 272-87, 1940.

24. Bryan, R.C(1941): Reliability, Validity and Needfulness of Writing Student Reactions to Teachers. Reactions to Teachers. Edu. Ad. Sup. 27, 655-665.

25. Bryan, R. C(1961): Students Evaluate Their Teachers. Nat. Assn. Sec. Sch. Prin. Bul., 45, 68-72, December, 1961.

26. Bryan, R.C (1969): As students see their teachers. NEA. J. 57, 20-1, April, 1968.

27. Bush, R.N.(1942): A Study of Student-Teacher Relationships. J. of Educational Research. XXXV, 645-56, May, 1942.

28. Bush, R.N (1949): A Human Relation Approach to Instruction. Educational Leadership, 1953-58, December 1949.

29. Byrd, Eugane,(1951): A Study of Validity and Constancy of Choices in a Sociometric Test. Sociometry, Vol XIV, No. 2, 3.

30. Callender, W.P. (1955): Who Likes Whom? Study of Pupil and Teacher Preferences. Clearing House 29, 490-92.

31. Calabria, F. M (1960): Characteristics of Effective Teachers Ed. Res. Bul. 39, 92-100, April, 1960.

32. Cattell, R (1942): The Concept of Social Status. J. Social Psychology, 15.

33. Centers, R (1948): Motivational Aspects of Occupational Stratification. J. of Soc. Psychol., 28, 187-217.

34. Cohn, T.S. W. Yee and V. Brown (1961): Attitude Change and Interpersonal attraction. J. Soc. Psychol. 55, 207-211.

35. Combs, A.W and D.W. Soper(1963): The Helping Relationship As Described by Good and Poor Teachers. J. Teach. Ed. 14, 64-7, March, 1963.

36. Corey Stephen M. and Beery (1938): The Effect of Teacher Popularity upon Attitude Toward School Subjects. J. Edu. Psychol. , 29, 668-70, December, 1938.

37. Criswell, Joan H (1949): Sociometric Concepts in Personal Administration. Sociometry, 12, 287-300, 1949.

38. Dale, R.R(1966): Pupil-Teacher Relationships in Co-educational and single-sex grammar school. Brit. J. Ed. Psychol. 36, 267-71, November, 1966.

39. Davitz, J.R(1955): Social Perception and Sociometric Choice of Children. J. Abnor. Soc. Psychol. 50, 173-176.

40. Dodge, A.F (1943): What are the Personality Traits of the Successful Teachers. Journal of Applied Psychology, 27, 325-337.

41. Drawhorni, C.L. (1954): Relationship between Pupil and Student-Teacher-Interaction and Pupil Ratings of Teaching Effectiveness. Ed. Ad. Sup., 40, 283-296, May, 1954.

42. Dreikurs, Rudolf (1959): Do Teachers Understand Children? Sch. Soc., 87, 88-90.

43. Durflinger, Gleen W (1963): Personality Characteristics of Success in Student teaching. Edu. Psychol. Measmt., 23(2), 383-390.

44. Eberman, Paul W (1952): Personal Relationship - One key to Instructional Improgement. Edu. Leadership 9, 389--, March, 1952.

45. Eng, E and French, R.L (1948): The Determination of Sociometric Status. Sociometry, 11, 388-71.

46. Evans, K.M. (1959): The Teacher-Pupil Relationship. Edu. Resc. II, 3-7, November, 1959.

47. Evans, K.M. (1963): Sociometry in School. Ed. Resc. IV, 50-58, November, 1963.

48. Evans, K.M. (1964): Sociometry in School -II Application. Edu. Resc. IV, 121-128, February, 1964.

49. Feldhusen and Others (1967): Classroom Behaviour, Intelligence and Achievement. J. Exp. Ed. 36, 82-7, Winter, 1967.

50. Fenner, M.S (1968): Teacher-Student Relationship. Symposium. NEA J. 57, 14-24, April, 1968.

51. Fishbein, M (1965): Prediction of Interpersonal Preferences and Group Member Satisfaction from Estimated Attitudes. J. Pers. Soc. Psychol., 1, 665-67, January, 1965.

52. Foster, J.C (1933): As the Child Sees the Teacher. Childhood Education, 283-288.

53. Frayer, Doughlas (1927): Interest and Ability in Educational Guidance. Jou. of Edu. Resc. 16, 27-39.

54. Gage, N. L (1951): Social Perception and Teacher-Pupil Relationship. J. Ed. Psy. 42, 144-152.

55. Gage, N.L. Leawitt, G.S. & Store, G.C. (1955): Teachers' Understanding of their pupils and pupils ratings of their teachers. Psychol. Monogr. 21, 69.

56. Gallagher, J. J and Crowder, T (1957): The Adjustment of Gifted Children in the Regular Classroom. Exceptional Children, 23, 306-312, 317-319.

57. Gallagher, J.J (1958): Social Status of Children related to Intelligence, Propinquity and Social Perception. El. Sch. J. 58, 225-31, January, 1958.

58. Gladstone, R (1948): Do Maladjusted Teachers Cause Maladjustment? J. Exceptional Children, 15, 65-70.

59. Good, T.L. (1970): Which Pupils do Teachers Call On? Bibliog. El. Sch. J. 70, 190-8, January, 1970.

60. Gronlund, Normane (1953): Relationship Between the Sociometric Status of Pupils and Teacher's Preference for and Against Having Them in Class. Sociometry, 16, 142-50.

61. Gronlund, Normane (1955): The Relative Stability of Classroom Social Status with Unweighed and Weighed Sociometric Choices. J. Edu. Psychol. 46, 345-54.

62. Gronlund, N.E and Barner F.P.(1956): The Reliability of Social Acceptability Scores Using Various Sociometric-Choices Limits. Elementary School Journal, 57, 153-57.

63. Gulthrie, E.R (1927): Measuring Student Opinion of Teachers. School & Society, February, 1927.

64. Haggerty, Melvin E (1932): The Crux of the Teaching Prognosis Problem. Sch. Soc., 35, 549.

65. Haller, A, O & Thomas, S (1962): Personality Correlates of the Socio-Economic Status of Adolescent Males. Sociometry, 25 (4)398-404.

66. Hallworth, H. J (1961): Teachers Personality Ratings of High School Pupils. J. Ed. Psychol. 52, 297-307.

67. Hanson, E. H (1965): Even Your Best Friends Won't Tell you Your IQ. Edu. 86, 126, October, 1965.

68. Hayer, R.B(1963): A Way to Measure Classroom Teaching Effectiveness. J. of Teacher Education. 14, 168-176.

69. Haython, W (1953): The Influence of Individual Members on the Characteristics of Small Group. J. Ab. Soc. Psych. 48, 276-284.

70. Hopkins L Thomas(1940): Seniors Survey the School. Teacher College Rec. 42, 116-22.

71. Hunt, Herold C (1942): The Ideal Teacher . J. of Education, CXXV, 37-38, February, 1942.

72. Innocentia, S.M. (1962): What Do Pupils Demand of the Teacher? Cath. Edu. Review, 60, 179-184.

73. Izad, C.E (1961): Personality Similarity, Positive Affect and Interpersonal Attraction. Jr. of Abnormal Soc. Psychol. 61, 484-485.

74. Jackon, P W (1965): Successful Student. Teach. Col. Rec. 66, 635-44, April, 1965.

75. Jalota, S (1965): Intelligence Testing in India. Indian Psychological Review 1(2), 96-112.

76. Jenkins, David H (1951): Interdependence in the Classrom. J. Edu. Res. 45, 1, 137-44.

77. Jerslid, A. T (1940): Characteristics of Teachers Who Are 'Liked Best' and 'DislikedMost'. J. of Expt. Education, 9(2): 139-151.

78. Johnson, B. W (1968): Human Relationships in the Concept of Education. Sch. & Comm. 54, 24, February, 1968.

79. Johnson, G. O (1950): A Study of the Social Position of Mentally Handicapped Children in the Regular Grades. American Journal of Mental Deficiency, 55, 60-89.

80. Johnson, G. O and Kirk, S.A (1950): Are Mentally-Handicapped Children Segregated in the Regular Grades? J. of Except. Children, 17, 65-68.

81. Katz, L (1947): On the Matrix Analysis of Sociometric Data. Sociometry 10(3), 233-241.

82. Katz, L (1953): A New Status Index Derived from Sociometric Analysis. Psychometrika 18, 39-43.

83. Khanna, Aparsh (1960): Friendship in Adolescence. A review of Studies. J. Edu. Psychol. Baroda 17, 18, 248-250.

84. Knight, F.B (1922): Qualities Related to Success in Elementry School Teaching. J. of Edu. Res. 5, 207-16. March, 1922.

85. Kuppuswamy, B (1959): A Scale to Measure Socio-Economic Status. Indian J. of Psychology, 34.

86. Leeds, Carroll H (1954): Teacher Behaviour Liked and Disliked by Pupils. Education 75, 29-36.

87. Leeds, C.H & Cook W.W. (1947): The Construction and Differential Value of a Scale for Determining Teacher-Pupil Attitude. J. Expt. Edu. 16, 149-159.

88. Leipold L.E. (1959): Students Do have Favourite Teachers. Clearing House, 32, 240-41, December, 1959.

89. Lewis and Dhillon (1960): Group Dynamics in a North Indian Village. Planning Commission, Govt. of India (1954) reported in J. Psy. Baroda.

90. Lewis, G.M (1964): Interpersonal Relations and School Achievement . Children, 11, 235-6, November, 1964.

91. Lindzey, G and Urdan, J.A. (1954): Personality and Social Choice. Sociometry, 17, 47-63.

92. Lott Bernice, E, A.J. Lott(1960): The Formation of Positive Attitude Toward Group Members. J. Ab. Soc. Psych. 61, 297-300.

93. Macmurray, J (1964): Teachers and Pupils. Ed. Forum, 29, 17-24, November, 1964.

94. Malhotra, Sudha(1970): Teacher in Interpersonal Setting of Education. NIE Journal, IV, 3, 40-43, January 1970.

95. Mann, J.H (1958): The Influence of Racial Prejudices and Perceptions. Sociometry, 21, 150-158.

96. Medleay, D. M & Klein, Alik A (1957): Measuring Classroom Behaviour with a Pupil reaction Inventory. Elem. Sch. J, 57, 315-19.

97. Medley Donald M (1961): Teacher Personality and Teacher Pupil Rapport. J. Teach. Ed. 12, 152-6, July, 1961.

98. Moore, J.E (1940): Annoying Habits of High School Teachers. Peabody Journal of Education 18, 161-165.

99. Morrison, H.B (1969): Successful Teacher. Peabody, J. Ed. 47, 156-9, November 1969.

100. Mouton, Jane S. Blake, R.R. and Fruchter, B (1955): The Reliability of Sociometric Measure. Sociometry, 18,7-48.

101. Nash, P (1962): The Future of Educational Research in Canada - A Critique. Canadian Education and Research Digest, 21, 3, 161-62.

102. Neal, Charles D and Afflack Mary (1949): Teachers Can be Unforgettable Too. Illinois Education XXVIII, 2, 52-63, October, 1949.

103. Norms D. Bowers (1962): The Influence of Teachers' Personality on Classroom Interaction. J. Exp. Edu., 31, 4, 309-313, June, 1962.

104. Northway, M.L. (1940): A Method for Depicting Social Relationships by Sociometric Testing. Sociometry, 3, 144-50.

105. Northway, M.L (1946): Personality and Sociometric Status. A Review of Toronto Studies. Sociometry, 9, 233-41.

106. Northway, M.L (1968): The Stability of Young Children's Social Relations. Edu. Resch. II-2, 54-77.

107. Odenwald, Robert P (1954): Mental Health and the Classroom. Ed. 75, 18-23.

108. Ojemann, Relph J & Wilkinson (1939): The Effect on Pupil Growth of an Increase in Teacher Understanding of Pupil Behaviours. J. Expt. Edu. 8, 143-47.

109. Packer, M.A (1968): Why Teachers Fail? J. Teach. Edu. 19, 331-7, February, 1968.

110. Paul, Witty (1947): An Analysis of the Personality Traits of the Effective Teacher. J. Edu. Res. 40, 662-71.

111. Paul, Witty (1947): The Teacher Who Has Helped Me Most. Elementary English, XXIV, 345-354.

112. Paul, Witty (1950): Some Characteristics of the Effective Teacher. Edu. Adm. Sup. 36(4), 193-208.

113. Pepinsky, Pauline N (1949): The Meaning of 'Validity' and 'Reliability' as Applied to Sociometric Tests. Edu. Psychol. Measurement, 9, 39-49.

114. Perkins, H.P(1952): Climate Influences Group Learning. Jr. of Edu. Resc. 45, 115, 1951-52.

115. Rangaswamy, Kasturi T & H. Visvesvaran (1969): Socio-Economic Status of Students in Some Long Established High Schools in Coimbatore Before and After Independence. J. of Edu. Resch & Extension. Sri Ramakrishan Mission Vidyalaya 6(1), 12-19, July, 1969.

116. Rayans, D.G(1953): The Investigation of Teachers Characteristics. Educational Record, 34, 371-396.

117. Rice, H.M (1954): What Practices have proven most useful in developing better student-teacher relationships? Nat. Asson. Sec. Sch. Prin. Bul. 38, 13-15, April, 1954.

118. Riddle, C.W. (1965): Non-Verbal Aptitude Testing Among Panjabi Students. Indian Psychological Review. 1(2), 126-135.

119. Robbert, Hoppock & H.A. Robinson (1951): Job Satisfaction Researches of 1949. Occupations, 1(29) 572-78.

120. Robert L, Isacoon, Wilbert J (1963): Correlation of Teacher Personality Variables and Student Rating. J. Edu. Psy., 54(2) 110-117.

121. Root A.R (1931): Student Rating of Teachers. J. of Higher Education, June, 1931.

122. Rostkar, L.E (1940): The Measurement and Prediction of Teaching Ability, School and Society. 51, 30-32.

123. Ryans, David G (1961): Some Relationships Between Pupil Behaviour and Certain Teacher Characteristics. J. Edu. Psychol. 52(2) 82-90.

124. Sathyamurthy, T.V (1965): Relationship Between Teacher and Pupil in Ancient India and Upanishadic View. Ed. Theory 15, 26-34, January, 1965.

125. Saul B Sells, and Robert W. Ellis (1951): Observational Procedures Used in Research. Review of Educational Research, 21, 432-491, December, 1951.

126. Sharma, Krishan Dev (1969): Socio-Economic Status of Parents As Determiner of Curricular and Occupational Choices of School Boys. J. of Edu. Resc. & Extension. Sri Ramkrishan Mission Vidyalaya 6(1), 20-31, July, 1969.

127. Snjam, Sister Marian Frances (1966): Establishing Teacher-Student Rapport. NEAJ 55, 19-20, October, 1966.

128. Super, D.E (1939): Occupational Level and Job Satisfaction. J. Appl. Psychol. 23, 547-564.

129. Swineford, Edwin J (1963): A Study of Factors that Affect Teaching Behaviour. California J. of Edu. Resc. 14(5): 214-224.

130. Symonds, Percival M (1927): The Measurement of Teaching Efficiency in High Schools. Educational Ad. & Super. VIII, 217-231.

131. Tenessbaum, Samuel (1944): Attitude of Elementary School Children to School, Teachers and Classmates. J. of App. Psy. 28, 134-141.

132. Thakar, R.S (1961): Social Acceptability Among School Adolescents. Edu. Psychol. Review, Baroda, 1, 29-31.

133. Thurstone, L.L (1946): 'Comment'. American Journal of Sociology, 52, 39-50.

134. Tideman, S C (1942): A Study of Pupil-Teacher Relationship. J. Ed. Resc. 35, 657-64.

135. Toeman, Z (1949): History of Sociometric Movement in Headlines. Sociomtry, 12, 255-9.

136. Torrance, E P (1960): Teacher Attitude and Pupil Perception. J. Teacher Edu. 11, 97-102.

137. Tuddenhan, Read D (1951): Studies in Reputation. Psychol. Monograph No. 333, pp 580.

138. Tyler, L.L. (1964): Concept of An Ideal Teacher-Student Relationship. J. Ed. Resc. 58,112-17, November 1964.

139. Varma, R.M (1962): Development of Tool to Appraise Socio-Economic Status. Jo. of Psy. Resch. 6, 35-38.

140. Vennard, W (1964): Psychology of the Pupil-Teacher Relationship. Amer. Mus. Teach. 13, 8-9, May, 1964.

141. Weber, C. A (1953): Some Characteristics of College Teachers. Journal of Educational Research, 46, 685-692.

142. William F White and Hary E Anderson (1967): A Study of Scaled Dimensions of Teacher Behaviour as Perceived by Students. Jo. of Psy. 65, 223-232.

143. Wilson, W.R (1932): Students Rate Teachers. Jo. of Higher Education, February, 1932.

144. Withall, J (1956): An Objective Measure of a Teachers' Classroom Interaction. J. Edu. Resch., 47, 203-12.

145. Witty Paul (1950): Some Characteristics of the Effective Teacher. Edu. Ad. Sup. 36, 4, 193-208.

146. Wyett, J.L. & Reabody (1968): How Do I Handle the Discipline Problems or What If the Kids Don't Behave? J. Ed. 46, 71-4, September, 1968.

147. Yamamoto and Others (1966): Intelligence, Creative Thinking and Sociometric Choice Among Fifth-grade Children. J. Expt. Edu., 34, 83-9, September, 1966.

ENCYCLOPAEDIAS

1. Blishen, Edward 'Editor' (1969): Blond's Encyclopaedia of Education. Blond Educational.

2. Ebel, L Robert and Others 'Editor' (1969): Encyclopaedia of Educational Research. The McMillan Company.

3. Harris, W. Chester 'Editor'(1960): Encyclopaedia of Educational Research. McMillan Co. New York, 1481-82, 848-849.

4. Monroe, Walter S 'Editor' (1941): Encyclopaedia of Educational Research.Teaching Efficiency. P. 1277-83. The McMillan Co. New York.

5. Monroe, Walter S 'Editor' (1950): Encyclopaedia of Educational Research. The McMillan Co., New York, 745-747.

6. Prentice-Hall Editorial Staff (1966): Teacher's Encyclopaedia. Wilburn A. Yauch Keys to Understanding in School Relations. 991-1018.

7. Rivlin, Harry 'Editor' (1943): Encyclopaedia of Modern Education. The Philosophical Library of New York.

8. Sills, David L (1968): International Encyclopaedia of the Social Sciences Vol. 15. The McMillan Company & the Freee Press.

9. Smith W. Edward & Others (1963): The Educator's Encyclopaedia. Prentice-Hall, Inc.

M.Ed. DISSERTATIONS

1. Agarwal, Kailash Chand (1964): A Comparative Study of Thurstone's and Likert's Method of Measuring Attitudes. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

2. Aggarwal, S.S.L. (1966): Attitude of Training College Teachers of Agra University Towards their Profession. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

3. Anand, Satya Paul (1967): A Study of Teacher-Pupil Relationship at Higher Secondary Level. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

4. Aruna Kumari (1965): A Study of the Relationship of Achievement to Intelligence and Their Relationship with Popularity among Classmates. Unpublished, Punjab University, Chandigarh.

5. Goyal, Jagdish Chander (1952): An Investigation into the Attitude of Adolescent Children Towards Teacher & Their Bearing on Teacher-Education. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

6. Loeb, Nora (1941): The Educational and Psychological Significance of Social Acceptability and Its Appraisal in an Elementary School Setting. Unpublished Ph.D. Thesis, University of London.

7. Prashar, Om Dutt (1963): The Attitude of Teachers of Secondary Schools in Delhi Towards Teaching as a Profession. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

8. Raina, T.N. (1954): Construction of an Attitude Scale to Measure the Attitude of Teachers Towards Teaching as a Career. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

9. Ram Hari (1954): Qualities of a Successful Teacher as Ranked by the Principals of Higher Secondary Schools of Delhi. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

10. Rao, Gopal D (1965): A Study of Some Factors Related to Scholastic Achievement. Unpublished Ph.D. Thesis, University of Delhi, Delhi.

11. Roy, Bina (1966): Relationship Between the Measures of Success of Teachers as Students Under Trg. & As Teachers in Schools. Unpublished Ph.D. Thesis, University of Delhi.

12. Sahai, B.B. (1951): Sources of Dissatisfaction among Higher Secondary Teachers of Delhi. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

13. Sahdev, Madhu (1965): An Investigation into the Relationship between the Socio-Emotional Climate of a Class and the Achievement Behaviour and Interest-pattern of the Pupils. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

14. Saroj, Sahai (1967): An Investigation into the Causes of Dissatisfaction among Teachers. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

15. Sharma, Avinash (1968): A Study of Teacher's Behaviour and its Effect on Students' Behaviour in the Classroom. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

16. Vaishanw, S.L. (1953): Some of the Traits of Successful Teachers -Lecturers in the Training Institution as Ranked by Students, Teachers and Administrative Officers. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

17. Verma, R.P (1965): The Social Structure of the Teaching Staff of Some Higher Secondary Schools of Delhi. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

18. Verma, K (1951): Teachers Traits Ranked by Students. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

19. Virk, Mohinder (1955): Attitude of B.T. Students of Punjab towards Teaching as a Career. Unpublished, University of Delhi, Delhi.

*****

APPENDIX I

(Questionnaire for teachers)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name: ______________________________

School: ____

Dear Sir/Madam,

Students, educationists and psychologists have written much about the characteristics of a good teacher. But no substantial probe has been made about the characteristics of students liked and disliked most by teachers.

In the two questions given below, your opinion is solicited on the subject. I am confident that your honest, free and frank responses will be of great help to us to understand this pertinent question.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph. D. Scholar

Dated: ___________

Q.No.1: What makes you like a student?

Q.No.2: What makes you dislike a student?

APPENDIX 2

(Questionnaire for students)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name (Mr./Miss)____________________ Class __________

School: ________________________________

Dear student,

You are being taught by a number of teachers. In connection with a Research Work in Education, we are interested to know the characteristics of a teacher which make you like him or dislike him. Your free and frank responses to the following two questions will be of great help to us in our research work.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph. D. Scholar

Dated: __________

Q. No. 1: What makes you like a teacher?

Q.No. 2: What makes you dislike a teacher?

APPENDIX 3

(Five-point Liking Scale for teachers)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the teacher: ____________________

School ____________________

____

Dear Sir/Madam,

We are social human beings. We come across a number of people in our day-to-day life. This is not feasible for any human mind to cherish equal feelings for each one of those members of the group with which he happens to work. Individual differences in individuals differentiate them in our hearts. This is why, we consciously or unconsciously say and hear people saying, "I like him/her very much", "I do not like him/her very much", and some times such like observations are also made, "I do not like him or her". This is nothing but a human characteristic and the normal working of our minds.

On page 2, a list of students of Class X is given. Against each name five alternatives have been given to express your liking for each one of them. Please tick (/) mark under only one of the given five columns against each name applicable to him/her and leave the rest of four columns blank.

Rest assured, your expression will be kept strictly confidential and will not be made known to anyone or it will be used for any other purpose than this Research Work. You are requested to be all free and frank in your response for which I shall be grateful to you.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ____________

LIST OF STUDENTS OF CLASS X OF ....HIGHER SECONDARY SCHOOL, DELHI

Sl. No.	Name of the student	I like this student				
		The most	More than others	Like others	Less than others	The least
1						
2						
3						
4						
5						
6						
7						
8						
9						
10						
11						
12						
13						
14						
15						
16						
17						
18						
19						
20						
21						
22						
23						
Serial No. of last student						

APPENDIX 4

(Five-point Liking Scale for teachers)
CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the teacher: ______________________

School: ______________________________________

Dear Sir/Madam,

There is no denying the fact that you are working in your school not to your own absolute choice. However, you can say, you found a place in this school. I would say, simply you happen to work in this school. Again, your colleagues are not to your selection or choice but simply in normal course, they have become your colleagues.

You have your day-to-day associations with your colleagues. By virtue of your observations while working in the school, your colleagues leave a particular image in your mind. This is very normal and usual process which works in our group life. This develops a liking for each one of the members of the group. Below a list of teachers teaching Class X, excluding yourself is given. Against each name you are given five alternatives to express your liking for each one of them. Please tick (✓) mark in one column against each name applicable to him/her and leave the rest of four columns blank.

Rest assured, your personal likings will be kept strictly confidential and it will not be made known to anyone or used for any other purpose than this Research Work. You are requested to be all free and frank in your expression for which I shall be very thankful to you.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ____________

Sl. No.	Name of the teacher	I like this teacher				
		The Most	More than others	Like others	Less than others	The Least
1						
2						
3						
4						

APPENDIX 5

(Five-point Liking Scale for students)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the student: ______________________

Class: ________ School: ______________________

Dear student,

In your personal talks you often say and hear from your friends saying, "I like this teacher very much", "I do not like much this teacher", etc. etc. These are not only your utterances but such like observations are usually made by each one of us for the people with whom we come into contact with.

Following is the list of teachers teaching you this year. Against each name you are given five alternatives to express your liking for each one of them. Please tick (/) mark under only one alternative against each name and leave the rest of four columns blank against each name.

Rest assured, your personal likings will be kept strictly confidential and will not be made known to any one and will not be used for any other purpose than this Research Work. Please be very free and frank, and express yourself without any reservation and hesitation. I shall be very thankful to you.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ________________

Sl. No.	Name of the teacher	I like this teacher				
		The most	More than others	Like others	Less than others	The least
1						
2						
3						
4						
5						

APPENDIX 6

(Five-point Liking Scale for students)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the student: ______________________

Class ____________ School ______________________

____

Dear student,

Each one of us is a member of the big human society. We live our lives in tiny groups in the society. In groups we develop thick and thin, far and near associations with the members of the group. Again, we also remain quite indifferent towards many members of the group. This way of living is imbibed by us by virtue of our human beings. This lends the creation of feelings of likings and dislikings to their various degrees for each one of the members of the group we live in. Consciously and even unconsciously we often say and hear from others saying, "I like him very much". "I do not like him". "I have no special liking or disliking for him" etc. etc. There is nothing very extra-ordinary about all this, but this is simply the natural phenomenon going on in our lives.

Your class constitutes a group of students. You have your own liking for each one of your class fellows. A list of students of your class is given on page 2. Against each name you are given five alternatives to express your likings. Please tick (/) mark only one of the five alternatives against each name applicable to him and leave others blank.

Rest assured, your personal likings will not be made known to anyone and it will not be used for any other purpose other than this Research Work. Please be very free and frank and respond without any reservation and hesitation. I shall be very much thankful to you.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ____________

LIST OF STUDENTS OF CLASS X OF ....HIGHER SECONDARY SCHOOL DELHI.

Sl. No.	Name of the student	I like this student				
		The most	More than others	Like others	Less than others	The least
1						
2						
3						
4						
5						
6						
7						
8						
9						
10						
11						
12						
13						
14						
15						
16						
17						
18						
19						
20						
21						
22						
23						
24						
25						
26						
Serial No. of last student						

APPENDIX 7

(गोपनीय)

साधारण मानसिक योग्यता परीक्षा (१–९०)

(संशोधित संस्करण)

\+ \+

नाम .... कक्षा .... स्कूल .... स्थान ....

तारीख .... आयु .... वर्ष .... माह ....
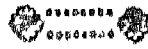
प्रारम्भिक आदेश

इन प्रश्नों के द्वारा हम साधारण मानसिक योग्यता की परीक्षा करना चाहते हैं।

20 मिनट में आप को इन 100 प्रश्नों के उत्तर देने होंगे।

इस परीक्षा के आरम्भ होने से पहिले, इस में दिये हुये सब प्रकार के प्रश्नों को और उनके उत्तर लिखने के नियमों को समझा दिया जायगा। सभी प्रश्न साधारण भाषा में लिखे हैं। प्रायः प्रश्नों के कुछ सम्भव उत्तर भी लिखे हुये हैं। उन में से आप को केवल सबसे ठीक उत्तर को चुनना है और उस के नीचे रेखा खींचनी है। प्रत्येक प्रश्न का एक ही ठीक उत्तर है। समय अधिक नहीं है। सब प्रश्नों का उत्तर बहुत कम लोग दे सकते हैं। अतएव आप को खूब शीघ्रता से काम करना चाहिये और अधिक से अधिक प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये। अगर कोई प्रश्न आपको अधिक कठिन मालूम पड़े, तो उसे सोचने में अधिक समय नष्ट न कीजिये। उसे छोड़कर अगले प्रश्नों का उत्तर दीजिए। यदि अन्त में समय बचे, तो अपने उत्तरों को दोहरा लीजिये।

आरम्भ करने की आज्ञा मिलने पर ही उत्तर लिखना आरम्भ कीजिये और जितनी शीघ्रता से हो, उत्तर दीजिये।

अब पन्ना उलटिये और इसकी पीठ पर दिये हुये उदाहरण पढ़िए।

Page	1	2	3	4	5	Total
Score :						

Published by :

THE PSYCHO-CENTRE

Test Construction & Standardisation by Professor S. JALOTA, M.A., D. Phil.

अभ्यास के लिये उदाहरण।

परीक्षा में जिस प्रकार के प्रश्न पूछे गये हैं, उनके उदाहरण नीचे दिये गये हैं। हर प्रकार के दो प्रश्न हैं, जिनमें से एक हल किया हुआ है, दूसरा आपको स्वयं करना है।

आइये अब हम पढ़ कर देखें।

1. 'पर्वत' का अर्थ है—(1) पहाड़ (2) मैदान (3) ऊँचा (4) पत्थर

2. 'प्रधान' का अर्थ है—(1) धनी (2) मनुष्य (3) मार्ग (4) मुख्य

3. 'धनिक' का उल्टा है—(1) विद्वान (2) दरिद्री (3) नीच (4) कमजोर

4. 'राजा' का उल्टा है—(1) साधू (2) प्रजा (3) बेटा (4) राज्य

5. 1 2 3 4 5 6 7 इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाइन पर लिखो।

6. 2 4 6 8 10 12........। इन संख्याओं के अनुसार आगे की एक संख्या लाइन पर लिखो।

7. (1) कुर्सी (2) मेज (3) खाट (4) चूल्हा (5) कुत्ता—इन पांच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

8. (1) जापान (2) देहली (3) चीन (4) भारत (5) फ्रांस—इन पांच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

9. हम अंगीठी इसलिए रखते हैं कि—(1) वह हमें देखने में अच्छी लगती है। (2) वह गर्मी देती है। (3) वह काली होती है।

10. छाता एक लाभदाय वस्तु इसलिए है, क्योंकि—(1) वह हमें धूप व वर्षा से बचाता है। ( ) वह कपड़े का बनता है (3) वह सब जगह मिलता है।

11. तीन बालक एक पंक्ति में बैठे हैं। राम प्रेम की दाहिनी ओर बैठा है। कृष्ण प्रेम की बाईं ओर है। तो बीच में कौन है? (1) प्रेम (2) राम (3) कृष्ण

12. गणेश से अनन्त पहिले पैदा हुआ था। अनन्त से रमेश पहिले पैदा हुआ था। तो बताओ आयु में सब से बड़ा कौन है? (1) अनन्त (2) गणेश (3) रमेश

13. आकाश : नीला :: घास : (1) मेज (2) हरा (3) गरम (4) बड़ा

14. मछली : तैरना :: मनुष्य : (1) कागज (2) खाना (3) चलना (4) देखना

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अब परीक्षा आरम्भ होने के पहिले अपनी ... शंकायें पूछ लीजिये।

जब तक कहा न जाय

कृपया

पन्ना मत उलटिये

1 (पहला)

1. 'तट' का अर्थ है—(1) गंगा (2) किनारा (3) बाँध (4) पट

2. 'जीत' का उल्टा है—(1) लड़ाई (2) कष्ट (3) हार (4) पुरस्कार

3. बिल्लियाँ लाभ-दायक जीव इसलिये हैं कि—(1) वे चूहे पकड़ती हैं। (2) वे साधु होती हैं। (3) वे कुत्तों से डरती हैं।

4. 'वृक्ष' का अर्थ है—(1) जमीन (2) चारा (3) पेड़ (4) रीछ

5. 5 7 9 11 13 15.......। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

6. 'प्रकाश' का उल्टा है—(1) उजाला (2) लैम्प (3) आकाश (4) अन्धकार

7. 8 7 6 5 4 3.......। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

8. 'अच्छाई' का उल्टा है—(1) होशियारी (2) कुरूप (3) गन्दगी (4) बुराई

9. 3 6 9 12 15 18.......। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

10. कलम : लिखना :: चाकू : (1) आम (2) लोहा (3) काटना (4) खाना

11. 19 17 15 13 11 9.......। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

12. 'जीवन' का उल्टा है—(1) निराशा (2) आनन्द (3) मृत्यु (4) मिट्टी

13. (1) मोटर (2) साइकिल (3) ताँगा (4) तार (5) रेलगाड़ी इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

14. 5 11 17 23 29 35.......। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

15. (1) गोमती (2) गोदावरी (3) सरोजिनी (4) गंगा (5) जमुना इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

16. 'साहसी' का अर्थ है—(1) बहादुर (2) विजयी (3) हिम्मती (4) लड़ाका

17. (1) कूदना (2) फाँदना (3) भागना (4) खड़े रहना (5) चलना - इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

18. 1 2 4 8 16 32.......। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

19. (1) हृदय (2) कान (3) आँख (4) नाक (5) जीभ—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

20. मोहन से राम नाटा है। किशन से मोहन नाटा है। तो सबसे लम्बा कौन है?

(1) मोहन (2) किशन (3) राम

[प्रश्न 21 के लिए देखिये पृष्ठ 2 (दूसरा)। समय कम है शीघ्रता से करिये।]

3 (तीसरा)

41. 78 67 56 45 34 23 .... । इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो ।
42. (1) बाघ (2) गाय (3) भेड़ (4) कुत्ता (5) बिल्ली—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है ।
43. 2 3 5 8 12 17 .... । इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो ।
44. राम का नाम श्याम से पहले आता है । राम का नाम कृष्ण से पीछे आता है । तो सबसे पीछे किसका नाम आता है ? (1) श्याम (2) राम (3) कृष्ण
45. भला : बुरा : : लम्बा : (1) मनुष्य (2) ऊँचा (3) बालक (4) छोटा
46. 'खीर का स्वाद उसके खाने से पाया जाता है', यह इस कारण कहते हैं कि—(1) खीर खाने के लिये बनाई जाती है । (2) किसी वस्तु को केवल परख कर ही बताया जा सकता है कि वह क्या है । (3) खीर को परोसने से पहले परीक्षा कर लेनी चाहिये ।
47. मंगलवार : रविवार : : बुधवार : (1) सप्ताह (2) सोमवार (3) बृहस्पति (4) शुक्रवार
48. 'परिश्रमी' का उल्टा है—(1) सुखी (2) चतुर (3) आलसी (4) उद्यमी
49. धोना : मुख : : झाड़ू देना : (1) सफाई (2) हाथ (3) [illegible] (4) फर्श
50. 'एक देश में रेल की बहुत सी लाइनें होनी चाहिये' इस कारण कि—(1) इनसे मनुष्यों और माल के आने जाने में सुविधा होती है । (2) इनसे व्यापार को लाभ होता है । (3) इनसे खाद्य पदार्थों का मूल्य कम हो जाता है ।
51. 'स्वरूप' का अर्थ है—(1) रंग (2) सुन्दर (3) आकार (4) निर्मल
52. (1) खाट (2) कुर्सी (3) प्लेट (4) सोफा (5) मेज़—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है ।
53. 'दंड' का उल्टा है—(1) पुरस्कार (2) प्रेम (3) प्रतिकार (4) प्राण
54. 9 12 14 17 19 22 ...... । इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो ।
55. 'हमको एक बार बोलने से पहले दो बार विचार करना चाहिए', इस कारण कि—(1) हम कहने के लिए अधिक बातों का विचार कर सकते हैं । (2) हमें ठीक बात कहने की अधिक सम्भावना है । (3) शीघ्र शीघ्र बोलने से हम तुतला सकते हैं ।
56. 'विस्तृत' का उल्टा है—(1) विशाल (2) कमरा (3) पतला (4) संकुचित
57. फाके : पानी : : बेलून : (1) रबर (2) जहाज (3) वायु (4) ऊँचा
58. 18 14 17 13 16 12 .... । इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो ।
59. दर्जी : हलवाई : : कपड़ा : (1) सिलना (2 मिठाई (3) पहनना (4) पान
60. (1) रूई (2) कपड़ा (3) सन (4) मूंज (5) ऊन—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है ।

[प्रश्न 61 के लिये देखिये पृष्ठ 4 (चौथा)] समय कम है शीघ्रता से करिये ।

4 (चौथा)

61. भौंकना : हिनहिनाना : : कुत्ता : (1) गाड़ी (2) घोड़ा (3) घास (4) बिल्ली
62. (1) मकान (2) बंगला (3) कोठी (4) महल (5) मन्दिर—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।
63. 'झूठ के पाँव नहीं होते' यह इस कारण कहा जाता है कि—(1) लंगड़े मनुष्य प्रायः झूठ बोलते हैं। (2) झूठे मनुष्य की पोल शीघ्र ही खुल जाया करती है। (3) झूठ बोलने वाले चलते हुए ठोकर खा जाते हैं।
64. 29 23 26 23 19 14 ······। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।
65. रमा की बुद्धि देवकी से प्रखर है। बुद्धि में सीता सावित्री से हीन है। देवकी की बुद्धि सावित्री से प्रखर है। तो सबसे अधिक बुद्धिमती कौन है ? (1) रमा (2) देवकी (3) सीता (4) सावित्री।
66. 'सृजन' का उल्टा है—(1) प्रलय (2) पोषण (3) विनाश (4) काज
67. 9 7 12 10 15 13 ······। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।
68. पक्षी के पर उसकी इस प्रकार सहायता देते हैं कि—(1) उनसे पक्षी का भार घट जाता है। (2) उनसे एक गर्म भीतरी सतह बन जाती है। (3) वे वायु को उसके शरीर से लगने नहीं देते।
69. (1) चित्र (2) मूर्ति (3) जीव (4) कविता (5) स्तम्भ—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।
70. 27 21 16 12 9 7 ......। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।
71. सरला से शान्ती अधिक सौम्य है। शान्ती से पद्मा अधिक सौम्य है। पद्मा मालती की अपेक्षा कम सौम्य है। तो सबसे अधिक सौम्य कौन है ? (1) शान्ती (2) मालती (3) सरला (4) पद्मा
72. 'आज्ञा' का अर्थ है—(1) कठोर (2) निराशा (3) निर्देश (4) पालन
73. पैर : टाँग : : हाथ : (1) अंगूठा (2) खाना (3) काम (4) बाँह
74. (1) गया (2) पुरी (3) प्रयाग (4) द्वारिका (5) दिल्ली—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।
75. अनेक वर्षों तक हवाई जहाज इस कारण ठीक न बन सके कि—
(1) वे बहुत भारी बनाये जाते थे। (2) उनके कल-पुर्जे बहुत महँगे होते थे। (3) एक अच्छा इञ्जन नहीं बन पाया था।
76. दिन : मध्याह्न : : रात : (1) अन्धेरा (2) निद्रा (3) अर्धरात्रि (4) खाट
77. 16 17 15 18 14 19 ....। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।
78. (1) नीचे (2) यहाँ (3) ऊपर (4) आगे (5) वहाँ—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।
79. 'क्रूर' का उल्टा है—(1) सज्जन (2) दयालु (3) भला (4) कठोर
80. चार विद्यार्थियों की तौल करने पर यह पता लगा कि सुरेश से हरीश हल्का है। सतीश रमेश से अधिक भारी है, परन्तु वह हरीश की अपेक्षा हल्का है। तो बताओ कि सबसे कम तौल वाला कौन है ?
(1) हरीश (2) सतीश (3) रमेश (4) सुरेश

[प्रश्न 81 के लिए पन्ना उलट कर देखिये पृष्ठ 5 (पाँचवाँ)। समय कम है शीघ्रता से करिये।]

5 (पाँचवाँ)

81. 7 8 11 16 23 32 ....। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

82. चन्द्रमा : पृथ्वी : : पृथ्वी : (1) सागर (2) मंगल (3) सूर्य (4) मछलियाँ

83. 'गरल' का अर्थ है—(1) बुरा (2) विष (3) कड़ुआ (4) सरल

84. स्कूलों में गर्मियों की छुट्टियाँ इसलिए दी जाती हैं कि—(1) अध्यापकों को विश्राम मिल सके। (2) स्कूलों में मरम्मत आदि की जा सके। (3) बच्चे गर्मी के दिनों में स्कूल के कमरों में बन्द न रहें।

85. मकड़ी : मक्खी : : बिल्ली : (1) कुत्ता (2) पिल्ला (3) चूहा (4) दूध

86. 3 5 10 12 24 26 ....। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

87. (1) पैतृक (2) कमाई (3) लेना (4) देना (5) माँगना— इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

88. 'ऊषा' का उल्टा है—(1) सन्ध्या (2) रात (3) मध्याह्न (4) तारे

89. मधु : दूध : : भ्रमर : (1) पुष्प (2) तितली (3) गाय (4) बछड़ा

90. (1) तुलसी (2) सूर (3) अशोक (4) गाँधी (5) तिलक—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

91. मकान : ईंट : : फौज : (1) सिपाही (2) पत्थर (3) हथियार (4) युद्ध

92. (1) रखना (2) देना (3) खरचना (4) खोना (5) बिगाड़ना—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से कुछ मेल नहीं है।

93. चार लड़के एक पंक्ति में बैठे हैं। महेश की दाहिनी ओर कैलाश बैठा है। अभय की बाईं ओर रमण बैठा है। यदि महेश अभय के दाहिने हो तो पंक्ति के बायें सिरे पर कौन होगा?
(1) महेश (2) कैलाश (3) अभय (4) रमण

94. 7 4 12 9 27 21 ....। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

95. 'ग्लानि' का अर्थ है—(1) दुःख (2) क्रोध (3) पश्चात्ताप (4) लज्जा

96. कलाकार : सौन्दर्य : : कृषक : (1) कला (2) हल (3) उपयोगिता (4) गायक

97. 'आराध्य' का अर्थ है—(1) असाध्य (2) प्रेम (3) उपास्य (4) उपहास्य

98. (1) क्रोध (2) घृणा (3) दया (4) हुलास (5) युक्ति—इन पाँच शब्दों में से किसका बाकी चारों से मेल नहीं है।

99. 1 2 4 7 11 ....। इन संख्याओं के क्रम के अनुसार आगे की एक संख्या लाईन पर लिखो।

100. 'क, ख, ग, घ, कोई चार रेखायें हैं। क रेखा घ से छोटी है। ग रेखा ख से दुगुनी है। यदि ग, क की दो-तिहाई हो और घ से छोटी हो। तो सबसे बड़ी रेखा कौन होगी? (1) क (2) ख (3) ग (4) घ।

[यदि समय हो तो उत्तरों को दोहराइये]

APPENDIX 8

ACADEMIC ACHIEVEMENT OF STUDENTS

MARKS OBTAINED BY STUDENTS IN RESPECTIVE TEACHERS' SUBJECTS

School B-1

Sl. No.	Teachers' Serial Numbers					Out of 500, marks obtained
	1	2	3	4	5	
1	47	45	62	50	58	262
2	49	33	39	40	44	200*
3	42	39	48	33	48	199*
4	39	22	41	33	51	170
5	42	33	36	33	54	184*
6	37	38	37	33	38	171*
7	42	33	50	33	53	198*
8	45	44	47	33	48	215
9	41	38	45	32	52	208
10	44	34	45	33	52	199*
11	40	30	42	36	43	191
12	60	41	50	53	44	248
13	30	26	28	19	28	131
14	30	26	35	12	34	137
15	33	37	33	35	34	172
16	24	34	28	18	31	135
17	32	15	20	11	32	110
18	34	33	36	33	39	161*
19	37	34	33	33	41	167*
20	32	32	43	32	37	176
21	19	25	24	19	36	123
22	39	33	38	38	48	189*
23	42	40	46	39	46	213
24	53	33	30	33	35	170*
25	48	47	33	32	51	211
26	33	47	34	34	39	180*
27	44	36	89	40	52	221
28	71	64	71	82	76	364

contd...

Sl. No.	Teachers' Serial Numbers					Out of 500, marks obtained
	1	2	3	4	5	
29	29	29	36	25	31	150
30	33	21	30	23	29	136
31	39	31	45	41	40	196
32	48	34	49	47	50	228
33	15	17	30	24	25	111
34	39	33	37	33	41	172*
35	26	37	33	16	32	144
36	20	11	27	26	31	115
37	16	12	21	12	15	76
38	23	14	28	20	25	110
39	22	28	40	25	37	152
40	29	18	30	40	39	156
41	48	35	55	39	47	224
42	47	61	65	51	67	291
43	26	21	28	23	24	122
44	33	33	36	33	46	172*
45	33	33	43	33	46	180*
46	24	11	19	18	24	96
47	28	37	28	20	31	144
48	22	18	29	13	22	104

Starred marks indicate totals excluding grace marks.

ACADEMIC ACHIEVEMENTS OF STUDENTS

MARKS OBTAINED BY STUDENTS IN RESPECTIVE TEACHERS' SUBJECTS

School B-2

Sl. No.	Teachers' Serial Numbers					Out of 500 marks, obtained
	1	2	3	4	5	
1	56	52	50	50	57	265
2	64	53	52	48	47	264
3	74	58	53	51	53	289
4	46	49	46	37	49	227
5	56	49	59	51	51	266
6	76	58	58	58	63	313
7	72	54	53	58	57	294
8	63	56	50	52	56	277
9	48	36	39	47	48	218
10	48	37	40	51	52	228
11	71	52	68	63	53	307
12	36	35	43	43	48	205
13	-	-	-	-	-	-
14	63	54	53	51	53	274
15	48	42	48	54	60	252
16	36	42	48	45	43	214
17	81	52	62	54	51	300
18	45	40	42	52	52	231
19	51	49	47	45	51	243
20	43	40	39	35	50	207
21	54	33	38	47	52	224
22	41	35	50	41	53	220
23	73	63	60	57	57	310
24	65	66	55	57	57	300
25	72	66	56	62	55	311
26	58	51	48	56	52	285
27	60	51	43	53	51	258
28	33	33	33	42	39	180

ACADEMIC ACHIEVEMENT OF STUDENTS

MARKS OBTAINED BY STUDENTS IN RESPECTIVE TEACHERS' SUBJECTS

School G-1

Sl. No.	Teachers' Serial Numbers					Out of 500 marks, obtained
	1	2	3	4	5	
1	21	23	30	9	39	122
2	40	35	33	33	43	184
3	39	36	36	38	45	194
4	35	32	27	37	40	171
5	26	35	36	35	42	174
6	33	38	51	43	47	212
7	33	47	65	48	52	245
8	33	38	46	34	44	195
9	29	44	27	49	48	197
10	21	34	18	33	38	144
11	54	55	66	52	50	277
12	21	35	25	25	37	143
13	29	26	22	25	32	134
14	25	27	33	32	35	152
15	39	29	24	33	42	167
16	30	35	52	30	41	188
17	27	33	45	30	44	179
18	54	47	63	49	52	265
19	21	28	24	17	31	121
20	40	41	52	49	48	230
21	33	35	19	38	40	165
22	30	32	15	24	33	134
23	20	25	25	18	35	123
24	37	29	18	54	38	176
25	38	41	51	39	55	224

ACADEMIC ACHIEVEMENT OF STUDENTS

MARKS OBTAINED BY STUDENTS IN RESPECTIVE TEACHERS' SUBJECTS

School G-2

Sl. No.	Teachers' Serial Number					Out of 500 marks, obtained
	1	2	3	4	5	
1	40	40	36	29	37	182
2	39	33	44	15	41	172
3	45	33	30	37	37	182
4	36	29	27	40	29	161
5	68	48	50	59	55	280
6	51	36	43	14	27	171
7	-	-	-	-	-	-
8	46	44	44	28	47	209
9	54	50	45	53	58	260
10	46	40	42	59	47	232
11	33	35	35	25	33	161
12	37	44	42	39	41	203
13	45	45	42	47	45	224
14	34	44	45	32	33	188
15	46	35	34	42	42	199
16	46	42	46	34	43	211
17	62	62	63	74	75	336
18	36	38	40	46	40	200
19	65	55	62	73	63	318
20	41	44	40	16	43	184
21	44	38	41	35	41	199
22	41	28	35	49	42	195
23	54	51	55	84	49	293
24	37	26	35	25	39	162
25	47	45	46	45	45	228
26	42	33	42	33	40	190
27	50	38	41	53	47	229

APPENDIX 9

(Sociometric Test for Teacher-Pupil Relationship)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the teacher: (Mr./Mrs./Miss) ____________________

School ____

____

Dear Sir/Madam,

In our teaching profession we come intocontact with so many students. There are students whom we like while some others whom we dislike. Again, there are students towards whom we feel quite indifferent. There is nothing very particular about all this, but this is simply the way our associations are developed with the people with whom we come into contact with.

You are teaching so many classes this year including Class X. A list of students of this class is given on page 2. Following are given the three activities for which you are requested to make your own choices. You may choose the same student for different activities and even if you so like, you may not name any student for any one of the activities given on page 3.

Rest assured, your personal choice will not be disclosed to any one and will be kept strictly confidential. It will not be utilized for any other purpose other than this research work. Please be very free and frank and respond without any reservation and hesitation. For this I shall be very grateful to you.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ____________

Note: The list of students is given on page 2.

LIST OF STUDENTS OF CLASS X OF .... HIGHER SECONDARY SCHOOL, DELHI

Sl. No.	Name of the student	Sl. No.	Name of the student
1.		31.	
2.		32.	
3.		33.	
4.		34.	
5.		35.	
6.		36.	
7.		37.	
8.		38.	
9.		39.	
10.		40.	
11.		41.	
12.		42.	
13.		43.	
14.		44.	
15.		45.	
16.		46.	
17.		47.	
18.		Serial Number of last student	
19.			
20.			
21.			
22.			
23.			
24.			
25.			
26.			
27.			
28.			
29.			
30.			

1. Suppose you are to appoint THREE MONITORS in the class. Please name in order of preference those upon whom your choice would fall.

   First preference ____________________

   Second preference ____________________

   Third preference ____________________

2. Suppose there is a programme to visit STUDENTS' HOME. Please name the students you would like very much to visit:

   First preference____________________

   Second preference ____________________

   Third preference ____________________

3. If there is an Educational Tour and all others things are possible, please name three students whom you would very much like to accompany you.

   First preference ____________________

   Second preference ____________________

   Third preference ____________________

4. In your class in the selection of monitors, please name three students whom you think you would least like them to appoint monitors.

   First dislike ____________________

   Second dislike ____________________

   Third dislike ____________________

5. Yes, if you make a programme to visit each and every students' home, other things being equal, please name three students you will dislike to visit.

   First dislike ____________________

   Second dislike ____________________

   Third dislike ____________________

6. In your class, please name three students whom you would least like to accompany you on an Educational Tour.

   First dislike ____________________

   Sedond dislike ____________________

   Third dislike ____________________

APPENDIX 10

(Sociometric Test for Pupil-Teacher Relationship)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the student: ______________________Class ____________

School ____

____

Dear student,

In your school there are a number of teachers, Perhaps it might have not been possible for you to come into contact with each of them. You might have been taught by only a few of them in your various classes while studying in this school. You might have come int contact with many teachers in the course of your activities like games, dramas, outings and debates etc. You might be having a soft corner in your heart for one teacher while not even thinking well for the other. You might have liked very much someone and possibly you might have taken some teachers as ordinar teachers, without either liking or disliking them. Be sure, this is not only the working of your mind but this is the way we all human beings think of the people we come into contact with.

You know, now you are a student of Xth class. You are being taught different subjects by the following teachers:

1.
2.
3.
4.
5.

Out of the teachers whose names are given above, please choose teachers for the following activities. You can choose the same teacher for more than one activity and if you so like, you may not name any one teacher for any one of the activities given on page 2.

Rest assured, your personal choice will be kept strictly confidential and it will not be made known to any one or utilized for any other purpose than this research work. Please be very frank and respond without any reservation and hesitation. I shall be very grateful to you for this.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ____________

1. If all things were possible and you could have your class-teacher any one you liked (out of the list of the teachers given), whom would you choose to be your class-teacher?

   Name Please ____________________

2. If you are given a free choice, out of the list of teachers given above, to choose your House-master, whom would you choose to be your House-master?

   Name Please ____________________

3. Suppose you have some personal problem regarding finance or studies or friends or home or relating to physique. You may say it to be your secret matter. With whom you would like to discuss your personal problem out of the teachers whose names are given above?

   Name Please ____________________

4. Out of the list of the teachers given above, any one teacher can be made your class-teacher by the Principal, but if the choice is left to you, whom would you not like to be your class-teacher?

   Name Please ____________________

5. If you have your say in the matter, please name any one teacher out of the names of teachers given above, whom you would not like to be your House-Master.

   Name Please ____________________

6. Inspite of the fact that you may want to discuss an urgent personal problem with any one of the teachers who teach you this year, please name the teacher with whom you would least like to disclose your personal secret?

   Name Please ____________________

APPENDIX 11

(Sociometric Test for Teacher-Teacher Relationship)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the teacher:(Mr/Mrs./Miss) ____________________

School: ____

Dear Sir/Madam,

In our day-to-day social life we come across so many colleagues working in our profession. We like some one, dislike the other while we do not care for the rest. There is nothing particular about it, but it is just the way we live our lives.

You are teaching in this school various classes with various colleagues. You have your own close and distant associations with them. Again, there may be colleagues for whom you do not care. A list of the teachers teaching Class X is given below. You are also teaching this class one of the subjects.

List of the teachers teaching Class X

1.
2.
3.
4.
5.

There are three activities given on page 2. Please choose any of your colleagues (out of the list given above) with whom you would like to do that activity. Please see, that you may or may not choose the same name for all activities. You may or may not choose any name for any of the activities given on page 2. All this depends upon your own state of mind.

Rest assured, your personal choice will be kept strictly confidential and it will not be made known to any one or utilized for any purpose other than this research work. Please be very free and frank and respond without any reservation and hesitation. I shall be very grateful to you.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated : ____________

1. Suppose the Principal assigns you a certain task and leaves it up to you to choose one more teacher(out of the list given on page 1) to complete this task, with whom you would like most to work on this task?

   Name please ______________________

2. In this complex life, we have too many personal problems say relating to finance, family or physique etc. Discussion of personal problems with our friends gives us relief. Now suppose you have some personal problem and you want to discuss it with one of your colleagues enlisted on page 1,with whom would you like the most to discuss.

   Name please ______________________

3. If all things were possible and you could enjoy your evening of recreation with any of the teachers whose names are given on page 1,with whom you would enjoy the most?

   Name please ______________________

4. If you are given a free hand to choose any one of the teachers, whose names are given on page 1, for a certain task assigned to you by the Principal, with whom you would like the least to work on the task?

   Name please ______________________

5. Think of a situation, when you want to discuss any of your personal problems with any of teachers, enlisted on page 1 with whom you would not like to discuss?

   Name please ______________________

6. Suppose there is no difficulty in making it all convenient to enjoy an evening of recreation with any of your colleagues, entlisted on page 1,with whom you would like the least to make your choice.

   Name please ______________________

APPENDIX 12

(Sociometric Test for Student-Student Relationship)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the student:______________________________

Class: _________________School ______________________________

Dear student,

In your class, you have _____ classmates. You may like very much a few of them or merely like some of them. Again a few of them may be disliked very much by you or there may be others whom you may simply dislike. It is quite possible that you may not care for so many of your classmates without liking or disliking them.

Some of the activities are given on page 3. You are requested to make your choices among your classmates to do that activity. You may choose students with whom you would like to do or dislike to do that activity. Please see that you are free to choose the same name for more than one activitiy or not to name any classmate for any of the activity given above.

Rest assured, your personal choice will not be made known to any one and it will not be used for any other purpose other than this research work. Please be very frank and respond without any reservation or hesitation. I shall be very thankful to you.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: _______________

Note: The list of students of your class is given on page 2.

LIST OF STUDENTS OF CLASS X OF GOVERNMENT GIRLS
HIGHER SECONDARY SCHOOL DELHI

Sl. No.	Name of the student	Sl. No.	Name of the student
1.		31.	
2.		32.	
3.		33.	
4.		34.	
5.		35.	
6.		36.	
7.		37.	
8.		38.	
9.		39.	
10.		40.	
11.		41.	
12.		42.	
13.		43.	
14.		44.	
15.		45.	
16.		46.	
17.		47.	
18.		48.	
19.		Serial Number of last student.	
20.			
21.			
22.			
23.			
24.			
25.			
26.			
27.			
28.			
29.			
30.			

1. If you are allowed to sit in the class with any one of your classmates of your own choice, please name them in order of your preference.

   First preference ____________________

   Second preference ____________________

   Third preference ____________________

2. Suppose you have to do some work with any of your classmates and every one knows equally well the work. Please name them in order of preference with whom you would like to work?

   First preference ____________________

   Second preference ____________________

   Third preference ____________________

3. If there is a game which every one of your classmates know equally well to play with you, please name your classmates with whom you would like to play, in order of preference.

   First preference ____________________

   Second preference ____________________

   Third preference ____________________

4. If you have your own choice to sit in the class with any one of your classmates, please name the students with whom you would dislike to sit.

   First dislike ____________________

   Second dislike ____________________

   Third dislike ____________________

5. In your selection for a partner for any work, among your class-fellows, please name the students whom you would dislike to select as your partner.

   First dislike ____________________

   Second dislike ____________________

   Third dislike ____________________

6. Even if every one of your classmates is quite fit to play any game you like, please name the students with whom you would like the least to play.

   First dislike ____________________

   Second dislike ____________________

   Third dislike ____________________

APPENDIX 13

(Rating Scale of Characteristics of Teachers for Students)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name ______________________ Class ______________

School ______________________

Dear student,

In connection with a Research Work in Education, we are interested to know the various characteristics of teachers as seen by students in them. On the subject, your cooperation is solicted.

Yes, in the attached forms various characteristics of teachers have been explained in five categories. Teachers' names have been written along with these categories for each characteristic. Please tick (/) mark against each teacher's name under only one of the categories for each characteristic and leave the rest of the four categories blank against each teacher's name.

Rest assured your assessment will be kept strictly confidential and will not be shown to anyone of made use of any other purpose than this Research Work. Please be very free and frank in your ratings.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated : ______________

1. HOW MUCH INTERESTING DO YOU FIND THE METHOD OF TEACHING OF EACH ONE OF YOUR TEACHERS?

Sl. No.	Name of the Teacher	Very Interesting	Interesting	Somewhat Interesting	No Interesting	Dull
1						
2						
3						
4						
5						

Note: The Rating Scale runs into such 10 pages. One wage was devoted to one characteristic. Following are reproduced only the titles of each page.

2. IF YOU WERE TO DESCRIBE THE BEHAVIOUR OF EACH ONE OF THESE TEACHERS, HOW WOULD YOU DESCRIBE IT?

Sl. No.	Name of the Teacher	Very Loving	Loving	Ordinary Behaviour	Not Loving	Hates

3. WHAT DO YOU THINK ABOUT THE IMPARTIALITY OF TEACHERS?

Sl. No.	Name of the Teacher	Quite Impartial	Impartial	Nearly Impartial	Partial	Very Partial

4. HOW MUCH DO YOU UNDERSTAND WHAT YOUR TEACHERS TEACH YOU IN THE CLASS?

Sl. No.	Name of the Teacher	Understand every thing	Mostly understand	Understand partially	Difficult to understand	Understand nothing

5. HOW DOES THE PERSONALITY OF EACH ONE OF YOUR TEACHERS LOOK TO YOU?

Sl. No.	Name of the teacher	Very Good Personality	Good Personality	Tolerable Personality	Not a good Personality	Poor Personality

6. HOW MUCH ARE YOUR TEACHERS PARTICULAR IN TAKING THEIR PERIODS IN YOUR CLASS?

Sl. No.	Name of the teacher	Very Particular	Particular	Sometimes takes periods	Avoids taking periods	Misses periods

7. IN YOUR VIEWS HOW DOES EACH ONE OF YOUR TEACHERS USE THE TIME IN YOUR CLASS?

Sl. No.	Name of the teacher	Makes best use of every minute	Makes good use of time	Careless towards time	Most of the time talks of useless things	Wastes our time always

8. HOW MUCH EACH ONE OF YOUR TEACHERS PUNISH?

Sl. No.	Name of the teacher	Never Punishes	Does not Punish	Rarely Punishes	Punishes	Punishes very much

9. HOW LENIENT DO YOU FIND EACH ONE OF YOUR TEACHERS?

Sl. No.	Name of the teacher	Very lenient	Lenient	A little lenient	Strict	Very strict

10. HOW MUCH DO YOUR TEACHERS TELL YOU GOOD THINGS?

Sl. No.	Name of the teacher	Tells many good things	Tells good things	Tells some good things	Tells bad things	Tells very bad things

APPENDIX 14

(Rating Scale of Characteristics of Students for Teachers)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the Teacher: ______________________________

School: ____

Dear Sir,

In connection with a Research Work in Education, we are interested to know the characteristics of students as seen by teachers in them. On the subject your co-operation is solicited.

Yes, you are given ten forms with the names of students of Class X, Section 'A'. Each of the forms pertains to one characteristic of the students. The characteristics have been divided into five categories duly explained. Please tick (/) mark for each student against his/her name under only one of the given five categories applicable to him/her and leave the rest of four categories blank in each case.

Please be very free and frank in your ratings and rest assured your ratings will be kept strictly confidential and will not be made use for any other purpose than this Research Work.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ______________

1. IN YOUR VIEW HOW DOES EACH ONE OF THE FOLLOWING STUDENTS WORK?

Sl. No.	Name of the student	Works very hard	Works hard	Usually works	Rarely works	Shirks work
1.						
2.						
3.						
4						
Serial No. of last student						

Note: The Rating Scale runs into such 10 pages, one page for one characteristic. In the next page we reproduce only the title of each page to avoid duplication of the names.

2. TO WHAT EXTENT DO YOU FIND EACH ONE OF THESE STUDENTS OBEDIENT?

Sl. No.	Name of the student	Very obedient	Obedient	Sometimes obedient	Disobedient	Very disobedient

3. IF YOU WERE TO DESCRIBE THE BEHAVIOURS OF EVERY ONE OF THESE STUDENTS, HOW WOULD YOU DESCRIBE IT?

Sl. No.	Name of the student	Very well behaved	Well behaved	Average	Not well behaved	Rude

4. HOW MUCH EACH ONE OF THE FOLLOWING STUDENTS IS FOUND RESPECTFUL BY YOU?

Sl. No.	Name of the student	Very respectful	Respectful	Tolerable	Disrespectful	Very disrespectful

5. HOW MUCH DO YOU FIND EACH ONE OF THESE STUDENTS INTERESTED IN STUDIES?

Sl. No.	Name of the student	Very interested	Interested	Somewhat interested	Disinterested	Quite disinterested

6. HOW FAR DO YOU SEE EACH ONE OF THESE STUDENTS DISCIPLINED?

Sl. No.	Name of the student	Very disci-plined	Disci-plined	To some extent disci-plined	Indis-ciplined	Most in-discipl-ined

7. TO WHAT DEGREE EACH ONE OF THESE STUDENTS IS FOUND REGULAR BY YOU?

Sl. No.	Name of the student	Very regular	Regular	Average	Ir-regular	Most irregular

8. HOW MUCH DOES EACH ONE OF THE FOLLOWING STUDENTS REMAIN NEAT AND CLEAN?

Sl. No.	Name of the student	Very neat & clean	Neat and clean	To some extent neat & clean	Dirty	Very dirty

9. WHAT WOULD YOU SAY AS TO THE HABITS OF EACH ONE OF THESE STUDENTS?

Sl. No.	Name of the student	Very good habits	Good habits	Somewhat good habits	Bad habits	Very bad habits

10. HOW MUCH EACH ONE OF THE FOLLOWING STUDENTS IS FOUND ACTIVE BY YOU?

Sl. No.	Name of the student	Very active	Active	Not always active	Inactive	Lazy

APPENDIX 15

(Check-list for teachers)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the teacher: ______________________________

School ______________________________

____

Dear Sir/Madam,

I have the honour to invite your attention to the fact that recently we had invited your opinion regarding students and you had very kindly written a few lines on the subject. The opinions of about 100 teachers have been collected. This has fetched us a good amount of general information.

In the present check-list, statements on the above subject have been illustrated. Against each statement some blank space is left. You are requested to name concerned students against each statement. This will give us specific information about the number of students falling in each statement.

Rest assured, your information will be kept strictly confidential and will not be disclosed to anyone. It will not be utilized for any other purpose than this Research Work. Please be very free and frank and respond without any reservation and hesitation. For this I shall be very grateful to you.

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ______________

N.B. - For your ready reference and convenience list of students has been given on each page in front of statements.

(In appendix here we do not give the names)

Sl. No.	Statements	Names of students
1	Please name the students, who are in the habit of running away from the school.	
2	Are there some students who are helpful to their classfellows in studies? If yes, please give their names.	
3	Let us know the names of students who are quarrelsome with their classmates.	
4	Please give names of students who do not give a good response to your day-to-day questions.	
5	Are there any students who tamper with the entries in their Progress Reports? If yes, give their names.	
6	These days, students are found crazy about fashions. You may find such students in your class, Please give their names.	
7	Some students are in the habit of using unfair means in the examination. Please name them as known to you.	
8	Some students criticize the teachers unnecessarily. Please give their names.	
9	Please name the students who take an active part in co-curricular activities.	
10	Please name the students who copy home work from others' notebooks.	

Contd...

Sl. No.	Statements	Names of students
11	Please name the students who avoid taking part in co-curricular activities.	
12	Write names of students who are in the habit of showing themselves off.	
13	Some students are found intelligent as well as industrious. Please name such students from this class as observed by you.	
14	Some students are not very intelligent but they are laborious. Please name such like students.	
15	Some students are intelligent but shirk work. Please name such students.	
16	Usually there are some students who are slow learners or dull. Please give their names.	
17	Generally some students are found quite irresponsible. Please mention their names.	
18	Please name such students as are careless in studies in this class.	
19	Please give names of students who do not respect the rules and regulations of the school.	
20	Please name the students who create disturbance in the class while the teacher is teaching.	

Contd...

Sl. No.	Statements	Names of students
21	Please point out the students who are inattentive in the class.	
22	Please name the students who pay no heed to your suggestions.	
23	Please name 'talkative' students.	
24	Some students are in the habit of asking irrelevant questions in the class. Please name such students.	
25	Some students do ask intelligent questions in the class. Please mention them.	
26	Please name the students who do not submit their home task in time.	
27	Please give names of the mischiev-ous students as seen by you in this class.	
28	Name the students who remain mostly absent from the school.	
29	Please name the students who neither study nor let others study.	
30	Please name the students who study themselves but do not let others study.	

Contd....

Sl. No.	Statements	Names of students
31	Some students are in the habit of making lame excuses in defence of their faults. Please give their names.	
32	Some students are exceptionally well-mannered. Please mention their names.	
33	Some students are conspicuously ill-mannered. Please name such students.	
34	Please name the students who are after the teachers to win their favour.	
35	You may find some students who read cheap or undesirable literature. Please name them.	
36	Please name the students who do not get their difficulties solved in the class.	
37	Please name the students who do not keep their notebooks neat and clean.	
38	Please name the students who do not like bringing books or note-books to the class.	
39	There are ring-leaders in the classes these days. Please name such leaders from this class.	
40	Please name the students, who simply cram the lesson and do not try to understand it.	

Contd....

Sl. No.	Statements	Name of students
41	Please name the students who indulge in anti-social habits such as stealing.	
42	Please name the students who do not confess their faults.	
43	Please name the students who bring their personal problems to you.	
44	Please name cheerful students.	
45	Please name gloomy students from this class.	
46	Please name students who tell lies.	
47	Please name students who take initiative in doing good things such as social service.	
48	Please name the students who argue with the teacher unnecessarily.	
49	Please name the students who are quite reliable.	
50	Please name humble students from this class.	

Central Institute of Education Delhi

केन्द्रिय शिक्षा संस्थान

३३, छात्र मार्ग, दिल्ली-७

विद्यार्थी का नाम ____________________

कक्षा ____________________

स्कूल ____________________

प्रिय विद्यार्थी,

आपको स्मरण होगा कि अभी कुछ दिन पूर्व ही आप ने अध्यापकों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए थे। इस प्रकार के विचार हमने दिल्ली के भिन्न २ स्कूलों के लगभग ४०० छात्रों से एकत्रित किए हैं। निःसन्देह इन प्राप्त छात्रों के विचारों से हमें इस विषय पर महत्त्व पूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है।

प्रस्तुत पुस्तिका में आप द्वारा दिए गए विचार हमने तालिकाओं में दिए हैं। प्रत्येक तालिका के सामने पांच रिक्त स्थान हैं। प्रत्येक रिक्त स्थान के ऊपर एक २ अध्यापक का नाम है। आप तालिकाओं को पूरे २ ध्यान से अच्छी तरह पढ़िए। प्रत्येक तालिका पढ़ने एवं समझने के पश्चात आप उन अध्यापकों के रिक्त स्थानों पर टिक (✓) का निशान लगाईये जिन पर उस तालिका का विचार लागू होता है। इससे हमें यह पता चलेगा कि आप द्वारा व्यक्त विचार कितने अध्यापकों पर लागू होते हैं।

आपको पूरा २ विश्वास दिलवाया जाता है कि आप द्वारा दी गई जानकारी पूर्णतयः गुप्त रखी जायेगी। इसका प्रयोग केवल मात्र इस शोध कार्य के लिए ही किया जाएगा। आप कृपया निस्संकोच एवं निर्भय मन से सच्ची और सही जानकारी देवें।

धन्यवाद सहित,

भवदीय

सत्यपाल आनन्द

रिसर्च स्कालर

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली

तिथि ________, दिसम्बर १९६९

अध्यापकों के नाम

क्र०	तालिकायें
१	यह हमें भाई-बहिनों एवं बेटे बेटियों की तरह समझते हैं।
२	यह सदा हमारी भलाई का ही सोचते हैं।
३	यह घर का काम बहुत अधिक देते हैं।
४	यह अपना कार्य बहुत अच्छी तरह निभाते हैं।
५	यह विद्यार्थियों के सामने अपनी गलती मान लेते हैं।
६	यह पढ़ाए हुए पाठ में से हमारी कठिनाईयां दूर कर देते हैं।
७	इनका स्वभाव चिड़चिड़ा है।
८	यह पढ़ाया जाने वाला पाठ तैयार करके आते हैं।
९	यह थोड़ा बहुत पढ़ा देते हैं, और कहते हैं, बाकी स्वयं पढ़ लो।
१०	यह समय २ पर हमारा उत्साह बढ़ाते रहते हैं।
११	यह पिछले दिन का पढ़ाया हुआ पाठ अगले दिन सुनते हैं।
१२	यह अपना पीरियड छोड़कर गप्पें लगाते हैं।
१३	यह अपना कोर्स भी समय पर पूरा नहीं करवा पाते हैं।
१४	यह स्कूल से बहुत छुट्टियां लेते हैं।
१५	यह जो बात हमें करने को कहते हैं, स्वयं भी उस पर चलते हैं।

कृपया पन्ना पलटिए

अध्यापकों के नाम

क्र० नालिकायें

१६ यह बात २ पर प्रिन्सीपल साहिब से हमारी शिकायत कर देने है।

१७ यह अपने विषय के अच्छे ज्ञाता है।

१८ यह क्लास के सामने ही हमारी बेज़ती कर देते है।

१९ यह पढाई में कमजोर छात्रों के लिये एक्स्ट्रा टाईम भी देते है।

२० यह सुस्त है।

२१ इनकी बोल चाल का ढंग बहुत अच्छा है।

२२ यह नियमित रूप से घर का काम देते है।

२३ यह हमें शिक्षाप्रद बातें बताते है।

२४ यह हमारी रुचि का ध्यान रखते है, उसी के अनुसार काम करवाते है।

२५ यह जो भी पढाते है, समझ में आ जाता है।

२६ यह ठीक समय पर स्कूल आ जाते है।

२७ यह अपने से अच्छा किसी को समझते ही नहीं।

२८ यह पीरियड़ में पढाते कम और इधर उधर की बातें अधिक करते है।

२९ इनके दिल में हमारे लिये बड़ी सहानुभूति है।

३० यह सभी छात्रों के साथ एक जैसा व्यवहार करते है।

कृपया पन्ना पलटिए

अध्यापकों के नाम

क्र०   तालिकायें

३१ यह बिना कसूर दंड नहीं देते।

३२ यह हमें नालायक समझते हैं ।

३३ यह हमारे बीच घुल मिल जाते हैं।

३४ यदि हमें समझ न आये तो यह हमारे पुनः पूछने पर समझा देते हैं।

३५ यह ट्यूशन करना अच्छा नहीं समझते।

३६ यह हंस मुख हैं।

३७ यह छोटी २ सी बात पर गुस्से हो जाते हैं।

३८ इनसे अपराधी तो पकड़ा नहीं जाता, निरपराधी को ही दंड दे देते हैं।

३९ यह छोटी २ सी बात पर माता-पिता को स्कूल में बुलवा लेते हैं।

४० यह परिश्रमी अध्यापक हैं।

४१ यह हमारी उन्नति की सदा चिन्ता करते हैं।

४२ यह हमें ट्यूशन रखने को कहते हैं।

४३ यह छात्रों में दिलचस्पी लेते हैं।

४४ यह घर से दिया हुआ काम बहुत सा हो जाने पर एक साथ ही देखते हैं।

४५ यह हमारी गलती पर प्यार से समझाते हैं, फटकारते नहीं।

कृपया पन्ना पलटिए

अध्यापकों के नाम

क्र० तालिकायें

४६ यह हमें बात ही नहीं करने देते, अपनी ही चलाते हैं।

४७ यह हमें नाजायज़ तंग करते है।

४८ यह बेकार का बहुत उपदेश देते हैं।

४९ यह हमें कक्षा में पढाते समय प्रश्न पूछने के लिये उत्साहित करते है।

५० इनसे जब कुछ पूछते है तो कहते है किसी होशियार छात्र से पूछ लो।

५१ यह पढ़ाते २ बार २ क्लास से बाहर जाते है।

५२ यह हमारे साथ बातचीत करना ही पसन्द नहीं करते।

५३ यह हमें अपने निजी कामों के लिये स्कूल से बाहर भेजते हैं।

५४ यह प्रायः गुस्से में रहते है।

५५ यह केवल पुस्तक देख २ कर पढ़ाते है।

५६ यह पढ़ाते २ हमारा मनोरंजन भी करते हैं।

५७ यह नियमित रूप से घर का काम चैक करते हैं।

५८ यह पढाई में लायक और कमज़ोर छात्रों से भेदभाव करते हैं।

५९ यह पीरियड मिस करते हैं।

६० यह कक्षा में प्रायः खाली बैठे रहते हैं।

अध्यापकों के नाम

क्र०　　तालिकायें

६१ इनको छात्रों से कोई प्यार नहीं।

६२ यह क्लास को कन्ट्रोल नहीं कर सकते।

६३ यह क्लास में मानीटर को खड़ा कर अपने ही काम में लग जाते हैं।

६४ यह परीक्षा पत्र देखते समय छात्रों में भेद भाव नहीं करते।

६५ इनके विचार उच्च कोटि के हैं।

६६ यह फैशन में लीन रहते हैं।

६७ यह हमें नाजायज् अपशब्द भी कह देते हैं।

६८ यह सादा जीवन व्यतीत करते हैं।

६९ यह आप तो घर का काम देखते नहीं, छात्रों से दिखलवाते हैं।

७० यह परीक्षा के निकट ही कोर्स खत्म करवाते हैं जिससे कठिनाई होती है।

७१ इनके जीवन से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

७२ यह बेकार ही डांटते रहते हैं।

७३ हमें कुछ समझ न आये, इनसे पूछें तो यह गुस्सा करते हैं।

७४ यह एक आदर्श अध्यापक है।

७५ यह जनरल नौलिज की बातें भी बताते हैं।

कृपया पन्ना पलटिए

अध्यापकों के नाम

क्र० तालिकायें

७६ यह अपना कोई पीरियड खाली नहीं जाने देते।

७७ हम बिना किसी भय इनसे कुछ भी प्रश्न पूछ सकते हैं।

७८ यह बड़ी मेहनत से पढ़ाते हैं।

७९ यह स्वयं स्कूल में लेट आते हैं, हमें कहते हैं समय पर आओ।

८० यह कोर्स के अतिरिक्त कोई बात नहीं बताते।

८१ यह मन में हम से बदले की भावना रखते हैं।

८२ यह बेकसूर में पनिश्मैन्ट देते हैं।

८३ यह निर्धन छात्रों को धन से सहायता करते हैं।

८४ यह दिल से छात्रों के लिये बिल्कुल साफ़ हैं।

८५ यह अमीर और ग़रीब छात्रों में अन्तर रखते हैं।

८६ यह हमारा दिल तोड़ते हैं, कहते हैं, "तुम नहीं पढ़ सकते"।

८७ यह हम सब को अपनों जैसा प्यार करते हैं।

८८ यह हमें छोटी २ सी बात पर क्लास से बाहर निकाल देते हैं।

८९ इन्हें तो अपना कोर्स पूरा करना है, चाहे हमें समझ आये या न आये।

९० इनका पढ़ाने का तरीका हमें अच्छा लगता है।

कृपया पन्ना पलटिए

अध्यापकों के नाम

क्र०	तालिकायें
९१	इनका व्यक्तित्व हमारे लिये प्रभावी है।
९२	इन्हें पढ़ाना ही नहीं आता।
९३	यह हमारी समस्यायें सुनने के लिये सदा तैयार रहते हैं।
९४	यह क्लास में अखबार मैगज़ीन आदि पढ़ते रहते हैं।
९५	यह स्वभाव के अच्छे हैं।
९६	यह शौक और दिलचस्पी से पढ़ाते हैं।
९७	यह अकसर क्लास में बैठ जाते हैं और कहते हैं अपना २ काम करो।
९८	यह हमारे अच्छे काम की प्रशन्सा करते हैं।
९९	इनके सख्त व्यवहार के कारण पीरियड में डर ही लगता रहता है।
१००	यह हमें गलत रास्ते पर चलने से रोकते हैं।

(Confidential)

APPENDIX 16

(Check-list for Students)

(Translated - version)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name of the student ______________________________

Class: ______________School ______________________________

____

Dear student,

You might remember that a few days back, you had given your opinions about teachers. We had collected opinions of nearly 400 students from various schools of Delhi. Certainly, we received an important information on the subject.

In this present check-list, we have expressed these opinions in statements. Against each statement, there are five blank spaces and teacher's name is given on top of each blank. Please read each statement carefully and tick mark (/) for the teacher/s to whom it is applicable. This will let us know about the number of teachers for whom your opinions hold good.

You are assured about the secrecy of the information given by you. It will be used only for Research Work. Please give true information without any fear and hesitation.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph. D. Scholar

Dated: December ,1969.

Sl. No.	Statements	Names of teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	He treats us just like own sons/daughters or brothers/sisters.					
2	He always thinks of our welfare.					
3	He assigns too much home-task to us.					
4	He performs his duties very well.					
5	He readily confesses his mistakes in front of the students.					
6	He removes our difficulties of the lessons taught by him.					
7	He is irritable by nature.					
8	He comes prepared with the lesson to be taught.					
9	He teaches us a little bit and then tells us to learn the remaining part ourselves					
10	He encourages us from time to time.					
11	He checks our knowledge of the lessons taught the previous day.					
12	He leaves the class and engages himself in gossip.					
13	He is not able to complete the courses well in time.					

Contd..

Sl. No.	Statements	Names of teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
14	He takes too many leaves from the school.					
15	He himself acts in the manner in which we wants us to.					
16	He complains against us to the principal very often over very trivial matters					
17	He has a sound knowledge of his subject.					
18	He insults us in the class itself.					
19	He devotes some extra time to weak students.					
20	He is very lazy.					
21	His way of talking is very good.					
22	He assigns home-task regularly.					
23	He teaches us good things.					
24	He is considerate of our interest and works accordingly.					
25	We always understand whatever he teaches.					
26	He is punctual in coming to the class.					

Contd..

Sl. No.	Statements	Names of teachers (1)	(2)	(3)	(4)	(5)
27	He does not consider anybody else as an equal.					
28	In the class, he teaches less and talks of other irrelevant matters more.					
29	He has great sympathy for us in his heart.					
30	He treats all students equally.					
31	He does not punish without any fault.					
32	He considers us good for nothing.					
33	He mixes well with us.					
34	In the class, if we do not understand anything and ask questions, he readily answers them.					
35	He does not like private tuitions.					
36	He is quite pleasant by nature.					
37	He gets angry over petty things.					
38	He fails in finding out the culprits and punishes the innocent.					
39	He sends for the parents to the school over trifles.					

Contd...

Sl. No.	Statements	Names of teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
40	He is a hard working teacher.					
41	He is always concerned with our welfare.					
42	He asks us to engage him as a private tutor.					
43	He takes interest in students.					
44	He checks the home task only when lots of it gets accumulated.					
45	He points out our mistakes sympathetically and does not scold us.					
46	He does not listen to what we have to say and gets things done in the way he likes.					
47	He gives us trouble unnecessarily.					
48	He gives us necessary advice very often.					
49	He encourages us for asking questions while teaching in the class.					
50	When we ask him some questions, he tells us to consult some intelligent student.					
51	He goes out of the class quite frequently during the period for teaching us.					
52	He does not even like to talk to us.					

Contd...

Sl. No.	Statements	Names of teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
53	He sends us away from the school for his personal work.					
54	He is often very angry.					
55	He goes on consulting books while teaching.					
56	He, while teaching, entertains us too.					
57	He checks the home task regularly.					
58	He discriminates between weak and good students.					
59	He quite often does not take his class periods.					
60	He often sits idle in the class.					
61	He does not have any love for children.					
62	He cannot control the class.					
63	He asks the Monitors to take care of the class and than engages himself in his own work.					
64	He does not discriminate among students while examining examination answer-sheets.					
65	He has high ideas.					

Contd..

Sl. No.	Statements	Names of teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
66	He is always after fashions.					
67	He sometimes, uses even undesirable language for us.					
68	He lives a simple life.					
69	He does not check the hometask himself, but gets it checked by the students.					
70	He completes the course only near the examination and this leads to some hardships for us.					
71	We can learn a lot from his life.					
72	He scolds us unnecessarily.					
73	When we do not understand something, and ask him, he gets angry with us.					
74	He is an ideal teacher.					
75	He tells us matters of general knowledge too.					
76	He does not miss any of his class periods.					
77	We can ask him any question without any fear.					
78	He teaches us very earnestly.					

Contd...

Sl. No.	Statements	Names of teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
79	He himself comes late to theschool, but asks us to come in time.					
80	He does not tell us anything different from the course.					
81	He cherishes revenge in his heart.					
82	He gives punishment without any fault of ours.					
83	He helps the poor students financially.					
84	He is very good at heart for students.					
85	He differentiates between the rich and the poor students.					
86	He disheartens us by saying "you cannot learn anything".					
87	He loves us like his own kith and kin.					
88	He turns us out of the class over small things.					
89	He simply wants to finish the course, whether we understand it or not.					
90	We like his method of teaching.					
91	His personality is quite effective for us.					

Contd..

Sl. No.	Statements	Names of teachers				
		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
92	He does not know how to teach.					
93	He is always ready to listen to our problems.					
94	He reads newspapers and magazines in the class.					
95	He has a good tempera-ment.					
96	He takes interest in teaching us.					
97	He often sits in the class and ask us to do somework.					
98	He always praises our good work.					
99	We are always frightened in his periods because of his strict behaviour.					
100	He stops us from following wrong paths.					

APPENDIX 17

(Job-Satisfaction Scale for Teachers)

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Name (Mr/Mrs./Miss)________________________________

School ____

____

Dear Sir/Madam,

Some of the statements regarding the PROFESSION OF SCHOOL TEACHING are given below. Please read each statement carefully and give your reaction to it in any one of the five alternative columns given against each statement.

Please tick mark (/) under the first column if you 'Strongly agree' to the statement, second column if you simply 'Agree' and tick mark under third column if you remain 'Uncertain' or 'Undecided'. Similarly, mark under fourth column if you 'Disagree' to the statement and under fifth column if you feel 'Strongly disagree' to the statement.

There is no right or wrong answers to the statements. Please respond to EACH ITEM. Give your honest response without any hesitation, reservation or consultation. Rest assured your response will be kept STRICTLY CONFIDENTIAL .

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph. D. Scholar

Dated: ______________

Sl. No.	Statements	Strongly agree	Agree	Uncer-tain or un-decided	Dis-agree	Strongly Disagree
1	Teaching profession brings mental peace to the teacher.					
2	Teaching even in Government schools is miserable.					
3	Teacher because of the nature of his profession, should adhere to 'simple living and high thinking'.					
4	Teaching in a college is a boon while teaching in a school is a curse.					
5	Teachers can determine the future course of a nation.					
6	Teachers if they want respect in the society because of their being teachers, will have to forgo some financial gains and work with a missionary sprit.					
7	The teaching profession is a very degrading one.					
8	One should dislike being called 'Masterji' in the bazar by anyone.					
9	I aspire for the day when I shall leave teaching in the school.					

Contd...

Sl. No.	Statements	Strongly agree	Agree	Uncertain or undecided	Disagree	Strongly Disagree
10.	Teachers' success lies in the success of their students.					
11.	A teacher should feel proud of introducing himself to anyone as a teacher working in a school.					
12.	Teaching often becomes monotonous after a few years.					
13.	Thank God, I am a teacher.					
14.	Teachers enjoy no appropriate rewards for their work.					
15.	Most pupils are considerate of their teachers.					
16.	One should not advise one's sons and daughters to become teachers.					
17.	Teaching profession is better than other professions in several respects.					
18.	Principals of the schools do not act as friends and guides but become masters of the teachers.					

Sl. No.	Statements	Strongly agree	Agree	Uncer-tain or un-decided	Dis-agree	Strongly dis-agree
19.	Teachers are responsible for knowing home conditions of everyone of their pupils.					
20.	Teaching is a respectable job.					
21.	One in teaching profession is in search of truth.					
22.	A teacher should not be expected to do more work than he is paid for.					
23.	The teaching profession opens field of knowledge for the adopter.					
24.	Teaching is the last refuge of those who are unemployed.					
25.	Teaching can be called an interesting profession.					
26.	One has to remain a school master because of his poor academic career.					
27.	Teachers learn throughout their lives.					
28.	Teachers live a dull life.					

Sl. No.	Statements	Strongly agree	Agree	Uncertain or undecided	Disagree	Strongly disagree
29.	Teaching in schools sucks intelligence as well as initiative.					
30.	Very able people will be wasting time and energy in teaching profession.					

APPENDIX 17A

Satya Paul Anand
M.A., M.Ed.

D.A.V. Higher Secondary School
Sadar Bazar, Delhi Cantt-10

Dated ______________1969

Dear Sir,

As I learn that you were a teacher in some school sometime back, I approach you with a request.

I am a Ph.D. Student and enclosed brief questionnaire is in connection with my research.

I am confident that you would oblige me by giving your free and frank responses to these few questions.

Rest assured, the information supplied by you will be kept strictly confidential.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

N.B.:- A self-addressed envelope is enclosed herewith to facilitate your prompt reply.

QUESTIONNAIRE

(Answer the questions in any language)

S.No ....

Your Age ....

1. What job/occupation/profession did you join just after leaving teaching in the school? ______________________

2. Present occupation ______________________

Designation(if any) ______________________

3. What were you doing before you started teaching in the school? ______________________

4. When did you start teaching in the school? ____________

Classes Taught	Subjects taught	Time period
1. Primary classes	____________	____________
2. Middle classes	____________	____________
3. High/Higher Secondary Classes	____________	____________

5. When did you leave teaching in the school?

6. Since when have you been in the present occupation?

7. In order of priority give reasons for dissatisfaction which led you to leave teaching in the school?

8. In view of the implementation of the improved grades as recommended by KOTHARI Commission, how do you feel teaching in the schools again?

APPENDIX 17B

Satya Paul Anand
M.A., M.Ed.

D.A.V. Higher Secondary School
Sadar Bazar, Delhi Cantt-10

Dated ________________

To,

Dear Sir,

Here are listed some statements which express the satisfaction or dissatisfaction of a school teacher. Kindly encircle SS-(Strong satisfaction) if the statement expresses so in your opinion, encircle S(Satisfaction) if the agreement of a teacher to the statement expresses so in your opinion and so on.

ABREVIATIONS

1. SS - Strong Satisfaction
2. S - Satisfaction
3. N - Normal
4. D - Dissatisfaction
5. SD - Strong dissatisfaction

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Note:- The check-list does not determine your own satisfaction or dissatisfaction in the school/as a teacher.

-1.	Teaching is a noble profession.	SS	S	N	D	SD
-2.	One gets an opportunity of coaching generations through teaching profession.	SS	S	N	D_	SD
2-3.*	Teachers can determine the future course of a nation.	SS	S	N	D	SD
-4.	Teachers are not satisfied with their job.	SS	S	N	D	SD
3-5.*	Teaching is a respectable job.	SS	S	N	D	SD
-6.	Teachers do not enjoy high social status.	SS	S	N	D	SD
-7.	It requires finest personality, honest and sincere nature to be a good teacher.	SS	S	N	D	SD
4-8.**	Every body is fit for teaching job.	SS	S	N	D	SD
-9.	There are administrative powers in the teaching profession.	SS	S	N	D	SD
-10.	The Government should do its best to improve the social status of teachers.	SS	S	N	D	SD
5-11.*	Teaching profession is better than those of other professions in several respects.	SS	S	N	D	SD
6-12.*	Teaching profession provides better chances for better career.	SS	S	N	D	SD
-13.	Pay is satisfactory in teaching profession.	SS	S	N	D	SD
-14.	Teachers have a spiritual job.	SS	S	N	D	SD
-15.	Teachers have more powers than those police inspectors but of love and regard.	SS	S	N	D	SD
-16.	The teaching profession is most sacred on Earth.	SS	S	N	D	SD
7-17.*	The teaching profession opens fields of knowledge for the adopter.	SS	S	N	D	SD
8-18.**	Teachers can not command respect from the society.	SS	S	N	D	SD
-19.	Teaching profession needs hard work.	SS	S	N	D	SD
-20.	Teaching profession needs the spirit of sacrifice on the part of the teacher.	SS	S	N	D	SD
-21	A teacher will remain a teacher throughout his life.	SS	S	N	D	SD
-22	A good teacher should be a source of inspiration to his students.	SS	S	N	D	SD

(contd..)

-23.	Teachers do need thoughtful Planning in their work.	SS	S	N	D	SD
9-24.**	Teaching profession does not need bright people entering it.	SS	S	N	D	SD
-25.	The social status of the teachers should be the same as that of lawyers and doctors.	SS	S	N	D	SD
-26.	There is an opportunity to grow in the teaching profession.	SS	S	N	D	SD
10-27.**	Teaching often becomes monotonous after a few years.	SS	S	N	D	SD
-28.	Teaching is an occupation requiring relatively little skill.	SS	S	N	D	SD
-29.	The teacher plays a vital role in the development of good citizens.	SS	S	N	D	SD
11-30.*	The work of a teacher gives relatively good opportunity for self expression.	SS	S	N	D	SD
12-31.**	Very able people will be wasting time and energy in teaching profession.	SS	S	N	D	SD
13-32.*	Teaching can be called an interesting profession.	SS	S	N	D	SD
-33.	One should not leave teaching even if provided better job.	SS	S	N	D	SD
14-34.**	Teaching even in Government service is miserable.	SS	S	N	D	SD
15-35.**	Teaching is the last refuge to those who are unemployed.	SS	S	N	D	SD
16-36.	One should hate being called a teacher.	SS	S	N	D	SD
17-37.*	One in teaching profession is in search of truth	SS	S	N	D	SD
18-38**	Teachers are poorly paid is why they are not respected in the society.	SS	S	N	D	SD
19-39.*	Teachers can learn throughout their lives.	SS	S	N	D	SD
20-40.*	Teaching profession brings mental peace to the teacher.	SS	S	N	D	SD
-41.	These days teachers are satisfied in their profession.	SS	S	N	D	SD

Contd...

-42.	Teachers can enjoy long holidays and shorter hours of work.	SS	S	N	D	SD
-43.	One should hate teaching much than anything else.	SS	S	N	D	SD
-44.	The teachers are the nation builders.	SS	S	N	D	SD
22-45.**	The teaching profession is very degrading one.	SS	S	N	D	SD
-46.	The teaching is the most idealistic and unselfish and missionary profession.	SS	S	N	D	SD
23-47.*	The teachers can lead the simple life with high thinking.	SS	S	N	D	SD
24-48.**	Teaching in schools is altogether dominated by principals.	SS	S	N	D	SD
25-49.**	Teaching in schools sucks intelligence as well as initiative.	SS	S	N	D	SD
26-50.**	Teaching profession should be exclusively for ladies.	SS	S	N	D	SD
27-51.**	One should not advise ones sons and daughters to become teachers.	SS	S	N	D	SD
28-52.**	There is a financial/satisfaction in the teaching profession only because of tuition work.	SS	S	N	D	SD
29-53.*	Teachers as such cannot claim special respect from the society but by virtue of their own sincerity in their job.	SS	S	N	D	SD
-54.	Students are ready to respect but they respect only respectable teachers.	SS	S	N	D	SD
31-55.*	It is easy for the teacher to make his st respect him by his affectionate behaviour with his students.	SS	S	N	D	SD
75-56.*	Teachers are big failures if they cannot command respect from the students.	SS	S	N	D	SD
-57.	Teachers' only asset is their students.	SS	S	N	D	SD
-58.	Teachers should regard themselves for the students.	SS	S	N	D	SD
33-59.*	Teachers should not help students in studies by charging tuition fees but because of their obligations towards them.	SS	S	N	D	SD

Contd...

34-60.*	Teachers' success lies in the success of their students.	SS	S	N	D	SD
35-61.*	One should feel proud of introducing oneself as a teacher in a school.	SS	S	N	D	SD
62.	Students are like sons and daughters to the teacher.	SS	S	N	D	SD
72-63.*	Teachers' job do not end with the end of school hours but they should feel pleasure whenever students approach them for any sort of help.	SS	S	N	D	SD
36-64.*	Teachers should see to it that their way of living makes the way of living of their students.	SS	S	N	D	SD
-65.	Social discipline on the teacher keeps him a disciplined citizen.	SS	S	N	D	SD
-66.	Teaching in schools is a breathing place for finding out better occupations.	SS	S	N	D	SD
37-67.**	Teaching in a college is a boon while teaching in a school is a curse.	SS	S	N	D	SD
79-68.**	School teaching is made a hell because of undue dominance by the principals.	SS	S	N	D	SD
1-69.*	Thank God, I am a teacher.	SS	S	N	D	SD
39-70.**	I aspire for the day when I shall leave teaching in the school.	SS	S	N	D	SD
41-71.*	Teachers should present themselves as "Model Citizens" in the society.	SS	S	N	D	SD
-72.	Teachers can help their parents to help their children.	SS	S	N	D	SD
42-73.*	Teachers can well eradicate the malice of truancy and delinquency among the students.	SS	S	N	D	SD
43-74.*	Teachers should be careful in their behaviour with their students lest they should offend their self-respect.	SS	S	N	D	SD
67-75.*	Teachers' sympathetic attitude towards their students can well make the students to achieve maximum academic achievement as well as alround development.	SS	S	N	D	SD

Contd....

59-76.*	Teacher because of the nature of their profession should adhere to "Simple living and High thinking".	SS	S	N	D	SD
60-77.*	Teachers if they want respect in the society because they are teachers, will have to forgo some financial gains and work with a missionary spirit.	SS	S	N	D	SD
61-78.*	None else but the people with a missionary spirit should join the teaching profession.	SS	S	N	D	SD
-79.	There is a chance in the teaching profession to hold part-time business to supplement regular pay.	SS	S	N	D	SD
68-80.*	A teacher should always aspire to develop good relations with his students.	SS	S	N	D	SD
-81.	Long summer vacation is a "must" to relieve the teachers from their monotonous nature of work.	SS	S	N	D	SD
-82.	Long summer vacations is a "must" to provide the teacher a time to enhance their knowledge and equip themselves with latest developments in his subject.	SS	S	N	D	SD
49-83.*	Teachers can learn throughout their lives.	SS	S	N	D	SD
66-84.*	A teacher can perform his duties best.	SS	S	N	D	SD
40-85.**	The society is responsible for the miseries of the teachers.	SS	S	N	D	SD
74-86.*	Only in teaching profession one can know the society well.	SS	S	N	D	SD
-87.	Teachers enjoy variety of new faces every year.	SS	S	N	D	SD
-88.	Teachers do not enjoy any freedom in their work.	SS	S	N	D	SD
62-89.**	Principals of the schools do not act as friends, guides but become Masters on the teachers.	SS	S	N	D	SD

Contd...

45-90.*	The teachers learn while they teach.	SS	S	N	D	SD
-91.	Teaching profession is preferable to office work.	SS	S	N	D	SD
63-92.**	Teachers enjoy no appripriate reward for their work.	SS	S	N	D	SD
64-93.**	Teachers' success is not in their hands but on the mercy of the ability of the students.	SS	S	N	D	SD
65-94.**	Teachers enjoy poor status in society inspite of his position as "Maker of the future".	SS	S	N	D	SD
-95.	No future/chances, once a teacher always a teacher.	SS	S	N	D	SD
77-96.**	Dictatorial attitude of the principal who listens to no arguments has annoyed me in my teaching profession.	SS	S	N	D	SD
78-97.**	Teachers enjoy no facilities for future studies.	SS	S	N	D	SD
50-98.**	Lack of understanding, unfair and undue intereference by the management or Department makes the teacher as if he is a slave.	SS	S	N	D	SD
44-99.**	Teachers enjoy a dull life.	SS	S	N	D	SD
56-100.**	Teaching profession in schools makes us forget what we learn in our own academic career.	SS	S	N	D	SD
57-101.**	A teacher should not be expected to sacrifice an evening of recreation in order to visit a child's home.	SS	S	N	D	SD
58-102.**	A teacher should not be expected to burden himself with pupils' problems.	SS	S	N	D	SD
-103 .	A pupil's failure is never a fault of the teacher.	SS	S	N	D	SD
55-104.*	Teaching never gets monotonous.	SS	S	N	D	SD
-105.	Unquestioning obedience in a child is not desirable.	SS	S	N	D	SD

Contd....

No.	Statement					
59-106.	**The first lesson a child needs to learn is to obey the teacher without hesitation.	SS	S	N	D	SD
-107.	Most children are obedient.	SS	S	N	D	SD
70-108.	**The teacher should not be expected to manage a child if the later's parents are unable to do so.	SS	S	N	D	SD
-109.	A teacher should never acknowledge his ignorance of a topic in the presence of his pupils.	SS	S	N	D	SD
51-110*	The majority of students take their responsibility seriously.	SS	S	N	D	SD
-111.	Aggressive children are greatest problem.	SS	S	N	D	SD
53-112.	**Discipline problems are the teachers' greatest worry.	SS	S	N	D	SD
54-113.	**A teacher should not be expected to be sympathetic toward truants.	SS	S	N	D	SD
38-114.*	Most pupils try to make the things easier for the teacher.	SS	S	N	D	SD
52-115.*	Most pupils are considerate of their teachers.	SS	S	N	D	SD
46-116.*	Teachers are responsible for knowing home conditions of every one of their pupils.	SS	S	N	D	SD
71-117.	**A teacher should not be expected to do more work than he is paid for.	SS	S	N	D	SD
48-118.	**One should not expect pupils to enjoy school.	SS	S	N	D	SD
-119.	One should be able to get along with almost any child.	SS	S	N	D	SD
47-120.	**Most pupils misbehaviour is done to annoy the teacher.	SS	S	N	D	SD
-121.	Teachers can be in the wrong as well as pupils.	SS	S	N	D	SD
-122.	Keeping discipline is not the problems that many teachers claim it to be.	SS	S	N	D	SD

Kindly write down similar statements which may express dissatisfaction or satisfaction of a teacher in a school.

Contd...

Following statements were given by the experts.

30-1.** One has to remain a school teacher because of his poor academic career.

73-2.* Most children are faithful.

-3. Dictatorial attitude of the principal, annoys the teacher in school.

-4. Teaching is an occupation requiring relatively little skill.

76-5. A school teacher is likely to remain as a school teacher for the whole of his life.

-6. Teachers are many but inspired teachers are few.

-7. Lack of understanding, unfair and undue interference by the management is the usual lot of a teacher.

38-8.* Peoples seldom create problems for the teacher.

32-9.* Teachers should be all out for their students.

-10. To command genuine respect from students is not every teacher's cup of tea.

21-11.** One should hate being called "Masterji" in the bazar by any one.

Note:-

1. Continuous serial numbers are the serial number of statements for this check-list for experts.
2. Numbers along serial numbers indicate the serial number of these statements selected for the check-list (Appendix 17C) for try-out
3. Single starred statements depict satisfaction whereas double starred statements depict dissatisfaction.

APPENDIX 17C

Satya Paul Anand
M.A., M.Ed.

Central Institute of Education
33-Chhatra Marg, Delhi-7

Dedember 10, 1968

To,

____

____

____

Dear Sir,

Under the guidance of Dr. R.N. Mehrotra, Reader in Education, Central Institute of Education, Delhi, I have taken up a research problem " A STUDY OF TEACHER-PUPIL RELATIONSHIP IN HIGHER SECONDARY SCHOOLS IN DELHI". In this connection I approach you with a request.

The check-list which is being presented to you consists of 80 statements designed to sample opinions about school teaching profession. There are no right or wrong answers. What is wanted is your own individual feeling about statements. Read each statement and decide how you feel about it. Then encircle any one of the five alternatives given against each item:

If you strongly agree, encircle - SA

If you agree, encircle - A

If you undecided or uncertain encircle - U

If you disagree, encircle - D

If you strongly disagree, encircle - SD

Please think in terms of general situations rather than specific ones. PLEASE RESPOND TO EVERY ITEM.

Thanking you,

Yours sincerely,

(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

1.	Thank God, I am a teacher.	SA	A	U	D	SD
2.	Teachers can determine the future course of a nation.	SA	A	U	D	SD
3.	Teaching is a respectable job.	SA	A	U	D	SD
4.	Every body is fit for teaching job.	SA	A	U	D	SD
5.	Teaching profession is better than other professions in several respects.	SA	A	U	D	SD
6.	Teaching profession provides better chances for better career.	SA	A	U	D	SD
7.	The teaching profession opens field of knowledge for the adopter.	SA	A	U	D	SD
8.	Teachers cannot command respect from the society.	SA	A	U	D	SD
9.	Teaching profession does not need bright people entering it.	SA	A	U	D	SD
10.	Teaching often becomes monotonous after a few years.	SA	A	U	D	SD
11.	The work of a teacher gives relatively good opportunity for self expression.	SA	A	U	D	SD
12.	Very able people will be wasting time and energy in teaching profession in schools.	SA	A	U	D	SD
13.	Teaching can be called an interesting profession.	SA	A	U	D	SD
14.	Teaching even in Government service (Schools) is miserable.	SA	A	U	D	SD
15.	Teaching is the last refuge of those who are unemployed.	SA	A	U	D	SD
16.	One should hate being called a teacher.	SA	A	U	D	SD
17.	One in teaching profession is in search of truth.	SA	A	U	D	SD
18.	Teachers are poorly paid and that is why they are not respected in the society.	SA	A	U	D	SD
19.	Teachers can learn throughout their lives.	SA	A	U	D	SD

Contd....

		SA	A	U	D	SD
20.	Teaching profession brings mental peace to the teacher.	SA	A	U	D	SD
21.	One should dislike being called "Masterji" in the bazar by any one.	SA	A	U	D	SD
22.	The teaching profession is a very degrading one.	SA	A	U	D	SD
23.	The teachers can lead the simple living with high thinking.	SA	A	U	D	SD
24.	Teaching in schools is altogether dominated by the principals.	SA	A	U	D	SD
25.	Teaching in schools sucks intelligence as well as initiative.	SA	A	U	D	SD
26.	Teaching profession should be exclusively for ladies.	SA	A	U	D	SD
27.	One should not advise one's sons and daughters to become teachers.	SA	A	U	D	SD
28.	There is financial satisfaction in the teaching profession in schools only because of tuition work.	SA	A	U	D	SD
29.	Teachers as such cannot claim special respect from the society but by virtue of their own sincerity in their job.	SA	A	U	D	SD
30.	To command genuine respect from students is not every teacher's cup of tea.	SA	A	U	D	SD
31.	It is easy for the teacher to make his students respect him by his affectionate behaviour with his students.	SA	A	U	D	SD
32.	Teachers should be all out for their students.	SA	A	U	D	SD
33.	Teachers should not help students in their studies by charging tuition fees but because of their obligations towards them.	SA	A	U	D	SD
34.	Teacher's success lies in the success of his students.	SA	A	U	D	SD
35.	One should feel proud of introducing to any one as a teacher working in a school.	SA	A	U	D	SD

Contd....

36. Teachers should see to it that their way of living makes the way of living of their students. SA A U D SD

37. Teaching in college is boon while teaching in school is a curse. SA A U D SD

38. Pupils seldom create problems for the teachers. SA A U D SD

39. I aspire for the day when I shall leave teaching in the school. SA A U D SD

40. The society is responsible for the miseries of the teachers. SA A U D SD

41. Teachers should present themselves as "Model Citizens" in the society. SA A U D SD

42. Teachers can well eradicate the malice of delinquency among the students simply by love and affection for them. SA A U D SD

43. Teachers should be careful in their behaviour with their students lest they should offend their self respect. SA A U D SD

44. Teachers working in schools live a dull life. SA A U D SD

45. The teachers learn while they teach. SA A U D SD

46. Teachers are responsible for knowing home conditions of every one of their pupils. SA A U D SD

47. Most pupils' misbehaviour is done to annoy the teacher. SA A U D SD

48. One should not expect pupils to enjoy schools. SA A U D SD

49. Teachers learn throughout their lives. SA A U D SD

50. Lack of understanding, unfair and undue interference by the management or Department is the usual lot of the teacher. SA A U D SD

51. The majority of students take their responsibility seriously and are not the headache of the teachers. SA A U D SD

Contd....

52. Most pupils are considerate of their teachers for their due regards. SA A U D SD

53. Discipline problems are the teachers' greatest worry. SA A U D SD

54. A teacher should not be expected to be sympathetic towards truants. SA A U D SD

55. Teaching never gets monotonous. SA A U D SD

56. Students should not be welcome guests teachers' homes. SA A U D SD

57. A teacher should not be expected to sacrifice an evening of recreation in order to visit a child's place. SA A U D SD

58. A teacher should not be expected to burden himself with a pupils' problems. SA A U D SD

59. A teacher because of the nature of his profession should adhere to "Simple living and high thinking". SA A U D SD

60. Teachers if they want respect in the society because of they are teachers, will have to forgo some financial gains and work with a missionary spirit. SA A U D SD

61. None else but people with missionary spirit should join the teaching profession in schools. SA A U D SD

62. Principals do not act as friends, guides but become Masters of the teachers. SA A U D SD

63. Teachers enjoy no appropriate reward for their work. SA A U D SD

64. Teachers' success is not in their hands but on the mercy of the ability of the students. SA A U D SD

65. Teachers enjoy poor status in the society inspite of their position as "Makers of the future". SA A U D SD

66. A teacher can perform his duties best. SA A U D SD

67. Teachers' sympathetic attitude towards their students can well/make the students achieve maximum academic achievement as well as alround development. SA A U D SD

Contd..

68. A teacher should always aspire to develop good relations with his students. SA A U D SD

69. The first lesson a child needs to learn is to obey the teacher without hesitations. SA A U D SD

70. The teacher should not be expected to manage a child if the latter's parents are unable to do so. SA A U D SD

71. A teacher should not be expected to do more work than he is paid for. SA A U D SD

72. Teachers' job do not end with the end of school hours but they should feel pleasure whenever students approach them for any sort of help. SA A U D SD

73. Most children are faithful. SA A U D SD

74. Teachers are many but inspired are few. SA A U D SD

75. Teachers are big failures if they cannot command respect from the students. SA A U D SD

76. A school teacher is likely to remain as a school teacher for the whole of his life. SA A U D SD

77. Dictatorial attitude of the Principal annoys the teacher in school. SA A U D SD

78. Teachers enjoy no facilities for future studies. SA A U D SD

79. School teaching is made a hell because of undue interference of the Principal. SA A U D SD

80. One has to remain a school teacher because of his poor academic career. SA A U D SD

Thank you very much for your cooperation.

Your teaching experience please . ...

Your age ....

APPENDIX 17D

(Try-out Results of Job Satisfaction Scale)

Statements showing datisfaction

Statement Numbers On		"t" Value	Statement Number on check-list (App. 17C)	"t" Value
Check-list (App. 17C)	Final Scale (App. 17)			
49	27	16.5	23	2.88
35	11	7.58	31	2.81
20	1	6.43	42	2.64
52	15	6.39	68	2.58
1	13	4.77	41	2.57
3	20	4.16	11	2.30
13	25	4.33	45	2.18
19	-	4.16	55	2.07
17	21	3.84	33	1.82
59	3	3.82	29	1.58
60	6	3.82	30	1.67
5	17	3.80	66	1.54
7	23	3.57	61	1.51
46	19	3.57	32	1.37
34	10	3.52	67	1.36
2	5	3.35	74	1.04
6	-	3.25	75	0.67
36	-	3.27	43	-0.24
73	-	3.05	51	-1.59
72	-	2.95	38	-2.78

Contd....

Statements showing Dissatisfaction

Statement Number On		"t" Value	Statement Number on check-list (App. 17C)	"t" Value
Check-list (App. 17C)	Final Scale (App.17)			
21	8	10.44	76	3.29
25	29	9.65	77	3.23
12	30	8.61	56	3.16
39	9	8.27	8	3.09
15	24	8.00	9	3.06
27	16	7.87	40	2.88
10	12	7.25	78	2.76
62	18	6.16	24	2.75
16	-	5.96	18	2.69
22	7	5.89	70	2.69
37	4	5.82	47	2.16
14	2	5.18	64	2.14
71	22	4.72	57	2.07
63	14	4.72	65	1.92
44	28	4.50	48	1.75
79	-	3.86	58	1.52
80	26	3.34	28	1.45
26	-	1.12	4	-.13
50	-	.89	54	.89
53	-	1.86	69	00

Note:

1. Statement numbers 19 and 49 seem to be nearly the same, hence the 19th statement was eliminated. It was substituted by the 16th statement because it had the next lower value.

2. Statement numbers 16 and 79 were not selected because of their similarity with statement numbers 21 and 62 respectively. Consequently, statement number 80 of next lower value was selected.

APPENDIX 17E

CENTRAL INSTITUTE OF EDUCATION
33-Chhatra-Marg, Delhi-7

Name: (Mr./Mrs./Miss) ______________________

School ______________________

____

Dear Sir/Madam,

Some of the statements regarding the PROFESSION OF SCHOOL TEACH[illegible] are given below. Please read each statement carefully and give your reaction to it in any one of the five alternative columns given against each statement.

Please tick mark (✓) under the first column if you 'Strongly Agree' to the statement, second column if you simply 'Agree' and tick mark under third column if you remain 'Uncertain' or 'Undecided'. Similarly, mark under fourth column if you "Disagree" and under fifth column if you "Strongly Disagree" to the statement.

There is no right or wrong answers to the statements. Please respond to EACH ITEM. Give your honest response without any hesitation, reservation or consultation. Rest assured, your responses will be kept STRICTLY CONFIDENTIAL.

Thanking you,

Yours sincerely,

S.P. Anand
(S.P. Anand)
Ph.D. Scholar

Dated: ______________________

Sl. No.	Statements	Strongly agree	Agree	Uncertain or Undecided	Dis-agree	Strongly Disagree
1.	Teaching profession brings mental peace to the teacher.					

viii) Are/Were you or your father, mother, brothers, sisters, husband or wife a member of any organisation?

(M.P., Member of Corporation or Municipality, Club, Religious body or some Welfare Society etc.)

	Name of organisation	Position
Self		
Father		
Mother		
Husband		
Wife		
Brothers		
Sisters		

GENERAL COMMENTS